सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय

४२

(अक्टूबर १९२९-फरवरी १९३०)

प्रकाशन विभाग
सूचना और प्रसारण मन्त्रालय
भारत सरकार

भूमिका

इस खण्डमें १६ अक्टूबर, १९२९ से २८ फरवरी, १९३० तककी जिस अवधिका समावेश हुआ है, उससे स्वतन्त्रताके लिए किए जानेवाले संघर्षका एक नया अध्याय आरम्भ होता है। इस अवधिके दौरान गांधीजीने लगभग आठ सालके बाद आन्दोलनकी बागडोर फिरसे सक्रिय रूपमें अपने हाथों सँभाली और उन्होंने उग्रपंथियोंकी, जिनका नेतृत्व जवाहरलाल नेहरू और सुभाषचन्द्र बोस कर रहे थे, इस माँगको अपनी माँग बना लिया कि देशका उद्देश्य पूर्ण स्वतन्त्रताकी प्राप्ति होना चाहिए। दिसम्बर १९२७ में राष्ट्रीय कांग्रेसके मद्रास अधिवेशनमें जब पहली बार इस माँगके लिए आवाज उठाई गई तब गांधीजीने उसका विरोध किया था और अगले साल कलकत्ता अधिवेशनमें उन्होंने इसका फिर विरोध किया। उस समय उन्होंने अपनी इस रायके पक्षमें यह तर्क दिया था कि 'स्वराज' शब्द जन-समुदायके लिए ज्यादा अर्थ-समृद्ध एवं बोधगम्य है और इसमें स्वतन्त्रताकी बात भी शामिल है। परन्तु चूँकि वे कलकत्ता कांग्रेसमें पारित पारस्परिक समझौतेपर आधारित उस प्रस्तावके साथ सहमत थे, जिसमें ब्रिटिश सरकारसे सन् १९२८ की मोतीलाल नेहरू रिपोर्टमें निरूपित औपनिवेशिक स्वराज्यका संविधान देनेकी बात कही गई थी और इसके लिए उसे एक सालका समय दिया गया था। अतः गांधीजीने दिसम्बर १९२९ में लाहौर अधिवेशनमें स्वयं वह प्रस्ताव रखा, जिसमें पूर्ण स्वतन्त्रताकी प्राप्ति देशका तात्कालिक उद्देश्य घोषित किया गया और उसे प्राप्त करनेके लिए सविनय अवज्ञा आन्दोलन चलानेका अधिकार दिया गया। अपने अंग्रेज मित्रोंको कांग्रेसकी नीतिमें इस नये मोड़का औचित्य समझाते हुए उन्होंने कहा, "व्यक्तिकी ही तरह संस्थाओंको . . . अपनी मान मर्यादाका ध्यान अवश्य होना चाहिए और उन्हें अपने वायदे अवश्य पूरे करने चाहिए।" (पृ० ४३८)। "राष्ट्र स्वतन्त्रता प्राप्त करनेसे भी ज्यादा अपनी इस शक्तिको महसूस करना चाहता है। ऐसी शक्तिका होना ही स्वतन्त्रता है।" (पृष्ठ ४३९)।

गांधीजी सितम्बरके मध्यसे संयुक्त प्रान्तकी (आजके उत्तर प्रदेशकी) यात्रा कर रहे थे और इस खण्डमें पाठकोंको इस यात्राका उनके ही द्वारा लिखित विस्तृत विवरण मिलेगा। यह विवरण उनकी वर्णनात्मक शैलीका उत्तम उदाहरण है और इससे यह पता चलता है कि वह यात्राओंके शिक्षात्मक उद्देश्यपर किस तरह जोर देते थे। मसूरीके पश्चिमी रंगमें रंगे हुए भोग-विलासके वातावरणमें गांधीजीने अपने आपको जलसे वियुक्त मछली जैसा महसूस किया और नागरिकोंकी सभामें उन्होंने

नागरिकोंको स्पष्ट शब्दोंमें गरीबोंके प्रति उनके कर्त्तव्यका ध्यान दिलाया। (पृ० ६६)। अलीगढ़ विश्वविद्यालयकी सभा भी उन्हें आश्वासनजनक नहीं लगी होगी। वहाँ उन्हें विश्वविद्यालयकी छात्र-परिषदकी मानद सदस्यता दी गई थी और वैसे वहाँ उत्साहकी भी कमी नहीं थी परन्तु "विद्यार्थियोंके बीच खादीका लगभग अभाव दिखलाई पड़ रहा था;" और दरिद्रनारायणके लिए थैली भी भेंट नहीं की गई। (पृ० १५३-५४) हिन्दुओंके प्रसिद्ध तीर्थ, मथुरामें गांधीजीको श्रीकृष्णका स्मरण होना स्वाभाविक ही था और वहाँ ऐसी किसी वस्तुका अभाव, जिससे प्रगट होता कि वह कृष्णकी जन्मभूमि है, उन्हें बहुत खला। उन्होंने आम सभामें "संसारके गोपालोंमें कृष्णको शीर्षस्थ" कहा। उन्होंने गायके सम्बन्धमें ही अपने हृदयकी भावनाएँ व्यक्त की (पृ० १६४)। क्योंकि गांधीजीके लिए गाय हमारी माता है और बैल हमारा भाई है। (पृ० ८५)।

ये अनुभव निराशाजनक थे तथापि यात्राके दौरान कुछ सुखद तथ्य भी सामने आये। प्रान्तके कुछ-एक युवक ताल्लुकेदार और जमींदार अब निर्भय होकर राष्ट्रीय पक्षका सक्रिय समर्थन कर रहे थे। कालाकाँकरके राजा साहब और उनका परिवार आदतन खादीधारी था। उन्होंने विदेशी वस्त्रोंको अपने वस्त्रागारसे निकाल कर गांधीजी को उनकी होली जलानेके लिए आमन्त्रित किया। एक सार्वजनिक सभामें उन्होंने यह आशा व्यक्त की कि अमीर लोग अब जनताके न्यासीके रूपमें काम करेंगे। उन्होंने कहा "मैं जो स्वप्न साकार करना चाहता हूँ, वह मालिकोंकी निजी सम्पत्तिको ध्वंस करनेका नहीं है, बल्कि उसके आनन्दोपभोगको नियन्त्रित करनेका है; ताकि . . . और वह बेहद भद्दी विषमता, जो आज गरीबों और अमीरोंकी जिन्दगी और उनके वातावरणके बीच है, न रहने पाये।" (पृष्ठ २१२)।

यद्यपि गांधीजीने जमींदारों और ताल्लुकेदारोंकी उनकी देशभक्तिकी उत्कट भावनाके लिए प्रशंसा की, तथापि उन्होंने उनसे कहा कि अपने जीवनमें उन्होंने जो परिवर्तन किया है, उससे वे पूर्ण सन्तुष्ट नहीं हैं। उन्होंने कहा कि उनके और रैयतके बीच अभी गहरी खाई बनी हुई है और जो थोड़ा-सा काम किया गया है, उसके लिए उनके मनमें अहंकारमूलक कृपाकी और आत्मसन्तोषकी भावना भी है जो नहीं होनी चाहिए। उन्होंने कहा, वह चाहते हैं कि "धनिक वर्गको निश्चित रूपसे यह स्वीकार कर लेना होगा कि किसानकी भी वैसी ही आत्मा है जैसी उनकी है और अपनी दौलतके कारण वे गरीबसे श्रेष्ठ नहीं हैं।" (पृष्ठ २५०)। उन्होंने अन्तमें यह चेतावनी दी: "केवल दो मार्ग हैं जिनमें से हमें अपना चुनाव कर लेना है। एक तो यह कि पूँजीपति अपना अतिरिक्त संग्रह स्वेच्छासे छोड़ दें . . . दूसरा यह कि अगर पूँजीपति . . . न चेते तो करोड़ों जाग्रत किन्तु अज्ञानी और भूखे रहनेवाले लोग

देशमें ऐसी गड़बड़ी मचा देंगे . . ." (पृ० २५१)। किसी अन्य सन्दर्भमें लिखते हुए गांधीजीने इस ओर संकेत किया कि "अपने ही आदमियोंके विशेष स्वार्थ हैं, जिन्हें ब्रिटिश राज्यने जन्म दिया है। . . . ये सब सदा यह अनुभव नहीं करते कि वे आप लोगोंका खून चूसकर रह रहे हैं और जब वे ऐसा महसूस करते हैं तो फिर अपने अंग्रेज मालिकोंकी तरह, जिनके ये एजेंट और अस्त्र हैं, वे भी हृदयहीन बन जाते हैं।" (पृ० ४६९)।

अपनी मेरठ यात्राके दौरान गांधीजीने डेढ़ घंटेका खाली वक्त तथाकथित मेरठ-षड्यन्त्र मामलेके उन कैदियोंके साथ बिताया, जिनपर मुकदमा चल रहा था। गांधीजी प्रसन्न मुद्रामें अपने आपपर ही हँसते रहे और वे सारी मुलाकातके दौरान कैदियोंको भी हँसाते रहे। मुलाकातमें उन्हें इतना आनन्द आया कि वे "उनसे जुदा नहीं होना चाहते थे।" (पृ० ११३)।

यात्राके दौरान गांधीजी हरिद्वार भी गये जहाँ वे वहाँकी बाह्य एवं चारित्रिक, दोनों तरहकी अस्वच्छतापर स्पष्ट रूपमें बड़े खिन्न हुए और उन्होंने स्वीकार किया "[हिन्दू] धर्मके प्रति मेरे मनमें सहज प्रेम है और मैं प्राचीन संस्थाओंका हमेशा आदर करता हूँ और उनका औचित्य सिद्ध करना चाहता हूँ। लेकिन फिर भी इन तीर्थ-स्थानोंमें आदमीकी बनाई किसी भी चीजमें मुझे कोई आकर्षण दिखलाई नहीं दिया है।" (पृ० ८१)।

३१ अक्टूबरको वाइसराय लार्ड इर्विनने सरकारी वक्तव्य जारी किया जिसमें उन्होंने ब्रिटिश सरकारकी ओरसे यह घोषणा की कि उनके विचारमें "१९१७ की घोषणामें यह बात साफ है कि भारतकी संवैधानिक प्रगतिका स्वाभाविक मसला जैसा कि उसमें सोचा गया है, डोमीनियन स्टेट्स (औपनिवेशिक स्वराज्य) हासिल करना है।" (देखिए परिशिष्ट – १, पृष्ठ ५३३)। और उन्होंने यह भी घोषणा की कि ब्रिटिश सरकार भारतके लिए नये संविधानपर बातचीत करनेके लिए लन्दनमें गोलमेज-परिषद बुलानेकी बात सोच रही है? गांधीजीने दूसरे दलोंके साथ मिलकर एक संयुक्त वक्तव्य जारी किया, जिसमें वाइसरायकी घोषणाका सतर्कताके साथ स्वागत किया गया था। वक्तव्यमें कहा गया था कि हम ऐसा मानकर चल रहे हैं कि "सभा यह विचार करनेके लिए नहीं होगी कि औपनिवेशिक स्वराज्य कब स्थापित किया जाये, बल्कि वह भारतके लिए औपनिवेशिक स्वराज्यके संविधानकी योजना तैयार करनेके लिए होगी।" (पृ० ८६-७)। गांधीजीने २३ दिसम्बरको वाइसरायके साथ हुई अपनी मुलाकातमें इस बातपर निश्चित आश्वासन देनेके लिए कहा परन्तु वाइसराय आश्वासन नहीं दे सके। इसपर कांग्रेसने लाहौरमें पिछले सालके अपने 'अल्टीमेटम' पर कार्यवाही करनेकी दिशामें अगला कदम उठाया और सालके अन्तिम

दिन वह ऐतिहासिक संकल्प पारित किया, जिसमें यह घोषणा की गई कि देशका उद्देश्य "पूर्ण स्वराज" है।

परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि गांधीजीको यह उग्र कदम उठानेके लिए आन्तरिक संघर्षसे गुजरना पड़ा होगा। इससे कुछ समय पूर्व अंग्रेज मित्रोंके समुद्री तारोंका जवाब देते हुए, जिनमें उन्हें सलाह दी गई थी कि वे भारतकी सहायताके लिए मजदूर दलकी सरकार द्वारा किए जा रहे प्रयत्नोंमें सहयोग दें, उन्होंने कहा था "मैं सहयोगके लिए मर रहा हूँ। मिथ्या सहयोगके बदलेमें सच्चे और हार्दिक सहयोगके लिए हृदयसे उत्सुक हूँ और मेरा असहयोग इसी उत्सुकताका चिन्ह है . . . मैं औपनिवेशिक स्वराज्यके विधानकी प्रतीक्षा कर सकता हूँ, बशर्ते कि मैं सच्चा और अमली औपनिवेशिक स्वराज्य अभी पा सकूँ।" (पृ० १६०)। किन्तु वे यह मानते थे कि भारतमें अभी इतनी शक्ति नहीं आई है कि वह अपने अधिकारका दृढ़ताके साथ आग्रह कर सके और उन्होंने कहा: "मैं धैर्यपूर्वक उसकी प्रतीक्षा करूँगा। मैं इसी ध्येयके लिए जिन्दा रह सकता और काम कर सकता हूँ।" (पृ०१६१)। गांधीजीने "समानान्तर सरकार" बनानेके सुभाषचन्द्र बोसके सुझावका विरोध करनेमें इसी वस्तुनिष्ठ दृष्टिका परिचय दिया: "आप मात्र प्रस्ताव पास करके स्वराज्यकी स्थापना नहीं कर सकते। आप स्वराज्यकी स्थापना शब्दोंसे नहीं वरन् अपने कार्योंसे करेंगे।" (पृ० ३६७)।

मगर यह दृष्टि युवक राष्ट्रवादियोंको अच्छी नहीं लगी और कांग्रेस अध्यक्ष जवाहरलाल नेहरू, गांधीके अनुरोधपर सर्वदलीय नेताओंके वक्तव्यपर हस्ताक्षर करके अत्यन्त खिन्न हुए (देखिए परिशिष्ट – २)। उनके पत्रका उत्तर देते हुए गांधीजीने कहा "मैंने तुम्हारे प्रतिरोधकी हमेशा इज्जत की है। . . . मेरा सुझाव जब कभी तुम्हारे दिल या दिमागको न जँचे, मेरा प्रतिरोध करो, ऐसे प्रतिरोधसे मेरा तुम्हारे प्रति प्रेम घटेगा नहीं।" परन्तु "इस समयके कार्यकारी अधिकारी और अगले सालके लिए अध्यक्षकी हैसियतसे . . . अन्यथा तुम्हारा हस्ताक्षर करना तर्कसंगत, बुद्धिमत्तापूर्ण और ठीक था।" (पृ० १०२-३)।

कांग्रेस प्रस्तावसे भारतमें और इंग्लैंडमें, दोनों जगह आलोचनाका तूफान उठ खड़ा हुआ और गांधीजीने वाइसरायके आगे यह प्रस्ताव रखा कि यदि 'यंग इंडिया'के "पर्दाफाश हो गया" लेखमें बताये गये प्रसिद्ध ग्यारह मुद्दोंके अनुसार तत्काल राहत दे दी जाये तो वह फिलहाल इससे सन्तुष्ट हो जायेंगे। इन मुद्दोंको गांधीजीने भारतकी सीधी-सादी, किन्तु जीवन-मरणसे सम्बन्ध रखनेवाली जरूरतें बताया। (पृ० ४४९) इन ग्यारह मुद्दोंके द्वारा — जिनमें से चौथा नमक-कर हटाना था, जैसा कि उन्होंने दूसरे लेखमें स्पष्ट किया, स्वाधीनताके जैसे एक अमूर्त-से शब्दको कुछ अंशमें मूर्त

रूप दिया गया था। "स्वराज्यका संविधान भी अपने-आपमें पूर्ण नहीं है। . . . सर्वसाधारणके लिए, गरीब लोगोंके लिए स्वाधीनताका अगर कमसे-कम कोई अर्थ हो सकता है, तो वह ये ग्यारह बातें ही हो सकती हैं . . . स्वाधीनताका अर्थ तो यह है कि साधारण ग्रामवासीको भी यह प्रतीत हो जाये कि अपने भाग्यका निर्माता मैं स्वयं ही हूँ, अपने चुने हुए प्रतिनिधियोंके जरिये अपने कानून मैं खुद बनाता हूँ।" (पृष्ठ ४८६)।

राष्ट्रीय आकांक्षाओंकी सतत विफलता और बढ़ती हुई गरीबीका कुल मिलाकर यह परिणाम हुआ कि देशमें हिंसाकी भावना बड़ी शीघ्रतासे व्याप्त हो गई और परिणाम स्वरूप आतंकवादी दल पनपने लगा। गांधीजी सहज ही में लाहौर कांग्रेसमें यह समझ गये थे कि राष्ट्रीयतावादी भारतके धीरजका बाँध टूट रहा है और यद्यपि उन्हें आतंकवादी हिंसा नापसन्द थी और उन्होंने उसका विरोध भी किया (पृ० ३७२-७५ तथा ४३७) तो भी, जैसा कि उन्होंने सी० एफ० एन्ड्रयूजको कहा, उन्होंने यह भी महसूस किया कि "यदि किसी तरह हालत सँभालनी है तो हिंसाकी भावनाका अहिंसात्मक कार्यसे ही सामना किया जाना चाहिए।" उन्होंने आगे कहा, "मैंने बड़ेसे-बड़े खतरे उठानेका दृढ़ निश्चय कर लिया है।" (पृ० ४५९)। यह स्वीकार करनेके बावजूद कि "निस्सन्देह ऊपरी सतहपर हिंसाकी शक्तियाँ दिखाई दे रही हैं और मैं शायद उन्हें वशमें न रख सकूँ", उन्होंने आशा प्रकट की कि "सच्ची अहिंसा, जिसकी मैं वकालत करता हूँ, शायद इस समय इन शक्तियोंको काटकर आगे बढ़ सके और इन शक्तियोंसे ऊपर भी उठ सके।" (पृ० ४३४)। इस तरह, गांधीजी जिस सविनय अवज्ञा आन्दोलनको छेड़नेका इरादा कर रहे थे, उसका उद्देश्य यह था कि ब्रिटिश शासनकी संगठित हिंसाका मुकाबला किया जाये और देशको आसन्न अराजकता और गुप्त अपराधोंसे बचाया जाये। (पृ० ४३७)। हिंसानिष्ठ क्रान्तिकारियोंसे अपनी गति-विधियाँ बन्द करनेकी अपील करते हुए उन्होंने कहा: "लॉर्ड इर्विनके कोपकी अपेक्षा मैं उनके कामोंसे ज्यादा डरता हूँ।" (पृ० ४५०)। उन्होंने बताया कि अहिंसाका अर्थ कायरता नहीं है। "अहिंसा सर्वश्रेष्ठ सद्गुण है, कायरता सबसे बड़ा दुर्गुण है। . . . विशुद्ध अहिंसा उच्चतम वीरता है। अहिंसक व्यवहार कभी पतनकारी नहीं होता; कायरता सदा पतित बनाती है।" (पृष्ठ ७९)।

तथापि बहुत समयतक गांधीजीको इस बातका स्पष्ट रूपमें पता नहीं था कि आन्दोलनका रूप क्या होगा। उन्होंने जवाहरलाल नेहरूको लिखा: "कांग्रेसकी वर्तमान स्थितिमें उसके नामसे किसी भी प्रकारकी सविनय अवज्ञा अभी नहीं की जा सकती है और न ही की जानी चाहिए। वह अकेले या कुछ साथियोंके साथ मेरे द्वारा ही की जा सकती है . . ." (पृ० ३९४)। वह कोई ऐसा सूत्र ढूँढ़ निकालना चाहते

थे, जिससे कि उन्हें जनतामें हिंसा फैल जानेपर आन्दोलन स्थगित न करना पड़े जैसा कि उन्होंने १९२२ में चौरी-चौराकी घटनाओंके बाद किया था। क्या करना होगा, इसकी उचित योजना तैयार करनेके लिए वह साबरमती आश्रममें एकान्तमें रहने लगे। 'डेली एक्सप्रेस'के संवाददातासे उन्होंने कहा: "ऐसे आन्दोलनका नियमन करनेवाले व्यक्तिके लिए यह बहुत ही जरूरी है कि वह अपनेको अपने अनुयायियोंकी आवाजके साथ सस्वर रखे और इसलिए उसका बाहरी प्रभावोंसे अछूता रहना और अन्दर जो छोटीसे-छोटी चीज हो रही है उसके प्रति सजग रहना, समान रूपसे जरूरी हैं।" (पृ० ४३२-३३)। उन्होंने आगे कहा "मेरी अपनी ही सीमाओंके कारण मेरे लिए आसपासके अन्धकारके अन्दर झाँककर देखना असम्भव हो रहा है।" (पृ० ४३४)। जहाँ एक ओर गांधीजी इस तरह अन्तरात्माकी आवाजसे मार्गदर्शन प्राप्त करना चाहते थे वहाँ दूसरी ओर वे इस बातको भी जानते थे कि उसका आश्रय लेते हुए अत्यन्त सजग रहनेकी आवश्यकता है। कारण, "अन्तरात्मा कब पुकारती है तथा षड्रिपुओंमें से एक या सब कब सिरपर चढ़कर बोलते हैं, इस बातका पता कैसे चले?" (पृ० २४६) "परन्तु" उन्होंने सी० एफ० एन्ड्रयूजको लिखा कि "वह चमकीला आवरण जो सत्यको ढके हुए है, दिनों-दिन क्षीण होता जा रहा है और शीघ्र ही नष्ट हो जायेगा।" (पृ० ४५९)। अन्तमें इसका समाधान हुआ कांग्रेस कार्यसमितिके १५ फरवरी, १९३० के प्रस्तावसे — जिसमें गांधीजीको और उनके साथी कार्यकर्त्ताओंको, जिनका कि स्वतंत्रता प्राप्तिके लिए अहिंसामें नैष्ठिक विश्वास था, यह अधिकार दिया गया कि वे सविनय अवज्ञा आन्दोलन शुरू कर दें और समस्त कांग्रेसजनोंको यह आदेश दिया गया कि वे इन सविनय प्रतिरोध करनेवालोंको अपना पूरा सहयोग दें। गांधीजीने कहा कि कार्यसमितिका यह प्रस्ताव यदि मेरे हाथ-पाँव जंजीरसे जकड़ देता है तो मुझे "स्वतन्त्रताका परवाना" भी देता है। "यही वह नुस्खा है, जिसके बारेमें मैं पिछले महीनों लगातार सोचता रहा हूँ।" (पृ० ४९८)। १५ फरवरीकी प्रार्थना-सभामें दिया गया भाषण कष्ट सहने और आश्रमको "बलिदानकी दीपशिखामें" बदलनेका आह्वान था। 'यंग इंडिया'के एक लेखमें उन्होंने घोषणा की "मेरा तो यह मन्तव्य है कि आन्दोलन केवल आश्रमके अन्तेवासियों और उन लोगोंके द्वारा आरम्भ किया जाना चाहिए जो आश्रमका अनुशासन मानते हैं और जिन्होंने इसके तरीकोंकी भावनाको आत्मसात् किया है।" (पृ० ५१७)।

गांधीजीमें एक अद्भुत गुण यह था कि वे बिलकुल विरोधी दृष्टिकोणको भी समझ सकते एवं उससे सहानुभूति रख सकते थे — बशर्ते कि प्रतिपक्षी उसे ईमानदारीके साथ सही मानता हो। यदि वे जवाहरलाल नेहरूको, उनके विरोधके लिए मान दे सकते थे तो कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर और उदार दलके नेता वी० एस०

श्रीनिवास शास्त्रीसे उनका जो स्नेह-सम्बन्ध था, उसकी भी बहुत इज्जत करते थे। ये दोनों गांधीजीकी कुछ-एक नीतियोंके प्रखर आलोचक थे। कवि रवीन्द्रनाथ और उनके बीच मतभेदोंने कभी-कभी सार्वजनिक विवादका ऐसा रूप धारण कर लिया कि, जिससे ऐसा प्रतीत होता है, उन्हें बड़ा कष्ट हुआ। (देखिए खण्ड २१, पृ० २८७-९१ और खण्ड २८, पृ० ४४१-४७) इसलिए उन्हें सी० एफ० एन्ड्रयूजको यह सूचना देते हुए बड़ी प्रसन्नता हुई कि "गुरुदेव मेरे साथ दो घंटे रहे। वह समय बड़ा आनन्ददायक रहा। . . . हम इस बार एक-दूसरेके और नजदीक आये और मैंने इसे ईश्वरकी बड़ी कृपा मानी।" (पृ० ४५९-६०)। श्रीनिवास शास्त्रीके साथ उनके मतभेद बने रहे, परन्तु गांधीजी उनके दृष्टिकोणका सम्मान करते थे। वास्तवमें कई सालों तक उनका अपना दृष्टिकोण भी यही था। "अच्छा होता कि आप जो लिखना चाहते थे, मुझे लिख ही देते।" उन्होंने शास्त्रीको लिखा "आपको मालूम है कि मैं आपकी रायको कितना महत्त्व देता हूँ। यदि मैं आपकी चिन्तन-पद्धतिको अपना सकता, तो मुझे बड़ी भारी राहत मिल जाती।" (पृ० ४६०)।

पिछले कई वर्षोंमें ग्राम्य भारतकी दुर्दशाके विषयमें गांधीजी की चिन्ता और गहरी हो गई थी और इस खण्डमें ग्राम-सुधारसे सम्बन्धित कई लेख हैं। उनमें से कुछ एक 'नवजीवन'के शिक्षा परिशिष्टके लिए लिखे गये थे। पंजाबमें गुड़गाँवके डिप्टी कमीश्नर श्री ब्रेन द्वारा इस विषयपर लिखित पुस्तककी प्रशंसापूर्ण समीक्षामें उन्होंने लेखककी गृहीत स्थापनाओं और निर्णयोंका आलोचक-जैसी तटस्थतासे विश्लेषण किया और जहाँ उन्होंने उसके द्वारा अपनाए गए उपायोंकी सहृदयतापूर्वक टीका की वहाँ उसके द्वारा प्रस्तुत अनेक व्यवहार्य सुझावोंका स्वागत भी किया। "जब कोई अधिकारी सुधारक बनता है, तो उसे यह समझना चाहिए कि उसका सरकारी ओहदा उसके सुधारके रास्तेमें सहायक नहीं होता, बल्कि रुकावट डालता है।" (पृ०१५३)।

गांधीजीने अस्पृश्यता-निवारणके लिए जो आन्दोलन चलाया, उसे छोड़ दें तो समाज-सेवाके क्षेत्रमें उनकी दूसरी सबसे बड़ी सेवा यह थी कि स्त्रियोंके प्रति परम्परागत रुखमें वह क्रान्तिकारी परिवर्तन ले आये। रेहाना तैयबजीके एक पत्रका उत्तर देते हुए उन्होंने उनसे इस बातका समर्थन करनेका अनुरोध किया था कि स्त्रियोंको उत्तराधिकार-सम्बन्धी अधिकार मिलना चाहिए। उन्होंने कहा: "पुरुष नारी जातिपर जो अत्याचार कर रहे हैं, उन्हें देखकर व्यग्र होनेके लिए मेरा लड़की होना आवश्यक नहीं है . . . स्त्रियोंके अधिकारके बारेमें मैं जरा भी झुकनेको तैयार नहीं हूँ।" (पृ० ५)। परन्तु वर्तमान स्थितिके लिए उन्होंने स्त्रियोंको भी दोषी ठहराया। उन्होंने कहा: बुराईकी जड़ कानूनी असमानताएँ नहीं अपितु "पुरुषकी सत्ता और कीर्तिके प्रति लोलुपता ही इसका मूल कारण है, और इसका इससे भी

बढ़कर कारण है स्त्री-पुरुषकी पारस्परिक विषय-वासना।" (पृ० ५)। किन्तु गांधीजी चाहते थे कि भारतकी स्त्रियाँ स्वतन्त्रताके लिए अपने संघर्षमें पश्चिमके तरीकोंकी नकल न करें बल्कि "भारतकी परिस्थिति और भारतीय स्वभावके अनुकूल उपायोंको काममें लाना चाहिए।" (पृ० ६)। महिलाएँ वीरतापूर्ण आचरण और आन्तरिक संयमके लिए आज भी सीता और द्रौपदी, सावित्री तथा दमयन्तीसे शक्ति और मार्गदर्शन प्राप्त कर सकती हैं। इस तरह वे आदर्शको व्यवहारमें उतार सकेंगी और साथ ही भारतीय सभ्यताके उत्तम अंशकी रक्षा और दोषोंका निराकरण कर सकेंगी। वे चाहते थे कि महिलाएँ शुकके समान पवित्र हों। (पृ० २६४)। दिखावेके लिए की जानेवाली झूठी लज्जा छोड़ दें। एक-दूसरे संवाददाताको, जिसने उनसे यह सलाह माँगी थी कि ऊँच-नीचका भेद कैसे समाप्त किया जाये, गांधीजीने लिखा " . . . आचारसे बढ़कर और कोई प्रचार हो ही नहीं सकता। जो काम मनुष्य दूसरोंसे कराना चाहता है, उसे वह स्वयं करे। उसका यह सबसे बढ़कर असरदार प्रचार होगा।" (पृ० ८४)।

निरन्तर परिवर्तनशील समयकी अपूर्ण घटनाओंपर आधारित इतिहासका महत्त्व गांधीजीके लिए 'महाभारत' जैसे काव्यकी अपेक्षा जो सनातन आन्तरिक अनुभव पर आधारित है, कम है। जनकके उदाहरणमें हमारे लिए आज भी अर्थ है; वह "पुस्तकमें वर्णित बैगन" नहीं है अपितु "अपने खेतमें होनेवाले सुन्दर बैगनकी तरह" है जिसे तोड़कर खाया जा सकता है। (पृ० २३९)। सामूहिक प्रार्थनाको अनिवार्य बनानेकी आवश्यकतापर विद्यार्थियोंको सलाह देते हुए गांधीजीने कहा: "स्वतः स्वीकार किए गए संयममें कोई जबरदस्ती नहीं होती। . . . जो अपनेको नियमोंसे बाँध लेता है, वह मुक्त हो जाता है। . . . अगर हम सिर ऊँचा करके चलनेवाले मनुष्य होना चाहते हैं और चौपाये नहीं बनना चाहते, तो हमें यह बात समझ लेनी चाहिए और अपने-आपको स्वेच्छासे अनुशासन और संयममें रखना चाहिए।" (पृ० ४२६)।

आभार

इस खण्डकी सामग्रीके लिए हम साबरमती आश्रम संरक्षक तथा स्मारक न्यास और संग्रहालय (साबरमती आश्रम प्रिजर्वेशन एण्ड मेमोरियल ट्रस्ट); नवजीवन ट्रस्ट और गुजरात विद्यापीठ ग्रन्थालय, अहमदाबाद; गांधी स्मारक निधि व संग्रहालय, नई दिल्ली; गृह विभाग, महाराष्ट्र सरकार, बम्बई; स्वार्थमोर कालेज, फिलाडेल्फिया; नगरपालिका संग्रहालय, इलाहाबाद; नेहरू स्मारक संग्रहालय और पुस्तकालय, नई दिल्ली; श्री नारणदास गांधी, राजकोट; श्री फूलचन्द शाह, सुरेन्द्रनगर; श्री हरिभाऊ उपाध्याय, अजमेर; श्री ईश्वरलाल जोशी, बम्बई; श्री वालजी देसाई, पूना; श्री रमणीकलाल मोदी, अहमदाबाद; श्री डाह्याभाई एम० पटेल, ढोल्का; श्री शान्तिकुमार मोरारजी, बम्बई; श्री घनश्यामदास बिड़ला, कलकत्ता; श्री बनारसीलाल बजाज, वाराणसी; श्रीमती लक्ष्मी-बहन खरे, अहमदाबाद; श्रीमती शारदाबहन शाह, वढवान; श्रीमती राधाबहन चौधरी, कलकत्ता; श्रीमती मीराबहन, आस्ट्रिया; 'बापुना पत्रो', 'हिस्ट्री ऑफ द इंडियन नेशनल कांग्रेस', 'लैटर्स ऑफ श्रीनिवास शास्त्री', 'पाँचवें पुत्रको बापूके आशीर्वाद', 'ए बंच ऑफ ओल्ड लैटर्स', 'बापू : मैंने क्या देखा क्या समझा ?', 'बापुनी प्रसादी', 'विट्ठलभाई पटेल : लाइफ एण्ड टाइम्स', 'रिपोर्ट ऑफ द ४४ सेशन ऑफ द इंडियन नेशनल कांग्रेस', 'इंडिया इन १९२९-३०', पुस्तकोंके प्रकाशकों और 'अमृतबाजार पत्रिका', 'बॉम्बे क्रॉनिकल', 'हिन्दी नवजीवन', 'हिन्दू', 'हिन्दुस्तान टाइम्स', 'लीडर', 'माडर्न रिव्यू', 'नवजीवन', 'प्रजाबन्धु', 'सर्चलाइट', 'ट्रिब्यून' और 'यंग इंडिया' इन समाचारपत्रों और पत्रिकाओंके आभारी हैं।

अनुसन्धान व सन्दर्भ सम्बन्धी सुविधाओंके लिए अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी पुस्तकालय, इंडियन कौंसिल ऑफ वर्ल्ड अफेयर्स : पुस्तकालय, सूचना एवं प्रसारण मन्त्रालयका अनुसन्धान और सन्दर्भ विभाग (रिसर्च एण्ड रिफरेंस डिवीजन) भारतीय राष्ट्रीय अभिलेखागार और श्री प्यारेलाल नैय्यर, नई दिल्ली हमारे धन्यवादके पात्र हैं। प्रलेखोंकी फोटो-नकल तैयार करनेमें मदद देनेके लिए हम सूचना एवं प्रसारण मन्त्रालयके फोटो विभाग, नई दिल्लीके आभारी हैं।

पाठकोंको सूचना

अंग्रेजी सामग्रीका अनुवाद करते हुए अनुवादको मूलके समीप रखनेका पूरा प्रयत्न किया गया है। छापेकी स्पष्ट भूलें सुधारनेके बाद अनुवाद किया गया है और मूलमें प्रयुक्त शब्दोंके संक्षिप्त रूप यथासम्भव पूरे करके दिए गए हैं। जिन नामोंके उच्चारणमें संशय था उनको वैसा ही लिखा गया है जैसा गांधीजीने अपने मूल लेखोंमें लिखा है।

मूल सामग्रीके चौकोर कोष्ठकोंमें दी गई सामग्री सम्पादकीय है। गांधीजीने किसी लेख, भाषण आदिका जो अंश मूल रूपमें उद्धृत किया है, वह हाशिया छोड़कर गहरी स्याहीमें छापा गया है, लेकिन यदि कोई ऐसा अंश उन्होंने अनूदित करके दिया है तो उसका हिन्दी अनुवाद हाशिया छोड़कर साधारण टाइपमें छापा गया है। भाषणोंकी परोक्ष रिपोर्ट तथा वे अंश जो गांधीजीके कहे हुए नहीं हैं, बिना हाशिया छोड़े गहरी स्याहीमें छापे गये हैं। भाषणों और भेंटकी रिपोर्टोंके उन अंशोंमें जो गांधीजीके नहीं हैं, कुछ परिवर्तन किया गया है और कहीं-कहीं कुछ जोड़ भी दिया गया है।

अंग्रेजी और गुजरातीसे अनुवाद करनेमें अनुवादको मूलके समीप रखनेका पूरा प्रयत्न किया गया है, किन्तु साथ ही भाषाको सुपाठ्य बनानेका भी पूरा ध्यान रखा गया है।

शीर्षककी लेखन-तिथि जहाँ उपलब्ध है वहाँ दायें कोनेमें ऊपर दे दी गई है। परन्तु जहाँ वह उपलब्ध नहीं है वहाँ उसकी पूर्ति अनुमानसे चौकोर कोष्ठकोंमें दी गई है और आवश्यक होनेपर उसका कारण स्पष्ट कर दिया है। शीर्षकके अन्तमें साधन-सूत्रके साथ दी गई तिथि प्रकाशनकी है। गांधीजीकी सम्पादकीय टिप्पणियाँ और लेख, जहाँ उनकी लेखन-तिथि उपलब्ध है अथवा जहाँ किसी दृढ़ आधारपर उसका अनुमान किया जा सका है, वहाँ लेखन तिथिके अनुसार, और जहाँ ऐसा सम्भव नहीं हुआ है, वहाँ उनकी प्रकाशन तिथिके अनुसार दिए गए हैं।

इस ग्रन्थमालाके खण्ड – १ के सन्दर्भ जून १९७० के संस्करणके हैं।

साधन-सूत्रोंमें 'एस० एन०' संकेत साबरमती संग्रहालय, अहमदाबादमें मूल रूपमें उपलब्ध सामग्रीका, 'जी० एन०' गांधी स्मारक निधि और संग्रहालय, नई दिल्लीमें उपलब्ध कागज-पत्रोंका, और 'एम० एम० यू०' गांधी स्मारक निधि और संग्रहालयमें उपलब्ध मोबाइल माइक्रोफिल्म यूनिटकी रीलोंका, और 'सी० डब्ल्यू०' सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय (कलेक्टेड वर्क्स ऑफ महात्मा गांधी) द्वारा संग्रहीत पत्रोंका सूचक है।

सामग्रीकी पृष्ठभूमि देनेके लिए मूलसे सम्बद्ध कुछ परिशिष्ट भी दिए गए हैं। अन्तमें साधन-सूत्रकी सूची और खण्डसे सम्बन्धित कालकी तारीखवार घटनाएँ दी गई हैं।

विषय-सूची

१. वक्तव्य : अहमदाबाद मजदूरोंके झगड़ेके सम्बन्धमें[1]

देहरादून
१६ अक्टूबर, १९२९

सेठश्री मंगलदासने सरपंचके सामने पेश किये जानेवाले वक्तव्यकी नकल सुझावोंके लिए मेरे पास भेजी है। उक्त वक्तव्य मैंने पढ़ लिया है।

मुझे लगता है कि उसमें कही गई बहुत-सी बातें अप्रासंगिक हैं।

मेरी समझमें तो १९२३ में हुए समझौतेके अनुसार वेतनमें जो कटौती की गई थी वह भविष्यमें भी हमेशा लागू होगी, इस बातका आग्रह छोड़ दिया गया था। इसके अतिरिक्त प्रस्तुत वक्तव्यमें भी सेठ मंगलदास इस बातका आग्रह नहीं करते कि १९२३में की गई कटौतीके बाद मजदूरोंकी ओरसे उसे रद करनेकी माँग की ही नहीं जा सकती। इसलिए हालाँकि उन्होंने इस सम्बन्धमें बहुत-कुछ लिखा है किन्तु मेरे लिए उसका उत्तर देना अनावश्यक है। उन्होंने पंचके रूपमें १९२३ में कोई निर्णय नहीं दिया था, इतना तो स्पष्ट है। इसलिए १९२३ में जो-कुछ हुआ उसके लिए उन्हें दोष नहीं दिया जा सकता बल्कि यदि किसीको दोष दिया जा सकता है तो वह मिल-मालिक संघ है।

यदि सच कहा जाये तो मेरे विचारमें सरपंचको एक ही मुद्देपर अपना निर्णय देना है। अनाज आदिके मौजूदा भावोंको देखते हुए मजदूरोंको जो वेतन आज मिलता है वह उनके खर्चकी अपेक्षा कम है या नहीं। और यदि कम है तो इस कमीको पूरा करने लायक वेतन-वृद्धि कर ही दी जानी चाहिए।

इस मुद्देके बारेमें मजदूर पक्षकी ओरसे जो साक्ष्य दिया गया है उससे स्पष्टतः यह सिद्ध हो जाता है कि मजदूरोंकी कुल आमदनी उनके आवश्यक मासिक खर्चकी अपेक्षा कहीं कम है। सेठ मंगलदासके वक्तव्यमें मुझे मजदूरोंके इस कथनका कोई खण्डन नहीं मिलता। इसलिए मैंने अपने निर्णयमें[2] जो-कुछ कहा है उससे अधिक और कुछ कहनेको नहीं रह जाता। किन्तु एक बातकी ओर मैं सरपंचका ध्यान आकर्षित करना चाहता हूँ। वेतनमें कटौती मजदूरोंके लिए जिन्दगी और मौतका प्रश्न है। मिलोंके लिए कटौती करना और उसे बनाये रखनेका उद्देश्य नफेमें आई हुई कमीको भरना और नफेको बढ़ाना था और है। मेरा तात्पर्य यह है कि जबतक मिलोंको कुछ भी नफा हो रहा है तबतक मजदूरोंके गुजर-बसरके लायक वेतनमें कमी की ही नहीं जा सकती। कटौतीके पहले मिलनेवाला गुजारेके लायक वेतन वास्तवमें गुजारेके

१. अहमदाबादके मिल-मजदूर संघ तथा मिल-मालिक संघके आपसी झगड़ेको निबटानेके लिए मंगलदास गिरधरदास तथा गांधीजीको पंच चुना गया था और कृ० मो० झवेरीने सरपंचके रूपमें काम किया था। पंच-निर्णयपर गांधीजीकी टिप्पणियोंके लिए देखिए "एक महत्त्वपूर्ण फैसला", १२-१२-१९२९।

२. देखिए खण्ड ४१, पृष्ठ ४०४–९।

लायक था ही नहीं। यह सच है कि १९२३ की अपेक्षा आजकल अनाजका भाव उतरा हुआ है। किन्तु दुःख और आश्चर्यकी बात तो यह है कि आज अनाजके भाव उतर जानेके बावजूद मजदूरोंका खर्च उनके वेतनकी अपेक्षा अधिक है, यह बात पंचके सामने पेश किये गये साक्ष्यसे सिद्ध हो जाती है। मजदूरों द्वारा पेश किये गये आँकड़ोंका समर्थन दो प्रकारसे होता है। मजदूरोंको मिलनेवाले वेतनमें से वार्षिक बचतका हिसाब लगाने तथा सरकारकी ओरसे दो बार की गई जाँचके फलस्वरूप जो आँकड़े निकले थे उनसे यह स्पष्ट हो जाता है कि मजदूरोंकी ओरसे खर्चके बारेमें जो आँकड़े पेश किये गये थे, सरकारी रिपोर्ट भी उनका समर्थन करती है।

मुझे लगता है कि मजदूरोंकी आजकी स्थितिको मिल-मालिक या सेठ मंगलदास समझ नहीं सके हैं। मैं चाहता हूँ कि सरपंच इस स्थितिको समझ लें।

यदि सरपंच मुझसे अन्य कोई खास बात न जानना चाहते हों तो मेरी ओरसे और कुछ कहनेको नहीं बचता।

गुजराती (एस० एन० १४९७९)की माइक्रोफिल्मसे।

२. पत्र : महादेव देसाईको

१६ अक्टूबर, १९२९

चि० महादेव,

तुम्हारा पत्र मिला। आजकल तो मैं लिख ही नहीं पाता हूँ। काकी[1]-सम्बन्धी लेख मुझे आज ही मिला है। लेख अच्छा है। कहनेवाले तो कहते ही रहेंगे।[2]

'गीताजी' के जो प्रूफ गोरखपुर भेजे गये थे। वे अभीतक वापस नहीं मिले। अब जब आयें तभी ठीक है। इन प्रूफोंको मसूरीमें[3] देखनेका मुझे अच्छा मौका मिल सकेगा।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (एस० एन० ११४५७) की फोटो-नकलसे।

१. दत्तात्रेय बालकृष्ण कालेलकरकी पत्नी; देखिए **नवजीवन**, १३-१०-१९२९में प्रकाशित "एक सतीका अवसान" शीर्षक लेख।

२. देखिए "**शुष्क-नवजीवन**", ३-११-१९२९।

३. १७ से २४ अक्टूबर, १९२९ तक गांधीजी मसूरीमें थे।

३. पत्र : छगनलाल जोशीको

देहरादून
१६ अक्टूबर, १९२९

चि० छगनलाल,

तुम्हारा पत्र नहीं मिला, हालाँकि आश्रमसे लिखा जमनालालजीका पत्र मिल गया है। इसका मतलब यह हुआ कि आश्रमकी डाक यहाँ पहुँच चुकी है। उससे मुझे उमियाकी[1] सगाईका समाचार मिला है। वे दोनों सुखी हों। इसके साथ चि० शंकरलालका पत्र उमिया तक पहुँचानेके लिए भेज रहा हूँ। उक्त पत्र पढ़कर उसे दे देना।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च :]
यह पत्र दुबारा नहीं पढ़ा है।

गुजराती (जी० एन० ५४६०)की फोटो-नकलसे।

४. क्या यह ग्राम सुधार है?

पंजाबके गुड़गाँव जिलेमें श्री एफ० एल० ब्रेनने ग्रामीणोंकी बेहतरीके लिए जो काम किया, उसकी कुछ समय पहले समाचारपत्रोंमें काफी चर्चा की गई थी। वह जिला श्री ब्रेनकी देखरेखमें था। समाचारपत्रोंकी इन चर्चाओंसे मेरा ध्यान उस ओर आकृष्ट हुआ और मुझे लगा कि श्री ब्रेनने जो हवाला दिया है, यदि वह गुड़गाँवमें हुई प्रगतिका सही हवाला है, तो उनके कामका बारीकीसे अध्ययन और अनुकरण करना उपयुक्त होगा। इसलिए मैंने लालाजीकी समितिसे[2] अनुरोध किया कि वह मौकेपर निरीक्षण करके इस बातकी जाँच करे कि वास्तवमें कैसा काम हुआ है। समितिके एक स्नातक सदस्य लाला देशराजको इस काममें लगाया गया था। उन्होंने अपनी जाँचकी एक विस्तृत रिपोर्ट तैयार की है। उसे मैं कुछ अंशोंको छोड़ते हुए बाकी ज्यों-की-त्यों प्रकाशित कर रहा हूँ।[3] रिपोर्टको ध्यानसे पढ़ना लाभदायक होगा। श्री ब्रेनने वाइसरायसे तथा पंजाबके राज्यपालसे भी अपने कामके सम्बन्धमें सावधानीसे प्रयुक्त शब्दोंमें लिखे प्रमाण-पत्र हासिल कर लिये हैं। लेकिन मैं लाला देशराजके विचारोंका पूर्वानुमान

१. आश्रमवासी जयसुखलाल गांधीकी पुत्री।
२. लोक सेवक समिति (सर्वेन्ट्स ऑफ पीपल सोसाइटी)।
३. यहाँ नहीं दी जा रही है।

नहीं लगाऊँगा। मैं अपनी टीका-टिप्पणी तबतक नहीं दूँगा जबतक कि रिपोर्ट पूरी प्रकाशित नहीं हो जाती। पाठकोंको रिपोर्टकी परिसमाप्तिके लिए 'यंग इंडिया'[१] के एक और अंककी प्रतीक्षा करनी होगी।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १७-१०-१९२९

५. स्त्रियोंका स्थान

एक बहन[२], जो अबतक विवाह करनेसे बचती रही है, लिखती है:

> कल मलबारी भवनमें स्त्रियोंकी एक सभा हुई थी, जिसमें कई गम्भीर भाषण किये गये थे और कई प्रस्ताव भी पास हुए थे। विचारणीय विषय शारदा बिल था। यह जानकर हमें बड़ी प्रसन्नता हुई कि लड़कियोंके विवाहके सम्बन्धमें कमसे-कम अठारह वर्षकी उम्रके आप पक्षपाती हैं। इस सभामें एक और महत्त्वका प्रस्ताव विरासत-सम्बन्धी कानूनोंके विषयमें था। यदि इस विषय पर आप 'यंग इंडिया' और 'नवजीवन'में एक जोरदार लेख लिखें तो हमारे लिए वह बहुत सहायक होगा। यह बात तो मेरी समझमें ही नहीं आती कि अपने जन्मसिद्ध अधिकार वापस पानेके लिए नारियोंको याचना या संघर्ष क्यों करना पड़े? नारीसे जन्म लेनेवाले पुरुषका दर्पसे अपनी जननीको 'अबला' कहना और स्त्रियोंके छीने हुए अधिकार बड़ी ही उदारतासे वापस 'देने'का वायदा करना कितना विचित्र, दुखद और हास्यजनक है! 'देने'की इस बेहूदा बातका क्या अर्थ है? जिन अधिकारोंको पुरुषने अन्यायपूर्वक, केवल अपने पशुबल द्वारा स्त्रियोंसे छीना है, उन्हें वापस लौटानेमें कौन-सी 'उदारता' और 'बहादुरी' है? स्त्रीका महत्त्व पुरुषसे किस मामलेमें घटकर है कि जिसके कारण विरासतमें उसका हिस्सा पुरुषसे कम होना चाहिए? वह बराबर क्यों न हो? दो-एक दिन पहले हम इस विषयपर कुछ लोगोंके साथ खूब जोरोंसे चर्चा कर रही थीं। एक बहनने कहा: "हमें कानूनमें कोई परिवर्तन नहीं चाहिए। हम अपनी वर्तमान दशामें सन्तुष्ट हैं। लड़का चूँकि कुटुम्बके परम्परागत रीति-रिवाजों और उसकी प्रतिष्ठाकी रक्षा करता है, कुटुम्बका आधार भी वही होता है, इसलिए विरासतका अधिकांश उसीको मिलना न्यायसंगत है।" इसपर हमने कहा कि "और लड़कीके विषयमें आपका क्या कहना है?" इसी समय पास ही खड़ा एक नवयुवक बोल उठा —'अरे! लड़कीकी चिन्ता आप क्यों

१. देखिए "ग्रामसुधार", १४-११-१९२९।

२. रेहाना तैयबजी; देखिए खण्ड ४१, पृष्ठ ५८१-८२।

करती हैं, उसकी देखभाल दूसरा आदमी करेगा ही।' बस, बात यही है—'दूसरा आदमी।' यह 'दूसरा आदमी' तो एक बड़ी बला है। 'दूसरे आदमी'की इसमें जरूरत ही क्यों होनी चाहिए? इस बातको मानकर क्यों चलना चाहिए कि 'दूसरा आदमी' होगा ही? और कन्याके सम्बन्धमें तो लोग इस ढंगसे बातें करते हैं मानो वह कोई सामानका गट्ठर हो जिसको माता-पिताके घरमें तभी तक रखा जाना है, जबतक कोई दूसरा व्यक्ति (पतिके रूपमें) न आ जाये और माँ-बाप चैनकी साँस लेते हुए लड़कीको उसे सौंप न दें। अगर आप लड़की होते तो क्या यह सब देखकर आप सचमुच ही व्यग्र न हुए होते?"

पुरुष नारी जातिपर जो अत्याचार कर रहे हैं, उन्हें देखकर व्यग्र होनेके लिए मेरा लड़की होना आवश्यक नहीं है। अत्याचारोंकी सूचीमें विरासत-सम्बन्धी कानूनको मैं सबसे आखिरी दर्जेकी चीज मानता हूँ। शारदा बिल जिस बुराईको दूर करनेका प्रयत्न करता है, वह विरासत-सम्बन्धी कानूनसे व्यंजित होनेवाली बुराईसे कहीं अधिक भयंकर और गम्भीर है। लेकिन स्त्रियोंके अधिकारके बारेमें मैं जरा भी झुकनेको तैयार नहीं हूँ। मेरी रायमें स्त्रीपर ऐसी किसी कानूनी निर्योग्यताका बोझ नहीं होना चाहिए, जिससे पुरुष मुक्त है। मैं लड़के और लड़कीके प्रति हर तरहसे भेदभाव-रहित समान व्यवहार करना चाहूँगा। जैसे-जैसे स्त्री-जातिको शिक्षा द्वारा अपनी शक्तिका भान होता जायेगा, जैसा कि होना भी चाहिए, वैसे-वैसे उसके साथ जो असमान व्यवहार आज किया जाता है, उसका वह स्वभावतः अधिकाधिक उग्र विरोध करेगी।

लेकिन वैधानिक विषमताओंको दूर करना मात्र बाहरी उपचार-जैसा होगा। जैसा अधिकतर लोग समझते हैं, इस व्याधिकी जड़ उससे कहीं ज्यादा गहरी है। पुरुषकी सत्ता और कीर्तिके प्रति लोलुपता ही इसका मूल कारण है, और इसका इससे भी बढ़कर कारण है स्त्री-पुरुषकी पारस्परिक विषय-वासना। पुरुष सदासे ही शक्तिका आकांक्षी रहा है और सम्पत्तिपर उसका अधिकार उसे यह शक्ति प्रदान करता है। वह शक्तिपर आधारित मरणोत्तर कीर्तिकी लालसा भी रखता है। अगर सम्पत्तिमें सारी पीढ़ी समान रूपसे भाग पानेकी अधिकारी हो जाये तो जायदादके टुकड़े होते ही चले जायें और फिर यह बात सम्भव न बने। इसीलिए सारी सम्पत्ति नहीं, तो उसका बड़ा भाग विरासतमें बड़े लड़केको मिलता है। ज्यादातर स्त्रियाँ विवाहित होती हैं। यद्यपि कानून उनके विरुद्ध हैं तो भी उनका अपने पतियोंकी सत्ता और अधिकारमें समान भाग रहता है, तथा अपनेको अपने श्रीमान पतियोंकी श्रीमती अमुक कहलानेमें आनन्द और गर्वका अनुभव करती हैं। अतएव वे विषमता-सम्बन्धी सैद्धान्तिक चर्चाके समय क्रान्तिकारी परिवर्तनके लिए अपना मत भले ही दें, लेकिन जब तदनुसार आचरणका अवसर आता है तब वे अपनी इन विशेष सुविधाओंको छोड़ना नहीं चाहतीं।

इस कारण यद्यपि मैं इस बातका हमेशा समर्थन करूँगा कि स्त्री जातिपर से सभी कानूनी निर्योग्यताएँ हटा दी जानी चाहिए, मैं यह भी चाहूँगा कि भारतकी

पढ़ी-लिखी, सुशिक्षित बहनें इस व्याधिके मूल कारणको मिटानेके लिए प्रयत्न करें। स्त्री त्याग और तपस्याकी साक्षात् मूर्ति है और सार्वजनिक जीवनमें उसके प्रवेशसे उसमें पवित्रता आनी चाहिए और उससे अमर्यादित आकांक्षाओं और सम्पत्ति-संग्रहकी वृत्ति-पर अंकुश लगना चाहिए। स्त्रियोंको जानना चाहिए कि लाखों पुरुषोंके पास विरासतमें छोड़ जाने योग्य कोई सम्पत्ति ही नहीं होती। इन लाखोंके उदाहरणसे हमें यह सीखना चाहिए कि जो थोड़े लोग बच जाते हैं उनका विरासतमें सम्पत्ति न पाना ज्यादा अच्छा है। माता-पिता अपनी सन्तानको समान रूपसे जो असली सम्पत्ति विरासतमें देकर जा सकते हैं, वह तो सिर्फ उनका अपना चरित्र और शिक्षाकी सुविधाएँ ही हैं। अतएव माता-पिताको अपने पुत्र और पुत्रियोंको स्वावलम्बी बनानेकी कोशिश करनी चाहिए, जिससे वे खुद मेहनत करके ईमानदारीसे जीविकोपार्जन कर सकें। तब अपने छोटे-छोटे भाई-बहनोंके पालन-पोषणकी जिम्मेदारी अपने-आप ही वयस्क वारिसोंपर आ पड़ेगी। यदि अमीर लोग अपने बच्चोंको ऐसी शिक्षा दे सकें जिससे कि वे विरासतमें मिलनेवाली सम्पत्तिके गुलाम बननेकी अनुचित आकांक्षाको त्याग कर स्वावलम्बी बननेकी आकांक्षा करने लगें तो इससे उनके बच्चोंमें जो बुराइयाँ पाई जाती हैं वे बहुत-कुछ दूर हो जायें। विरासतमें मिलनेवाली सम्पत्तिकी आकांक्षासे उनके मनसे उद्यमकी भावना लुप्त हो जाती है और वे आलस्य एवं भोग-विलासकी ओर प्रवृत्त होते हैं। युगोंसे चली आई पुरानी बुराइयोंको खोज निकालना और उन्हें नष्ट करना जागरूक स्त्रियोंका ही विशेषाधिकार होना चाहिए।

पारस्परिक विषयवासनासे भी स्त्री-जातिके अधिकारोंका जो अपहरण हुआ है, उसके लिए प्रमाणकी आवश्यकता नहीं होनी चाहिए। स्त्रीने कई तरहके सूक्ष्म तरीकोंसे अनजानमें पुरुषपर जाल डालनेका प्रयत्न किया है। इसी तरह पुरुषने भी स्त्री उसपर हावी न हो जाये, इसलिए उसे अनजानमें पीछे रखनेका प्रयास किया है, जिसमें उसे सफलता नहीं मिली। फलस्वरूप स्थिति ज्यों-की-त्यों है। इस तरह देखा जाये तो भारतवर्षकी जागरूक बेटियोंको जो समस्या सुलझानी है वह गम्भीर है। उन्हें उन पाश्चात्य रीति-रिवाजोंकी नकल नहीं करनी चाहिए जो शायद पश्चिमके लिए अनुकूल हों। उन्हें भारतकी परिस्थिति और भारतीय स्वभावके अनुकूल उपायोंको काममें लाना चाहिए। बहनोंका कर्त्तव्य है कि वे वातावरण शुद्ध रखें, अपने निश्चयों-को दृढ़ और अटल बनायें, दिङ्मूढ़ताके दोषसे बचें, अपनी सभ्यता और संस्कृतिके सर्वोत्तम तत्त्वका पोषण करें, और उसके दोषोंको और पतनकारी तत्त्वोंको बिना झिझके दूर करें। यह काम सीता, द्रौपदी, सावित्री, दमयन्ती-जैसी स्त्रियोंके किये ही हो सकता है; पुरुषोचित आचरण करनेवाली या मिथ्या विनयी और संकोचशील नारीसे कदापि नहीं हो सकता।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १७-१०-१९२९

६. मेरी चुप्पी

मैं सोचता था कि मुझसे पत्र-व्यवहार करनेवालोंने अबतक तो यह जान-समझ लिया होगा कि अगर मैं किसी ऐसे प्रश्नपर, जिसे लेकर सारा देश उद्विग्न हो उठा है, चुप हूँ, तो देशका हित या ऐसा ही कोई ठोस आधार उसकी वजह होगा, और इसलिए मैं समझता था कि वे मुझपर विरोधात्मक या जिज्ञासात्मक पत्रोंका ताँता लगाकर मुझसे यह सवाल नहीं करेंगे कि मैं यतीन्द्रनाथ दासके[1] आत्मबलिदान और आम तौरपर भूख हड़तालवालोंके सम्बन्धमें चुप क्यों हूँ? गोरखपुरके एक मानपत्रमें, इस बारेमें, मुझसे सीधा सवाल किया गया; और सौजन्यकी दृष्टिसे मुझे उसका उत्तर देना ही पड़ा। मैंने अपने उत्तरमें यही कहा कि मैं इस विषयपर केवल देश-हितकी दृष्टिसे ही चुप रहा हूँ। मुझे लगता था कि अगर मैं अपने विचार व्यक्त करूँगा तो सम्भव है कि वीर यतीन्द्रने जिस उद्देश्यके लिए मरते दमतक उपवास नहीं छोड़ा था उसको लाभके बदले हानि ही अधिक पहुँचेगी। जीवनमें ऐसे अवसर होते हैं जब मौन रहना ही बुद्धिमानीका काम होता है। मेरे विचारमें यह एक ऐसा ही अवसर है। मैं अपने पाठकोंसे यह कह देना चाहता हूँ कि राष्ट्रके जीवन-मरणसे सम्बन्ध रखनेवाले ऐसे कई महत्त्वके प्रश्न हो सकते हैं, जिनके सम्बन्धमें अपने निश्चित और दृढ़ विचार रखते हुए भी मैं बिलकुल चुप रहता हूँ, क्योंकि मैं मानता हूँ कि हर सार्वजनिक व्यक्तिके सामने प्रायः ऐसे अवसर आते हैं, जब बदनामी और उससे भी बड़े किसी अहितकी जोखिम उठाकर भी चुप रहना ही उसका कर्त्तव्य हो जाता है। निस्सन्देह इसी तरह ऐसे भी मौके उसके जीवनमें आते हैं जब जानकी जोखिम उठाकर भी कर्त्तव्यवश उसे अपना मत व्यक्त करना ही पड़ता है। भूख-हड़तालोंके सिद्धान्तके बारेमें तो मैं इन पृष्ठोंमें अपने आम विचारोंको कई बार पूरी तरहसे व्यक्त कर चुका हूँ। अतएव फिरसे उनकी मीमांसा करना आवश्यक नहीं है। मुझे खेद है कि मैं अपने अनेकानेक पत्र-लेखकोंको इससे अधिक सन्तुष्ट नहीं कर सकता।[2] हाँ, म उन्हें यह विश्वास जरूर दिलाता हूँ कि मेरी चुप्पीका यतीन्द्रके अपराध या उनकी निर्दोषतासे कोई सम्बन्ध नहीं है। क्योंकि मैं मानता हूँ कि किसी जघन्य अपराधके दोषीको भी उचित व्यवहार और उचित खुराक पानेका हक है। मैं यह भी मानता हूँ कि कमसे-कम जनताकी दृष्टिमें तो जिसपर मुकदमा चल रहा है, ऐसा कैदी निर्दोष ही माना जाना चाहिए और वैसे तो मैंने यतीन्द्रनाथ दासके

१. प्रसिद्ध राजनैतिक कार्यकर्त्ता, जिन्हें लाहौर षड्यन्त्रके मामलेमें सजा मिली थी। उन्होंने लाहौर जेलमें, भारतीय कैदियोंके साथ होनेवाले भेदभावपूर्ण व्यवहारके विरोधमें उपवास किया था और अपने उपवासके ६४ वें दिन १३-९-१९२९ को उनका देहावसान हो गया था।

२. देखिए "पत्र: च० राजगोपालाचारीको", १८-१०-१९२९।

बारेमें जो-कुछ भी सुना है, वह उनकी प्रशंसामें ही सुना है। और मुझे विश्वास दिलाया गया है कि उनसे हिंसा करने या हिंसाका विचार भी मनमें लानेकी उससे अधिक आशा नहीं रखी जा सकती थी जितनी कि मुझसे रखी जा सकती है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १७-१०-१९२९

७. भारतके अर्थशास्त्रका पाठ्यक्रम

हमारे अर्थशास्त्रका पाठ्यक्रम जगतका अर्थशास्त्र नहीं वरन भारतका अर्थशास्त्र है। हम अनुभवसे जानते हैं कि प्रत्येक देशका अर्थशास्त्र थोड़े-बहुत अंशोंमें भिन्न प्रकारका होता है। शहरों और गाँवोंकी दृष्टिसे विचार करनेपर यह और भी भिन्न हो सकता है। नीचे लिखा पाठ्यक्रम इस आधारपर बनाया गया है कि भारतकी सभ्यता गाँवोंकी स्थिति और उनके सम्पूर्ण विकासपर निर्भर है।

पहला क्रम

अध्यापक विद्यार्थियोंको साथ लेकर किसी गाँवमें जायें और वहाँ विद्यार्थियोंसे गाँवोंकी आर्थिक स्थितिसे सम्बन्ध रखनेवाली बातें इकट्ठी करायें और इस तरह उन्हें अर्थशास्त्रका पदार्थपाठ दें; यानी वे उनसे गाँवकी आबादी, उसमें रहनेवाले स्त्री-पुरुष, बालक, बालिकाओं वगैराकी संख्या तैयार करायें, फिर धन्धोंका, धन्धोंमें काम करनेवालोंका और धन्धेसे होनेवाली आमदनीका पत्रक बनवायें। आसपासकी सीमाका क्षेत्रफल तैयार करवायें, फी आदमी जमीनका हिसाब बनवायें, जमीनमें कौन-कौन-से अनाज पैदा होते हैं, खाद कैसी दी जाती है, औजार कैसे होते हैं, खेतीमें खर्च कितना होता है, उपज कितनी होती है, इन बातोंका पता लगवाएँ; फिर पिछले दस वर्षोंकी उत्पत्ति और खर्चके आँकड़े तैयार करवायें और उनपर से यह अन्दाज लगायें कि आया खेती लाभप्रद धंधा है या हानिकर। ढोरोंकी संख्या, उनपर किया जानेवाला खर्च, उनसे होनेवाले दूधकी उत्पत्ति वगैराका पता चलायें, ढोरोंको क्या खिलाया जाता है, गाँवमें साँड होता है या नहीं, बछड़े किस काम आते हैं, गोचर भूमि अगर है तो कितनी है, नहीं है, तो मवेशियोंके लिए कसरत करने और हवा खानेकी काफी जगह होती है या नहीं, आदि सब बातोंकी जानकारी प्राप्त करवा दें। किसान हिसाब-किताब रखते हैं या नहीं, अगर रखते हैं तो जो हिसाब-किताब लिखते-लिखाते हैं वह किस रीतिसे लिखते हैं, इस बातका निरीक्षण करें। गाँववालोंको खेतीमें से कितना समय बचता है और वे उस समयका क्या उपयोग करते हैं, यह देखें। इस तरह तमाम निरीक्षण-परीक्षणके बाद विद्यार्थी स्वयं अपने विचार स्थिर करें और यह बतायें कि गाँवोंकी स्थिति सुधारनेके लिए क्या-क्या उपाय किये जायें। विद्यार्थियोंका सारा काम सुन्दर ढंग और सुन्दर अक्षरोंमें स्याहीसे लिखा रहना चाहिए।

दूसरा क्रम

इस तरह जितने विद्यार्थियोंकी टुकड़ी गई हो उन सबकी सामग्रीका मिलान करके उससे निकलनेवाले परिमाणोंकी दूसरे कृषि-प्रधान देशोंके साथ तुलना की जाये और तुलना करनेके बाद इस बातकी छानबीन हो कि भारतकी स्थितिमें और उन देशोंकी स्थितिमें क्या फर्क है।

तीसरा क्रम

भारतमें जो अर्थशास्त्र पढ़ाया जाता है, उसके साथ इन स्वतन्त्र परिणामोंकी तुलना करके, उनमें घट-बढ़ करना जरूरी हो तो करे और इस तरह अभ्यासके अन्तमें अनुभव द्वारा ही प्रत्येक विद्यार्थी भारतका अर्थशास्त्र सिद्ध कर ले।

टिप्पणी –– उक्त क्रमके अनुसार अगर हरएक साल नये विद्यार्थी इसी तरह अर्थशास्त्रका अभ्यास करें तो उसमें उन्हें हानिकी कोई सम्भावना नहीं, यही नहीं, बल्कि इस तरह काम करते रहनेसे नई खोज की जा सकती है, अथवा माने हुए परिणाम दिन-दिन अधिक दृढ़ हो सकते हैं। जिस गाँवका निरीक्षण-परीक्षण एक बार हो चुका हो उसमें दुबारा जानेकी जरूरत नहीं रहनी चाहिए।

हिन्दी नवजीवन, १७-१०-१९२९

८. स्वयंसेवकका कर्त्तव्य

संयुक्त प्रान्तके दौरेमें स्वयंसेवकोंसे परिचय हो रहा है; और मैं देखता हूँ कि उनको तालीमकी बड़ी आवश्यकता है। स्वयंसेवकोंकी भावना शुद्ध है, उनके प्रेममें कोई न्यूनता नहीं, परन्तु भावना और प्रेममें से जो शक्ति पैदा होनी चाहिए वह शिक्षाके अभावसे हो नहीं रही है। स्वयंसेवकोंमें प्रबन्ध-शक्ति बहुत कम है। इस कारण अकसर उनसे सहायता मिलनेके बदले नई मुसीबतें खड़ी हो जाती हैं। अतएव उनके लिए तालीमकी बड़ी आवश्यकता है। वे दिलसे भले स्वयंसेवक बन जाते हों, मगर इस तरह कोई काम पूरा नहीं होता। जो आसानसे-आसान काम माने जाते हैं उनके लिए भी कुछ-न-कुछ तालीमकी तो आवश्यकता मानी ही गई है। भंगीका काम भी बगैर तालीमके नहीं हो सकता। फिर भला स्वयंसेवकका काम बगैर तालीमके कैसे सफल हो सकता है।

स्वयंसेवक राष्ट्रका सिपाही है। उसके द्वारा हम अन्तमें स्वराज्य पानेकी आशा रखते हैं। राष्ट्रीय दलके ऐसे लोगोंमें बड़ी योग्यता होनी चाहिए।

स्वयंसेवकमें ––

१. बड़ी-बड़ी सभाओंमें शान्ति रखनेकी शक्ति होनी चाहिए।

२. राष्ट्रभाषाका ज्ञान होना चाहिए।

३. इशारेसे अपने विचार दूसरे स्वयंसेवकको समझानेकी शक्ति होनी चाहिए।

४. कोलाहलको बन्द करनेकी शक्ति होनी चाहिए।

५. भीड़में रास्ता बनानेकी शक्ति होनी चाहिए।

६. एक साथ, तालबद्ध कूच करनेकी शक्ति होनी चाहिए।

७. किसीको चोट लगनेपर उसके तात्कालिक उपचारका ज्ञान होना चाहिए।

८. लोगोंकी गालियाँ, उनके कटु वचन, प्रहार, ताने-तिश्ने वगैरा सहनेकी शक्ति होनी चाहिए।

९. सरकारी दण्ड, जैसे कि जेल इत्यादिको सह सकनेकी शक्ति होनी चाहिए।

१०. धीरज, सत्य, दृढ़ता वीरता, अहिंसादि गुण होने चाहिए।

इनके अलावा मेरी दृष्टिमें स्वयंसेवकोंको हमेशा खद्दर पहनना चाहिए। उन्हें नियमपूर्वक यज्ञार्थ सूत भी कातना चाहिए।

इस तरहकी तालीमके लिए प्रत्येक प्रान्तमें स्वयंसेवक शिक्षागृह होने चाहिए और इसके लिए हमारे देशके अनुकूल पाठ्य-पुस्तकें भी होनी चाहिए।

हिंसक सिपाहीमें जिस शक्तिकी आवश्यकता है, उसमें से हिंसाके अंशको छोड़कर शेष सब शक्ति एक अहिंसक सिपाहीके लिए भी आवश्यक है। परन्तु अहिंसक सिपाहीमें हिंसक सिपाहीकी अपेक्षा दूसरे बहुतेरे गुणोंकी भी आवश्यकता रहती है। पाठक उन्हें जानते होंगे।

हिन्दी नवजीवन, १७-१०-१९२९

९. पत्र : वसुमती पण्डितको

मसूरी

१७ अक्टूबर, १९२९

चि० वसुमती,

तुम्हारा पत्र मिला। तुम्हें अलमोड़ा जानेकी सलाह तो फिलहाल मैं नहीं दूँगा। वहाँ आजकल अशान्ति फैली हुई है। मेरे सामने यह भी सवाल है कि प्रभुदासको[1] वहाँ भेजा जाये या नहीं। किन्तु इस बारेमें बादमें देखा जायेगा। यदि तुम्हारी किसी भी पहाड़ी स्थानपर जानेकी इच्छा हो तो कोई दूसरा बन्दोबस्त अवश्य किया जा सकता है। या फिर अलमोड़ामें मथुरादासके साथ तुम्हारे रहनेका प्रबन्ध किया जा सकता है। किन्तु यदि तुम्हारा स्वास्थ्य बीजापुरमें ठीक रहता हो तो पहाड़पर जानेसे क्या लाभ? तिसपर इन दिनों तो पहाड़ोंपर कड़ाकेकी सरदी पड़ती है। मसूरीमें मैं इस वक्त खूब कम्बल लपेटकर बैठा हुआ हूँ।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (एस० एन० ९२६७)की फोटो-नकलसे।

१. छगनलाल गांधीके पुत्र।

१०. पत्र : छगनलाल जोशीको

१७ अक्टूबर, १९२९

चि० छगनलाल,

तुम्हारे दोनों पत्र मिले।

तुम्हारे स्वास्थ्यके बारेमें मुझे चिन्ता बनी रहती है। तुम्हारा शरीर वज्र-जैसा होना चाहिए।

ऐसा तो कोई नियम नहीं है कि भाई जगजीवनदासको अब कुछ दिया ही न जाये। हम उन्हें कर्जदार बना रहने दें, यह तो हो ही नहीं सकता। किन्तु काठियावाड़ अन्त्यज समितिको बाकी ४०० रुपये चुका देने चाहिए। मैंने जगजीवनदाससे समितिको पुनः लिखनेको कहा है।

उमियाके विवाहकी तारीख ४ दिसम्बर ठीक ही तय हुई है, उस तारीखको तो मैं वहाँ रहूँगा ही। अयोध्याप्रसाद माथुरका मामला समझा। वह वहाँ रहा ही क्यों?

हुंडियोंपर हस्ताक्षर करनेका अधिकार पण्डितजी तथा रमणीकलालको देना। उक्त अधिकार इमाम साहबको क्यों न दिया जाये, इसपर भी विचार करना। क्या पण्डितजी और रमणीकलाल दोनोंको एक-साथ यह अधिकार देना चाहते हो? यदि ऐसा है तो क्यों? संयुक्त रूपसे अधिकार देनेकी आवश्यकता मुझे नहीं जान पड़ती। इस बातपर भी विचार करना कि यह अधिकार नारणदासको क्यों न दिया जाये। मेरा तात्पर्य यह है कि यह अधिकार कार्यालयका काम करनेवाले प्रबन्ध समितिके किसी सदस्यको दिया जाना चाहिए। यदि नारणदास सदस्य न हो तो यह एक अलग बात है। इन सब बातोंपर तुम्हें विचार करना है। मुझे लगता है कि संयुक्त रूपसे हस्ताक्षर करना अच्छा नहीं लगेगा।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च :]

कान्तिकी[१] मसूरीतक आनेकी बहुत इच्छा थी, अतः उसे आनेकी अनुमति दे दी है। वह कल या परसों रवाना होगा।

बापू

गुजराती (जी० एन० ५४६१)की फोटो-नकलसे।

१. हरिलाल गांधीका पुत्र।

११. सन्देश : 'द इंडियन लेबर जर्नल'को[1]

मुकाम मसूरी
१८ अक्टूबर, १९२९

प्रिय राघवन्,

आपका पत्र मिला। मेरा सन्देश यह है :

"मजदूरोंको खुद अपनी मदद करना और आत्मनिर्भर बनना सीखना ही चाहिए।"

हृदयसे आपका,

श्रीयुत जी० विजयराघवन्
प्रबन्धक, 'द इंडियन लेबर जर्नल'
सीताबर्ड़ी, नागपुर

अंग्रेजी (एस० एन० १५२०५)की माइक्रोफिल्मसे।

१२. पत्र : बी० एस० गोपाल रावको

मुकाम मसूरी
१८ अक्टूबर, १९२९

प्रिय गोपाल राव,[2]

आपका पत्र मिला। मैं आपके उत्साह और आत्मविश्वासकी सराहना करता हूँ लेकिन मैं उसमें उस वैज्ञानिक चर्चाकी कमी महसूस करता हूँ जो उत्साह तथा आत्मविश्वासको सफल बनानेके लिए उसके साथ-साथ होनी चाहिए। क्या आप ऐसा नहीं समझते कि मेरे निकट चाहे जितने प्रमाणपत्र[3] क्यों न पड़े हों, यदि तत्सम्बन्धी मेरा अनुभव उससे विपरीत पड़ता हो तो वे बिलकुल बेकार हैं? मान लीजिए कि एक व्यक्ति है जो अपने सामने धधकती आगकी रोशनी नहीं महसूस करता है, तो क्या आपका खयाल है कि उन हजारों आदमियोंके साक्ष्यपर, जिनको वह रोशनी दिखाई देती हो, वह व्यक्ति अपने निजी अनुभवके विपरीत इस बातपर भरोसा कर लेगा? और आप शायद यह भी नहीं जानते होंगे कि उन सब लोगोंने, जिनका नाम आपने दिया है, अपने आहारका वैसा ठीक वर्णन नहीं किया है, जितना कि आप

१. बंगाल नागपुर रेलवेके भारतीय मजदूर संघका मुखपत्र।

२. एक एडवोकेट जिन्होंने राजमुन्द्रीमें हाइड्रो-क्रोमोपैथिक और प्राकृतिक चिकित्साकी अकादमी खोली थी।

३. श्री गोपाल रावने अपने अच्छे किये हुए नौ आदमियोंकी सूची पत्रके साथ भेजी थी।

सोचते हैं। अर्थात् अगर उन्होंने कच्चे खाद्य पदार्थों या पकी हुई चपाती के साथ दूधका भी इस्तेमाल किया है तो उससे पूरे प्रयोगका स्वरूप ही बदल जाता है और उससे वह निष्फल हो जाता है। बहुतसे लेखकोंने मुझे बताया है कि वे बगैर आगसे पकाया खाना खाते हैं और फिर साथ-साथ वे यह भी बताते हैं कि वे कभी-कभी पकाया हुआ चावल, सब्जी और चपाती खाते हैं और दही या दूध तो लेते ही हैं। मैंने जो प्रयोग ४४ आदमियोंपर किया, वह बिना दूध और बिना पकाये भोजनपर रहनेका था और उनमें से बहुत बड़ी संख्यामें लोग बुरी तरहसे नाकामयाब रहे। बाधाओंके बावजूद तीन या चार लोग अभी डटे हुए हैं। मैं नहीं कह सकता कि अन्तमें उनका क्या हाल होगा।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत बी० एस० गोपालराव
एडवोकेट, राजमुन्द्री

अंग्रेजी (एस० एन० १५६३९)की माइक्रोफिल्मसे।

१३. पत्र : सी० सी० दासको

मुकाम मसूरी
१८ अक्टूबर, १९२९

प्रिय मित्र,

आपके छोटे-से पत्रके लिए धन्यवाद। आपके आतिथ्यमें आपके घर मेरा समय[1] बड़े आनन्दसे बीता। मैं आशा करता हूँ कि उन दिनोंकी थकानका आपके स्वास्थ्य पर अब कोई असर बाकी नहीं बचा होगा और मैं यह भी आशा करता हूँ कि अब गृहस्थी शान्तिसे चल रही होगी। कृपया श्रीमती दाससे कहिएगा कि मुझे पत्र लिखें। वह चाहें तो अंग्रेजीमें या हिन्दीमें, जिसमें भी उन्हें अच्छा लगे, पत्र लिख सकती हैं।

हृदयसे आपका,

श्री सी० सी० दास
विल्लामाया
गोरखपुर

अंग्रेजी (एस० एन० १५६४३)की माइक्रोफिल्मसे।

१. ४ अक्तूबरसे ७ अक्तूबर तक।

१४. पत्र : पी० रंगनाथन्‌को

मुकाम मसूरी
१८ अक्टूबर, १९२९

प्रिय मित्र,

मुझे आपके मामलेको काफी पहले निपटा देनेकी आशा थी परन्तु आपने मुझे जो कागजात दिये थे, वे एक बेतरतीब अम्बारमें दबे पड़े रहे। अब उन कागजातको मैंने देखा है और 'यंग इंडिया'[1] के आगामी अंकमें आप उनका उल्लेख पायेंगे। यह पत्र मैं केवल यह जाननेके विचारसे लिख रहा हूँ कि आप अब क्या कर रहे हैं और क्या बोर्डने आगे कोई और कदम उठाया है?

हृदयसे आपका,

श्रीयुत पी० रंगनाथन्
श्री रमण भवनम्
अर्नी (जिला उत्तरी आर्काट)

अंग्रेजी (एस० एन० १५६७८) की माइक्रोफिल्मसे

१५. पत्र : च० राजगोपालाचारीको

मुकाम मसूरी
१८ अक्टूबर, १९२९

प्रिय च० रा०,

मैं आपको पत्र लिखते समय एक सवालके सम्बन्धमें लिखना भूल गया था। वह बात स्वर्गीय रेव० विजियाके[2] बारेमें थी। मैं उस मामले पर सन्तोषजनक ढंगसे कुछ नहीं कह सकता हूँ क्योंकि जिस तरहकी बातोंके लिए विजिया और यतीनने अपने प्राण दिये हैं, वैसी बातोंके लिए भूख हड़ताल करनेके मैं बिलकुल खिलाफ हूँ। ऐसी कोई राय व्यक्त करनेपर सरकार उसे तोड़ मरोड़कर उसका अनुचित लाभ उठायेगी। इसलिए मुझे लगता है कि आलोचना करनेके बजाय मेरा चुप

१. देखिए "बोर्डोंका कर्तव्य", २४-१०-१९२९। इसमें पत्र प्राप्तकर्त्ताका सही नाम पी० रंगनाथ अय्यर दिया है।

२. बर्माके एक बौद्ध साधु, जिन्हें बगावत करनेके अपराधमें कैद किया गया था और तब उन्होंने बेहतर व्यवहार और विशेष दिनोंपर पीले वस्त्र पहननेकी माँग करते हुए भूख हड़तालकी थी। और १९ सितम्बर, १९२९ को उनका देहावसान हो गया था।

रहना ज्यादा लाभप्रद है। क्या आप भूख हड़तालके सम्बन्धमें मेरे इस निष्कर्ष और फलस्वरूप मेरे मौनसे सहमत नहीं हैं?

हृदयसे आपका,

श्रीयुत च० राजगोपालाचारी
राजपालयम् (द० भारत)

अंग्रेजी (एस० एन० १५६८३)की फोटो-नकलसे।

१६. पत्र : ए० सुब्बैयाको

मुकाम मसूरी
१८ अक्टूबर, १९२९

प्रिय सुब्बैया,

तुम्हारा पत्र मिला। मैं सोच रहा था कि तुमने इतने लम्बे अरसेसे पत्र क्यों नहीं लिखा। मैं पत्रका जवाब तुरन्त दूँ या न दूँ, उससे कुछ फर्क नहीं पड़ना चाहिए। मैं चाहूँगा कि तुम हफ्तेवार आय-व्ययका ब्योरा मुझे भेजते रहो। मद्यनिषेधका काम जिस गतिसे चल रहा है उससे ज्यादा गतिसे चलनेकी आशा मैंने नहीं की थी। फिर भी, नियमित रूपसे इस दिशामें प्रयत्न करते रहनेका फल अवश्य निकलेगा। मुझे खुशी है कि 'विमोचनम्'[1] इतनी अच्छी तरहसे चल रही है। तुम उसकी एक प्रति मुझे जरूर भेजो। मुझे इस बातकी भी खुशी है कि तुम और ललिता एक साथ हो और फल-फूल रहे हो। एक सालके बच्चे कृष्णमूर्तिको जन्मदिनकी अनेकानेक शुभकामनाएँ। बा और मैं दोनों मिलकर उसे अपने आशीर्वाद भेज रहे हैं। आशा है कि शेषन तुम्हारे लिए जरूरतसे ज्यादा चिन्ताका कारण नहीं बन रहा होगा।

हृदयसे तुम्हारा,

श्रीयुत सुब्बैया
द्वारा–श्रीयुत च० राजगोपालाचारी
राजपालयम् (द० भारत)

अंग्रेजी (एस० एन० १५६८४)की माइक्रोफिल्मसे।

१. एक तमिल पत्रिका।

१७. पत्र : कटेश्वर प्रसाद पाण्डेको

मुकाम मसूरी
१८ अक्टूबर, १९२९

प्रिय मित्र,

मैं आपको इस पत्रके साथ मौलवी मुहम्मद आदिल अब्बासीका पत्र भेज रहा हूँ। कृपया आप [इसके जवाबमें] जो-कुछ कह सकें उसके साथ यह पत्र भी वापस भेज दें।

हृदयसे आपका,

सह-पत्र : १
पं० कटेश्वर प्रसाद
बस्ती (सं० प्रा०)

अंग्रेजी (एस० एन० १५६८५)की माइक्रोफिल्मसे।

१८. पत्र : मुहम्मद आदिल अब्बासीको

मुकाम मसूरी
१८ अक्टूबर, १९२९

प्रिय मित्र,

आपका पत्र[1] मिला। यदि तथ्य सचमुच वैसे ही हैं जैसा कि आपने बयान किया है तो मुझे खेद होगा। मैं आशा करता हूँ कि कुछ गहतफहमी है। मैं आपका पत्र जवाबके लिए पं० कटेश्वर प्रसादके पास भेज रहा हूँ।[2] मैं आपसे इस बातमें काफी हदतक समहत हूँ कि जब दोनों ही जातियोंकी भावनाएँ नाजुक हैं और छोटेसे-छोटे कारणसे भी उन्हें ठेस पहुँच सकती है, तो हर छोटेसे-छोटे मामलेमें भी अधिकसे-अधिक सावधानी बरतना जरूरी है।

हृदयसे आपका,

मौलवी मुहम्मद आदिल अब्बासी
बस्ती (सं० प्रा०)

अंग्रेजी (एस० एन० १५६८६)की माइक्रोफिल्मसे।

१. पत्रमें मौलवी साहबने शिकायत की थी कि गांधीजीने जब बस्तीका दौरा किया था, तब उर्दू अभिनन्दन हिन्दी अभिनन्दनके एक दिन बाद छापा गया था।

२. देखिए पिछला शीर्षक।

१९. पत्र : पी० जी० मैथ्यूको

मुकाम मसूरी
१८ अक्टूबर, १९२९

प्रिय मैथ्यू,

आपका पत्र[1] मिला, लेकिन मैं नहीं समझता कि अब मुझे इसके बारेमें कुछ लिखनेकी जरूरत है, क्योंकि अबतक आपको मेरा पहलेवाला पत्र अवश्य मिल चुका होगा। यदि वह आपको नहीं मिला है, तो कृपया मुझे सूचित करें। खैर; मेरे पहलेवाले पत्रका सार यह था कि मैं आपको कोई आर्थिक मदद नहीं दे सकूँगा। उसमें मैंने आपको यह सलाह दी थी कि कामका जितना तजुरबा आपको अभी है, आप उससे और ज्यादा तजुरबा हासिल करें।

हृदयसे आपका,

पी० जी० मैथ्यू महोदय

अंग्रेजी (एस० एन० १५६८७)की माइक्रोफिल्मसे।

२०. पत्र : ना० रा० मलकानीको

१८ अक्टूबर, १९२९

प्रिय मलकानी,

मुझे तुम्हारा और जमशेदजीका[2] भी एक पत्र मिला। इसलिए मैंने उन्हें यह तार दिया है कि तुम उनकी समितिकी[3] उपयोगी ढंगसे सेवा नहीं कर सकते; अतः तुम्हें समितिसे अलग हो जानेकी अनुमति दे दी जाये। उन्होंने अपने पिछले पत्रमें लिखा था कि तुम स्वेच्छासे उनकी समितिमें शामिल हुए थे और तुमने इसमें अपने विचारोंसे किसी भी तरहका समझौता नहीं किया था। इसलिए मैंने उनसे कहा कि अगर ऐसी बात है और अगर तुम उनकी समितिमें रहना चाहते हो तो मैं अपनी आपत्ति वापस ले लूँगा। परन्तु मैंने उनसे कहा कि ऐसा करनेसे पहले मैं तुम्हारे

१. इस पत्रमें मैथ्यूने, जो साबरमती आश्रममें रह रहे थे, गांधीजीसे एक ऐसी योजनाके लिए आर्थिक सहायता देनेका अनुरोध किया था जिसके लिए शुरूमें ही कुछ हजार रुपये लगाना जरूरी था।

२. जमशेद एन० आर० मेहता, सिन्धके एक सार्वजनिक कार्यकर्ता, जो कराची निगममें लम्बे अर्से तक मेयर रहे।

३. सिन्धकी लोक बाढ़ सहायता समिति, जिसके मलकानी सचिव थे।

स्वीकृति-पत्रकी प्रतीक्षा करूँगा। तुम्हारा पत्र आनेसे पहले मैं उन्हें पत्र लिख चुका हूँ। इसलिए तुम्हारे लिए समितिमें रहकर सेवा करनेका या समितिमें न रखे जाने पर भी समितिकी मदद करनेका कोई प्रश्न ही नहीं उठता। आशा है कि अब एक बार फिर तुम्हारी जानमें जान आ गई होगी। इसलिए मैं चाहूँगा कि तुम अबसे अपने-आपको दृढ़ बना लो और तबतक कोई उत्तरदायित्व या भार कभी न स्वीकार करो जबतक तुम जो-कुछ कर रहे हो उसके बारेमें पूरी तरह निश्चित न हो जाओ। बहुधा हम मित्रोंकी जो सर्वोत्तम सेवा कर सकते हैं वह तो यह है कि यदि वे कोई ऐसी बात कहें जो हमारी अन्तरात्माको न भाती हो तो हम उन्हें निराश कर दें और उन्हें नाराज भी कर दें। मित्रोंके खो देनेका खतरा मोल ले लेना ज्यादा अच्छा है बनिस्बत इसके कि हम अपने-आपसे समझौता करें और सेवाके अयोग्य हो जानेका उससे भी बड़ा खतरा मोल लें।

हृदयसे तुम्हारा,

प्रो० मलकानी
कांग्रेस कार्यालय, हैदराबाद (सिन्ध)

अंग्रेजी (जी० एन० ८९६)की फोटो-नकलसे।

२१. पत्र : छगनलाल जोशीको

मसूरी
१८ अक्टूबर, १९२९

चि० छगनलाल,

तुम्हारी भेजी हुई डाक आज अभीतक मुझे नहीं मिली। देखता हूँ, पण्डितजी भी तुम्हारे स्वास्थ्यके बारेमें चिन्तित हैं। अपना स्वास्थ्य जल्दी ही सुधार लेना।

आज और अधिक कुछ नहीं लिखता।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (जी० एन० ५४६२)की फोटो-नकलसे।

२२. पत्र : अब्बास तैयबजीको

मुकाम मसूरी
१९ अक्टूबर, १९२९

प्रिय भर्र्र[1] . . .

इतने ज्यादा दिनोंके बाद आपका पत्र और सो भी प्रसन्नताप्रद पत्र पाकर खुशी हुई। मुझे यह जाननेके लिए कि आपकी शुभकामनाएँ मेरे साथ हैं, आपके पत्रकी कोई जरूरत नहीं थी। इन लिखित शब्दोंकी अपेक्षा कहीं अधिक सच्ची आपके हृदयकी धड़कन मैं इतनी दूरीसे भी सुन सकता हूँ। रेहानाने मुझे आपके ऑपरेशनके बारेमें सब-कुछ बताया था। लेकिन मुझे उसका पत्र सब-कुछ हो चुकनेके काफी बादमें मिला। अगर कोई बुरी खबर उस समय मिले जबकि उसका सारा असर समाप्त हो चुका हो, तो वह कितनी आह्लादकारी होती है। उस समय व्यक्ति ऐसी स्थितिमें होता है कि वह इस विचारसे विशुद्ध आनन्दका अनुभव कर सके कि सब-कुछ बादमें ठीक ही हो गया। मेरे मनमें जवाहरलाल द्वारा अध्यक्ष-पदसे[2] किये जानेवाले आचरणको लेकर कोई आशंकाएँ नहीं हैं।

आपका,
भर्र्र . . .

श्रीयुत अब्बास तैयबजी,
मुकाम बड़ौदा

अंग्रेजी (एस० एन० ९५६८)की फोटो-नकलसे।

२३. पत्र : रेहाना तैयबजीको

मसूरी
१९ अक्टूबर, १९२९

प्रिय रेहाना,

उपनिषदोंमें नचिकेताकी एक सुन्दर कहानी है। क्या उसे तुम जानती हो? उसके पिता कंजूस थे। एक बार उन्होंने वह गाय, जो उनके लिए बोझ थी, दानमें दे दी। नचिकेताने विनम्रतापूर्वक अपने पितासे पूछा कि उन्होंने ऐसा क्यों किया और इस तरहके दान देनेसे वे क्या आशा रखते हैं। पिताने नचिकेताको बुरा-भला

१. गांधीजी और तैयबजी एक-दूसरेका अभिवादन इसी तरह करते थे।
२. कांग्रेस अध्यक्षका पद।

कहा। उसने उनकी बातको अच्छे भावसे ग्रहण किया और यमराजसे पिताके हृदय-परिवर्तनका वरदान प्राप्त कर लिया। स्नेह पर्वतोंको भी पिघला देता है। जब पितासे कोई शिकायत हो तो उनसे न बोलना पाप होगा। बहुत सम्भव है कि पिताके पास अपने वैसे आचरणके लिए पर्याप्त कारण हों, लेकिन मान लो कि वे गलतीपर हैं, तो जब उनके अपने प्रियजन उन्हें आगाह करेंगे तब वे फिर अपना बर्ताव सुधार लेंगे। इसलिए तुम अपने पितासे जितनी जल्दी बोलने लगो उतना ही बेहतर होगा। जरूरत केवल इतनी ही है कि तुम्हारे मनमें क्रोध बिलकुल नहीं होना चाहिए। मुझे पूरा भरोसा है कि वे उस सबको सही ढंगसे ग्रहण करेंगे। तुम्हें उन्हें सट्टेबाजीसे भी विमुख करना चाहिए। उन्हें अब किसीके भी लिए दौलत इकट्ठा करनेकी जरूरत नहीं है। अपने कमजोर शरीरके बावजूद तुम भी अपने ढंगसे अपना निर्वाह कर सकती हो। ईश्वरने तुम्हें एक आवाज दी है, जो हमेशा तुम्हारी मदद करेगी। और आखिरकार सिर्फ परमेश्वर ही हमारे प्रतिपालनके लिए उत्तरदायी है, यदि हम केवल उसमें विश्वास रखें।

मुझे [तुम्हारे] पिताका एक प्रसन्नताप्रद पत्र मिला है।

स्नेह,

बापू

अंग्रेजी (एस० एन० ९६१२)की फोटो-नकलसे।

२४. पत्र : के० श्रीनिवासनको

मुकाम मसूरी
१९ अक्टूबर, १९२९

प्रिय श्रीनिवासन,

आपके पत्र और उसके संलग्न पत्रोंके लिए धन्यवाद। 'आफ्टर मदर इंडिया' के सम्बन्धमें आपकी उदासीनता बिलकुल ठीक ही है। खैर, अगर मुझे कुछ अवकाश मिला, तो मैं उन अध्यायोंको पढ़ूँगा जो आपने भेजे हैं और अगर मुझे उनमें कुछ ऐसा मिलेगा जिसपर मैं उपयोगी ढंगसे चर्चा कर सकूँ, तो मैं करूँगा।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

के० श्रीनिवासन महोदय
फ्री प्रेस ऑफ इंडिया लिमिटेड
२४ ब्राइड लेन
लन्दन ई० सी० ४

अंग्रेजी (एस० एन० १५८२७)की फोटो-नकलसे।

२५. पत्र : सतीशचन्द्र दासगुप्तको

मुकाम मसूरी
१९ अक्टूबर, १९२९

प्रिय सतीश बाबू,

आपका पत्र मिला। मैंने स्वदेशीके बारेमें प्रदर्शनी समितिको[1] अपनी राय दे दी है। उनके साथ एक विशेषज्ञ भी होगा, जो उनका निर्देशन करेगा। परन्तु एक और कठिनाई उठ खड़ी हुई है। बहरहाल वह ज्यादा महत्त्वकी नहीं है। वे खद्दरकी दुकानोंका भी दूसरी दुकानोंके बराबर ही किराया लेना चाहते हैं। मैं महसूस करता हूँ कि उन्हें खद्दरकी दुकानोंके लिए कुछ नहीं लेना चाहिए। मुझे नहीं मालूम कि दूसरी प्रदर्शनियोंमें, उदाहरणके तौर पर मद्रासमें, क्या प्रथा अपनाई गई थी। क्या कानपुर या गोहाटीमें भी कुछ लिया गया था? मैं कोई नई प्रथा नहीं चलाना चाहता; परन्तु हमें कलकत्ताके उदाहरणकी नकल भी नहीं करनी चाहिए। कृपया वापसी डाकसे अपने विचार लिख भेजिए।

मुझे खुशी है कि कुमार बाबू आपके पास हैं। जैसे ही मुझे एक भी क्षणका अवकाश मिलेगा, मैं हेमप्रभादेवीको पत्र अवश्य लिखना चाहूँगा।

हृदयसे आपका,
बापू

अंग्रेजी (जी० एन० १६१०) की फोटो-नकलसे।

२६. पत्र : महादेव देसाईको

मसूरी
१९ अक्तूबर, १९२९

चि० महादेव,

इसे देख जाना। इसपर 'यंग इंडिया' में कोई टिप्पणी देना आवश्यक नहीं है। ऐसे गुमनाम पत्र तो आते ही रहते हैं। मुझे 'गीताजी' के प्रूफ भेजनेकी सूचना तारसे मिली थी किन्तु अभीतक प्रूफ पहुँचे नहीं। यह मानपत्र[2] कन्या गुरुकुलका है, जिसे उन्होंने बहुत मीठे स्वरमें गाया था। यह अच्छा है कि मेरा मानसिक सन्तुलन बना हुआ है। मैं जब आश्रम पहुँचूँगा तबतक तुम भी वहाँ पहुँच चुके होओगे न?

गुजराती (एस० एन० ११४६०) की फोटो-नकलसे।

१. आगामी लाहौर कांग्रेस अधिवेशनकी प्रदर्शनी समिति।
२. मानपत्र १७ अक्टूबरको भेंट किया गया था।

२७. पत्र : छगनलाल जोशीको

मसूरी
१९ अक्टूबर, १९२९

चि० छगनलाल,

आजकी डाक बहुत करके आ तो चुकी है; किन्तु मैं उसे अभी देख नहीं पाया हूँ। यहाँ डाकका समय बहुत अटपटा है, अतः आई हुई डाक देखनेकी प्रतीक्षा नहीं कर पाता। उत्कलसे प्राप्त पत्र लौटा रहा हूँ। कान्ति आज तुम्हारे पास रवाना हो रहा है। तुम्हें उससे पूरे समाचार मिलेंगे।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (जी० एन० ५४६३) की फोटो-नकलसे।

२८. पत्र : नारणदास गांधीको

मसूरी
१९ अक्टूबर, १९२९

चि० नारणदास,

तुम्हारे दोनों पत्र मिले। तुम्हारे पहले पत्रके आधारपर मैंने संक्षेपमें छगनलालको लिख दिया था किन्तु तुम्हें तो बादमें ही लिखना चाहता था। इसी बीच तुम्हारा दूसरा पत्र आ पहुँचा। मैं यह नहीं मानता कि तुमने उतावली या क्रोधमें कोई कदम उठाया है। जोशीके बारेमें अपनी धारणाके अनुसार तुमने सही कदम उठाया है। मैं तो यही सोचता हूँ कि तुमने उसे गलत समझा है। कुछ भी हो, फिलहाल तुम अलग ही अच्छे। तुम्हारे समयका लाभ तो हमें मिल ही जाता है। जब तुम्हें ऐसा लगे कि जोशी सच्चे दिलसे तुम्हारी मदद लेना चाहता है तभी तुम कार्यालयके काममें हाथ लगाना। तुममें यह विश्वास उत्पन्न करनेका भार मैंने उसीपर डाल दिया है।

क्या यह माना जा सकता है कि पुरुषोत्तमका स्वास्थ्य अब ठिकानेपर आ गया है?

मैं भी यह मानता हूँ कि कसुम्बा[1] बहुत दुःख पा रही है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि इसमें जयसुखलालकी सख्ती रही। आजकल तो वह राणावाव गई हुई है, इसलिए उसे कुछ शान्ति मिलेगी।

१. जयसुखलाल गांधीकी पत्नी।

राजकोट अवश्य हो आना।

तुम कहते हो कि प्लेगका काम १९०२ में भी हुआ था। मुझे तो आज भी यह अच्छी तरह याद है कि प्लेग १८९६ में फैला था। किन्तु यह ठीक है कि ऐसे मामलोंमें तारीख याद नहीं रहती। खुशालभाईसे पूछकर और पक्का कर लेना। अकाल, महामारी और जयन्ती [जुबिली] इन तीन बातोंका उल्लेख है। क्या तुम्हारा खयाल है कि ये तीनों घटनाएँ उसी साल, अर्थात् १९०२ में घटी थीं?

बापूके आशीर्वाद

[गुजरातीसे]
बापुना पत्रो–९: श्री नारणदास गांधीने

२९. विचारोंकी अराजकता

निरंकुश विचारके साधारण नमूनेके रूपमें नीचे लिखा पत्र छाप रहा हूँ:[1]

मेरे नाम पर्याप्त संख्यामें ऐसे और इससे भी खराब पत्र आते रहते हैं। इसी तरहके भाव व्यक्त करनेवाले समाचारपत्रोंकी कतरनें भी मित्रोंने मुझे भेजी हैं। जब आदमीको विचार प्रकट करनेकी स्वतन्त्रता मिल जाती है, तो ऐसा ही होता है। इससे पता चलता है कि आदमी किस प्रकार अव्यवस्थित ढंगसे विचार कर सकता है। इस ढंगमें विचारोंका हलकापन दिखाई पड़ता है। इस हलकेपनके कारण मनुष्यकी विचार-धारा सीधी बहनेके बदले टेढ़ी-मेढ़ी बहती है और वह सम्बद्ध नहीं रह पाती। बहुत बार क्रोधके कारण भी ऐसा होता है। क्रोधके लक्षण शराब और अफीम दोनोंसे मिलते हैं। शराबीकी भाँति क्रोधी मनुष्य भी पहले आवेशवश लाल-पीला होता है। फिर यदि आवेशके मन्द पड़ जानेपर भी क्रोध न घटा हो तो वह अफीमका काम करता है और मनुष्यकी बुद्धिको मन्द कर देता है। अफीमकी तरह वह दिमागको कुतर कर खा जाता है। माना गया है कि व्यक्ति क्रोधसे क्रमशः सम्मोह, स्मृतिभ्रंश और बुद्धिनाशको प्राप्त होता है।

अपनी बुद्धिके अनुसार मुझे ये सब लक्षण इस पत्रमें दिखाई दे रहे हैं। इसके लेखक भलेमानस हैं। लेकिन क्रोधके आवेशमें वे यह भूल गये हैं कि 'नवजीवन'में क्या छपता रहा है। स्वराज्यके लिए ही जीनेवाले समाचारपत्रमें समाज-सुधार-सम्बन्धी विषयोंका समावेश हो सकता है या नहीं, इसपर विचार करनेमें वे एकदम असमर्थ ही बन गये हैं।

१. पत्र यहाँ नहीं दिया जा रहा है। पत्र-लेखकने इस बातपर आपत्ति उठाई थी कि गांधीजी **नवजीवन**में हर हफ्ते अपना और अपने साथियोंका यात्रा-विवरण ही छापते रहते हैं। इसके अतिरिक्त उसमें विवाह-विधि, पुनर्विवाह, वृद्ध-विवाह, गुजराती कोश, गोसेवा और जब-तब तत्त्वज्ञान-सम्बन्धी बातोंकी भरमार रहती है; और उन्होंने देशकी राजनीतिक परिस्थिति तथा देशी रियासतोंमें फैली हुई अराजकताकी ओरसे अपनी आँखें मूँद रखी हैं।

पत्र-लेखकने स्वराज्यका अर्थ ही बहुत संकुचित कर डाला है। मालूम होता है कि इन भाईकी रायमें अंग्रेजोंके हाथसे निकल कर किसी भारतीयके हाथमें सत्ताका चला जाना ही स्वराज्य है। मेरे मनका स्वराज्य तो वह है जिसमें तीस करोड़ लोगोंके हाथमें मर्यादासे बँधी हुई सत्ता रहे। जहाँ ऐसी सत्ता होगी, वहाँ एक बालिका भी अपनेको सुरक्षित समझेगी; और अगर कविकी कल्पना सच हो तो कुत्ते आदि मनुष्येतर पालतू प्राणी भी अपनेको सुरक्षित मानेंगे। ऐसे स्वराज्यके सम्बन्धमें अनेक प्रकारके तात्त्विक निर्णय करना हमारा काम होगा। क्योंकि स्वराज्यमें निर्णय सत्ताधिकारीकी इच्छाके अधीन न होकर न्याय और सत्यके अधीन होते हैं। ऐसे स्वराज्यको मैंने संक्षेपमें रामराज्य कहा है। मुसलमान आदि इसके अर्थका अनर्थ न करें, इसलिए मैं उसे धर्मराज्य भी कहता हूँ। इसमें राजाका स्थान है लेकिन वहाँ राजाके मानी हैं रक्षक, अभिभावक या ट्रस्टी; राजा अर्थात् सर्वश्रेष्ठ सेवक, दासानुदास। स्वराज्यका राजा प्रजाका अवशिष्ट खानेवाला है; दूसरे शब्दोंमें, वह प्रजाको सुलाकर सोता है, खिलाकर खाता है और जिला कर जीता है। ऐसे राजा सदा जियें। अगर इस युगमें ऐसे राजा होना सम्भव न हो तो राजा नाम तक नहीं बचेगा, इसमें मुझे जरा भी शक नहीं।

भोपालके राजा या औरोंमें ऐसे कुछ लक्षण हैं या नहीं, इस बातसे मुझे कोई सरोकार नहीं। इस लोक-जागृतिके युगमें किस कोटिके राजा निभ सकते हैं, सो मैं बता चुका हूँ।

भोपालके राजाकी जो स्तुति मैंने की है, वह मर्यादित है।[1] मेरी स्तुतिके सम्बन्धमें समाचारपत्रोंमें जो रिपोर्टें छपी हैं, मैंने उन्हें अबतक पढ़ा नहीं है और न पढ़नेकी कोई इच्छा ही है। मुझे इस बातका अनुभव हो चुका है कि पत्रोंमें मेरे या औरोंके भाषणोंका शुद्ध विवरण क्वचित् ही छपता है। अगर मैं अपने बारेमें अखबारी खबरोंको मानूँ तो आज मुझे यह कबूल करना पड़ेगा कि लगभग तीन महीने पहले मुझे गश आ गया था। लेकिन मेरा और मेरे साथियोंका अनुभव तो इन अखबारी रिपोर्टोंसे कुछ अलग ही है। इसी कारण मैंने सबको चेतावनी दी है और फिर सचेत करता हूँ कि मेरे कथनके सम्बन्धमें 'यंग इंडिया' और 'नवजीवन' में जो-कुछ लिखा हो उसीको सच माना जाये तथा अन्य बातोंके लिए मुझे जिम्मेदार न माना जाये। भोपालके नवाब साहबकी जिस बातकी स्तुति मैंने की है, उसपर मैं अब भी अक्षरशः कायम हूँ। उनके 'महल' की सादगीने मुझे हजरत उमरकी सादगीकी याद दिलाई, इसका कोई यह अर्थ न लगाये कि नवाब भोपालके महलकी सादगी उस महान् खलीफाकी झोंपाड़ीकी सादगीका मुकाबला कर सकती है। इसका मतलब केवल इतना ही है कि जहाँ मुझे लाखोंकी लागतका शानदार सजा हुआ महल देखनेका डर था वहाँ मैंने एक साधारण धनवान आदमीकी कोठी-जैसी भी कोई चीज नहीं देखी। हमारे अहमदाबादके कतिपय करोड़पतियोंके महल तो नवाब साहबके महलके मुकाबले सौगुना अधिक शानदार हैं। मेरे अपने मनको भानेवाली उस सादगीको देखकर इतना

१. देखिए खण्ड ४१, पृष्ठ ४१९-२० तथा ५४६-४७।

कहना भी अगर देशी राज्योंकी राजनीतिके विचारक और आलोचक सहन नहीं कर सकते तो यह कहा जा सकता है कि असहिष्णुताकी हद हो गई।

कोई मुझे इतना भला या भोला न समझे कि किसीके मुझसे दो-चार सौकी खादी खरीदते ही मैं उसे प्रमाण पत्र दे दूँगा। खादी पहनकर धोखा देनेवाले या खादी खरीदकर मुझसे कोई काम करा लेनेकी इच्छा रखनेवालेको मैं अकसर ताड़ लेता हूँ। कभी-कभी मैं ठगा जाना पसन्द करता हूँ; और कई बार मैं अपनी मूर्खता कहो या अपूर्णताके कारण भी धोखा खा जाता हूँ।

राजा लोग जहर पिलाकर लोगोंको मरवा डालते हैं, आदि आक्षेपोंमें बहुत-कुछ अतिशयोक्ति है। लेखकके ये आक्षेप निराधार हैं। निठल्ले आदमी हर किसी अफवाह पर भरोसा कर लेते हैं। इन भाई साहबने भी कुछ ऐसा ही किया है। अगर उनके पास जहर देकर मार डालनेवाले राजाके खिलाफ पक्का सबूत हो तो उसे वे मेरे पास भेज दें। सुनी-सुनाई बात सबूत नहीं मानी जाती। मेरे लेखके इस अंकका पाठक कोई उलटा या मनमाना अर्थ न लगाये। मेरे कहनेका यह आशय बिलकुल नहीं है कि कोई देशी राजा किसीको कभी अन्यायपूर्वक नहीं मारता। देशी राजाओंके हाथ खून हुए हैं, यह मैं जानता हूँ। देशी राज्योंमें फैली हुई सड़न और गन्दगीसे मैं अनजान नहीं हूँ। इन बुराइयोंको जानते हुए भी मैं मानता हूँ कि वे सुधर सकते हैं और उन्हें हाथमें किया जा सकता है। मेरा यह विश्वास मानव-जातिमें मेरी निष्ठापर आधारित है। देशी राजा भारतीय वातावरणके फल हैं। उनका शरीर हमारे समान है, उनकी जरूरतें हमारी-जैसी हैं और उनमें हमारे ही गुण-दोष भरे हुए हैं। अगर हम अपनेमें विश्वास रखते हैं तो उनमें भी विश्वास रखें। सत्याग्रहका पूरा शास्त्र प्राणी-मात्र पर विश्वासके आधारपर रचा गया है। अन्तमें भले ही यह रचना मिथ्या क्यों न सिद्ध हो, लेकिन जिसका सत्याग्रहमें विश्वास है वह यह तो कदापि नहीं कहेगा कि राजा-मात्र निकम्मे हैं या रियासती राज्य कभी सुधर ही नहीं सकते। सत्याग्रह-सम्बन्धी एक दूसरी मान्यता भी उल्लेख योग्य है। सत्याग्रही यह मानता है कि पापम स्वतन्त्र रूपसे टिके रहनेकी शक्ति ही नहीं है। पापके लिए पुण्यका आधार आवश्यक है। यानी बुरा भलेके आधारपर ही निभ सकता है। अगर यह ठीक है तो फिर यदि देशी राज्य विनष्ट होने लायक होंगे तो वे अपने-आप नष्ट हो जायेंगे — बशर्ते कि हम उन्हें खराब मानते हुए भी उनसे सहयोग न करते हों। असहयोगका जन्म इसी विचारधारासे हुआ है। जो लोग देशी राज्योंको बुरा मानते हुए और यह जानते हुए भी उनकी नौकरी करते हैं वे उनका पोषण करते — उन्हें निभाते हैं। जो लोग देशी राज्योंको बुरा समझ कर बुरे तरीकोंसे उनका नाश करना चाहते हैं वे भी उनकी सहायता ही करते हैं। दुष्टताका नाश दुष्टतासे कभी नहीं हुआ। लेकिन मेरे समान जो लोग, भूलसे ही क्यों न हो, मगर पवित्र भावसे, उनमें जितनी अच्छाई देखते हैं, उनकी उतनी ही स्तुति भी कर देते हैं, वे ऐसा करके या तो उन्हें सुधारते हैं अथवा उसके द्वारा सत्याग्रह या असहयोग करनेका अपना अधिकार सिद्ध करते हैं।

स्वर्गीय यतीन्द्रनाथ दासके बलिदानके सम्बन्धमें मैं खामोश रहा हूँ, इसपर पत्रलेखकने कटाक्ष किया है। लेकिन इस सम्बन्धमें पहले ही 'नवजीवन' में लिख चुका हूँ[1], अतः फिरसे उसका जिक्र नहीं करूँगा।

अब रही लेखकके विश्वासकी बात। वे लिखते हैं: "आप तो यही समझते हैं कि देशी राज्योंकी रियाया जेल जानेसे डरती है। लेकिन मैं विश्वासपूर्वक कहता हूँ कि हम न तो जेलसे डरते हैं और न मौतसे।" किन्तु मुझे दुःखपूर्वक लिखना पड़ता है कि मेरी नजरमें इस विश्वासकी कीमत बहुत थोड़ी है, अथवा यों कहिए कि कुछ भी नहीं है। मेरा विश्वास है कि देशी राज्योंकी रियायामें से अँगुलीके पोरोंपर गिने जाने योग्य आदमी भी शायद ही मिलें जो मौतको गले लगाना तो दूर — जेल जानेको तैयार हों। देशी राज्योंमें जो जुल्म होते हैं, अगर वहाँकी रियाया डरपोक न होती और जेल वगैराके दुःखोंको सहनेके लिए तैयार रहती तो वे असम्भव होते। लेखक महोदय यह याद रखें कि क्या देशी राज्य और क्या अंग्रेजी राज्य कहीं भी जेल जानेवालेको कोई रोकता नहीं है। जब स्वार्थ-त्याग और बलिदानकी भावना देशके कोने-कोनेमें फैल जायेगी, तब हर तरहकी बुराई मिट जायेगी।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २०-१०-१९२९

३०. पत्र : जे० पी० भणसालीको

२० अक्टूबर, १९२९

चि० भणसाली,

तुम्हारा पत्र मिला। उपवासके बाद तुम्हें किस तरहकी खूराक मिलनी चाहिए थी, इस बातकी चिन्ता की ही नहीं जानी चाहिए। इस आधारपर अनशन नहीं किया जा सकता। उपवासके बाद बहुतोंका मन तरह-तरहकी चीजोंकी ओर दौड़ा करता है। यदि किसी व्यक्तिको ऐसी इच्छा नहीं होती तो यह कहा जा सकता है कि उसके मनका रस भी सूख गया है। ऐसी स्थिति तो भगवान्की कृपासे ही प्राप्त हो सकती है। भगवान्की कृपा प्राप्त करनेके लिए अनशन नहीं बल्कि आन्तरिक प्रार्थना ही औषध है।

बापूके आशीर्वाद

[गुजरातीसे]

बापुना पत्रो–७ : श्री छगनलाल जोशीने

१. देखिए "मेरी चुप्पी", पृष्ठ ७-८।

३१. तार : जमनालाल बजाजको

मसूरी
२१ अक्टूबर, १९२९

जमनालाल बजाज
३९५, कालबा देवी रोड
बम्बई

डाक्टर राजबलीकी योजना अनुमोदित। आशा है कि आप ठीक होंगे।

बापू

[अंग्रेजीसे]
पाँचवें पुत्रको बापूके आशीर्वाद

३२. पत्र : महादेव देसाईको

मसूरी
२१ अक्टूबर, १९२९

चि० महादेव,

काकीके स्वर्ग सिधारनेका समाचार देते हुए तुमने जो पत्र लिखा आखिरकार वह मुझे मिल गया। मैं इसकी बाट ही जोह रहा था। काकीकी माँगके उत्तरमें तुम उन्हें पूरी तरह आश्वस्त नहीं कर सके, यह बात तुम-जैसे व्यक्तिको खटकती ही रहेगी। किन्तु ऐसा तो सभीसे हो जाता है। क्या होनेवाला है इसे कौन जान सकता है? सभी अपनी शक्तिके अनुसार ही सेवा कर सकते हैं। इस बातका क्या पता था कि काकी एक दिनके बाद ही चल देगी? तुम्हारी लगातार अनुपस्थितिमें लम्बे अर्सेसे बीमार चली आ रही काकीकी दुर्गा कहाँ तक देख-भाल कर सकती है, इन सब बातों पर विचार करते हुए तुमने जो उत्तर दिया वह सच था। यदि तुम सान्त्वना देनेके विचारसे हाँ कह देते तो वह उत्तर विवेकपूर्ण तो होता किन्तु असत्य होता। अतः वृथा शोकको भूलकर हम तो काकीकी पुण्य-स्मृतिको सँजोये रहें। काकीकी जो-कुछ सेवा हो सकी उसे उन्होंने नम्रतापूर्वक स्वीकार किया और उसका आभार ही माना।

लगता है 'गीता'के प्रूफ अभी कहीं रास्तेमें ही भटक रहे हैं।

क्या मैं यह मानूँ कि तुम 'यंग इंडिया' और 'नवजीवन' के लिए तीन कालम लिखनेका अपना वादा बराबर पूरा करते जा रहे हो? मेरे मनमें जो निराशा [दबी पड़ी] थी वह अब सामने आ गई है। तुम्हें उसे बतानेसे भला क्या लाभ? किन्तु

निराशा तो है। यह मैं सहज भावसे लिख गया हूँ। तुम इसपरसे किसी तरहका अनुमान मत लगाना। "लम्बी निराशाकी गोदमें अमर आशा दुबकी हुई है।"[१] इसमें 'दुबकी' मेरा अपना संशोधन है। मैं यह बताना चाहता हूँ कि मेरी निराशा तो क्षणिक होती है, अतः उसके बारेमें अनुमान क्या करना? हम खाली हाथ आये हैं और खाली हाथ ही जायेंगे, यदि इस भावसे आ सकें तभी कहा जा सकता है कि हमें जीवनके संघर्षमें विजय प्राप्त हुई। अधिक लिखनेका समय नहीं है; किन्तु तुम यह बहाना मत करना।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (एस० एन० ११४६१) की फोटो-नकलसे।

३३. पत्र : आश्रमकी बहनोंको

मसूरी
मौनवार, २१ अक्टूबर, १९२९

बहनो,

मसूरी एक ऐसी जगह है जहाँ राग-रंगकी कोई सीमा ही नहीं। यहाँ परदा तो शायद ही हो। धनिक स्त्रियाँ नाच-गानमें भी शरीक रहती हैं, होंठ रँगती हैं, तरह-तरहसे अपनेको सजाती हैं और पश्चिमका अन्धानुकरण बहुत अधिक करती हैं। हमारा तो मध्यम मार्ग है। हम अन्ध-विश्वास और परदेको नहीं बनाये रखना चाहते तो निर्लज्जता और स्वच्छन्दताको भी अपनाना नहीं चाहते। यह मध्यम मार्ग सीधा है; मगर मुश्किल है। हमारा उद्देश्य इसी मार्गको अपनाना और उसपर कायम रहना है।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (जी० एन० ३७०६) की फोटो-नकलसे।

१. गुजराती कविताकी एक पंक्तिका भावार्थ।

३४. पत्र : छगनलाल जोशीको

मसूरी
मौनवार [२१ अक्टूबर, १९२९][1]

चि० छगनलाल,

तुम्हें आज कोई विशेष लिखनेको नहीं है। रघुनाथप्रसादको लिखा पत्र और उसके साथ छगनलालको लिखा पत्र पढ़ लेना।

भणसालीका सब फिर ठीक-ठाक हो गया होगा। सबसे कह देना कि उससे उपवासके दौरान या उसके समाप्त हो जानेपर उन प्रसंगोंकी चर्चा कोई न करे।

बुधाभाईके[2] बारेमें तुमने जो अन्तिम निर्णय किया हो उसकी सूचना मुझे देना।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (जी० एन० ५५६५) की फोटो-नकलसे।

३५. पत्र : मूलचन्द अग्रवालको

मसूरी
२१ अक्टूबर, १९२९

भाई मूलचन्दजी,

आपके दोनों पत्र मीले हैं। एकको 'न० जी०' में लुंगा। दूसरे देवसिंहजीके बारेमें मेरा अभिप्राय है कि वे हाल तो उदासीन भावसे एकमात्र सिपाहिगिरी करें। आगे देखा जायगा।

आपका,
मोहनदास गांधी

जी० एन० ७७४ की फोटो-नकलसे।

१. **बापुना पत्रो–७ : श्री छगनलाल जोशीने**में यही तारीख दी गई है।
२. आश्रमके निकट रहनेवाले एक जैन सज्जन।

३६. पत्र : ब्रजकृष्ण चाँदीवालाको

मसूरी
२१ अक्टूबर, १९२९

चि० ब्रजकिसन,

तुमारे पत्रका उत्तर आज तक मैं नहिं दे सका हुं। माता . . .[1] तुमारी भक्तिमें समझ सकता हुं। तुमारा अन्तरात्मा जैसा कहे ऐसा हि करो। इसी भक्तिको अंतमें तो व्यापक सेवामें परिणत होना है। परंतु ऐसा परिणाम बलात्कारसे नहिं ला सकते हैं। जब ऐसा होगा तब भी मातृभक्तिमें न्यूनता नहिं होगी पर वह भक्ति विशेष शुद्ध होगी। आज उसमें सात्विक मोह है।

अब स्वास्थ्य अच्छा होगा।

मैं दिल्ही १ नवेम्बरकी रात्रीका पहोंचुंगा।

बापूके आशीर्वाद

जी० एन० २३६८की फोटो-नकलसे।

३७. पत्र : गिरिराजकिशोरको

मुकाम मसूरी
२२ अक्टूबर, १९२९

प्रिय गिरिराज[2],

आपका पत्र मिला। मुझे प्रताप पण्डितका पत्र भी मिला है। वे लिखते हैं कि वे निजी तौर पर आपमें दिलचस्पी ले रहे है। और आप जो-कुछ कर रहे हैं उसपर वे निश्चय ही ध्यान रखेंगे। फिलहाल वे यह चाहते हैं कि जो-भी कुछ लिखितमें है उसे आप जो अनुभव आपको हो रहे हैं उन्हें देखते हुए पढ़ें और समझें। मेरा खयाल है कि ऐसा करना आपके लिए सबसे अच्छी बात होगी। आप चमड़ा-व्यापारके अर्थशास्त्रपर सारा साहित्य प्राप्त करनेकी कोशिश भी करें। उसमें आपको उन तरीकोंको मजबूत बनानेकी काफी-कुछ सामग्री मिलेगी, जिन्हें हम अपना रहे हैं। पण्डितके

१. मूलमें यहाँ अस्पष्ट है।

२. एक आश्रमवासी जो बम्बईमें चर्म-शोधनका प्रशिक्षण प्राप्त करने गये थे।

पुस्तकालयमें भी इस प्रकारका साहित्य अवश्य होगा। यदि न हो तो ऐसी पुस्तकें ढूँढ़ निकालनेमें किशोरीलाल आपकी सहायता कर सकेगा। आपको भारतके विभिन्न चर्मालय, चमड़ा-व्यापारकी स्थिति, भारतकी आवश्यकताएँ, चमड़के सामानका बाहरसे आयात, जर्मनीसे चमड़ा-व्यापार छीननेमें ब्रिटिश सरकारकी असमर्थताका इतिहास — इन सब चीजोंके बारेमें सामग्री इकट्ठी करनी चाहिए। यह सब पढ़ना बड़ा रोचक है। आपको बुखारसे बचे रहना चाहिए। और जब आपको ऐसा कुछ हो जाये तो एकदम उसका उपचार कीजिएगा। वैसे आपकी तबीयत कैसी चल रही है? मुझे आशा है कि आप आश्रमको नियमित रूपसे लिखते रहते होंगे।

अंग्रेजी (एस० एन० १५६१७) की माइक्रोफिल्मसे।

३८. पत्र : आर० थडानीको

मुकाम मसूरी
२२ अक्टूबर, १९२९

प्रिय थडानी,

आपका कृपापत्र मिला। गिरधारीके बारेमें आप जो भी कुछ कहते हैं उसकी मैं कद्र करता हूँ। मेरी अपनी राय यह है कि आप किसीको भी क्यों न रख लें, वह आपकी पेढ़ीका काम और साथमें खादीका भी काम ठीक तरहसे नहीं कर सकेगा। बिक्रीमें थोड़ा-बहुत फर्क पड़ सकता है; परन्तु उत्पादनके कामके लिए तो [एक आदमी] पूरे वक्तके लिए चाहिए; इसलिए यदि आपका लक्ष्य उत्पादन है तो आपको पूरे समय काम करनेवाला आदमी ही रखना चाहिए। आपको उसे अपनी तनख्वाहमें से या अगर पेढ़ी चाहे तो उसकी आयमें से अलगसे कोई वेतन देना चाहिए। परन्तु पेढ़ीकी आयमें से देनेकी बात तो मेरे खयालसे मुमकिन नहीं है, और यदि हो भी तो यह शायद युक्तिसंगत नहीं है। वैसे ही आप अपनी आयम से राष्ट्रीय कार्योंके लिए काफी-कुछ दे रहे हैं। यह बिलकुल ठीक बात होगी कि आप इस भागको अपनी देखभालमें खर्च करें और यह ध्यान रखें कि आपकी उत्पादन-योजना उन लोगों और जो आपके आसपास हैं, उनके बीच सफल होती है या नहीं। यदि आपके मनमें कोई ऐसी योजना हो तो निस्सन्देह गिरधारी इसके लिए उपयुक्त आदमी नहीं हैं क्योंकि उन्होंने अपने लिए ऐसा काम निश्चित कर लिया है, जहाँ वे ज्यादा उपयोगी ढंगसे काम कर सकते हैं। गिरधारीने राष्ट्रीय कामको छोड़कर दूसरा काम क्यों अपनाया था, इसका कारण यह था कि गिरधारी अपनी भावी योजनाओं और भावी आवश्यकताओंके बारेमें स्वयं निश्चय नहीं कर सके थे। जहाँतक मैं उन्हें जान पाया हूँ, उन्होंने बहुत सोच-विचार और सलाह-मशविरेके बाद अब अपना काम चुन लिया है और वे सोचते हैं कि अब उनकी इच्छा अपने-आपको राष्ट्रीय सेवामें

लगा देनेकी है। अब वे किसी सीमातक अपनी उचित इच्छाओंको राष्ट्र-सेवा द्वारा ही सन्तुष्ट करना चाहते हैं। इस तरहसे आप देखेंगे कि आपने जो दृष्टान्त दिया है वह गिरधारीके मामलेमें लागू नहीं होता।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत आर० थडानी
बुरहानपुर (सी० पी०)

अंग्रेजी (एस० एन० १५६९८)की फोटो-नकलसे।

३९. पत्र : वसुमती पण्डितको

मसूरी
२२ अक्टूबर, १९२९

चि० वसुमती,

आशा है अलमोड़ाके सम्बन्धमें तुम्हें मेरा पत्र मिल गया होगा।[1] अपनी उस रायपर मैं अब भी कामय हूँ। दिल्लीमें प्रभुदाससे[2] बातचीत करके यदि कोई अन्य बात सूझी तो मैं उसपर विचार करूँगा। यदि मैं अलमोड़ामें आश्रम स्थापित कर सका होता तो तुम्हें वहाँ अवश्य भेज देता। किन्तु सो तो हो नहीं सका और अब मुझे ऐसा लगता है कि यह हो भी नहीं सकेगा। आखिर अलमोड़ा जानेकी तुम्हारी इच्छा क्यों है, यह भी मुझे लिखना। यदि तुम्हें वहाँ अच्छा न लगता हो तो मैं कोई दूसरी जगह खोजूँ। पहाड़ पर ही जानेकी इच्छा हो तो ऐसे और भी स्थान हैं। तुम्हें अलमोड़ा भेजनेकी बातको लेकर मैं धर्मसंकटमें पड़ गया हूँ।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (एस० एन० ९२७०) की फोटो-नकलसे।

१. १७ अक्टूबरका पत्र।
२. छगनलाल गांधीके पुत्र।

४०. पत्र : मोहनलाल भट्टको

२२ अक्टूबर, १९२९

भाईश्री मोहनलाल,

तुम्हारा पत्र जब रास्तेमें रहा होगा, मैं भी तुम्हें तभी पत्र लिख चुका था। मैंने न्यासका घोषणपत्र[1] पढ़ लिया है। नाम ठीक ही हैं। जैसा कि मैंने लिखा था तदनुसार यदि मेरा नाम निकाला जा सके तो निकाल देना। मेरी देखरेखमें आरम्भ हुआ था या ऐसा ही कुछ लिखना हो तो भले लिख दिया जाये किन्तु मेरे हस्ताक्षरकी जरूरत न पड़े तो अच्छा हो। 'गीताजी' के प्रूफ मुझे आज मिले।

बापूके आशीर्वाद

श्री मोहनलाल भट्ट
नवजीवन कार्यालय
अहमदाबाद
बी० बी० ऐंड सी० आई० रेलवे

गुजराती (जी० एन० १२२४)की फोटो-नकलसे।

४१. पत्र : छगनलाल जोशीको

मसूरी
२२ अक्टूबर, १९२९

चि० छगनलाल,

आजकी डाक अभीतक नहीं आई है।

ऐसा नहीं लगता कि कोई डाक बेठिकाने पहुँचो हो। आगे-पीछे सभी पत्र मिल जाते हैं।

ऐसा लगता है कि ईश्वरलालके[2] बारेमें कहीं कोई गलतफहमी हो गई है। मेरा खयाल है कि ईश्वरलालने तुमसे अनुमति माँगनेके बावजूद मुझसे भो अनुमति माँगी थी। पहली बार अनुमति माँगने पर मैंने तुमसे ही पूछनेको कह दिया था। किन्तु अबसे यही नियम होना चाहिए कि पहले तो मुझसे कोई अनुमति माँगे ही नहीं। तुम्हारी अनुमति मिलनेपर यदि मेरी अनुमति लेना आवश्यक हो तो भले

१. देखिए "न्यासका घोषणापत्र", २६-११-१९२९।
२. देखिए "पत्र : ईश्वरलाल जोशीको", २३-१०-१९२९।

ले। जहाँतक बन सके मुझे तो सब कामोंसे अलग ही रखना चाहिए। तुम जो चाहो सो पूछ सकते हो। यदि सब लोग पहले मुझसे ही अनुमति माँगेंगे तो व्यवस्था बनाये रखना सम्भव नहीं होगा। यह तो पुरानी शिकायत है।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (जी० एन० ५४६४)की फोटो-नकलसे।

४२. तार: गुलजारीलाल नन्दाको[1]

मसूरी
२३ अक्टूबर, १९२९

गुलजारीलाल
मजूर कार्यालय
अहमदाबाद

आपके तारसे मुझे अचम्भा हुआ। कटौती बहाल करनेकी माँगके लिए मजदूरों द्वारा प्रार्थना किये जानेके दो आधार थे। एक तो तथाकथित समृद्धिमें वृद्धि। यह आधार टिका नहीं। दूसरा यह कि कटौती हर हालतमें बेजा थी क्योंकि उससे मजदूरी कम हो जाती है। मजदूरी तो पहले ही से रहन-सहनका खर्च पूरा करनेको काफी नहीं है। ये हालात अब भी चल रहे हैं इसलिए मेरा निर्णय यह है कि मजूरोंकी प्रार्थना मिलोंकी आर्थिक हालतका विचार किये बिना मान ली जानी चाहिए। अपना तार तथा यह पहले सेठ मंगलदासको दिखाइए फिर सरपंच को।

गांधी

अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ९६४२)से।
सौजन्य: गुलजारीलाल नन्दा

१. यह तार गुलजारीलाल नन्दाके २२ अक्टूबरके इस तारके जवाबमें था: सरपंचका आपसे यह कहना है कि मिलकी मौजूदा हालत इतनी अच्छी नहीं कि बढ़ौती करना उचित हो। आपके विचार अब भी आपके सहयोगीसे नहीं मिलते और आप १९२३ की कटौतीको अनुचित मानते हैं जिसका मतलब है कि कटौती समाप्त कर दी जानी चाहिए। यह असंगत लगता है। कृपया पूरी तरह समझाइए। सरपंच २५ को बम्बईसे अहमदाबाद पहुँच रहे हैं।

४३. पत्र : कन्नूमलको

मुकाम मसूरी
२३ अक्टूबर, १९२९

प्रिय मित्र,

आपका पत्र कुछ समय हुए मिला था। जब मैं आश्रम वापस लौटूँगा तो देखूँगा कि आपकी पुस्तकोंकी कितनी प्रतियोंकी मुझे जरूरत है; और अगर जरूरी लगा तो आपकी किसी अन्य पुस्तककी कुछ और प्रतियाँ भी डाक द्वारा भेजनेके लिए आपको कष्ट दूँगा। अगर मुझे वक्त मिला तो मैं निश्चय ही आपकी अन्य पुस्तकोंमें से भी कुछएक पुस्तकें पढ़नेकी कोशिश करूँगा और आपको बताने लायक कुछ हुआ तो आपको पत्र लिखूँगा।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत कन्नूमल
धोलपुर

अंग्रेजी (एस० एन० १५१९९) की माइक्रोफिल्मसे।

४४. पत्र : हरचरणलाल वर्मनको

मुकाम मसूरी
२३ अक्टूबर, १९२९

प्रिय मित्र,

आपका पत्र[1] मिला; उसके लिए मैं आपको धन्यवाद देता हूँ। 'यंग इंडिया' में जो-कुछ जाता है, उस सभीको मैं ध्यानसे देखता हूँ। इसी तरह लगभग जो गुजराती 'नवजीवन' में छपता है उस सबको भी मैं ध्यानसे देखता हूँ। एक विश्वासपात्र साथी गुजराती 'नवजीवन' और 'यंग इंडिया' की सहायतासे 'हिन्दी नवजीवन' तैयार करते हैं। इसलिए हो सकता है कि 'हिन्दी नवजीवन' में किन्हीं मामलोंका काफी ब्योरेवार उल्लेख हो और किन्हीं दूसरे मामलोंमें उक्त दोनों पत्रोंमें प्रकाशित विवरणका वहाँ केवल सारांश ही दिया जाये। प्रेसमें जानेसे पहले अंग्रेजी मैंने देखी थी। हिन्दी मैंने अब आपका पत्र मिलनेके बाद पढ़ी है। मेरी समझमें दोनोंमें कोई विरोध नहीं है। क्या आप अंग्रेजी और हिन्दी पाठमें कोई विरोध पाते हैं और क्या

१. इस पत्रमें **हिन्दी नवजीवन** और **यंग इंडिया**में गांधीजीकी दयाल बागकी यात्राका अलग-अलग ब्योरा प्रकाशित होनेपर आश्चर्य प्रकट किया गया था।

आपको उनमेंसे किसीपर कोई आपत्ति है? अगर कहीं थोड़ा-सा भी अन्याय हुआ हो तो मैं उसे ठीक करनेकी कोशिश करूँगा।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजी (एस० एन० १५६४९) की माइक्रोफिल्मसे।

४५. पत्र : कोण्डा वेंकटप्पैयाको

मुकाम मसूरी
२३ अक्टूबर, १९२९

प्रिय वेंकटप्पैया,

आपके पत्र मिले। आपने पल्लेपाडु आश्रम [वेल्लूरके निकट] के लिए जो व्यवस्था की है, उसका मैं अनुमोदन करता हूँ। मैं ऐसी व्यवस्था करूँगा कि आपको किसी-न-किसी तरह १००० रु० मिल जायें। निस्सन्देह आपको यह पूरा हक है कि आप किसीको भी हटा दें और दूसरे किसी भी आदमीको कामपर लगा लें। आपका या सीताराम शास्त्रीका कभी-कभी आश्रममें रहना मैं बहुत पसन्द करूँगा। इससे जिन युवकोंको आपने काम सौंप रखा है, उनका हौसला बढ़ेगा और स्थानीय लोगोंकी सहानुभूति प्राप्त होगी। शायद आप आश्रमके नजदीकके ग्रामीण लोगोंपर भी असर डाल सकेंगे। मैं चाहूँगा कि यह आश्रम क्रिया-कलापोंका जीवन्त केन्द्र बने।

जहाँतक तेनाली [जिला गुंटूरमें] का सम्बन्ध है, कृपया मुझे बताइयेगा कि तेनाली संस्थाको वास्तवमें कितना अनुदान चाहिए और इस रकमके किस तरह खर्च होनेकी सम्भावना है। इसका भी लगभग सही अन्दाज बताइयेगा कि तकनीकी शिक्षककी योग्यताएँ क्या होनी चाहिए। क्या उसका तेलगु या अंग्रेजी जानना जरूरी है? यह एक ऐसी माँग है, जिसे पूरी कर सकना कठिन होगा। पुन्नैया आजकल कहाँ काम कर रहे हैं? क्या अपेक्षित प्रशिक्षणको पूरा करनेके लिए पुन्नैया या किसी और व्यक्तिको आश्रममें नहीं भेजा जा सकता? वैसे तो ज्यादातर शिक्षक काममें लगे हुए हैं परन्तु यदि सम्भव हो सके तो मैं आपकी इच्छा पूर्ण करना चाहता हूँ। आपने अपनी पत्नी और पुत्रीके स्वास्थ्यके सम्बन्धमें कुछ नहीं लिखा है। वे दोनों कैसी हैं? दिसम्बरमें वर्धामें होनेवाली अ० भा० च० संघकी परिषदकी बैठकमें शामिल होनेके लिए आप अवश्य तैयार रहें।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत कोण्डा वेंकटप्पैया
गुंटूर (मद्रास अहाता)

अंग्रेजी (एस० एन० १५६९९) की माइक्रोफिल्मसे।

४६. पत्र : सरकारी तार जाँच कार्यालय, कलकत्ताके अधीक्षकको

मुकाम मसूरी
२३ अक्टूबर, १९२९

अधीक्षक
सरकारी तार जाँच कार्यालय
कलकत्ता

श्रीमन्,

मैं सुमद्री तार सं० ५५९/११ से सम्बन्धित जवाबी उत्तरका प्रपत्र नत्थी कर रहा हूँ। इसका पैसा पहले ही चुका दिया गया था। वह मेरे डर्बनके पतेपर भेजा गया था और साबरमतीमें इसी महीनेकी १२ तारीखको मुझे मिला। दौरेमें इतनी देरसे मिलनेके कारण उत्तर देनेका समय ही बीत गया था, इसलिए मैं उस उत्तर-प्रपत्रका इस्तेमाल नहीं कर सका। अतः क्या आप कृपया समुद्री तार भेजनेवालेको ७-६-० रु० या इसके बराबर रकम किसी रूपमें भेज देंगे? प्रेषक दक्षिण आफ्रिकी भारतीय कांग्रेस, डर्बनके मन्त्री हैं।

आपका विश्वस्त,

संलग्न पत्र : १

अंग्रेजी (एस० एन० १५७००) की माइक्रोफिल्मसे।

४७. पत्र : ईश्वरलाल जोशीको

२३ अक्टूबर, १९२९

चि० ईश्वरलाल,

तुम्हारा पत्र मिला। यदि तुम दिल्लीके लिए छः महीने दो तो इतना काफी होगा। यदि तुम जानेको तैयार हो तो मैंने तुम्हें जाने देनेको कहा है बशर्ते कि देवदास तुम्हें अंग्रेजी पढ़ाये और तुम्हारा कार्यक्रम इस प्रकार बनाये जिससे पढ़ाईके लिए तुम्हें आवश्यक समय मिल सके। देवदासके द्वारा ही मैं तुम्हें पत्र भेजूँगा। आजकल तो वह बाहर है। इन छः महीनोंके दौरान मैं इस बातपर भी विचार कर लूँगा कि इसके बाद तुम्हें कहाँ भेजना चाहिये। अभीसे उसपर विचार करनेकी

जरूरत नहीं। यह तो तुम समझ ही गये होगे कि मन्त्रीसे अनुमति प्राप्त करनेके बाद ही मुझसे सलाह-मशविरा करने या मेरी अनुमति लेनेकी बात उठती है।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ९२७९)की फोटो-नकलसे।
सौजन्य : ईश्वरलाल जोशी

४८. पत्र : महादेव देसाईको

मसूरी
२३ अक्टूबर, १९२९

चि० महादेव,

आखिरकार 'गीताजी' के प्रूफ कल मिले। प्रूफ बहुत देरसे यहाँ-वहाँ भटकते-भटकते पहुँचे। अब तो मैं यहाँ आज और कल भर ही रहूँगा। अतः मुझे ऐसा नहीं लगता कि मैं इस काममें हाथ लगा सकूँगा। लगता है तुम दोनोंने उनपर काफी मेहनत की है। दुर्गाकी तबीयत कैसी रहती है? क्या उसने फिरसे अपना भोजनालय-का काम सँभाल लिया है? उसकी सामर्थ्यसे अधिक बोझ तो उसपर नहीं है न?

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (एस० एन० ११४६२)की फोटो-नकलसे।

४९. पत्र : छगनलाल जोशीको

२३ अक्तूबर, १९२९

चि० छगनलाल,

तुम्हारा पत्र मिला। ईश्वरलाल और द्वारकानाथके पत्र पढ़कर उन्हें दे देना। इसके बाद उनके सम्बन्धमें और कुछ लिखनेको नहीं रहता।

मैंने अपने पिछले पत्रमें लाहौर जानेके बारेमें अनुमति दे ही दी थी। किन्तु तुमने तारसे उत्तर माँगा था इसलिए उक्त तार[1] दे रहा हूँ।

हस्ताक्षरोंके सम्बन्धमें सब समझ गया हूँ।[2] यदि तुम नारणदासको विश्वास दिला सको तो वह अवश्य कार्य कर सकेगा।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (जी० एन० ५४६५) की फोटो-नकलसे।

१. बादमें गांधीजीने तार देनेका विचार छोड़ दिया; देखिए "पत्र : छगनलाल जोशीको", २४-१०-१९२९।

२. देखिए "पत्र : छगनलाल जोशीको", पृष्ठ ११।

५०. पशुपालनका आर्थिक महत्त्व

दो साल पहले जब मैं बंगलोरमें स्वास्थ्य-लाभ कर रहा था,[१] तब इम्पीरियल डेरी विशेषज्ञ, श्री विलियम स्मिथने मुझे संक्षेपमें उस विवरणका सार दिया था, जो उन्होंने पूनाकी कृषि-समितिको भेजा था। मैं निम्नांकित जानकारी[२] उसीमें से उद्धृत कर रहा हूँ। मैं भारतके आर्थिक कल्याणमें दिलचस्पी रखनेवाले हर व्यक्तिको इसे पढ़ने की सलाह देता हूँ।

यह बड़ी भारी समस्या है। हमें गायकी दुर्दशाकी झलक लोगोंकी दरिद्रतामें मिल जाती है। श्री स्मिथने दो बातोंपर जो बल दिया है, उसपर पाठक ध्यान दें। गायका दूध देनेका गुण उसकी अच्छे मेहनती बैल देनेकी क्षमतापर किसी तरहका असर नहीं डालता। दीर्घ अनुभवपर आधारित श्री स्मिथके विचारसे दोनों चीजें साथ-साथ चलती हैं। वह गाय, जो पर्याप्त परिमाणमें दूध देती है, बलिष्ठ बैल भी देगी। दूसरी बात जो श्री स्मिथने कही है, वह यह है कि ऊपर से देखनेमें भैंस व्यक्तिके लिए लाभकारी भले हो, किन्तु उससे गायकी हानि होती है और इसलिए कृषिको भी हानि पहुँचती है। ये दोनों महत्त्वपूर्ण चीजें तभी चतुराईसे सुलझाई जा सकती हैं जब उन लोगोंको जिनके पास पशु हैं, पर्याप्त शिक्षा दी जाये। निस्सन्देह यदि राज्य लोगोंके वास्तविक कल्याणमें दिलचस्पी ले, जैसा कि संसारके दूसरे बहुत-से भागोंमें उन्होंने किया है, तो कुछ सालोंमें ही इस समस्याको प्रभावपूर्ण ढंगसे सुलझाया जा सकता है। परन्तु निजी प्रयत्नसे भी हमारे पशुओंकी बढ़ती हुई हानिको रोका जा सकता है। आज तो वे वरदान होनेके बजाय आर्थिक बोझ ही बनते जा रहे हैं।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २४-१०-१९२९

५१. निर्वाचित बोर्ड

यह जान कर कि मुरादाबादके जिला बोर्डने अपने स्कूलोंके शिक्षकोंके नाम उन्हें राजनीतिमें भाग लेनेसे मना करते हुए एक गश्ती चिट्ठी जारी की है, मुझे धक्का लगा। यहाँतक कहा गया है कि वे दरिद्रनारायणके लिए अपने विद्यार्थियों या अन्य लोगोंसे चन्दा भी इकट्ठा नहीं कर सकते। इसी बोर्डने मुझे एक सुन्दर मंजूषामें मानपत्र भेंट किया था। शायद बोर्डके सदस्योंको इस गश्ती चिट्ठीके बारेमें कुछ पता

१. १९ अप्रैलसे ३१ अगस्त, १९२७ तक।

२. यहाँ नहीं दिया जा रहा है। विलियम स्मिथने दुधारू गौओं और बधिया बैलोंकी वर्तमान दशाके कारणोंका विश्लेषण किया था और सुधारके उपाय सुझाये थे।

न रहा हो। गश्ती चिट्ठीका मसविदा किसीने भी क्यों न बनाया हो, यह तो साफ है कि उसमें जैसी राजभक्तिकी भावना उभर कर सामने आई है, वह उन सरकारी स्कूलों और कालेजोंकी राजभक्तिको भी मात करती है जो मुझे अपने विद्यार्थियोंसे दो शब्द कहनेको बुलाते रहे हैं तथा खादीके लिए मुझे थैली भेंट करते रहे हैं। सरकारी नौकरोंने भी खुल्लमखुल्ला खादीके हितमें चन्दा दिया है। अब यह माना गया है कि खादीका राजनीतिसे कोई सरोकार नहीं है और खादीके आर्थिक महत्त्वके बारेमें तो मतभेद हो सकता है, नैतिक दृष्टिसे उसके असंदिग्ध महत्वकी अवहेलना कोई भी शिक्षा-शास्त्री नहीं कर सकता। निस्सन्देह कुछ अंशोंमें खादीका राजनीतिक पहलू भी है; लेकिन यों तो ऐसे बहुत-से महत्त्वपूर्ण मसले हैं जिनपर जनता और सरकार दोनों ध्यान दे रहे हैं और जिनके राजनीतिक पहलू हैं। हिन्दू-मुस्लिम एकता और अस्पृश्यता-निवारण विशेष रूपसे सामाजिक प्रश्न ही हैं; लेकिन आज राजनीतिके क्षेत्रमें भी इन दोनोंका महत्त्व पहले दरजेका है और कांग्रेसके कार्यक्रममें इन्हें सबसे आगे रखा गया है। लेकिन ऐसा नहीं सुना गया कि कभी किसीने इसके कारण सरकारी नौकरोंको इन कामोंमें भाग लेनेसे रोका हो। ऐसे कई जिला बोर्ड हैं, जिन्होंने खादीके काममें उत्साहपूर्वक हाथ बँटा कर इस एकमात्र राष्ट्रीय और सार्वत्रिक गृह-उद्योगके प्रचारमें अखिल भारतीय चरखा संघकी मदद की है। मुरादाबाद बोर्डके सिवाय उत्तरी अर्काटका ही एक और बोर्ड है, जिसने ऐसा रवैया अख्तियार किया है और जिसका यह रवैया मेरे ध्यानमें भी आया है। उस बोर्डने नीचे लिखी चेतावनी जारी करनेकी धृष्टता की है:

> **अर्काट बोर्ड मिडिल स्कूलके फर्स्ट असिस्टेंट पी० रंगनाथन अय्यरको[1] इस पत्र द्वारा सूचित किया जाता है कि उन्होंने खादी-कोषके लिए विद्यार्थियोंसे चन्दा इकट्ठा करके अनुचित और आक्षेप योग्य कार्य किया है। पूरे समयके लिए बोर्डके नौकरके नाते उनका यह कर्त्तव्य है कि वे हेडमास्टर द्वारा सौंपे गये स्कूलके कामपर पूरा ध्यान दें और संस्थाके नाम तथा अनुशासनको क्षति पहुँचानेवाले कामोंमें पड़कर समयका दुरुपयोग न करें। उन्हें आगाह किया जाता है कि अगर फिरसे वे ऐसा कोई काम करेंगे तो उन्हें बगैर नोटिस दिये ही नौकरीसे खारिज कर दिया जायेगा।**
>
> **जो चन्दा उन्होंने इकट्ठा किया था, उसकी फेहरिश्त लौटाई जाती है और उनके लिए यही बेहतर होगा कि वे फौरन ही उसे फाड़ डालें।**

मैं पाठकोंका ध्यान गश्ती चिट्ठीकी अशिष्ट भाषाकी तरफ आकर्षित करना चाहता हूँ, जिसमें शिक्षकके पदपर काम करनेवाले व्यक्तिके प्रति अपेक्षित सामान्य शिष्टताका भी अभाव है। पाठक उस छोटी-सी निर्दोष कापीको, जिसमें निर्दोष बालकोंके नाम और उनके कुछ चन्देके पैसे दर्ज थे, तुरन्त फाड़ फेंकनेकी सिफारिशमें निहित राजभक्तिकी अतिशयतापर भी ध्यान दें। मुझे पाठकोंको यह सूचित करते

१. देखिए "पत्र: रंगनाथनको", १८-१०-१९२९।

हुए दुःख होता है कि उत्तरी अर्काटके अनन्य राजभक्त जिला बोर्डने इस गरीब शिक्षकको बर्खास्त कर दिया है। मुझे पता नहीं कि इस घटनापर बोर्डको पश्चात्ताप हुआ है या नहीं। मैं आशा करता हूँ कि उसे पश्चात्ताप हुआ होगा। पी० रंगनाथन अय्यरपर जो बीती है, वैसी जिस-किसीपर भी बीते — चाहे वह स्कूल मास्टर हो या कोई और व्यक्ति — उसे निराश होनेकी जरूरत नहीं है। कोई भी सशक्त स्त्री या पुरुष, जो ईमानदारीके साथ मजदूरी करनेमें शर्म नहीं मानता, उसे कामके अभावमें भूखों मरनेकी नौबत नहीं आयेगी। मैं तो सब जगह ऐसी ही आवाज सुनता हूँ कि राष्ट्रीय कामोंके लिए सच्चे और अच्छे कार्यकर्त्ताओंकी जरूरत है।

फिर भी नौकरीसे अलग कर दिये गये लोग भले ही इस बातकी चिन्ता न करें कि सार्वजनिक कर्त्तव्यके पालनमें उनपर क्या-कुछ गुजरती है, जनता उस सबके प्रति तटस्थ नहीं रह सकती। अब ज्यादातर बोर्डोंका संगठन चुनाव द्वारा होता है और उनके सभापति भी अधिकांश स्थानोंमें निर्वाचित ही होते हैं। मेरा यह विश्वास है कि इस तरहकी गश्ती चिट्ठियाँ सम्बन्धित सदस्योंकी जानकारीके बिना विभागीय तौरपर ही जारी की जाती हैं। सदस्योंका कर्त्तव्य है कि सभापति अथवा विभागीय अध्यक्ष द्वारा किये गये हर निरंकुश और राष्ट्र-विरोधी कार्यकी ओर ध्यान दें। इसी तरह मतदाताओंका भी यह कर्त्तव्य है कि बोर्डके ऐसे बुरे कामोंपर कड़ी निगाह रखें, क्योंकि बोर्ड उनके ही बनाये हुए हैं और उनका ही प्रतिनिधित्व करते हैं। अगर मतदाताओंको अपने अधिकारका भान हो, वे अपने कर्त्तव्यके सम्बन्धमें जागृत हों, तो वे अपने बोर्डोंका कोई भी गैरकानूनी और राष्ट्र-विरोधी कार्रवाई करना असम्भव बना सकते हैं। प्रजाकी उदासीनताके कारण ये निर्वाचित बोर्ड बहुधा लोक-सेवाके साधन बननेके बजाय प्रजापीड़नके निमित्त बन जाते हैं। बोर्डोंका सशक्त राजनीतिक संस्थाएँ बन जानेमें कोई हर्ज नहीं है, बशर्ते कि वे स्थानीय समाज-सेवा के अपने प्रथम कर्त्तव्यकी उपेक्षा न करें और उसपर कोई आँच न आने दें। बल्कि सिद्ध तो यहाँतक किया जा सकता है कि अपने-आपको समाज-सेवाकी दृष्टिसे भी कुशल बनानेके लिए यह आवश्यक है कि वे एक विवेक-सम्मत सीमातक राजनीतिक उद्धारके राष्ट्रीय आन्दोलनमें भाग लें।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २४-१०-१९२९

५२. लालाजीकी पुण्यतिथि

आगामी १७ नवम्बरको लालाजीकी पुण्यतिथि है। उस दिन हरएक देशभक्त — स्त्री या पुरुष — स्वभावतः अपने-आपसे सवाल करेगा : 'साल-भरमें मैंने लालाजीकी मृत्युका प्रतिकार करनेके लिए क्या किया है? जिस स्वराज्यके लिए लालाजी जिये और मरे उसे निर्दिष्ट ध्येय तक पहुँचानेके लिए मैंने क्या किया है? जिन तथाकथित अछूतोंके हितको उन्होंने अपना हित बना लिया था, उन अछूतोंके लिए मैंने क्या किया है? पण्डित मालवीयजी और मोतीलालजीने जो अपील की थी उसके लिए मैंने क्या किया है?' लालाजीकी अनेक-विध जीवन-प्रवृत्तियोंमें से किसी एक पर अधिक महत्त्व देकर राष्ट्रभक्त इसी तरहके और भी कई प्रश्न अपनेसे पूछ सकते हैं। लेकिन मेरा उद्देश्य तो तमाम कांग्रेस कमेटियोंको यह सलाह देना है कि वे पण्डित मालवीयजी और मोतीलालजी द्वारा निकाली गई पाँच लाखकी अपीलवाली[1] रकम पूरी करें और उस रूपमें लालाजीकी पुण्यतिथि मनायें। यह बड़ी शर्मकी बात है कि अबतक पाँच लाखमें से सिर्फ दो लाखके करीब रुपये ही इकट्ठे हो सके हैं। अगर पूरा-पूरा प्रयत्न किया जाये तो रकमका बाकी अंश १७ नवम्बरतक या उससे पहले इकट्ठा कर लेना कोई मुश्किल नहीं है। अगर उन्हें यह काम करना हो तो आज ही से पूरी-पूरी लगनके साथ काम शुरू कर देना चाहिए।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २४-१०-१९२९

५३. संयुक्त प्रान्तका दौरा – ६[2]

इस महीने १८ तारीखको समाप्त होनेवाले सप्ताहके दौरेका कार्यक्रम[3] इस प्रकार है :

पूर्वग्रह कठिनाईसे दूर होते हैं

बाराबंकीसे हमें हरदोईके लिए डाकगाड़ी पकड़नी थी। गाड़ीमें बहुत भीड़ थी। अब फिर पहलेकी तरह ही गांधीजी तीसरे दर्जेमें सफरका आग्रह दृढ़तासे करने लगे हैं। हमारे दलको जगह मिलनेमें कुछ कठिनाई हुई, जिसे रेलवे अधिकारियोंने दूर किया। देवदास गांधी जब भी दलमें होते हैं, अपने लिए आम यात्रियोंके बीच जगह बना लेते हैं, ताकि हमारे दलमें एक आदमी कम हो जाये। बाराबंकीमें उन्हें केवल

१. जिसका मसौदा गांधीजीने तैयार किया था; देखिए खण्ड ३८ पृ० ९९-१०१।

२. यह तथा इसी शीर्षकसे लिखे गये आगेके अन्य लेख जो 'ए' द्वारा हस्ताक्षरित हैं, गांधीजीने ही लिखे थे। देखिए "पत्र : महादेव देसाईको", १८-११-१९२९। यद्यपि वहाँ गांधीजी कहते हैं कि उन्होंने तीन पत्र लिखे हैं, वास्तवमें उन पत्रोंमें से छः 'ए' हस्ताक्षरसे प्रकाशित हुए और ये पत्र इस खण्डमें उद्धृत हैं।

३. यहाँ नहीं दिया जा रहा है।

उसी डिब्बेमें जगह मिल सकी जिसकी खिड़कीपर एक कार्ड लगा था: "यूरोपीयों और आंग्ल-भारतीयोंके लिए"। उन्होंने डिब्बेमें कुछ यूरोपीय और आंग्ल-भारतीय तथा कुछ भारतीयोंको भी देखा। बाराबंकीमें उन [के बैठने] पर कोई आपत्ति नहीं की गई। लेकिन लखनऊमें दो यूरोपीय महिलाओंने इस कारणसे उनपर आपत्ति की कि वे ठीक पोशाक नहीं पहने थे। वे पूरी खादीकी धोती [कुरता], गंजी और टोपी पहने थे। उन्होंने देवदाससे डिब्बेसे बाहर चले जानेको कहा और जैसा कि वे बताते हैं, अपशब्दोंका भी प्रयोग किया। युवा गांधी उनकी बात नहीं मान रहे थे। उन भद्र महिलाओंने अपनी मददके लिए गार्डको बुला लिया, पर देवदास टससे मस न हुए। उसके बाद जैसा कि होता है, वही हुआ। गार्ड स्टेशन मास्टरको बुला लाया। फिर पुलिस आ गई। स्वाभाविक तौर पर भीड़ तो होनी ही थी, हो गई। गांधीजीको जो-कुछ हो रहा था, बताया गया। उन्होंने यही तय किया कि देवदासको जैसा भी वह ठीक समझे करने दिया जाये और खुद तटस्थ रहा जाये। जबकि बहस-मुबाहिसा हो ही रहा था, प्रोफेसर कृपलानी और अन्य लोग इस रिजर्व डिब्बेके पास गये। डिब्बेमें एक मिशनरी था। उससे उनकी काफी गर्मागरम बहस हो गई, क्योंकि प्रोफेसरको मिशनरीकी यह दलील ठीक नहीं लग पा रही थी कि देवदासको बात इसलिए मान लेनी चाहिए कि भद्र महिलाओंको उनकी पोशाकपर आपत्ति है। इस सबके अन्तमें यह हुआ कि पुलिस इस तरहकी पोशाक पहननेवाले व्यक्तिको गिरफ्तार कर नहीं पाई थी, कारण चाहे अनिच्छा रहा हो चाहे साहसका अभाव, कि गाड़ी स्टेशनसे चल पड़ी और देवदास बताते हैं कि बादमें वह मिशनरी और वे महिलाएँ भी उनके मित्र बन गये। यह घटना दुःखद है और इससे जाहिर होता है कि पूर्वग्रह कितनी मुश्किलसे दूर हो पाते हैं। यूरोपीयों और आंग्ल-भारतीयोंकी अभीतक यह नहीं समझमें आया है कि भारतकी अधिकांश जन-संख्याकी राष्ट्रीय पोशाक धोती है। जबतक यूरोपीयों और आंग्ल-भारतीयोंके लिए डिब्बे रिजर्व होंगे तबतक यह जाति और रंग-भेद भी बना रहेगा, जिससे कभी-कभी ऐसी अप्रत्याशित घटनाएँ भी होंगी, क्योंकि डिब्बे रिजर्व करनेसे रंग-भेदके उद्धत पूर्वग्रहको बल मिलता है और वह समाप्त नहीं होता। देवदास गांधीके मामलेमें शायद रिजर्वकी जो चिप्पी भी लगी थी, वह नियम-विरुद्ध ढंगसे लगी थी। डिब्बे पर आम तरीकेसे जैसे ठप्पा लगाया जाता है, वहाँ वैसा नहीं लगा था। डिब्बे रिजर्व रखनेकी यह अपमानजनक पद्धति तभीतक जारी रखी जा सकती है जबतक यात्रियोंका एक बहुत बड़ा भाग दबकर चुपचाप ऐसे अपमान सहता रहेगा। जिसको जनताका समर्थन प्राप्त नहीं है, ऐसे किसी भी नियमकी जनता द्वारा आदर-सहित पालन होनेकी कोई सम्भावना नहीं है। हमें आशा करनी चाहिए कि युवा गांधीने शिष्टतासे जो सफल विरोध किया, उससे रेलवे अधिकारियोंको डिब्बे रिजर्व करनेकी यह अपमानजनक प्रथा समाप्त करनेकी प्रेरणा मिलेगी।

एक सच्चा श्राद्ध

हरदोईकी यात्रा कईएक घटनाओंके कारण दिलचस्प थी। एक निःस्वार्थ स्त्रीके कार्योंने सारे वातावरणका स्वरूप ही बदल दिया था। एक छोटे-से जमींदार, बरुआके

राजा जंगबहादुर सिंहकी पत्नी श्रीमती विद्यादेवीने अपने पति और अन्य सम्बन्धियोंमें सेवाकी भावना भर दी है। उन्होंने स्वयं पर्दा त्याग दिया है और अपने प्रभावमें आनेवाली बहनोंसे भी पर्देका त्याग करवा दिया है। वे नियमित रूपसे सूत कातती हैं और उनकी देवरानी श्रीमती लक्ष्मी देवी तो बेहद महीन सूत कातती हैं। उनके काते सूतसे बरुआमें ही बुना गया एक खादीका टुकड़ा गांधीजीको भेंट किया गया था, जिसे उन्होंने हरदोईकी सार्वजनिक सभामें १०५ रु० में नीलाम कर दिया। स्त्रियोंकी सभामें रानी विद्यादेवीने कुछ कीमती जेवर दे दिये। स्त्रियोंकी सभामें लगभग १,७०० रु० की भेंट मिली जिसमें ७०० रु० नकद और करीब १,००० रु० के गहने थे। इसमें से अधिक भाग इसी परिवारसे मिला था। सम्भवतः उन्हींके शान्त प्रभावसे प्रेरित होकर कुँवर महेश्वरसिंहने अपनी पत्नी — जिनका देहान्त पिछली जनवरीमें हुआ था — की स्मृतिमें गांधीजीसे एक खादी भण्डार खुलवाया। इस अवसरपर गांधीजीको दिये गये अभिनन्दनपत्रमें कहा गया था कि स्वर्गीया श्रीमती सरस्वती देवी विदुषी महिला थीं, उन्होंने पर्दा त्याग दिया था, नियमित रूपसे सूत कातती थीं और भगवानकी पूजा करती थीं। जरूरतमंद स्त्रियों और बच्चोंको वे स्वयं मुफ्त दवा बाँटती थीं और बच्चोंके लिए वस्त्र सीनेमें अत्यधिक प्रसन्नताका अनुभव करती थीं। उन जैसी पवित्र और गरीबोंकी सेविका स्त्रीके लिए, खादी-भण्डारसे अच्छा श्राद्ध अथवा स्मारक और कुछ नहीं हो सकता था। स्त्रियोंकी सभामें गांधीजीने उनके ही जीवन-चरित्रको यदि भाषणका आधार बनाया तो यह कोई आश्चर्यकी बात नहीं है।

अन्य बातें

इन टिप्पणियोंको लिखते समय बहुत-सी दिलचस्प घटनाएँ याद आ रही हैं जिनमें से केवल कुछको ही लिखकर मुझे सन्तोष करना पड़ेगा और कई दिलचल्प घटनाओंका जिक्र छोड़ ही देना पड़ेगा। मुरादाबादकी यात्रा इसलिए उल्लेखनीय थी कि गांधीजी एक पुराने मुसलमान दोस्त मौलवी अब्दुस्समद साहबके यहाँ ठहरे थे। आजकल यह एक असाधारण बात हो गई है। उन्होंने एक पुराने पुस्तकालयके लिए एक नये भवनका उद्‌घाटन किया, जिसे वहाँके एक नागरिक लाला ब्रजलालने दानमें दिया था। धामपुरमें हमने खादीका काम पूरे जोर-शोरसे चलते देखा। स्वागतमें जो सुव्यवस्था थी उसकी गांधीजीने बड़ी प्रशंसा की। वे भीड़के शोर-शराबे आदिसे थक चुके थे। इसलिए जब वे प्लेटफार्मपर उतरे और उन शान्त स्त्री-पुरुषोंकी कतारोंके बीचसे गुजरे जो स्टेशनपर जमा हुए थे तो उन्होंने बड़ी ताजगी महसूस की। आर्य प्रतिनिधि सेवा समितिके कार्यसे भी गांधीजीको बड़ी प्रसन्नता हुई। हरिद्वारमें तथाकथित सनातनी ब्राह्मणोंने गांधीजीका बहिष्कार करनेका प्रयत्न किया था, लेकिन वह बिलकुल विफल हो गया। यहाँकी थैलीके ज्यादासे-ज्यादा ५०० रु० होनेकी आशा थी, यह पूरी २,५०० रु० की हुई। इसका श्रेय गुरुकुल कांगड़ीके उप-प्रधानाचार्य पण्डित देवशर्मा अभय और उनके साथियोंके एक दलके प्रयत्नोंको है। उनके ही प्रयत्नसे हरिद्वारमें एक खादी-भण्डार भी खुला है, और लगभग स्वावलम्बी

होकर ही चल रहा है। इस महान प्राचीन तीर्थस्थानकी नैतिक और भौतिक गन्दगीके बारेमें अभी मुझे कुछ कहनेकी जरूरत नहीं है, क्योंकि गांधीजी इसपर खुद अगले सप्ताह लिखनेकी सोच रहे हैं।[1] इस सप्ताह मैं देहरादून और मसूरीकी भी चर्चा नहीं करूँगा।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २४-१०-१९२९

५४. स्वयंसेवक या सरकार ?

स्वयंसेवकके बारेमें गतांकमें जो-कुछ लिखा है[2], उसे थोड़ा और दोहरानेकी आवश्यकता है। अपने हर जगहके भ्रमणमें मैंने देखा है कि बहुतेरे स्वयंसेवकोंको इस बातका खयाल नहीं रहता कि आया वे स्वयंसेवक हैं या सरदार। उदाहरणार्थ, अगर जलसोंमें किसीसे कुछ कहना है, तो हुक्मके तौर पर कहते हैं, प्रार्थना नहीं करते। जब मुझे मंचतक ले जाते हैं, तो रास्तेमें खड़े हुए देहातियोंसे विनयपूर्वक और धीरेसे अलग हटनेको न कहकर उलटे उन्हें धकेलते या कठोर भाषा अथवा स्वरमें उन्हें हट जानेका हुक्म देते हैं। स्टेशनपर जहाँ-जहाँ मैं उतरता हूँ भीड़ तो होती ही है। स्वयंसेवक विनयपूर्वक मार्ग करवानेके बदले जोरोंसे चीखते हैं, इससे लोग न तो समझते हैं, न सुनते हैं, उलटे कोलाहल बढ़नेसे कुप्रबन्ध बढ़ता है। मेरे कष्टका तो कहना ही क्या है? यद्यपि इन तमाम हुक्मोंका मंशा तो मुझे कष्टसे बचाना ही है। जब सारा जुलूस प्लेटफार्मसे बाहर निकलता है, तब मुसाफिरोंका खयालतक नहीं रखा जाता; लोग उनके असबाबको कुचलते हुए चलते हैं, उसे पैरोंसे ठेलते जाते हैं, अगर कोई मुसाफिर रास्तेमें बैठा हो तो उसका भी विचार नहीं करते। मान लीजिए कि हम आम सड़कसे होकर कहीं जा रहे हैं, और कोई देहाती बीचमें चल रहा है। स्वयंसेवक उसे दुत्कार कर हटा देना ही अपना कर्त्तव्य समझते हैं। ऐसे और भी अनेक दृष्टान्त मैं दे सकता हूँ। मुझे विश्वास है कि यह सब अविनय जानबूझ कर नहीं किया जाता होगा; बल्कि विवेक और तालीमके अभावके कारण ही यह सब होता होगा। हमारे वायुमण्डलमें ऊँच-नीचके भाव भरे पड़े हैं। शहरी लोग देहातियोंको हलका मानते हैं। जब राजाओंकी सवारी निकलती हैं, तब उनके नौकर-चाकर वगैरा शान-शौकतसे चलते हैं; लोगोंको मनमानी गालियाँ तक दे देते हैं। गोरे साहबोंने इसीका अनुकरण किया है। ऐसी नकलबाजीके फनमें साहब बहादुर बड़े होशियार रहते हैं। इस वायुमण्डलका प्रभाव हमपर इच्छा न रहते हुए भी पड़ा है। लेकिन इस लोक-जागृतिके कालमें स्वयंसेवकोंको सच्चे सेवक बनना होगा। उनकी सच्ची सेवा मूकसेवा होनी चाहिए; गरीबोंकी और असहायोंकी सेवा होनी

१. देखिए "भौतिक और नैतिक गन्दगी", ३१-१०-१९२९।

२. देखिए "स्वयंसेवकोंका कर्त्तव्य", १७-१०-१९२९।

चाहिए। प्रतिष्ठित नेताओंकी सेवाके लिए तो सैकड़ों तैयार हो जाते हैं और उन्हें अधिक तथा अनावश्यक सेवा द्वारा नाहक परेशान करते हैं, लेकिन गरीबोंकी सेवाके लिए बहुत थोड़े मिलते हैं; और जो मिलते हैं, उनमें भी बहुतेरे तो यह मानते हैं कि गरीबोंकी सेवा करके वे उनपर बड़ा उपकार कर रहे हैं। सच तो यह है कि जो गरीबोंकी सेवा करता है, वह अपने ऋणका कुछ हिस्सा अदा करता है। भारतवर्षके गरीब भूखों मरते हैं, लाचार बन गये हैं, इस सबका कारण हम मध्यमवर्गके लोग हैं। स्वयंसेवक भी इसी वर्गके होते हैं। हमींने उन गरीबोंके कन्धोंपर बैठकर अबतक अपना निर्वाह किया है और आज भी कर रहे हैं। जब गरीब वर्गको अपने अधिकारका और अपने बलका ज्ञान होगा, तब वे हमारे सरदार बन जायेंगे और हम लाचारीसे, मजबूरन, उनके सेवक बनेंगे। उस हालतमें हमें कोई स्वयंसेवक नहीं कहेगा, अवश्य ही हम उनके गुलाम या नौकर कहलायेंगे।

इसलिए किसी भी स्वयंसेवकको स्वप्न तकमें यह खयाल नहीं आना चाहिए कि अगर वह नम्रतासे, आदरपूर्वक या जी-जानसे देहातियोंकी सेवा करता है, तो किसीपर कोई उपकार करता है। ऐसी ही सेवामें उसका और सारे भारतवर्षका भला है।

हिन्दी नवजीवन, २४-१०-१९२९

५५. पत्र: हेमन्त के० चटर्जीको

मुकाम मसूरी
२४ अक्टूबर, १९२९

प्रिय मित्र,

आपके २४ सितम्बरके पत्र[1] और सहपत्रके लिए धन्यवाद। उन्हें पढ़नेका वक्त मुझे अब मिल सका है। मुझे यह साफ कहना ही होगा कि मुझे दुग्ध-वितरण व्यवस्थाको सुनिश्चित रूपसे बेहतर बनानेकी आपकी योजना पसन्द नहीं आई, हालाँकि विभिन्न समितियोंके निष्कर्ष इससे उल्टे हैं। मेरा यह मत है कि अगर हम दूधको कानपुरके गरीबसे-गरीब नागरिकको सुलभ और एक-जैसा सस्ता बनाना चाहते हैं, तो दुग्ध-वितरणको नगरपालिकाके अधिकारमें लानेके सिवाय और कोई चारा नहीं है। अगर यह सच है कि नगरपालिका ऐसा उद्योग इसलिए हाथमें नहीं ले सकती कि भ्रष्टाचारकी सम्भावना है, तो मैं समझता हूँ कि दूसरी कोई भी — निजी या सरकारी — संस्था इसे हाथमें नहीं ले सकती। स्थानीय स्वायत्त शासनका मर्म प्रामाणिक उद्यम विकसित करनेमें निहित है और इस चीजको लिए नगरपालिकाएँ स्वयं उदाहरण प्रस्तुत करके सम्भव बना सकती हैं। यदि नगरपालिकाएँ बड़े उद्योगोंको सफलतापूर्वक

१. पत्र-लेखकने जन-स्वास्थ्य समिति द्वारा प्रस्तावित दुग्ध-वितरण योजनाके बारेमें गांधीजीकी राय माँगी थी।

कुशलतासे और अपेक्षाकृत कम खर्चपर नहीं चला सकतीं तो यह सामूहिक जीवनके भविष्यके लिए बुरा लक्षण होगा। नगरपालिकाको वे सुविधाएँ प्राप्त हैं जो किसी सुव्यवस्थित राज्यमें किसी भी निजी संस्थानको कभी नहीं मिल सकतीं। कानपुर-जैसे व्यापारिक केन्द्रमें दूधका सस्ता और शुद्ध वितरण हो, इस बातका पक्का प्रबन्ध करनेके लिए दो या तीन बातें अवश्य ध्यानमें रखनी चाहिए। दूधका उत्पादन कानपुरसे काफी दूरीपर नगरपालिकाके अपने फार्ममें बड़े पैमानेपर होना चाहिए। दूसरी बात यह कि सस्ता यातायात उपलब्ध करानेका कोई साधन जरूर हो। तीसरी बात यह है कि दूधके विक्रयपर नगरपालिकाका उसी प्रकारसे एकाधिकार होना चाहिए, जैसे कि डाक-टिकटोंके छापने और बेचनेका एकमात्र अधिकार केन्द्रीय सरकारका है।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत हेमन्त के० चटर्जी, बी० ए० एल०एल० बी०
कानपुर

अंग्रेजी (एस० एन० १५२५३)की माइक्रोफिल्मसे।

५६. पत्र : छगनलाल जोशीको

[२४ अक्टूबर, १९२९][1]

चि० छगनलाल,

मैं अपने पहले पत्रमें लाहोरके बारेमें लिख चुका हूँ। और यह सोचकर कि मेरा कलका लिखा पत्र तीसरे दिन तो पहुँच ही जायेगा मन तार देनेका विचार छोड़ दिया तथा इस प्रकार बारह आनेकी बचत कर ली।

अमावाकी रानीकी ओरसे बाल-बेयरिंगवाले पेटी-चरखेकी माँग आयेगी। यदि तुमसे माँग की जाये और चरखा तैयार हो तो भिजवा देना। यदि तैयार न हो तो तैयार करवाकर भिजवा देना। अच्छा हो, यदि तुम एक-दो चरखे तैयार करवाकर रखे ही रहा करो। जसदनकी रानीका पत्र भी सम्भवतः तुम्हें मिले।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (जी० एन० ५४८८) की फोटो-नकलसे।

१. देखिए "पत्र : छगनलाल जोशीको", २३-१०-१९२९।

५७. पत्र : मु० अ० अन्सारीको

मुकाम सहारनपुर
२५ अक्टूबर, १९२९

प्रिय डॉ० अन्सारी,

मैंने समाचारपत्रोंमें देखा है कि आप और लाला शंकरलाल मेरे दिल्ली आनेपर मुझे थैली भेंट करनेके लिए लोगोंसे रकम जमा करनेकी अपील कर रहे हैं। यह थैली स्थानीय कांग्रेसके कार्यके लिए निर्धारित की गई है। इस किस्मकी थैलियाँ इकट्ठी करनेकी स्वीकृति कहीं भी नहीं दी गई है। प्रान्तीय सेवाके लिए निर्धारित थैलियाँ कईएक स्थानोंपर स्वीकार की गई हैं परन्तु मुख्य थैली सब जगह खादीके लिए ही रही है। यदि समाचारपत्रोंने आपके बारेमें सही रिपोर्ट दी है तो फिर यह थैली पूरी तरह स्थानीय कांग्रेसके कार्यके लिए निश्चित की गई है। यह किसी भी हालतमें न किया जाये। अगर खादीकी चिन्ता किसीको भी नहीं है तो मैं समझता हूँ कि चन्दा ही नहीं किया जाना चाहिए। मैं यह भी कहूँगा कि लाला शंकरलाल मेरी दिल्ली-यात्राके बारेमें जो-कुछ भी करेंगे उसे मैं अस्वीकार कर दूँगा। उनके बारेमें मेरे अनुभव बहुत सुखद नहीं रहे हैं। जहाँतक मुझे मालूम है, उन्होंने अब भी वह रकम वापस नहीं की है जो अखिल भारतीय चरखा संघको दी जानी चाहिए थी। उन्होंने बारडोली संघर्षके नामपर इकट्ठा की गई पूरी रकम अब भी बारडोली नहीं भेजी है। पैसेके लेन-देनके बारेमें उनके विषयमें और भी कई शिकायतें समय-समयपर मेरे पास आई हैं, परन्तु मैंने उनकी जाँच करना उपयोगी नहीं समझा। मुझे मालूम है कि जमनालालजी और कई अन्य लोगोंको भी उनके बारेमें ऐसे अनुभव हुए हैं। मुझे खेद है, परन्तु चूँकि मैंने उनका नाम आपके नामके साथ जुड़ा देखा, मैंने सोचा कि मैं आपको यह बता दूँ कि उनके बारेमें मेरे क्या विचार हैं। आप चाहें तो अवश्य यह पत्र उन्हें दिखा दें। यदि उनके प्रति कोई अन्याय किया गया है और यदि इसका मुझे विश्वास दिलाया जा सके तो मैं उनसे क्षमा माँग लूँगा। मैंने उन्हें अखिल भारतीय चरखा संघके पैसेके बारेमें एक या दो बार लिखा अवश्य था और फिर पूरी तरह निराश होकर उन्हें आगे कुछ भी लिखना बन्द कर दिया। अब भी मैं चुप रहना ही पसन्द करता। परन्तु यदि मैं लाला शंकरलालके बारेमें अपने विचार आपको न बताता तो मैं सत्य छिपानेका दोषी बनता। आशा है कि जबतक सचमुच ही जरूरी न हो, आप किसी सार्वजनिक सभाका भी आयोजन नहीं करेंगे। चूँकि घोषणा की जा चुकी है और मैंने कुछ लोगोंको मिलने आदिकी स्वीकृति भेज दी है, इसलिए अब मुझे दिल्ली तो आना ही होगा। मैं रघुवीरके[1] पास ठहरूँगा, क्योंकि जब मैं मसूरीमें था उन्होंने मुझे पत्र लिखकर मेरे वायदेकी याद दिलाई।

१. रघुबीरसिंह, नई दिल्लीमें मॉडर्न स्कूलके संस्थापक।

मैंने उनसे, जब मैं पिछली बार दिल्ली गया था, कहा था कि अगली बार आनेपर मैं उनके यहाँ ठहरूँगा। आशा है कि मैं अगले महीनेकी पहली तारीखको मेरठसे कार द्वारा शामको किसी वक्त दिल्ली पहुँच जाऊँगा।

मुझे आशा है कि आपको भोपालसे अच्छी खासी रकम मिली है और जहाँतक जामियाका सम्बन्ध है, आपका दक्षिणका दौरा सफल रहा है। मैंने समाचार पत्रोंमें देखा ही है कि आपका दौरा पूरी तरह सफल रहा है। हयात[1] मुझे मसूरीमें मिले थे। शेष मिलनेपर।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजी (एस० एन० १५७०९)की फोटो-नकलसे।

५८. पत्र : वसुमती पण्डितको

सहारनपुर
२५ अक्टूबर, १९२९

चि० वसुमती,

तुम्हारा पत्र मिला। वर्धाके बारेमें तो मैंने भी सोचा था और इस सम्बन्धमें अपने पहले पत्रमें लिखा भी था। ६ दिसम्बरको तो मैं स्वयं वर्धा पहुँच ही जाऊँगा किन्तु तुम्हें तबतक इन्तजार करनेकी कोई जरूरत नहीं। यदि तुम्हारी तबीयत ठीक न रहती हो तो पहले ही वहाँ पहुँच जाना। प्रभुदास अलमोड़ा जाये या न जाये, किन्तु यदि तुम्हारी इच्छा वहाँकी सर्दियोंका अनुभव करनेकी हो तो मैं स्वतन्त्र रूपसे कोई प्रबन्ध कर सकता हूँ। इन दिनों तो अलमोड़ामें बहुत सख्त ठंड पड़ ही रही है और वह दिनों-दिन बढ़ती ही जायेगी।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (एस० एन० ९२६९)की फोटो-नकलसे।

१. एच० एम० हयात, भोपालके प्रमुख नागरिक।

५९. पत्र : माधवजी वी० ठक्करको

सहारनपुर
२६ अक्टूबर, १९२९

भाईश्री माधवजी,

आजकल पत्र लिखनेका काम इतना पिछड़ गया है; इस कारण मुझे यह याद ही नहीं रहता कि मैंने क्या लिखा था और क्या नहीं। देखता हूँ कि मैं तुम्हारे ८ अक्तूबरके पत्रका उत्तर ही नहीं दे पाया हूँ। मुझे कुछ ऐसा याद पड़ता है कि तुमने उक्त पत्रके साथ ही एक्सप्रेस तार देनेके डाक-टिकट भेजे थे किन्तु मेरी रायमें अब तो तार देनेका कोई मतलब ही नहीं है। अतः यह पत्र ही लिख रहा हूँ। अब यदि तुम दोनों आनेका निश्चय करो तो मैं इलाहाबादमें १५ से २० नवम्बर तक रहूँगा। मैं पण्डित मोतीलालजीके घर आनन्द भवनमें ही ठहरूँगा। तुम अपनी खूराक में इतनी अधिक तरहकी चीजें लेती हो कि थोड़ी-थोड़ी लेनेपर भी वे अधिक हो जाती हैं। तुम मूँगफली तो छोड़ ही देना। यदि कोई व्यक्ति दूध या मठा ले रहा हो तो उसके लिए मूँगफली या किसी अन्य पौष्टिक खूराककी जरूरत ही नहीं रहती। आशा है तुम मठेमें सोड़ा मिलाकर ही पीते होगे। शेष तो मिलनेपर ही। फुरसतसे बातचीत आश्रममें ही हो सकती है और यदि वहाँ आकर मिलो तो मुझे ज्यादा अच्छा लगेगा। मैं २५ नवम्बरको आश्रम पहुँचूँगा तथा वहाँसे १ दिसम्बरको वर्धाके लिए रवाना हो जाऊँगा और २० तारीखतक वहाँ रहूँगा। वर्धा पहुँचनेपर भी आ सको तो अच्छा होगा। वर्धा आना तो तुम्हारे लिए बहुत सहज पड़ेगा। यह तो तुम जानते ही होगे कि वर्धामें सत्याग्रहाश्रम है। वर्धामें तो मैं नहीं ठहरता हूँ। मेरा कार्यक्रम तुम्हें 'यंग इंडिया' और 'नवजीवन'में मिल जायेगा।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (जी० एन० ६७९४)की फोटो-नकलसे।

६०. पत्र : जमनादास गांधीको

मुजफ्फ़रनगर जाते हुए रेलगाड़ीसे
२६ अक्टूबर, १९२९

चि० जमनादास,

तुम्हारा पत्र मिला। तुम्हारी कमसे-कम माँग २५०० रुपयोंकी और अधिकसे-अधिक १६,५०० रुपयोंकी है। मुझे तो लगता है कि जमीन खरीदना खतरेसे खाली नहीं है। ठाकोर साहबसे मिलनेकी बात मैंने इसलिए सुझाई थी कि यदि वे बिना कुछ लिये दोनों पट्टे लिख देंगे तो तुम उस जमीनको स्वीकार कर लोगे। मुझे तो इस बातकी सम्भावना दिखाई देती है कि वक्फ कर देनेके बावजूद वे उस जमीनको वापस ले सकते हैं। इसलिए फिलहाल इस बातको छोड़ ही दो। अन्य खर्चोंके बारेमें बादमें सोच-विचार करेंगे। अतः फिलहाल मैं ३००० रुपयोंका प्रबन्ध करूँगा। तुम्हारी माँगके अनुसार ५०० की पहली किस्त तुम्हें कार्तिकके अन्तमें मिल जायेगी। इस सम्बन्धमें मैं आश्रमको लिख रहा हूँ। आशा है तुम्हारा दाद ठीक हो गया होगा। वह हो कैसे गया था?

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ८७००)से।
सौजन्य : नारणदास गांधी

६१. पत्र : गंगाबहन वैद्यको

मुजफ्फरनगर
२६ अक्टूबर, १९२९

चि० गंगाबहन,

इधर हालमें तुम पत्र लिखनेमें सुस्ती करने लगी हो और मैं तो हमेशाकी ही सुस्त हूँ। बहुत जल्दी करनेपर भी मैं रोजका काम रोज नहीं निबटा पाता और कुछ न कुछ काम बाकी रह ही जाता है। कामके बोझसे दबे रहनेके बावजूद मुझे लोगोंकी बहुत-सी इच्छाएँ पूरी करनी पड़ती हैं, क्योंकि उनके उत्साह और प्रेमको रोकनेकी हिम्मत मैं अपनेमें नहीं जुटा पाता। इस कारण उन्हें निश्चितसे अधिक समय देना पड़ता है। फलस्वरूप पत्रोंका उत्तर देना रह जाता है और जो पत्र तुरन्त लिख डालनेका मैं निश्चय कर चुका होता हूँ, वे भी नहीं लिख पाता।

काकीके सम्बन्धमें तुम्हारा पत्र मिला। इसमें कोई सन्देह नहीं कि काकी भाग्यवती थी। काकीके लिए अधिक जीनेकी इच्छाका कोई कारण ही नहीं था।

आशा है बाल[1] और शंकर[2] अब बिलकुल शान्त हो गये होंगे।

जो नई लड़कियाँ आई हैं, आशा है, उनका काम-काज ठीक तरहसे चल रहा होगा। ईश्वर तुम्हें ये सब सेवाएँ करनेकी शक्ति दे। तुम्हारी श्रद्धा ऐसी है कि यह शक्ति तुम्हें अवश्य मिलेगी। दूध और फलोंके लिए खर्च करनेमें तनिक भी लोभ न करना। लड़कियोंके बारेमें तुमने जो-कुछ कहा है वह ठीक है। लड़कियोंको हम बहुत कुछ देते हैं किन्तु अब भी बहुत कुछ देने और करनेको बाकी है, परन्तु मैं इतना जानता हूँ कि हम आवश्यक वस्तु देनेका प्रयत्न कर रहे हैं और जो बाकी बचेगा उसे देनेकी शक्ति ईश्वर हमें देगा। हम अभीतक इतनी समर्थ बहनोंको तैयार नहीं कर सके हैं जो लड़कियोंको वह सब दे सके जिसकी उन्हें आवश्यकता है; और जिन्हें हम बाहरसे बुलाना चाहते हैं वे आनेवाली नहीं हैं; इसलिए हमें अपने कार्योंपर श्रद्धा रखते हुए धीरजसे काम लेना चाहिए।

अपने स्वास्थ्यके बारेमें खूब सावधान रहना।

बापूके आशीर्वाद

[गुजरातीसे]
बापुना पत्रो–६ : गं० स्व० गंगाबहेनने

६२. आश्चर्यजनक परिणाम

राष्ट्रीय शिक्षाके सम्बन्धमें गुजरात विद्यापीठके स्नातक क्या विचार रखते हैं, उनकी मानसिक और आर्थिक स्थिति कैसी है, आदि बातें जाननेके लिए गुजरात विद्यापीठके स्नातक-संघने जाँच की और अपनी जाँचका परिणाम एक पत्रिकाके रूपमें प्रकाशित किया। इस पत्रिकाको प्रकाशित हुए साल-भरसे ज्यादा हो गया। मेरे साथ-साथ पत्रिका भी दौरेपर दूर-दूर घूमती रही है; किन्तु उसके उपयोगी होनेके कारण काफी समय बीत जानेपर भी आज यहाँ उसके सम्बन्धमें कुछ लिखना अस्थानीय नहीं होगा।

सन् १९२१ से १९२६ तक विद्यापीठसे २५१ स्नातक उत्तीर्ण हुए थे। इनमें चार बहनें भी थीं। इनमें से सिन्ध और मद्रासके स्नातकोंको छोड़कर शेष २०० से ज्यादा स्नातकोंके नाम एक प्रश्नावली भेजी गई थी। उनमें से ८२ स्नातकोंने अपने उत्तर भेजे। उत्तर देनेवालोंमें दो बहनें भी थीं। इन उत्तरोंका सुन्दर सारांश प्रस्तुत पत्रिकामें दिया गया है। राष्ट्रीय शिक्षाका गहन अध्ययन करनेवालोंको यह पत्रिका मँगाकर देख लेनी चाहिए। यहाँ तो मैं उस सारांशकी कुछ ही बातोंका उल्लेख कर सकता हूँ।

१ व २. दत्तात्रेय बालकृष्ण कालेलकरके पुत्र।

सरकारी मदरसोंके छोड़नेका कारण बताते हुए जो उत्तर आये हैं, उनका सारांश निम्न अनुसार है :

राजनीतिक जोशके कारण	३३
असहयोगमें श्रद्धा होनेके कारण	१०
राष्ट्रीय शिक्षा आवश्यक प्रतीत होनेसे	१०
देशकी आज्ञाको शिरोधार्य करके	११
रिश्तेदारोंसे प्रोत्साहन पाकर	६
आन्दोलनके प्रवाहमें पड़कर	१२
कुल	८२

इनमें से एक स्नातकने किन परिस्थितियोंमें असहयोग किया, उसका जिक्र करते हुए लिखते हैं :

गुरुजनों तथा जातिवालों आदिकी सलाहके विरुद्ध और मुझे सहायता देनेवाली संस्थाओंकी इच्छाके विरुद्ध मैंने असहयोग किया था। इसी कारण मुझे गवर्नमेंट कालेजमें मिलनेवाली लगभग ६० रुपये की छात्रवृत्ति भी बन्द हो गई थी।

गुजरात महाविद्यालयके वातावरणके सम्बन्धमें नीचे लिखी सम्मतियाँ उद्धृत करता हूँ :

वहाँका वातावरण स्वतन्त्रताका है। विशेष उल्लेखनीय बात यह है कि महाविद्यालयने मेरे जीवनको बिलकुल बदल दिया है। दूसरे शब्दोंमें यह कह सकता हूँ कि मेरा पुनर्जन्म हुआ है।

वातावरण आरम्भमें राजनैतिक था किन्तु बादमें वह बदलता गया। वैसे कुल मिलाकर वातावरण उच्च विचारोंको पुष्ट करनेवाला था, लेकिन उसे विचारोंको कार्यमें परिणत करानेवाला या उसके लिए तैयार करानेवाला नहीं कह सकते।

गुजरात महाविद्यालयकी उत्कृष्टता उसके धार्मिक और शुद्ध वातावरणमें ही दिखाई देती थी।

तीनों सत्रोंमें जितना वातावरण सुन्दर मिला वैसा शायद हिन्दुस्तान-भरमें और कहीं न मिलता।

वातावरण पढ़ाई तथा विचार दोनोंके लिए अनुकूल था।

मैं यह बताकर गुजरात विद्यापीठके ऋणसे उऋण होना चाहता हूँ कि गुजरात विद्यापीठमें रहकर मुझे जो-कुछ मिला है, वह और कहीं नहीं मिल सकता था। गुजरात विद्यापीठने यह सरल मार्ग बताया है, जिसपर चलकर हर आदमी, खास कर मैं संसारमें उच्चसे-उच्च जीवन बिता सकता हूँ। वहाँके

वातावरणने सांसारिक बातोंका अच्छेसे-अच्छा अनुभव पानेका उत्तम अवसर दिया है। हम समूचे जीवनका विचार करें तो सारी बातोंका महत्त्व कुछ कम नहीं माना जा सकता।

वहाँका वातावरण अतिशय शुद्ध था। सरकारी शालाओंमें पढ़नेवाले विद्यार्थी जैसे संकुचित विचारवाले बन जाते हैं, वैसा यहाँ नहीं होता। सब-कुछ स्वतन्त्र था। इस कारण छात्रकी मानसिक शक्तिका सुन्दर विकास हो सकता था। किन्तु साथ ही विद्यार्थियोंके बिगड़नेकी भी गुंजाइश तो थी ही, क्योंकि छात्रोंको पहले इतनी अधिक स्वतन्त्रता न मिल पानेके कारण वे उसका काफी दुरुपयोग भी कर सकते थे। लेकिन ऐसे वातावरणमें विद्यार्थीके मानसिक अधःपतनकी कोई संभावना नहीं है।

जब पत्रिका छपकर तैयार हुई उस समय स्नातक नीचे लिखे कामोंमें लगे हुए थे।

		कुल
शिक्षा-संस्थाओंमें		
१. विद्यापीठमें	९	
२. मान्यता प्राप्त या मान्यता रहित राष्ट्रीय शालाओंमें	२१	
३. सरकारी मान्यता प्राप्त पाठशालाओंमें	७	३७
दलित वर्गकी संस्थाओंमें		
१. अन्त्यजोंके लिए	२	
२. भीलोंके लिए	२	
३. कालीपरजके लिए	१	
४. मजदूर-वर्गके लिए	३	८
स्वतन्त्र पेशा		
१. खेती, व्यापार वगैरा		११
२. खानगी नौकर; व्यापार, दफ्तर वगैरा		१८
३. वकालत		२
४. समाचारपत्र		३
५. कोई खास काम न करनेवाले		३
		८२

पाठक देखेंगे कि ८२ में से ४५ स्नातक सेवा-कार्य द्वारा अपना जीविकोपार्जन करते थे।

आयके आँकड़ोंको देखनेसे पता चलता है कि ३० रु० से कम कोई नहीं कमाता था।

१२ स्नातक ६० रुपये पाते थे। ७५ रुपये पानेवालोंकी संख्या सबसे अधिक अर्थात् १५ थी। एक स्नातक २०० रुपये कमाता था। एक १३० और तीन १२५ रुपये। ५० से २०० रुपये तक कमानेवालोंकी संख्या ५७ थी। १८ स्नातक अपनी आयके आँकड़े नहीं भेज सके, क्योंकि वे स्वतन्त्र व्यापार आदि करनेवालोंमें से थे। इस परिणामको बहुत ही अच्छा कहना कोई अतिशयोक्ति नहीं मानी जायेगी। सरकारी विश्वविद्यालयोंके स्नातकोंको ३० रुपयेसे भी कम पाते देखा गया है। यहाँ तो एक ही स्नातक ३० रुपये पाता है और सम्भव है कि उसने भी स्वेच्छासे तीस लेकर सन्तोष माना हो। क्योंकि आज भारतवर्षमें ऐसे बहुतेरे पढ़े-लिखे लोग पाये जाते हैं, जो अपने गुजारेके लायक पारिश्रमिक-भर लेकर सेवा करते हैं। हम यह तो देख ही चुके हैं कि उपर्युक्त ८५ स्नातकोंमें से ४५ तो सेवा-कार्यमें ही लगे हुए हैं। और राष्ट्रीय विद्यापीठका तो आदर्श ही यह रहा है कि स्नातक यथासम्भव कम वेतन लेकर सेवाकार्य करें। उधर सरकारी विश्वविद्यालयोंका आदर्श अगर उसे आदर्शका नाम दिया जा सके तो 'कैरियर' या लाभप्रद धन्धा पाना अथवा दूसरे शब्दोंमें खासकर सरकारी नौकरी प्राप्त करना ही है। राष्ट्रीय विद्यापीठका काम त्यागी राष्ट्र-सेवक तैयार करना है, सरकारी विश्वविद्यालयोंका काम सरकारी नौकर, जिन्हें हम गुलाम मानते हैं, तैयार करना है। राष्ट्रीय विद्यापीठमें सेवाका बदला सेवा ही है जब कि सरकारी विश्वविद्यालयोंमें सेवाके बदले बढ़ती हुई तनख्वाह, और कालान्तरमें उसके पीछे लटकते हुए पेंशनके पुछल्लेका प्रलोभन रहता है। राष्ट्रीय सेवककी पेन्शन जनता की सत्यवृत्ति और शुद्ध सेवाके प्रति मनुष्यमात्रमें विद्यमान कृतज्ञताकी भावनापर निर्भर करती है। इसी कारण मैं उपर्युक्त परिणामको अच्छा मानता हूँ। मासिक आयके आँकड़ोंसे इतना तो सिद्ध हो ही जाता है कि राष्ट्रीय स्नातकोंको उनकी आवश्यकताओंके अनुरूप आय उनके सेवा-क्षेत्रसे ही हो जाती है। समयानुसार जैसे-जैसे त्यागकी भावना व्यापक होती जायेगी वैसे-वैसे मैं तो उपर्युक्त आयमें भी, जबरन नहीं बल्कि स्वेच्छासे कमी होते देखनेकी आशा लगाये बैठा हूँ। जब तक भारतके करोड़ों लोगोंको भूखों मरना पड़ता है, तब एक रुपयेसे जिसका काम निकल सकता है यदि वह दो रुपये लेता है तो वह चोरी ही करता है।

आप अपने जीवनमें कौन-सा काम करना पसन्द करते हैं, इस प्रश्नके कुछ उत्तरोंमें से कुछ एक नीचे उद्धृत करता हूँ:

> **देश और समाजको पराधीनतासे मुक्त करनेमें प्रत्यक्ष सहायता पहुँचानेवाले आन्दोलनका सैनिक बनना।**
>
> **ऐसी प्रवृत्ति जिससे मैं देशके कार्यमें थोड़ा भी हाथ बँटा सकूँ।**
>
> **शिक्षा और खादी।**
>
> **अछूतोद्धार या गाँवोंकी प्राथमिक अथवा माध्यमिक पाठशालाका काम।**
>
> **यदि मुझे किसी भी रूपमें जनताकी सेवा करनेका अवसर मिला तो मुझे अपना कार्य कर सकनेका पूर्ण सन्तोष हो जायेगा।**

स्नातकोंने राष्ट्रीय शिक्षाके लाभ और असहयोगकी उत्तमताको स्वीकार किया है, तथापि उन्होंने अपना यह विश्वास प्रकट करनेमें जरा भी संकोच या झूठ-मूठकी शर्मको पास नहीं फटकने दिया है कि राष्ट्रीय-शिक्षा अभी अपूर्ण है और इस अपूर्णता से वे असन्तुष्ट हैं। इस विचार-स्वातन्त्र्यके कारण प्रस्तुत पत्रिका और भी उपयोगी हो गई है।

नीचेके आँकड़े बताते हैं कि १९२६ तक कताई यज्ञको बहुत थोड़े स्नातक उचित महत्त्व देते थे :

प्रतिदिन एक घंटा या उससे अधिक कातनेवाले	५
आधा घंटा कातनेवाले	१०
हर महीने एक हजार गज कातनेवाले	९
अनियमित कातनेवाले	९
बिलकुल न कातनेवाले	४९
	८२

जिसे मेरे-जैसे लोग महायज्ञ मानते हैं, और जिसके महत्त्वको कांग्रेसने अपने प्रस्ताव द्वारा स्वीकार किया है, उसके सम्बन्धमें यह उदासीनता निश्चय ही निराशाजनक है। लेकिन मुझे पता है कि सन् १९२६ के बादसे इस दिशामें अच्छी प्रगति हुई है और मैं इसीमें सन्तोष मान लेता हूँ।

शुद्ध खादी पहननेवालोंकी संख्या ५६ थी। यह बात 'अन्धोंमें काना राजा'की दृष्टिसे ठीक मानी जा सकती है। अन्य कुछ लोग ऐसे भी हैं जो थोड़ी-बहुत खादी पहनते हैं। खादी बिलकुल न पहननेवाले अपनी कठिनाइयोंका जिक्र इन शब्दोंमें करते हैं :

> **हमें ऐसे लोगोंमें काम करना पड़ता है जो खादीकी सादगीके कारण हमारी ठीक-ठीक कद्र नहीं करते। इससे काम कम मिलता है और नुकसान होता है।**
>
> **खादीका महँगा होना, सर्वत्र न मिल सकनेकी कठिनाई और मिलके उम्दा कपड़े पहननेकी तीव्र इच्छा इसमें रुकावट डालती है।**
>
> **मिलके कपड़ेसे तैयार पोशाक दुकानोंपर बहुत ही सस्ती मिल जाती है। खादीके बारेमें ऐसा नहीं है।**

कठिनाइयोंके इस दिखावेसे ज्ञात होता है कि बहुतसे लोगोंको अभी इसका पूरी तरह ज्ञान नहीं हुआ है कि भूखकी पीड़ासे व्याकुल लोगोंके लिए खादी कितना बड़ा सहारा है, और स्वराज्य दिलाने में उसका कितना अधिक हाथ है लेकिन यह याद रहे कि कष्ट सहे बिना कोई भी इस दुनियामें स्वराज्य नहीं पा सका है।

खादी और अन्य सब बातोंमें पत्रिकाके प्रकाशनके बाद क्या-क्या परिवर्तन हुए हैं, अगर इस बातका पता चले तो बड़ा उपयोगी हो। इस पत्रिकाके लिए मैं

सम्पादकोंको धन्यवाद देता हूँ। प्रत्येक राष्ट्र-सेवक इस पत्रिकासे बहुत-कुछ जान सकता है। मैं स्नातक-संघको सलाह दूँगा कि वह अपना यह प्रयास जारी रखे। स्नातकसंघका मुख्य कर्त्तव्य यह होना चाहिए कि वह विद्यापीठसे निकले हुए तमाम स्नातकोंके साथ अपना आध्यात्मिक सम्बन्ध बनाये रखे, उनके सुख-दुःखमें हाथ बँटाये और जिन आदर्शोंकी प्राप्तिके लिए विद्यापीठ कायम किया गया है उन आदर्शोंको कदापि शिथिल न होने दें।

मैं मानता हूँ कि जो कोई भी इस पत्रिकाको पढ़ेगा, अवश्य ही उसके दिलपर यह असर होगा कि राष्ट्रीय विद्यापीठोंके कारण देशको बहुत लाभ हुआ है, और आज विद्यार्थी-जगतमें जिस शक्तिके दर्शन हो रहे हैं, उसका मूल इन्हीं विद्यापीठोंमें छिपा हुआ है।

गुजरात विद्यापीठका जो अनुभव मैंने यहाँ उद्धृत किया, लगभग वैसा ही अनुभव मुझे काशी विद्यापीठके सम्बन्धमें हुआ है। जाँच करनेसे मालूम होगा कि जामिया मिलिया तथा बिहार विद्यापीठका भी यही अनुभव रहा होगा। स्नातक-संघको मैं यह भी सलाह देता हूँ कि वह तमाम राष्ट्रीय विद्यापीठोंके साथ अपना सम्बन्ध स्थापित करे, उनके कार्योंका परिचय प्राप्त करे और उसका एकीकरण करे। शायद यह भी वांछनीय है कि कभी-कभी या प्रतिवर्ष राष्ट्रीय विद्यापीठोंके शिक्षकों और स्नातकोंके सम्मेलन भी हुआ करें। आचार्य गिडवानीने इस दिशामें प्रयत्न भी किया था। यदि ऐसा कोई सम्मेलन हो तो वह कांग्रेस अधिवेशनके सप्ताहमें नहीं होना चाहिए। सभी सम्मेलन एक-साथ ही कर डालनेकी जो आदत हममें पड़ गई है उसे मैं हानिकारक समझता हूँ। इसके कारण जन-बलका संग्रह होनेके बदले वह अनेक दिशाओंमें बँट जाता है, और इस कारण जनता उनसे लाभ नहीं उठा सकती। जो सम्मेलन होने योग्य हों, वे अलग-अलग होने चाहिए। सभी प्रकारके सम्मेलनोंमें सारे लोग कदापि दिलचस्पी नहीं ले सकते। ऐसी संस्था तो अकेली एक कांग्रेस ही हो सकती है और है, जिसमें सभीको दिलचस्पी लेनी चाहिए। इस कारण कांग्रेस अधिवेशनके सप्ताहमें तो लोगोंका ध्यान कांग्रेसकी शक्तिको बढ़ानेकी तरफ ही केन्द्रित होना चाहिए।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २७-१०-१९२९

६३. पत्र : फूलचन्द के० शाहको

मुजफ्फरनगर
२७ अक्टूबर, १९२९

भाईश्री फूलचन्द,

मैं तुम्हारे पत्रका उत्तर नहीं दे सका। आशा है भाई हेमशंकरके दाँतकी तकलीफ अब बिलकुल चली गई होगी।

व्यक्तिगत आलोचना न करनेका मैंने जो सुझाव[1] दिया था वह केवल व्यावहारिक ही नहीं, बल्कि सिद्धान्तकी बात भी थी और है। जैसे तुम्हारे पीछे या बाहरके लोगोंके सामने यदि मैं तुम्हारी आलोचना करूँ तो यह अशिष्टता होगी। किन्तु तुम्हारी उपस्थितिमें आलोचना करना मेरा कर्त्तव्य है; उसी प्रकार किसी रियासतकी दूसरी रियासतमें जाकर आलोचना करना भी अनुचित है और इसी स्थिति में जब कि दूसरी रियासतके उससे मित्रतापूर्ण सम्बन्ध हों, यह विशेष रूपसे अनुचित माना जायेगा।

मैं यह जानता हूँ कि हम इस सिद्धान्तका कड़ाईसे पालन नहीं करते; किन्तु इसी कारण उक्त सिद्धात गलत साबित नहीं होता।

मेरे ऐसे विचारोंके कारण उपर्युक्त सिद्धान्तको माननेवालेका कर्त्तव्य है कि वह ऐसी संस्था या युवक आन्दोलनसे अलग हो जायें जिसने आलोचना करनेको अपना सिद्धान्त और उद्देश्य मान लिया है। जिस संस्थाके दोषोंके कारण हम अपने सिद्धान्तोंसे च्युत होते हों उस संस्थाको छोड़ देना हमारा कर्त्तव्य है। ऐसी संस्थामें जिसके दोषोंको दूर करनेकी हम आशा रखते हों, अपनेको उन दोषोंसे अलिप्त रखते हुए उसमें बने रहनेमें हमें कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए बल्कि कभी-कभी तो उसमें रहना हमारा कर्त्तव्य भी हो जाता है। मुझे लगता है कि २९ सितम्बरको भड़ोंचसे लिखे तुम्हारे पत्रका पूरा उत्तर इसमें आ गया है।

अब मैं तुम्हारे दूसरे पत्रको लेता हूँ। बढ़वानकी समस्या कुछ जटिल-सी है। इसमें मुख्य प्रश्न यह है कि तुममें कितनी शक्ति है। तुममें अर्थात् तुम्हारे पूरे मण्डलमें गलती करनेवालेके प्रति किस हदतक प्रेमसे काम लिया जाता है; इस बातकी तो तुम्हें खुद ही जाँच करनी होगी। वहाँ तुम्हें सत्याग्रह करनेका पूरा अधिकार है। ऐसा करनेकी सामर्थ्य तुममें है या नहीं, उसका अवसर आ गया है या नहीं, तदनुसार करनेकी योग्यता तुममें आ चुकी है या नहीं आदि बातोंपर विचार कर लेना चाहिए। इस प्रकार इस प्रश्नको हल करनेके लिए असलियतकी तह तक पहुँचने और फिर व्यावहारिक बुद्धिका ही उपयोग करनेकी आवश्यकता रह जाती है। असलियतके बारेमें तो तुम्हींको पता चल सकता है। व्यावहारिक बुद्धिका उपयोग करते हुए कोई भूल हो भी जाये, तो वह क्षम्य है।

१. देखिए खण्ड ३५, पृष्ठ ५०२-४।

अब जैसा तुम्हें ठीक लगे वैसा करना। यदि मुझसे सलाह-मशविरा करना चाहो तो २५ नवम्बरके बाद आश्रममें मुझसे मिल सकते हो। किन्तु शायद मेरा यह पत्र मिलनेके पहले ही तुम अपने ढंगसे कदम उठा चुके होगे। तुम मेरी यात्राका कार्यक्रम तो जानते हो। यदि तुम कुछ लिखना या जानना चाहो तो लिखकर पूछ लेना।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० २८३६) की नकलसे।
सौजन्य : फूलचन्द के० शाह

६४. पत्र : रावजीभाई मणिभाई पटेलको

मुजफ्फरनगर
२७ अक्टूबर, १९२९

भाईश्री रावजीभाई[1],

तुम्हारा पत्र मिला। भोजनालयकी आवश्यकता और उसकी सफलताके बारेमें मेरे मनमें तो किसी प्रकारका सन्देह है ही नहीं। उसकी व्यवस्थाका प्रश्न अनुभवसे हल हो जायेगा। हमारा कर्त्तव्य तो यह है कि भोजनालयका भार और जिम्मेदारी बहनोंके कन्धोंपर होते हुए भी हम इस प्रकारका व्यवहार करें ताकि वह उन्हें भार और जिम्मेदारी न लगे। और इतने पर भी बहनें यह मानें कि जिम्मेदारी उन्हींकी है। विक्टोरिया और उनके मन्त्रियोंका दृष्टान्त प्रसिद्ध ही है। रानीकी जिम्मेदारी होते हुए भी उनके मन्त्रियोंने उनपर तनिक भी बोझ नहीं पड़ने दिया। किन्तु यह तो दूर बैठे हुए मेरा अक्लमन्दी जताना हुआ। मुख्य बात तो यह है कि जिस तरह भी भोजनालय चल सके हमें उसे सफल बनाना चाहिए।

डाहीबहनकी बीमारीका इलाज सूर्यस्नान, कटिस्नान, खुली हवा, हलकी कसरत और श्वेतसारवाली चीजोंको खाना छोड़ देना है। हम सभी आवश्यकतासे अधिक श्वेत सार खाते हैं। इसलिए हम भले ही हृष्ट-पुष्ट दिखाई देते हों किन्तु वास्तवमें फाफस होते हैं। यह बात मैं बेलाबहनको एक बार सिद्ध करके दिखा भी चुका हूँ।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (जी० एन० ८९८५) की फोटो-नकलसे।

1. साबरमती आश्रममें खादीका काम करनेवाले एक कार्यकर्ता।

६५. मेरठ षड्यन्त्रके कैदियोंसे बातचीत[1]

मेरठ
२७ अक्टूबर, १९२९

महात्माजीको जेलमें अपने पास आते हुए देखकर अभियुक्त कुछ हैरान हुए और कुछ एकने तो वास्तवमें चिल्लाकर कहा भी कि यह बड़े आश्चर्यकी बात है कि आप हमारे पास आये हैं। महात्माजीने उत्तर दिया :

मुझे आशा है कि इस आश्चर्यजनक घटनासे आपको कष्ट नहीं होगा।

साथियोंका निजी तौरपर परिचय दिये जानेके बाद महात्माजीने कहा कि यदि नेहरू रिपोर्टके[2] अनुसार औपनिवेशिक स्वराज्यका दर्जा जल्दी दे दिया जाये तो उससे मुझे सन्तोष होगा। जैसा कि नेहरू द्वारा निर्दिष्ट व्यवस्थामें अभिप्रेत है, यदि इसमें सम्बन्ध विच्छेद करनेकी बात निहित हो तो मैं इसे स्वतन्त्रता ही समझूँगा।

जब उनसे यह पूछा गया कि अगर नये सुधार नेहरू संविधानकी शर्तोंसे कम किन्तु १९१७ के सुधारोंसे कुछ बढ़कर हुए तो क्या वे उन्हें धन्यवाद सहित स्वीकृत करनेवाला वही रुख अपनायेंगे जो उन्होंने अमृतसरमें मॉण्टेग्यु घोषणाओंपर अपनाया था तब महात्मा गांधीने कहा कि मैं उन्हें स्वीकार नहीं करूँगा।

इसके बाद बम्बईके कामरेडोंने लम्बी बातचीत की कि गांधीजीने १९२८ की आम हड़तालमें मदद क्यों नहीं की। यह पूछे जानेपर कि जब कई कार्यकर्त्ता हड़तालके लिए चन्दा इकट्ठा करने अहमदाबाद गये तो आपने उनकी मदद क्यों नहीं की गांधीजीने कहा कि मेरे विचारमें हड़तालियोंकी कार्रवाई गलत थी।

१९२८ की हड़तालमें कार्यकर्त्ताओंकी शिकायतोंके बारेमें उन्होंने कहा कि हड़तालके नेताओंमें से किसीने भी मुझसे मिलने और सारी बातें ब्यौरेवार समझानेकी परवाह नहीं की।

[इस सुझावपर]कि उन्हें कमसे-कम उन बच्चों और महिलाओंकी तो सहायता करनी चाहिए थी जो भूखों मर रहे थे, गांधीजीने कहा कि मैं तो इसके बजाय उन महिलाओंसे यही कहता कि वे अपने आदमियोंसे कहें कि वे कामपर जायें और उनका पेट भरें।

१. गांधीजी अपने आप ही और जैसी कि किसीको बिलकुल आशा भी नहीं थी मेरठ जेलमें गये और उन्होंने कम्युनिस्ट अभियुक्तोंसे उनकी बैरकोंमें मुलाकात की। देखिए "संयुक्त प्रान्तका दौरा", ७-११-१९२९।

२. देखिए खण्ड ३७ तथा ३८।

इस मन्तव्यपर कि जबतक कांग्रेस कार्यकर्त्ताओं और किसानोंको संगठित करनेका कार्यक्रम स्वीकार न करे, सरकार पर कोई असर नहीं होगा, महात्माजीने कहा कि मैं ऐसे हर व्यक्तिका स्वागत करता हूँ जो कांग्रेसको किसी भी कार्यक्रमके बारेमें आश्वस्त कर दे और उसे पूर्ण करे।

गांधीजीका ध्यान एक बड़ी गम्भीर शिकायतकी तरफ दिलाया गया. . . यह शिकायत संयुक्त प्रान्तके जिलोंके कुछ स्थानोंपर उनकी थैलीके लिए पैसा इकट्ठा करनेके तरीके के बारेमें थी . . . [यह आरोप लगाया गया था] कि वकीलों और बुद्धिजीवियोंकी सहायतासे बड़े-बड़े जमींदार अपनी जमींदारीमें रहनेवाले किसानों पर गांधीजीकी थैलीमें चन्दा डालनेके लिए हरएक किसानपर निश्चित कर जबरदस्ती लगा रहे थे। महात्माजीने पूछा कि क्या श्री डांगे किसी विशेष नाम या स्थानका उल्लेख कर सकते हैं? श्री डांगेने कहा कि इस वक्त मैं किसी व्यक्ति या स्थानका नाम नहीं बताऊँगा क्योंकि मैं किसीका नाम इसमें फँसाना नहीं चाहता। . . . महात्माजीने कहा —— मैं आज ही की सभामें इस बातका जिक्र करूँगा और इस सम्बन्धमें पूछताछ करूँगा। और यदि किन्हीं नामोंका मुझे पता चल गया तो मैं जमींदारोंका भय दिखाकर किसानोंसे जबरदस्ती लिए हुए धनको हाथ नहीं लगाऊँगा।

समाचारपत्रोंमें छपा है कि महात्माजीने प्रभावपूर्ण राजनीतिक शस्त्रके रूपमें अहिंसापर अपना विश्वास फिर दोहराया है और यह घोषणा की है कि यदि यह अन्यथा साबित हो तो मैं राजनीतिसे संन्यास ले लूँगा। महात्मा गांधीने यह विचार व्यक्त किया कि हड़ताल और असहयोग एक ही चीज है और अपनी वास्तविक शिकायतोंको दूर करनेके लिए वह कार्यकर्त्ताओंके हाथमें एक अच्छा हथियार है।

एक और प्रश्नका उन्होंने उत्तर दिया:

यदि भारत और इंग्लैण्डमें ब्रिटिश सरकारके जिम्मेदार लोगोंने अगले ३१ दिसम्बरकी आधी रात तक औपनिवेशिक स्वराज्य नहीं दिया या ऐसा वायदा नहीं किया तो मैं निश्चय ही स्वतन्त्रतावादी बन जाऊँगा। ऐसी परिस्थितियोंमें प्रशासनके ढंगमें सुधार होगा या नहीं, यह उस वक्तकी सरकारके कर्मचारी-वर्गपर निर्भर करता है।

उन्हें आशा थी कि इस अरसे तक औपनिवेशिक स्वराज्य मिल जायेगा। उन्होंने बताया कि मैंने बारडोलीमें सविनय अवज्ञा आन्दोलन[1] इसलिए नहीं स्थगित कर दिया कि बारडोली इसके लिए तैयार नहीं था बल्कि इसलिए कि यह चौरी-चौरामें हिंसाके विस्फोटका सीधा परिणाम था। यह पूछे जानेपर कि यदि औपनिवेशिक स्वराज्य जल्दी नहीं मिला और सविनय अवज्ञा आन्दोलनके दौरान फिर चौरी-चौरा जैसी कोई दूसरी वारदात हो गई तो क्या वह फिर कार्यक्रमको स्थगित करनेकी सलाह देंगे, उन्होंने उत्तर दिया:

१. फरवरी १९२२ में।

यह मेरी कमजोरी है और आपको मेरी यह कमजोरी बर्दाश्त करनी पड़ेगी।

यह पूछे जानेपर कि मेरठके मामलेमें आप क्या करेंगे उन्होंने कहा :

अगर मेरे हाथमें हो तो मैं आरोप वापस ले लूँगा। क्योंकि मेरी व्यवस्था पद्धतिमें किसी तरहके विचार रखनेकी पूरी छूट होगी।

गांधीजीने पिछले दिनों 'यंग इंडिया'में[1] जो यह विचार प्रकट किया था कि इस किस्मके मामलेके लिए बचावकी कोई जरूरत नहीं है, इसके बारेमें प्रश्न किये जानेपर महात्मा गांधीने सफाई दी कि भारतमें काफी बड़ी संख्यामें इस किस्मके मामलेमें बिना पैसा लिए पैरवी कर देनेवाले वकील हैं। व्यक्तिगत रूपमें बचाव किये जानेका मैंने कभी विरोध नहीं किया। परन्तु राजनीतिक मुकदमोंके लिए वकीलकी फीस देनेके लिए जनताके चन्देका उपयोग नहीं किया जाना चाहिए।

भेंटको समाप्त करते हुए उन्होंने फिरसे यह मन्तव्य व्यक्त किया कि प्रान्तके सारे दौरेमें एक घण्टेका समय जो उन्होंने वहाँ बिताया वह सबसे ज्यादा सुखकारी रहा।

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे क्रानिकल, १-११-१९२९

लीडर, ३१-१०-१९२९

अमृतबाजार पत्रिका, २९-१०-१९२९

६६. भाषण : मेरठकी सार्वजनिक सभामें[1]

२७ अक्टूबर, १९२९

श्री गांधीने स्थानीय संस्थाओं और कांग्रेस कमेटीकी तरफसे भेंट किये गये अभिनन्दनपत्रोंका संयुक्त रूपसे हिन्दुस्तानीमें जवाब दिया। उन्होंने मेरठके नागरिकोंको उनके दिये चन्देके लिए धन्यवाद दिया। उन्होंने कहा कि मेरठकी राष्ट्रीय सेवाका स्तर यद्यपि १९२१ के स्तरसे कम है, फिर भी काफी अच्छा है। १४,००० रु० कोई छोटी रकम नहीं है लेकिन उससे मेरी माँग पूरी नहीं हो सकी है। चूँकि मैंने अपने हाथमें दरिद्रताके अवतार दरिद्रनारायणका कार्य ले लिया है, मेरी जरूरतें आसानीसे पूरी नहीं हो सकेंगी।

मेरठके कथित 'षड्यन्त्र'के मामलेकी ओर इशारा करते हुए उन्होंने कहा कि मेरठकी जिम्मेदारी इस दृष्टिसे हजार गुना बढ़ गई है कि मुकदमा यहाँ चलाया जा रहा है। यह एक छोटा-सा शहर है, जिसको ऐसे कामोंके लिए चुनना ठीक नहीं है। शहरमें सही ढंगके वकीलों, किताबों और अन्य सुविधाओंकी कमी है। श्री गांधीने श्रोताओंको प्रेरणा दी कि वे अभियुक्तोंको बरी करवानेकी कोशिश करें। श्री गांधीने

१. देखिए खण्ड ४०, पृष्ठ २१३।

कहा : "मैं साम्यवादी या किसी भी वाद-विशेषको माननेवाला व्यक्ति नहीं हूँ।" लेकिन अभियुक्त आप सबके भाई हैं और यदि उन्होंने गलती की है, तो उन्हें समझा-बुझाकर सही रास्तेपर लाना उनके देशभाइयोंका काम है; यह नहीं कि सरकार उनसे कैफियत माँगे।

श्री गांधीने खद्दरका अधिकाधिक प्रयोग करनेकी, अस्पृश्यता-निवारणकी और हिन्दू-मुस्लिम एकताकी पैरवी की। उन्होंने कहा कि तीस करोड़ भारतीय सारे संसारको हिला सकते हैं और यदि हमारे देशभाई खद्दर अपना लें तो मेरठ 'षड्यन्त्र'के कैदियोंको जेलसे बाहर करवानेकी जिम्मेदारी मैं खुद अपने ऊपर लेता हूँ। उन्होंने जनताको शराब तथा अन्य मादक द्रव्योंको त्याग देनेकी प्रेरणा दी और स्थानीय-स्वायत्त शासनके अधीन मन्त्रियोंकी आबकारी नीतिकी आलोचना की और कहा कि प्रतिवर्ष पच्चीस करोड़ रुपया मादक द्रव्योंपर नष्ट किया जाता है। उन्होंने आबकारीसे होनेवाली सरकारी आयमें से शिक्षा विभागको आर्थिक मदद देनेकी नीतिकी भर्त्सना की।

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे क्रॉनिकल, २९-१०-१९२९

६७. पत्र : रेजिनॉल्ड रेनॉल्ड्सको

२८ अक्टूबर, १९२९

साबरमतीसे आपका प्रथम पत्र पाकर मुझे खुशी हुई। जब मैं एक गाँवसे मोटर द्वारा जा रहा था, आपके बारेमें सोच रहा था और जैसे ही ११.३० बजे मेरठ पहुँचा, मैंने देखा कि आपका पत्र पहले ही से वहीं मेरा इन्तजार कर रहा था।

मुझे खेद है कि हम लोग २५ नवम्बरके पहले नहीं मिल सकेंगे। इस बातकी मुझे एक तरहसे खुशी भी है। आश्रमके सम्बन्धमें आपका पहला तजुर्बा उसके गुण-दोषोंके अनुसार होगा। आश्रममें मेरे रहनेपर निरपेक्ष भावसे उसका तजुर्बा नहीं हो पाता।

खैर! कृपया अपना स्वास्थ्य सँभाल कर चलें। ऐसा करनेका सबसे अच्छा तरीका यह है कि आप वहाँ पूरी तरहसे घर जैसा महसूस करें और अपने आरामकी दृष्टिसे जरूरत-भरकी सभी चीजें वहाँसे ले लें। तेज धूपमें बेफिक्रीसे टोपका इस्तेमाल करें। बिलकुल ही नंगे पैर इधर-उधर घूमनेकी कोशिश न करें। अगर आपको वहाँ मच्छर जान पड़ें तो मच्छरदानीका इस्तेमाल करें। शुरू-शुरूमें तो कमसे-कम अधिक घीका प्रयोग न करें। दाल लेनेसे बचें। जब भी मिल सके कच्ची हरी सब्जी लेकर देखें। अपने पेटकी सफाई ठीक ढंगसे रखें और उसके लिए अगर जरूरत हो तो अरंडीका तेल, इप्सम साल्ट या एनीमा लें। पेटकी सफाई ठीकसे जरूर हो जाये,

इसके लिए बहुधा एक बारका भोजन छोड़ देना या २४ घंटे बिलकुल उपवास कर लेना और बीच-बीचमें थोड़ी-थोड़ी देरके बाद काफी मात्रामें गर्म पानी लेना बेहतर रहता है।

मैं चाहूँगा कि समयके साथ-साथ आप रोज कुछ हिन्दुस्तानी शब्द सीखते चलें। और जिसे आप सीख लें ऐसे हर शब्दको आप नोट करते चलें। आप और जल्दी नहीं तो ४ दिनोंमें देवनागरी वर्णमाला अच्छी तरह सीख ले सकते हैं। कृपया प्रार्थनाके समय पढ़े जानेवाले श्लोकों तथा गाये जानेवाले भजनोंका अर्थ समझनेमें कसर न रहने दें। प्रार्थनाके इन दोनों वक्तोंको मैं भोजन करनेके वक्तोंसे अधिक जरूरी और महत्त्वका मानता हूँ।

ऐसा नियम जरूर बना लीजिए कि आप प्रति सप्ताह मुझे एक पत्र लिखेंगे; और उसमें अपने विचार आप बेखटके व्यक्त करेंगे।

ईश्वर करे आप आश्रममें सचमुच प्रसन्न और स्वस्थ महसूस करें।

आपका,

मो० क० गांधी

अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ४५२६)की फोटो-नकलसे।
सौजन्य: स्वार्थमोर कालेज, फिलाडेल्फिया

६८. पत्र: रामनरेश त्रिपाठीको

मेरठ
२८ अक्टूबर, १९२९

भाई रामनरेशजी,

आपके ग्रामीण गीतोंके संग्रहका[1] जो कुछ परिचय मैं कर सका हूँ उससे आपके परिश्रमका और राष्ट्रभाषा प्रेमका कुछ नाप मुझको मीला है। संग्रह उत्तम लगा। मैं तो चाहता हूँ प्रत्येक हिन्दी भाषा प्रेमी आपके संग्रहका अध्ययन करे। पुस्तक विद्यालयोंमें स्थान लेने लायक मानता हूँ। आपने गीतोंका अनुवाद दीया है उससे पुस्तककी उपयोगिता अधिक हुई है। आपके प्रयत्नके लीये धन्यवाद।

आपका,

मोहनदास गांधी

सी० डब्ल्यू० ९२४०से।
सौजन्य: म्यूनिसिपल म्यूजियम, इलाहाबाद

१. चार भागोंमें छपी पुस्तक **ग्राम्य-गीत**।

६९. पत्र : कृष्णन्‌को

२८ अक्टूबर, १९२९

प्रिय कृष्णन्‌,

इस बीच बराबर मैं तुमसे पत्र द्वारा तुम्हारे समाचार पानेकी आशा करता रहा हूँ। इसलिए जब मुझे तुम्हारा पत्र मिला तो खुशी हुई। मैं प्रदर्शनी-विवादके गुण-दोष नहीं जानता, लेकिन कोई भी व्यक्ति ऐसा नहीं है जिससे कभी भूल ही न होती हो। यदि हमारे साथी जान-बूझकर गलती नहीं करते हैं, तो यही काफी है। हमें अनजानेमें की गई एक हजार गलतियाँ भी माफ कर देनेको तैयार रहना चाहिए। अधिक मिलनेपर।

हालाँकि संयुक्त रसोड़ेके लिए मेरा पक्षपात प्रसिद्ध है, फिर भी मेरी किसीकी भी रायपर असर डालनेकी कोई इच्छा नहीं है। और मैं जानता हूँ कि यदि काम करनेके इच्छुक लोग हैं, तो रसोड़ा भंग नहीं हो पायेगा। जरूरत सहयोग करनेकी इच्छाकी है। जहाँ हार्दिक सहयोग है, वहाँ रसोड़ेका प्रबन्ध करना बहुत ही सरल काम है। यदि काम बराबर बँटा हो और हर व्यक्ति अपने हिस्सेका काम ठीकसे करता हो या करती हो तो वास्तवमें बहुत कम काम करना होता है। जब कई लोग एक ही काममें लगे हों तो पूरे समय बिना रुके या मिनट खोये काम करना सबसे महत्त्वपूर्ण बात है। एक भी आदमी पिछड़ जाये तो ऐसा ही होगा जैसे कि वाद्यवृन्दमें किसी एक भी स्वरका आगे पीछे होना पूरे रागको बिगाड़ देता है। इसलिए मैं चाहूँगा कि सभी लोग हार्दिक सद्‌भावनासे काम करें और तब फिर रसोड़ा भंग करनेका विचार कभी नहीं उठेगा।

बापू

अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ९२७७)की नकलसे।

७०. पत्र : वसुमती पण्डितको

मौनवार, २८ अक्टूबर, १९२९

चि० वसुमती,

तुम्हारा पत्र मिला। वर्धाके बारेमें तो मैं तुम्हें कबका लिख चुका हूँ। वहाँ जानेके लिए मेरी बाट जोहनेकी तो कोई जरूरत नहीं है। तुम्हें बुखार आता रहता है, यह बात मुझे जरा भी अच्छी नहीं लगती। भले ही वर्धामें काफी दिनों तक रहना पड़े किन्तु बुखारको जड़-मूलसे खो देना चाहिए।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (एस० एन० ९२६८)की फोटो-नकलसे।

७१. पत्र : महादेव देसाईको

मेरठ
२८ अक्टूबर, १९२९

चि० महादेव,

तुम्हारा बार-बार बीमार होना मुझसे सहन नहीं होता। आशा है अब तुम बिलकुल स्वस्थ हो गये होगे। सेवा करते हुए सीमाका ध्यान तो रखना ही होगा, क्योंकि ऐसी सेवाके लिए 'शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्' का तभी कुछ अर्थ हो सकता है। "अवकाशका सर्वाधिक आनन्द कठिनसे-कठिन श्रम करनेवाला ही जानता है" यह कहावत किसी अंग्रेजके अनुभवके रूपमें ही हमारे सामने है; और यह सच है। इसका तात्पर्य यही है कि जो ईमानदारीसे अपने कर्त्तव्यका पालन करता है उसे आराम करनेका अधिकार भी है। इस अनिवार्य आराममें किसीको हस्तक्षेप करनेका अधिकार नहीं है।

अब दीवाली आनेवाली है इसलिए सम्मिलित भोजनालयके बारेमें हमें फिर सोचना चाहिए। थोड़ा-सा समय निकालकर, तुम्हें जो ठीक जान पड़े, इस प्रश्नको अन्तिम रूपसे निबटा देना।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च :]

कल मैं मेरठके कैदियोंसे मिला। मैं सवा-डेढ़ घंटे वहाँ रहा और उनके व्यंग्य-बाण सुनकर जब तबीयत भर गई तो खूब हँसी-मजाक करके चला आया। उन्हें मेरे

वहाँ पहुँचनेकी आशा नहीं थी अतः वे मुझे बहुत प्रसन्न नजर आये। हमारी बातचीतका विवरण[1] तो तुम्हें मिल सकता है बशर्ते कि देवदास या प्यारेलाल लिख भेजें। दे[वदास] और प्या[रेलाल]के साथ प्रोफेसर भी थे। मुझे यह आशा नहीं थी कि मेरे साथ जानेवालों को भी भीतर जानेकी अनुमति मिल जायेगी।

बापू

गुजराती (एस० एन० ११४६३)की फोटो-नकलसे।

७२. पत्र : आश्रमकी बहनोंको

मेरठ
२८ अक्टूबर, १९२९

बहनो,

आज हम मेरठमें कृपलानीजीके आश्रममें हैं। इसलिए यहाँ भी वहाँका वातावरण दिखाई देता है।

आज सम्मिलित भोजनालयके बारेमें लिखता हूँ। अब दीवाली आ पहुँची है। मेरे पास कुछ पत्र आ चुके हैं। यह पत्र मैं तुम्हें निर्भय बनानेके लिए लिख रहा हूँ। तुम्हें एक वर्षका अनुभव है। भोजनालयका सारा बोझ तुमने उठाया। मैंने तो सिर्फ भोजनालयका रस ही चखा है। इसलिए मैं अपनी रायका कोई मूल्य नहीं समझता। सच्ची कीमत तो तुम्हारी ही रायकी है। इसलिए तुम सब बहनें जिस निर्णय पर पहुँचोगी, उसे तो मैं मानूंगा ही। मैं इतनी सिफारिश जरूर करूँगा; इस विषयपर बहुत चर्चा न करना। बहुत समय भी न लेना। जरूरी बातें करके झटपट निर्णय कर डालना और जो निर्णय करो उसपर कायम रहना। ऐसा करके ही हम आगे बढ़ेंगे। दोनों रायोंके पक्षमें दलीलें तो दी ही जा सकती हैं। किसी भी राय पर पहुँचनेमें कुछ-न-कुछ भूल भी होती है किन्तु उसकी चिन्ता नहीं करनी चाहिए।

निश्चय करके उसपर डटे रहनेकी आदत डालनेकी बड़ी जरूरत है। कोई निश्चय करनेके बाद यदि यह लगे कि वह तो पाप ही है, तो यह अलग बात हुई। पाप करनेका निश्चय दुनियामें हो ही नहीं सकता।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (जी० एन० ३७०७)की फोटो-नकलसे।

१. देखिए "मेरठ षड्यन्त्रके कैदियोंसे बातचीत", २७-१०-१९२९। तथा "संयुक्त प्रान्तका दौरा-८" उपशीर्षक "कैदियोंके साथ" ७-११-१९२९।

७३. पत्र : मणिलाल और सुशीला गांधीको

मेरठ
२८ अक्टूबर, १९२९

चि० मणिलाल और सुशीला,

तुम्हारे पत्र मिले।

शान्तिके नाम तुम्हारे तारसे लगता है कि शान्तिके वहाँ पहुँचनेके बाद सुशीला रवाना होगी और शायद तुम भी। जो हो वही ठीक।

चि० निमुके[1] कन्या हुई है। माँ-बेटी दोनों अच्छी हैं। प्रसव लखतरमें हुआ था और निमु अब भी वहीं है। उसे बहुत कष्ट नहीं भोगना पड़ा।

मेरी यात्रा तो ठेठ नवम्बरके अन्ततक चलेगी। देवदास मेरे साथ ही है। कृष्णदास अलमोड़ामें है।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (जी० एन० ४७६२)की फोटो-नकलसे।

७४. भेंट : समाचारपत्रोंको

२८ अक्टूबर, १९२९

भारतके भावी संविधानके प्रश्नपर चर्चा करनेके लिए ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल प्रमुख भारतीय राष्ट्रवादी नेताओंको एक गोलमेज परिषदके लिए निमन्त्रण भेजने वाला है। खूब जोरोंसे चल रही इस चर्चाके सिलसिलेमें जब 'फ्री प्रेस'के प्रतिनिधिने गांधीजीसे भेंट की, तो महात्मा गांधीने कहा कि मुझे इसमें कोई खास दिलचस्पी नहीं है और मैं इस मामलेमें चुप रहना ही ज्यादा पसन्द करता हूँ। मैं लाहोर कांग्रेसमें तय किये जानेवाले कार्यक्रमके प्रश्नपर भी, यदि तबतक औपनिवेशिक स्वराज्य नहीं दे दिया जाता है, चुप रहना ज्यादा पसन्द करूँगा; लेकिन उन्होंने अपने इस विचारपर फिरसे जोर दिया कि यदि इस सालके अन्दर ही औपनिवेशिक स्वराज्य नहीं दे दिया जाता, तो अगले सालसे मैं पूर्ण स्वतन्त्रताकी हिमायत करूँगा।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, २९-१०-१९२९

१. रामदास गांधीकी पत्नी।

७५. भाषण: मेरठ कालेज, मेरठमें

२८ अक्टूबर, १९२९

अपने स्वागतमें दिये गये अभिनन्दनपत्रका उत्तर देते हुए महात्माजीने विद्यार्थियों और अध्यापकोंको उनकी भेंट की हुई थैलीके लिए धन्यवाद दिया और कहा कि मेरठ कालेजके विद्यार्थियोंकी संख्याके अनुपातमें यह थैली अन्य सभी थैलियोंसे कहीं ज्यादा बड़ी है। महात्माजीने अपना सन्देह व्यक्त करते हुए कहा कि मुझे जो अभिनन्दनपत्र भेंट किया गया है, वह शायद सभी विद्यार्थियोंको दिखाया नहीं गया है और अन्तिम रूपसे छपवानेके पहले उसपर उनकी सहमति नहीं ली गई है। मैं जानता हूँ कि अभिनन्दनपत्रोंमें अतिथियोंकी बेहिसाब प्रशंसा करनेका एक रिवाज ही बन गया है। लेकिन मैं विद्यार्थियोंसे ऐसे अभिनन्दनपत्रोंकी आशा नहीं करता था। महात्माजी ने कहा कि विद्यार्थियोंके दिये हुए अभिनन्दनपत्रमें कमसे-कम दो चीजें होनी चाहिए। बजाय इसके वह बेहद प्रशंसासे भरा हो, उसमें खुद विद्यार्थियोंके अपने सम्बन्धमें काफी सूचना होनी चाहिए और साथमें उनके लिए कुछ निर्देश भी होने चाहिए। महात्माजीने कहा कि मुझे लगता है कि मैं शायद उस बेशुमार प्रशंसाका पात्र नहीं हूँ जो मेरे स्वागतमें दिये गये अभिनन्दनपत्रमें की गई है और उन्होंने विद्यार्थियोंका इस बातकी तरफ ध्यान दिलाया कि किसी व्यक्तिके सिद्धान्तोंका अनुकरण करना ही उसकी सच्ची प्रशंसा करना है।

भाषण जारी रखते हुए महात्माजीने कहा कि मैं बहुतसे विद्यार्थियोंको जानता हूँ जो मेरे सिद्धान्तोंका समर्थन नहीं करते और आधुनिक पाश्चात्य सभ्यताके हिमायती हैं; वस्तुतः अनेक विद्यार्थियोंने मुझे इस तरहकी बातें लिखी भी हैं। इसलिए मैं नहीं जानता कि वास्तवमें मेरठ कालेजके सभी विद्यार्थियोंकी मेरे सिद्धान्तोंसे वैसी स्वेच्छापूर्ण सहमति है या नहीं जैसी कि उन्होंने अपने अभिनन्दनपत्रमें प्रगट की है। महात्माजीने कहा कि कुछ भी हो, यदि विद्यार्थी मातृभूमिकी सेवा करना चाहते हैं, तो उन्हें कमसे-कम यह मालूम होना चाहिए कि संयम या आत्म-निग्रह क्या चीज है और उन्हें आत्मसंयमके पालनका प्रयत्न करना चाहिए। आधुनिक विद्यार्थियोंमें दुर्बलता तथा भयका कारण यह है कि वे संयमका पालन करना भूल गये हैं। महात्माजीने विद्यार्थियोंको ब्रह्मचर्य पालनकी प्रेरणा दी और विवाहित विद्यार्थियोंको संयमसे रहनेकी सलाह दी। उन्होंने कहा कि विद्यार्थी तो सिपाही हैं, इसलिए उन्हें धमकियोंके आगे नहीं झुकना चाहिए। मैं जानता हूँ कि जिन संस्थाओंमें वे पढ़ते हैं, उनके अधिकारीगण

बहुधा विद्यार्थियोंसे कहते हैं कि यह न करो या वह न करो। और खयाल तो यह है कि बहुत बार इस तरहके प्रतिबन्ध धमकियोंके बलपर लगाये जाते हैं। मेरा दृढ़ मत है कि विद्यार्थियोंको कई चीजें नहीं करनी चाहिए; लेकिन साथ ही मैं आशा करता हूँ कि सिपाहियोंकी हैसियतसे विद्यार्थियोंको ऐसे दबावोंके आगे घुटने भी नहीं टेक देने चाहिए। अधिकारियोंके अनुचित आदेशोंको न माननेके कारण उनका अधिकसे-अधिक नुकसान यही किया जा सकता है कि उन्हें स्कूलों या कालेजोंसे निकाल दिया जाये। लेकिन निश्चय ही इससे उनका कुछ खास नहीं बिगड़ेगा। वे अपनी पढ़ाई कई अन्य जगहोंपर जारी रख सकते हैं। इसके अलावा ज्ञानोपार्जनको रुपया आना पाईकी दृष्टिसे नहीं तौलना चाहिए; ज्ञानोपार्जन तो अपनी अन्तरात्माको प्रबुद्ध बनानेके खयालसे किया जाना चाहिए।

महात्माजीने विद्यार्थियोंको खद्दर अपनानेकी सलाह दी जिससे कि करोड़ों कष्ट सहते हुए उन भूखे लोगोंको वे कुछ राहत दे सकें, जिनके बलपर उन्हें जीवनकी वे सभी सुविधाएँ सुलभ होती हैं, जिनमें स्कूलों और कालेजोंमें पढ़नेकी सुविधा भी शामिल है।

महात्माजीने इस बातपर खेद व्यक्त किया कि वह तश्तरी और वह अभिनन्दनपत्र वे अपने पास नहीं रख सकेंगे . . . उन्होंने कहा कि चूँकि मैं दरिद्रनारायणके प्रतिनिधिके नाते वचनबद्ध हूँ, मैं इन चीजोंको अपने पास नहीं रख सकता।

अन्तमें . . . कालेजके सेवकोंने महात्माजीको २१ रु० भेंट किये जिसपर महात्माजीने कहा "यह ठीक ही है कि सेवक लोग एक सेवकको कुछ दे रहे हैं।"

[अंग्रेजीसे]

अमृतबाजार पत्रिका, ३०-१०-१९२९

७६. पत्र : सैयद रौस मसूदको

मुकाम असौड़ा
२९ अक्टूबर, १९२९

प्रिय मित्र,

आपके पत्रके लिए धन्यवाद। कालेजके विद्यार्थियों और प्रोफेसरोंसे फिर परिचय करते हुए मुझे निश्चय ही खुशी होगी। आपने जो समय लिख भेजा है, मैं सहर्ष तभी उनके समक्ष भाषण[1] दूँगा। आपने कार्यक्रम स्वागत-समितिसे मशविरा करके ही बनाया है, इसलिए मैं समझता हूँ कि जो अन्य कार्यक्रम निर्धारित किये गये होंगे, उनके साथ इसका टकराव नहीं होगा।

हृदयसे आपका,

सैयद रौस मसूद महोदय
उप-कुलपति
मुस्लिम विश्वविद्यालय
अलीगढ़

अंग्रेजी (एस० एन० १५७२५) की माइक्रोफिल्मसे।

७७. पत्र : छगनलाल जोशीको

असौड़ा
२९ अक्टूबर, १९२९

चि० छगनलाल,

तुम्हारा पत्र मिला। इसके साथ भेजी गई पूरी डाक मैं अबतक देख नहीं पाया हूँ। मालूम हुआ कि तुम वहाँसे ४ तारीखको रवाना होओगे। इसका मतलब यह हुआ कि अब दिल्लीमें भेंट नहीं होगी। मैं जहाँ होऊँगा, वहाँ मुझसे मिलकर ही तुम आगे जानेकी बात सोचते हो, इतना पर्याप्त है। भणसालीका मामला नाजुक होता जा रहा है। जो हो सो ठीक है। लीलाबहनने[2] आश्रम छोड़कर ठीक ही किया।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (जी० एन० ५४६७) की फोटो-नकलसे।

१. देखिए "भाषण: मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़में", ४-११-१९२९।

२. भणसालीकी विधवा भाभी।

७८. पत्र : छगनलाल जोशीको

२९ अक्टूबर, १९२९

चि० छगनलाल,

अभी दूसरी डाक [मिली][1] उसमें तुम्हारा पत्र [भी था[2]]।

भोजनालयके सम्बन्धमें प्रस्ताव . . .[3] मेरे लिए दुःखका नहीं बल्कि सन्तोषका कारण है। क्योंकि मैं नहीं चाहता कि मेरे दबाव डालनेपर कुछ किया जाये। दबावमें आकर किये गये सभी कामोंके बिगड़ जानेकी सम्भावना रहती है। अतः मैं कार्यकारिणीके प्रस्तावका स्वागत करता हूँ। इस सम्बन्धमें कुछ फेरफार करने हों तो किये जा सकते हैं।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्चः]

लाहौर जानेके बारेमें तो मैं तुम्हें दो-तीन बार अनुमति दे चुका हूँ। उनमें से एक पत्र यहाँ लौट आया था, जिसे मैं इसके साथ भेज रहा हूँ।

बापू

[गुजरातीसे]
बापुना पत्रो – ७ : श्री छगनलाल जोशीने

७९. पत्र : बी० एल० रलियारामको

३० अक्टूबर, १९२९

प्रिय मित्र,

आपने एक गलत आदमीसे सालभरके अन्दर अपनी पढ़ी हुई पुस्तकोंमें से सबसे अच्छी पुस्तकका नाम लिख भेजनेको कहा है। मुझे जिस पुस्तकको पढ़नेका अवकाश मिलता है, वह पुस्तक प्रकृति है; और यह किसी किताबोंकी दूकानपर नहीं मिल सकती।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत बी० एल० रलियाराम
नेशनल कौंसिल, यं० मे० क्रि० ए०
५, रसेल स्ट्रीट
कलकत्ता

अंग्रेजी (एस० एन० १५७०६) की माइक्रोफिल्मसे।

१, २ व ३. मूल पत्रका एक कोना फट जानेके कारण ये स्थल खण्डित हो गये हैं।

८०. पत्र : के० एस० सुब्रह्मण्यम्को

३० अक्टूबर, १९२९

प्रिय सुब्रह्मण्यम,

सतीश बाबूके सम्बन्धमें आपके पत्रके सिलसिलेमें मेरा जवाब यह है :

मेरी रायमें यदि अ० भा० च० संघ आम कांग्रेस प्रदर्शनीमें हिस्सा नहीं ले सकता, तो कांग्रेस अधिवेशनके समयपर ही उसके साथ एक उत्सवका अलग आयोजन नहीं किया जाना चाहिए। मैं इस बातसे पूरी तरह सहमत हूँ कि प्रदर्शनीमें रखी जानेवाली सभी चीजोंपर उनका विक्रय मूल्य साफ दिखाया जाना चाहिए। विभिन्न प्रान्तोंसे आनेवाली खादीकी कीमतोंको एक साथ जोड़कर तबतक खादी मात्रकी एक नियत दर निर्धारित करना बहुत कठिन है जबतक कि समूचे भारतमें साधारण मौसमोंके लिए कपड़ों और कीमतोंका कोई स्तर बन नहीं जाता। केवल प्रदर्शनीके लिए हम दरोंको जोड़कर इस तरहकी कोई एक निश्चित कीमत नहीं रख सकते और खासकर उस हालतमें जब कि विभिन्न प्रान्तोंमें विशेष किस्मोंकी खादी एक ही जैसी कोटिकी न हो। इसलिए मैं समझता हूँ कि फिलहाल हमें विभिन्न प्रान्तोंकी विभिन्न दुकानोंपर लिए जानेवाले अलग-अलग दामोंसे ही सन्तोष करना पड़ेगा। हम जो काम कर सकते हैं और जिसका ध्यान अवश्य रखना चाहिए वह यह है कि बुनकरके हाथसे या बादमें किसी कारीगरके हाथसे निकलते समयतक जो लागत मूल्य रहा हो उसमें फिर और एक निश्चित फीसदीसे ज्यादा न जोड़ा जाये। मुझे याद पड़ता है कि सतीश बाबू मेरे इन सब विचारोंको जानते हैं। मेरा खयाल है कि उन्होंने भी मुझे अपने पत्रोंमें यही सब लिखा था।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत के० एस० सुब्रह्मण्यम्
अखिल भारतीय चरखा संघ
मिर्जापुर, अहमदाबाद

अंग्रेजी (एस० एन० १५७२६) की माइक्रोफिल्मसे।

८१. पत्र : छगनलाल जोशीको

असौड़ा
३० अक्टूबर, १९२९

चि० छगनलाल,

तुम्हारा चलालासे लिखा पत्र कल ही मिला। अर्थात् २१ और दूसरा २७ तारीखका पत्र भी कल मिला। ऐसा बहुत बार हो जाता है। तुम्हारे पत्रोंसे जान पड़ता है कि तुम जिन बातोंके बारेमें लिखना चाहते थे उनमें से बहुतोंके बारेमें लिख नहीं पाये हो; इसलिए जब तुम मुझसे मिलनेके लिए आओ तो जिन बातोंके बारेमें मुझसे चर्चा करना आवश्यक हो उन सबको पहलेसे नोट कर लेना। घूमने-फिरनेसे तुम्हारी तबीयत सुधर गई यह तो बहुत ही अच्छा हुआ। कामके सिलसिलेमें ही यदि आबोहवा भी बदल सके तब तो बहुत ही अच्छा।

लीलाबहन चली गई, यह बहुत ठीक हुआ। उसे मानसिक वातावरण बदलनेकी बहुत आवश्यकता थी।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (एस० एन० १५८२८) की माइक्रोफिल्मसे।

८२. संयुक्त प्रान्तका दौरा[1] – (७)

जहाँ तक [गांधीजीके] दौरेका सम्बन्ध है अगले यात्रा विवरणसे[2] स्पष्ट है कि पिछला सप्ताह ज्यादा आरामदेह रहा।

देहरादूनमें

देहरादून बहुत दिनोंसे यूरोपीयोंके लिए एक प्रिय स्वास्थ्यवर्द्धक स्थल रहा है। इसकी ऊँचाई ३,००० फीटसे कुछ ज्यादा ही है और यह पर्वतोंकी रानी कही जानेवाली मसूरीकी तलहटीमें स्थित है। अब यह समृद्ध भारतीयोंमें भी लोकप्रिय हो गया है। इसलिए यहाँ कई शैक्षणिक संस्थाएँ होनेका गौरव इसे प्राप्त है। यहाँ इंडियन सैंडहर्स्ट नामक एक स्कूल है। यह नाम सुननेमें अच्छा लेकिन गलत है। यहाँ कई ऐसे स्कूल भी हैं जिनमें लड़कोंको सीनियर कैम्ब्रिजकी परीक्षाके लिए तैयार किया जाता है। यहाँ १९०४ में खोला गया प्रसिद्ध ऐंग्लो वैदिक कालेज भी है। उसमें ८०० से ऊपर लड़के पढ़ते हैं। इसके अस्तित्वका श्रेय स्वर्गीय ठाकुर पूनमसिंहजी नेगीके अढाई लाखके उदार दानको है। यहाँ कन्या गुरुकुल है। यह गुरुकुल काँगड़ीकी शाखा है। श्रीमती

१. देखिए "संयुक्त प्रान्तका दौरा", २४-१०-१९२९की पाद-टिप्पणी।
२. यहाँ नहीं दिया जा रहा है।

विद्यावती देवी इसे बड़ी कठिनाइयोंके बीच चला रही हैं। गांधीजी जब देहरादून पहुँचे उस समय वहाँ श्रीयुत पुरुषोत्तमदास टण्डनकी अध्यक्षतामें एक राजनीतिक सभा चल रही थी। गांधीजीको वहाँ सिर्फ एक ही दिन रहना था। इसलिए कार्यक्रम काफी व्यस्त रहा। कार्यक्रम एक बड़े खुले मैदानमें श्री श्रद्धानन्द अबला आश्रमके शिलान्याससे[1] शुरू हुआ। शिलान्यास करते हुए गांधीजीने इस बातपर जोर दिया कि ऐसी संस्थाओंके अन्तेवासियोंको परस्पर एक परिवारके सदस्योंकी तरह महसूस करना चाहिए और उन्हें संस्थाके प्रबन्धकको माता या पिताकी तरह मानना चाहिए। इसलिए उन्होंने यह भी कहा: "ऐसे आश्रमोंकी नींव ईंट चुननेसे नहीं पड़ती; इनकी नींव तो उसे प्रबन्धककी सेवाएँ प्राप्त हो जानेसे पड़ती हैं जो अन्तेवासियोंके साथ खाये-पिये और उनके साथ उनके पिता, मित्र और पथ-प्रदर्शककी तरह रहे।" वहाँ इकट्ठी हुई अनेकों स्त्रियोंको सम्बोधित करते हुए गांधीजीने कहा, यदि आप श्रद्धानन्दजीकी स्मृतिका सचमुच सम्मान करती हैं तो आप अपने बीचमेंसे इस स्थानको एक माँ दें। ऐसी संस्थाओंका प्रबन्ध अभी प्रायः पुरुषोंके हाथोंमें है लेकिन यह तो वे अपनी इस भूलके प्रायश्चित्तके रूपमें कर रहे हैं कि उन्होंने लड़कियोंकी शिक्षा और प्रशिक्षणकी आजतक बुरी तरह अवहेलना की है और स्त्रियोंको उनकी बेहतरीके अवसरोंसे दूसरी तरह भी वंचित किया है।

ऐंग्लो वैदिक कालेजमें जहाँ विद्यार्थियोंने अभिनन्दनपत्र और ५०० रु० की थैली भेंट की, गांधीजीने विद्यार्थियोंसे गाँवोंमें चीनियोंकी तरह दूर-दूर जाने और बच्चों तथा बड़ोंको सही ढंगकी शिक्षा और जानकारी देनेको कहा। उन्होंने कहा कि यह काम वे अपनी लम्बी छुट्टियोंमें कर सकते हैं।

तथाकथित अछूतोंकी भी एक सभा हुई। उन लोगोंने यहाँ महान चमार सन्त रैदासके नामपर नाम अपना 'रैदासी' रख लिया है। ये सब परिवार अब अच्छे खाते-पीते हैं। रोजंदारी करते-करते अब वे चूनेके भट्टोंके मालिक बन गये हैं। ऐसी हालतमें उनका लालाजी स्मारकके लिए एक थैली भेंट करना स्वाभाविक था। लालाजीके भेजे हुए नवयुवकोंने उनके बीच जो काम किया वे उसके प्रति बहुत ऋणी हैं। गांधीजीने उन्हें बताया कि जोर-शोरसे आन्तरिक सुधार करके उन्हें अपनी उन्नति करना सीखना चाहिए। यूनियन बोर्डके एक निर्वाचित सदस्य लाला बिहारीलाल उनके नेता हैं। उनका प्रशिक्षण ऐंग्लो वैदिक कालेजमें हुआ है। कोई भी व्यक्ति उनमें और किसी अन्य शिक्षित नवयुवकमें कोई अन्तर नहीं देख पाता। यदि मैं उनके जीवनकी पिछली बातें न जानता होता तो मैं भी नहीं जान पाता कि वे चमड़ा कमानेका काम करते होंगे।

यूनियन बोर्डने तो मानपत्र दिया ही। जवाबमें गांधीजीने कहा, जबतक आप देहरादूनको एक आदर्श शहर नहीं बना देते, तबतक मैं सन्तुष्ट नहीं हो सकता। सिर्फ फैशनेबल इलाकोंमें ही आपकी सड़कें अच्छी हैं। जहाँ मजदूर और गरीब लोग रहते हैं कामकाजका वह केन्द्रस्थल अब भी, जैसा कि मैंने उसे पन्द्रह साल पहले

१. अक्तूबर १६ को।

देखा था, उससे कुछ खास अच्छा नहीं है। आप बूढ़ों और बच्चोंको शुद्ध और सस्ता दूध नहीं दे पाते। आप अपने बीचसे शराबके दुर्व्यसनको भी हटा नहीं सके हैं। फिर भी आपके बीच अच्छे हिन्दू, अच्छे मुसलमान और अच्छे अंग्रेज लोग हैं और आपने गर्वके साथ मुझे बताया है कि आप सब सहयोग और सद्भावनाके साथ काम कर रहे हैं। यूनियनको गरीब लोगोंके लाभके लिए काम करना चाहिए।

दिन औरतोंकी एक विशाल सभाके साथ समाप्त हुआ। वहाँ इतना ज्यादा शोर था कि गांधीजीके लिए उल्लेख योग्य कोई भाषण दे सकना कठिन था।

दूसरे दिन मसूरी जाते समय रास्तेमें वे कन्या गुरुकुल गये। लड़कियोंने संस्कृतमें लिखे अभिनन्दनका बड़े सुन्दर स्वरमें पाठ किया। उसके बाद श्रीमती विद्यावतीका छोटा-सा साफ-सुथरा भाषण हुआ जिसमें उन्होंने अपने कठोर अनुभवों और कठिनाइयोंको गिनाया। इसके बाद कताई प्रतियोगिता हुई जिसमें गांधीजी, श्रीमती कस्तूरबाई और श्रीमती मीराबहनने भाग लिया। लड़कियोंके काते हुए सूतका एक बड़ा पुलिन्दा गांधीजीको दिया गया; उसे उन्होंने यह कहकर वापस कर दिया कि उसकी खादी तैयार करके उनके पास भेज दी जाये। लड़कियोंको आशीर्वाद देते हुए गांधीजीने आशा व्यक्त की कि आज संस्थाको जिस अनिश्चित स्थिति और आशंकाकी स्थितिमें रहना पड़ रहा है, उसके बजाय उसकी अपनी एक जगह होगी।

कन्या गुरुकुलसे चलकर रास्तेमें हमने मोटर चालकोंके संघसे एक थैली ली और उसके बाद राजपुरमें रुके। स्वर्गीय डाक्टर केशवदेव शास्त्रीने यहीं अपना सेनीटोरियम बनाया था और यद्यपि श्रीमती शास्त्री अमेरिकी हैं वह अपनी बहनके साथ कट्टर हिन्दू विधवाका जीवन व्यतीत कर रही हैं। उन दिनों वहाँ छुट्टियाँ बिताते हुए गुरुकुल कांगड़ी स्कूलके १०० से अधिक लड़के रह रहे थे। गांधीजीने वहाँ स्वर्गीय डाक्टरके चित्रका अनावरण किया और उनकी स्मृतिमें एक पेड़ लगाया। उन्हें लड़कोंकी ओरसे एक अभिनन्दनपत्र भी मिला और लड़कोंके काते सूतका एक पुलिन्दा और एक थैली भी मिली। थैलीकी रकम लड़कोंने अपने ही श्रमसे कमाकर जमा की थी।

मसूरीमें

इसके बाद आखिरकार गांधीजी निर्विघ्न मसूरी पहुँचे। मोटर गाड़ियाँ भट्टासे आगे नहीं जाती हैं। यहाँसे करीब ३ मीलका पहाड़ी चढ़ाईका रास्ता या तो पैदल या डांडी, रिक्शा या घोड़ेपर तय करना होता है। गांधीजीने पैदल जानेका आग्रह किया और बाजारमें प्रवेश करनेके जरा पहले ही रिक्शामें बैठे। मगर यह उनके लिए बड़ा कष्टप्रद साबित हुआ। भीड़ चारों तरफसे रिक्शेपर टूट पड़ी। शोर और धूल तथा फूलोंकी बौछारसे उनका दम घुटने लगा और लगभग एक घंटेतक यही हाल रहा। वे चकराये हुए दु:खितसे रिक्शेमें बिलकुल ही बेबसी महसूस करते हुए बैठे रहे। भीड़का प्रेम सचमुच बड़ा परेशान करनेवाला होता है और ऐसे अवसरोंपर लोग प्रेमका अन्धा-धुन्ध प्रदर्शन करते हैं।

स्वागत-समितिने गांधीजीको यथासम्भव प्रसन्न रखने और आराम देनेमें कोई कसर नहीं उठा रखी थी। मौसम बहुत ही सुहावना था। हिमाच्छादित पर्वतमाला

सुबहकी धूपमें सोए हुए नागरिकोंपर इस तरह बिखर उठती थी मानो वह उन्हें जागने और उस परमेश्वरको धन्यवाद देनेको कहती हो, जिसने उनके लिए प्रचुर मात्रामें फल-फूलसे लदे पेड़-पौधों और मैदानोंमें उतर आनेवाले जीवनदायी जल स्रोतोंसे युक्त पर्वतोंकी सृष्टि की थी। मसूरी राजाओं और उनकी रानियोंके रहनेकी जगह है; वे अपना खाली समय ऐश-आरामके कामोंमें बिताते हैं। मैं समझता हूँ कि नृत्य और इसी तरहकी चीजोंपर, जिनके हम भारतीय आदी नहीं हैं और जो हमारे लिए तीखी शराब जैसे ही हैं, लाखों रुपये खर्च होते हैं। मुझे बताया गया कि इस उत्तेजक मनोविनोदमें वे रानियाँ भी जो अन्यथा एकान्त जीवन बिताती हैं इसमें स्वयं सक्रिय हिस्सा न ले पानेपर अत्यन्त दिलचस्पी रखनेवाले दर्शकोंकी हैसियतसे तो काफी मुक्त रूपसे हिस्सा लेती ही हैं। गांधीजीने इस वातावरणमें अपने आपको जलसे बाहर मछली जैसा पाया। इसलिए जब उन्हें नगरपालिकाकी ओरसे तथा अन्य संस्थाओंसे अभिनन्दन-पत्र[1] मिले तो उन्होंने नागरिकोंको स्पष्ट शब्दोंमें गरीबोंके प्रति उनके कर्त्तव्यका ध्यान दिलाया। नगरपालिकाके यूरोपीय सदस्य तथा कुछ अन्य यूरोपीय सार्वजनिक सभामें मौजूद थे। गांधीजीसे उनके लिए अंग्रेजीमें बोलनेको कहा गया। उन्हें सम्बोधित करते हुए गांधीजीने कहा कि मुझे आपके मनोरंजनों और आनन्दके साधनोंके प्रति ईर्ष्या नहीं है। किन्तु मैं चाहूँगा कि आप अपने बीच रहनेवाले गरीब लोगोंको न भूल जायें। आपका एक पहाड़पर ऐसे आरामसे रहना उन्हींके अथक परिश्रमपर निर्भर है। वे आपको, आपके सामानको और आपके फर्नीचरको नाममात्रकी मजदूरीपर ढोते हैं। सुनता हूँ कि उन्हें उनकी मेहनतके बदलेमें कोई पर्याप्त पारिश्रमिक नहीं मिलता। वे गन्दे चीथड़े पहनते हैं, नमक-रोटीपर गुजारा करते हैं और हवा और रोशनीसे रहित गन्दी छोटी-छोटी कोठरियोंमें रहते हैं। उनकी हालतको बेहतर बनाना आपका कर्त्तव्य है। हिन्दीके भाषणमें उन्होंने इस बातका उल्लेख किया कि यद्यपि आपके बीच छुआछूत बिलकुल नहीं है, फिर भी एकमात्र हिन्दू-मन्दिरमें तथाकथित अस्पृश्योंके लिए प्रवेशका निषेध है। गांधीजीने दुःख और आश्चर्य व्यक्त किया कि मसूरीमें जहाँ अधिकतर समझदार और जागरूक लोग ही रहते हैं, इस तरहकी चीज बर्दाश्त की जा रही है। इसलिए उन्होंने देवदास गांधीको मन्दिरके मामलेकी जाँच-पड़ताल करनेको कहा। यह पता लगा कि वास्तवमें कुछ न्यासियोंने अस्पृश्योंके लिए मन्दिर खोल दिया था; लेकिन यह अनुमति केवल एक ही दिन रह पाई। हिन्दू धर्मके किसी शत्रुने बाजारके विचार हीन हिन्दुओंको इसका विरोध करनेके लिए उकसा दिया। उन्होंने सम्बन्धित न्यासियोंको इस अपराधपर उनका बहिष्कार करनेकी धमकी दी। वे डर गये और दबकर उनकी बात मान ली। इसलिए गांधीजी ने कार्यकर्त्ताओंसे उनकी विशेष सभामें बहुत जोर देकर आग्रह किया कि वे इस काममें अपनेको लगायें और देखें कि मन्दिर 'अस्पृश्यों' के लिए भी उसी तरह उपगम्य बन जाता है जैसे कि ऊँची जातिके हिन्दुओंके लिए है।

१. २१ अक्तूबरको।

केवल एक और सार्वजनिक जलसा महिलाओंकी सभाके रूपमें हुआ। इसमें यूरोपीय महिलाएँ और यूरोपीय गर्ल्स कालेजकी लड़कियाँ बहुत बड़ी संख्यामें उपस्थित थीं। इसलिए गांधीजीको फिर अंग्रेजीमें बोलना पड़ा। उन्होंने उनसे कहा, 'यदि आपको इस देशकी सेवा करनी है तो आप कमसे-कम दो काम कर सकती हैं। आप खादी अपनाकर एक तरहसे गरीब लोगोंकी ठोस तरीकेसे मदद कर सकती हैं और पूर्ण मद्य-निषेध आन्दोलनमें मदद पहुँचा सकती हैं। यह आपका काम है कि आप अपने पुरुषोंको शर्मिन्दा करें ताकि वे भारतीय मजदूरोंके प्रति अपना कर्त्तव्य पूरा करें। शराबके दुर्व्यसनने अनेकों मजदूरोंके घर बरबाद कर दिये हैं। मद्यपान और उसके निषेधके बीचमें कोई मध्य मार्ग नहीं है। सम्पन्न लोग कम मात्रामें पीनेका दिखावा कर सकते हैं। लेकिन मजदूरोंमें कम पीने जैसी किसी चीजकी सम्भावना ही नहीं है। इसलिए आप पूर्ण मद्य-निषेधके अनुकूल वातावरण तैयार कर सकती हैं। और इस लतके शिकार अभागे लोगोंकी मूक दुआ प्राप्त कर सकती हैं।'

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ३१-१०-१९२९

८३. अकालमें सहायताका साधन चरखा

अभय आश्रमने [असमकी] हालकी भयंकर बाढ़के दौरान जो राहत कार्य किया था आश्रमके प्रफुल्लबाबूने उसके बारेमें पत्र[1] लिखा है।

इस तरह पूर्व-पश्चिम, उत्तर-दक्षिण हर तरफसे अलग-अलग परिस्थितियोंमें चरखेकी उपयोगिताके सम्बन्धमें तमाम सूत्रोंसे समाचार मिल रहे हैं। इनको देखते हुए कोई भी व्यक्ति इस बातसे इन्कार नहीं कर सकता कि अकालके दिनोंमें चरखा बड़ा उपयोगी है, क्योंकि उससे बहुत ही ठोस सहायता मिलती है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ३१-१०-१९२९

८४. टिप्पणियाँ

अहिंसा बनाम कायरता

डाक्टर हर्डीकरने मेरे पास एक विवरण भेजा है, जिसमें हिन्दुस्तानी सेवादलके कुछ स्वयंसेवकोंपर बागलकोट स्थानमें किये गये हमलेका वर्णन है। कहा जाता है यह घटना पिछली ता० ३१ जुलाईको हुई। स्वयंसेवक परचे बाँटते हुए और बैण्ड बजाते हुए चले जा रहे थे। रास्तेमें एक ओर कुछ निचाई पर एक मस्जिद थी; वह दिखाई नहीं देती थी। स्वयंसेवकोंको इसका कुछ खयाल नहीं रहा। वे मस्जिदके

१. पत्र यहाँ नहीं दिया जा रहा है। इसमें यह बताया गया था कि कताईके कामसे और लागत मूल्यपर चावलकी बिक्रीसे बाढ़-पीड़ितोंको किस तरह सहायता मिली।

करीबतक बाजा बजाते ही रहे। इसलिए मस्जिदमें जो लोग थे वे गुस्सेसे लाल-पीले होते हुए बाहर निकल आये, और कहा जाता है, स्वयंसेवकोंको पत्थर, लकड़ी, कुदाली और दूसरे हथियारोंसे मारने-पीटने लगे। डाक्टर हर्डीकरजीके कथनानुसार स्वयंसेवकोंने अनजानमें हुई भूलके लिए क्षमा माँगी, तो भी मारपीट जारी रही। स्वयंसेवकोंने बदलेमें कतई कुछ नहीं किया। उन्होंने कानूनी कार्रवाई भी न करनेका ही फैसला किया। अब सवाल है कि स्वयंसेवकोंका यह संयम अहिंसात्मक कहा जा सकता है या कायरतापूर्ण। मेरी रायमें, यहाँ कायरताका कोई सवाल ही नहीं है। स्वयंसेवक अगर भाग जाते तो जरूर कायर कहलाते। मगर हकीकत तो यह है कि वे अपनी जगहपर डटे रहे, मार खाई, और किसी भी परिस्थितिमें मारका जवाब मारसे नहीं दिया। अहिंसा और कायरता परस्पर विरोधी शब्द हैं। अहिंसा सर्वश्रेष्ठ सद्‌गुण है, कायरता बड़ेसे-बड़ा दुर्गुण है। अहिंसाका मूल प्रेममें है। कायरताका घृणामें। अहिंसक सदा कष्टसहिष्णु होता है, कायर सदा पीड़ा पहुँचाता है। विशुद्ध अहिंसा उच्चतम वीरता है। अहिंसक व्यवहार कभी पतनकारी नहीं होता, कायरता सदा पतित बनाती है। मुझे स्वयंसेवकोंके आचरणमें जरा भी कायरता नहीं दिखाई पड़ती। उन्होंने बहुत ही उच्चकोटिकी वीरता दिखाई, ऐसा दावा कोई नहीं करता। कहा जाता है कि लोगोंने ऐसे जंगली — निर्दयतापूर्ण ढंगसे हमला किया था कि कुछ मुसलमान स्त्रियोंने, जो पास ही खड़ी थीं, माफी माँग लेनेके बावजूद भी मारते रहनेका सविनय प्रतिवाद किया। अगर वस्तुस्थिति ठीक बताई गई है, तो मेरी रायमें स्वयं-सेवकोंका बर्ताव अनुकरणीय था और कांग्रेसके सिद्धान्तके बिलकुल अनुरूप अहिंसात्मक था। आचरणके औचित्य अथवा अनौचित्यके सम्बन्धमें मतभेद भले हो, फिर भी स्वयं-सेवकोंकी वीरताके सम्बन्धमें दो मत कदापि नहीं हो सकते। आहत स्वयंसेवकोंने कोई भी कानूनी कार्रवाई न करके कांग्रेसके सिद्धान्तका निस्सन्देह पूरा-पूरा पालन किया है। मेरा तो अपना दृढ़ विश्वास है कि जैसे-जैसे स्वयंसेवक बहादुरीसे और समझ बूझकर कष्ट सहनेकी अपनी शक्ति बढ़ाते जायेंगे, वैसे-वैसे नाजुक समयमें सेवाकार्य करनेकी उनकी क्षमता बढ़ती जायेगी।

रक्षा कौन करे?

असमसे एक पत्र-लेखकने आतंकसे भरा एक पत्र भेजा है। उसमें यह बताया गया है कि उधर विवाहित, अविवाहित और विधवा लड़कियोंका अपहरण किया जाता है। वे दुःख एवं रोषसे पूछते हैं कि हमारी महिलाओंके सम्मानकी रक्षाके लिए क्या उपाय किये जा रहे हैं। अपने कथनकी पुष्टिके लिए उन्होंने मेरे पास समाचार-पत्रोंकी कतरनें भेजी हैं। जैसा कि मुझे बार-बार कहा गया है, हो सकता है कि ऐसी बातें अकसर अतिरंजित होती हों; ऐसा हो या न हो, इसमें तो जरा भी शक नहीं कि किसी सुसंगठित समाजमें स्त्रियोंका अपहरण असम्भव होना चाहिए। किन्तु मैं यह जानता हूँ कि जिन लड़कियोंके अपहरणका भय है, उनकी रक्षा समाचारपत्रोंमें संवाद छपा देनेसे कदापि नहीं हो सकती। यह तो लड़कीके रिश्तेदारों, मित्रों और पड़ौसियोंकी परले सिरेकी कायरताका प्रमाण है। जो समाज अपनी स्त्रियोंकी रक्षा

करनेमें असमर्थ है, वह विवाह और सन्तानोत्पत्तिके लिए भी सर्वथा अयोग्य है। कामी पुरुष जहाँ और जब मौका पायेंगे, बेखटके अपनी वासना तृप्त करेंगे ही। इस दशामें सबसे अच्छा आन्दोलन तो यही हो सकता है और होना चाहिए कि जो लोग अपनी स्त्रियोंकी रक्षा नहीं करते, उन्हें इतना लज्जित किया जाये कि वे अपना कर्त्तव्य पालन करें।

लम्पटताका विज्ञापन

विदेशी वस्त्र-बहिष्कार समितिके अवैतनिक मन्त्री श्रीयुत जयरामदासने मेरे पास कुछ तसवीरोंके नमूने भेजे हैं। उनके कथनानुसार ये तसवीरें उन भद्दी तसवीरोंके अपेक्षाकृत सौम्य नमूने ही हैं, जो विदेशी वस्त्रके निर्लज्ज व्यापारियों द्वारा केलिको वगैरा कपड़ोंके टुकड़ोंपर चिपकाये जाते हैं। उनका कहना है कि उन्होंने जो तसवीरें मेरे पास भेजी हैं, उनसे कहीं ज्यादा भद्दी तसवीरें व्यापारी लोग कपड़ोंके साथ बाँटते हैं। यह बताना तो मुश्किल हैं कि चित्रोंका यह गन्दा व्यापार एजेंटोंकी करतूत है या मालिकोंकी, फिर भी यह सच है कि चित्र बाँटे जाते हैं और उनके नाम भी उनमें विज्ञापित वासनाके अनुरूप होते हैं। मसलन, एक चित्रपर 'जीवन विलास' छपा है। भोले-भाले लोगोंको विलायती कपड़ा खरीदनेके लिए प्रलोभन देनेकी गरजसे जिन निर्लज्ज और निरंकुश उपायोंसे काम लिया जाता है, उससे सज्जनोंके मनोंमें घृणा पैदा होनी चाहिए; और अन्य किसी कारणसे न भी सही तो केवल उनका प्रतिकार करनेके लिए ही सज्जन पुरुषोंको विलायती कपड़ोंका बहिष्कार करना चाहिए।

एक भूल सुधार

हालकी एक साप्ताहिक चिट्ठीके[1] सन्दर्भमें लिखते हुए उदय प्रताप क्षत्रिय कालेज, बनारसके प्रोफेसर गौतम सम्पादकसे अपने कालेजके नामके हिज्जे सही ढंगसे अर्थात् उदय प्रताप खत्री कालेजकी जगह क्षत्रिय कालेज लिखनेको कहते हैं। वे यह भी कहते हैं कि अदा की गई रकम रु० ३६९-२-६के बजाय रु० ३७०-२-६ प्रकाशित होनी चाहिए क्योंकि एक रुपया बादमें श्रीयुत श्री प्रकाशको दे दिया गया था।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ३१-१०-१९२९

१. देखिए प्यारेलाल द्वारा **यंग इंडिया,** ३-१०-१९२९ में प्रकाशित।

८५. एक महत्त्वपूर्ण घोषणा-पत्र

अस्पृश्यता निवारण समितिकी ओरसे निम्नलिखित घोषणा-पत्र[1] जारी किया गया है:

इसमें इस बातपर ध्यान दिया जायेगा कि इसपर बहुत ज्यादा लोगोंने हस्ताक्षर किये हैं और इन हस्ताक्षरोंमें बहुत प्रभावशाली नाम हैं। घोषणा-पत्र बहुत जल्दी ही जारी नहीं किया गया है। जब सब जगह स्वतन्त्रता प्राप्तिकी प्रबल आकांक्षा हो, तो तथाकथित अस्पृश्योंको दबाकर रख सकना असम्भव है। जो लोग स्वयं स्वतन्त्रता पाना चाहते हैं, उन्हें उन लोगोंके लिए भी स्वतन्त्रता स्वीकार करनी चाहिए, जिनको उन्होंने अबतक उससे वंचित कर रखा है। एक ठोस कानूनी सिद्धान्त वाक्य है जिसमें कहा गया है कि जो लोग न्याय चाहते हैं उनके अपने हाथ साफ होने चाहिए।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ३१-१०-१९२९

८६. भौतिक और नैतिक गन्दगी

इसमें कोई शक नहीं है कि हरिद्वार और दूसरे प्रसिद्ध तीर्थस्थान एक समय सचमुच पवित्र थे। उन स्थानोंके प्राकृतिक सौन्दर्य, और उनकी परम्परागत लोकप्रियतासे पता चलता है कि वे स्थान किसी समय हिन्दूधर्मकी संशुद्धि और संरक्षणके गढ़ थे। धर्मके प्रति मेरे मनमें सहज प्रेम है और मैं प्राचीन संस्थाओंका हमेशा आदर करता हूँ और उनका औचित्य सिद्ध करना चाहता हूँ। लेकिन फिर भी इन तीर्थस्थानोंमें आदमीकी बनाई किसी भी चीजमें मुझे कोई आकर्षण दिखलाई नहीं दिया।

पहली बार जब सन १९१५ में मैं हरिद्वार गया था[2] तब मैं वहाँ सर्वेण्ट्स ऑफ इंडिया सोसाइटीके अध्यक्ष पण्डित हृदयनाथ कुंजरूके अधीन एक स्वयंसेवककी तरह गया था। इस कारण मुझे बहुतेरी बातें गहराईसे देखने और कई लोगोंके निकट परिचयमें आनेका अवसर मिला था। अन्यथा ऐसा घनिष्ठ परिचय पाना शायद कठिन होता। मैं बड़ी-बड़ी आशाएँ लगाकर और बड़ी श्रद्धासे प्रेरित होकर हरिद्वार गया था। लेकिन जहाँ एक ओर गंगाकी निर्मल धाराने और हिमाचलके पवित्र पर्वत-शिखरोंने मुझे मोह लिया, वहाँ दूसरी ओर इस पवित्र स्थानपर मनुष्यके कामोंसे मेरे हृदयको कुछ भी प्रेरणा नहीं मिली। मैंने हरिद्वारमें देखा कि वहाँ नैतिक तथा शारीरिक

१. यहाँ नहीं दिया जा रहा है। इसपर प्रभावशाली लोगोंके हस्ताक्षर थे और इसमें सभी हिन्दू संस्थाओंसे आगामी कार्तिक एकादशीको अस्पृश्यता उन्मूलन दिवसके रूपमें मनानेकी बात कही गई थी।

२. देखिए खण्ड १३, पृष्ठ ४९।

दोनों ही तरहकी मलिनता है और यह स्थिति देखकर मुझे अत्यन्त दुःख हुआ। हालकी यात्रामें[1] भी मैंने हरिद्वारकी इस दशामें कोई ज्यादा सुधार नहीं पाया। पहलेकी भाँति आज भी धर्मके नामपर गंगाकी भव्य धारा दूषित की जाती है। अज्ञानी एवं विवेकशून्य स्त्री-पुरुष गंगातटपर, जहाँ ईश्वर-दर्शनके लिए ध्यान लगाकर बैठना चाहिए, वहाँ पाखाना पेशाब करते हैं। इन लोगोंका ऐसा करना प्रकृति, आरोग्य तथा धर्मके नियमोंका उल्लंघन करना है। तमाम धर्मशास्त्रोंमें नदियोंकी धारा, नदी तट, आम सड़क और आमदरफ्तके दूसरे सभी स्थानोंको गन्दा करनेकी मनाही है। विज्ञानशास्त्र सिखाता है कि मनुष्यके मलमूत्रादिका नियमानुसार उपयोग करनेसे बहुत बढ़िया खाद तैयार की जा सकती है। आरोग्य शास्त्री कहते हैं कि उक्त स्थानोंमें मलमूत्रादिका विसर्जन करना मानव-समाजकी घोर अवज्ञा करना है। यह तो हुई आलस्य और अज्ञानके कारण फैलनेवाली गन्दगीकी बात। लेकिन धर्मके नामपर जानबूझकर भी गंगाजल गन्दा किया जाता है। विधिवत् पूजा करानेके लिए मुझे गंगातटपर ले जाया गया। जिस पानीको लाखों लोग पवित्र समझकर पीते हैं, उसमें फूल, सूत, गुलाल, चावल, पंचामृत वगैरा चीजें इस विश्वाससे डाली गई कि यह एक पुण्य कार्य है। मैंने इसका विरोध किया तो पण्डित-सुलभ उत्तर मिला कि यह तो युगोंसे चली आ रही एक सनातन प्रथा है। इस सबके अलावा मैंने यह भी सुना है कि शहरकी गन्दी नालियोंका गन्दा पानी भी आकर नदीमें ही मिलता है; यह एक बहुत बड़ा अपराध है।

यात्रियोंकी इतनी अधिक भीड़के रहते हुए भी हरिद्वारका स्टेशन अबतक पुराने ढंगका और रद्दी है। स्टेशनपर यात्रियोंके लिए बहुत ही कम सुविधाएँ हैं। शहरकी गलियाँ संकरी और गन्दी हैं, और मालूम होता है कि रास्तोंकी मरम्मत नहीं की जाती। इस तरह अधिकारियों और जनताने हरिद्वारको गन्दा बनानेमें कोई कसर उठा नहीं रखी है।

यह तो हरिद्वारकी भौतिक गन्दगीकी राम-कहानी हुई। मुझे विश्वस्त सूत्रसे पता चला है कि वहाँकी नैतिक गन्दगी इससे भी कहीं बढ़-चढ़कर है। हरिद्वारमें रात-दिन होनेवाले व्यभिचारकी जो बातें मैंने सुनी हैं, उनका उल्लेख मैं इन स्तम्भोंमें नहीं कर सकता। पण्डोंने मुझे जो मानपत्र दिया था, उसमें उन्होंने अपने भोलेपनके कारण स्पष्ट ही स्वीकार किया था कि शास्त्रोंकी आज्ञानुसार हरिद्वार शहरमें पूर्ण ब्रह्मचर्यसे रहना आवश्यक है, अतएव पूर्ण ब्रह्मचर्यका पालन न करनेके कारण वे उस स्थानको यात्रियोंके लिए छोड़कर स्वयं हरिद्वारकी अंकित सीमासे बाहर रहते हैं। यह कहनेकी जरूरत नहीं कि हरिद्वारमें इस तरहके आत्म-निग्रहके कोई लक्षण नहीं है।

इतना सब होते हुए भी कोई कारण नहीं कि हरिद्वार एक आदर्श तीर्थस्थल न बनाया जा सके। हिन्दू-धर्मको प्राचीन संस्कृतिका पुनरुत्थान करनेके उद्देश्यसे स्थापित तीन शैक्षणिक संस्थाएँ हरिद्वारमें हैं; (ऋषिकुल, महाविद्यालय और स्व० श्रद्धानन्दजीका गुरुकुल)। इनके सिवाय हरिद्वारमें और उसके आसपास अनेक धनाढ्य

१. १५ अक्टूबरको।

महन्त भी रहते हैं। ये सब, या इनमें से कोई एक ही संस्था, अगर चाहे तो, हरिद्वारको थोड़े ही समयमें आदर्श तीर्थस्थान बना सकती है। जिस सार्वजनिक सभामें[1] मैंने हरिद्वारकी भौतिक और नैतिक गन्दगीके सम्बन्धमें अपना दुख प्रकट किया था, उसके सभापति आचार्य रामदेवजीने प्रतिज्ञा करके मुझे आश्वासन दिया है कि वह अपने गुरुकुल काँगड़ीके द्वारा, जिसे हरिद्वार लाया गया है, इन सुधारोंके लिए भरसक प्रयत्न करेंगे। कुछ स्थानीय कार्यकर्त्ता भी इस परिस्थितिको सुधारनेके लिए यथाशक्ति कोशिश कर रहे हैं। जिस हरिद्वारमें केवल स्वदेशी शक्करका ही चलन है, वहीं हर साल सात लाख रुपयोंके विलायती कपड़ेका आयात किया जाता है। ज्वालापुर में, जो हरिद्वारका एक मुख्य भाग है, शराब और मांसकी भी एक-एक दूकान है। कोई कारण नहीं कि हरिद्वारमें पूर्ण मद्य-निषेध सफल न हो सके। हिन्दुओंके तीर्थ-स्थानमें मांसकी दूकानका होना तो आश्चर्य ही की बात है। आशावादी आचार्यजीको आशा है कि वे हरिद्वारको स्वच्छ बना सकेंगे और मांस, शराब तथा विदेशी वस्त्रको वहाँसे निकाल सकेंगे। उनकी यह आकांक्षा उनके अनुरूप है। ईश्वर करे यह पूरी हो। अगर गुरुकुलके विद्यार्थी अपने विद्याभ्यासके साथ-साथ धर्म और देशकी इस तरह सेवा भी करेंगे तो उनके लिए वह सबसे सच्ची शिक्षा होगी।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ३१-१०-१९२९

८७. ऊँच-नीच

हम कहते हैं यह ऊँच है, वह नीच। शास्त्र — वैज्ञानिक और आध्यात्मिक शास्त्र — कहते हैं कि जैसे शारीरिक दृष्टिसे वैसे ही आत्मिक दृष्टिसे भी हम सब एक ही हैं। शरीरका पृथक्करण करके वैज्ञानिक कहते हैं, हम सब पंच-महाभूतके पुतले हैं, न योनिका भेद है, न जातिका और न लिंगका। चींटी-हाथी, ब्राह्मण-भंगी, स्त्री-पुरुष सबके शरीर मिट्टी आदिके बने हैं। उपनिषदादि हमें सिखाते हैं कि आत्मदृष्टिसे देखा जाये तो पता चलेगा कि सबमें एक ही आत्मा व्याप्त है। इसलिए सूक्ष्मदर्शी आचार्य शंकर हमें बता गये हैं कि नामरूपादिका जो भेद हमें दिखाई पड़ता है वह सब माया ही माया है। दूसरे उसे उपाधि कहते हैं और कोई उसे मोह भी कहते हैं। सब कोई यह मानते हैं कि नामरूपादिका यह समुदाय क्षणिक है।

ये सब बातें जानते हुए भी ऊँच-नीचका जितना झगड़ा हिन्दू समाजमें है, उतना किसी और समाजमें शायद ही दिख पड़े। इसका अनुभव करते हुए एक सज्जन लिखते हैं:[2]

१. देखिए खण्ड ४१।

२. यहाँ नहीं दिया जा रहा है। पत्र-लेखकने कच्चे खाने और पक्के खानेका जिक्र करते हुए लिखा था कि क्या खादी कार्यकर्त्ताओंको इस प्रकारके भेदभावके विरुद्ध आन्दोलन नहीं करना चाहिए, जो जाति-भेदको बढ़ावा देता है।

इस पत्रमें दो प्रश्न उपस्थित किये गये हैं। क्या खादीका प्रचारक लोकमतके वश होकर कच्चे-पक्केका भेद रखे? ऊँच-नीचको माने? मेरा अपना यह निश्चित मत है कि खादीके कारण ही क्यों न हो, मगर कोई खादी-प्रेमी अपने धर्मको न छोड़े, अयोग्य आचरण न करे, अच्छे हेतुसे भी बुराईका आश्रय कभी न लें, मलीन साधनसे शुद्धकी साधना कभी नहीं हो सकती। खादीमें जिन शक्तियोंकी कल्पना हम करते हैं, उन सबका सर्वथा नाश हो जाये यदि हम खादी-प्रचारके लिए अशुद्ध साधनका आश्रय लेकर काम करें। ऊँच-नीचके भेदका नाश होना तो खादीका एक महान फल है।

अब दूसरा प्रश्न यह है कि कच्चे-पक्केके अभेदका आन्दोलन क्यों न किया जाये? खादी-प्रचारकके आन्दोलनका विषय खादी ही हो सकती है। अपने जीवनमें से कच्चे-पक्केके भेदको हटा देनेपर उसका इस बारेमें और कोई कर्त्तव्य नहीं रह जाता है। यह भी समझना चाहिए कि आचारसे बढ़कर और कोई प्रचार हो ही नहीं सकता। जो काम मनुष्य दूसरोंसे कराना चाहता है, उसे वह स्वयं करे। उसका यह सबसे बढ़कर असरदार प्रचार होगा।

हिन्दी नवजीवन, ३१-१०-१९२९

८८. पत्र : छगनलाल जोशीको

मेरठ
३१ अक्टूबर, १९२९

चि० छगनलाल,

कल तुम्हारी डाक मिली। यदि रघुनाथके कामको चमकाया और बढ़ाया जा सके तो अवश्य वह किया जाना चाहिए। हमारी शिक्षापद्धतिमें तुम्हें जो दोष आज नजर आये हैं वे तो सदा ही मेरे ध्यानमें रहे हैं। इस शिक्षामें अभी सच्ची भावना नहीं आई है; क्योंकि मैं सदा दूर रहता हूँ और सिर्फ टीका-टिप्पणी करके सन्तोष कर लेता हूँ। चौबीसों घंटे सिर्फ इसीका ध्यान करनेवाला कोई बुद्धिमान व्यक्ति अभी तक हमें मिला ही नहीं है। तुम, रमणीकलाल और नारणदास; सिर्फ इतने ही लोग हो। इसके बादमें रावजीभाई और शिवाभाईको गिनता हूँ और फिर शंकरभाईको। इसके अतिरिक्त कुछ अन्य लोग भी मेरे ध्यानमें हैं। यदि इनमें से कोई तैयार हो जायेंगे तभी बात बन सकेगी।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (एस० एन० १५८२९)की माइक्रोफिल्मसे।

८९. पत्र : छगनलाल जोशीको

मेरठ
१ नवम्बर, १९२९

चि० छगनलाल,

तुम्हारा पत्र मिला। मोटर रखनेके बारेमें तो पहले भी कई बार चर्चा हो चुकी है। मोटर रख लेनेसे खर्च घटनेकी तो सम्भावना है किन्तु इससे हमारी उलझनें बढ़ जायेंगी। लोग उसका उपयोग भी अधिक करेंगे और मुझे ऐसा लगता है कि आखिरकार हमें मोटर हटा देनी पड़ेगी। दो-एक बार मोटर भेंट देनेके वचन भी मिले थे। किन्तु जान-बूझकर तथा मगनलाल आदिसे चर्चा करनेके बाद उक्त भेंटोंको अस्वीकार कर दिया गया था।

हमारे लिए मोटरकी अपेक्षा कहीं अधिक आवश्यक चीज बिजली है। इससे अधिक सुविधा होगी और खर्च कम पड़ेगा। यदि हम बिजली लें तो हमारे चूल्हे भी बिजलीके होने चाहिए। फिर भी बिजली लेनेकी मेरी हिम्मत नहीं पड़ी। किन्तु मैं मानता हूँ कि हमारे यहाँ एक न एक दिन मोटर और बिजली अवश्य आ जायेगी। ये दोनों चीजें मेरे जीवित रहते हुए ही आ जायेंगी और होगा यह कि मैं स्वयं हार मानकर उन्हें स्वीकार कर लूँगा। किन्तु फिलहाल मेरे अन्तरकी आवाज साफ-साफ यह कहती है कि हमें ये चीजें नहीं लेनी चाहिए।

खच्चर तो हम कभी नहीं रखेंगे। हमें बैलसे ही काम लेना चाहिए और नाल जड़वाने आदिका खर्च उठाते रहना चाहिए। बैल भाई जितना काम दे उतनेसे हमें सन्तोष कर लेना चाहिए। गाय हमारी माता है इसलिए बैल सगा भाई हुआ, है न? और जबतक हम अपने और परायेमें भेद मानते हैं तबतक सगे भाईको भले ही वह लूला-लंगड़ा क्यों न हो, निभानेके सिवा और कोई चारा नहीं है।

जमनादाससे[१] जो खबर तुम मँगाना चाहते हो वह मैं मँगा लूँगा। जमनादास पर मेरा इतना विश्वास जम गया है कि उसके हाथसे यदि कुछ अधिक खर्च भी हो जाये तो भी मैं निश्चिन्त रहता हूँ। वैसे तो मैं जानता ही हूँ कि राष्ट्रीय विद्यालयका मकान बनवानेमें ही मेरे अनुमानसे ज्यादा खर्च हो गया है। बहुत करके तो मैंने अपनी यह राय विद्यालयके उद्घाटनके समय सार्वजनिक रूपसे सभामें ही बता दी थी। मैंने यह बात जमनादासको तो बताई ही थी और उसने अपनी गलती स्वीकार भी कर ली थी। मेरी स्थिति तो यह है। तुम्हारी स्थिति अलग है। तुम्हें तो सूक्ष्मसे-सूक्ष्म प्रश्न पूछने ही चाहिए। अतः तुमने जो प्रश्न पूछे हैं वे ठीक हैं।

१ मगनलाल गांधीके छोटे भाई तथा राजकोट राष्ट्रीय विद्यालयके आचार्य।

फर्रुखाबादसे प्राप्त कपड़ा आश्रमके संग्रहालयमें रख देना।

पत्रको यहीं अधूरा छोड़ रहा हूँ।

बापूके आशीर्वाद

दिल्ली, १-११-१९२९[१]

गुजराती (जी० एन० ५४६९) की फोटो-नकलसे।

९०. सर्वदलीय नेताओंका संयुक्त वक्तव्य[२]

नीचे हस्ताक्षर करनेवाले हम सब लोगोंने वाइसरायकी वह घोषणा, जो उन्होंने संसार भरके राष्ट्रोंमें भारतके भावी दर्जेके सम्बन्धमें की है, सावधानीके साथ पढ़ी है।

घोषणाके पीछे जो हार्दिकता है उसकी हम कद्र करते हैं और साथ ही इस बातकी भी कद्र करते हैं कि ब्रिटिश सरकार भारतीय लोकमतको सन्तुष्ट करना चाहती है। हम आशा करते हैं कि हम भारतकी आवश्यकताओंको देखते हुए एक उपयुक्त औपनिवेशिक संविधानकी योजना तैयार करनेके लिए सम्राट् की सरकार द्वारा किये जानेवाले प्रयत्नमें सहयोग दे सकेंगे। पर हम यह आवश्यक समझते हैं कि कुछ खास काम किये जायें, और कुछ खास बातें साफ कर दी जायें, ताकि देशकी प्रमुख राजनीतिक संस्थाओंको इस प्रयत्नमें भरोसा हो जाये और वे इसमें जरूर सहयोग दें। प्रस्तावित सभाकी सफलताके लिए हम यह अत्यावश्यक समझते हैं कि:

(क) अधिक शान्त वातावरण तैयार करनेके लिए साधारण मेल-मिलापकी नीति निश्चित रूपसे अख्तियार की जाये;

(ख) राजनैतिक कैदियोंको आम क्षमादान दे दिया जाये; और

(ग) प्रगतिशील राजनैतिक संस्थाओंसे काफी प्रतिनिधि लिये जायें और चूँकि भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस उनमें सबसे बड़ी संस्था है, इसलिए उसके प्रतिनिधि खास तौर पर अधिक रहें।

सम्राट्की सरकारकी ओरसे वाइसरायने जो वक्तव्य निकाला है, उसके औपनिवेशिक स्वराज्यके सम्बन्धमें जो अनुच्छेद है उसकी व्याख्याके सम्बन्धमें कुछ सन्देह व्यक्त किया गया है। फिर भी हम यह समझते हैं कि सभा यह विचार करनेके

१. इससे स्पष्ट है कि पत्र दिल्ली पहुँचकर पूरा किया गया था।

२. इस वक्तव्यपर महात्मा गांधी, मदनमोहन मालवीय, तेजबहादुर सप्रू, मु० अ० अन्सारी बी० एस० मुंजे, शेरवानी, एम० एस० अणे, सैयद महमूद, पी० ठाकोरदास, महाराजा महमूदाबाद, मोतीलाल नेहरू, जवाहरलाल नेहरू, एनी बेसेंट, सरोजिनी नायडू, ए० आर आयंगार, जे० एम० सेनगुप्त, वल्लभभाई पटेल, जगतनारायण लाल, जी० एस० नटेसन, दुनीचन्द और पी० अय्यरने हस्ताक्षर किये थे। विट्ठलभाई पटेलके निवास स्थानपर नवम्बर १ और २, १९२९ को वाइसरायकी ३१ अक्टूबरकी घोषणापर विचार करनेके लिए सर्वदलीय परिषद्की बैठक हुई थी। देखिए परिशिष्ट १।

लिए नहीं होगी कि औपनिवेशिक स्वराज्य कब स्थापित किया जाये, बल्कि वह भारतके लिए औपनिवेशिक स्वराज्यके संविधानकी योजना तैयार करनेके लिए होगी। हम आशा करते हैं कि वाइसरायकी प्रभावशाली घोषणाके अभिप्राय और संकेतोंकी इस तरहसे व्याख्या करनेमें हमने गलती नहीं की है।

जबतक नया संविधान तैयार नहीं हो जाता है, तबतक हम यह आवश्यक समझते हैं कि इस देशकी सरकारमें अधिक उदारताकी भावना लाई जाये, और व्यवस्थापिका सभा और कार्य पालिकाके सम्बन्ध प्रस्तावित सभाके उद्देश्यसे और अधिक सामंजस्यपूर्ण बना दिये जायें और संवैधानिक उपायों और कार्रवाइयोंकी ओर अपेक्षाकृत अधिक ध्यान दिया जाये। हम यह अत्यन्त आवश्यक समझते हैं कि जनताको ऐसा महसूस करनेका अवसर दिया जाये कि आजसे ही नया युग आरम्भ हो गया है और नया संविधान तो केवल इस सत्यको लेखबद्ध करनेके लिए ही होगा।

अन्तमें सभाकी सफलताके लिए हम इस बातको नितान्त आवश्यक समझते हैं कि यह यथासम्भव शीघ्र की जाये।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दुस्तान टाइम्स, ४-११-१९२९

९१. भाषण : नागरिक अभिनन्दन समारोह दिल्लीमें[1]

२ नवम्बर, १९२९

अभिनन्दन-पत्रका जवाब देते हुए महात्माजीने कहा कि नगरपालिकाने मेरा जो सम्मान किया है उसके लिए मैं कृतज्ञ हूँ। उन्होंने देरसे आनेके लिए खेद व्यक्त किया और कहा कि डाक्टरों, वकीलों और राष्ट्रके सेवकोंका समय खुद उनका अपना नहीं होता। उन्होंने नगरपालिकाको उसके कामोंके लिए बधाई दी जो उसने शहरके लिए किये थे; लेकिन उन्होंने शहरके प्रमुख व्यक्तियोंसे कहा कि गरीबोंकी सेवा करना ही उनका प्रथम कर्त्तव्य होना चाहिए। गरीब, जरूरतमन्द, और असहाय लोगोंकी सेवा ही एकमात्र सच्ची सेवा है, जिसे नगरपालिका कर सकती है।

भाषण जारी रखते हुए उन्होंने कहा कि आपका यह सोचना गलत होगा कि राष्ट्रीय-कार्य नगरपालिकाके क्षेत्रसे बाहरका है। शहरमें हिन्दू-मुस्लिम एकता स्थापित करना आपका मुख्य कर्त्तव्य है। जो नगरपालिका इस दिशामें अपना कर्त्तव्य सिर्फ इसलिए पूरा नहीं करती कि यह नगरपालिकाके नियमों और विनियमोंमें नहीं है, अपने कर्त्तव्यसे च्युत होती है। उन्होंने कहा :

यदि आज दिल्ली नगरपालिकाके सदस्य यह तय करलें कि वे देशकी राजधानीमें पारस्परिक भेदभाव और वैमनस्य जड़से उखाड़ फेकेंगे, तो यह देशके प्रति

१. यह भाषण दिल्लीकी नगरपालिका द्वारा दिये गये अभिनन्दन-पत्रके उत्तरमें दिया गया था।

अपने कर्त्तव्यका पालन मात्र ही होगा, उससे अधिक कुछ नहीं। मैं तो एक बहुत ही गरीब आदमी हूँ और अपने आपको दरिद्रनारायणका प्रतिनिधि मानता हूँ और आपने मुझे एक बहुत कीमती हाथी दाँतकी मंजूषा भेंट की। मैं इसे अपने पास कैसे रख सकता हूँ? मैं इसे आपको भेंट करता हूँ और इसके बदले आपसे मोहरें लूँगा (हँसी)। मेरा अपना कोई घर नहीं है और कोई तिजोरी नहीं है, जहाँ मैं यह कीमती मंजूषा रख सकूँ। नगरपालिका होनेके नाते आप मुझे नकद नहीं दे सकते, लेकिन मैं इसकी नीलामी करता हूँ और आपसे उसका दाम उदारतापूर्वक चुकानेको कहता हूँ। इससे मिलनेवाला प्रत्येक रुपया चरखा कातनेके जरिये १६ असहाय औरतोंको भोजन देगा और वे आपकी समृद्धिके लिए प्रार्थना करेंगी। मैंने इस तरहकी मंजूषाएँ हर जगह बेच दी हैं और उनकी बहुत भारी कीमत याने प्रति मंजूषा १००० रु० तक वसूल की है। मुझे एक बनिया नहीं, वरन् गरीबोंका प्रतिनिधि मानकर, मेरे साथ सौदा कीजिए। (हर्ष-ध्वनि)

[अंग्रेजीसे]

हिन्दुस्तान टाइम्स, ४-११-१९२९

९२. भाषण : सार्वजनिक सभा, दिल्लीमें

२ नवम्बर, १९२९

इसके बाद . . . महात्मा गांधीने कांग्रेस कमेटीको उसके 'लम्बे अभिनन्दन-पत्र', मजदूर सभाको 'छोटे अभिनन्दन-पत्र' और जनताको थैलीके लिए धन्यवाद दिया।

महत्माजीने कहा कि मेरे दौरेके नियमोंके अनुसार अभिनन्दन-पत्र पढ़े नहीं जाने चाहिए थे, लेकिन चूँकि मैंने नगरपालिकाका अभिनन्दन-पत्र पढ़नेकी अनुमति दे दी और इस तरह एक अपराध किया, इसलिए मुझे और भी अपराध करने पड़े। (हँसी)

महात्माजीने मार्मिक स्वरमें कहा :

दिल्ली, जहाँ किसी जमानेमें हकीम अजमलखाँ और स्वामी श्रद्धानन्द जैसे महान व्यक्ति रहते थे, अब देशको सही नेतृत्व नहीं दे पा रही है। हम असहाय लोग इन दो महान आत्माओंकी अनुपस्थितिमें कर ही क्या सकते हैं। मैं जब दिल्ली आता हूँ, मुझे दुःख होता है।

भाषण जारी रखते हुए उन्होंने कहा कि मैं अभिनन्दन-पत्रोंकी भेंट लेनेके लिए दिल्ली नहीं आया हूँ। मैं पहले भी कई बार दिल्ली आया हूँ, लेकिन इस बार मैं एक स्वार्थ-साधनेके उद्देश्यसे आया हूँ। (हँसी) महात्माजीने कहा कि गरीबोंकी खातिर मैं लोभी बन गया हूँ और बढ़ रहे लाखों लोगोंको खादीका काम मुहैया करनेके लिए पैसे माँग रहा हूँ।

मुझे यह कहते हुए दुख होता है कि दिल्लीका योगदान छोटे-छोटे शहरोंसे भी न्यून रहा है। उन्होंने मुझे पाँच-पाँच हजार रुपयोंसे भी ज्यादा दिया है। मैं जानता हूँ कि दिल्लीके नागरिक ऐश आरामकी चीजोंपर और बेकारकी चीजोंपर खर्च करते हैं, लेकिन अगर वे अपने खर्चे पूरे करनेके बाद भी अपनी बचतकी रकम मुझे दे दें, तो उससे मेरी क्षुधा तृप्त हो सकती है। (हँसी)

महिलाओं और विद्यार्थियोंने अपने हिस्सेका चन्दा दे दिया है, लेकिन मैं अपने श्रोताओंसे और ज्यादा चन्देकी आशा करता हूँ।

महात्माजीने फिर अपने विषयपर लौटते हुए कहा कि दिल्ली नगर इतना महत्त्वपूर्ण और ऐतिहासिक है कि यदि दिल्लीके नागरिक एक बार आपसमें एकता कायम करनेका निश्चय कर लें, तो वह सारे देशके लिए आदर्श नगर बन जाये।

ईश्वरसे प्रार्थना कीजिए कि वह हमें वैमनस्यके अभिशापसे मुक्त कर दे और मैं आपसे पूछता हूँ कि यदि हिन्दू-मुस्लिम-एकता कायम नहीं हो जाती, तो नेताओंके ऐसे जोरदार वक्तव्योंसे, जैसा कि एक आज भी दिया गया है, क्या हासिल हो सकता है।

दिल्ली अगर चाहे तो सफलतापूर्वक विदेशी वस्त्रोंका बहिष्कार कर सकती है और अन्य शहरोंका नेतृत्व कर सकती है। दिल्लीके नागरिक कई अन्य चीजोंका व्यापार कर सकते हैं। उन्होंने श्रोताओंसे अपील की कि हर व्यक्ति कांग्रेसमें सदस्यकी हैसियतसे शरीक हो जाये ताकि कांग्रेस कोष कभी खाली न रहने पाये। उन्होंने हिन्दुओंसे अपील की कि वे अस्पृश्यताका अभिशाप मिटायें; अस्पृश्यता ईश्वरकी इच्छा और प्रवृत्तिके विरुद्ध है। उन्होंने मादक द्रव्योंका सेवन त्याग देनेकी जोरदार अपील करते हुए कहा कि "इन हैवानों जैसी आदतोंको छोड़ दीजिए"।

इसके बाद महात्माजीने मजदूर सभाके अभिनन्दन-पत्रकी चर्चा की और कहा कि मजदूर मुझे अच्छी तरहसे जानते हैं और मैं भी उन्हें अच्छी तरहसे जानता हूँ; क्योंकि मैं खुद भी एक मजदूर हूँ। मजदूरोंको अच्छे खाने और अच्छी पोशाक पानेका पूरा हक है; किन्तु मजदूरोंका कर्त्तव्य यह है कि वे अपने कामको ईमानदारीसे और ठीक ढंगसे करें।

मैं मालिक और नौकर या मजदूरके बीचका अन्तर मिटा देना चाहता हूँ। हमारी पुरातन सभ्यता हमें यही शिक्षा देती है कि मालिक या नौकर ऐसा तो कोई दर्जा ही नहीं होता; यह तो पिता और पुत्र जैसा सम्बन्ध होता है; यदि ऐसा सम्बन्ध स्थापित किया जाये तो पूँजीपतियों और मजदूरोंमें कोई झगड़ा नहीं हो सकता। (हर्षध्वनि) अगर मालिक अपने आपको मजदूरोंका पिता और संरक्षक मानें और मजदूर मिलोंको अपनी मिलें मानें, तो दोनों ही संसारके सामने एक आदर्श पाठ रख सकते है। (हर्षध्वनि)

भाषण समाप्त करते हुए उन्होंने कहा :

हमारी शक्ति बहुत है; हमें दृढ़ निश्चयकी और अच्छी तरह सोच-समझकर काम करनेकी जरूरत भर है। मैं ईश्वरसे प्रार्थना करता हूँ कि वह हमें इच्छाशक्ति और भय त्याग कर कार्यक्षेत्रमें कूद पड़नेकी शक्ति दे ताकि भारत माता फिर एक बार स्वतन्त्र हो सके। (जोरकी तालियाँ)

[अंग्रेजीसे]

हिन्दुस्तान टाइम्स, ४-११-१९२९

९३. शुष्क 'नवजीवन'?

एक सरल हृदय 'नवजीवन' प्रेमी लिखते हैं :[1]

यह पत्र पढ़ते समय मुझे कहानीके चित्रकारकी तदवीरका स्मरण हो आया। अगर मैं 'नवजीवन' के सभी आलोचकोंकी आलोचनाओंका संग्रह करके उसपर अमल करना चाहूँ तो सम्भव है, मुझे 'नवजीवन' का काम ही समेट लेना पड़े। किन्तु वैसा तो मैं करना नहीं चाहता। मैं और मेरे साथी यथासम्भव 'नवजीवन' को नीरस न बनने देनेका प्रयत्न बराबर करते रहते हैं। 'नवजीवन' में एक भी ऐसी पंक्ति नहीं लिखी जाती जिसका उपयोग स्वराज्य-यज्ञके लिए न हो। इस यज्ञ-विधिके सम्बन्धमें मतभेद हो सकता है और है; यह तो प्रस्तुत आलोचक ही सिद्ध कर रहे हैं। ऐसा मतभेद तो बना ही रहेगा। लेकिन प्रस्तुत आलोचकको जो लेख पसन्द नहीं आये, वही दूसरोंको रुचिकर मालूम हुए हैं, यह मैं जानता हूँ। जो स्वराज्य-यज्ञकी विशालताको समझता है, उसे 'नवजीवन' के लेखोंकी उपयोगिताको समझनेमें कठिनाई नहीं होनी चाहिए। मैं यह भली-भाँति जानता हूँ कि यह कदापि सम्भव नहीं कि 'नवजीवन' का प्रत्येक लेख प्रत्येक पाठकके लिए रुचिकर हो सके। कोई भी पत्र इस शर्तपर चल ही नहीं सकता। अखबारोंमें तो भिन्न-भिन्न प्रकारकी रुचिवाले मनुष्योंके लिए विविध लेख लिखे जाते हैं और रसिक पाठकोंको जिस लेखसे सन्तोष न हो उसके प्रति उन्हें उदार दृष्टि रखनी चाहिए। वे यह समझ लें कि जिस लेखसे उनका मनोरंजन नहीं होता, उसीसे दूसरोंको आनन्द मिल सकता है। उदाहरणार्थ, 'वेद आदिमें वस्त्रविद्या'[2] शीर्षक लेखके सम्बन्धमें जिस समय प्रस्तुत आलोचना मिली, उसी समय एक दूसरा पत्र मुझे मिला था, जिसमें 'नवजीवन' के एक दूसरे प्रेमीने ऐसे तमाम लेखोंको पुस्तक-रूपमें छाप देनेकी इच्छा प्रकट की थी। पुराने जमानेमें या सौ वर्ष पहले ही हम खादी पहनते थे, यह किसे नहीं मालूम होगा? लेकिन यह बात तो वेदोंके जानकार ही जानते और हमें बता सकते हैं कि खादीके वस्त्रोंको जो महत्त्व

१. पत्र यहाँ नहीं दिया जा रहा है। पत्र-लेखककी शिकायत थी कि **नवजीवन**में न तो आधुनिक राष्ट्रीय विचारधाराके द्योतक लेख प्रकाशित होते हैं और न वे हृदयस्पर्शी ही होते हैं। लेखकने १३-१०-१९२९ के **नवजीवन**में प्रकाशित कई लेखोंकी आलोचना की थी।

२. वालजी गोविन्दजी देसाई द्वारा लिखित।

आज हम देने जा रहे हैं, वही वैदिक कालमें भी उनको प्राप्त था या नहीं। उन दिनों कताईका काम सर्वत्र फैला हुआ था और इसे धार्मिक क्रिया माना जाता था। यह कैसे कहा जा सकता है कि इस तरहकी जानकारी निरर्थक है? मैं ऐसे कई लोगोंको जानता हूँ। जिन्होंने यह जानकर कि वेदमें कताईकी प्रशंसा की गई है, स्वयं कातना सीखा है। उस जमानेमें कताई आदि क्रियाएँ इतनी व्यापक थीं कि तत्सम्बन्धी कई शब्दोंका प्रयोग आध्यात्मिक विचारोंको प्रकट करनेमें भी किया जाता था। यह निरर्थक वस्तु नहीं है। और इसमें जरा भी शक नहीं कि जिन वस्तुओंसे प्राचीन विचारों, कला-कौशल आदिकी महिमा सिद्ध होती है और जो उनके प्रति हमारे आदरभावको बढ़ानेवाली हैं, वे सब वस्तुएँ हमें स्वराज्यके मार्गपर ले जानेवाली हैं।

अब 'एक विनाशक कुटेव'को[1] लीजिए। मालूम होता है कि उक्त लेखकको इस बातका ठीक-ठीक पता नहीं है कि शौचादिसे सम्बन्ध रखनेवाली हमारी गन्दी आदतें जनताका किस हदतक सर्वनाश कर रही हैं अन्यथा जो एक-दो शास्त्रीय उद्धरण मैंने बड़ी कंजूसीके साथ दिये हैं उनके लिए वे कभी उलाहना न देते। इस गन्दी आदतको छुड़ानेके लिए जितने प्रमाण दिये जा सकें थोड़े हैं। अपनी गन्दगीके कारण दक्षिण आफ्रिकामें हमारी बड़ी फजीहत हो चुकी है। इन्हीं कुटेवोंके कारण आरोग्य सम्बन्धी नियमोंका पालन करनेवाले लोग हमारा पड़ोस छोड़ देते हैं। इन्हीं गन्दी आदतोंके कारण अनेक बीमारियाँ फैलती हैं। इन्हींके कारण करोड़ोंकी हानि होती है। जो हमें इन आदतोंको छोड़नेकी प्रेरणा देता है, वह हमें स्वराज्यकी राह पर कई कदम आगे बढ़ाता है, इस सम्बन्धमें मुझे जरा भी सन्देह नहीं है।

अब 'एक सतीका अवसान'[2] पर आता हूँ। इसमें शक नहीं कि ऐसी अन्य सती स्त्रियाँ भी भारतमें होंगी। लेकिन जब-जब ऐसे दृष्टान्त मिलें, उनका संग्रह करके हमें उनका स्मरण और अनुकरण करना चाहिए। यह तभी हो सकता है, जब हमें कोई विश्वसनीय दृष्टान्त मिलें; क्योंकि ऐसे दृष्टान्त ही प्रकाशित किये जा सकते हैं। क्या ऐसी एकनिष्ठ स्त्रियोंका हिन्दुस्तानमें अत्यधिक संख्यामें होना इष्ट नहीं है? जतिनदास बारेमें मैं लिख चुका हूँ।[3] उनका कीर्तिगान तो, क्या देश और क्या विदेश सर्वत्र हो चुका है। लेकिन जिन गरीबोंको कोई पहचानता नहीं, जिन्हें कोई पहचानना ही नहीं चाहता, उन वीरों और वीरांगनाओंका यशोगान करना 'नवजीवन'का अपना विशेष धर्म है। मेरा दृढ़ विश्वास है कि ऐसे ही अज्ञात व्यक्तियों द्वारा हम सच्चा स्वराज्य अथवा रामराज्य प्राप्त कर सकेंगे। और जो यह मानते हैं कि आत्मशुद्धिके बिना उक्त स्वराज्य प्राप्त करना असम्भव है, वे अवश्य ही ऐसे लेखोंका संग्रह करेंगे।

१. देखिए खण्ड ४१, पृष्ठ ६०६-७।

२. महादेव देसाई द्वारा लिखित।

३. देखिए "मेरी चुप्पी", १७-१०-१९२९।

अब रहा 'गुजरातियोंका प्रेम'।[1] मुझे रंचमात्र आशा न थी कि इस निर्दोष टिप्पणीकी भी कभी आलोचना की जायेगी। मैं क्वचित् ही किसीकी स्तुति करता हूँ। मैं तो यह मानता हूँ कि प्रस्तुत पत्र-लेखकने जिन लेखोंकी आलोचना की है, उनके कारण 'नवजीवन' में विविधता आई है। ऐसे लेखोंके अभावमें वह नीरस और शुष्क हो जायेगा। लेखकने जिन लेखोंकी आलोचना की है, मेरा अनुरोध है कि वे उन्हें मेरी दृष्टिसे एक बार फिर पढ़ जायें।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ३-११-१९२९

९४. टिप्पणी

हर्षोन्मत्त ठक्कर बापा

यदि यजमान थोड़ा-सा भी भला काम करता है या वह सुखी दिखाई देता है या उसका भला होता है तो सच्चे पुरोहितको हमेशा खुशी होती है। ठक्कर बापा अन्त्यजों और भीलों आदिके ऐसे ही सच्चे पुरोहित हैं इसलिए यदि उनके यजमान कोई भी भला काम करते हैं अथवा कोई उनकी भलाई करता है तो वे हर्षोन्मत्त हो उठते हैं। और उस हर्षमें वे अपने बुढ़ापेको भूल जाते हैं; यदि बीमार हों तो अपनी बीमारीको भी भूल जाते हैं। ऐसे ही हर्षका अनुभव उन्हें नवसारीमें हुआ। 'नवजीवन' के पाठक यह तो जानते ही हैं कि वहाँ एक अच्छा अन्त्यज आश्रम चल रहा है। यह आश्रम ठक्कर बापाकी देख-रेखमें चलता है। किन्तु वहाँ यदि उन्हें कोई अच्छाई नजर आती है तो वे सहज ही आत्मविभोर नहीं हो जाते। यदि कोई उनपर आत्मप्रशंसाका आरोप लगाये तो उनमें इतना आत्मविश्वास है कि वे उसे हजम कर सकें। भाई दयालजीकी अध्यक्षतामें वहाँ जो सम्मेलन हुआ उसका वर्णन करते हुए ठक्कर बापा लिखते हैं:[2]

हम भी ठक्कर बापाकी खुशीमें हिस्सा बँटायें।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ३-११-१९२९

१. देखिए खण्ड ४१, पृष्ठ ५०४-६।

२. यहाँ नहीं दिया जा रहा है। ठक्कर बापाने भंगी-बालकों और उनके अभिभावकों द्वारा वार्षिक सम्मेलनमें भाग लेनेका विवरण दिया था।

९५. तार : 'डेली एक्सप्रेस' को[1]

[३ नवम्बर, १९२९][2]

सम्पादक
डेली एक्सप्रेस
लन्दन

पिछली रातको तैयार किये गये, सर्वदलीय संयुक्त वक्तव्यमें मैं इसके अलावा और कुछ भी जोड़ना नहीं चाहता कि मैं तथाकथित झूठे सहयोग के स्थानपर सच्चा हार्दिक सहयोग देने और पानेकी जी जानसे कोशिश कर रहा हूँ।

गांधी

अंग्रेजी (एस० एन० १४७२२)की माइक्रोफिल्मसे।

९६. पत्र : एस० शंकरको

मुकाम खुरजा
३ नवम्बर, १९२९

प्रिय शंकर,

एक लम्बे अरसेके बाद तुम्हारा पत्र पाकर खुशी हुई।[3] लेकिन पत्र बिलकुल ही अपर्याप्त है। मैं चाहूँगा कि तुम अपने खादी-कार्यका पूरा-पूरा सही ब्योरा मुझे दो। क्या तुम नियमित रूपसे कताई कर रहे हो? क्या तुम अपनी हिन्दुस्तानी सुधार रहे हो? देखता हूँ कि तुम्हें जितने समयकी जरूरत है, तुम्हारे पास उससे अधिक समय है; तुमसे यह आशा होनी चाहिए थी कि तुम इसका उपयोग खादी के शास्त्रके विभिन्न अंगों विषयक कुशलता प्राप्त करने और अच्छी तरह हिन्दुस्तानी सीखनेमें करोगे।

हृदयसे तुम्हारा,

श्रीयुत एस० शंकर
रेड्डी गार्डन
पेरम्बूर (मद्रास)

अंग्रेजी (एस० एन० १५२०६)की माइक्रोफिल्मसे।

१. यह निम्नलिखित समुद्रीतारके उत्तरमें भेजा गया था : वाइसरायकी घोषणासे भारतीय मतके स्वीकृत होनेकी आशा बँधती है। क्या विचार है? सम्पादक : **डेली एक्सप्रेस**, लन्दन।

२. २ नवम्बर, १९२९ को हस्ताक्षर किये गये, सर्वदलीय नेताओंके संयुक्त वक्तव्यके सन्दर्भमें।

३. शंकर मद्रासमें खादी-कार्य कर रहे थे और हिन्दुस्तानी सेवादलके लिए कांग्रेसके सदस्य भर्ती कर रहे थे।

९७. पत्र : एच० डब्ल्यू० बी० मोरेनोको

मुकाम खुरजा
३ नवम्बर, १९२९

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला।[1] मैं चाहूँगा कि आप हमारे बीचके लोगोंके विभिन्न दृष्टिकोणोंके बारेमें चिन्ता न करें। मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि मैं आंग्ल भारतीयोंके हितका जितने आप हो सकते हैं, उससे कम समर्थक नहीं हूँ। खीरका स्वाद तो खानेपर ही मिलता है। मुझे आशा है कि जब अवसर आयेगा मैं चूकूँगा नहीं। परन्तु मेरा स्वाभाविक तरीकेसे काम करना ही ठीक होगा; उसमें बनावटीपन नहीं चाहिए।

हृदयसे आपका,

डा० एच० डब्ल्यू० बी० मोरेनो
प्रधान, आंग्ल भारतीय लीग
२ वेलेजली स्क्वेयर
कलकत्ता

अंग्रेजी (एस० एन० १५६३३)की फोटो-नकलसे।

१. गांधीजीके ३-१०-१९२९ के पत्र और "द एंग्लो इंडियन्स" नामक लेख २९-८-१९२९ (देखिए खण्ड ४१) का हवाला देनेके बाद डा० एच० डब्ल्यू० बी० मोरेनोने लिखा था: मैंने पिछले २५ वर्षोंमें आंग्ल भारतीयों और अन्य भारतीयोंके बीच मित्रता स्थापित करनेकी कोशिश की है। आप स्वीकार करेंगे कि सम्बन्ध . . . अब जैसे पहले थे उससे बेहतर हैं। एक चीज बाकी है — जब हम अन्तिम बार मिले थे तो आपने यह बात बताई थी कि आंग्ल भारतीयको 'मैं भारतीय हूँ' यह बात सिर्फ कहनी ही नहीं चाहिए बल्कि भारतीय होनेमें गर्व अनुभव करना चाहिए और इस तरह अनमने भावसे नहीं कहना चाहिए जैसे कि उसे यह स्वीकार करनेके लिए बाध्य किया गया हो; . . . यदि आप और दूसरे भारतीय नेता, जितना हम पास आयें उतना ही 'हम शासक वर्गके लोग हैं' 'दोगले' हैं, इत्यादि बातें कहकर हमारी खिल्ली उड़ाएँ या खिल्ली उड़ानेका आभास भी दें तो हमें आपके ज्यादा करीब आनेमें कोई मदद नहीं मिलती। दूसरी तरफ आंग्ल भारतीय लोगोंका समाज कहेगा: "देखिए, बात यह है; हमने तो आपसे यह कहा ही था; आप इन भारतीयोंसे मिलकर एक होना चाहते हैं; किन्तु देखिए आपसे कैसा सलूक किया जानेवाला है, इसके आसार तो अभीसे नज़र आ रहे हैं।" . . . आप **यंग इंडिया**में फिरसे लिखें और इस तरह सबको बता दें कि भारतीयोंके मनमें आंग्ल भारतीयोंको अपनी ओर आकर्षित करनेकी कितनी उत्कण्ठा है. . . (एस० एन० १५६३२)।

९८. पत्र : गोविन्द मिश्रको

मुकाम खुरजा
३ नवम्बर, १९२९

प्रिय गोविन्द बाबू,

श्री बैंकरको निरंजन बाबूके सम्बन्धमें आपने जो पत्र[1] लिखा था उसकी एक नकल उन्होंने मुझे भेजी है। आपका पत्र अस्पष्ट है और बातें मोटे ढंगसे कही गई हैं। यदि आपकी निरंजन बाबूके खिलाफ सचमुच कोई ऐसी शिकायत है, जिसे आप प्रमाणित कर सकते हैं, तो आपको पूरी तरहसे ठीक और साफ बात लिखनी चाहिए और उसमें वे सब तथ्य जिनको आप साबित कर सकते हैं, देने चाहिए, आपको उनकी ईमानदारीपर सबसे पहले कब सन्देह हुआ?

हृदयसे आपका,

श्रीयुत गोविन्द मिश्र
गांधी सेवाश्रम
चंपापुर हाट
जिला-कटक

अंग्रेजी (एस० एन० १५६७५)की माइक्रोफिल्मसे।

९९. पत्र : सी० पी० मैथ्यूको

मुकाम खुरजा
३ नवम्बर, १९२९

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। विद्यार्थियोंकी ओरसे उपहारकी[2] प्राप्ति सूचना मुझे आश्रमसे मिल गई है। मेरा सन्देश यह है:

१. गोविन्द मिश्रने आरोप लगाया था कि निरंजन बाबूने खादी-कार्यके लिए संचित कोषका दुरुपयोग किया है और फिजूलखर्ची भी की है। उन्होंने शंकरलाल बैंकरसे अनुरोध किया था कि वे उड़ीसा आयें और मामलेकी जाँच करें।

२. गांधीजीके ६० वें जन्मदिवसके अवसरपर विद्यार्थियोंने उन्हें एक अभिनन्दन-पत्र और ३० रु० की एक थैली भेंटमें भेजी थी।

सच्ची शिक्षा चरित्र-निर्माण करना है। इसलिए विद्यार्थियोंको अपने साहित्यिक अध्ययनके साथ-साथ चरित्र-निर्माणका चाव भी पैदा करना चाहिए।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत सी० पी० मैथ्यू
प्राध्यापक, यूनियन क्रिश्चियन कालेज
अलवाई (द० भारत)

अंग्रेजी (एस० एन० १५६९३)की माइक्रोफिल्मसे।

१००. पत्र: बी० शिवा रावको

मुकाम खुरजा
३ नवम्बर, १९२९

प्रिय मित्र,

आपके पत्रके लिए[1] धन्यवाद। यद्यपि तामिलनाडु कांग्रेस कमेटीको पैसा मेरे द्वारा दिया गया था परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि आज मैं उसके इस्तेमालके ढंगमें दखल दे सकता हूँ। लोकतन्त्रीय संस्थाओंमें सम्पत्ति या उसका नियंत्रण एकके हाथसे दूसरेके हाथमें सौंप दिया जाता है। इसलिए आज उस पैसेपर मेरा कोई नियन्त्रण नहीं है। परन्तु आप चाहें तो मुझे यह सूचित कर दें कि सम्पत्ति आज किसके कब्जेमें है। यदि मैं आपकी किसी भी तरह सहायता कर सका तो उसकी कोशिश करूँगा।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत बी० शिवा राव
थियोसोफिकल सोसाइटी
अडयार, मद्रास

अंग्रेजी (एस० एन० १५७०३)की माइक्रोफिल्मसे।

१. बी० शिवा रावने लिखा था: "...लगभग ८ साल पहले जब बर्किंघम और कर्नाटक मिल्स, मद्रासमें तालाबन्दी हुई थी, आपने कृपा करके मजदूरोंके इस्तेमालके लिए ३०,००० रु० तामिलनाडु कांग्रेस कमेटीको भेजे थे। मुझे यह भी सूचना दी गई है कि इस राशिमें से १५,००० रु० मजदूरोंके इस्तेमालके लिए जमीनका टुकड़ा लेनेके लिए खर्च किये गये थे। मुझे नहीं मालूम कि बाकी रकमका क्या हुआ... हमारा प्रस्ताव है कि यह सम्पत्ति मद्रास मजदूर संघके सुपुर्द कर दी जानी चाहिए..." (एस० एन० १५७०२)।

१०१. पत्र : पापमा रुक्मिणीको

मुकाम खुरजा
३ नवम्बर, १९२९

प्रिय पापमा,

आपका सुन्दर पत्र पाकर मुझे अपार हर्ष हुआ। आप मेरे पास क्यों नहीं आईं? अगर मेरे पास वक्त होता तो मैं आपके पास मिलने आता। आप मुझे पत्र अवश्य लिखती रहें और मुझे बताती रहें कि आप कैसी हैं।

हृदयसे आपका,

कुमारी पापमा रुक्मिणी
१, नार्थ एन्ड रोड
दिल्ली

अंग्रेजी (एस० एन० १५७१४) की माइक्रोफिल्मसे।

१०२. पत्र : एस० महादेव जोशीको

मुकाम खुरजा
३ नवम्बर, १९२९

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला।[1] आपने जो सवाल उठाया है वह बड़ा नाजुक है। इसका सबसे अच्छा जवाब तो यही हो सकता है कि आप सेठ जमनालालजीकी सलाह मानें। आमतौर पर मेरा-उनका दृष्टिकोण एक-सा ही होता है। इसलिए जब मुझे यह मालूम हो कि उन्हें किसी विशेष बातकी स्थानीय परिस्थितिका ज्ञान है, तो मैं उनका निर्णय सही मान लेता हूँ और कोई स्वतन्त्र राय नहीं बनाता।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत एस० महादेव जोशी
सचिव
पूना युवक संघ, पूना शहर

अंग्रेजी (एस० एन० १५७१७) की माइक्रोफिल्मसे।

१. एस० महादेव जोशी हरिजनोंके मन्दिर प्रवेशके लिए २ नवम्बरको चलाये जानेवाले सत्याग्रहमें भाग लेनेवाले बारह स्वयंसेवकोंमें से एक थे; उन्होंने पूछा था कि क्या सत्याग्रह चलानेसे पहले न्यासियोंको काफी वक्त देना और जनमत अनुकूल बना लेना उचित नहीं होगा। (एस० एन० १५७१६)।

१०३. पत्र : ज्ञा० मो० सरकारको

मुकाम खुरजा
३ नवम्बर, १९२९

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। चूँकि मैं लगातार दौरेपर रहता हूँ, मैं अधिक समाचार-पत्र नहीं पढ़ पाता। वैसे भी मैं समाचारपत्रोंकी दुनियाके सम्पर्कमें नहीं था; परन्तु अब तो मेरा सम्पर्क और भी कम हो गया है। इसलिए मुझे मालूम भी नहीं था कि दोनों नेताओंके[1] बीच मतभेद इतने बढ़ गये हैं कि वे जनताकी चर्चाके विषय बन गये हैं। इन मतभेदोंसे आपको जो दुःख हो रहा है, उसमें मैं पूरी तरह आपके साथ हूँ; परन्तु समझमें नहीं आता कि जिस स्थितिमें मैं हूँ, उसमें क्या कर सकता हूँ। इसलिए मैं यह आशा करके ही सन्तोष माने ले रहा हूँ कि सब ठीक हो जायेगा और मतभेदोंको समाप्त करनेके लिए स्थानीय दबाव ही काफी होगा।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत ज्ञानेन्द्र मोहन सरकार
उप-प्रधान
मुर्शिदाबाद जिला कांग्रेस कमेटी
बरहामपुर, बंगाल

अंग्रेजी (एस० एन० १५७२१) की फोटो-नकलसे।

१. सुभाष चन्द्र बोस और जे० एम० सेनगुप्त। ज्ञानेन्द्र मोहन सरकारने सूचना दी थी कि चिटगाँव जिला कांग्रेस कमेटीकी कार्यकारिणीके चुनावके अवसरपर हाल ही में कुछ कार्यकर्ताओंपर हमला किया गया और सुखेन्दु विकास नामक एक व्यक्तिपर इतना बर्बरतापूर्ण हमला किया गया कि उसे इलाजके लिए कलकत्ता ले जाना पड़ा और वह मरणासन्न है। इसका सम्बन्ध हमारे पूर्वोक्त दो नेताओंके बीचके झगड़ेसे जोड़ा जा रहा है। हम आपके हस्तक्षेपकी आशा कर रहे थे; परन्तु आपको अभीतक इस ओरसे निश्चिंत देखकर हमें विवश होकर यह लिखना पड़ रहा है; हमें पूरी आशा है कि आप कृपापूर्वक अपने प्रभावका उपयोग करके इस झगड़ेको समाप्त करा देंगे और इस बातका पूरा प्रयत्न करेंगे कि उनमें सौहार्द स्थापित हो जाये। . . . (एस० एन० १५७२०)।

१०४. पत्र : सी० हनुमन्त रावको

मुकाम खुरजा
३ नवम्बर, १९२९

प्रिय हनुमन्त राव,

आपका पत्र पाकर प्रसन्नता हुई। आशा है कि आप अब भी शरीर और मन दोनों ही तरहसे ठीक महसूस कर रहे होंगे। आश्रममें आपके पास जितना भी वक्त है उसका आप ज्यादासे-ज्यादा और सर्वोत्तम उपयोग करें।[1] प्रति सप्ताह किये गये अपने कामकी साप्ताहिक समीक्षा मेरे पास भेजते रहें।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत सी० हनुमन्त राव
उद्योग मन्दिर
साबरमती

अंग्रेजी (एस० एन० १५७२३) की माइक्रोफिल्मसे।

१०५. पत्र : डा० गोपीचन्दको

मुकाम खुरजा
३ नवम्बर, १९२९

प्रिय डा० गोपीचन्द,

आपका पत्र मुझे कल रात साढ़े ग्यारह बजे मिला था। यह बिलकुल साफ है कि जिनका आपने जिक्र किया है, वे मोजे, बनियान आदि और जो रेशम कश्मीरमें आपके द्वारा बताये गये तरीकेसे तैयार किया जाता है,—इन दोनों ही चीजोंको [प्रदर्शनीमें] शामिल नहीं किया जा सकता। यह प्रश्न मेरे सामने लगभग हर साल आता है। मैं चाहूँगा कि आप यह भी जान लें कि यह कोई ऐसा व्यवसाय नहीं है, जिसे किसी प्रोत्साहनकी जरूरत हो। देशी मिलके धागेसे बनी हुई जुराब-बनियान आदि और इसी तरह कश्मीरमें तैयार किये गये रेशमका एक-एक गज कपड़ा खप जाता है। हमारी प्रदर्शनीका महत्व ऐसी चीजोंका प्रदर्शन करनेमें होना चाहिए, जो अभी देशमें प्रचलित नहीं हुई हैं; जो वस्तुएँ बिना किसी कठिनाईके सहज ही बेची जा सकती हैं—उनके लिए सुविधाएँ प्रदान करनेमें नहीं। मुझे मालूम है कि मैं सब लोगोंको यह साधारण-सी बात भी नहीं समझा पाया हूँ। मैं जिस बातके लिए

१. सी० हनुमन्त राव अध्ययन और अनुभव प्राप्त करनेके लिए छः महीने आश्रममें रहनेके लिए आये थे।

उत्सुक हूँ वह तो यह है कि हम अपनी प्रदर्शनीको सच्ची शिक्षाका माध्यम बनाये रखें। इससे ज्यादा या कम कुछ भी जरूरी नहीं है। इसलिए मुझे इसमें कोई सन्देह नहीं है कि हमें प्रदर्शनीमें किसी भी हालतमें व्यापारिक भावना नहीं आने देनी चाहिए। यह ठीक है कि यदि पूरी तरह शिक्षात्मक कोई प्रदर्शनी सही ढंगसे आयोजित की जाये तो उससे आर्थिक लाभ भी हो सकता है। जो पहली प्रदर्शनी पूरी तरहसे मेरे द्वारा सुझाये गये ढंगपर लगाई गई थी, बड़ी सफल हुई थी। मैं चाहता हूँ कि लाहौर प्रदर्शनीका ढंग भी वैसा ही हो। कश्मीरी रेशमके चुनावके सम्बन्धमें आपको पूरी तरह श्रीनगरमें अ० भा० च० संघके प्रतिनिधि श्रीयुत हरजीवन कोटककी सलाह मान कर चलना चाहिये। सत्याग्रह आश्रमके श्रीयुत छगनलाल जोशी दो या तीन दिनों तक आपके पास पहुँच जायेंगे और वहाँ कुछ समयतक रहेंगे।

हृदयसे आपका,

डा० गोपीचन्द
स्वागत समिति
भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस, (लाहौर)

अंग्रेजी (एस० एन० १५७३७)की माइक्रोफिल्मसे।

१०६. पत्र : शंकरलाल बैंकरको

मुकाम खुरजा
३ नवम्बर, १९२९

प्रिय शंकरलाल,

पल्लीपाड आश्रमके बारेमें लिखा पिछले महीनेकी ३० तारीखका आपका पत्र मुझे मिला। आपको मालूम है कि मैंने उस आश्रमको रुस्तमजी न्यास कोषसे दस हजारसे ज्यादा रुपये दिये थे। जहाँतक मुझे याद पड़ता है कुछ और रकम भी दी गई थी। और इस बातके पीछे कि हनुमन्तरावने[1] आश्रमके लिए अपनी जान दे दी, काफी भावनाएँ जुड़ी हैं। लोगोंको मालूम था कि नेल्लोरमें इकट्ठा किया हुआ पैसा आश्रमको मिलेगा। इसलिए यद्यपि आम तौर पर हमने जो स्तर निर्धारित किया है, वह उसतक शायद न पहुँच पाये, तो भी मैं समझता हूँ कि हमारे पास नेल्लोरका जितना पैसा है, उस हद तक तो संघसे इसे मदद मिलनी ही चाहिए। सम्भवतः तुम यह भी जानते हो कि नेल्लोरसे हमें बहुत बढ़िया बुना कपड़ा मिला है और जिन्हें कोण्डा वेंकटप्पैयाने चुना है, यदि वे लोग आश्रममें जमे रहे तो हम आश्रमके आत्मनिर्भर हो जानेकी आशा भी कर सकते हैं। तेनालीके बारेमें हमें कोण्डा

१. नेल्लोरके एक कांग्रेसी कार्यकर्ता, जिनका मार्च १९२६ में देहान्त हो गया था। देखिए खण्ड ३० पृष्ठ १८४।

वेंकटप्पैयाके उत्तरकी प्रतीक्षा करनी चाहिए। मुझे आशा है कि आपने पं० देव शर्माको १,५०० रु० भेज दिये होंगे। मैंने बहुत पहले हरिद्वारसे पत्र लिखा था और अबतक पं० देव शर्माको पैसा न मिलनेपर मैंने कल तार दिया।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत शंकरलाल बैंकर
अखिल भारतीय चरखा संघ
मिर्जापुर, अहमदाबाद

अंग्रेजी (एस० एन० १५७४१)की माइक्रोफिल्मसे।

१०७. पत्र : नारायण मोरेश्वर खरेको

अलीगढ़
३ नवम्बर, १९२९

भाई पण्डितजी,

यह पत्र जब आपको मिलेगा तबतक तो छगनलाल रवाना हो चुकेगा। नववर्ष[1] आदिकी याद मुझे तो रहती ही नहीं। वहाँसे जब कुछ पत्र मिले तब मुझे पता चला। तुम सबके लिए मेरा आशीर्वाद तो है ही।

मेरे सुननेमें आया है कि भोजनालयके बारेमें जो नये नियम बनाये गये हैं उनकी कटु आलोचना हो रही है। सबसे कहना कि ऐसा करना आश्रमके मूल सिद्धान्तोंके विरुद्ध माना जायेगा। प्रबन्ध-समितिने जो प्रस्ताव पारित किया है उसे वैसा करनेकी स्वतन्त्रता थी। उसका लाभ उठाते हुए यदि कोई अलग रसोई बनाता है तो उससे द्वेष करनेमें विशुद्ध हिंसा है। मैं चाहता हूँ कि इससे सब लोग बचें। असलमें उसकी तो चर्चा ही नहीं होनी चाहिए। यदि कोई कमजोरी दिखाता है तो उससे द्वेष न करके उसपर तरस खाना चाहिए। हम सब एक-दूसरेकी सहानुभूतिके पात्र हैं। यदि हम एक-दूसरेके प्रति सहानुभूति नहीं रखेंगे तो संसारका नाश हो जायेगा। इसी प्रकार एक संस्थामें रहनेवाले लोग यदि एक-दूसरेके प्रति उदार न रहें और हम जैसा करते हैं वही दूसरा न करे या न कर पानेपर उसकी फजीहत करें तो संस्था टूट जायेगी।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० २०८) की नकलसे।
सौजन्य : लक्ष्मीबाई खरे

१. गुजराती नववर्ष।

१०८. पत्र : रेजिनॉल्ड रेनॉल्ड्सको

अलीगढ़
४ नवम्बर, १९२९

प्रिय रेनॉल्ड्स,

आपका एक और सुन्दर पत्र मिला।

आप जो दूसरी चीजें सीखना चाहते हैं, अवश्य सीख लेंगे। अगर आपके जिस्ममें ताकत और दिमागमें ताजगी हो, तो मैं चाहूँगा कि आप सारे कामोंको ज्यादासे-ज्यादा जितना सीख सकें सीख लें।

श्री सिलकॉक जो आपको जानते हैं और श्री विंघम कल मेरे साथ मोटरमें दिल्लीसे अलीगढ़ तक आये।

आपका,
मो० क० गांधी

अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ४५२७) की फोटो-नकलसे।
सौजन्य : स्वार्थमूर कालेज, फिलाडेल्फिया,

१०९. पत्र : जवाहरलाल नेहरूको

अलीगढ़
४ नवम्बर, १९२९

प्रिय जवाहरलाल,

तुम्हारी चिट्ठी अभी-अभी मिली। मैं तुम्हें कैसे धीरज बँधाऊँ। दूसरोंसे तुम्हारी हालत सुनकर मैंने मनमें सोचा, "क्या मैंने तुमपर बेजा दबाव डालनेका दोष किया है?" मैंने तो सदा यह माना है कि तुम बेजा दबावमें आ ही नहीं सकते। मैंने तुम्हारे प्रतिरोधकी हमेशा इज्जत की है। वह हमेशा मर्यादापूर्ण रहा है। तुम दबावमें पड़कर कुछ नहीं मानोगे इसी विश्वासपर मैं अपने दावेपर जोर देता रहा। इस घटनासे सबक लेना चाहिए। मेरा सुझाव जब कभी तुम्हारे दिल या दिमागको न जँचे, मेरा प्रतिरोध करो। ऐसे प्रतिरोधसे मेरा तुम्हारे प्रति प्रेम घटेगा नहीं।

मगर तुम उदास क्यों होते हो? मुझे आशा है, तुम्हारे मनमें लोकमतका डर नहीं है। अगर तुमने कोई बेजा बात नहीं की है, तो फिर उदासी क्यों? और अधिक स्वतन्त्रताकी बातमें स्वाधीनताके आदर्शका विरोध नहीं है। इस समयके कार्यकारी अधिकारी और अगले सालके लिए अध्यक्षकी हैसियतसे, तुम अपने अधिकांश साथियोंकी सामूहिक कार्रवाईसे अपने-आपको अलग नहीं रख सकते थे। मेरी रायमें

तुम्हारा हस्ताक्षर[1] करना तर्क-संगत, बुद्धिमत्तापूर्ण और अन्यथा भी ठीक था। इसलिए मैं आशा करता हूँ कि तुम्हारी उदासी दूर हो जायेगी और सदाकी तुम्हारी प्रसन्नता वापस आ जायेगी।

बयान तुम जरूर दे सकते हो, मगर इस बारेमें जल्दी करनेकी जरा भी जरूरत नहीं है।

अभी-अभी जो दो समुद्री तार[2] मिले हैं उनकी नकलें साथमें हैं। इन्हें पिताजीको भी दिखा देना।

अगर तुम मुझसे चर्चा करना चाहो, तो जहाँ चाहो मुझे पकड़ लेनेमें संकोच न करना।

आशा है, जब मैं इलाहाबाद पहुँचूँगा तब कमलाको स्वस्थ और प्रसन्न पाऊँगा।

हो सके तो तार दो कि अब उदास नहीं हो।

तुम्हारा,
बापू

[अंग्रेजीसे]
ए बंच ऑफ ओल्ड लेटर्स

११०. पत्र : नारायण मोरेश्वर खरेको

अलीगढ़
४ नवम्बर, १९२९

भाई पण्डितजी,

आशा है मनु अब ठीक हो गया होगा। उम्मीद है कि प्रार्थनामें आवश्यक परिवर्तन कर दिया गया होगा। कलावतीके गहने चोरी गये यह मुझे किसी बाहरी आदमीका काम नहीं जान पड़ता। चोरी चाहे जिसने की हो किन्तु सभीको चेता देना चाहिए कि कोई अपने पास कीमती चीजें न रखे।

अपबल, तपबल और बाहुबलमें हम अपका अर्थ खोज रहे थे। यह शब्द अप नहीं बल्कि यप अर्थात् जप है।[3] यदि यह संशोधन न हुआ हो तो कर लेना और सभीसे अपनी-अपनी पुस्तकमें उक्त संशोधन कर लेनेको कह देना। अब हमें हिन्दीके किसी अच्छे जानकारसे हिन्दीके भजनोंमें संशोधन करा लेना चाहिए।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० २०९) की नकलसे।
सौजन्य : लक्ष्मीबाई खरे

१. सर्वदलीय नेताओंके २-११-१९२९ के संयुक्त वक्तव्यपर।
२. देखिए "तार : डेली एक्सप्रेसको", ३-११-१९२९ और "पत्र : ए० फेनर ब्रॉकवेको", १४-११-१९२९।
३. यह व्युत्पत्ति भ्रामक जान पड़ती है। 'अपबल' का अर्थ आत्मबल लेना चाहिए।

१११. पत्र : पन्नालाल झवेरीको

अलीगढ़
४ नवम्बर, १९२९

भाई पन्नालाल,

तुम्हारा पत्र पाकर मुझे प्रसन्नता हुई। तुम जिस दिशामें सोचते हो उसमें मुझे कोई दोष दिखाई नहीं देता। यदि तुम्हारा प्रयोग सफल हुआ तो उससे निश्चय ही बहुतसे नवयुवक लाभान्वित होंगे। मैं आशीर्वाद देता हूँ कि तुम सफल होओ, और मुझे विश्वास भी है कि तुम्हें सफलता मिलेगी। तुमपर मेरा इतना भरोसा है। आशा है तुम अपने प्रयोगका ठीक-ठीक ब्यौरा और हिसाब तो रख ही रहे होगे।

तुम्हें ब्रह्मचर्यके पालनमें सफलता अवश्य मिलेगी क्योंकि तुम दोनों सरल हो, दोनों प्रयत्नशील हो और दोनोंमें संयम भी पर्याप्त है। प्रयत्नशीलको सफलता अवश्य मिलती है। यह 'गीता' का वचन है जो कभी निष्फल नहीं होता।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (जी० एन० ३०९८) की फोटो-नकलसे।

११२. पत्र : आश्रमकी बहनोंको

अलीगढ़
मौनवार, ४ नवम्बर, १९२९

बहनो,

आजकल मुझसे लम्बे पत्रोंकी आशा न रखना। नया वर्ष[1] सबके लिए सुखकर हो।

कलावतीके जेवर चले गये यह हमारे लिए शर्मकी बात है। परन्तु मुझे कलावती पर दया नहीं आती। जो भाई या बहन अपने गहने या कीमती चीजें अपने पास रखते हैं वे आश्रमके नियमोंका उल्लंघन करते हैं, और यदि उनके गहने वगैरा चोरी चले जायें तो उन्हें अफसोस नहीं करना चाहिए। इस घटनासे हम सब चेतें और अपने पेटी-पिटारोंको जाँच लें। सबको इस बातका विश्वास रखना चाहिए कि आश्रमको अमानतके रूपमें दी हुई चीज जब चाहिए तब वापस मिल सकती है।

१. गुजरातमें नया वर्ष दीपावलीसे प्रारम्भ होता है।

रसोईघरका नियम बन गया, यह अच्छा हुआ। अब उसकी चर्चा हरगिज न होनी चाहिए। जिन पुराने परिवारोंको अलग भोजन बनानेकी इजाजत मिल जाये, वे जरूर अलग पकायें; और इसका कोई बुरा न माने।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (जी० एन० ३७०८)की फोटो-नकलसे।

११३. पत्र : फूलचन्द के० शाहको

अलीगढ़
४ नवम्बर, १९२९

भाईश्री फूलचन्द,

वल्लभभाईसे दिल्लीमें मेरी भेंट हुई थी। तुम्हारे और उसके विवरणमें मुझे अन्तर दिखाई पड़ता है। वल्लभभाई कहते हैं कि अमलदारोंने माफी माँगी थी इसलिए ठाकोर साहबने प्रधानसे जाँच बन्द कर देनेको कहा था। मणिलालने ऐसा नहीं किया इसलिए जाँच बन्द करनेका हुक्म निकला था। यदि यह बात सही हो तो मेरे विचारमें तुम्हारा संघर्ष करना अनुचित था। यदि तुम्हारा संघर्ष निर्दोष हो तो डटे रहना।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (जी० एन० ९१९१)की फोटो-नकलसे।

११४. पत्र : गंगाबहन वैद्यको

अलीगढ़
मौनवार, ४ नवम्बर, १९२९

चि० गंगाबहन (बड़ी),

तुम्हारे पत्र मिले। चाहे जो हो तुम्हें उसकी चिन्ता ही नहीं करनी चाहिए। हमें तो जो आता है उसे कर डालें। उसके गुण-दोषका मालिक तो ईश्वर है। तुम चिन्ता करती ही रहती हो। चिन्ता करना छोड़ देना।

नाथजीके[1] आनेतक प्रतीक्षा करना। अब तुम अपना काम छोड़कर कहीं जा नहीं सकतीं।

१. केदारनाथ कुलकर्णी, किशोरलाल मशरूवालाके गुरु तथा गंगाबहनके पथ-प्रदर्शक।

तुम्हें फल अवश्य खाने चाहिए। शरीरपर अत्याचार करके उसे कैसे सुधारा जा सकता है?

लक्ष्मीके लौटनेपर उसे कहीं अन्यत्र रखनेका प्रयत्न करूँगा।

कलावतीके गहने चोरी चले गये, इसमें उसीका भारी दोष है। उनसे छुटकारा मिला, यह ठीक ही हुआ। हालाँकि इस बातका दुःख तो है ही कि किसीने उन्हें चुराया। किन्तु यदि हमारी तपस्यामें कमी होगी तो चोरी अवश्य होगी।

तुम उपवासका विचार मत किया करो। मैं जब लौटूँगा तब इस बारेमें बातचीत कर लेंगे। किन्तु इस बारेमें तुम चिन्ता मत करना। तुम उपवास नहीं कर सकीं, इससे तुम्हें लाभ ही हुआ है। यदि तुमने उपवास पूरा कर लिया होता तो उससे अभिमान उत्पन्न हो जानेकी सम्भावना थी। ईश्वरने तुमपर कृपा करके तुम्हें अभिमान करनेका मौका ही नहीं दिया। नारद जैसोंने अभिमान किया तो उनका गर्व चूर-चूर हो गया। इतना अवश्य जान लेना कि उपवासमें कोई विशेष चमत्कार नहीं है।

बापूके आशीर्वाद

[गुजरातीसे]
बापुना पत्रो – ६ : गं स्व० गंगाबहेनने

११५. पत्र : कलावती त्रिवेदीको

अलीगढ़
मौनवार [४ नवम्बर, १९२९][1]

चि० कलावती,[2]

तुमारे जेवर गए यह दुःखकी नहिं परंतु सुखकी बात मानो। तुमने आश्रमके नियमका उल्लंघन कीया इसके लीये तुमको भगवानने शिक्षा दी। जेवरका कोई उपयोग तुम्हें नहिं था। अब मेरा मानो तो जो जेवर पहनती है, उसे भी उतार दो उसे बेचो उसके पैसे बैंकमें रखो। तुमारा चित्त प्रसन्न होगा। मुझे लीखा करो।

बापूके आशीर्वाद

जी० एन० ५२९२ की फोटो-नकलसे।

१. गांधीजीके अलीगढ़में होने तथा कलावती त्रिवेदीको कालाकांकरसे १४-११-१९२९ को लिखे पत्रके आधारपर।

२. आश्रमके एक अन्तेवासी काशीनाथ त्रिवेदीकी पत्नी।

११६. भाषण: मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़में[1]

४ नवम्बर, १९२९

महात्माजीने . . . खड़े होकर न बोल पानेकी अपनी असमर्थताके लिए क्षमा माँगी और कहा कि ईश्वर मुझपर इतना मेहरबान नहीं है कि मैं सामान्य रूपसे भी स्वस्थ बना रहूँ। उन्होंने अपने श्रोताओंसे कहा — आप ईश्वरसे प्रार्थना करें कि आपने मुझे जो मान दिया है वह मुझे उसका पात्र बनाये रखे और मेरा हृदय पवित्र रखे। उन्होंने कहा — मैं अपने बचपनसे यह बात जानता हूँ कि हिन्दू-मुस्लिम एकता भारतकी राष्ट्रीयताका अभिन्न अंग है। मेरा विश्वास है कि यदि हिन्दू और मुसलमान खुले मनसे और पूरे मेल-जोलसे नहीं रह सकते तो राष्ट्रीय स्वतन्त्रताका कोई अर्थ नहीं रह जाता। मुझे यह बात पसन्द नहीं है कि ये दो बड़ी जातियाँ अल्पसंख्यक जातियोंको सतायें या उन्हें ऐसा भी महसूस होने दें कि हिन्दू-मुस्लिम एकता कोई बुरी चीज है। मैं तो चाहता हूँ कि दोनोंकी एकता सारे संसारके लिए आदर्श और शान्ति देनेवाली हो। मैं सर सैयदसे[2] सहमत हूँ कि हिन्दू और मुसलमान भारत माँकी दो आँखें हैं। उन्होंने विद्यार्थियोंको नसीहत दी कि वे जैसे इस्लामके सच्चे सपूत हैं, उसी तरह भारतके सच्चे और निष्कपट सिपाही बनें। उन्होंने आगे कहा: मैंने इस्लामका काफी अध्ययन और अनुशीलन किया है, मैं लम्बे अर्से तक मुसलमानोंके साथ रहा हूँ और मुसलमानोंके साथ मेरा खान-पान रहा है। इसलिए मुझे इस्लामका अच्छा खासा ज्ञान है। उन्होंने विद्यार्थियोंको सलाह दी कि वे आराम और विलासके शिकार न बनें क्योंकि सिर्फ वही देशकी सेवा अच्छी तरहसे कर सकता है जिसका हृदय और जिसकी आदतें सादी हों। उन्होंने आगे विद्यार्थियोंसे अनुरोध करते हुए कहा — आपको उन लाखों गरीब लोगोंपर, जिन्हें दिनमें एक वक्तका खाना भी नहीं मिलता, ममता रखनी चाहिए। मेरा खयाल है कि खुदा आपसे सिर्फ इसी बातपर खुश नहीं हो जायेगा कि आप हररोज 'कुरान' पढ़ते हैं या हररोज नमाज पढ़ते हैं। जिससे खुदा खुश हो सकता है वह असल चीज तो यह है कि आप अपने लाखों मुसीबतमें पड़े भाइयोंके प्रति अपने व्यवहारमें दया और सच्ची सहानुभूति दिखायें। इसलिए गांधीजीने उनसे खद्दरको प्रोत्साहन देनेका आग्रह किया।

[अंग्रेजीसे]

लीडर, ७-११-१९२९

१. देखिए "संयुक्त प्रान्तका दौरा", १४-११-१९२९ का उपशीर्षक "अलीगढ़में" भी।

२. सर सैयद अहमद खाँ।

११७. पत्र : नारायण मोरेश्वर खरेको

अलीगढ़
५ नवम्बर, १९२९

भाई पण्डितजी,

छगनलाल तो अबतक रवाना हो चुका होगा अतः उसके पत्रोंका उत्तर नहीं दे रहा हूँ। आशा है मनुकी तबीयत बराबर सुधरती ही जा रही होगी।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० २१०)की नकलसे।
सौजन्य : लक्ष्मीबाई खरे

११८. तार : जवाहरलाल नेहरूको[1]

मथुरा
६ नवम्बर, १९२९

जवाहरलाल नेहरू
आनन्द भवन
इलाहाबाद

दूसरे पत्रमें[2] उल्लिखित तुम्हारी नैतिक कठिनाईको बहुत अच्छी तरह समझ रहा हूँ। लेकिन निर्णय लेनेमें कोई जल्दबाजी नहीं की जानी चाहिए। यदि जब भी उद्विग्नता है तो इस्तीफेपर[3] बल नहीं दिया जाना चाहिए। मुझसे जहाँ कहीं चाहो मिलो।

गांधी

गांधी नेहरू कागजात, १९२९से।
सौजन्य : नेहरू स्मारक संग्रहालय और पुस्तकालय

१. देखिए "पत्र : जवाहरलाल नेहरूको", ८-११-१९२९।
२. देखिए परिशिष्ट २।
३. अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीके सचिव पदसे।

११९. पत्र : हरिभाऊ उपाध्यायको

मथुरा
६ नवम्बर, १९२९

भाई हरिभाऊ,

तुम्हारा पत्र मिल गया है। यदि वह महिला आश्रम-जीवनका अनुभव लेना चाहे तो अवश्य ले। आना चाहेगी तो अकेली आयेगी या पति-पत्नी दोनों आयेंगे? बैजनाथने जो प्रस्तावना माँगी थी, वह मैं भेज चुका हूँ। मेरी तबीयत अबतक तो अच्छी ही रही है। आशा है मैं २४ तारीखको आगरासे छोटी लाइनसे साबरमतीके लिए रवाना हो जाऊँगा। २५ तारीखको सोमवार है। आशा है तुम स्वस्थ होगे।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ६०६८)की नकलसे।
सौजन्य : हरिभाऊ उपाध्याय

१२०. पत्र : शिवाभाई पटेलको

मथुरा
६ नवम्बर, १९२९

भाई शिवाभाई,[1]

तुम्हारा पत्र मिला। मुझे लगता है कि आश्रमके जो हितैषी चन्दा देनेको तैयार हैं उन्हें [पत्रिकाकी] एक प्रति प्राप्त करनेका अधिकार है। यह कोई गोपनीय चीज नहीं है। मैं समझता हूँ कि उसकी एक प्रति आश्रमके वाचनालयमें भी रखी जानी चाहिए। इससे हमारे लिए उन सभी आन्तरिक समस्याओंपर खुलकर विचार-विमर्श करना सम्भव होगा जिनसे अन्य बहुतसे लोगोंका सम्बन्ध है। यदि लिथो मशीन सस्ती मिल रही हो तो मैं समझता हूँ कि उसे खरीद लेना चाहिए। आश्रमके ढंगपर जो अन्य संस्थाएँ चल रही हैं उनके आन्तरिक जीवनके समाचार 'आश्रम समाचार' में प्रकाशित हों यह मुझे उचित जान पड़ता है। और यदि हम उक्त समाचार दें तो हमें पत्रिकाका आकार बढ़ाना होगा। इससे सम्पादकका काम बहुत बढ़ जायेगा। इस कामके लिए उसे सप्ताहमें कमसे-कम सात घंटे देने पड़ेंगे। यदि वह फिलहाल

१. साबरमती आश्रम-परिवारके एक सदस्य जिन्होंने खादी-विभागका हिसाब-किताब रखनेमें सहायता दी थी।

इतना समय न निकाल सके तो हमें पत्रिकाका आकार बढ़ानेकी बात छोड़ देनी चाहिए।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (एस० एन० ९४९५)की फोटो-नकलसे।

१२१. पत्र: रावजीभाई एम० पटेलको

मथुरा
६ नवम्बर, १९२९

भाई रावजीभाई,[1]

तुम्हारा पत्र मिला। जब हमारे पास बहुत अधिक काम इकट्ठे हो जायें और स्थिति सभी कामोंको निबटानेकी न हो तो उन्हें प्राथमिकताके हिसाबसे सिलसिलेवार जमा लेना चाहिए। इससे यह पता चल जायेगा कि फिलहाल कौनसा काम छोड़ा जा सकता है। और यदि सभी काम एकसे जरूरी हों तो उनमेंसे जो अतिरिक्त जान पड़े उन्हें छोड़ ही देना चाहिए। कामोंमें पाखाना सफाई, रसोई और हिसाब-किताब इन तीनोंको मैं सर्वोपरि मानता हूँ। यदि हिसाब-किताब ठीक न रखा जाये तो फिजूलखर्ची होने लगती है, साख चली जाती है और आत्मा कलुषित हो जाती है। मैं यह अनेक बार बता चुका हूँ कि पाखाना सफाई और रसोई एक ही क्रियाके दो पहलू हैं। यदि दोनोंमें से कोई भी काम अधूरे ढंगसे किया जायेगा तो स्वास्थ्यपर असर पड़ेगा। मैं यह भी बता चुका हूँ कि पाखाने और रसोईके पीछे एक बड़ा विज्ञान है। धार्मिक रसोइया अच्छा खाना बनायेगा, इतना ही नहीं बल्कि आरोग्य-सम्बन्धी नियमों अर्थात् ब्रह्मचर्यका भी पालन करेगा तथा धार्मिक दृष्टिसे पाखानेकी सफाई करनेवाला मैलेको गाड़ेगा, इतना ही नहीं व्यक्तियोंके मलको जाँचेगा और उन्हें उनके स्वास्थ्यके बारेमें बतायेगा। हमारे यहाँ न तो ऐसा आदर्श भंगी है और न ऐसा आदर्श रसोइया ही है, किन्तु इस सम्बन्धमें मुझे तनिक भी सन्देह नहीं कि आश्रमसे ऐसे लोगोंका दल निकलना ही चाहिए। जिस तरहकी खुड्डीके बारेमें तुमने लिखा है उसमें अनेक दोष हैं। पक्की खुड्डी तो बनानी ही नहीं है। हाँ, कच्चा गड्ढा बनानेमें कोई हर्ज नहीं है। किन्तु इस बारेमें मेरे वहाँ पहुँचनेपर विस्तारपूर्वक विचार किया जा सकता है। इतना तो ठीक है कि गड्ढा जितना उथला हो उतना ही अच्छा है। धरतीका नौ इंच गहराई तकका भाग बहुत कीमती होता है। मल आदिको खादका रूप देनेवाले कीटाणु उसी गहराई तक रहते हैं और इतनी ही गहराई तक सूर्यकी किरणोंका भी ठीक-ठीक असर पड़ता है। इसके सिवा मलकी खादको आसानीसे बनानेमें उथला गड्ढा सभी जगह उपयोगी हो सकता है। हम आजकल मलको

1. साबरमती आश्रमके खादी विभागके अध्यक्ष।

जिस तरह गाड़ते हैं उसके बजाय इस पद्धतिको अपनाया जा सकता है। १८ इंच गहरे और ३६ वर्गगज सतहवाले दो गड्ढे पास-पास बनाये जा सकते हैं। एक गड्ढेके मलसे भर जानेपर दूसरा गड्ढा प्रयोगमें लाया जाये तथा पहले गड्ढेमें जब मलकी खाद बन जाये तो उसे निकाल लें और उस गड्ढेको दूसरा गड्ढा भर जानेतक सूखने दें। ऐसा करनेसे सोमाभाई वाला प्रयोजन भी पूरा हो जाता है और तुमने अपनी जो परेशानी बताई है वह भी बहुत हदतक दूर हो जाती है। पाखाने तो जैसे हैं वैसे ही बने रहने चाहिए; उन्हें अच्छेसे-अच्छा बनाये रखनेकी कला हमें अवश्य सीख लेनी चाहिए। यह काम किसी व्यक्तिको सौंप देनेपर ही हमारा निस्तार होगा। देखभाल करनेवाले लोगोंको समय-समयपर बदलते रहना भी आवश्यक है। अतः इस कामके लिए एक निरीक्षक होना बहुत जरूरी है और उसके लिए इतना ही काफी नहीं है कि वह सुबह एक बार पाखानोंको देख ले। वे दिनमें कमसे-कम तीन बार तो देखे ही जाने चाहिए। अधिक सफाई रखनेके लिए अधिक बाल्टियोंकी आवश्यकता तो पड़ेगी ही।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (जी० एन० ८९८६)की फोटो-नकलसे।

१२२. पत्र : रमणीकलाल मोदीको

मथुरा
६ नवम्बर, १९२९

चि० रमणीकलाल,

तुम्हारा पत्र मिला। तुमने अपने ऊपर जबर्दस्त जिम्मेदारी[1] ले ली है। इस जिम्मेदारीको निभाते हुए अपनेको स्वस्थ बनाये रखनेकी कला भी सीख लेना। तुम्हें इतना तो जान ही लेना चाहिए कि जबतक उक्त कला नहीं आ जाती तबतक तुममें अनासक्तिकी भावना पूरी तरह नहीं आ पाई है। छगनलालके कल यहाँ पहुँचने की आशा है।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (जी० एन० ४१४७)की फोटो-नकलसे।

१. छगनलाल जोशीके लाहौर चले जानेपर उनकी अनुपस्थितिमें आश्रमके मन्त्रिपदकी जिम्मेदारी।

१२३. संयुक्त प्रान्तका दौरा[1] – ८

मैदानोंमें

मैदानोंमें सबसे पहली जगह जहाँ दौरेमें [गांधीजी] गये वह सहारनपुर[2] थी। वहाँ स्त्री-पुरुषोंकी सामान्यतया होनेवाली सभाओंके अलावा विद्यार्थियोंकी सभा हुई। काशीराम हाई स्कूलके विद्यार्थियों और शिक्षकोंकी एक सभा हुई; उन्होंने मिलकर गांधीजीको एक थैली दी जो दौरेमें अन्य स्कूलों और कालेजोंके विद्यार्थियों और शिक्षकोंकी संख्याको देखते हुए तुलनामें सबसे बड़ी थी। इस बातकी गांधीजीने प्रशंसा की; यह सर्वथा उपयुक्त भी था। गांधीजीने अभिनन्दन पत्रमें की गई उनकी इस स्पष्ट स्वीकारोक्तिकी भी प्रशंसाकी कि आप जो खादी हमें सभामें पहने देख रहे हैं, वह इसी अवसरके लिए खरीदी गई है; लेकिन हमने जो खादी पहनना शुरू किया है उसे हम आगे जारी रखनेकी बात सोच रहे हैं। [गांधीजीके आनेके] अवसरपर खादी हर जगह लोग पहन लेते हैं; यह कोई छिपी बात नहीं है। लेकिन यह पहला अवसर था जब इस कमजोरीको स्पष्ट शब्दोंमें सरल हृदयसे स्वीकार किया गया और उसे दूर करनेका निश्चित रूपसे आश्वासन दिया गया। मुझे बताया गया कि हेडमास्टर और शिक्षक लोग सच्चे लोग हैं और उन्होंने जो वायदा किया है, उसका वे पूरी तरह पालन करेंगे। रास्तेमें देवबन्द होते हुए आगे हम मुजफ्फरनगर ठहरे। मुजफ्फरनगरसे रास्तेमें कांधला, शामली और अन्य कई जगहों होते हुए हम मेरठ पहुँचे। फिर हम मेरठ जिलेके भारी कार्यक्रममें जुट गये।

कैदियोंके साथ

हम लोग सुबह ११ बजे मेरठ[3] पहुँच गये और एक महिलाओंकी सभा तथा एक सार्वजनिक सभाको निबटाना पड़ा। लेकिन मेरठ वह जगह है जहाँ साम्यवादियोंके विख्यात मुकदमेकी सुनवाई चल रही थी। गांधीजीने कहा कि मैं यद्यपि साम्यवादी या अन्य किसी वादको माननेवाला व्यक्ति नहीं हूँ लेकिन यदि अनुमति मिल गई तो मैं कैदियोंसे मिले बिना नहीं रहूँगा [जेलके] सुपरिंटेंडेंटने आसानीसे तुरन्त इजाजत दे दी यद्यपि इससे उनके आराम और दिनके कार्यक्रममें काफी बाधा पड़नी थी फिर भी गांधीजी ठीक २ बजे जेल पहुँच गये और कैदियोंके साथ १½ घंटेका समय बड़े आनन्दसे बिताया। कैदियोंका दल फर्शपर बिछी मूँजकी चटाईपर बैठा था। कैदियोंकी कोठरी खुली हवादार एक आयताकार जगह थी; और उसमें उनके लिए चारपाइयाँ लगी हुई थीं। कैदियोंने जो काफी हँसमुख और प्रसन्न थे गांधीजीका

१. देखिए "संयुक्त प्रान्तका दौरा", २४-१०-१९२९ की पाद-टिप्पणी।

२. २५ अक्टूबरको।

३. २७ अक्टूबरको।

स्वागत करते हुए कहा : 'सच तो यह है कि हम लोग ऐसी आशा नहीं करते थे कि आप हमसे मिलने आयेंगे'। गांधीजीने तुरन्त जवाब दिया 'निश्चय ही आपकी आशा नहीं रही होगी। आप मुझे नहीं जानते। मेरे आपसे मतभेद भले ही हों, आप कांग्रेसकी सभाओंमें मेरे लिए परेशानी भले ही पैदा करें। लेकिन मेरा धर्म मुझे सिखाता है कि मैं अपने विरोधियोंके प्रति आदर व्यक्त करनेके लिए विशेष रूपसे प्रयत्न करूँ और इस तरह उन्हें यह दिखा दूँ कि मेरे मनमें उनके प्रति कोई दुर्भावना हो ही नहीं सकती। इसके अलावा इस मामलेमें तो यहाँ आकर मैं अपने ही नम्र तरीकेसे, व्यावहारिक रूपमें यह दिखा देना चाहता था कि यह मुकदमा अन्यायपूर्ण है और मेरठ जैसे असुविधापूर्ण स्थानमें जहाँ आप उपयुक्त बचावके लिए वे सुविधाएँ नहीं पा सकते जो कलकत्ता, बम्बई, मद्रास जैसे बड़े शहरोंमें मिल सकती हैं, मामला चलाकर आपको भारी अड़चनमें डाल देना हर हालतमें जुल्म ही है।' कैदियोंने विविध विषयोंपर गांधीजीसे बातचीत की। उन्होंने कलकत्तामें औपनिवेशिक स्वराज्यके बारेमें पास किये गये प्रस्तावकी सम्भावनाएँ जाननी चाही। उन्होंने यह भी समझना चाहा कि वे जतिन्द्र नाथके आत्म-बलिदान और हड़तालों आदिके बारेमें मौन क्यों हैं। यद्यपि साराका-सारा वार्त्तालाप दिलचस्प था, फिर भी उसे पूराका-पूरा देनेकी कोशिश नहीं की जा सकती। इतना ही कहना काफी होगा कि गांधीजी पूरे डेढ़ घंटे तक, जितनी देर उनके साथ रहे, उन्हें हँसाते रहे। कोई भी देख सकता था कि वे उनसे जुदा नहीं होना चाहते थे और जब उन्हें जाना ही पड़ा तो उन्होंने कहा कि यदि दिसम्बरसे पहले आप रिहा नहीं हो पाये तो आशा है कि अगले सालके आरम्भमें ही मैं आपके साथ जेलमें शामिल हो जाऊँगा।

मेरठके दौरेकी कई अन्य दिलचस्प घटनाओंको मुझे यहाँ छोड़ ही देना होगा।

गांधी आश्रम

चौधरी रघुवीर नारायण सिंहजी उत्साही राष्ट्रभक्त और खादी-प्रेमी हैं। मेरठ और आसपासके गाँवोंमें दौरेकी जिम्मेदारी उनकी थी। इसलिए उन्होंने वैसा कार्यक्रम बनाया जैसा गांधीजीका स्वास्थ्य बर्दाश्त कर सकता था। मेरठके ही अनगिनत कार्यक्रमों तथा उन अनगिनत गाँवोंके विविध अनुभवोंमें से यहाँ केवल दो जगहोंका ही जिक्र करने योग्य समय और स्थान है। पहला है आचार्य कृपलानीका आश्रम और दूसरा चौधरी साहबके खुद अपने गाँव असौड़ाका।

इस आश्रमका नाम गांधी आश्रम रखा गया है; हिन्दू विश्वविद्यालयके कुछ विद्यार्थियोंने जब १९२० में उसे छोड़ा तब यह आश्रम स्थापित किया गया था। और प्रोफेसर कृपलानीके साथ एक आश्रमकी स्थापना की थी। जो लोग बराबर कट्टर रहे हैं, अच्छे व्यवसायी बन गये हैं। सदस्योंने खादीका काम १९२१ में शुरू किया। उस समय ४८ रु० की खादी तैयार की गई और बिक्री ३,०११ रु० की थी। पिछले अक्तूबरमें पूरे होनेवाले सालमें आश्रमने १,२९,१८९-८-० रु० की खादी तैयार की और १,७१,५१२-१३-६ रु० की खादी बेची थी। आश्रमने व्यवसाय केन्द्रसे एक बहुत बड़ी जमीनपर ३५,००० रु० की कोठी खरीदी तो कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। मैं धनको

इस तरह लगाना जरूरी और सही मानता हूँ। उसके हर कमरेका इस्तेमाल हो रहा है। आश्रममें उत्पादन, बिक्री, रंगाई, छपाई, घुटाईके और इस्त्री करनेके विभाग हैं। इसकी छपाई दिनों-दिन लोकप्रिय होती जा रही है, क्योंकि छापोंमें देशी कला और नवीनताका बराबर समावेश किया जा रहा है। ३६" अर्जकी एक गज खादीका दाम १९२१ में ९ आना था। आज उससे भी बढ़िया किस्मकी खादी ५ आने गजके भाव बिकती है। और फिर भी वे कीमत और घटानेकी आशा करते हैं। आश्रमकी खादीके भाव भारतके सभी प्रदेशोंकी खादीके भावसे मुकाबला कर सकते हैं। इसके २९ स्थायी कार्यकर्त्ता हैं, १४ (उम्मीदवार नये सीखनेवाले) अपरेंटिस हैं और ११ नौकर हैं। इस साल १२,१२३-४-६ रु० वेतनमें बाँटे गये, इस तरह औसतन लगभग १८ रु० फी आदमीको मासिक वेतन मिला। इसमें अपरेंटिस भी शामिल हैं। कोई भी व्यक्ति ५० रु० प्रतिमाससे ज्यादा नहीं पाता है और न पा सकता है। केवल तीन कार्यकर्त्ता ५० रु० [का वेतन] ले रहे हैं। यह कहनेकी तो जरूरत ही नहीं है कि इनमें से अधिकांश कार्यकर्त्ता बाहर कहीं भी किसी भी वक्त इससे दूना वेतन पा सकते हैं। इनमें से कुछ तो विश्वविद्यालयकी शिक्षा पाये हुए कुशाग्र-बुद्धि व्यक्ति हैं।

कौन कह सकता है कि खादीका या आश्रमका भविष्य बड़ा उज्ज्वल नहीं है। जरूरत तो है उत्साही, आत्म-त्यागकी भावना वाले योग्य कार्यकर्त्ताओंकी। उनके लिए असीमित क्षेत्र है।

असौड़ामें

निस्सन्देह असौड़ामें खादीका बड़ा जबर्दस्त वातावरण है। अगर चौधरी साहबके जैसे खादी-प्रेमी व्यक्तिकी जमींदारीमें ऐसा न होता तो आश्चर्यकी बात होती। लेकिन गांधीजीको जिस बातसे सबसे ज्यादा खुशी हुई वह यों ही अनायास यह पता लगनेसे कि यहाँ [चौधरी साहबका] पारिवारिक मन्दिर जो जनताके लिए खुला है, असहयोगके जमानेसे तथाकथित अस्पृश्योंके लिए भी खुला है। और खुद चौधरी साहबसे मुझे पता चला है कि अस्पृश्योंके लिए मन्दिरके पट खोल देनेसे किसी भी तरह मन्दिरमें जानेवाले स्पृश्योंकी संख्यामें कमी नहीं हुई है। सेठ जमनालालजीके वर्धावाले श्री लक्ष्मी नारायण मन्दिरकी तरह ही इस मन्दिरकी भी इमारत भव्य है। जमींदारीका बगीचा इसके साथ ही लगा हुआ है। मन्दिरसे लगा हुआ एक बड़ा-सा आँगन भी है और आँगनमें एक स्कूल है जिसमें अस्पृश्य भी पढ़ते हैं। यह जमींदारीके लिए एक अनुकरणीय दृष्टान्त है। भारतमें हजारों जमींदारियोंमें हजारों मन्दिर हैं। जमींदारोंको अपने मन्दिर अस्पृश्योंके लिए खोल देनेसे कोई रोक नहीं सकता है और अन्य तरीकोंसे भी वे चाहें तो अस्पृश्योंसे स्नेहभाव बढ़ा सकते हैं, जैसा कि चौधरी साहबने किया है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ७-११-१९२९

१२४. नवयुवक क्या करें?

आजसे कुछ दिन पहले मुझे आगरा युवक संघकी ओरसे एक पत्र मिला था; उसमें नीचे लिखी बातें कही गई थीं :

> भविष्यमें हमारी प्रमुख गतिविधि क्या रहेगी, इसके सम्बन्धमें हमें कुछ मालूम नहीं है। हम अपनी बस्तीके किसानों और दूसरे पड़ोसियोंसे सहयोग करना चाहते हैं, लेकिन इसका कोई व्यावहारिक तरीका हमें दिखलाई नहीं देता। हमें आशा है कि इस समस्याको सुलझानेके लिए आप कोई व्यावहारिक उपाय बतानेकी कृपा करेंगे। हमारे विचारमें यह कठिनाई सिर्फ हमारी संस्थाकी ही नहीं है। अतएव यदि आप इस समस्याका कोई निश्चित हल 'नवजीवन' या 'यंग इंडिया'के स्तम्भों द्वारा सुझायें तो बहुत ही अच्छा हो।

गोरखपुर युवक संघके[१] मानपत्रमें भी कुछ इसी तरहके भाव प्रकट किये गये थे और पूछा गया था कि युवकोंके सामने रोजी-रोटीकी जो समस्या मुँह फैलाये खड़ी है, उसका सामना कैसे किया जाये। मेरे विचारमें ये दोनों सवाल एक दूसरेसे गुँथे हुए हैं, और दोनों ही हल किये जा सकते हैं, बशर्ते कि नवयुवक शहरी जीवनकी अपेक्षा देहाती जीवनको अपना ध्येय बना लेनेके लिए राजी किये जा सकें। हम लोग ग्रामीण सभ्यताके वारिस हैं। मेरे विचारमें, हमारे देशकी विशालता, जनसंख्याकी बहुलता, उसकी भौगोलिक और प्राकृतिक स्थिति, आबोहवा, आदि सब बातोंने उसे ग्रामीण सभ्यताके ही उपयुक्त बनाया है। ग्रामीण सभ्यताके जितने भी दोष हैं, वे सभीके जाने हुए हैं, तथापि उनमें से एक भी ऐसा नहीं है जो दूर न किया जा सके। जबतक हम देशकी आबादीको किसी जबर्दस्त साधन द्वारा तीस करोड़की जगह तीस लाख या तीन करोड़ तक घटा देनेको तैयार न हों, इस सभ्यताको जड़मूलसे नष्ट करके इसके स्थानपर नागरिक सभ्यताकी स्थापना करना मुझे तो तबतक असम्भव प्रतीत होता है। अतएव मैं तो तभी कोई उपाय बतला सकता हूँ जब हम अपनी वर्तमान ग्रामीण सभ्यताको कायम रखना चाहें और उसके जाने तथा माने हुए दोषोंसे उसे मुक्त करना अपना कर्तव्य समझें। यह तभी किया जा सकता है, जब देशके नवयुवक ग्रामीणोंका जीवन अपना लें। और अगर वे ऐसा करना चाहें तो उन्हें अपने जीवनको नये साँचेमें ढालना पड़ेगा और अवकाशका प्रत्येक दिन अपने कालेजों और स्कूलोंके आसपास बसे हुए गाँवोंमें बिताना पड़ेगा और जिन लोगोंकी पढ़ाई समाप्त हो चुकी है, या जो कहीं कुछ भी पढ़-लिख नहीं रहे हैं, उन्हें गाँवोंमें बस जानेका निश्चय कर लेना होगा। अखिल भारतीय चरखा संघ और उसकी तमाम शाखाएँ तथा संस्थाएँ, जो उसकी देखरेखमें काम कर रही हैं, विद्यार्थियोंको सेवाक्षम

१. गांधीजी अक्तूबर ४ से ७ तक गोरखपुर जिलेमें थे।

बनानेमें सहज योग दे रही हैं, जिससे लाभ उठाकर, अगर विद्यार्थी चाहें तो, ग्राम जीवनके अनुकूल सादगीसे रहकर सम्मननीय जीवन बिता सकते हैं। अभी चरखा संघमें देशके कोई १५०० नौजवान काम कर रहे हैं जिन्हें १५ रुपयेसे लेकर १५० रुपये तककी आय होती है और आज भी चरखा संघ ऐसे अनगिनत विद्यार्थियोंको काम दे सकता है, जिनमें लगन, ईमानदारी और उद्योगशीलता है तथा जो हाथका काम करनेमें शर्माते नहीं हैं। इसके अलावा अन्य राष्ट्रीय-शिक्षा संस्थाएँ भी हैं, जो नवयुवकोंको इसी तरहका अवसर देती हैं; हालाँकि इनका क्षेत्र सीमित है, और यह इसलिए कि इस समय देशमें राष्ट्रीय शिक्षाका चलन नहीं है। अतएव मैं उन सभी उत्साही और सच्ची लगनवाले नवयुवकोंको जो अपने वर्तमान वातावरणसे और जीवनके दृष्टिकोणसे असन्तुष्ट हैं सलाह देता हूँ कि वे इन दो महान् राष्ट्रीय संस्थाओंका अनुशीलन करें। ये संस्थाएँ चुपचाप अत्यन्त प्रभावशील और रचनात्मक काम कर रही हैं और नवयुवकोंके लिए सेवा तथा सम्माननीय आजीविका कमा सकनेका अवसर दे रही हैं। अस्तु; देशके नौजवान राष्ट्र-निर्माणका कार्य करनेवाली इन दोनों महान शक्तियोंसे लाभ उठायें या न उठायें, मैं उनसे अनुरोध करता हूँ कि वे गाँवोंमें अवश्य जायें और अपने लिए सेवा, खोज एवं सच्चे ज्ञानका अनन्तः क्षेत्र प्राप्त कर लें। क्या ही अच्छा हो, अगर अध्यापकगण अपने छात्रों, लड़कों तथा लड़कियों दोनोंको अवकाशके दिनोंमें साहित्यिक अभ्यासका काम न देकर, गाँवोंकी शिक्षाप्रद यात्रा करनेकी सलाह दें। अवकाशका उपयोग मनोविनोदमें ही किया जाना चाहिए, पुस्तकोंको कंठस्थ करनेमें कदापि नहीं।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ७-११-१९२९

१२५. खादी-मताधिकार

लाला हरदयाल नागने कांग्रेस संविधानकी खादी धारापर अमलके सम्बन्धमें मुझे एक पत्र लिखा है, मैं उसका उपयोगी अंश नीचे देता हूँ:[1]

> **मैं त्रिपुरा जिला कांग्रेस कमेटीका अध्यक्ष था, जिसकी सालाना आम बैठक गत मासकी २७ तारीखको थी। बैठक कोमिल्लामें होनी थी। मेरे पहुँचनेके कुछ देर बाद ही कुछ मित्रोंने मुझसे कहा कि मैं सदस्योंकी पोशाकके सम्बन्धमें कोई आपत्ति न उठाऊँ और सबको, यानी हमेशा खादी पहननेवालोंको और हमेशा न पहननेवालोंको, मत देने दूँ। मैंने उनकी यह सलाह माननेसे इनकार किया, इससे मेरे मित्रोंको सन्तोष नहीं हुआ; और मुझसे सभाका सभापति न बननेके लिए कहा गया। सभापतित्वसे त्यागपत्र देनेके सिवाय मेरे**

१. पत्रके केवल कुछ अंश ही यहाँ दिये जा रहे हैं।

पास उन्हें सन्तुष्ट करनेका और कोई साधन नहीं था। तदनुसार मैंने एक त्यागपत्र लिखकर उन्हें सौंप दिया।

फिर मैं बैठकमें नहीं गया। . . . मेरा त्यागपत्र बैठकमें पेश नहीं किया गया। एक उपाध्यक्षसे अध्यक्षता स्वीकार करनेको कहा गया। थोड़ी आरम्भिक कार्रवाईके बाद उपस्थित सदस्योंमेंसे कईके खद्दरधारी न होनेपर आपत्ति की गई। बैठकके अध्यक्षने अपना निर्णय देते हुए कहा कि 'नियमित खादीधारी' वाक्यांशका यह आशय नहीं कि मत देते समय सदस्योंका खादीकी पोशाकमें होना आवश्यक है। इस निर्णयसे उपस्थित सदस्योंमें तीव्र मतभेद पैदा हो गया।. . . जो लोग यह मानते थे कि नियमित रूपसे खादी पहननेवाले लोग ही मत दे सकते हैं, दूसरे नहीं, वे बैठकसे उठकर चले गये और उन्होंने अलग बैठक की। . . . इन तथ्योंसे ये प्रश्न उठते हैं: (१) क्या पहली बैठकके अध्यक्षने कांग्रेसके खादी पहनने सम्बन्धी नियमपर जो निर्णय दिया, वह सही था? (२) अगर नहीं तो क्या कांग्रेसके नियमको तोड़नेके कारण पहली बैठकमें बनाई गई कमेटी गैरकानूनी है? (३) अगर यह कमेटी गैरकानूनी है तो क्या जो लोग उठकर चले गये थे, उनके द्वारा बनाई कमेटी नियमानुकूल है? मेरी नम्र रायमें ये बड़े महत्वके प्रश्न हैं। अतएव मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि यदि हो सके तो, कृपया 'यंग इंडिया' द्वारा इनके उत्तर दीजिएगा।

अगर लाला हरदयालका कहना सच है, तो उससे एक दुखद स्थितिका पता चलता है। यदि इस बातको छोड़ दें कि कांग्रेसके मतदाताओंके लिए कांग्रेसकी बैठकोंमें खादी पहनना अनिवार्य है या नहीं, तो भी किसीका मनोनीत अध्यक्षको यह सुझाना कि वह किसी ऐसे प्रश्नपर भी कोई निर्णय न दें, जो सर्वथा उसके अधिकार क्षेत्रमें हो, वस्तुतः एक विचित्र कार्यप्रणालीका नमूना है। बैठककी यह कार्रवाई इससे भी अजीब है, कि उसमें लाला हरदयाल नागका पत्र पढ़ातक नहीं गया था। इस तरहकी कार्रवाइयोंसे अनजाने ही सही, किन्तु निश्चित रूपसे कांग्रेसका प्रभाव जनतापर से कम हो जाता है और कांग्रेसके प्रधान कार्यकर्त्ताओंमें अनुशासन और शिष्टताकी कमी घर कर जाती है। जहाँतक खादी पहननेकी धाराके अमलका सम्बन्ध है, मैं यह कहे बिना नहीं रह सकता कि इस मामलेमें अध्यक्षका निर्णय नितान्त अनुचित था। धाराका सीधा-सादा, व्याकरण सम्मत और व्यावहारिक अर्थ तो यह है कि मतदाताके लिए मतदानके समय सिरसे पैर तक खादी पहनना तो आवश्यक है ही, बल्कि उसका नियमित रूपसे खादी पहननेवाला होना भी आवश्यक है। मेरा यह निश्चित मत है कि अगर किन्हीं सदस्योंने नियम विरुद्ध मत दिये थे, तो उस हदतक कमेटीकी कार्रवाई अवश्य ही अनुचित थी। मेरे विचारमें अपनी किसी एक खास बैठकमें अनियमित कार्रवाई करनेके कारण ही कोई कमेटी सर्वथा अवैध नहीं हो जाती। हाँ, यह एक अलग बात है कि कार्य समितिका सभापति चाहे तो विशेष अधिकार का प्रयोग करके नियमोंकी अवज्ञा करनेवाली किसी कमेटीको भंग कर दे। मतभेदके

कारण अलग हो गये लोग भी तबतक अपनी एक अलग कमेटी नहीं बना सकते हैं जबतक कि उसके लिए पहले ही से कांग्रेसकी कार्य समितिसे इजाजत न मिल गई हो। एक साधारण व्यक्तिकी हैसियतसे मेरा अपना यही मत है। अगर लाला हरदयाल नाग अपने उठाये हुए मुद्दोंपर निश्चित मत चाहते हैं, तो उन्हें, नियमानुसार यह प्रश्न कांग्रेसके अध्यक्षके सामने रखना चाहिए।

लेकिन लाला हरदयाल नागके पत्रसे कांग्रेसके संगठनमें खादीकी धाराकी उपयोगिताका भी एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न उठ खड़ा होता है। इस सम्बन्धमें मेरे अपने विचार किसीसे छिपे नहीं हैं। खादीको छोड़कर और कोई ऐसा रचनात्मक काम नहीं है, जो जनतामें इतना लोकप्रिय हो गया हो। शहरी लोगोंका, जो कांग्रेसकी बैठकोंमें बहुत बड़ी संख्यामें उपस्थित रहते हैं, खादीकी धाराको नापसन्द करना, मेरे लिये एक ऐसा कारण है, जिसकी वजहसे इस नियमका सख्तीसे पालन कराना जरूरी है; वह इसे बिलकुल ही हटा देनेका कारण नहीं हो सकता। लेकिन जिन लोगोंके हाथमें कांग्रेसके तन्त्रका संचालन है, अगर उनके बहुमतको यदि यह धारा पसन्द न हो, अथवा वह उसपर अमल करना न चाहती हो, तो उसे मेरे मतकी जरा भी परवाह नहीं करनी चाहिए। मुझे बताया गया है कि यह धारा सिर्फ मेरे कारण ही अबतक संविधानमें है; और अगर सदस्योंको इस बातका विश्वास दिला दिया जाये कि इसके हटा देनेसे मुझे दुख नहीं होगा, तो आज ही यह हटा दी जाये। ये विचार मेरी प्रशंसा नहीं, बल्कि निन्दा प्रकट करते हैं और ऐसा सोचनेवाले अपने साथ अन्याय करते हैं तथा निश्चित रूपसे कांग्रेसको चोट पहुँचाते हैं। जहाँ सवाल किसी ध्येयकी रक्षाका हो, वहाँ हमें चाहिए कि हम अपनेमें से किसी प्रमुखसे भी प्रमुख व्यक्तिकी चिन्ता न करें। इसमें मेरे अपमानका तो कोई सवाल ही नहीं है। जो लोग सिर्फ मेरे कारण इसको करनेमें हिचकते हैं, मैं कहता हूँ वे मुझे नहीं पहचानते हैं और निस्सन्देह मेरा अपमान करते हैं।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ७-११-१९२९

१२६. एक हो जाइए

मुझे पता चला है कि पंजाबमें, जहाँ कांग्रेसका अगला अधिवेशन होने जा रहा है, अबतक लोग मिलजुल कर काम नहीं कर रहे हैं, और दलबन्दीका बोलबाला है। अगर यह खबर सच है, तो मैं अब आशा करता हूँ कि भिन्न-भिन्न दलोंके जिम्मेदार स्त्री-पुरुष दलके बदले राष्ट्रको आगे रखेंगे, स्वार्थकी जगह राष्ट्रके सम्मानको प्रतिष्ठित करेंगे, मिथ्या अभिमान त्याग देंगे और अपने तमाम साथियों तथा मित्रोंके साथ खुद भी कांग्रेसके झण्डे तले इकट्ठा हो जायेंगे। पंजाबको कांग्रेस और उसके नौजवान अध्यक्षके साथ-साथ चलना चाहिए और अपने अनुकरणीय कार्यों द्वारा यह सिद्ध कर देना चाहिए कि हम अनुशासनमें रहना जानते हैं और इसी कारण एक महान् राष्ट्रीय संस्थाके अधीन रहकर, प्रेमपूर्वक, हिल-मिलकर काम करके अपना शासन आप कर सकते हैं।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ७-११-१९२९

१२७. टिप्पणी

क्या यह सच है?

जिस घोषणा-पत्र[1] पर पण्डित मोतीलालजी, डा० अंसारी, डा० बेसेंट, सर तेजबहादुर सप्रू, परममाननीय शास्त्री, सर मुहम्मद अली और दूसरे नेताओंके हस्ताक्षर हैं उसका आधार विश्वास है। विरोधी सूचनाओंके रहते हुए भी हस्ताक्षर-कर्त्ताओंने औपनिवेशिक स्वराज्य सम्बन्धी वाइसरायकी घोषणाको जिस रूपमें समझा है, सम्भव है आगे चलकर वह बिलकुल निराधार सिद्ध हो। वासरायकी घोषणाका औपनिवेशिक स्वराज्य भी १९१९ के 'उत्तरदायी शासन' की भाँति ही अनिश्चित और भ्रामक हो सकता है। तथापि लॉर्ड इर्विनकी ईमानदारीके सम्बन्धमें कोई सन्देह नहीं किया जा सकता। इसलिए अगर वाइसरायकी घोषणासे[2] जो बड़ी-बड़ी आशाएँ बाँधी गई हैं, वे फलीभूत न भी हों, तो भी नेताओंके वक्तव्यसे व्यक्त होनेवाले पारस्परिक विश्वाससे भविष्यमें देशको कोई हानि नहीं पहुँचेगी। उलटे इससे आवश्यकता पड़ने पर, कांग्रेसको अगर वह चाहे तो अपने अगले अधिवेशनमें कोई और अधिक कड़ा कार्यक्रम तैयार करनेका न्यायोचित कारण मिल जाता है। अगर हस्ताक्षर करनेवाले नेताओंने वाइसरायकी ओरसे की गई पहलकी उपेक्षा की होती तो सहज ही यह

१. देखिए "सर्वदलीय नेताओंका संयुक्त वक्तव्य", २-११-१९२९।

२. देखिए परिशिष्ट १।

उनकी एक गलती कहलाती। इसलिए हम तो यही आशा करें कि वाइसरायकी घोषणाका वही अर्थ है, जो नेताओंने समझा है, और तदनुसार शीघ्र ही अभागे भारतमें एक नवीन युगका पदार्पण होनेवाला है।

हस्ताक्षरकर्त्ताओंकी मंशाका कोई उलटा अर्थ न लगाये। हस्ताक्षर करनेमें जो सौजन्य निहित है उसे छोड़ देनेके बाद घोषणामें नेताओंने जिस सहयोगका वचन दिया है, वह कुछ शर्तोंसे बँधा हुआ है और उनके अभावमें वचनका पालन नहीं हो सकता। यदि लॉर्ड इर्विनकी घोषणाका जो अर्थ लगाया गया है, वह सच हो तो इन शर्तोंको पूरा करना कठिन नहीं है। क्योंकि अगर प्रस्तावित परिषदका फल भारतके लिए औपनिवेश स्वराज्यके चार्टर (राजलेख)की प्राप्ति है, तो तमाम राजनैतिक कैदियोंकी मुक्ति आवश्यक है, परिषदका संगठन पूर्णतया राष्ट्रीय होना जरूरी है और अभीसे देशमें शासन भी लगभग उसी ढंगसे होना चाहिए, जैसा कि औपनिवेशिक स्वराज्यकी अवस्थामें होगा। मिलनेवाला राजलेख तभी सच कहा जा सकता है, जब वह पहले ही से एक सिद्ध तथ्यका पंजीयन मात्र हो। राजलेखपर हस्ताक्षर होते ही एकाएक देशकी परिस्थिति बदल नहीं जायेगी। अगर वाइसरायकी घोषणा हृदय-परिवर्तनका सच्चा चिह्न है, तो उक्त शर्तोंकी कोई भी बात लागू करना कठिन नहीं होना चाहिए। और तब तो औपनिवेश स्वराज्यका आज ही से श्रीगणेश हुआ समझिए। अगर घोषणाका मतलब हृदय-परिवर्तन नहीं है, तो कोई भी चार्टर, या सनद फिर वह देखनेमें चाहे जितनी लुभावनी क्यों न हो, एक निरर्थक कागज भर होगा, जो आखिरकार रद्दीकी टोकरीमें फेंक दिया जायेगा।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ७-११-१९२९

१२८. आत्मसंयमकी श्रेष्ठता

मैडम क्लारा बर्गर-वोन डुबु, जिन्होंने अपनेको जर्मन विश्वविद्यालयके एक प्रोफेसरकी पुत्री और जर्मन विश्वविद्यालयके दूसरे प्रोफेसरकी विधवा बताया है और कहा है कि उनके पतिकी १९१६ के युद्धमें मृत्यु हो गई थी; उनके दो पुत्र और दो पुत्रियाँ हैं तथा जो कुछ समयसे यहाँ (इटली)में डच मित्रके घरमें रह रही हैं, जिन्हें उक्त मित्रसे ही 'यंग इंडिया'का पता चला, इटलीसे लिखती हैं:

> **क्या आप एक माताको 'यंग इंडिया' ३७? के[1] अग्रलेख "मनोवृत्तियोंका प्रभाव" में कुछ शब्द जोड़नेकी अनुमति देंगे? मैं आपसे पूरी तरह सहमत हूँ कि 'गर्भनिरोधक उपायों द्वारा गर्भ निरोध करना जातिकी हत्या है,' . . . जिस [प्रजनन] कार्यका उद्देश्य 'ईश्वरकी प्रतिमाओं' को जन्म देना है उसके**

१. देखिए खण्ड ३१, पृष्ठ ४२७-३०।

भयानक दुरुपयोगका जितना गहरा और दूरगामी असर पड़ सकता है उतना अन्य किसी कार्यका नहीं। सोचना यह चाहिए कि [प्रजनन कार्य] द्वारा ईश्वरके मानव-रूपमें अवतार लेनेका रहस्य प्रेममें है जो प्राण, आत्मा और शरीरको पवित्र करनेवाला है; पशुवृत्तिमें नहीं।

इस तरह विवाह एक धार्मिक संस्कार बन जाता है; यह सर्वोत्तम धर्म है तथा इसमें सम्भोग और सूलीपर चढ़ना, -- जीवन और मरण जैसी बड़ीसे-बड़ी विषमताएँ मिश्रित हैं।

[अंग्रेजीसे]
यंग इंडिया, ७-११-१९२९

१२९. राष्ट्रभाषा

जो मानपत्र मुझे संयुक्त प्रान्तमें मिल रहे हैं, उनसे मुझे बहुत-कुछ जाननेको मिलता है। इस लेखमें मैं उनपर भाषाकी दृष्टिसे ही विचार करना चाहता हूँ। मेरे पास तीन नमूने हैं, उनमें से मैं नीचे लिखे वाक्य चुनता हूँ:[1]

ये तीनों नमूने हिन्दी, हिन्दुस्तानी यानी राष्ट्रभाषाके हैं। एक केवल फारसी-अरबी शब्दोंसे भरा पड़ा है, जिसे सामान्य हिन्दू नहीं समझ सकेगा। दूसरा केवल संस्कृत शब्दोंसे भरा हुआ है, जिसे सामान्य मुसलमान कभी नहीं समझ सकता। तीसरा ऐसा है, जिसे सामान्य हिन्दू या मुसलमान, दोनों, समझ सकते हैं। इनमें जानबूझ कर संस्कृत या अरबी-फारसी शब्दोंका त्याग या चुनाव नहीं किया गया। यदि हम हिन्दीको राष्ट्रभाषा बनवाना चाहते हैं, यदि हिन्दू-मुसलमान, दोनों ऐक्य सिद्ध करना चाहते हों तो हम संस्कृत या अरबी-फारसी शब्दोंका इरादतन बहिष्कार नहीं कर सकते। अर्थात भाषा लिखते या बोलते समय हमारे मनमें एक दूसरेका या एक दूसरेकी बोलीका द्वेष नहीं होना चाहिए। बल्कि एक दूसरेके लिए प्रेम अथवा मुहब्बत होनी चाहिए। मुसलमान जब किसी हिन्दूको फारसी-अरबी शब्दोंका इस्तेमाल करते देखता है तो उसे खुशी होती है। इसी तरह उस मुसलमानके प्रति हिन्दूका आदर बढ़ता है, जो मौकेसे संस्कृत शब्दोंका भी उचित उपयोग कर लेता है।

तीनों भाषाओंके उचित शब्दोंको अपना लेनेसे हिन्दीका गौरव और विस्तार बढ़ता है, भाषाकी मिठासमें वृद्धि होती है। बात यह है कि जब हममें भाषा विशेषके प्रति द्वेष-भाव नहीं रहता तब हम उस भाषाकी मददसे अपनी भाषाको सँवारनेमें, उसे बढ़ानेमें संकोच नहीं करते।

श्री रामनरेशजी त्रिपाठीने अपनी 'ग्राम्यगीत' नामक पुस्तककी भूमिकामें लिखा है:

आजकल हिन्दीमें जो ग्रन्थ या लेख निकल रहे हैं, उनमें जितने शब्द प्रयुक्त होते हैं, मेरी गिनतीमें वे तीन सौ से अधिक नहीं आये। इतने थोड़े

१. यहाँ नहीं दिये जा रहे हैं।

शब्दोंके अन्दर हिन्दीकी विद्वत्ता घेर कर रखी गई है। हम इतने ही शब्दोंमें सोचते हैं, लेख या पुस्तकें लिखते हैं, और व्याख्यान देते हैं। हमारे घरोंमें, खेतोंमें, कारखानोंमें प्रतिदिन काममें आनेवाले कितने ही पदार्थोंके नाम हिन्दीमें नहीं हैं; कितने ही भावोंके लिए उपयुक्त शब्द नहीं हैं।

यदि यह बात सही है, तो शोचनीय और लज्जास्पद है; विचारकी मुफलिसीका चिह्न है। कहा जाता है कि शेक्सपियरने अपनी पुस्तकोंमें २०,००० शब्दोंका प्रयोग किया है, और मिल्टनने १०,००० का। कहाँ इन लोगोंका भाषाभण्डार और कहाँ हमारी निर्धनता। इस दशाके रहते हुए भी यदि हम राष्ट्रभाषाका मुख उज्ज्वल करना चाहते हैं तो और नहीं तो भाषाके खातिर ही हमें अपना ज्ञान बढ़ाना होगा। किसी भाषाके शब्दोंको अपना लेनेमें शर्मकी कोई बात नहीं है। शर्म तो तब है, जब हम अपनी भाषाके प्रचलित शब्दोंको न जाननेके कारण दूसरी भाषाके शब्दोंका प्रयोग करें। जैसे, घर शब्दको भुलाकर हाउस कहें, माताको मदर कहें, पिताको फादर कहें, पतिको हसबेंड और पत्नीको वाइफ कहें।

हिन्दी नवजीवन, ७-११-१९२९

१३०. पत्र : मुहम्मद मुजीबको

मुकाम वृन्दावन
७ नवम्बर, १९२९

प्रिय मुजीब,

मैंने दिल्लीमें डा० अन्सारीसे आपके बारेमें बातचीत की थी। डा० अन्सारीने वायदा किया था कि वे स्वयं आपके पिताजीसे बात करेंगे और उनसे आपका भत्ता सुनिश्चित करवा देंगे। उन्होंने मुझसे कहा कि मैं आपके बारेमें चिन्ता न करूँ। अलीगढ़में मैंने खास करके इस विषयपर आपके भाई[1] सा०से बात की। वहीं मुझे पता चला कि वे सोहेलाके[2] पति हैं। सोहेला तो मेरे लिये अपनी बेटी जैसी है। तैयबजी परिवारसे ऐसी ही घनिष्ठताका मुझे सौभाग्य प्राप्त है। इसलिए मुझे आपके भाईसे बात करनेमें लगभग कोई संकोच नहीं हुआ। यदि मुझे इस सम्बन्धका ज्ञान न होता तो शायद बड़ा संकोच होता। आपके भाई मुझे बहुत मेधावी और विवेकशील लगे। मुझे इसका सुखद आश्चर्य हुआ। मुझे उनसे बहस करनेकी बिलकुल जरूरत नहीं पड़ी। जैसे ही मैंने इस मामलेकी बातकी उन्होंने कहा कि जैसा मैंने कहा है वे वैसा ही करेंगे। वे इस बातपर भी सहमत हो गये कि आपके पिता और भाइयोंको आपकी सहायता करनी चाहिए। ऐसा लगता था कि उन्हें आपपर गर्व है और वे

१. प्रो० मुहम्मद हबीब।
२. अब्बास तैयबजीकी पुत्री।

इसे भी गर्वकी बात मानते हैं कि आप जामियाकी सेवा कर रहे हैं। हमारी सारी बातचीतके दौरान सोहेला उपस्थित थी। मैंने १५० रु० का जिक्र किया; क्योंकि आपने ही बताया था कि इतनी रकम आपके लिए काफी होगी। देवदासने अभी मुझे बताया है कि मुझसे बातचीतके बाद आपके भाई सा०ने उससे यह कहा कि १५० रु० शायद आपके लिए काफी न हो। बहरहाल मुझे आशा है कि आप अपने जीवनको इस तरह नियमित करेंगे जिससे १५० रु० से आपका काम चल जाये। अगर अब आपकी सेहत बिलकुल पहले जैसी हो गई हो तो मैं चाहूँगा कि आप एकदम दिल्ली जायें और अपना काम सँभाल लें। आपके भाई सा० ने मुझे आपके पिताजीको पत्र लिखनेके लिए कहा था; मैं आज उन्हें लिख रहा हूँ।[१]

एक बातके बारेमें आपके भाई सा० चाहते थे कि मैं आपसे बात करूँ; मैं उसका उल्लेख अवश्य कर दूँ। उन्होंने मुझे बताया कि आप किसी भी बातमें उनका कहा नहीं मानते हैं। मैंने उत्तरमें कहा कि यदि कोई महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त ही की बात न हो तो ऐसा नहीं हो सकता। कुछ भी हो आपको सही-सही मालूम होगा कि हबीबका इससे क्या अभिप्राय था। मैं चाहूँगा कि अगर आप ऐसा महसूस करें तो उन्हें एक मधुर पत्र लिख दें। इसमें कोई सन्देह नहीं कि अपनी विनम्रता और अपने गरिमापूर्ण व्यवहारसे उन्होंने मुझे पूरी तरह अपने वशमें कर लिया है।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजी (एस० एन० १५७४९)की फोटो-नकलसे।

१३१. पत्र : जवाहरलाल नेहरूको

वृन्दावन
८ नवम्बर, १९२९

प्रिय जवाहर,

तुम्हारा पत्र[२] मिला। तुम्हें मेरा तार[३] मिल गया होगा। तुम्हें फिलहाल अभी इस्तीफा[४] नहीं देना चाहिए। अपनी बातपर बहस करनेका मेरे पास समय नहीं है। मैं इतना ही जानता हूँ कि इससे राष्ट्रीय कार्यपर असर पड़ेगा। इसकी कोई जल्दी नहीं है और इससे कोई सिद्धान्त खतरेमें नहीं है। ताजकी[५] बात यह है कि उसे और कोई नहीं पहन सकता। वह फूलोंका ताज तो कभी होनेवाला था ही नहीं।

१. देखिए "पत्र : मुहम्मद नसीमको", ८-११-१९२९।
२. देखिए परिशिष्ट २।
३. देखिये "तार : जवाहरलाल नेहरूको", ६-११-१९२९।
४. अ० भा० कां संघके मन्त्री पदसे।
५. कांग्रेसकी अध्यक्षता।

अब तो उसमें काँटे ही काँटे हैं। यदि मैं उसे पहननेके लिए अपने मनको राजी कर सकता तब तो मैं उसे लखनऊमें[1] ही पहन लेता। जिस हालतमें मुझे मजबूर होकर ताज पहनना पड़ेगा, उसकी मेरे मनमें जो कल्पना थी वह इस परिस्थितिसे मेल नहीं खाती। उन स्थितियोंमें से एक स्थिति मैंने तुम्हारी गिरफ्तारी होने और दमन बढ़ जानेको माना है। लेकिन ये सब बातें जब हम मिलें तब शान्त और तटस्थ चर्चाके लिए रख छोड़ें।

तबतक ईश्वर तुम्हें शान्ति दे।

बापू

[अंग्रेजीसे]
ए बंच ऑफ ओल्ड लेटर्स

१३२. पत्र : निधालाल निधीशको

मुकाम वृन्दावन
८ नवम्बर, १९२९

प्रिय मित्र,

आपका पत्र और आपके उपहार मुझे मिले; उनके लिए धन्यवाद। उपहारके लिए मुझे आपके घर ले जानेका जो आग्रह रहा उसपर अफसोस प्रकट किये बिना नहीं रह सकता। मैं तो समझ रहा था कि मेरे आपके घर न रुकनेकी बात तय हो चुकी है। परन्तु जब कार अचानक रुक गई तो मुझे बहुत आश्चर्य हुआ। मुझे लगा कि शायद यह कोई दूसरी जगह है और कार किसी कारणसे रुक गई है। मेरे कार्यक्रमको जाननेवाले भाई उस समय मेरे पास उपस्थित नहीं थे। दूसरे लोग इस निर्णयपर पहुँच चुके थे कि हर रकमके लिए आपके दरवाजेपर या किसी भी दूसरी जगह मुझे रोकना गलत है। आप आसानीसे अपना चन्दा सार्वजनिक सभामें दे सकते थे या मेरे पड़ावपर भेज सकते थे। आप सहज ही इस बातकी कल्पना कर सकते हैं कि अगर इक्कीस-इक्कीस रुपयोंकी थैलियाँ प्राप्त करनेके लिए मुझे एक-एकके घर जानेको कहा जाये तो उससे मुझे कितनी परेशानी होगी। आप समझ सकते हैं कि यदि इस तरहके अनुरोध बढ़ते चले जायें तो शारीरिक दृष्टिसे भी यह कितना असम्भव काम हो जायेगा। कोई कारण नहीं कि जो बात एक आदमीके मनमें आती है, दूसरेके मनमें भी वही करनेकी बात न उठ आये। मैं आपसे यह स्पष्ट कह देना चाहता हूँ कि अगर मुझे पता होता कि मुझे वहीं ले जाया जा रहा है जहाँ न ले जाना

१. २८-९-१९२९ को हुई अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीकी बैठकमें।

निश्चित हो चुका है तो मैं थैली लेना अस्वीकार कर देता। अब तो बात हो ही चुकी है। मेरा यह पत्र भविष्यमें आपके निर्देशनके लिए है।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत निधालाल निधीश
निधीश निकेतन,
अलीगढ़

अंग्रेजी (एस० एन० १५७५१)की फोटो-नकलसे।

१३३. पत्र : मुहम्मद नसीमको

मुकाम वृन्दावन
८ नवम्बर, १९२९

प्रिय मित्र,

अलीगढ़में आपके पुत्र प्रो० हबीबसे मिलनेका मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ और मुझे यह जानकर बड़ी खुशी हुई कि वे मेरे मित्र और सहयोगी अब्बास तैयबजीके दामाद हैं। मुझे मालूम था कि सोहेलाका विवाह लखनऊके किसी सज्जनसे जो अलीगढ़में प्रोफेसर हैं, हुआ है। परन्तु मुझे यह नहीं मालूम था कि वे मुजीबके भाई हैं।

मैंने उनसे मुजीबके बारेमें बातचीत की। आपको शायद मालूम होगा कि मुझे मुजीबसे बड़ा स्नेह है। जिन बहुत ही साफ जवानोंको जाननेका मुझे सौभाग्य प्राप्त है, वह उनमें से है। मुजीब जामियाकी उपलब्धि है। जामिया आर्थिक संकटसे गुजर रहा है। बहुतसे प्रोफेसरोंने अपना मानदेय घटा कर ७५ रु० प्रतिमास कर दिया है। अबतक आप मुजीबको जामियाके हवाले करके उसको सहायता देते रहनेकी मेहरबानी करते रहे हैं। मुजीबने मुझे बताया कि अब आपने उसको मदद देनेसे इनकार कर दिया है। क्या आप अपने निर्णयपर पुनर्विचार नहीं करेंगे और जामियाके काममें मुजीबको आशीर्वाद तो देंगे ही; उसे जरूरतके मुताबिक पूरी आर्थिक सहायता भी देंगे। मुझे यह जानकर खुशी हुई कि आप आर्थिक सहायता देनेमें पूरी तरह समर्थ हैं। यदि मुजीब एक गरीब राष्ट्रीय संस्थामें काम नहीं कर रहा होता तो उसे सहायता देनेसे इनकार करनेके लिए मैं आपकी पूरी तरह सराहना करता, क्योंकि मेरा विश्वास है कि माता-पिताको अपने बच्चोंको अनुचित लाड़-प्यार करके बिगाड़ नहीं देना चाहिए। परन्तु यहाँ सवाल एक बिगड़े हुए बालकको मदद देनेका नहीं, उस संस्थाको मदद देनेका है जिसकी सेवामें उसने निस्संकोच पूरी त्याग भावनासे अपने आपको लगा दिया है। प्रोफेसर हबीबने मुझे यह आश्वासन देकर कि उन्हें मुजीबको सहायता देनेमें कोई आपत्ति नहीं है, अपनी साधुताका परिचय दिया है। आपसे यह आश्वासन पाकर कि आप मुजीबको मदद देते रहेंगे मुझे और मेरा

विश्वास है कि जामियाके कर्मचारी वर्गको, बड़ी राहत मिलेगी। मैं जल्दीसे-जल्दी आपका उत्तर पानेकी प्रतीक्षामें रहूँगा। अगले हफ्तेकी तारीखें नीचे दे रहा हूँ:

नवम्बर १० और ११	शाहजहाँपुर
" १२	लखीमपुर या सीतापुर
" १३	रायबरेली
" १४	कालाकांकर
" १५ से १८	इलाहाबाद

हृदयसे आपका,

मुहम्मद नसीम महोदय
वकील
बटलर रोड, लखनऊ

अंग्रेजी (एस० एन० १५७५२)की फोटो-नकलसे।

१३४. तार: शान्तिकुमार मोरारजीको

मुकाम हाथरस
८ नवम्बर, १९२९

शान्तिकुमार
शान्ति भवन
पेडडार रोड
बम्बई

पिताजीके[१] स्वर्गवासकी सूचना देनेवाला जमनालालजीका तार अभी-अभी मिला। तुम्हारे इस दुःखमें मेरी पूरी-पूरी सहानुभूति है। मेरी ओरसे माँको[२] आश्वासन देना। उनको, तुमको और दूसरोंको ईश्वरपर श्रद्धा रखकर धैर्य धारण करना चाहिए। ईश्वर तुम्हें बोझ सहन करनेकी शक्ति दे। जमनालालजीने मुझे लिखा है कि तुम्हें उनकी मदद और सलाहकी जरूरत है या नहीं, सो मैं तुमसे पूछ लूँ। मेरी यात्राका कार्यक्रम 'यंग इंडिया'में छपा है।

गांधी

अंग्रेजी (एस० एन० १५७५४)की फोटो-नकलसे।

१. नरोत्तम मोरारजी जिनकी मृत्यु ४ नवम्बरको हुई थी।
२. शान्तिकुमारकी दादी।

१३५. तार : जमनालाल बजाजको

मुकाम हाथरस
८ नवम्बर, १९२९

सेठ जमनालालजी
वर्धा

अभी-अभी शान्तिकुमारको संवेदना और तुम्हारा प्रस्ताव तारसे[१] भेजा। यद्यपि एकदम आवश्यक तो नहीं इलाहाबादमें[२] तुम्हारी उपस्थिति बहुत उपयोगी समझता हूँ, हो सके तो शामिल हो जाओ।

गांधी

अंग्रेजी (एस० एन० १५७५५)की फोटो-नकलसे।

१३६. पत्र : अल्बर्ट एम० टॉडको

मुकाम हाथरस
८ नवम्बर, १९२९

प्रिय मित्र,

२५ सितम्बरके आपके पत्रके लिए धन्यवाद। मुझे याद नहीं आता कि मैंने आपको अपने पत्रमें[३] यह लिखा था कि वसन्तमें हमारा चुनाव प्रचार होगा; और उस समय आपसे आर्थिक सहायता लेनेमें मुझे प्रसन्नता होगी। आपको शायद यह दिलचस्प जान पड़े कि मैं किसी भी चुनाव प्रचारमें प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूपमें भाग नहीं लेता। क्योंकि मैं हमारी अपनी माँगोंके अनुसार स्वतन्त्रता प्राप्त करनेसे पहले किसी प्रकारके चुनाव प्रचारसे सम्बन्ध रखनेके सर्वथा विरुद्ध हूँ। इसके साथ मैं अपने द्वारा सम्पादित 'यंग इंडिया'के सबसे ताजा अंककी एक प्रति भेज रहा हूँ। इससे मेरी गतिविधियोंके बारेमें आपको कुछ जानकारी मिल जायेगी। और यदि आप कुछ और भी अधिक दिलचस्पी रखते हों तो आप श्री एस० गणेशन, मुद्रक

१. देखिए पिछला शीर्षक।

२. १६-११-१९२९ को हुई अ० भा० कां० कमेटीकी बैठकमें।

३. १५-७-१९२८ का पत्र। देखिए खण्ड ४१, पृष्ठ २२३।

व प्रकाशक, ट्रिपलीकेन, मद्रासको लिखकर मेरे लेखोंको पुस्तक रुपमें मँगवा ले सकते हैं।

हृदयसे आपका,

एल्बर्ट एम० टॉड महोदय
कालामाजू
मिचिगन (सं० रा० अ०)

अंग्रेजी (एस० एन० १५६००) की फोटो-नकलसे।

१३७. पत्र : गिरिराजकिशोरको

मुकाम हाथरस
८ नवम्बर, १९२९

प्रिय गिरिराज,

आपका पत्र मिला। आशा है अब तुमको बुखार नहीं आ रहा होगा और तुम फिर पूरी तरह स्वस्थ हो गये होओगे। मजिस्ट्रेटसे हुई बातचीतका तुमने जो वर्णन दिया है, वह शोभनीय नहीं लगता। मुझे 'दान' शब्दपर आपत्ति है। यद्यपि हमने असंग्रह और गरीबीका व्रत ले रखा है पर हम [किसीके] दानपर जीवित नहीं रहते। तुम इस सम्बन्धमें किशोरलालसे बातचीत कर लो और इस सम्बन्धमें वे जो कहें उसे बिना झिझकके पूरी तरहसे मान लो। मेरा स्वास्थ्य अभीतक ठीक चल रहा है। तुमने अपने कार्यमें कितनी प्रगति की है, इस सम्बन्धमें मुझे अवश्य लिखो।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत गिरिराज
सूरजमल ओंकारमलकी चाल
माटुंगा

अंग्रेजी (एस० एन० १५६१९) की माइक्रोफिल्मसे।

१३८. पत्र : पेन हेजलरॉटको

मुकाम हाथरस
८ नवम्बर, १९२९

प्रिय मित्र,

आपका पत्र[1] और उसमें उल्लिखित रुपया मिला। इस पत्रके साथ मैं आपके द्वारा भेजे फार्मको समुचित रसीदके साथ भेज रहा हूँ। 'आत्मकथा' के द्वितीय खण्डका अनुवाद आप जब चाहें तब प्रथम खण्डवाली शर्तोंपर कर सकते हैं।

आपका विश्वस्त,

सहपत्र : १

पेन हेजलरॉट, महोदय
पोस्टगिरो ६७५, स्टाकहोम, ७

अंग्रेजी (एस० एन० १५६५२) की माइक्रोफिल्मसे।

१३९. पत्र : म्यूरियल लेस्टरको

मुकाम हाथरस
८ नवम्बर, १९२९

आपका पत्र मिला। चूँकि आपको लिखने लायक कुछ विशेष नहीं था और मेरे पास अवकाश बिलकुल नहीं था, मैं चुप रहा। लेकिन आपके भेजे हुए पत्रोंसे मुझे आपकी गतिविधियोंका पता चलता रहा है। मैं 'यंग इंडिया' के मैनेजरको आपका नाम मानार्थ सूचीमें रखनेके लिए लिख रहा हूँ, जिससे कि आप चन्दा भेजें या न भेजें, आपको 'यंग इंडिया' मिलता रहे; यदि आप अब भविष्यमें सचमुच चन्दा भेज सकनेकी स्थितिमें न हों तो तंगी बर्दाश्त करके चंदा न भेजें। आपको निःशुल्क प्रति पानेका अधिकार है। वाइसरायके पत्रके सम्बन्धमें मैंने क्या[2] किया है सो आपने देख लिया होगा। मैं नहीं जानता, इसका क्या परिणाम निकलेगा। मानार्थ प्रति भेजनेके लिए आप स्वयं मोहनलालको लिख दें।

म्यूरियल लेस्टर
किंग्स्ले हॉल, बो० इ/३

अंग्रेजी, (एस० एन० १५६७७) की फोटो-नकलसे

१. पेन हेजलरॉटने लिखा था कि **आत्मकथा**का प्रथम खण्ड छप गया है और पौण्ड ११-०-५ पैं० भेजे जा रहे हैं।

२. देखिए "सर्वदलीय नेताओंका संयुक्त वक्तव्य", २-११-१९२९।

१४०. पत्र : ए० ए० पॉलको

मुकाम हाथरस
८ नवम्बर, १९२९

प्रिय राजन,

आपका पत्र तथा कार्यवाहीका विवरण[1] भी मिला। मैं विवरणको सरसरी निगाहसे देख गया। इससे अधिकके लिए मेरे पास समय नहीं था। निस्सन्देह 'गीता'[2] भाष्यकी बात मेरे दिमागमें है पर उसके लिए समय निकाल सकनेके विषयमें करीब-करीब निराश हो गया हूँ। फिर भी मुझे आशा रखनी चाहिए और ईश्वरसे प्रार्थना करनी चाहिए। मेरा स्वास्थ्य ठीक चल रहा है। धन्यवाद।

हृदयसे आपका,

ए० ए० पॉल महोदय
फेडरेशन ऑफ इन्टरनेशनल फैलोशिप्स
मद्रास

अंग्रेजी (एस० एन० १५७२८) की फोटो-नकलसे।

१४१. पत्र : श्रीमती मोंक्रिफ स्मिथको

मुकाम हाथरस
८ नवम्बर, १९२९

प्रिय बहन,

आपका पत्र[3] मिला, उसके लिए धन्यवद। जो रुपया मुझे मिलता है वह कुछ निश्चित धर्मार्थ कार्योंके लिए सुरक्षित रहता है। अतः मैं उसे किसी अन्य कार्यमें, चाहे वह कितना ही महत्वपूर्ण क्यों न हो, इस्तेमाल नहीं कर सकता।

हृदयसे आपका,

श्रीमती मोंक्रिफ स्मिथ
अध्यक्ष
दिल्ली स्वास्थ्य और शिशु सप्ताह १९३०
१९ अकबर रोड, नई दिल्ली

अंग्रेजी (एस० एन० १५७३९)की फोटो-नकलसे।

१. कौंसिल ऑफ द फैडरेशन ऑफ इन्टरनेशनल फैलोशिप्सकी बैठकका विवरण।

२. पॉल महोदयने पूनाके बैरिस्टर एल्विन द्वारा लिखी **स्टडीज़ इन द गोस्पल** की एक प्रति भेजी थी और उन्होंने गांधीजीसे उनका **गीता** भाष्य खास करके हिन्दू विद्यार्थियोंके लाभार्थ माँगा था।

३. इसमें श्रीमती मोंक्रिफ स्मिथने गांधीजीसे कुछ रुपया क्षयरोगके खतरों सम्बन्धी प्रदर्शनीके लिए देनेकी प्रार्थना की थी।

१४२. पत्र : शंकरलाल बैंकरको

मुकाम हाथरस
८ नवम्बर, १९२९

प्रिय शंकरलाल,

इसके साथ लाला शंकरलालका एक पत्र जो मेरे नाम आया है, भेज रहा हूँ। मैं चाहूँगा कि आप इसका विस्तृत उत्तर मेरे पास भेज दें। यदि मणिलाल कोठारी वहाँ हों, तो मैं चाहूँगा कि आप उनका उत्तर भी ले लें, पर यदि वे वहाँ न भी हों, तो इस पत्रकी एक प्रति आप उन्हें भेज दें और उनसे जल्दीसे-जल्दी उसका उत्तर भिजवा दें।

हृदयसे आपका,

सहपत्र : २

श्रीयुत शंकरलाल बैंकर
अखिल भारतीय चरखा संघ
मिर्जापुर, अहमदाबाद

अंग्रेजी (एस० एन० १५७५३)की माइक्रोफिल्मसे।

१४३. पत्र : 'कैसर-ए-हिन्द' को

मुकाम हाथरस
८ नवम्बर, १९२९

प्रिय मित्र,

२६ अक्टूबरकी आपकी गश्ती चिठ्ठी मुझे मिली। वाइसरायकी घोषणाके सम्बन्धमें मैं केवल इतना ही कह सकता हूँ कि जबतक नेताओंके घोषणा-पत्रमें[1] स्पष्टरूपमें दी गई उन बातोंको जिन्हें शर्तें ही माना जाना चाहिए, पूरा नहीं किया जाता, तबतक शान्ति नहीं हो सकती।

हृदयसे आपका,

सम्पादक
'कैसर-ए-हिन्द'
फोर्ट, बम्बई

अंग्रेजी (एस० एन० १५७५७)की फोटो-नकलसे।

१. २ नवम्बरको दिया गया सर्वदलीय नेताओंका संयुक्त वक्तव्य।

१४४. पत्र : हिन्दुस्तानी सेवा दलके अवर सचिवको

मुकाम हाथरस
८ नवम्बर, १९२९

प्रिय मित्र,

आपकी पूछताछके संदर्भमें मुझे इस बातका खेद है कि मेरे पास असम चाय बागानके गिरमिटिया मजदूरोंके स्वदेशागमन सम्बन्धी नियम नहीं हैं; पर आप इन्हें या तो पं० बनारसीदास चतुर्वेदी, 'विशाल भारत'[1] कलकत्तासे या सर्वेन्ट्स ऑफ इंडिया सोसायटी, पूनासे प्राप्त कर सकते हैं।

हृदयसे आपका,

अवर सचिव
हिन्दुस्तानी सेवा दल
हुबली

अंग्रेजी (एस० एन० १५७५८)की माइक्रोफिल्मसे।

१४५. पत्र : के० सन्तानमको

मुकाम हाथरस
८ नवम्बर, १९२९

प्रिय सन्तानम,

इसके साथ मैं खादी प्रतिष्ठानके सतीश बाबूके उस पत्रकी एक प्रति[2] भेज रहा हूँ, जो उन्होंने मेरी पूछताछके जवाबमें भेजा है। छगनलाल जोशी और सुब्रह्मण्यम आजकल आपके साथ हैं। आप जो उचित समझें, करलें।

हृदयसे आपका,

सहपत्र : १

पं० के० सन्तानम

अंग्रेजी (एस० एन० १५७५९)की माइक्रोफिल्मसे।

१. उस समय कलकत्तासे प्रकाशित होनेवाला हिन्दी मासिक।

२. सतीश बाबूने लिखा था: "लाहौर प्रदर्शनी समिति उदारतापूर्वक खादीके लिए (१) निःशुल्क दुकान (२) प्रदर्शनी मैदानके बीच ही विशेष झोंपड़ोंमें मुफ्त रहनेकी सुविधा देनेको राजी हो सकती है।"

१४६. पत्र : ना० रा० मलकानीको

मुकाम हाथरस
८ नवम्बर, १९२९

प्रिय मलकानी,

मुझे आश्चर्य है कि तुम्हें अपने पत्र लिखनेकी तारीख २८ तक मेरी ओरसे कोई सूचना नहीं मिली। फिर भी मैं आशा करता हूँ कि पत्र डाकमें डालनेके बाद तुम्हें मेरी चिट्ठी जरूर मिल गयी होगी। बहरहाल अब तुम्हें मेरे पत्रकी आवश्यकता नहीं है, क्योंकि तुमने जमशेदजीसे[1] अपना झगड़ा निपटा लिया है। आशा है अब काम[2] बिना किसी रुकावटके चलेगा।

हृदयसे आपका,
बापू

श्रीयुत मलकानी
तिलक कांग्रेस भवन
हैदराबाद (सिन्ध)

अंग्रेजी (जी० एन० ८९७) की फोटो-नकलसे।

१४७. पत्र : सतीशचन्द्र दासगुप्तको

मुकाम हाथरस
८ नवम्बर, १९२९

प्रिय सतीश बाबू,

आपका पत्र मिला। आपने मुझे अपने राजमुन्द्री जानेके बारेमें कुछ नहीं बताया; पर मुझे डा० पट्टाभिसे पता चला कि आप वहाँ गये थे और यह जानकर मुझे प्रसन्नता हुई। उत्कलके बारेमें आप जो कुछ कह रहे हैं उसे मैं समझता हूँ। यदि समय मिला तो मैं कांग्रेस [अधिवेशन] के बाद उत्कल जाना चाहूँगा। चाहे मैं वहाँ जाऊँ या न जाऊँ, यदि वास्तवमें आवश्यकता है, अर्थात् परिस्थिति इसके योग्य है, तो उत्कलके लिए पैसा मिलनेमें किसी प्रकारकी कठिनाई नहीं होनी चाहिए। यह बहुत ही अच्छा होगा कि हमारे वर्धामें मिलनेसे पहले आप और शंकरलाल[3]

१. जमशेद, एन० आर० मेहता, कराचीके मेयर।

२. सिन्धमें बाढ़ सहायता कार्य।

३. शंकरलाल बैंकर।

वहाँ हो आयें। सुखेन्दुकी मृत्यु एक हत्या है।[१] संसारका इतिहास यह बताता है कि आप एकके प्रति हिंसक और दूसरेके प्रति अहिंसक नहीं हो सकते। यदि हम अपना [हिंसाका] रास्ता नहीं बदलते तो ज्यों-ज्यों हम हिंसा करते चलेंगे, त्यों-त्यों उसका बोझ हमारे सिरपर चढ़ता चला जायेगा। हमें अपनेमें विद्यमान इस हिंसाको खत्म करनेके लिए कोई तरीका खोजना पड़ेगा। निस्सन्देह 'हिन्द स्वराज्य'[२] में एक शब्द भी ऐसा नहीं है जिसकी उपयुक्तताकी पुष्टि न की जा सके। यदि मुझे उसे आज फिरसे लिखना पड़े तो हो सकता है कि मैं उसकी भाषामें बदलाव करूँ, लेकिन विचारोंमें कभी बदलाव नहीं कर सकता। आशा है कि आप सब और अधिक स्वस्थ होंगे। हेमप्रभा देवी कैसी हैं? मैं उन्हें चाहे लिखूँ या न लिखूँ उनको कभी-कभी मुझे अवश्य लिखते रहना चाहिए। किराये आदिके सम्बन्धमें प्रदर्शनी समितिसे अभी पत्र-व्यवहार चल रहा है। आपके पत्रोंके सम्बन्धित अंश मैं पं० सन्तानमको भेज रहा हूँ।[३]

उत्कलके सम्बन्धमें गोविन्द बाबू द्वारा निरंजन बाबूपर लगाये गये आक्षेपोंको मैंने कोई महत्व नहीं दिया है। तथापि मैंने उन्हें एक कड़ा पत्र[४] लिखा है, जिसमें उनसे कहा है कि या तो अपने आक्षेपोंको सिद्ध करें या उनके लिए क्षमा माँगें।

हृदयसे आपका,
बापू

अंग्रेजी (जी० एन० १६११) की फोटो-नकलसे।

१४८. पत्र: शान्तिकुमार मोरारजीको

हाथरस
८ नवम्बर, १९२९

चि० शान्तिकुमार,

आज तुम्हें तार[५] किया है, मिला होगा। मैंने तो अभी-अभी अखबारमें पढ़ा और जमनालालजीका तार मिला। इससे मैं काँप उठा। यह दुर्घटना कैसे घटी? अपने स्वभावके अनुसार जमनालालजीने मुझपर यह जिम्मेदारी डाली है कि तुम्हें उनकी सलाह अथवा मददकी जरूरत हो तो मैं उसके बारेमें तुमसे पूछ लूँ, इसलिए तुमसे पूछा। तुम बहादुर हो इसलिए धीरज रखोगे ही। हम जानते हैं कि जिस रास्ते

१. देखिए "पत्र: जे० एम० सरकारको", ३-११-१९२९ भी।
२. देखिए खण्ड १०।
३. देखिए "पत्र: के० सन्तानम्को", ८-११-१९२९।
४. ३ नवम्बरको।
५. देखिए "तार: शान्तिकुमार मोरारजीको", ८-११-१९२९।

पिताजी गये हैं, उसी रास्ते हम सबको जाना ही है तो फिर शोक किस बातका? माताजी तो ज्ञानी हैं, संयमी हैं; इसलिए उन्हें हर्ष-शोक न होना चाहिए।

पिताजीकी गद्दीको सुशोभित करना। अपने सभी कार्योंमें खूब धीरजसे काम लेना। मैं चाहता हूँ कि मुझे इधर बराबर लिखते रहो।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ४७१६) की फोटो-नकलसे।
सौजन्य : शान्तिकुमार मोरारजी

१४९ पत्र : रमणीकलाल मोदीको

हाथरस
८ नवम्बर, १९२९

चि० रमणीकलाल,

तुम्हारी तरफसे आज कोई पत्र नहीं मिला। इसके साथ बैंकके लिए एक पत्र भेज रहा हूँ। यदि जरूरत पड़े तो उसका उपयोग कर लेना।

आज बा और देवदास स्त्रियोंकी सभामें शाहबाद गये हैं। अन्य लोग पहलेसे एटा चले गये हैं।

तुम अपना स्वास्थ्य अच्छा बनाये रखना।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च :]

छगनलाल हमारा साथ छोड़कर आज पंजाबकी ओर रवाना हो गया है।

गुजराती (जी० एन० ४१४८)की फोटो-नकलसे।

१५०. पत्र: मथुरादास पु० गांधीको

एटा
९ नवम्बर, १९२९

चि० मथुरादास,[१]

कराची जाते हुए तुमने जो पत्र लिखा था वह मिल गया था। जीवनदासके निधनसे क्या तुम्हारी जिम्मेदारी बढ़ गई है? जीवनदास अपनी विधवा पत्नीके लिए क्या कोई व्यवस्था कर गया है अथवा विधवा पत्नी अपनी गुजर-बसर करनेमें स्वयं समर्थ है? मेरा विचार तो यह है कि प्रत्येक पत्नी परायण पतिको जैसे ही मौका मिले अपनी पत्नीको स्वावलम्बी बननेका ढंग सिखा देना चाहिए। पत्नीके लिए पैसा छोड़ जानेको तो मैं गौण कर्त्तव्य मानता हूँ। अपनी पत्नीको अपनेपर निर्भर रखनेवाले व्यक्तिके लिए एकमात्र उपाय यही है कि वह पत्नीके लिए पैसा छोड़ जाये। किन्तु सच बात तो यह है कि जैसे कोई पत्नी अपने पतिके लिए पैसा नहीं छोड़ जाती और यदि छोड़ जाती है तो पति शरमाता है, ठीक यही बात पत्नीपर भी लागू होनी चाहिए। उनकी सन्तानके बारेमें भी मेरा यही विचार है। यह बात तुमने 'नवजीवन'के मेरे लेखमें भी देखी होगी। यदि विधवा बहन निर्धन हो तो ऐसी स्थितिमें तुम्हारा कर्त्तव्य यह नहीं कि तुम उसका आजीवन भरण-पोषण करते रहो बल्कि उसे दृढ़तापूर्वक स्वावलम्बी बनाना है।

चरखेकी कक्षाकी प्रगति धीमी है। क्योंकि इस कामको कलाके रूपमें देखनेवाले तथा उसमें रस लेनेवाले व्यक्ति बहुत ही कम हैं। और इन दो कमियोंके कारण हमारे पास शिक्षकोंकी शृंखला भी नहीं है। अतः तुम देखोगे कि ऐसा एक भी शिक्षक नहीं है जो शुरूसे आजतक इसी काममें लगा रहा हो। तुमने इस रहस्यको समझ लिया है। अतः मैं आशा करता हूँ कि तुम इसी काममें लगे रहोगे और उसे आगे बढ़ाओगे।

आशा है तुम दोनों स्वस्थ होगे।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (जी० एन० ३७३३)की फोटो-नकलसे।

१. साबरमती आश्रमके कुशल कतैये तथा खादी-कार्यकर्त्ता।

१५१. पत्र : ईश्वरलाल जोशीको

बदायूँ
९ नवम्बर, १९२९

चि० ईश्वरलाल,

जबतक तुम आश्रममें थे तबतक मुझे अकारण पत्र लिखनेकी आवश्यकता नहीं पड़ती थी। किन्तु अब लिखना आवश्यक हो गया है। तुम्हें किसी प्रकारकी कठिनाई हो तो मुझे लिखना।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ९२८०)से।
सौजन्य : ईश्वरलाल जोशी

१५२. बारडोलीकी भूल ?

एक पत्र-लेखक लिखते हैं :[1]

मनुष्य अपनी पीठकी भाँति ही अपने दोष भी स्वयं नहीं देख सकता। अतएव बुद्धिमानोंने यह सलाह दी है कि अन्य लोगोंको हममें जो दोष दिखाई दें और वे हमारा ध्यान उनकी ओर आकर्षित करायें तो हम सदा उन्हें समझनेके लिए तैयार रहें; अधीरतावश या गुस्सेमें आ कर अपने दोष बतानेवालेका अनादर न करें। मैं इस बातको जानता हूँ और इसी कारण अपने दोष बतानेवालोंका मैं सदासे स्वागत करता रहा हूँ। लेकिन मेरे सामने एक विकट समस्या सदा रही है : एक ही बात सब लोगोंको दोष नहीं जान पड़ती। कई जिसे गुण मानते हैं उसीको दूसरे दोष समझते हैं। ऐसी संकटमय अवस्थामें मुझ-जैसा व्यक्ति क्या करे? ऐसी अवस्थामें टीकाकारकी बातपर निष्पक्षतापूर्वक विचार करनेपर भी अगर वह हमारे गले न उतरे तो अन्तरात्मा जो-कुछ कहे वही करना चाहिए। बारडोलीके सम्बन्धमें मेरी ठीक यही स्थिति है। आज तक तो मैं यही मानता रहा हूँ कि बारडोलीकी लड़ाईको स्थगित करके, मैंने देश और जगतकी सेवा ही की है। मुझे विश्वास है कि इतिहास उसे भीरुता नहीं मानेगा बल्कि पूर्ण सत्याग्रहके रूपमें उसका परिचय देगा। मैं तो उसका परिणाम भी अच्छा ही देख रहा हूँ। अगर दुराग्रहपूर्वक मैं उस आन्दोलनको चलाता रहता तो देश व्यर्थमें ही कुचल दिया जाता। आन्दोलनको स्थगित कर देनेसे

१. पत्र यहाँ नहीं दिया जा रहा है। पत्र-लेखकने किसीके द्वारा कही गई उस बातका उल्लेख किया था जिसके अनुसार यदि महात्माजीने फरवरी १९२२ में चौरी-चौरा काण्डके कारण असहयोग आन्दोलन स्थगित न कर दिया होता तो भारत कबका स्वतन्त्र हो गया होता।

देश धीमी गतिसे ही सही लेकिन आगे बढ़ा है, उसमें विवेक-शक्तिका विकास हुआ है और उसके फलस्वरूप जो जागृति आई वह स्थायी बनी है।

बम्बईके गवर्नर या अन्य अफसरोंने जो भी मत व्यक्त किया था, वह असंगत था। "मालिकको ढक्कनमें दीख पड़ता है, पड़ोसीको आसमानमें भी नहीं सूझता।"[1] युद्धका मेरे समान संचालक अथवा उसमें भाग लेनेवाले दूसरे साथी ही उसकी सच्ची परीक्षा कर सकते हैं। जो सेनापति दूसरोंकी टीकासे प्रभावित होकर अपने विश्वासको खो बैठता है, वह अपने पदसे हटा देने लायक है। सेनापतिमें अपने निश्चयोंको तोलनेकी शक्ति होनी चाहिए। जो काम करनेकी उसमें शक्ति न हो, ऐसे काममें उसे हाथ ही नहीं डालना चाहिए।

अपने निर्णयका इतना समर्थन करनेके बाद मैं यह कबूल करनेको तैयार हूँ कि सम्भवत: वणिक कुलमें जन्म लेनेके कारण मुझे अपनी कायरताका भान न होता हो। अगर इसे दोष माना जाये तो यह अनिवार्य है। लेकिन इसे निभाना या इस दोषके कारण मेरी सेवाको नामंजूर करना तो जनताकी मर्जीपर निर्भर है। जनता सेवा चाहे और पूर्णता भी चाहे तो ये दोनों बातें कैसे हो सकती हैं? फिर भी मुझे इतना तो कह ही देना चाहिए कि जानते हुए तो अबतक मने किसी भी लड़ाईमें पीठ नहीं दिखाई है। १९२०-२१ में जो लड़ाई शुरू हुई थी, वह तो अभी खत्म ही नहीं हुई है। मैंने पराजय स्वीकार नहीं की है। मैं इसी जन्ममें स्वराज्य पाने या उसके लिए जूझते हुए मरनेकी आशा लगाये बैठा हूँ। और सत्याग्रहमें हार नामकी कोई वस्तु ही नहीं है। सत्याग्रही एक बार अपना मार्ग निश्चित कर लेने पर फिर पीछे पैर नहीं हटाता। और यदि हटाता है तो वह सत्याग्रही नहीं है।

अगर भविष्यमें फिरसे चौरी-चौराके समान कोई काण्ड हो जाये तो मैं क्या करूँगा, इसपर विचार करनेकी यहाँ आवश्यकता नहीं है। क्योंकि अभीसे इस प्रकारके निर्णय करनेकी शक्ति मुझमें नहीं है। मेरी इच्छा तो यह है कि जब फिरसे जूझनेका समय आये तब चौरी-चौराके समान काण्डोंको काबूमें रखनेके लिए पहलेसे ही मैं व्यूह-रचना कर लूँ। ऐसी व्यूह-रचना हो सकेगी या नहीं सो मैं नहीं जानता। मनुष्य इच्छा करे, उसके लिए प्रयत्न करे, किन्तु उसकी इच्छा पूरी करना तो ईश्वरका ही काम है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १०-११-१९२९

१. गुजराती कहावत जिसका तात्पर्य है कि किसी समस्याका हल सम्बन्धित व्यक्तिको ही सूझ सकता है न कि किसी अन्यको।

१५३. नवयुवक और खेती

खेती करके स्वावलम्बी बननेकी इच्छा रखनेवाले आधुनिक शिक्षाप्राप्त एक साथी लिखते हैं :[१]

मैं खुद अपनेको दिलसे किसान मानता हूँ। जब अदालतमें बयान देते हुए मैंने अपना धन्धा किसान और बुनकर बताया था तो इसपर कुछ लोग हँसे थे। अपनी शक्तिका विचार करते हुए मैं आज भी अपनेको किसान कहलानेका बिलकुल अधिकारी नहीं मानता; पर मेरी देहमें किसानका खून है इस विषयमें मुझे थोड़ा भी सन्देह नहीं है। किसानके जीवनपर मैं मुग्ध हूँ। उसके स्वाभाविक गुणोंका मैं पूजारी हूँ। मौतके सम्बन्धमें उसकी लापरवाही देखकर मुझे ईर्ष्या होती है। उसका गठा हुआ बलिष्ठ शरीर देखकर मुझे अपने कमजोर शरीरपर तरस आता है। मैंने यह प्रत्यक्ष अनुभव किया है कि किसानमें जो सामान्य व्यावहारिक ज्ञान होता है, वह पाठशालामें कभी नहीं मिलता। कुदाली फावड़ा उठाते, कचरा साफ करते और पाखानोंकी सफाई करते मुझे शर्म नहीं आती। बल्कि मुझे ये सब काम करनेमें आनन्द आता है, यानी मैं जानता हूँ कि अगर शरीर मेरा साथ दे और जिसे मैं सेवा-कार्य मान बैठा हूँ वह मुझसे छूट जाये या मैं उसे छोड़ दूँ तो आजसे ही जमीन जोतने लगूँ। लेकिन यह तो मेरे नसीबमें नहीं था। अतएव साथियोंको खेतीका काम करनेकी प्रेरणा देकर और स्वयं खेतोंपर रहकर ही मैंने सन्तोष किया है।

लेकिन खेतीकी महिमासे अवगत होनेके कारण जब किसी सुशिक्षितको खेती करते देखता हूँ तो मुझे हर्ष होता है। साथ ही किसानोंके निकट सम्पर्कमें आने और खेतीके प्रयोग सीधे मेरी निगरानीमें होनेके कारण मैं उसकी विडम्बनाओंसे भी परिचित हूँ। इस हर्ष और विडम्बनाकी झाँकी दिखानेकी इच्छासे मैंने अपने सहयोगीके पत्रका उक्त अंश उद्धृत किया है।

द्रव्य और शारीरिक स्वास्थ्यके अभावमें खेती हो ही नहीं सकती। करोड़पति लाखों बीघे जमीन लेकर उससे द्रव्य पैदा करते हैं। वे खेती नहीं, व्यापार करते हैं। उनकी सफलता तो मजदूरों द्वारा कारखाने चलानेवालोंकी सफलताके समान है। लेकिन जिनके पास परिमित द्रव्य है और जो उसे खेतीमें लगाना चाहते हैं उनमें स्वयं मेहनत करनेकी इच्छा और शक्ति जरूर होनी चाहिए। जितनी सावधानी और जागरूकताकी आवश्यकता किसानको होती है उतनी और किसी धन्धेमें नहीं होती। किसान अगर चाहे तो यत्किंचित् प्रयत्नसे योगी बन सकता है। इसीसे तो 'उत्तम खेती मध्यम बान, निखिद नौकरी भीख निदान' वाली कहावत कही जाती है। अतएव अधिकसे-अधिक जितने नवयुवक खेती करने लगें उतना ही अच्छा है, इसमें मुझे तनिक भी शंका नहीं। लेकिन मैं जानता हूँ कि यह मार्ग कठिन है और इसी कारण मैंने

१. पत्र यहाँ नहीं दिया जा रहा है।

इस बारेमें कुछ विशेष नहीं लिखा है। सभीसे यह उत्तम धन्धा अपनानेको नहीं कहा जा सकता। खेती करनेके इच्छुक व्यक्तिको पहले तो चुपचाप किसी किसानके पास रहकर मजदूरी करनी चाहिए। वह पहले हल चलाना, साधारण किसानकी तरह जमीन और फसलको पहचानना तथा गोल और चौकोर गड्ढोंको अच्छी तरह खोदना सीखे। फिर उसे खेती विषयक पश्चिमी साहित्य पढ़कर आवश्यक ज्ञान प्राप्त कर लेना चाहिए। खेतीका रसायनशास्त्र बिलकुल जुदा है। उसे जान लेनेसे हम अपनी खेतीमें कई आवश्यक सुधार कर सकते हैं। अतएव खेतीमें सफलता पानेकी इच्छा रखनेवाले नौजवानमें अगर अटूट धैर्य न हो तो वह इस झमेलेमें कभी न पड़े। प्रयोग करनेवालेको अपनेमें आत्मविश्वास भी बढ़ाना चाहिए। आरम्भिक असफलतासे वह हिम्मत कभी न हारे। क्योंकि विफलता ही सफलताकी जननी है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १०-११-१९२९

१५४. टिप्पणियाँ

जापानका परिचय

जापानमें रहनेवाले एक भारतीयके पत्रका नीचे लिखा अंश[1] पठनीय है:

यह अन्ध स्वदेशाभिमानका एक नमूना है। वस्तुतः जापान ऐसा है या नहीं, इसका निर्णय करनेकी हमें आवश्यकता नहीं। हाँ, हमारे स्वदेशाभिमानको ज्ञानमय, सत्यमय और दयापूर्ण होना चाहिए।

इच्छा होते हुए भी अशक्त

एक दुःखी भाई लिखते हैं:[2]

इन भाईकी विडम्बनाका अनुभव बहुतोंको है और प्राचीन कालसे ऐसा ही होता आया है। अर्जुनने भी भगवानसे यही प्रश्न पूछा था जिसके उत्तरमें इन्द्रिय-दमनका उपाय बताया गया है। आत्माको आत्मा द्वारा वशमें करनेको कहा गया है तथा प्रयत्न और वैराग्यकी बात भी कही गई है। इसके अतिरिक्त भक्तिमार्गका उपदेश भी दिया गया है। असंख्य मनुष्योंने भक्ति द्वारा ही आत्मशुद्धि प्राप्त की है। इन भाईको अपनी कमजोरीका पूरा-पूरा भान है, अतएव इनका रोग असाध्य नहीं कहा जा सकता। इन्हें और इन जैसे लोगोंको इन्द्रिय-दमन करना, मनको वशमें करनेके लिए पूरा समय काममें बिताना और ऐसा प्रयत्न करते हुए रामनाम अथवा ईश्वरका

१. पत्र यहाँ नहीं दिया जा रहा है। पत्र-लेखकने जापानियोंकी कुछ विशेषताओं और दोषोंका वर्णन किया था।

२. पत्र यहाँ नहीं दिया जा रहा है। खादी पहननेवाले उक्त पत्र-लेखकने अपना अपराध स्वीकार करते हुए गांधीजीसे कोई ऐसा उपाय सुझानेका अनुरोध किया था, जिससे वह व्यभिचारके अधम मार्गको छोड़ सके।

जो भी विशेषण उन्हें प्रिय हो, उसका जप करना चाहिए और इस बातका विश्वास रखना चाहिए कि आखिरकार उनका प्रयत्न अवश्य सफल होगा। ऐसे भी बहुत-से लोग पाये जाते हैं, जो हिम्मत हार कर प्रयत्न करना छोड़ देते हैं, किन्तु फिर भी अपने पापोंकी चर्चा हर किसीसे करके, अनेक तरहके उपाय जानकर, तथा उपायोंपर अमल करनेकी अपनी असमर्थता जता कर पाप करनेका परवाना प्राप्त कर लेते हैं। प्रयत्नकी शिथिलताके कारण ये भाई ऐसी भूल न करें। उन्हें विश्वास रखना चाहिए कि भगवान दुखियोंकी पुकार अवश्य सुनता है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १०-११-१९२९

१५५. सहयोगकी शर्तें[1]

पाठकोंको मेरी यह सलाह है कि वे नेताओंकी बातचीत और उनके कामकाजमें अधिक दिलचस्पी न लें। और न उनकी बातोंको जाननेके लिए बहुत अधीर हों। क्योंकि सरकार द्वारा वचन देने और कानूनकी किताबमें 'औपनिवेशिक स्वराज्य' के दर्ज हो जानेपर भी अगर, जनता उसके योग्य नहीं होगी तो उसे इन बातोंसे कोई लाभ नहीं होगा। स्वर्णभस्ममें चाहे जितनी शक्ति हो लेकिन सेवन करनेवालेमें अगर उसे पचानेकी ताकत न हो तो उसके लिए वह भस्म निरर्थक ही ठहरेगी। ठीक यही स्थिति 'औपनिवेशिक स्वराज्य', आजादी, स्वराज्य अथवा स्वतन्त्रताकी है। नाम भिन्न-भिन्न होनेसे कोई अन्तर नहीं पड़ता। इसे पाने और बनाये रखनेकी ताकत जैसे-जैसे हममें आती जायेगी वैसे-वैसे और उस हदतक, हमें स्वराज्य मिला माना जायेगा। इस दृष्टिसे तो परिषद् वगैराकी कोई आवश्यकता ही नहीं रहती। परिषद् वगैरा होनेकी दशामें उससे निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि प्रतिपक्षी हमारी शक्तिको कुछ अंशोंमें स्वीकार करनेको तैयार है। मान लीजिए कि परिषद् होनेवाली है और उसमें कांग्रेसके प्रतिनिधि भी हैं, तथापि अगर उस समय जनतामें बलकी कमी होगी तो उसका असर परिषद्पर पड़े बिना नहीं रहेगा। अतएव जिन्हें परिषद्में भाग नहीं लेना है, उन्हें तो जनबलको दृढ़ करनेवाले रचनात्मक कामोंमें ही जुटे रहना चाहिए। अभी तो हमें यही पता नहीं है कि वाइसरायकी घोषणाका ठीक-ठीक अर्थ क्या है। मान लीजिए कि नेताओंके वक्तव्यका अर्थ ही ठीक है, मान लीजिए कि उन्होंने जो शर्तें रखी हैं वे मान ली गई हैं, तो भी जो काम आज हम कर रहे हैं, उनमें ढिलाई नहीं की जा सकती। दूसरे शब्दोंमें, विदेशी वस्त्रोंका बहिष्कार, खादीका उत्पादन, शराब-बन्दी, हिन्दू-मुस्लिम एकता, अस्पृश्यता-निवारण

१. इस लेखके पहले दो अनुच्छेदोंको यहाँ नहीं दिया जा रहा है, क्योंकि उनमें उन्हीं बातोंको दुहराया गया है जिनमें "टिप्पणियाँ", ७-११-१९२९ के उपशीर्षक 'क्या यह सच है' में पहले ही कहा जा चुका है।

आदि प्रवृत्तियाँ शिथिल होनेके बदले और जोरसे आगे बढ़नी चाहिए। ऐसा न करके अगर जनता सो जाये तो यह निश्चय समझिए कि न तो आज कुछ है, और न भविष्यमें कुछ होनेको है। सारांश यह कि बिना मरे स्वर्ग नहीं मिल सकता; स्वराज्य मिलना, न मिलना हमारी अपनी शक्तिपर निर्भर करता है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १०-११-१९२९

१५६. पत्र : रेजिनॉल्ड रेनॉल्ड्सको

शाहजहाँपुर
११ नवम्बर, १९२९

प्रिय रेनॉल्ड्स,

मौनवारको आपकी याद मुझे अवश्य आती है। अपने मन्दिर-प्रवेश निषेधपर आपने उदारता दिखलाई है। एक-दूसरेके प्रति ऐसा रुख अपनाना हम सबके लिए ठीक भी है। पर लज्जाजनक सत्य तो यही है कि यह निषेध उस अस्पृश्यताके अभिशापका ही एक रूप है, जिसके निकृष्टतम रूपको दूर करनेका हम भरपूर प्रयत्न कर रहे हैं।

मेरी आपसे यह विनती है कि तत्काल बहुत कुछ करनेका लालच न करें। मैं चाहूँगा कि आप कमसे-कम कुछ काम तो अच्छी तरहसे कर सकें। अब हमारे मिलनेमें ज्यादा विलम्ब नहीं है। यदि सब कुछ आशाके अनुरूप होता रहा, तो मैं वहाँ[1] २५की रातको पहुँचूँगा।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ४५२८)की फोटो-नकलसे।
सौजन्य : स्वार्थमोर कालेज, फिलाडेल्फिया

१. साबरमती आश्रम।

१५७. पत्र : फूलचन्द के० शाहको

शाहजहाँपुर
११ नवम्बर, १९२९

भाई फूलचन्द,

तुम्हारा ५-११-१९२९ का पत्र मिला। इससे पहलेके पत्रोंका उत्तर मैं दे चुका हूँ।

तुम यह स्वीकार करते हो न कि 'सौराष्ट्र मित्र'ने गलती तो की ही है। तो फिर तुम इसके आधारपर किस तरहका संघर्ष आरम्भ करना चाहते हो? आशा है मैं २५ तारीखकी रातको साबरमती पहुँच जाऊँगा और ६ दिसम्बरकी सुबह वहाँसे चल पड़ूँगा। यदि तुम मुझे कुछ समझाना चाहो तो इस बीच वहाँ आ जाना। तुम कुछ न कहना चाहो तथा अपने कामके बारेमें तुम्हारे मनमें कोई शंका न हो तो मत आना। भले ही कहीं भूल होनेकी सम्भावना हो; किन्तु तुम्हारी अन्तरात्मा जो-कुछ कहे उसके अनुसार चलनेमें हिचकिचाना नहीं। आखिर मेरा सहारा कहाँतक लोगे?

तुम्हारी यह बात मेरे गले नहीं उतरती कि अन्यायीके प्रति तुम अपने मनमें किसी तरहका द्वेष नहीं रखते। ऐसी द्वेष हीनता अभ्याससे ही प्राप्त होती है। तुम्हारे दलके अधिकांश लोगोंने इस गुणको प्राप्त करनेका प्रयास भी किया हो ऐसा मुझे नहीं लगा। अतः मैंने तुम्हें सामान्य चेतावनी दी थी।

अब यह कहा जा सकता है कि छाया[1] स्थित आश्रम पक्की नींवपर खड़ा हो गया है। बशर्ते कि उक्त नींव उसकी आत्माके लिए भी उतनी ही पक्की साबित हो। अन्यथा हम अपने मनको इस तरह भी समझा सकते हैं कि आश्रमकी आत्माकी तो पहलेसे ही पक्की नींव मौजूद थी और अब आश्रमने अपने लिए पक्की नींवका भवन भी खड़ाकर लिया है।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० २८३८)की फोटो-नकलसे।
सौजन्य : फूलचन्द के० शाह

१. पोरबन्दरके निकट।

१५८. पत्र : शारदाबहन शाहको

शाहजहाँपुर
मौनवार [११ नवम्बर, १९२९][1]

चि० शारदा,

तुम्हारा पत्र मिला। मैंने जो मर्यादा बताई है उसका उलटा अर्थ न निकाला जाये। जिनमें भक्तिबहन[2] जैसी स्वतन्त्र हिम्मत है वे दलमें क्यों सम्मिलित नहीं हो सकते? अच्छा काम आरम्भ करनेके लिए दूसरोंकी बाट नहीं जोहनी चाहिए। भक्तिबहन तो दलमें सम्मिलित हुई जैसी हैं। इसलिए यदि किसीमें सत्यका आग्रह रखनेकी स्वतन्त्र हिम्मत हो, यदि उसमें जेल आदिके दुखोंको सहनेकी शक्ति हो तो उसे दलमें सम्मिलित कर लेनेमें कोई हानि नहीं है। तुम यह मत मान लेना कि आजकल जो लोग दलमें हैं वे सभी उसकी प्रतिष्ठाको बढ़ानेवाले हैं। सत्याग्रहका तात्पर्य अन्यायका सामना करना है, उसका इतना ही अर्थ कभी मत करना। अन्यायका सामना करनेकी शक्ति तो उसका एक चिह्न हो सकती है। क्योंकि कितने ही असत्याचारियोंको मैंने अन्यायका सामना करते हुए देखा है। यह निश्चित है कि सत्यका आग्रह रखनेकी कला हस्तगत होते ही अन्यायका सामना करनेकी शक्ति आ ही जाती है। किन्तु सत्यका आग्रह तो प्रतिदिन निरालस भावसे कोई विशुद्ध पारमार्थिक कार्य – निस्वार्थ, मोहरहित सेवा अर्थात् विशुद्ध यज्ञ करनेसे ही उत्पन्न होता है। मेरा अनुभव है कि जिस स्त्रीमें सामान्य ज्ञान उत्पन्न हो चुका है उसमें उक्त शक्ति जल्दी आ जाती है और शक्ति आ जानेके बाद वह टिकी भी रहती है।

सूत तुमने साड़ीके लिए रखकर ठीक किया। वह सूत तुमने काता था इतना ही पर्याप्त है। तुम्हें यह बात याद है न कि उसी कातनेवालेको कतैया कहा जा सकता है जो पींजता भी हो।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० २८३९)की फोटो-नकलसे।
सौजन्य : शारदाबहन शाह

१. इस दिन गांधीजी शाहजहाँपुरमें थे।
२. दरबार गोपालदासकी पत्नी।

१५९. पत्र : आश्रमकी बहनोंको

शाहजहाँपुर
मौनवार, ११ नवम्बर, १९२९

बहनो,

इसके बाद तो अब मुझे पत्र लिखनेको एक ही सोमवार रह जायेगा।

यह रोज साबित होता जा रहा है कि हमारे यहाँ जो चोरियाँ होती रहती हैं, उनका कारण हमारी गफलत है। गफलत दो तरहकी है: हम सावधान नहीं रहते और कई बार समझानेपर भी कोई गहने रखती है, तो कोई रुपया रखती है। चोर तो दुनियामें रहेंगे ही। उनसे बचनेके तीन उपाय हैं: पासमें कुछ रखा ही न जाये, इतनी पूर्णता तो आ नहीं सकती। जितना रखें उतनेके बारेमें खुद सावधान रहें; और तीसरा उपाय चोरको सरकारका दण्डरूपी भय दिखाना और खुद भी उसे दण्ड देनेमें शरीक होना है। हमने इस तीसरे उपायका त्याग कर दिया है। पहला उपाय हमारा आदर्श है और दूसरा उपाय हम आजकल काममें ला रहे है। जहाँतक हो सके संग्रह कम किया जाये और जहाँतक अनिवार्य हो, उसकी चोरी वगैरासे रक्षा की जाये।

यह पत्र सबके लिए हो गया है, इसलिए शामकी प्रार्थनाके समय भी पढ़नेके लिए देना।

भोजनालयके भारसे घबरा न जाना। जो मदद चाहिए वह माँग लेना, परन्तु हारना मत। कोई काम हाथमें न लेना ठीक है परन्तु ले लें तो उसके लिए मरमिटना चाहिए। जो इतनी दृढ़तापूर्वक काम करता है उसकी भगवान अवश्य सहायता करता है। गजेन्द्र-मोक्ष और कच्छप-कच्छपीके भजनमें[1] यही सीख है।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (जी० एन० ३७०९)की फोटो-नकलसे।

१. भोजा भगतका एक भक्तिपूर्ण भजन। जिसमें भगवानमें आस्थाके कारण कच्छप-कच्छपीके निस्तारकी कथा है।

१६०. पत्र : रमणीकलाल मोदीको

शाहजहाँपुर
११ नवम्बर, १९२९

चि० रमणीकलाल,

इस चोरीने मुझे झकझोर दिया है। इसमें मुझे हम सबका दोष और ईश्वरकी कृपा दिखाई देती है। अपने दोषके बावजूद यदि हम संतुष्ट रहेंगे तो उसे मैं ईश्वरीय कोप मानूँगा। मेरे कहनेका तात्पर्य यह है कि जो व्यक्ति चौकीदारीके काममें बेवजह लापरवाह दिखाई दे उसे आश्रम छोड़कर चले जाना चाहिए। कितने ही काम ऐसे हैं जिनमें गफलत होनी ही नहीं चाहिए। जो वैद्य नमकके बदले संखियाकी पुड़िया देता है उसे वैद्यक करनी ही नहीं चाहिए; यह भी वैसी ही बात है। ऐसा लगता है कि चार बजे भी चौकीदारीकी जरूरत है। अपनी कोठरीमें रुपया-पैसा न रखनेके नियमके बावजूद उसका उल्लंघन क्यों होता है? मुझे तो लगता है कि जो लोग आश्रमके सामान्य नियमोंको भंग करते हैं, उन्हें आश्रम छोड़ देना चाहिए। ऐसे लोगोंसे आश्रम छोड़नेके लिए कहनेमें मुझे दण्डकी भावना दिखाई नहीं देती; यह तो असहयोगका एक रूप है।

प्रबन्ध समिति ऐसा नियम बनाये या नहीं इस सम्बन्धमें तुम विचार कर लेना किन्तु मेरे मनोभावकी अभिव्यक्तिके रूपमें उपर्युक्त अंश सभीको पढ़कर सुना और समझा देना। दस रुपये जानेकी बात उतनी नहीं चुभती जितनी यह बात कि हम अब भी इतने गाफिल हैं। यदि नाथजी वहाँ पहुँच गये हों तो इस मामलेमें उनकी राय भी लेना।

आसपासके गाँवोंमें हम नहीं पहुँच सके इसमें मुझे अपनी ही कमजोरी दिखाई देती है। हमारे ऐसा न कर सकनेमें हमारी कुशलताकी भी कमी है। हम किस प्रकार वहाँतक पहुँच सकते हैं, इसके बारेमें भी विचार करना।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (जी० एन० ४१४९)की फोटो-नकलसे।

१६१. पत्र : गंगाबहन वैद्यको

शाहजहाँपुर
११ नवम्बर, १९२९

चि० गंगाबहन,

अब तो नाथजी आ गये होंगे। वे तुम्हें आश्वस्त करेंगे। मैं इस बातको समझ पा रहा हूँ कि तुम अपने निश्चयपर दृढ़ तो हो किन्तु शान्त नहीं हो।

अपने स्वास्थ्यकी खातिर आवश्यक फल औषधिके रूपमें लेना। शरीरको तीर्थ-क्षेत्र समझकर उसकी सार-सँभाल करनेमें कोई पाप नहीं है; हाँ, उसे भोगकी वस्तु समझकर सहेजनेमें महापाप है। किन्तु तुम तो उससे मुक्त हो चुकी हो।

बापूके आशीर्वाद

[गुजरातीसे]
बापुना पत्रो–६ : गं स्व० गंगाबहेनने

१६२. पत्र : प्रेमाबहन कंटकको

शाहजहाँपुर
११ नवम्बर, १९२९

चि० प्रेमा,

मैंने बम्बईके पतेपर जो पोस्टकार्ड लिखा था, लगता है वह नहीं मिला। मालूम होता है कि तुम उससे पहले ही रवाना हो गई थी।

बम्बईमें वजन बढ़े और आश्रममें घटे, यदि ऐसा ही होता रहा तो क्या तुम्हें आखिरकार आश्रमसे ही अरुचि नहीं हो जायेगी?

आश्रमकी कीर्ति बम्बईमें फैलानी उचित थी या अनुचित, यह तो अनुभव ही बता सकेगा। अभी तो आश्रमके दोष ही मेरी नजरके सामने घूमते रहते हैं। और मुझे तो वही अच्छा लगता है। हम अपनेमें दोष न देखकर गुण ही देखा करें तो यह समझ लेना चाहिए कि हमारी अवनति होनी शुरू हो गई है।

तैयारियोंके बारेमें वहाँ लौट आनेपर बातचीत करूँगा।

बापूके आशीर्वाद

[गुजरातीसे]
बापुना पत्रो–५ : कु० प्रेमाबहेन कंटकने

१६३. पत्र : वसुमती पण्डितको

मंगलवार [१२ नवम्बर, १९२९][१]

चि० वसुमती,

तुम्हारे पत्र मिले। मुझे यह ठीक जान पड़ता है कि जबतक तुम शारीरिक और मानसिक रूपसे स्वस्थ रहो तबतक बीजापुरमें ही रहो। इस प्रकार तुम वहाँ कुछ प्रचार-कार्य भी कर सकोगी और छगनलालको भी मदद मिलेगी। पींजने और पूनियाँ बनानेके काममें तुम जितनी मदद कर सको उतनी करना। यदि बीजापुरकी प्राथमिक पाठशालामें तुम कताईका काम शुरू करा सको तो वह भी कराना। यदि सम्भव हो तो वहाँके अच्छे परिवारोंसे हेलमेल बढ़ाना। किन्तु आखिर करना वही जो तुम्हारे मनको रुचे। जो व्यक्ति फिलहाल कातता नहीं उसे पिंजाई मत सिखाना। काम कुछ जम जानेके बाद भले ही जो चाहे वह सीखे; फिर उसे सिखानेमें कोई अड़चन नहीं है। धुनकी किसीको मुफ्त मत देना; कम कीमतपर देनेमें कोई हानि नहीं है।

आज तो हम एक गाँवमें डेरा डाले हुए हैं। मीराबहन तथा अन्य लोगोंको लखनऊमें छोड़ आये हैं किन्तु कल फिर हम सब एकत्रित हो जायेंगे।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (एस० एन० ९३७७) की फोटो-नकलसे।

१६४. पत्र : रमणीकलाल मोदीको

सीतापुर
१३ नवम्बर, १९२९

चि० रमणीकलाल,

तुम्हारा पत्र मिला। अपने अनुभवके आधारपर मैंने यह सिद्धान्त बना लिया है कि स्वार्थकी दृष्टिसे मनुष्यको पारमार्थिक कार्य करनेका विचार कभी नहीं करना चाहिए। स्वार्थ साधन करते हुए उसके द्वारा कभी-कभी परमार्थ भी हो जाता है किन्तु उसे ऐसे कार्योंको कदापि परमार्थमें नहीं गिनना चाहिए। क्योंकि ऐसे कार्यका पुण्य उसे नहीं मिलता। हालाँकि उसका पड़ौसी भले ही उसका फायदा उठाये। यह फायदा

१. अन्तिम अनुच्छेदमें लखनऊका उल्लेख होनेके आधारपर यह तारीख तय की गई है। इस तारीखको गांधीजी लखीमपुरमें थे जो लखनऊसे लगभग ८५ मील है। रायबरेली जाते हुए १३ तारीखको गांधीजी लखनऊसे गुजरे थे।

तो उस कार्य विशेषकी उपयोगिताके कारण पहुँचता है, न कि कर्त्ताकी भलमनसाहतकी वजहसे। उदाहरणके लिए, भंगी द्वारा पाखाना साफ करनेमें एक बड़ा परमार्थ निहित है किन्तु उक्त कार्यका पुण्यफल उसे नहीं मिलता क्योंकि उसके द्वारा वह अपनी रोजी कमाता है। किन्तु उसका कार्य उपयोगी होनेके कारण समाज उसका उतना ही लाभ उठा पाता है जितना कि किसीके द्वारा सेवाभावसे प्रेरित होकर मुफ्तमें पाखाना साफ करनेसे होता है। इसी प्रकार जो व्यक्ति केवल शारीरिक रक्षाके लिए प्राणायाम आदि करता है उसे उतना ही फायदा पहुँचता है जितना कि स्वास्थ्यके लिए आवश्यक है। ऐसे प्राणायामसे उसकी आत्माको तनिक भी शान्ति नहीं मिलती। यह प्रस्तावना चोरोंके उपद्रवके बारेमें तुम्हारे प्रश्नके उत्तरमें है। पशुओं, गाँवोंकी सफाई तथा दवाई बाँटने आदिके सभी काम हम कर सकते थे। किन्तु यदि ये काम हम अब करना शुरू करेंगे तो उन्हें विशुद्ध स्वार्थ माना जायेगा और इससे हमें अपने कामका कोई यश नहीं मिलेगा। वास्तवमें शुरूसे ही यह काम करनेका हमारा विचार रहा है। हमें इसपर जमे रहना चाहिए और भविष्यमें उसे पूरा करना चाहिए। चूँकि फिलहाल हमें अपना मतलब ही साधना है; अतः अपने कार्यक्रमकी घोषणा करते हुए हम गाँवोंतक जा सकते हैं। मैंने इस आशयका एक पत्रक तैयार किया था, जो छपा भी था किन्तु आश्रमवासियोंके अविश्वास, भीरुता और झूठी शर्मके कारण उसका प्रचार रोक देना पड़ा था। आज भी वही स्थिति है और मेरी राय अब भी वही है।

मैं तो यह मानता हूँ कि फिलहाल हमें लोगोंके बीच जाकर उन्हें अपनी बदकिस्मतीकी बात ही बतानी चाहिए और उनसे दयाकी भीख माँगनी चाहिए। यदि समय मिला तो मैं वैसा पत्रक फिर तैयार कर दूँगा अन्यथा वहाँ आकर तैयार करके दे दूँगा। फिर उक्त पत्रकका उपयोग करने या न करनेके बारेमें तुम सब विचार कर लेना। बहुतसे लोगोंके शोर-गुलके बीच यह पत्र लिखवा रहा हूँ। अतः मैं अपनी बात पूरी तरहसे नहीं कह पा रहा हूँ। इसलिए जो बाकी रह जाये उसे तुम अपनी समझसे पूरा कर लेना।

चैकपर दस्तखत करनेके बारेमें तो मैं तुम्हें सोमवारको ही पत्र लिख चुका हूँ।

मेरे वहाँ लौटनेपर ही बाड़ लगानेके बारेमें पूछना; किन्तु 'यदि ऐसा लगे कि तबतक राह नहीं देखी जा सकती तो जो उचित जान पड़े वैसा करना।

मैंने पत्र समाप्त करनेके बाद उसे नहीं पढ़ा है।

बापूके आशीर्वाद

लखनऊ[1]

गुजराती (जी० एन० ४१५०) की फोटो-नकलसे।

१. जान पड़ता है पत्र लखनऊमें समाप्त हुआ था।

१६५. पत्र : हरिभाऊ उपाध्यायको

रायबरेली
१३ नवम्बर, १९२९

भाईश्री हरिभाऊ,

आपका पत्र मिला। यदि आप खुद आ सके होते तो अच्छा रहता। परन्तु अब यदि कोई जिम्मेदार प्रतिनिधि आ जाता है तो उसीसे काम चल जायेगा। सत्याग्रही बिलकुल पवित्र होना चाहिए। केवल तभी वह अजेय हो सकता है। जब हम मिलेंगे तब यदि आवश्यकता महसूस हुई तो इसपर और बातचीत करेंगे। मैं समझता हूँ कि यद्यपि आप साबरमती आश्रम नहीं आये, वर्धा तो जरूर ही आयेंगे।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ६०६३)की नकलसे।
सौजन्य : हरिभाऊ उपाध्याय

१६६. पत्र : ईश्वरलाल जोशीको

रायबरेली
१३ नवम्बर, १९२९

चि० ईश्वरलाल,

तुम्हारा पत्र मिला। यह जानकर प्रसन्नता हुई कि तुम्हारी अंग्रेजीकी पढ़ाई ठीक चल रही है। वहाँ खूब होशियारीसे अपना काम करना। मुझे नियमित रूपसे पत्र लिखते रहना। मुझे लिखना कि कौन-सी पुस्तकें पढ़ाई जा रही हैं? यदि तुम कापीपर लिखते हो तो ऐसी कोई भी कापी मुझे देखनेको भेज देना ताकि मैं जान सकूँ कि तुम्हारी लिखावट कैसी है और तुम कैसी अंग्रेजी लिखते हो।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ९२८१) से।
सौजन्य : ईश्वरलाल जोशी

१६७. तार : विट्ठलभाई पटेलको

[१३ नवम्बर, १९२९ या उसके पश्चात्][1]

अध्यक्ष पटेल
सरदार गृह
बम्बई

वल्लभभाईका पत्र[2] मिला। सह-हस्ताक्षरकर्त्ताओंको[3] १८ को बुलाया गया है। उनसे सलाह किये बिना वक्तव्यसे अलग हटकर कुछ नहीं किया जा सकता है।

गांधी

अंग्रेजी (एस० एन० १५५६९)की फोटो-नकलसे।

१६८. तार : मोतीलाल नेहरूको

[१४ नवम्बर, १९२९ या उसके पूर्व][4]

पण्डित नेहरू
लखनऊ

यदि १७ तारीखको पड़नेवाली लालाजीकी पुण्यतिथिके सम्बन्धमें कोई घोषणा नहीं की गई है तो कृपया इसे स्मारकके लिए पैसा इकट्ठा करके मनाने की घोषणा करें।

गांधी

अंग्रेजी (एस० एन० १५५७०)की फोटो-नकलसे।

१. यह वल्लभभाईके पत्रके सन्दर्भसे, जिसपर ११ नवम्बर, १९२९ तारीख पड़ी थी और जो गांधीजीको १३ नवम्बर को मिला होगा।

२. देखिए परिशिष्ट ३; ११ नवम्बरको वल्लभभाईने एक तार भी भेजा था जो इस तरह था: "क्या विट्ठलभाई, जिन्ना और मेरी मुलाकातकी व्यवस्था २४ तारीखको अहमदाबादमें अथवा २५ या २६ को बम्बईमें आप करा सकते हैं। उत्तर अध्यक्ष पटेल, सरदार गृहके पतेपर तार द्वारा भेजें।

३. सर्वदलीय नेताओंके संयुक्त वक्तव्यके।

४. इसके उत्तरमें भेजे १४ नवम्बरके अपने तारमें मोतीलाल नेहरूने लिखा था: "एसोसिएटेड प्रेस और फ्री प्रेसके जरिये लालाजी स्मारकके लिए अपील जारी कर रहा हूँ।"

१६९. संवेदना[1]

सेठ नरोत्तम मोरारजीकी दुःखद मृत्यु हो जानेसे हमारे बीचम से एक व्यापारी उठ गया है। सेठ नरोत्तमजीमें देशभक्ति और व्यापारिक महत्वाकांक्षा, दोनों बातें, एक साथ पाई जाती थी। पूँजीपति होते हुए भी वह मजदूरोंके साथ दयाका, मनुष्यता का, व्यवहार करते थे। सिन्धिया स्टीम नेविगेशन कम्पनी खड़ी करनेमें उन्होंने जिस साहसका परिचय दिया था, उससे महत्वाकांक्षाके साथ उनकी देशभक्तिका भी परिचय मिलता है। उनका दान विशाल, विवेकपूर्ण और आधुनिक आवश्यकताओंके अनुकूल होता था। देशकी वर्तमान अवस्थामें इस सपूतके चल बसनेसे भारत माताको बड़ी क्षति पहुँची है। अब उनके कार्यका सारा बोझ उनके एकमात्र नौजवान पुत्रके सिर आ पड़ा है जो अभी उदीयमान ही है। लेकिन श्रीयुत शान्तिकुमार भी अपने स्वनामधन्य पिताके समान ही देशभक्त हैं और सम्भवतः अपने पिताके बहुसंख्यक कारखानोंमें काम करनेवाले मजदूरोंसे और भी अधिक प्रेम करते हैं। मैं उनके, उनकी बूढ़ी दादी माँके और दूसरे सब कुटुम्बियोंके प्रति हृदयसे संवेदना प्रकट करता हूँ — जिनसे निकट सम्बन्धका मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १४-११-१९२९

१७०. ग्राम-सुधार[2]

आशा है कि पाँच भागोंमें प्रकाशित लाला देशराजके लेखोंको[3] पाठकोंने सावधानीसे पढ़ा और समझा होगा। मेरे विचारसे उनमें गुड़गाँव जिलेके भूतपूर्व डिप्टी कमिश्नर श्री ब्रेनके 'गुड़गाँव-कार्यक्रम' नामसे मशहूर प्रयोगकी तटस्थ और निष्पक्ष आलोचना की गई है। ये लेख 'यंग इंडिया' में छप रहे थे, उस बीच मैंने मि० ब्रेनकी 'रीमेकिंग ऑफ विलेज इंडिया' (ग्रामीण भारतका पुनर्निर्माण) नामक पुस्तक पढ़ी, जो उनकी मूल पुस्तक 'विलेज अपलिफ्ट इन इंडिया' (भारतमें ग्रामसुधार)का दूसरा संस्करण है। लाला देशराजके लेखोंसे हम इस नतीजेपर पहुँचते हैं कि गाँवोंके पुनर्निर्माणका गुड़गाँव जिलेका प्रयोग वास्तवमें असफल रहा। श्री ब्रेनके गुड़गाँवसे पीठ फेरते ही वहाँके लोग, जो उनकी प्रेरणा या दबावसे काम करते

१. इसी तरहकी एक टिप्पणी **नवजीवन**, २४-११-१९२९ में भी छपी थी।

२. इसी विषयपर गांधीजीके लेख **नवजीवन**, २४-११-१९२९, १-१२-१९२९ और ८-१२-१९२९ में भी छपे थे।

३. ये लेख १७-१०-१९२९, २४-१०-१९२९, ३१-१०-१९२९ और ७-११-१९२९ के **यंग इंडिया**में प्रकाशित हुए थे। गांधीजीके परिचयात्मक विचारोंके लिए देखिए "क्या यह ग्राम-सुधार है?", १७-१०-१९२९।

थे, सो गये मालूम होते हैं; खादके गड्ढोंकी उपेक्षा हो रही है, नये हल जंग खाने लगे हैं और सहशिक्षा खत्म हो रही है।

इस असफलताका कारण खोजपाना बहुत मुश्किल नहीं है। यह सुधार भीतरसे अंकुरित नहीं हुआ था; बाहरसे लादा गया था। श्री ब्रेनने अपने मातहतों और लोगोंपर भी ज्यादासे-ज्यादा दबाव डालनेमें अपने पदका उपयोग किया, लेकिन जोर-जबर्दस्तीसे वे लोगोंमें विश्वास नहीं पैदा कर सके। इसलिए सफलताके लिए अत्यन्त आवश्यक तत्त्व, विश्वासकी इस प्रयोगमें कमी थी। श्री ब्रेनने सोचा कि प्रयोग के प्रत्यक्ष परिणाम लोगोंको इसकी उपयोगिताका विश्वास करा देंगे। लेकिन सुधार इस तरह नहीं होता। सुधारकका रास्ता गुलाबके फूलोंसे नहीं, काँटोंसे बिछा होता है, जिसपर उसे सावधानीसे चलना होता है। उस रास्तेपर रुक-रुककर ही चला जा सकता है; उसमें कूदने या चौकड़ी भरनेका दुस्साहस नहीं किया जा सकता। श्री ब्रेन एक ही छलाँगमें लम्बी मंजिल तय कर लेना चाहते थे, इसलिए वे असफल रहे।

जब कोई सरकारी अधिकारी सुधारक बनता है, तो उसे यह समझना चाहिए कि उसका सरकारी ओहदा उसके सुधारके रास्तेमें सहायक नहीं होता; बल्कि रुकावट डालता है। उसके भगीरथ प्रयत्न करनेपर भी लोग उसे और उसके उद्देश्योंको शककी नजरसे देखेंगे, और जहाँ खतरेका नाम भी नहीं होगा उन्हें ऐसी जगह भी खतरेकी आशंका रहेगी। लोग ऐसे समय जो-कुछ करते हैं, अक्सर अधिकारीको खुश करनेके लिए ही करते हैं, अपनी मरजीसे नहीं।

दूसरी बाधा, जिसमें श्री ब्रेनको काम करना पड़ा, रुपये पानेकी उनकी लगभग घातक सुविधा थी। मेरी रायमें सुधारकको अपने आन्दोलनके लिए जरूरी चीजोंमें रुपया आखिरी चीज है। वह उसकी सही जरूरतोंके ठीक अनुपातमें बिना माँगे उसके पास चला आता है। मैं उन सुधारकोंको कभी सच्चा सुधारक नहीं मानता जो पैसेके अभावको अपनी असफलताका कारण बताते हैं। यदि सुधारकमें अपने कामके लिए उत्साह, तत्सम्बन्धी पूरा ज्ञान और आत्म-विश्वास हो, तो पैसेकी मदद मिल ही जाती है। लेकिन श्री ब्रेन तो अपने प्रयोगकी सफलताके लिए आत्म-विश्वास या लोगोंपर निर्भर रहनेके बजाय पैसेपर ही ज्यादा निर्भर रहे। इसलिए लाला देशराजके अन्दाजसे उन्हें ५०,००० रुपयेकी सालाना मदद मिलनेपर भी उनकी यह शिकायत रही कि केवल पैसेके अभावमें ही कई बातें आगे नहीं बढ़ रही हैं। उनकी महत्वकांक्षा कभी सन्तुष्ट नहीं हो सकती। यह तो हुई उनके प्रयोगकी बात।

प्रयोगकी बातके अलावा उनकी पुस्तकका सावधानीसे अध्ययन किया जाना चाहिए। श्री ब्रेनकी ईमानदारीके बारेमें कोई शंका नहीं की जा सकती। पुस्तकके हर पृष्ठसे उनकी ईमानदारीका सबूत मिलता है। इसमें कोई शक नहीं कि लेखकके बहुतसे सुझाव बड़े कीमती और महत्वपूर्ण हैं। यह बड़ी पटुताके साथ लिखी गई पुस्तक है। जो लोग ग्राम-सुधारका काम करना चाहते हैं उन सबको जल्दीसे-जल्दी श्री ब्रेनकी पुस्तकका अध्ययन कर लेना चाहिए। श्री ब्रेनने गाँवोंमें पाये जानेवाले निम्नलिखित दोष बताये हैं:

१. किसानके खेतीके तरीके दोषपूर्ण हैं।

२. गाँव गन्दा होता है; किसान अपना जीवन गन्दगी, बीमारी और दुःख-दर्दमें बिताता है।

३. वह महामारियोंका शिकार बना रहता है।

४. वह अपनी सारी दौलत बरबाद कर देता है।

५. वह अपनी स्त्रियोंको अपमानित दशा और गुलामीमें रखता है।

६. वह अपने घर या गाँवकी तरफ बिलकुल ध्यान नहीं देता और अपनी या अपने आसपासके लोगोंकी हालत सुधारनेके लिए न तो कोई समय ही देता है, न उसके बारेमें कभी विचार करता है।

७. वह किसी भी तरहके परिवर्तनका विरोध करता है; वह अपढ़ है। उसे इस बातका ज्ञान नहीं है कि दूसरे सभ्य देशों या उसीके देशके दूसरे भागोंमें रहनेवाले ग्रामवासी कितनी तरक्की कर रहे हैं; न उसे इस बातका ज्ञान है कि वह इरादा कर ले तो खुद अपनी कितनी तरक्की कर सकता है।

पहली बात अतिशयोक्तिपूर्ण है। भारतीय किसानके खेतीके तरीके सचमुच बुरे नहीं हैं। कई लोगोंने इस बातको माना है कि उसके पास खेतीका जो काम चलाऊ ज्ञान है, वह नगण्य नहीं कहा जा सकता। लेकिन मेरी समझमें दूसरे और तीसरे दोषको हमें स्वीकार करना होगा। चौथा दोष पूरी तरह नहीं तो बहुत हदतक अस्वीकार कर देने योग्य है, क्योंकि उसके पास बरबाद करने लायक दौलत होती ही नहीं है। पाँचवाँ, छठा और सातवाँ दोष बहुत हदतक सच हैं। उन्हें दूर करनेके १८ उपाय सुझाये गये हैं। मैं उन्हें संक्षेपमें नीचे देता हूँ :

१. अच्छे मवेशी रखे जायें।

२. खेतीके आधुनिक औजार काममें लाये जायें।

३. अच्छे बीजोंका प्रयोग करें।

४. कुँओंपर रहट लगाएँ।

५. खाद खड्डोंमें जमा करें।

६. गोबरके उपले बनाना बन्द करें।

७. गाँवके बैंकोंका लाभ उठाया जाये।

८. अपने खेतोंमें बाँध बाँधे और सतहोंके अनुसार उन्हें वर्गाकार क्षेत्रोंमें बाँट दें, ताकि बरसातका पानी बरबाद न हो।

९. अपनी जमीनोंको जोड़ लें।

१०. कुँओंकी मददसे साल भर फसल लेते रहें।

११. हर खाली स्थानमें पेड़ लगाये जायें।

१२. मवेशीको बीमारीसे बचानेके लिए उसे टीका लगवायें।

१३. अपनी फसलोंमें हिस्सा बँटानेवाले चूहों, सेहियों और टिड्डियों आदि फसलोंको नष्ट करनेवाले जन्तुओंको मारा जाये।

१४. चरागाहोंका विकास करें।

१५. अपनी आधी जमीनमें सघन खेती करें और आधी चरागाहके लिए छोड़ दें।

१६. कुँओंका पानी ले जानेके लिए नालियाँ जमीनके भीतरसे ले जायी जायें।

१७. रेतीली जमीनमें जो भी घास-चारा या वनस्पति उग सके और उसका बढ़ना रोक सके, उसे लगाकर रेतीले हिस्से बढ़ने न दिये जायें।

१८. अपनी नहर और नालियोंको सीधा बनायें और साफ रखें।

इनमें से कई सुझाव प्रशंसनीय हैं। जो सुझाव नये हैं उनका सावधानीसे प्रयोग करनेकी आवश्यकता है। पुरानोंमें से बहुत कुछ अमल करने लायक नहीं है। जहाँतक खेतीके नये औजारोंका सम्बन्ध है, पन्द्रह सालके लगातार प्रयोगके बाद और औजारों के लिए किसी तरहका पूर्वग्रह न रखते हुए अनेक औजारोंको आश्रममें आजमानेके बाद हम इस नतीजेपर पहुँचे हैं कि उनमें से अधिकतर औजार बेकार हैं और मैं पाठकको यह विश्वास दिला सकता हूँ कि हमने इस प्रयोगमें किसी तरहकी जल्दबाजी नहीं की। हम निश्चित गतिसे आगे बढ़ रहे हैं। लेकिन ऐसे बहुत कम नये औजार हैं, जिन्हें हमने ज्यादा उपयोगी पाया हो। आशा है कि मैं इस आश्रममें किये गये प्रयोगके बारेमें आगे किसी समय निश्चित रूपसे लिखूँगा। 'इस दिशामें धीरे-धीरे बढ़ो।' खादकी रक्षा और गोबरके उपले बनाकर उसकी भयंकर बरबादीको रोकनेका सुझाव बेशक अमलमें लाने लायक है। जमीनोंका छोटे-छोटे टुकड़ोंमें होना ऐसा दोष है, जो समाप्त होना चाहिए। जमीनके व्यर्थ टुकड़े करनेके व्यापक दोष को मिटानेमें कड़ा कानून ही समर्थ हो सकता है। सारे सुझावोंपर अमल करनेके लिए सच्ची शिक्षा और आत्म-विश्वासकी जरूरत है। भूखों मरनेवाले किसानको न तो शिक्षा मिली है और न उसमें आत्मविश्वास है; वह सोचता है कि गरीबी उसकी विरासत है; वह उससे कभी अपना पिण्ड नहीं छुड़ा सकता। सफाई और स्वच्छताके बारेमें श्री ब्रेनके सुझाव कीमती हैं। वे चाहते हैं कि किसी भी तरहके कूड़े-कचरे, गोबर, राख वगैराको ठीकसे खोदे हुए खड्डोंके सिवा और कहीं नहीं डालना चाहिए। खादके खड्डोंका पाखानोंकी तरह उपयोग करनेके बारेमें उन्होंने विस्तारसे निर्देश दिये हैं। नीचेका लम्बा लेकिन बोधप्रद अनुच्छेद यहाँ देनेके लोभका मैं संवरण नहीं कर सकता:

> **गाँवके चारों तरफ और गाँवके भीतर फैले हुए कूड़े-करकटके ढेर और गाँवके बाहर — कभी-कभी गाँवके भीतर भी — हर जगह काफी मात्रामें बिखरा हुआ यह मैला सूखता रहता है, हवासे सारे गाँवपर उड़ता रहता है और आदमी व मवेशीके पाँवोंमें आ-आकर फैलता रहता है। वह आपके भोजन और पानीमें जा पहुँचता है, सबकी आँखों और नाकमें घुसता है और साँसके साथ फेफड़ोंमें पहुँचता रहता है। इस तरह वह आपकी हवा, भोजन और पानीका एक अंश बन जाता है और गाँवकी गन्दगीका यह जहर दिन-प्रतिदिन आपके और आपके बच्चोंके शरीरमें पहुँचता है। इसके अलावा इस गन्दगीसे असंख्य मक्खियाँ पैदा होती हैं, जो पहले गन्दगीपर बैठती हैं और बादमें आपके भोजन,**

थालियों और बच्चोंकी आँखों और मुँहपर बैठती हैं। याद रखिए कि ये मक्खियाँ आपके पास जाते समय न तो अपने पाँव धोती हैं, न अपने जूते उतारती हैं। क्या आप अपने और अपने परिवारवालोंके सदा अस्वस्थ रहने और बुरी आँखोंका दुःख भोगने और जल्दी ही ईश्वरके घर जानेके लिए इससे किसी अधिक छोटे रास्तेकी कल्पना कर सकते हैं?

लेखक कहते हैं, "गुड़गाँव जिलेके गाँवोंके घर प्रागैतिहासिक मानवकी गुफाओंके सीधे वारिस कहे जा सकते हैं।" इसलिए वे चाहते हैं कि गाँववाले अपने घरोंमें खिड़कियाँ रखें। चेचकसे बचनेके लिए वे लोगोंको मुफ्त टीके लगवायें। वे प्लेगका टीका लगवाकर और चूहोंको मारकर प्लेगसे, कुओंको साफ करवाकर और पानी खींचनेकी ठीक व्यवस्था करके हैजेसे और कुनैन व मच्छरदानियोंकी मददसे मलेरियासे लोगोंकी रक्षा कर सकते हैं। श्री ब्रेन टीके और इंजेक्शनके बारेमें जिस विश्वाससे बात करते हैं उससे आश्चर्य होता है; क्योंकि दूसरी तरफ हम जानते हैं कि बड़े-बड़े अधिकारी डाक्टर भी उनके विषयमें कहते हुए अधिकसे-अधिक सावधानी और संयम रखते हैं। चेचक वगैराके टीके दिनोंदिन निकम्मे साबित हो रहे हैं और प्लेग, हैजे वगैराके इंजेक्शन — कुछ समयके लिए राहत पहुँचानेवाले उपायोंके नाते उनका चाहे कितना ही मूल्य हो, और मुझे तो इसमें भी शक है, — आत्माका हनन करनेवाले इलाज हैं, जो मनुष्यको स्वाभाविक मृत्युसे पहले अनेक बार मरनेवाला पामर प्राणी बना देते हैं। यह बतानेके लिए हमारे पास काफी प्रमाण हैं कि जहाँ लोग साफ-सुथरा और स्वच्छ जीवन बिताते हैं, वहाँ प्लेग, या चेचकका कोई डर नहीं रहता। क्योंकि ये दोनों रोग गन्दगी और अस्वच्छतासे पैदा होते हैं। कुँओंकी सफाई और पानी खींचनेका साफ तरीका बेशक हैजेसे बचनेके लिए ही नहीं बल्कि दूसरी बहुत-सी बुराइयोंसे बचनेके लिए भी उपयोगी है। बिना दूधके कुनैनका उपयोग हानिकारक है, और मसहरियोंके बारेमें अपने अनुभवसे कह सकता हूँ कि वे लाखों-करोड़ों की पहुँचके बाहर है। श्री ब्रेनने यह सब लिखते हुए उस स्थायी आर्थिक कष्टके बारेमें प्रायः अपना अज्ञान ही प्रकट किया है, जिससे त्रस्त होकर हिन्दुस्तानके करोड़ों लोग कराह रहे हैं। जो उपाय आज लोगोंकी पहुँचके बाहर हैं उन्हें सुझाना बिलकुल बेकार है। सुधारके अपने सिद्ध हो जानेपर लोग क्या कर सकते हैं, इस बातका इस विचारके साथ कोई मेल नहीं बैठता कि जबतक सुधार हो रहा है तबतक उन्हें क्या करना चाहिए।

बरबादीको रोकनेके लिए नीचे लिखा उपाय सुझाया गया है:

'काज' और दूसरे रीति-रिवाजों, गहनों, शादियों और लड़ाई-झगड़ोंपर मूर्खतासे पैसा बरबाद करनेके मौजूदा विचारोंको बिलकुल खत्म कर दें।

मुझे डर है कि यह 'मूर्खता भरी पैसेकी बरबादी' ज्यादा करके श्री ब्रेनकी कल्पनाकी ही उपज है। यह इने-गिने लोगोंतक ही सीमित है। ज्यादातर लोगोंके पास रीति-रिवाजोंपर खर्च करनेके लिए पैसा ही नहीं है। गहने जमा करनेकी बात

कहना एक पुराना सरकारी चलन है। सारे हिन्दुस्तानमें मुझे लाखों स्त्रियोंसे मिलनेका मौका आया है। मैंने खुद गहनोंकी निन्दा की है और कई बहनोंके गहने छुड़ा लिये हैं। मैं मानता हूँ कि उनमें कोई सौन्दर्य नहीं है। लेकिन अगर रीति-रिवाजोंमें खर्च कर सकनेवालोंकी संख्या थोड़ी है, तो गहने खरीदने और जमा करनेवालोंकी संख्या उससे भी कम है। करोड़ों स्त्रियाँ पत्थर या लकड़ीके घिनौने गहने पहनती हैं। कई बहनें पीतल या ताँबेके गहने पहनती हैं और कुछ चाँदीके कड़े और छड़े या पायजेब पहनती हैं। हजारोंमें किसी एकके ही शरीरपर कोई सोनेका गहना दिखाई देता होगा। इसलिए गहनोंको नकद रुपयोंमें बदलकर बैंकमें जमा करनेकी सलाह तो मेरी रायमें बिलकुल ठीक है, लेकिन जब ग्राम-सुधारके कार्यक्रमके एक अंगके रूपमें उसका विचार करते हैं तो वह असंगत लगती है। यही बात आपसी लड़ाई-झगड़ेके बारेमें कही जा सकती है। इसमें शक नहीं कि मुकदमेबाजीमें जो पैसा खर्च किया जाता है, उसकी मात्रा बहुत बड़ी होती है और वह शर्मनाक चीज है; लेकिन यह भी उन्हीं लोगों तक सीमित है जिनके पास पैसा है। लाखों-करोड़ोंके पास नामको भी पैसा नहीं होता, और ग्राम-सुधारके कार्यक्रममें इन्हीं करोड़ों बेबस, अज्ञानी और निराश लोगोंका खयाल करना होता है।

गृहस्थीको सुखी बनानेके लिए श्री ब्रेन स्त्रियोंके साथ मानवीयताका बर्ताव चाहते हैं और उन्हें घरमें ज्यादा आदरणीय और सच्ची सहधर्मिणियाँ बनाना चाहते हैं। वे लड़कोंके साथ लड़कियोंको भी जबतक वे बहुत बड़ी नहीं हो जातीं स्कूल भेजना चाहते हैं। वे बचपनमें उनकी शादी नहीं कराना चाहते। वे बड़े उत्साहसे और बड़ी प्रांजल भाषामें स्त्रियोंके अधिकारोंका समर्थन करते हैं। यहाँ दो अनुच्छेद उद्धृत किये जाते हैं, जो विचार करने लायक हैं:

> जब आपकी पत्नीके प्रसवका समय आता है, तब आप उसके लिए एक अंधेरा और गन्दा कमरा चुनते हैं और मेहतरानीको बुलाते हैं। जब आपका हाथ टूट जाता है, तब आप मेहतरको क्यों नहीं बुलाते? आप अपनी ही स्त्रियोंमें से कुछको दाईकी तालीम क्यों नहीं दिलाते? भंगियोंकी स्त्रियाँ जिस तरह डाक्टर नहीं बन सकतीं, उस तरह वे दाई भी नहीं बन सकतीं। क्या आपकी पत्नीके लिए ऐसे नाजुक समयमें गाँवकी एक सबसे नीची जातिवाली स्त्रीकी देखरेखमें रहनेके बजाय अपने ही लोगोंमें से किसी एककी देखभालमें रहना कहीं ज्यादा अच्छा नहीं होगा? ऊँची जातिकी स्त्रीके लिए नर्स या दाईके कामसे बढ़कर और कोई गौरवका काम नहीं हो सकता।
>
> आप अपनी पत्नी और परिवारके लिए घरका सबसे अँधेरा और सबसे कम हवावाला हिस्सा सुरक्षित न रखें। घरमें उनका भी उतना ही महत्व है जितना कि आपका। और उसका बीमार रहना भी आपके लिए उतना ही बुरा है, जितना कि आपका खुद बीमार रहना। आप खेतोंमें जाकर अपनेको स्वस्थ रख सकते हैं। लेकिन आपकी स्त्रियों और बच्चोंको तो अधिक समय

> घरमें ही बिताना पड़ता है। इसलिए उन्हें घरका सबसे अच्छा और सबसे हवादार हिस्सा दें।

काव्यात्मक सौन्दर्यसे युक्त यह दूसरा हिस्सा देखिए:

> ईश्वरकी सृष्टिमें मनुष्य ही एक ऐसा प्राणी है, जो अपने लड़के और लड़कीके बीच भेद करता है और लड़कीको लड़केसे घटिया मानता है। आपकी माँ एक समय लड़की थी। आपकी पत्नी भी कभी लड़की ही थी। आपकी लड़कियाँ किसी समय माताएँ बनेंगी। अगर लड़कियाँ ईश्वरकी घटिया सृष्टि हों, तो आप खुद भी घटिया हैं।

मुझे आशा है कि पाठक भी मेरे साथ कुत्तोंके बारेमें नीचे दिये गये अनुच्छेद की कद्र करेंगे:

> कुत्ता मनुष्यका मित्र कहा जाता है। लेकिन गुड़गाँवमें उसके साथ स्त्रीके जैसा ही व्यवहार किया जाता है और वह मनुष्यका दुश्मन माना जाता है। आप चाहें तो कुत्ता जरूर रखें, लेकिन फिर उसे नियमसे खाना दें, उसका कोई नाम रखें और उसके गलेमें पट्टा डालें, उसे अच्छी तरह सिखायें और ठीकसे उसकी देखभाल करें। लावारिस कुत्तोंको गाँवमें न भटकने दें। इस बातका ध्यान रखें कि वे आपके खानेको न बिगाड़ें, रातमें भौंक-भौंककर आपकी नींद खराब न करें और अन्तमें पागल होकर आपको काटें नहीं।

उनकी पुस्तकमें और भी बहुत-सा कीमती मसाला है। उनकी बारीक दृष्टिसे गाँवका एक भी दोष नहीं बच पाया है। मेरी रायमें ग्राम-शिक्षाके बारेमें उनके विचार बिलकुल सही हैं और उनमें शायद ही कोई नई बात जोड़ी जा सकती है। यहाँ नीचेका हिस्सा उद्धृत करनेका लोभ मैं संवरण नहीं कर सकता:

> गाँवके स्कूलका ध्येय गाँवके लोगोंको ज्यादा भले, ज्यादा बुद्धिमान, ज्यादा स्वस्थ और ज्यादा सुखी बनाना होना चाहिए। अगर किसानका लड़का स्कूलमें आता है, तो उसे स्कूलमें ऐसी शिक्षा मिलनी चाहिए कि जब वह लौटकर अपने पिताका हल हाथमें ले, तब पितासे भी जल्दी अपना काम सँभाल ले और सारे कामकाजमें पितासे भी अधिक बुद्धिमानीका परिचय दे। सबसे बढ़कर तो बच्चोंको स्कूलमें यह सीखना चाहिए कि स्वस्थ जीवन कैसे बिताया जाये और महामारियोंसे खुदको कैसे बचाया जाये। जिनके आगे चलकर अन्धे हो जाने, किसी न किसी रूपमें शरीरसे अपंग हो जाने या बालिग होनेके पहले ही मर जानेकी संभावना हो उन बच्चोंको शिक्षा देनेसे क्या लाभ? यदि उनके घर गन्दे और कष्टदायक बने रहें तो शिक्षाका क्या उपयोग होगा? महामारियाँ पूरेके पूरे परिवारोंको साफ कर देती हैं या बच्चोंको अन्धा या अपंग बना देती हैं?

यह उद्देश्य सिद्ध करनेके लिए श्री ब्रेन ऐसे व्यक्तिको ग्राम-शिक्षक बनाने की सलाह नहीं देते, जो केवल लिखना, पढ़ना और गणित ही लोगोंको सिखा सके। उनकी रायमें उसे सच्चा ग्रामनेता बनना चाहिए; उसे प्रकाश और संस्कृतिका केन्द्र जैसा होना चाहिए, जिसपर लोगोंका भरोसा हो, जिसके सामने वे अपनी समस्याएँ रखें और जिससे वे शंका या कठिनाईके समय सलाह-मशविरा करें।

> **शिक्षकको ग्राम-जीवनमें अपना उचित स्थान ग्रहण करना और उसकी रक्षा करनी चाहिए। उसे अपने उपदेशको आचरणमें उतारना चाहिये और सुधारके जिन उपायोंको वह सुझाये, उन्हें अपने हाथसे करके उदाहरण उपस्थित करे। श्रमकी प्रतिष्ठा और समाज-सेवाकी प्रतिष्ठा ही उसका जीवन-मन्त्र होना चाहिए। और जिस तरह उसे पढ़ना और लिखना सिखानेके लिए तैयार रहना चाहिए, उसी तरह गाँवकी सफाई करनेके लिए या लोहेका हल सुधारनेके लिए भी तैयार रहना चाहिए।**

अब मुझे अधिक न कहकर ग्राम-सुधार सम्बन्धी साहित्यमें बहुमूल्य सामग्रीकी वृद्धि करनेवाली इस पुस्तकको पढ़नेकी सिफारिश करके ही सन्तोष करना चाहिए। यह योजना अपने-आपमें कुल मिलाकर अच्छी और व्यवहारमें आने लायक है। अगर लाला देशराजकी जानकारीपर भरोसा किया जाये — और मैं मानता हूँ कि उसपर भरोसा किया जाना चाहिए — तो इतना तो कहा ही जा सकता है कि उसके अमलका ढंग बहुत ही दोषपूर्ण रहा। लेकिन इसका कारण श्री ब्रेन और उनके साथियोंमें इच्छाशक्ति और प्रयत्नकी कमी होकर सरकारी वातावरण और पुरानी लीकपर चलकर काम करनेका ढंग ही था; उसपर वे और उनके साथ काम करनेवाले लोग विजय नहीं पा सके। लेकिन यह एक ऐसा दोष है, जिसको उनकी स्थितिमें काम करते हुए हममें से भी हर व्यक्तिको जूझना पड़ता। मैं जानता हूँ कि श्री ब्रेन हिन्दुस्तानको बदनाम करते रहे हैं और अपने अंग्रेज श्रोताओंके सामने ऐसे निष्कर्ष प्रस्तुत करते रहे हैं, जिनपर वे अपने सीमित निरीक्षणके बलपर पहुँचे थे; उनके श्रोता उन निष्कर्षोंको शायद चुनौती नहीं दे सकते और उतनी दूरीपर वे निष्कर्ष हिन्दुस्तानके बनिस्बत कहीं ज्यादा बढ़े-चढ़े रूपमें दिखाई देते होंगे। लेकिन मैंने उनकी पुस्तकके अपने पर्यालोचनपर अंग्रेजके नाते उनकी निन्दाओं या उनके प्रयोगकी स्पष्ट असफलताका कोई प्रभाव नहीं पड़ने दिया है। मैं खुद ग्राम-सुधारमें गहरी दिलचस्पी रखनेवाला एक सुधारक हूँ और इसलिए ईमानदारीसे लिखी गई इस पुस्तकमें से मैं जो कुछ भी अच्छी बातें निकाल सका, उन्हें मैंने यहाँ निकालकर रखनेका प्रयत्न किया है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १४-११-१९२९

१७१. मेरी स्थिति

इधर अंग्रेज मित्र 'समुद्री तार'[1] द्वारा बराबर मेरे नाम —— शायद औरोंको भी —— सन्देशे भेज रहे हैं। संक्षेपमें, उनका यही कहना है कि मैं मजदूर सरकारसे सहयोग करके उसे भारतकी मदद करनेमें सहायता पहुँचाऊँ। संयुक्त वक्तव्यके[2] प्रकाशित हो जानेपर, जिसपर औरोंके साथ मैंने भी हस्ताक्षर किये हैं, मेरे लिए कुछ विशेष कहने या करनेको नहीं रह जाता है। तथापि शायद मैं अपने व्यक्तिगत मित्रोंके प्रति, जो मेरे विचारों और कार्योंमें दिलचस्पी रखते हैं, और प्रेमपूर्वक मुझसे हमेशा सही बात सोचने या करनेकी आशा रखते हैं अपनी स्थितिको निश्चित रूपसे अधिक स्पष्ट कर देनेपर बाध्य हूँ; क्योंकि शायद एक संयुक्त वक्तव्यमें ऐसा स्पष्टीकरण कभी संभव नहीं होता।

जिस बातको मैं इन स्तम्भोंमें बार-बार कह चुका हूँ उसीको फिर दोहराकर कहता हूँ कि मैं सहयोगके लिए मर रहा हूँ। मिथ्या सहयोगके बदलेमें सच्चे और हार्दिक सहयोगके लिए हृदयसे उत्सुक हूँ और मेरा असहयोग इसी उत्सुकताका चिह्न है। इसी कारण अवसर मिलते ही मैंने उसका तत्काल उत्तर दिया है। लेकिन कलकत्ता कांग्रेसके प्रसिद्ध प्रस्तावकी[3] भाँति ही मेरे लेखे संयुक्त वक्तव्यका भी प्रत्येक शब्द सोद्देश्य है। दोनों किसी भी तरह एक दूसरेके विरोधी नहीं हैं। अगर किसी दस्तावेजके भाव सुरक्षित रखे जायें तो उसके शब्दोंको ही पकड़े रहना कोई मूल्य नहीं रखता। मैं औपनिवेशिक स्वराज्यके विधानकी प्रतीक्षा कर सकता हूँ, बशर्ते कि मैं सच्चा और असली औपनिवेशिक स्वराज्य पा सकूँ, अर्थात् ब्रिटिश जनताका सच्चा हृदय-परिवर्तन हो जाये और वह सच्चे दिलसे भारतको एक स्वतन्त्र और स्वाभिमानी राष्ट्र देखना चाहे तथा भारतके सरकारी अफसर भी सच्चे भावसे भारतकी सेवा करने लगें। लेकिन यह तो तभी हो सकता है जब फौलादी संगीनोंके बदले लोगोंकी सद्भावनाएँ सर्वोपरि मानी जायें। क्या अंग्रेज स्त्री-पुरुष तोपों और मशीनगनोंसे लैस अपने किलोंकी अपेक्षा अपने जानोमालकी रक्षा के लिए भारतवासियोंकी सद्भावनाओंपर विश्वास करनेको तैयार हैं? अगर वे अभी तक इसके लिए तैयार नहीं हैं, तो कोई औपनिवेशिक स्वराज्य मुझे सन्तुष्ट नहीं कर सकता। मेरे मनके औपनिवेशिक स्वराज्यका अर्थ यह है कि अगर मैं चाहूँ तो आज ही ब्रिटिश सल्तनतसे अपना नाता तोड़ सकूँ। अतएव भारत और ब्रिटेनके बीचके सम्बन्धोंका विनियमन करनेमें जोर या जबर्दस्तीकी कहीं गुंजाइश नहीं है। अगर मैं साम्राज्यमें रहना पसन्द

१. उदाहरणार्थ **डेली एक्सप्रेस** और ए० फेनर ब्रॉकवेसे मिले तार, देखिए "तार : **डेली एक्सप्रेसको**", ३-११-१९२९ और "पत्र : ए० फेनर ब्रॉकवेको", १४-१२-१९२९।

२. देखिए "सर्वदलीय नेताओंका संयुक्त वक्तव्य", २-११-१९२९।

३. देखिए खण्ड ३८, पृष्ठ ३२७-३१।

करूँ तो वह उसे अपना भागीदार बनाकर मैं संसारमें शान्ति और सद्भावकी वृद्धि करनेकी दृष्टिसे, न कि इसलिए कि उससे ब्रिटेनकी साम्राज्य-लिप्साको या उसकी शोषण नीतिको बढ़ावा मिले। यह बहुत सम्भव है कि जिन बातोंका मैंने ऊपर जिक्र किया है, मजदूर सरकारने उनकी कल्पना भी न की हो। मेरे विचारमें, इस गर्भित अर्थका जिक्र करके मैंने वक्तव्यके अर्थका विस्तार नहीं किया है। वक्तव्यमें इन सब गर्भित बातोंका समावेश होता हो या न होता हो, विलायत और भारतमें बसनेवाले मित्रोंका यह कर्त्तव्य है कि वे मेरी मूल परिस्थितिको अच्छी तरह समझ लें। मैं भली-भाँति जानता हूँ कि जिन बातोंका जिक्र किया है, उन सबके लिए भारत अभी पूरी तरह समर्थ नहीं हो पाया है। अतएव अगर औपनिवेशिक स्वराज्य आज ही मिलता है तो अधिकांश रूपमें उसका मिलना अंग्रेज जनताके सद्भावोंपर निर्भर रहेगा। इस मौकेपर उनके द्वारा सद्भाव प्रकट करना कोई आश्चर्यकी बात नहीं होगी। हाँ, अबतक अंग्रेजोंने भारतको जो हानि पहुँचाई है, इससे उसका थोड़ा प्रायश्चित्त जरूर हो जायेगा।

लेकिन अगर भारतकी स्वराज्य-प्राप्तिका समय अभी परिपक्व नहीं हुआ है, तो मैं धैर्यपूर्वक उसकी प्रतीक्षा करूँगा। मैं इसी ध्येयके लिए जिन्दा रह सकता और काम कर सकता हूँ। मैं मानता हूँ कि मेरी ये बातें अपनी व्यक्तिगत बातें हैं। इनसे भारतके करोड़ों लोगोंका मत कहाँतक प्रकट होता है, यह तो कोई भी नहीं कह सकता, मैं तो कदापि नहीं कह सकता।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १४-११-१९२९

१७२. राजाओंकी आय

एक सज्जनने कठोर भाषामें एक पत्र भेजा है। पत्रमें उन आँकड़ोंका सार दिया गया है जो यूरोपके विभिन्न राजा अपनी रियासतोंकी आमदनीके प्रति १३५० में रु० से लेते हैं और फिर पत्रमें इसकी तुलना केवल एक महाराजा अर्थात् मैसूरके महाराजाको जो आमदनी होती है उससे की गई है। इस पत्रमें से मैं निम्नलिखित उद्धरण दे रहा हूँ।[1]

मुझे नहीं मालूम कि पत्र-लेखक द्वारा दिये गये आँकड़े लगभग भी सही हैं या नहीं[2]। यदि कोई व्यक्ति पूरक आँकड़े देकर पत्र-लेखकके आँकड़ोंको परिपूर्ण कर सके तो वे आँकड़े राजाओं और जनता, दोनोंके लिए अत्यन्त उपयोगी अध्ययनका

१. पत्र यहाँ नहीं दिया जा रहा है। पत्र-लेखकने १९२६ की **स्टेट्समैन इयर बुक**में से लिये गये आँकड़े प्रस्तुत किये थे।

२. पत्र-लेखकने अपने आँकड़ोंको 'लगभग सही' कहा था।

विषय होंगे। यदि यह कल्पना कर ली जाये कि आँकड़े सही हैं तो वे भारतीय राजाओंके लिए गहन सोच-विचारकी सामग्री प्रस्तुत करते हैं।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १४-११-१९२९

१७३. संयुक्त प्रान्तका दौरा[1]-९

दिल्लीमें

दिल्लीमें गांधीजीके सामने बहुत ही व्यस्त कार्यक्रम था; वे उसे जैसे-तैसे बड़ी ही मुश्किलसे पूरा कर पाये क्योंकि उन्हें न केवल अपने दौरेके कार्यक्रम ही पूरे करने थे बल्कि कार्यसमितिके सदस्योंकी अप्रत्याशित बैठक तथा इन सदस्यों और पण्डित मोतीलाल नेहरूके तत्काल आमन्त्रणपर दिल्ली आये नेताओंकी संयुक्त बैठकमें भी भाग लेना था। खैर, मुझे राजनैतिक सभाकी बात छोड़ ही देनी चाहिए; क्योंकि वह दौरेका अंग नहीं थी और उसका परिणाम जनताके सामने आ ही चुका है। दौरेका कार्यक्रम जामिया जानेसे शुरू हुआ। जामियाकी ओरसे खादीके लिए ५०० रु० की थैली स्वीकार करते हुए गांधीजीने जो छोटा किन्तु उदात्त भाषण दिया उससे वह मौका एक पवित्र उत्सव बन गया। साफ दिख रहा था कि वे भाव-विभोर होकर बोल रहे हैं। उन्होंने कहा कि मैं जितनी भी बार दिल्ली आता हूँ, मुझे दुःख होता है क्योंकि यहाँ श्रद्धानन्दजीकी हत्या हुई और हिन्दू-मुस्लिम दंगे हुए हैं। मैं इसे हकीम साहब अजमलखाँ और श्रद्धानन्दजीकी दिल्ली कहना पसन्द करता था। खेद है कि अब यह उनकी दिल्ली नहीं है। लेकिन मुझे इस बातसे आश्वासन मिला कि दिल्लीमें पहला जलसा जामियासे शुरू हुआ; दिल्लीमें इसकी स्थापनाके लिए मुख्य रूपसे हकीम साहब ही जिम्मेदार थे। मैं जामियाके बच्चोंसे हिन्दू-मुस्लिम एकता स्थापित करनेकी बहुत ही अधिक आशा करता हूँ और मैं उनसे यह भी आशा रखता हूँ कि वे साम्प्रदायिक भावनाओं और पूर्वग्रहोंसे अछूते रहेंगे। यहाँके विद्यार्थियोंको कमसे-कम इतना तो हकीम साहबकी स्मृतिमें और इन शिक्षकोंके आत्मत्यागकी खातिर जो जामियाके बच्चोंको तैयार करनेमें अपना जीवन लगा रहे हैं, करना ही चाहिए। जामियासे हमारा दल मोटरसे इन्द्रप्रस्थके गुरुकुल गया जो दिल्लीसे लगभग १४ मील पर एक अच्छे ऊँचे लम्बे-चौड़े क्षेत्रमें स्थित है। शिक्षकों, छात्रों और नौकरों सबने मिलाकर कुछ ८५५ रु० थैलीके लिए दिये जो शायद अबतक किसी भी शैक्षणिक संस्थासे मिली रकमकी अपेक्षा, देनेवालोंके अनुपातको देखते हुए सबसे अधिक थी। इस गुरुकुलमें १४१ विद्यार्थी हैं। उनके चन्देकी तफसील भी दिलचस्प है। नौकरोंने ३६-४-० रु० दिये; खास तौरपर इसके लिए श्रम करके उससे प्राप्त ८०-८-६ रु०

१. देखिए "संयुक्त प्रान्तका दौरा", २४-१०-१९२९ की पाद-टिप्पणी।

विद्यार्थियोंने दिये, विद्यार्थियोंने अपने कपड़ोंमें कुछ कमी करके ५७०-८-० रु० बचाये और शिक्षकोंने १८६-४-० रु० दिये; इस तरह कुल रकम ८५५-८-६ रु० हुई। इसके अलावा विद्यार्थियोंने बहुत बड़े परिमाणमें सूत भी दिया। गुरुकुलोंकी यह विशेष बात रही है कि वे अपना चन्दा शारीरिक श्रम द्वारा और अपनी जरूरतकी चीजोंका त्याग करके जुटाते हैं। यहाँ भी गांधीजीने फिर वही सन्देश दुहराया जो उन्होंने जामियाके छात्रोंको दिया था। उन्होंने उन्हें बताया कि श्रद्धानन्दजीकी हत्याका प्रायश्चित्त करनेका एकमात्र तरीका यह है कि वे अपने आपको वहाँ हिन्दूधर्मका ज्ञान संपादन करके निर्मल बनायें। दोपहर बाद नगरपालिकाका अभिनन्दनपत्र लेनेके लिए सभा थी। उसके बाद क्रमशः महिलाओंकी, विद्यार्थियोंकी और फिर आम सभा हुई। महिलाओंने जो दिया वह उल्लेखनीय है। उसमें काफी बड़ी मात्रामें आभूषणोंके अलावा एक हजार रुपयोंसे ऊपरकी रकम भी थी। जिस राजनीतिक सभाका मैं उल्लेख कर चुका हूँ, उसके कारण शामका सारा कार्यक्रम अस्त-व्यस्त हो गया था। स्त्रियाँ जो २ बजे इकट्ठा हुई थीं साढ़े छः तक धैर्यपूर्वक इन्तजार करती रहीं और फिर भी उनमें कोई क्रोध, उदासी या अधैर्य दिखलाई नहीं दिया। भारतको अपनी ऐसी नारियों पर, जो इतनी सहिष्णु हो सकती हैं, गर्व होना ठीक ही है। पाठकोंका यह सोचना कि इस सभामें जो स्त्रियाँ बहुत बड़ी संख्यामें इकट्ठा हुई थीं अशिक्षित रही होंगी, सही नहीं होगा। इसके विपरीत उनमें बहुत-सी तो उच्च-शिक्षा प्राप्त महिलाएँ थीं; लेकिन उन्हें मालूम था कि गांधीजी विवश हैं और इसलिए अपनी स्वाभाविक उदारतासे उन्होंने गांधीजोको उस असुविधाके लिए क्षमा कर दिया, जो निस्सन्देह उन्हें हुई थी। उनमें से अनेक बहनें तो सभामें शामिल होनेके लिए अपने छोटे-छोटे बच्चे घर छोड़कर आई थीं। दिल्लीमें हुई अन्य सभाओंकी बात छोड़कर अब मैं पाठकोंको अलीगढ़का हाल बताऊँगा। अलीगढ़ जाते हुए रास्तेमें कई स्थानोंका दौरा किया; उनकी भी बात छोड़ दे रहा हूँ।

अलीगढ़में[1]

मुस्लिम-विश्वविद्यालयके उपकुलपतिने गांधीजीको विद्यार्थियोंके समक्ष भाषण देनेके लिए निमंत्रित किया था। जिस हालमें उन्होंने भाषण[2] दिया वह इतना ठसाठस भरा था कि दम घुटनेवाला हो रहा था। उपकुलपति श्री हॉर्नने अध्यक्षता की। इस सभामें गांधीजीको विश्वविद्यालय संघका सम्मानार्थ आजीवन सदस्य बनाया गया। उनका भाषण विश्वविद्यालयके विद्यार्थियोंसे एक भावपूर्ण अपील थी। उन्होंने कहा कि वे देशके और इस्लामके गोखले सरीखे सेवक तैयार करें। गांधीजीने विद्यार्थियोंको द्वितीय खलीफा उमरकी सादगीकी याद दिलाई और उन्हें बताया कि यद्यपि संसारकी दौलत उनके चरणोंमें थी फिर भी उन्होंने अपने आपको हर तरहकी सुख-सुविधा और ऐशो-आरामकी चीजोंसे वंचित रखा और जब उनके साथियोंने खुरदरी खादीके बजाय मुलायम रेशमी

१. ३ नवम्बरको।

२. देखिए "भाषण: मुस्लिम विश्वविद्यालय अलीगढ़में", ४-११-१९२९।

वस्त्र पहनकर और चक्कीके पिसे मोटे आटेके बजाय अच्छा आटा खाकर अपनी आदतें बिगाड़ीं तो उन्होंने उनकी भर्त्सना की। विद्यार्थियोंके बीच खादीका लगभग अभाव दिखलाई पड़ रहा था; और यह बात गांधीजीको अखर रही थी। इसलिए उन्होंने उनसे हृदयस्पर्शी अपील की कि यदि आप भारतके उन लाखों कंगालोंके साथ जीता-जागता सम्बन्ध स्थापित करना चाहते हैं, जिनके बच्चे कभी इस शिक्षाकी सुविधा नहीं पा सकते, जिसे स्वर्गीय सर सैयद अहमदकी दूरदर्शिता और प्रखर बुद्धिने आपके लिए मुहैया कर दिया है, तो आपको खादी अपनानी चाहिए। तीसरी बात उन्होंने यह कही कि आपको चाहिए कि आप अपने आपको भारतके सम्मानका रक्षक और हिन्दू-मुस्लिम एकता स्थापित करनेवाला समझें। मैं आपसे मुसीबतमें पड़े एक हिन्दूकी मदद करनेमें उसी तरह सबसे पहले आगे बढ़नेकी आशा करूँगा जैसे आप दुःखमें पड़े एक मुसलमान भाईकी मददके लिए आगे आयेंगे। यद्यपि सभामें जोशकी कमी नहीं थी फिर भी विद्यार्थियों और प्रोफेसरोंकी ओरसे किसी थैलीका न मिलना ऐसी बात थी जिसपर ध्यान न जाना नामुमकिन था। सारे दौरेमें विद्यार्थियोंकी सभामें जहाँ भी गांधीजीने भाषण दिया, यह पहला ऐसा अनुभव था जहाँ दरिद्रनारायणके लिए कोई थैली भेंट नहीं की गई थी। इस कमीपर इसलिए और भी ज्यादा ध्यान जाता था कि गांधीजीने सभामें इसका जान-बूझकर कोई उल्लेख नहीं किया। सभाके अन्तमें उन्हें आटोग्राफोंके लिए घेर लिया गया। उन्होंने तुरन्त ही उसकी कीमत बताई। यदि आपको मेरा आटोग्राफ लेना है, तो आपको खादी पहननेका वायदा जरूर करना होगा। पहले प्रार्थीकी तरफसे थोड़ी झिझकके बाद ऐसे कई लोग आगे आये जिन्होंने खादी पहननेका वायदा किया और आटोग्राफ प्राप्त किये। कुछ और लोग भी खादी पहननेका वायदा करके उसके बदलेमें आटोग्राफ लेने दूसरे दिन आये। निस्सन्देह अलीगढ़में भी अन्य सामान्य जलसे तो हुए ही; जिनका कोई खास ब्यौरा देनेकी जरूरत नहीं है।

मथुरामें[1]

अलीगढ़से रास्तेमें कई जगह होते हुए हम आगे मथुरा पहुँच गये। हिन्दुओंका यह प्रसिद्ध तीर्थस्थान कृष्णके निवास स्थानमें से एक है, इसलिए गांधीजीको वहाँ उनका विचार आते रहना स्वाभाविक था; गांधीजीने आम सभामें संसारके गोपालोंमें कृष्णको शीर्षस्थ कहा। अभिनन्दनपत्रोंके उत्तरमें गांधीजीने गायके संबन्धमें ही अपने हृदयकी भावनाएँ व्यक्त कीं। उन्होंने कहा कि मथुरा और उसके आसपासकी भगवान कृष्णकी लीलाभूमिमें आनेवाला यहाँ बहुत ही अच्छी गायें और अच्छा शुद्ध दूध लगभग पानी-मोल, जैसा कि कहा जाता है कि कृष्णके जमानेमें मिलता था, पानेकी आशा करता है। यहाँ आनेवाला मथुराके लोगोंमें बेहद दयाभाव, सादगी और कृष्णकी बहादुरीकी उम्मीद करता है। वह यह भी आशा रखेगा कि यहाँ पद-दलित अछूतोंसे प्यारसे बरताव किया जाता होगा और उनका हर तरहसे ध्यान रखा जाता होगा।

१. ६ नवम्बरको।

किंतु जब मैं मथुराकी गलियोंसे गुजरता हूँ तो मुझे ऐसी गायें दिखाई पड़ती हैं जिनकी हड्डियाँ निकल आई हैं; ये गायें बहुत कम दूध देती होंगी और आर्थिक दृष्टिसे बोझ होंगी। इस तीर्थ-स्थानमें बूचड़खाना भी है; और वहाँ वे गायें जिनकी कृष्ण रक्षा और सेवा करते थे, मानवके खाये जानेके लिए काटी जाती हैं। यह मत समझिए कि इस शर्मनाक स्थितिके लिए मुख्यरूपसे मुसलमान या अंग्रेज कौम जिम्मेदार है। हम हिन्दू ही मुख्य रूपसे इसके लिए जिम्मेदार हैं। गायें देशपर आर्थिक भार बनती जा रही हैं, इसलिए वे मारी ही जायेंगी। और यदि वे भारतमें नहीं तो आस्ट्रेलियाके बूचड़खानोंमें भेज दी जायेंगी; आज वे वहाँ भेजी जा रही हैं। हिन्दू ही भारतमें सबसे ज्यादा गायें पालते हैं। वे ही उन्हें कसाइयोंके हाथ बेचते हैं। यदि हम उस बाल-गोपाल भगवानके प्रति, जिसकी हम पूजा करते हैं अपना कर्त्तव्य पूरा करना चाहें तो हमें पशु-पालनके विज्ञानको ध्यानसे समझना चाहिए और इस बातका पूरा प्रयत्न करना चाहिए कि हमारा गोवंश संसारके पशुओंमें सबसे ज्यादा दूध देनेवाला और बोझ उठानेवाला बन जाये। यदि हम ऐसा करना चाहें तो हमें मूर्खतापूर्ण पूर्वग्रहों और अन्धविश्वासोंको चाहे वे कितने ही पुराने क्यों न हों, छोड़ना होगा।

गोवर्धन[1]

मथुरासे हम गोवर्धन गये और रास्तेमें वृन्दावन। गांधीजीने गोवर्धनमें जो हालत देखी उसे देखकर उन्हें मथुरासे भी ज्यादा दुःख हुआ। गोवर्धन वे सुबह सात बजे पहुँचे। जब हम गोवर्धनकी खास सड़कसे गुजरे हमने बैलों और भैंसोंकी एक जोड़ी देखी; दोनोंकी हड्डियाँ निकली हुई थीं। सभामें लोग ऐसे दिखाई दे रहे थे, मानों अभी-अभी सोतेसे उठे हों। बच्चोंके कपड़े गन्दे थे और उनकी आँख-नाक वगैरा नहीं धुली हुई थी; न उनकी आँखोंमें कोई चमक थी और न उनके चेहरे पर बुद्धिकी तीक्ष्णता थी। इसके अलावा उन्हें इस बातसे और भी दुःख हुआ कि जिस मन्त्रीने खादीके लिए थैली भेंट की उसने कहा: "यह जगह उन ब्राह्मणोंसे भरी है जो भिखारी हैं। इसलिए हम आपको कोई बड़ी थैली नहीं दे सकते।" इस बातसे गांधीजीको बोलनेकी प्रेरणा मिली और उनके भाषणम उनका गहरा दुःख व्यक्त हुआ। उन्होंने थैलीका कोई उल्लेख नहीं किया और पैसेके लिए वैसी अपील भी नहीं की जो वे हर जगह हमेशा करते हैं। उन्होंने कहा: "आप मुझे जिस जगह ले आये हैं वहाँ आकर मुझे गहरा धक्का लगा है। मैं एक वैष्णव परिवारसे आता हूँ। अपने बचपनसे ही मुझे यह सिखाया गया है कि श्रीकृष्णका जन्म-स्थान और क्रीड़ाभूमि ऐसा पवित्र स्थल है जहाँ जानेसे व्यक्तिके पाप धुल जाते हैं। जब मैं यहाँकी गलियोंसे गुजरा तो मुझे ऐसी कोई अनुभूति नहीं हुई। कहा जाता है कि यह वही स्थान है, जहाँ कृष्णने अपनी छगुनीपर गोवर्धन पर्वत उठा लिया था और अपने ग्वाले साथियों और उनके जानवरोंको मूसलाधार वर्षामें डूबनेसे बचा लिया था। परन्तु यहाँ मुझे मानवता और इसकी संगिनी गायके प्रति सेवा-भावनाका अभाव

१. ७ नवम्बरको।

मिलता है। इसके बजाय मैं यहाँ जर्जर पशु और अपने सामने जीवनहीन और तेजहीन लोग तथा बच्चे देखता हूँ। मुझे अभी बताया गया कि यहाँके ब्राह्मण भिखारी हैं; मैं उन्हें वैसा ही देख भी रहा हूँ। प्राचीनकालमें ये ब्राह्मण ऐसे तो नहीं थे। उन ब्राह्मणोंने तो ईश्वरका साक्षात्कार किया था और वे सभी लोगोंको ईश्वरसे साक्षात्कार करनेका रहस्य बताते थे। वे अपने दिन किसीके दानपर नहीं काटते थे। जिन्हें वे दैवी ज्ञानकी शिक्षा देते थे, वे लोग उनका भरण-पोषण करना अपना सौभाग्य समझते थे। कृष्णके जमानेमें ब्राह्मण सच्चे धर्मके रक्षक थे। वे स्वयं अपने आपको ऊँचा नहीं मानते थे; बल्कि मानवताकी सेवा करनेके कारण उनका आदर सत्कार किया जाता था। मुझे गोवर्धन तीर्थमें इस तरहका कोई लक्षण नहीं दिखा।" गोवर्धनकी सभामें २० मिनटसे ज्यादा नहीं लगे, क्योंकि अपने गन्तव्य स्थल वृन्दावन पहुँचनेसे पहले हमें कई जगह जाना था।

वृन्दावन[1]

वृन्दावनमें हम लोग प्रेममहाविद्यालयमें ठहरे जो वीर देशभक्त राजा महेन्द्र प्रतापकी दानशीलताका स्मारक है। फिर भी मैं इस संस्थाका या रामकृष्ण मिशन या गुरूकुलका वर्णन नहीं करूँगा; गाँधीजी इन सभी जगहोंपर गये। आम सभामें राजा साहबके चित्रका गांधीजीने अनावरण किया और प्रेम महाविद्यालयके विद्यार्थियोंके सामने भाषण दिया। आचार्य जुगलकिशोरने जानबूझकर विद्यालयका वार्षिकोत्सव गांधीजीके दौरेके समयतक मुल्तवी कर दिया था। गांधीजीने अनावरणके मौकेसे लाभ उठाते हुए राजा महेन्द्र प्रतापको बड़ी प्रशंसा समर्पित की और उनके त्याग और देशभक्तिका दृष्टान्त सभी जमींदारोंके लिए अनुकरणीय बताया। विद्यार्थियोंसे उन्होंने कहा: "यदि आप लोग अपने पड़ौसियोंके लिए परिश्रम नहीं करते हैं तो आप राजा महेन्द्र प्रतापके इस अति उदार-दानके योग्य नहीं हैं। यदि आपकी शिक्षा कुछ महत्व रखती है, तो उसकी सुगन्ध आपके चारों ओर फैलनी चाहिए। आपको रोज थोड़ा समय अपने आसपासके लोगोंकी सेवा करनेमें लगाना चाहिए। इसलिए आपको फावड़ा, झाड़ू और बाल्टी उठानेके लिए तैयार रहना चाहिए। आपको स्वेच्छासे इस पवित्र स्थलकी सफाई करनेवाले ही बन जाना चाहिए। आपकी शिक्षाका यही सबसे अच्छा अंग होगा; साहित्य लेख रटना नहीं। मुझे पता चला है कि वृन्दावनमें ऐसी विधवाएँ बड़ी संख्यामें हैं जो अधिकतर बंगालसे अपना शेष जीवन यहीं बितानेके विचारसे आई हैं। उनमें से जो गरीब हैं उन्हें सत्संगमें राधेश्यामके[2] पवित्र नामोच्चारके लिए थोड़ा-सा पैसा दिया जाता है। मैं यह आशा करता हूँ कि जो लोग इस दानके वितरणके लिए जिम्मेदार हैं वे इन विधवाओंको पवित्र नामोच्चारके बदलेमें ऐसा दान देनेके बजाय कुछ काम देंगे। व्यर्थ ही नाम दुहरानेमें तो कोई पुण्य नहीं है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १४-११-१९२९

१. ७ नवम्बरको।

२. साधन-सूत्रमें राधाश्याम है।

१७४. आदर्श मानपत्र

पिछले अंकमें मैंने मानपत्रोंकी भाषाके कुछ नमूने[1] दिये थे। हरएक सभामें मुझे तीन-चार या इससे भी अधिक मानपत्र मिलते हैं। उनमें से बहुतेरोंमें मुझे कोई कला नहीं दीख पड़ती। अधिकतर मानपत्र तो केवल मेरी स्तुतिके विशेषणोंसे ही भरे रहते हैं। इसमें, मेरी दृष्टिसे तो, विवेक और विचार दोनोंका अभाव है। एक मनुष्यके सामने उसके गुणोंका कथन करके हम न तो उसका सम्मान करते हैं और न उसे खुश ही रख सकते हैं। जिन विशेषणोंका प्रयोग मेरे लिए किया जाता है, उन सबको अगर मैं स्वीकार कर लूँ, तो मेरा बहुतेरा काम रुक जाये। ईश्वरने मुझे विनोद शक्ति दी है, उसके सहारे मैं ऐसे सब विशेषणोंको विनोदमें टाल देता हूँ और चूँकि मैं 'गीताजी'की शिक्षापर अमल करनेका प्रयत्न करता हूँ, स्तुति और निन्दाका मेरी जानमें मुझपर कोई असर नहीं पड़ सकता। परन्तु इस लेखमें मैं यह विचार करने नहीं बैठा हूँ कि मानपत्रका मुझपर क्या असर हो सकता है। यहाँ तो मैं पाठकोंको यही बताना चाहता हूँ कि आदर्श मानपत्र कैसा होना चाहिए, जिससे भविष्यमें मानपत्र देनेवालोंको भी मानपत्र बनानेमें थोड़ी सहायता मिल सके। निम्नलिखित नियमोंका पालन करनेसे आदर्श मानपत्र बन सकता है:

१. मानपत्रकी भाषा ऐसी होनी चाहिए कि उसे हिन्दू-मुसलमान सब समझ सकें।

२. मानपत्रके लिए चौखटेकी कोई आवश्यकता न समझी जाये।

३. जहाँतक हो सके मानपत्र हाथके बने कागजपर लिखा जाना चाहिए। प्रयत्न करनेसे ऐसे कागज मिल सकते हैं। भले ही हाथका बना हुआ कागज यन्त्रके बने कागजका मुकाबला न कर सके, फिर भी हमें हाथके इस हुनरको मिटाना नहीं चाहिए। ऐसे हुनरकी हस्ती धनिकों और विचारशील लोगोंके देश-प्रेमपर निर्भर है।

४. मानपत्र हस्तलिखित ही होना चाहिए। अगर यह रिवाज चल जाये तो लेखन-कलाकी खूब उन्नति हो सकती है। ऐसा मानपत्र हर किसीके हाथसे न लिखा जाना चाहिए। सुन्दर अक्षर लिखनेकी कलामें निष्णात किसी कातिबके हाथों ही लिखाया जाना चाहिए। जनतामें प्रचारके लिए मानपत्र छपवानेकी आवश्यकता मानी जाये, यह दूसरी बात है। मेरे विचारमें तो इस तरह मानपत्र बाँटनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। मानपत्र अतिथिके आनेसे पहले ही सभाके समक्ष पढ़ दिया जाना चाहिए।

५. आजकल यह रिवाज-सा हो गया है कि संस्था या समाजके नामसे जो मानपत्र दिया जाता है, वह किसी एक ही आदमीका लिखा होता है; उसके बारेमें समाज या संस्था, किसीकी भी सम्मति नहीं ली जाती। हम लोग ऐसी बातोंमें उदासीन रहते हैं, इसलिए जो कुछ कहना या करना होता है, एक आदमी ही सबके लिए

१. देखिए "राष्ट्रभाषा", ७-११-१९२९।

कह या कर लेता है। लेकिन सभ्य तरीका तो यह है कि जिनके नामसे मानपत्र दिया जाये, उन सब लोगोंको वह पहले बता दिया जाये। तभी उस मानपत्रका कुछ मूल्य हो सकता है। मसलन, जब विद्यार्थियोंके नामसे कोई मानपत्र दिया जाये तो विद्यार्थियोंकी एक समिति बननी चाहिए और फिर भी तैयार मानपत्र सब विद्यार्थियोंकी आम सभामें पेश किया जाना चाहिए।

६. मानपत्रमें स्तुत्यात्मक शब्द कमसे-कम रहें। हाँ, जिसको हम मानपत्र देना चाहते हैं, उसके विचारोंके अनुरूप क्या हुआ है और क्या करनेका निश्चय किया गया है, इसका मानपत्रमें उल्लेख होना चाहिए। साथ ही मानपत्र देनेवाली संस्था और समाजका उसमें परिचय भी दिया जाना चाहिए।

यदि उपरोक्त शर्तोंका पालन किया जायेगा तो मानपत्र जो आज नीरस और निरर्थक-से पाये जाते हैं, वे सब सरस और सार्थक बन जायेंगे।

हिन्दी नवजीवन, १४-११-१९२९

१७५. पत्र: जॉन एस० हॉलैंडको

मुकाम रायबरेली
१४ नवम्बर, १९२९

प्रिय मित्र,

आपके १८ अक्टूबरके पत्रके लिए धन्यवाद। मुझे अभी वह पुस्तक[1] नहीं मिली है। जब मैं आश्रम वापस लौटूँगा तो मेरा खयाल है, वह मुझे वहाँ मिलेगी और जब कभी मुझे वक्त मिला, मैं उसे पढ़ूँगा और देखूँगा कि इस विषयमें मैं क्या कर सकता हूँ। आम तौरपर 'यंग इंडिया'में पुस्तकोंकी समीक्षा नहीं दी जाती। मैं यह चाहता हूँ कि मैं इंग्लैंड आ सकूँ; परन्तु अभी फिलहाल अन्तरात्मासे ऐसी आवाज नहीं आई है। मुझे आशा है कि आपका स्वास्थ्य आपके भारत आनेमें बाधक नहीं होगा।[2]

हृदयसे आपका,

जॉन एस० हॉलैंड महोदय
बरमिंघम (इंग्लैंड)

अंग्रेजी (एस० एन० १५६८२)की फोटो-नकलसे।

१. **केस फॉर इंडिया।**
२. जॉन एस० हॉलैंड सोलह साल भारतमें रहे थे।

१७६. पत्र : अली मुहम्मद ए० अलादीनको

मुकाम रायबरेली
१४ नवम्बर, १९२९

प्रिय मित्र,

आपका पत्र[1] मिला। आपने जिस घटनाका जिक्र किया है उसके बारेमें मुझे कुछ भी नहीं मालूम है। यदि यह मान लिया जाये कि कुछ सिखों और कुछ हिन्दुओंने दुर्व्यवहार किया तो भी इस कारणसे हिन्दू-मुस्लिम मित्रतामें बाधा क्यों पड़नी चाहिए; इसके आधारपर कुछ एक लोगोंके दोष सबके सिर मढ़ देना भी उचित नहीं है।

हृदयसे आपका,

अली मुहम्मद ए० अलादीन महोदय, एम० ए०
अलादीन बिल्डिंग्स
सिकन्दराबाद, दक्षिण

अंग्रेजी (एस० एन० १५७४४)की माइक्रोफिल्मसे।

१७७. पत्र : सी० डी० स्माइलीको

मुकाम रायबरेली
१४ नवम्बर, १९२९

प्रिय बहन,

आपका पत्र मिला। आप ८ और १५ दिसम्बरके बीच मुझे नागपुरके समीप आश्रममें मिल सकती हैं। अभी मेरे आने-जानेके [कार्यक्रम]में रद्दोबदल हो सकती है। पर पूरी सम्भावना इसी बातकी है कि मैंने जो तारीखें बताई हैं उनके दौरान

१. इसमें लिखा था : "...कुछ समय पहले कादियाँ, पंजाबमें सिखों और हिन्दुओंने साथ मिलकर गायोंके बूचड़खानेको पूरी तरह तहस-नहस कर दिया ... इस पाशविक घटनापर हिन्दू नेताओंने अपराधियोंकी भर्त्सना करनेके बजाय विरोधमें एक शब्द भी नहीं कहा। इन परिस्थितियोंमें मुसलमानोंको यह विश्वास कैसे दिलाया जा सकता है कि जब भारतको स्वराज्य या औपनिवेशिक स्वराज्य मिल जायेगा तो उनके अधिकार सुरक्षित रह सकेंगे (एस० एन० १५७४३)।

मैं वर्धामें होऊँगा। उस वक्त साबरमतीमें पूछताछ करनेपर आपको पता चल जायेगा कि मैं वर्धामें हूँ या नहीं।

हृदयसे आपका,

कु० सी० डी० स्माइली[1]
अमेरिकी मराठी मिशन
बाइकुला, बम्बई

अंग्रेजी (एस० एन० १५७४६)की माइक्रोफिल्मसे।

१७८. पत्र : अलवीको

मुकाम रायबरेली
१४ नवम्बर, १९२९

प्रिय मित्र,

मैंने आपकी पुस्तकके कुछ पृष्ठ पढ़े। जैसी आपने लिखी है, वैसी पुस्तकके बारेमें कुछ कह सकना मेरे क्षेत्रसे बाहरकी चीज है। मैं अंग्रेजी कविताका पारखी नहीं हूँ और मेरे पास इस तरहके आनन्द आस्वादनके लिए समय नहीं है। परन्तु मैंने आपकी पुस्तकके काफी पृष्ठ देखे जिनमें मुझे छापेकी और दूसरी बहुत-सी गलतियाँ दिखलाई दीं। जब मैं उन कुछ पृष्ठोंको पढ़ रहा था मेरे मनमें बरबस यह प्रश्न उठा कि आपने अपना कीमती वक्त ऐसी चीज लिखनेमें क्यों लगाया, जिसे कोई अंग्रेज अधिक आत्मविश्वास और अधिकारके साथ लिख सकता था; आपने उर्दूमें और उर्दू जाननेवाले अपने देशवासियोंके लिए कुछ लिखनेमें अपना समय क्यों नहीं लगाया।

हृदयसे आपका,

प्रो० अलवी
मुस्लिम विश्वविद्यालय
अलीगढ़

अंग्रेजी (एस० एन० १५७६५)की फोटो-नकलसे।

१. एक अमेरिकी बहन जो मिशनके कामका अध्ययन करनेके लिए भारत आई थीं।

१७९. पत्र : अ० भा० च० संघ मसूलीपट्टमके सचिवको[1]

मुकाम रायबरेली
१४ नवम्बर, १९२९

प्रिय महोदय,

मैं नकली आन्ध्र खादीके वितरकोंके बारेमें 'यंग इंडिया'में[2] टिप्पणी लिख रहा हूँ। आपके द्वारा भेजे हुए कागजात वापस लौटा रहा हूँ।

हृदयसे आपका,

संलग्न :

अंग्रेजी (एस० एन० १५७६६)की माइक्रोफिल्मसे।

१८०. पत्र : ए० फेनर ब्रॉकवेको

मुकाम रायबरेली
१४ नवम्बर, १९२९

प्रिय मित्र,

आपका समुद्री तार[3] मिला। मैं जो-कुछ भी कर सकता था, सो मैंने किया है। यदि मैं बिलकुल विश्वासपर ही बातें स्वीकार न कर सकूँ तो आप धैर्यसे काम लें। मुझे इसका पूरा इत्मीनान दिला दिया जाना चाहिए कि सचमुच परिस्थिति जैसी प्रतीत होती है वैसी नहीं है। संसदकी दोनों बहसोंमें, बेनके[4] भाषणमें भी, ऐसी कोई चीज नहीं जिससे मुझे यह आश्वासन मिले कि मैं विश्वासके साथ बेफिक्री महसूस करते हुए परिषद्से[5] आ सकता हूँ। मैं इन्तजार करना और देखते रहना और प्रार्थना करते रहना ज्यादा पसन्द करूँगा; यह किसी ऐसे फन्देमें जा फँसनेसे जो चाहे वैसा सोचा न गया हो फिर भी शायद खतरनाक साबित हो, अच्छा रहेगा। मांटेग्यु सुधार आशानुकूल प्रमाणित नहीं हुए। उनसे गरीबोंकी मुसीबत कम नहीं हुई, उलटे उनपर बोझ स्पष्ट ही बहुत बढ़ गया है। सुधारोंके लिए जो कीमत चुकाई गई वह कुल मिलाकर बहुत ज्यादा सिद्ध हुई। औपनिवेशिक स्वराज्यके लिए, उसे चाहे कोई और नाम दे दिया जाये, मैं कोई कीमत नहीं देना चाहता। उधार देनेवालेको अपना प्राप्य

१. एस० एन० सूचीसे। पत्र रजिस्ट्रीसे भेजा गया था।

२. देखिए "टिप्पणियाँ", २१-११-१९२९ का उपशीर्षक "खादीके खरीदारो होशियार"।

३. समुद्री तार इस प्रकार था : बेनको देखनेके बाद विश्वास हो गया है कि भारतसे बराबरके स्तरपर मिलनेकी हार्दिक इच्छा है। प्रार्थना है कि मित्रता आरम्भ करनेकी दिशामें आप सहयोग दें। सार्वजनिक माफीका प्रबन्ध कर रहा हूँ। "सस्नेह"।

४. वैजवुड बेन, लेबर सरकारमें भारतके राज्य सचिव।

५. प्रस्तावित गोलमेज परिषद्।

पानेके लिए कुछ क्यों देना पड़े? मैं वही तरीके अपनाऊँगा जो मैंने उम्र-भर अपनाये हैं। उदाहरणके लिए जैसे दक्षिण आफ्रिकामें मुझे जैसे ही पता चला कि स्मट्सका इरादा नेक है, मैंने तत्काल आत्म-समर्पण कर दिया। परन्तु ऐसा मैंने उनसे लिखित आश्वासन[1] लेनेके बाद ही किया। मैं नहीं जानता कि अगले कुछ दिनोंमें घटनाएँ क्या मोड़ लेंगी। परन्तु मैं सख्त दौरेके बीच और थका देनेवाली यात्राके बाद रातके वक्त बोलकर लिखवाये गये छोटेसे पत्रमें अपनी स्थिति जिस हदतक स्पष्ट कर सकता हूँ, कर देना आपके प्रति अपना दायित्व मानता हूँ।

दूसरे दो मित्रोंको, जिन्होंने आपके जैसे ही समुद्री तार भेजे थे, इसी तरहका पत्र भेजा गया है।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

फेनर ब्रॉकवे महोदय

अंग्रेजी (जी० एन० १४०७) की फोटो-नकलसे।

१८१. पत्र: जे० सी० कुमारप्पाको

मुकाम रायबरेली,
१४ नवम्बर, १९२९

प्रिय कुमारप्पा,

राजस्व सम्बन्धी आपका लेख मैं लगभग पूरा पढ़ चुका हूँ। जितना पढ़ चुका हूँ, मुझे वहाँतक यह पसन्द आया है। मैं इसे 'यंग इंडिया'में[2] प्रकाशित करना चाहूँगा; और बादमें सम्भव है, अलगसे पुस्तिकाके रूपमें भी प्रकाशित करना चाहूँ। यदि आप इसके लिए राजी हों तो कृपया अपनी सम्मति तार द्वारा आनन्द भवन, इलाहाबादको भेज दीजिए।

पत्र शनिवारको आपको मिल जायेगा।

हृदयसे आपका,
बापू

श्रीयुत कुमारप्पा
गुजरात विद्यापीठ
अहमदाबाद

अंग्रेजी (जी० एन० १००८४) की फोटो-नकलसे।

१. देखिए खण्ड १२।

२. **यंग इंडियामें** २८-११-१९२९ से २३-१-३० तक "राजस्व और हमारी गरीबी" शीर्षकके अन्तर्गत क्रमशः प्रकाशित हुआ था और इसकी भूमिका गांधीजीने लिखी थी। बादमें यह १९३० में गांधीजीके लिखे प्राक्कथनके साथ पुस्तक रूपमें प्रकाशित हुआ था।

१८२. तार: सरोजिनी नायडूको[1]

[कालाकाँकर
१४ नवम्बर, १९२९][2]

सरोजिनी देवी
ताज महल
बम्बई

बीचमें कार्यक्रम भंग करके जो कार्यक्रम भंग करनेका कारण नहीं जान सकते उन हजारों लोगोंको निराश करना असम्भव समझता हूँ। अगर जरूरत हो तो भेंट २४के बाद भी हो सकती है। आशा है कि इस दौरान श्री जिन्ना और दूसरे मित्र मोतीलालजीके आमन्त्रणको स्वीकार करेंगे।

अंग्रेजी (एस० एन० १५७७७)की फोटो-नकलसे।

१८३. तार: मोतीलाल नेहरूको[3]

[कालाकाँकर
१४ नवम्बर, १९२९]

पण्डितजी नेहरू

सरोजिनी देवीको उत्तर दे दिया है कि कार्यक्रम बीचमें भंग करना असम्भव है। अगर जरूरी हो तो २४के बाद भेंट हो सकती है। लालाजी स्मारकके सम्बन्धमें अपीलके लिए धन्यवाद।

अंग्रेजी (एस० एन० १५७७७)की फोटो-नकलसे।

१. श्री मोतीलाल नेहरूने गांधीजीको सरोजिनी नायडूका यह तार अग्रेषित किया था। उसमें लिखा था: "१६ तारीखको वाइसरायके बम्बई पहुँचनेकी आशा है। यदि आप मंजूरी दें तो जैसा कि सुझाव दिया गया है निजी भेंट सम्भव है"।

२. जिस तारका उत्तर यहाँ दिया जा रहा है वह १४ नवम्बरको १२ बज कर ४० मिनटपर कालाकाँकरमें प्राप्त हुआ था। देखिए **विट्ठलभाई पटेल, लाइफ एण्ड टाइम्स**, पृष्ठ १०६४ भी।

३. देखिए पिछला शीर्षक।

१८४. पत्र : जे० बी० पेनिंगटनको

मुकाम कालाकाँकर
१४ नवम्बर, १९२९

प्रिय मित्र,

हमारे बीच चाहे कितना ही मतभेद क्यों न हो, आपके पत्रोंका हमेशा स्वागत है। वे अच्छे टॉनिकका काम करते हैं। मैं आपका पूरा पत्र छोटेसे उत्तरके[1] साथ 'यंग इंडिया'में छाप रहा हूँ। उत्तरकी एक अग्रिम प्रति इस पत्रके साथ भेज रहा हूँ। ताकि आपको एक पखवाड़े तक उत्तरकी प्रतीक्षामें न रहना पड़े। इसके छपनेमें एक पखवाड़ेका वक्त इसलिए लग जायेगा कि मैं इसे 'यंग इंडिया'को अपने संयुक्त प्रान्तके दौरेके दौरान एक ऐसे स्थानसे भेज रहा हूँ, जो डाकखाने आदिसे थोड़ा दूर है। कामना करता हूँ कि आप चिरकाल तक जीवित रहें और मैं आपके कई पत्र पा सकूँ। कोई कारण नहीं कि आप भारतको अपने मनोऽभिलषित लक्ष्यतक पहुँचते न देख सकें।

हृदयसे आपका,

जे० बी० पेनिंगटन महोदय
नेशनल होम क्राफ्ट एसोसिएशन लिमिटेड
कार्डिफ

अंग्रेजी (एस० एन० १५२४९)की फोटो-नकलसे।

१८५. पत्र : आनन्द टी० हिंगोराणीको

मुकाम कालाकाँकर
१४ नवम्बर, १९२९

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। मुझे याद है, आपने जिस पत्रका जिक्र किया है वह मुझे इस दौरेके दरम्यान मिला था। परन्तु मेरे साथ यात्रा करता हुआ यह कागजोंके ढेरमें खो गया और मेरे ध्यानमें ही नहीं आया। कृपया आप मुझे इसके लिए क्षमा करें। आपको मेरा आशीर्वाद निश्चित रूपसे प्राप्त है। आप और आपकी पत्नी मातृभूमिकी सेवामें रत रहकर आनन्दमय दीर्घ जीवन बितायें। जहाँतक मैं समझ पाया हूँ आपने अपने पिताजीका घर छोड़कर ठीक ही किया। आपके पिताका यह कहना भी ठीक ही है कि जबतक आप अपने निर्वाहके लिए भी उनपर आश्रित हैं, आप पूरी तरहसे अपने मनकी नहीं कर सकते। मेरा अपना विचार है कि लड़का

[1] देखिए "शुद्ध-मतभेद", २१-११-१९२९।

जबतक अपना निर्वाह स्वयं करने योग्य नहीं हो जाता और सचमुच अपना निर्वाह आप नहीं करने लगता तबतक उसे विवाह नहीं करना चाहिए। मेरा विचार है कि कोई नवयुवक बालिग होकर भी अगर अपने पिताके घर रहे तो उसे घरके कामोंमें हाथ बँटाना चाहिए और अपनी आजीविका कमानी चाहिए, जिससे कि पिता और पुत्र दोनों एक दूसरेका आसरा महसूस करें। और यदि कभी दोनोंमें से कोई भी पक्ष अलग होना चाहे तो उसे संयुक्त परिवारसे अलग हो जानेकी स्वतन्त्रता रहे। मैं तो यह उम्मीद करता हूँ कि आप रेलवेकी नौकरी स्वीकार नहीं करेंगे। अगर आप कठिन परिश्रमका जीवन बिता सकें तो आप निश्चय ही उद्योग-मन्दिर आ सकते हैं। आप स्वयं सब-कुछ देख लें और अगर आपको जँच जाये तो आप वहाँ रह सकते हैं और यदि आप वहाँके जलवायुके अभ्यस्त हो जायें तो आपकी पत्नी भी बादमें वहाँ आ सकती हैं। उद्योग-मन्दिरका नियम यह है कि पति और पत्नी भी दृढ़तासे ब्रह्मचर्यका पालन करें। इसलिए यदि आपकी पत्नी आयें तो उनसे आशा यह की जायेगी कि वे आपसे अलग रहेंगी परन्तु यदि उद्योग-मन्दिर आपको जरूरतसे ज्यादा कठोर मालूम दे और यदि आप मामूली वेतनसे सन्तुष्ट हो सकते हैं तो आपको किसी राष्ट्रीय सेवामें लगानेकी व्यवस्था की जा सकती है।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत आनन्द टी० हिंगोराणी
डा० खा० बलोकी, जिला लाहौर

अंग्रेजी (एस० एन० १५६९०)की माइक्रोफिल्मसे।

१८६. पत्र : दक्षिण आफ्रिकी भारतीय कांग्रेसको

मुकाम कालाकाँकर
१४ नवम्बर, १९२९

सचिव
दक्षिण आफ्रिकी भारतीय कांग्रेस, [डर्बन]

प्रिय महोदय,

लेखा अधिकारी चेक आफिस टेलीग्राफ, (तार जाँच कार्यालय) कलकत्तासे प्राप्त पत्र साथमें भेजा जा रहा है। जो राशि आपने सन्देश भेजनेके लिए भेजी थी और जो इस्तेमाल नहीं की गई, यह पत्र उस राशिको वापस करनेके लिए भेजे गये मेरे प्रार्थनापत्रके[1] सन्दर्भमें है।

हृदयसे आपका,

संलग्न-१

अंग्रेजी (एस० एन० १५७६७)की माइक्रोफिल्मसे।

१. देखिए "पत्र : अधीक्षक, सरकारी तार जाँच कार्यालय, कलकत्ताको", २३-१०-१९२९।

१८७. पत्र : नरगिस कैप्टेनको

मुकाम कालाकाँकर
१४ नवम्बर, १९२९

आपका पत्र मिला। मेरा खयाल है कि आपने मुझसे जर्मन महिलाके विषयमें चर्चा जरूर की थी। यदि वह आश्रममें आयेंगी तो मैं उनसे मिलूँगा ही। आशा है कि दौरेमें जो बड़ी भीड़-भाड़ रही उससे आपको ज्यादा परेशानी नहीं हुई होगी। मैं ठीक हूँ। बच्चा कैसा है? जैसा कि आपने वायदा किया था, आप अपने सारे अनुभव और विचार मुझे अवश्य लिखें। मैं कल इलाहाबाद पहुँच जाऊँगा और आशा है कि कमला अपेक्षाकृत अधिक स्वस्थ दशामें मिलेगी।

श्रीमती नरगिस कैप्टेन
७८, नेपियन सी रोड, बम्बई

अंग्रेजी (एस० एन० १५७६८)की फोटो-नकलसे।

१८८. पत्र : फिजी कांग्रेसके सचिवको

मुकाम कालाकाँकर
१४ नवम्बर, १९२९

सचिव
कांग्रेस लोटोका
सुवा (फिजी)

प्रिय मित्र,

आम मताधिकारके प्रस्तावको ठुकरा लेनेसे सम्बन्धित आपका समुद्री तार[1] मुझे मिला। मैं उन सदस्योंको बधाई देता हूँ जिन्होंने इसके विरोधमें त्यागपत्र दिया है। आशा है कि वे अपने निश्चयपर दृढ़ रहेंगे और जबतक आम मताधिकारकी स्वीकृति नहीं दे दी जायेगी, फिरसे चुनाव नहीं लड़ेंगे। संगठित प्रयत्न और संघर्षसे निश्चय ही जल्दी राहत मिलेगी। परन्तु राहत जल्दी मिले या देरीसे, जबतक यह प्रारम्भिक बात स्वीकार नहीं की जाती, परिषदमें जाना सर्वथा निरर्थक है। कृपया मुझे आगेकी गतिविधियोंकी सूचना देते रहियेगा।

हृदयसे आपका,

अंग्रेजी (एस० एन० १५७६९)की फोटो-नकलसे।

१. देखिए "टिप्पणियाँ", २१-११-१९२९ का उप-शीर्षक "फिजीमें भारतीय"।

१८९. पत्र : रमणीकलाल मोदीको

कालाकाँकर
१४ नवम्बर, १९२९

चि० रमणीकलाल,

तुम्हारा पत्र मिला। कताई यज्ञमें जो शिथिलता आती जा रही है वह मुझे बहुत भयंकर लगती है। जो कताई नहीं कर रहे उनके कात न पानेका कारण बताना तो ठीक ही है; किन्तु ये सब बाह्य कारण हैं और पैबन्द जैसे लगते हैं। जो लोग नहीं कातते उन सबको अपनी भावना जतानी चाहिए। यह तो मैं बहुत वर्षोंसे जानता हूँ कि अभी एक ऊपरी कदम उठाना भी बाकी है। जिन क्रियाकलापोंको यज्ञ अर्थात् कर्त्तव्य या फर्ज माना जाता है उनका समय भी निश्चित होता है। नमाज, गायत्री आदिका समय नियत है। मुहूर्तका अर्थ ही यह है। अतः जिस प्रकार हमने भोजनका समय निर्धारित कर लिया है उसी प्रकार यदि यज्ञका समय भी नियत कर लें तो अच्छा होगा। इस क्रियाको भी यदि हम उतना ही महत्व दें जितना कि जीभको देते हैं तो समय निश्चित करनेमें होनेवाली सभी कठिनाइयोंको हम हल कर लेंगे। यह बात समझमें आने योग्य हो सकती है कि किसी भी संस्थाके सभी लोग एक ही समयपर न कात सकें। जैसे कि जो लोग भोजन बनानेके लिए नियुक्त हैं वे सबके साथ न कात सकें। ऐसे लोगोंके लिए कोई अन्य समय ही नियत किया जा सकता है और उन्हें उस समय कातना चाहिए। इस सुझावपर विचार करना। और यदि तुम्हें यह सम्भव जान पड़ता हो तो इस सम्बन्धमें अन्य लोगोंसे भी विचार-विमर्श कर लेना। मेरे वहाँ लौट आनेपर हम लोग इस बारेमें विस्तारसे चर्चा करेंगे और जो उचित जान पड़ेगा वैसा करेंगे। यदि मेरे सुझावमें तुम्हें कोई तथ्य न जान पड़े तो इसे भूल जाना। यदि तुम अवधिका नियम न रखना चाहो तो मत रखना। किन्तु यदि मेरे सुझावपर अमल हो सके तो अवधिका नियम न रखनेका प्रश्न ही नहीं उठता। यदि कताईका समय ही नियत करना चाहो और अवधि न रखना चाहो तो वैसा करना। जिस तरह भी सत्यकी रक्षा हो सके उसी रीतिको अपना लेना।

आज महादेवका तार मिला है कि सन्तोकके[1] अर्श और भगन्दरका आपरेशन हुआ है। ऐसा लगता है कि यह अचानक हुआ है क्योंकि इससे पहले मुझे पता ही नहीं था कि सन्तोकको अर्श है। आपरेशन करा लिया यह तो ठीक ही हुआ। तुम्हारा पत्र मिलनेपर इस बारेमें और अधिक जानकारी मिलेगी। अच्छा हो यदि तुम मनुके टाँसिल अभी निकलवा डालो। मेरी राह देखनेकी जरूरत नहीं है क्योंकि यह बहुत ही सामान्य आपरेशन है।

१. मगनलाल गांधीकी पत्नी।

नाथ वहाँ पहुँच गये होंगे। मराठेके बारेमें तुमने जो लिखा है उसे मैं समझता हूँ। मराठे अपनी कलाको छिपाकर रखनेका प्रयत्न करके उसे सीमित बना रहा है और इस तरह स्वयं अपनी कलाके विकासमें आड़े आता है। अगर नाथ यह बात उसके गले उतार सके तो वह ज्यादा सुखी और शान्त हो सकेगा। ईश्वरलाल मुझे बता रहा था कि उसके उक्त दोषके कारण विद्यार्थियोंको उसकी देखरेखमें काम करना अच्छा नहीं लगता। मुझे इस बातमें काफी सचाई जान पड़ती है। यदि यह अंश तुम उसे पढ़वा देना चाहो तो मुझे कोई आपत्ति नहीं है। सुरेन्द्रसे कहना, हालाँकि मैं उसके सम्बन्धमें कुछ नहीं लिखता फिर भी हमेशा उसके पत्रकी प्रतीक्षा करता रहता हूँ।

बालसे पत्र लिखनेको कहना। इसके साथ भणसालीके लिए एक पत्र भेज रहा हूँ। पत्र पढ़कर उन्हें दे देना। उसमें मैंने सिद्धान्तोंकी चर्चा की है, यदि तुम भी उन्हें समझ लो तो अच्छा होगा।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (जी० एन० ४१५१)की फोटो-नकलसे।

१९०. पत्र : कलावती त्रिवेदीको

कालाकाँकर
१४ नवम्बर, १९२९

चि० कलावती,

तुम्हारा खत मिला है। जेवर . . .[1] दुःख भूल गई है यह अच्छा हुआ। यदि हम अच्छी तरहसे सोचें तो पता चलता है इस जगत्में एक भी चीज किसि एक शख्सकी नहीं है। अमुक वस्तु अपनी मानकर वह गुम जाती है अथवा उसका नाश हो जाता है तब हम दुःख मानते हैं। किसी चीजको अपनी माननेके बदलेमें यदि हम ईश्वरकी मानें तो हमारा सब दुःख मिट जाता है। तब यह प्रश्न उठता है, यदि कोई चीज किसिकी नहिं है तो रक्षा क्यों करें और कौन करे? उसका उत्तर यह है कि यद्यपि चीजके हम मालिक नहीं हैं परन्तु जो चीज हमारे हाथमें अपनी मेहनतसे अथवा किसि और योग्य साधनसे अपने हाथमें आयी है उसके हम ईश्वरकी तरफसे प्रतिनिधि यानी रक्षक हैं। और इस कारण उसकी रक्षा करना हमारा धर्म हो जाता है और बगैर आलस्यसे रक्षा करते हुए यदि वह चीजका नाश हो जाय, या गुम जाय तो हमें कुछ दुःख होना नहीं चाहिये।

बापुके आशीर्वाद

जी० एन० ५२४१ की फोटो-नकलसे।

१. मूलमें यहाँ अस्पष्ट है।

१९१. पत्र : जे० पी० भणसालीको

कालाकाँकर
१५ नवम्बर, १९२९

चि० भणसाली,

तुम्हारा पत्र मिला। तुम्हें आश्रमके बारेमें लिखनेका पूरा अधिकार है क्योंकि आश्रमको तुम अपना ही मानते रहे हो। जब हम लोग मिलेंगे तो इस प्रश्नपर जी भरकर बातें करेंगे। जो कुछ तुमने लिखा है उसमें बहुत कुछ तथ्य तो है ही। जो काम मैं स्वयं करता हूँ और दूसरोंको करनेके लिए प्रेरित करता हूँ उसका उल्लेख मैं प्रयोगके रूपमें करता हूँ क्योंकि उसके परिणामके बारेमें हम कुछ नहीं कह सकते। यदि मैं लकीरका फकीर ही होता तो उसे 'प्रयोग'का नाम क्यों देता। चूंकि मैंने किसी नये सिद्धान्तकी खोज नहीं की है अतः प्रयोगका उल्लेख नई शोधके रूपमें नहीं किया जा सकता। किन्तु पुराने सिद्धान्तोंपर नये ढंगसे अमल जरूर किया जा रहा है, इसलिए उसमें जोखिम तो उठानी ही पड़ेगी। यदि उन सिद्धान्तोंपर अमल करनेके ढंगमें सुधार या फेरफारकी गुंजाइश हो तो हमारा यह कर्त्तव्य हो जाता है कि जोखिम उठाकर भी उनमें सुधार करें। शेष मिलनेपर।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (जी० एन० ४२०८)की फोटो-नकलसे।

१९२. पत्र : सन्तोक गांधीको

१६ नवम्बर, १९२९

चि० सन्तोक,

महादेवका पत्र अब मिला, जिससे मुझे विस्तृत जानकारी मिली है। तुमने ऑपरेशन कराकर बहुत अच्छा किया। आशा है, अब तुम ठीक होगी। राधा या रुखीसे विस्तारसे पत्र लिखनेको कहना।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ८६७८)की नकलसे।
सौजन्य : राधाबहन चौधरी

१९३. राष्ट्रीय शिक्षाकी कीमत

स्नातक-संघके मन्त्री श्री जेठालाल जीवनलाल गांधी लिखते हैं :[1]

सभी पाठक यह देख सकेंगे कि यह पत्र मेरे पहले लेखका[2] ठीक समर्थन करता है। यदि देशका वातावरण शिथिल न हो, या फिर युवकगण उस वातावरणसे ऊपर उठ सकें तो राष्ट्रीय विद्यालय भर जायें। राष्ट्रीय विद्यालयोंका स्वाभाविक जीवन विद्यार्थियोंमें सेवाभाव और थोड़ा-बहुत आत्मविश्वास पैदा करता ही है।

खादी और कताईके बारेमें जो तरक्की हुई है वह अच्छी मानी जायेगी। फिर भी मेरे खयालसे उसमें सुधारकी गुंजाइश है। राष्ट्रीय शिक्षा संस्थामें रहे हुए किसी भी व्यक्तिको खादीके मामलेमें अधकचरा होना ही नहीं चाहिए। गणवेश (यूनिफार्म) पहननेवालेने यदि उस पोशाकका कोई एक भी हिस्सा पहने हुए न हो तो ऐसा नहीं माना जाता कि वह व्यक्ति अपने गणवेशमें है। यह नहीं भूलना चाहिए कि खादी राष्ट्रीय विद्यालयका गणवेश है। जैसे प्रत्येक समकोण ९० अंशका ही होता है, वैसे ही स्नातकोंको गणवेशके बारेमें समझना चाहिए। हम गणवेशका अर्थ कपड़ेकी किस्म तक ही सीमित रखते हैं; पोशाकके आकारके बारेमें कोई प्रतिबन्ध नहीं होता। किन्तु मैं यह मानता हूँ कि इस विषयमें प्रतिबन्ध होना चाहिए। प्राचीन कालके गुरुकुलोंमें ऐसी प्रथा थी और पश्चिमकी आधुनिक विख्यात पाठशालाओंमें भी यही प्रथा है। मेरी रायमें इस प्रतिबन्धके पीछे सुदृढ़ आधार है।

स्नातक कातनेमें अभी पूरी दिलचस्पी नहीं लेते; उसका मूल्य वे पूरी तरह नहीं समझे हैं। अगर समझ लें तो वे सुन्दर, बटदार, बारीक सूतका हर महीने ढेर लगा सकते हैं और उसमें बहुत वक्त भी नहीं लगेगा। जबतक उन्हें यह यकीन नहीं हो जाता कि 'सूतके धागेमें स्वराज्य है' तबतक हमें इस तरहकी दिलचस्पीकी बाट ही देखनी पड़ेगी।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १७-११-१९२९

१. पत्र यहाँ नहीं दिया जा रहा है। पत्र-लेखकने गुजरात विद्यापीठके भूतपूर्व छात्रोंकी प्रवृत्तियोंके बारेमें नवीनतम सूचना दी थी।

२. देखिए "आश्चर्यजनक परिणाम", २७-१०-१९२९।

१९४. उपले या खाद?[1]

पिछले प्रकरणमें[2] हम मनुष्यके मलमूत्रका विचार कर चुके हैं। गाय-भैंस वगैरा जानवरोंके पेशाबका हम कोई उपयोग नहीं करते इससे उसके कारण गन्दगी ही बढ़ती है। गोबरका उपयोग अधिकतर उपलोंके लिए किया जाता है। इसमें जरा भी शक नहीं कि गोबरका अगर यह दुरुपयोग नहीं तो बहुत ही नगण्य उपयोग अवश्य है। यह तो ताँतके लिए भैंस मारनेके समान है। उपलोंकी आँच ठंडी मानी जाती है। हुक्का और चिलम पीनेवाले इसका इस्तेमाल करते हैं। पंजाबकी ओर लोग यह मानते हैं कि उपलोंकी आँचपर घी अच्छा तैयार होता है। इस बातमें कुछ तथ्य हो भी सकता है। लेकिन ये सब दलीलें इसीलिए दी जाती हैं क्योंकि हम गोबरका उपयोग उपलोंके लिए करते हैं। अगर हम गोबरका ठीक-ठीक उपयोग करें तो [अग्नि] देवताको ठंडा करनेके अन्य अनेक साधन खोजे जा सकते हैं। अगर एक उपलेकी कीमत एक पाई होती हो तो गोबरका पूरा उपयोग करनेसे एक उपलेके बराबर गोबरकी कीमत कमसे-कम दस गुनी अधिक होती है। अगर हम इससे होनेवाली अप्रत्यक्ष हानिका ही हिसाब लगायें तो उसकी कीमत आँकना मुश्किल हो जायेगा।

गोबरका पूरा-पूरा सदुपयोग तो उसका खाद बनानेमें ही है। कृषि शास्त्रके जानकारोंका मत है कि गोबरको जला डालनेसे हमारे खेतोंकी उर्वरता घटी है। बगैर खादके खेत और बगैर घीके लड्डू दोनों एक-जैसे शुष्क होते हैं। मैं मान लेता हूँ कि गोबर जलाकर रासायनिक खाद खरीदनेवाले मूर्ख किसान भारतमें नहीं हैं। हमारे किसान तो यह भी मानते हैं कि रासायनिक खादकी अपेक्षा गोबरकी खादकी कीमत कहीं कम होती है। रासायनिक खादसे जहाँ लाभ होता है वहाँ हानि भी होती है। यद्यपि वैज्ञानिकोंके प्रयोग अभी पूरे नहीं हुए हैं, तथापि उनमें से अनेकोंका यह विश्वास है कि रासायनिक खादके उपयोगसे अक्सर फसलकी तादाद बढ़ जाती है, और कई बार खेतोंकी शोभामें वृद्धि होती है, तो भी अनाजके सत्वकी तो हानि ही होती है। कई वैज्ञानिक मानते हैं कि रासायनिक खादसे एक निश्चित मापके खेतमें अधिक गेहूँ पैदा होंगे, दाना सुन्दर और बड़ा होगा। लेकिन कुदरती खादवाले खेतमें पैदा होनेवाले गेहूँ तादादमें भले कम हो किन्तु मिठास और पौष्टिकतामें तो रासायनिक खादवालोंसे कहीं बढ़कर होंगे। और यह भी हो सकता है कि सम्पूर्ण शोधके बाद रासायनिक खादका महत्व भी आजकी अपेक्षा कहीं अधिक कम सिद्ध हो।

यह हो या न हो, इतना तो निर्विवाद है कि गोबरका उपयोग खादके लिए ही किया जाना चाहिए। अतएव ढोरोंके गोबर और पेशाबका भली-भाँति उपयोग

१. यह **नवजीवनके** क्रोड़पत्र **शिक्षण अने साहित्यमें** प्रकाशित हुआ था।

२. देखिए खण्ड ४१, पृष्ठ ४९०-९३।

करनेके सम्बन्धमें पूरी-पूरी जानकारी देना-गाँवके स्वयंसेवकका ही कर्त्तव्य है। स्वयंसेवकोंका यह कर्त्तव्य है कि वे उपलोंके सम्बन्धमें लोगोंका भ्रम दूर करें, उपलोंके बदले कोई अन्य ईंधन ढूँढ़ निकालें, गोबर और गौमूत्रकी खाद विषयक महत्ताको तरह-तरहसे समझायें और इन सबके लिए आवश्यक ज्ञान स्वयं भी प्राप्त कर लें। यह पूरा विषय जितना रोचक है, उतना ही लाभप्रद भी है और उद्योगी शोधकर्त्ताके लिए तो इसमें ज्ञानका अटूट भण्डार भरा पड़ा है। पाठक समझ सकेंगे कि मनुष्यके मलमूत्रकी भाँति ही इसके लिए भी द्रव्य अथवा भारी विद्वत्ताकी आवश्यकता नहीं है; बल्कि जिस प्रेमका मैं पिछले प्रकरणमें उल्लेख कर चुका हूँ, उस प्रेमकी आवश्यकता अवश्य है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १७-११-१९२९

१९५. फिर वही प्रश्न

'नवजीवन' के एक पाठक लिखते हैं:[1]

ऐसे प्रश्न पहले पूछे जा चुके हैं, और उनके उत्तर भी दे दिये गये हैं। लेकिन नये पाठकोंके दिमागमें यही सवाल फिरसे उठ आते हैं। 'नवजीवन' के नये ग्राहकों या पाठकोंको पहले दिये गये जवाबोंके बारेमें क्या पता हो सकता है? अतएव शंका उठनेपर वे स्पष्टीकरणकी आशा रखते हैं। लोगोंका एक बड़ा समुदाय जबतक सार्वजनिक आन्दोलनोंमें ज्ञानपूर्वक दिलचस्पी नहीं लेता, तबतक बार-बार ऐसे प्रश्न पूछे जायेंगे और बार-बार इनके जवाब देने पड़ेंगे।

यही लेखक आगे लिखते हैं?

> **मैं इन बातोंका स्पष्टीकरण अपने लिए नहीं चाहता। मुझे तो विश्वास है, लेकिन दूसरोंको सन्तुष्ट करनेके लिए जवाबकी आवश्यकता है।**

अब जवाब लीजिए।

अपरिग्रहका व्रतधारी अपने लिए एक पाई भी संग्रह नहीं करेगा; लेकिन दूसरोंका प्रतिनिधि होनेके नाते वह करोड़ोंका संरक्षक बन सकता है। मैं तो दरिद्रनारायण, गोमाता आदिका प्रतिनिधि हूँ। जबतक लोगोंका मुझपर विश्वास है तबतक मैं इनके लिए द्रव्य माँगने और उसकी रक्षा करनेका अधिकारी हूँ।

अभी तो मैं डेढ़ करोड़ रुपये इकट्ठे नहीं कर पाया हूँ; हाँ, अगर अधिक समय तक जीवित रहा तो इतना इकट्ठा कर लेनेकी आशा अवश्य रखता हूँ। तिलक-स्वराज्य कोषके एक करोड़ रुपये कांग्रेसके हाथमें थे। उसका पूरा-पूरा हिसाब प्रकाशित हो

१. पत्र यहाँ नहीं दिया जा रहा है। पत्र-लेखकने लिखा था कि आप जैसे अपरिग्रहीको तो द्रव्य स्वीकार ही नहीं करना चाहिए और पूछा था कि यह एकत्रित राशी किस काममें खर्च की जाती है और आश्रमकी जमीन-जायदादका मालिक कौन है।

चुका है और उसकी प्रति आज भी कांग्रेसके कोषाध्यक्ष या मन्त्रीको लिखनेसे मिल सकती है। दरिद्रनारायणके पैसे अखिल भारतीय चरखा संघके नाम जमा होते हैं। उसके और कांग्रेस दोनोंके खजाँची सेठ जमनालालजी हैं। सारी रकम सुप्रसिद्ध बैंकोंमें जमा की जाती है। अखिल भारतीय चरखा संघका हिसाब भी हर साल छपता है और जिन्हें उसकी जरूरत हो वह मन्त्रीको लिखकर मँगा सकता है।

आश्रम और तत्सम्बन्धी जमीनके दस्तावेजकी रजिस्ट्री हो चुकी है[1]। यह दस्तावेज न्यासियोंके नाम है। मैं न्यासी नहीं हूँ। आश्रमके खर्चका हिसाब भी छप चुका है। जो मित्र आश्रमका खर्च चलाते हैं उनके पास उसकी प्रतियाँ भेज दी जाती हैं।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १७-११-१९२९

१९६. धर्म-संकट

तीस वर्षका एक ब्राह्मण युवक लिखता है:[2]

यह पत्र छापनेमें मुझे संकोच तो हुआ लेकिन अन्तमें मैंने इसे छापनेका निश्चय किया। ऐसे दो-चार पत्र भिन्न-भिन्न स्थानोंसे मेरे पास आये हैं। कुछ नौजवान मुझसे इस सम्बन्धमें बातें भी कर गये हैं। इससे मैं मानता हूँ कि ऐसे किस्से सर्वथा असामान्य नहीं हैं। इसलिए उनकी चर्चा करना शायद किसीके लिए लाभदायी सिद्ध हो।

इस दुःखी ब्राह्मणने अगर शुद्ध सत्य लिखा हो तो कहा जायेगा कि उसने जान-बूझकर उस बेचारी बालाको कुएँमें ढकेला है। उसने पच्चीस वर्षकी उम्रमें विवाह किया। इस उम्रमें वह पूरी तरह समझदार बन चुका था। उसकी कमजोरी और निर्बलता आज-कलकी नहीं है। विवाह करते समय भी वह मौजूद थी। इसलिए उसे झूठी शर्म न रखकर अपने बुजुर्गोंको सच्ची स्थिति बता देनी चाहिए थी और विवाहसे इनकार कर देना चाहिए था।

परन्तु उपाय खोजनेकी हदतक गई-गुजरी बातका विचार किया जा सकता है; इसके आगे उसके बारेमें सोचनेमें कोई सार नहीं है। मुझे तो लगता है कि हिन्दू कानून भी ऐसे सम्बन्धको विवाह नहीं मानेगा। पुरुषका वेष धारण करके यदि कोई स्त्री दूसरी स्त्रीसे विवाह करे तो वह विवाह नहीं है, और उस हालतमें उस स्त्रीको दूसरा विवाह करनेकी पूरी स्वतन्त्रता रहती है। इसी प्रकार जो पुरुष विवाहके समय ही किसी कारणसे पुरुषत्वहीन हो तो, विवाह हुआ है यह कहा ही नहीं जा सकता। इसलिए यह बाला ऐसा मानकर कि उसका विवाह हुआ ही नहीं था, दूसरा विवाह कर सकती है। इस ब्राह्मण युवकको अपनी गलती खुले दिलसे जाति और अन्य लोगोंके सामने स्वीकार करके अपनी देखरेखमें बालाका विवाह करा देना चाहिए।

१. देखिए खण्ड २९, पृष्ठ ४२७-८।

२. पत्र यहाँ नहीं दिया जा रहा है।

घरके बड़े-बूढ़े इसका विरोध करें और इसमें रुकावट डालें तो उनका विरोध सहन करके भी इस युवकको अपने धर्मका पालन करना चाहिए और इस बालाको संकटसे बचा लेना चाहिए।

नपुंसकता वगैरा रोगोंको नौजवान छिपाते हैं। परन्तु इन्हें छिपानेकी जरूरत नहीं है। बचपनमें बालकोंको जो कुटेव पड़ जाती है उसके लिए वे स्वयं नहीं, उनके माता-पिता जिम्मेदार हैं। माता-पिता उनकी देखभाल न रखें, बच्चोंको झूठी शर्म करना सिखायें, उन्हें अपना मित्र न बनायें और बादमें बालक अनजानमें उलटे रास्तेपर पड़ जायें तो इसमें दोष बालकोंका नहीं किन्तु केवल घरके बुजुर्गोका ही है।

इसलिए बालक समझदार हो जायें और तब यदि उनमें नपुंसकता आदि दोषकी प्रतीति हों, तो उन्हें साहसपूर्वक इन दोषोंको प्रकट कर देना चाहिए। यदि उनका समयपर इलाज हो जाये तो ये दोष दूर भी हो सकते हैं। परन्तु मैं उपर्युक्त पत्र लिखनेवाले पतिको पुरुषत्व प्राप्त करनेके प्रयत्नमें लगकर उस बालाको कष्ट देनेकी सलाह नहीं दे सकता। इस बालाका दूसरा विवाह करा देनेके बाद उसे अपना इलाज कराना हो तो वह करा सकता है। इसमें भी सावधानी रखना जरूरी है। भस्मोंकी मात्राएँ अर्क या पाक खानेसे किसीको सच्चा पुरुषत्व प्राप्त नहीं होता। इनके सेवनसे मनुष्यको जो-कुछ मिलता है, वह एक प्रकारकी नकली उत्तेजना ही होती है। पाक खाकर कोई अपने निर्बल मनको बलवान नहीं बना सका है। जिसने अपना पुरुषत्व गँवा दिया है, उसके लिए सच्चा उपचार व्यायाम, सात्विक भोजन, खुली हवा और जल-चिकित्सा ही है और सबसे पहला प्रयत्न तो कुटेवका त्याग करना है। जल-चिकित्सासे ज्ञानतन्तु बलवान बनते हैं और मन शान्त होता है। इससे कुटेव भी शिथिल पड़ जाती है।

हो सकता है कि वह बाला किसी तरह दूसरा विवाह करनेको तैयार ही न हो। यदि ऐसी स्थिति हो तो उसे किसी संस्थामें रहकर सेवाधर्म स्वीकार करना और प्रशिक्षण लेना चाहिए। सारे दिन वह योग्य सेवा और अध्ययनमें लगी रहे तो सम्भव है कि सन्तानकी उसकी लालसा तथा विषय-भोगकी इच्छा शान्त हो जाये। दुनियाके सारे बालकोंको वह अपनी सन्तान क्यों न माने?

परन्तु इस दिशामें पहला कदम तो युवकको उठाना है और वह यह है कि उक्त युवक अपनी कमजोरीको दृढ़तापूर्वक प्रकट कर दे। डाकसे पत्र पानेमें भी डरना पामरताकी चरम सीमा कही जायेगी। परन्तु आज हमारा सामाजिक वातावरण इतना दयनीय बन गया है कि अनेक युवक डाकसे अपने पत्रका उत्तर मँगानेमें भी डरते हैं। इसमें भी घरके बुजुर्गोंका ही दोष है। उन्हें अपने बालकोंके पत्र पढ़नेकी धृष्टता करनेमें भी संकोच नहीं होता। सयाने लड़के-लड़कियाँ माता-पितासे अपनी सारी बातें कहने या अपने पत्र दिखानेके लिए जरा भी बंधे हुए नहीं हैं। जो माता-पिता बिना अनुमतिके अपने बालकोंके पत्र पढ़नेकी इच्छा रखते हैं, वे माता-पिता नहीं बल्कि जालिम हैं।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १७-११-१९२९

१९७. पत्र : सतीशचन्द्र दासगुप्तको

मुकाम इलाहाबाद
१७ नवम्बर, १९२९

प्रिय सतीश बाबू,

आपका पत्र मिला। मुझे अभी सोयाबीनका पैकेट नहीं मिला है। आपने गोविन्द बाबूको जो कुछ लिखा है वह मेरे ध्यानमें है। मै उनकी रायको कोई महत्त्व नहीं देता। दुःख और चिन्ताएँ आपको उग्र रूपमें घेरे हुए हैं क्योंकि तारिणी अशक्त है, चारुका भी वही हाल है और हेमप्रभादेवी फिर बिस्तरपर पड़ गई हैं। यह भयावह स्थिति है। आपको यह बोझ सहनेकी शक्ति मिले।

मुझे राम विनोदका एक पत्र मिला है; उसकी एक प्रति नत्थी कर रहा हूँ। मैं अपने उत्तरकी[1] प्रति नत्थी कर रहा हूँ। क्या मैंने आपकी स्थितिको सही सही पेश किया है?

हृदयसे आपका,
बापू

संलग्न-२

अंग्रेजी (जी० एन० १६१२)की फोटो-नकलसे।

१९८. पत्र : राम विनोदको

मुकाम इलाहाबाद
१७ नवम्बर, १९२९

प्रिय राम विनोद,

आपका पत्र[2] मुझे आपके तारके बहुत दिनों बाद मिला। मुझे पता चला है कि [अब] आप कानूनी दृष्टिकोण अपनाना चाहते हैं। अगर आप वैसा करना चाहते

१. देखिए अगला शीर्षक।

२. राम विनोदने लिखा था: "...मेरे और अ० भा० च० संघके बीच झगड़ा पंच-फैसलेके द्वारा अन्तिम रूपसे सुलझा दिया गया है। मुझे इसके बारेमें कुछ नहीं कहना है। मैं नहीं समझ पाता कि अब मामला फिरसे कैसे चलाया जा सकता है। कलकत्तामें राजेन्द्रबाबूने और मैंने आपके हस्तक्षेप करनेपर और आपकी सहमतिसे लिखकर अपनी सहमति दे दी थी कि हम झगड़ेको अन्तिम निर्णयके लिए पंचफैसलेके सुपुर्द कर देंगे और फैसलेको उस विषयपर विश्वास और निष्ठापूर्वक अन्तिम वाक्यके रूपमें स्वीकार कर लेंगे...मामलेकी पूरी तरह छानबीन करनेके बाद पंचोंने निर्णय लिया, जिससे मैं निर्दोष सिद्ध हुआ और मेरी बातको बहाल रखा गया...अ० भा० च० संघकी बिहार शाखाने फैसला माननेकी बात स्वीकार कर ली थी और अब वह उसपर अवश्य दृढ़ रहे..."

हों तो मुझे कुछ नहीं कहना है। तब संघको अपने कानूनी सलाहकारोंकी रायके मुताबिक निर्णय करना होगा। परन्तु मैं तीन चीजें आपके सामने रखना चाहता हूँ। पहली यह कि मैंने कार्यवाहीको कभी कानूनी पंच-फैसलेके रूपमें नहीं देखा है। दूसरी बात यह कि मुझे अन्तिम निर्णायक होना था। सतीश बाबू तथा विट्ठलदास जेराजाणी मेरे सलाहकार थे। तीसरी बात यह कि जहाँतक मुझे मालूम है, सतीश बाबू खुद अपने निर्णयको कानूनी फैसला नहीं मानते, बल्कि वह यह समझते हैं कि यह मेरे अनुमोदनके लिए भेजा गया निर्णय है। मैंने भी कभी यह नहीं सोचा था कि मुझे कानूनी फैसला देना था। मेरा एकमात्र उद्देश्य यही था कि कोई मित्रतापूर्ण समझौता हो जाये। अब आप कृपया मुझे यह बतायें कि क्या आपका खयाल अपना मत कानूनपर आधारित करनेका और सतीश बाबूके सामनेकी कार्यवाहीको कानूनी माननेका है या इसे मित्रतापूर्ण समझौता करनेके प्रयत्नके एक अंशके रूपमें स्वीकार करनेका है?

हृदयसे आपका,

श्रीयुत राम विनोद
गांधी कुटीर
मलखा चक
डा० खा० दिगवाड़ा (बिहार)

अंग्रेजी (एस० एन० १५७६१)की माइक्रोफिल्मसे।

१९९. पत्र : भोपालके नवाबको

मुलाम इलाहाबाद
१७ नवम्बर, १९२९

प्रिय मित्र,

मैं इसी महीनेकी ११ तारीखके आपके पत्रके[1] लिए आपका बड़ा आभारी हूँ। बदलेमें मैं आपको यह आश्वासन दे सकता हूँ कि आपने इतनी दया करके जो सूचना मुझे दी है उसका मैं नासमझीसे या नाजायज ढंगसे इस्तेमाल नहीं करूँगा।

हृदयसे आपका,

परमश्रेष्ठ भोपालके नवाब साहब
भोपाल (म० भा०)

अंग्रेजी (एस० एन० १५७७०)की फोटो-नकलसे।

१. यह पत्र उपलब्ध नहीं है। गांधीजीको लिखे गये एक गोपनीय पत्रमें भोपालके नवाब, हमीदुल्लाने इस बातपर खेद व्यक्त किया था कि लोग व्यर्थ ही प्रशासनकी आलोचना कर रहे हैं। [उन्होंने यह भी बताया था] कि उन्होंने स्वेच्छासे अपने खर्चमें कटौती कर दी है और आमदनी शासक बननेसे पहले व्यापारमें लगाये हुए पैसेसे होती है। उन्होंने इस पत्रके साथ कुछ राजकीय कागजात नत्थी किये थे।

२००. पत्र : बी० राम वर्माको

मुकाम इलाहाबाद
१७ नवम्बर, १९२९

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। आवागढ़के राजा साहबने मोटी रकम देनेका वायदा किया है परन्तु अभीतक मुझे कुछ नहीं मिला है। उन्होंने कहा था कि वह रकम जल्दी ही भेज देंगे। मुझे इसमें कोई सन्देह नहीं कि वह वैसा ही करेंगे। एटा यात्रा[1] की मात्र मधुर स्मृतियाँ मेरे मनमें हैं। आप सबने ही बड़ी कृपा की थी और मेरा विचार है कि एटाका अंशदान बुरा नहीं था।

हृदयसे आपका,

श्रीयुत बी० राम वर्मा
प्रधान, जिला कांग्रेस कमेटी
एटा

अंग्रेजी (एस० एन० १५७७४) की फोटो-नकलसे।

२०१. भाषण : इलाहाबाद विश्वविद्यालयमें

१७ नवम्बर, १९२९

मानपत्र और भेंटकी गई थैलीके लिए आभार प्रकट करते हुए महात्मा गांधीने कहा कि आपने जो-कुछ किया है सो तो कर्त्तव्यका पालन ही किया है और इसलिए मैं समझता हूँ कि लाजपतराय कोष और खद्दर-प्रचारके लिए रुपया देनेके लिए छात्रों और अध्यापकोंको बधाई देनेकी कोई बात नहीं है।

उन्होंने एक पत्रका[2] उल्लेख किया जो लखनऊसे लौटनेके बाद लखनऊके एक छात्रने उन्हें लिख भेजा था। पत्रमें लिखा था कि उसने भी लखनऊमें थैलीके लिए पैसा देनेमें अपना योगदान इस आशासे किया था कि जो लोग उसमें पैसा दे रहे हैं वे उसी पलसे हमेशा खद्दर इस्तेमाल करनेका निश्चय कर लेंगे। परन्तु इस

१. ८ नवम्बरको।
२. देखिए "टिप्पणी", २१-११-१९२९ का उप-शीर्षक "इसे पापोंका प्रायश्चित नहीं समझा जा सकता"।

छात्रने इस बातपर बड़ा आश्चर्य व्यक्त किया था कि लखनऊ छोड़नेके बाद कोई भी खद्दरके प्रचार और प्रयोगके लिए प्रयत्नशील नहीं दिखलाई देता था।

महात्मा गांधीने कहा कि उन लोगोंमें यदि खद्दर और चरखेके लिए भेंट देनेके साथ-साथ खद्दरके लिए काम करनेका निश्चय नहीं है, तो मैं उसका कोई अर्थ नहीं मानता।

इसीलिए मैंने कहा कि यदि आप आजसे खद्दरके लिए काम करनेका निश्चय नहीं करते तो मेरा आपके प्रति आभार व्यक्त करना कोई औचित्य नहीं रखता।

इसलिए मेरी सच्चे दिलसे प्रार्थना है कि आप उस कार्यको शुरू करें जिसको ठीक समझकर आपने थैली भेंट की है।

आपने अपने मानपत्रमें कहा है कि चरखेमें बहुत ताकत है, पर क्या आपने उसे, स्वयं चलानेका निश्चय कर लिया है? मैं जानता हूँ कि आप ऐसा कर सकते हैं, यदि आप ऐसा करनेका निश्चय भर कर लें।

मुझे पक्का पता है कि यदि आप दिनमें केवल आधा घंटा कातें तो वह आपके अध्ययनमें तनिक भी बाधा नहीं पहुँचायेगा और न ही वह आपकी बौद्धिक शक्तिपर कुछ असर डालेगा।

इसके उपरान्त गांधीजीने छात्रोंसे अपना संगठन बनानेकी अपील की और कहा कि आपके संगठित प्रयत्नसे ही स्वराज्य मिल सकता है।

इसके बाद उन्होंने स्वर्गीय लाला लाजपतरायको अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की। उन्होंने कहा कि कुछ लोग, यह समझते हैं कि लाजपतराय मुसलमानोंके शत्रु थे।

पर मैं कहता हूँ वे किसीके शत्रु नहीं थे। लालाजी हिन्दू-मुस्लिम-एकताके हिमायती थे, वह उनका सिद्धान्त था और इसलिए उनका धर्म भी था; यदि आप उनका आदर करना चाहते हैं तो आपको कमसे-कम इतना तो करना ही चाहिए कि आप एकता स्थापित करनेके लिए प्रयत्न करें।

[अंग्रेजीसे]

लीडर, २०-११-१९२९

२०२. भाषण : अभिनन्दन समारोह, इलाहाबादमें[1]

१७ नवम्बर, १९२९

मानपत्रोंका एक साथ उत्तर देते हुए महात्मा गांधीने नगरपालिका और जिला बोर्डके मानपत्रों और नगरपालिका द्वारा भेंट की गई थैलीके प्रति आभार प्रकट किया।

उन्होंने बच्चोंको चरखा चलानेकी शिक्षा देनेके लिए नगरपालिका बोर्डको बधाई दी और आशा व्यक्त की कि जिला बोर्ड भी अपने स्कूलोंमें चरखे दाखिल करवायेगा। उन्होंने नगरपालिका बोर्डको चमड़ा कमानेका स्कूल चलानेके लिए भी बधाई दी। महात्मा गांधीने कहा कि जैसे मैं अपने आपको कतैया और किसान मानता हूँ उसी तरह मैं अपने आपको चमार भी मानता हूँ, क्योंकि मुझे चमारके कामका भी कुछ ज्ञान है। इसलिए मैं भारतके चमड़ा उद्योगके सम्बन्धमें एक सलाह देना चाहता हूँ।

मैंने देखा है कि आजकल जानवरोंकी खालोंको कमानेके लिए बाहर भेजकर भारतका नौ करोड़ रुपया विदेशोंको भेजा जाता है। प्रतिवर्ष इतनी बड़ी रकमको भारतसे बाहर जानेसे बचानेके लिए मैं चाहता हूँ कि भारतमें चमड़ा उद्योगकी उन्नतिके लिए उपाय ढूँढ़ निकालनेका सच्चे दिलसे प्रयत्न किया जाना चाहिए। इस सम्बन्धमें ब्रिटिश लोग भी जर्मन लोगोंसे सफलतापूर्वक प्रतियोगिता नहीं कर सके हैं। इसलिए मेरी सलाह है कि भारतीयोंको केवल क्रोम चमड़ेकी कमाई करके और उसी चमड़ेके जूते इस्तेमाल करके ही सन्तोष करना चाहिए। यदि हम ऐसा करें तो देशका नौ करोड़ रुपया देशमें से बाहर न जाने पाये।

आगे बोलते हुए गांधीजीने कहा कि मुझे यह जानकर बड़ा धक्का लगा है कि हरिद्वारकी तरह प्रयागकी पवित्र नदियाँ भी नगरपालिकाके गन्दे नालोंके पानीसे अपवित्र की जा रही हैं। इस खबरसे मुझे अत्यन्त दुःख हुआ है। इस प्रकार बोर्ड पवित्र नदियोंके पानीको गन्दा ही नहीं करता बल्कि हजारों रुपया नदीमें फेंकता है; नालियोंके पानीका लाभप्रद ढंगसे अन्यथा उपयोग किया जा सकता है। इस सम्बन्धमें कुछ कर सकनेमें बोर्डकी असमर्थता देखकर मुझे बड़ा आश्चर्य होता है।

महात्मा गांधीने बोर्डों द्वारा अपने मतदाताओंको अच्छा दूध मुहैया करनेकी व्यवस्था करनेकी आवश्यकतापर जोर दिया। उन्होंने कहा कि यदि वे इसकी व्यवस्था नहीं करते तो मेरी रायमें वे अपने कर्त्तव्यका पालन नहीं करते। मेरी

१. गांधीजीने यह भाषण नगरपालिका बोर्ड और जिला बोर्डके मानपत्रोंके उत्तरमें दिया था।

समझमें यह नहीं आता कि अबतक बोर्ड ऐसी साधारण-सी चीजकी व्यवस्था करनेमें असफल क्यों रहे हैं।

भाषण समाप्त करते हुए महात्मा गांधीने श्रोताओंसे कहा कि आज शामकी सार्वजनिक सभामें आप लोग लाजपतराय कोषमें देनेके लिए अपनी जेबें रुपयोंसे भरकर पहुँचें; क्योंकि आज लाला लाजपतरायकी पुण्यतिथि है, उस समय जितना ज्यादा आप दे सकते हों उतना देनेकी कोशिश करें।

[अंग्रेजीसे]
लीडर, २०-११-१९२९

२०३. भाषण: सार्वजनिक सभा, इलाहाबादमें

१७ नवम्बर, १९२९

महात्मा गांधीने कहा कि प्रयाग आनेका यह मेरा पहला मौका नहीं है। पण्डित मोतीलाल नेहरूकी प्रायः ही जब कभी इच्छा हुई और उन्होंने चाहा, मैं यहाँ आया हूँ। पर दरिद्रनारायणके लिए कुछ माँगनेको तो मैं पहली बार ही यहाँ आया हूँ।

इलाहाबादने मुझे ३०,००० रु०से अधिक दिये हैं; इसमें से १६,००० रु०से अधिक दरिद्रनारायणका भाग है। इसके लिए मैं आपको बधाई देता हूँ। किन्तु नागरिक कहीं ऐसा न समझने लगें कि उन्होंने मुझे कुछ-बहुत अधिक दे दिया है। इलाहाबादकी दो लाखकी आबादीको देखते हुए ३०,००० रु० या ४०,००० रु० इकट्ठा हो जाना कोई बड़ी बात नहीं है। मैं जानता हूँ कि इलाहाबादमें ऐसे लोग भी हैं जो चाहें तो उनमें से हरएक ४०,००० रु० दे सकता है। महात्मा गांधीने कहा कि मुझे आशा है कि इलाहाबादसे जाते समय तक यह रकम कमसे-कम ३५,००० रु० हो जायेगी।

मुझे केवल साठ करोड़ रुपये चाहिए; और यदि सब भारतीय केवल खद्दर पहननेका दृढ़ निश्चय कर लें तो छियासठ करोड़ मिल जायेंगे। यदि खद्दरके प्रयोगसे प्रतिवर्ष भारतका ६६ करोड़ रुपया विदेशोंमें जानेसे बच जायेगा और इस प्रकार बचाया गया यह ६६ करोड़ रुपया गाँवोंमें भेजा जायेगा। उन्होंने कालाकाँकरके राजा और समस्तीपुरके[१] लाल साहबकी प्रशंसा की जिन्होंने विदेशी कपड़ेके बने अपने कीमती वस्त्र बाहर निकाल कर जलवा दिये। इसलिए महात्मा गांधीने इलाहाबादके नागरिकोंसे कहा कि आप आजसे ही खद्दरके अतिरिक्त कुछ और प्रयोग न करनेका निश्चय करें।

१. समसपुर, देखिए "संयुक्त प्रान्तका दौरा–१०", २१-११-१९२९।

इसके बाद महात्मा गांधीने स्वर्गीय लाला लाजपतरायकी स्मृतिमें अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की और इस बातपर आश्चर्य प्रकट किया कि एक साल बीत चुकने पर भी लोग पाँच लाख रुपया इकट्ठा नहीं कर सके हैं। उन्होंने लाजपतराय स्मारक कोषके लिए कुछ नेताओंके हस्ताक्षरोंसे जारी की गई अपील[1] और पण्डित मोतीलाल नेहरूके इस सुझावका जिक्र किया कि लाला लाजपतरायकी प्रथम पुण्यतिथिके दिन कमसे-कम दो लाख रुपये इकट्ठे करने चाहिए। यदि इस कामके लिए आप हृदयसे प्रयत्न करें तो मैं नहीं समझता कि दो लाख रुपया इकट्ठा करना कोई बड़ा काम है।

महात्मा गांधीने कहा कि यदि स्वर्गीय लाला लाजपतरायके प्रति आपके मनमें तनिक भी श्रद्धा है तो आप स्मारक कोषके लिए उस दिन जितना भी दे सकते हों दें। इलाहाबादमें भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसके वर्तमान और भविष्यमें होनवाले अध्यक्ष[2] रहते हैं; यहाँ [अ० भा० कां०] कमेटीका कार्यालय है और यहाँ एक बड़ा विश्वविद्यालय स्थापित है, इसलिए यदि आपको यहाँ रुपया नहीं मिला तो फिर वह और कहाँ मिल सकेगा? उन्होंने कहा कि लाला लाजपतरायने अपना जीवन स्वराज्यके कार्यमें खपा दिया और इसलिए भारतको चाहिए कि जो काम लाला लाजपतराय करना चाहते थे वह उसे एक सालमें कर दिखाये।

लोगोंको जो-कुछ वाइसराय और वैजवुड बेनने कहा है अथवा जो-कुछ भी वे भविष्यमें कहेंगे और नेता उसपर क्या कहेंगे आदि बातोंका विचार ही नहीं करना चाहिए। भारतको जो-कुछ पाना है वह लन्दनसे नहीं आयेगा; वह तो भारतीयोंको अपनी शक्तिके फलस्वरूप ही प्राप्त होगा। महात्मा गांधीने लोगोंसे अपील की कि इसलिए वे स्वराज्य प्राप्त करनेके लिए काम करनेके उद्देश्यसे संगठित हों जायें। जबतक कि छोटेसे-छोटा किसान भी अपने अधिकारोंके प्रति जागृत नहीं हो जाता तबतक वास्तविक स्वराज्य प्राप्त नहीं हो सकता। सब कुछ लोगोंकी अपनी शक्तिपर निर्भर करता है; इसलिए मैं आपसे अपील करता हूँ कि अपनी शक्ति और संगठनको बढ़ानेके लिए आपको कुछ उठा नहीं रखना चाहिए।

[अंग्रेजीसे]
लीडर, २०-११-१९२९

१. देखिए खण्ड ३८, पृष्ठ ९९-१०१।
२. मोतीलाल नेहरू और जवाहरलाल नेहरू।

२०४. पत्र : जवाहरलाल नेहरूको

१८ नवम्बर, १९२९

प्रिय जवाहर,

यह रहा मेरा मसविदा[१]। मैं चाहता हूँ कि तुम इस पर सावधानीसे विचार करो और आज रातको बातचीतमें पूरी तरह भाग लो। मैं नहीं चाहता कि तुम अपने मनको किसी भी तरहसे दबाओ सिवाय इसके कि जब तुम्हें लगे कि किसी विशेष अवसर पर अपनी भावनाओंको दबा रखना ही ज्यादा अच्छी आत्माभिव्यक्ति है। आखिरकार हममें से हरएकको अपनी ही समझके अनुसार सेवा करनी चाहिए; उधार ली हुई समझसे नहीं।

बापू

[अंग्रेजीसे]
गांधी नेहरू कागजात, १९२९।
सौजन्य : नेहरू स्मारक संग्रहालय और पुस्तकालय

२०५. कांग्रेस कार्यसमितिके प्रस्तावका मसविदा[२]

१८ नवम्बर, १९२९

वाइसराय द्वारा की गई पहली तारीखकी घोषणा,[३] कांग्रेसके तथा देशके अन्य राजनीतिक दलोंके सदस्यों द्वारा हस्ताक्षरित घोषणा पत्र, इसके बाद भारत और इंग्लैंडमें हुई घटनाओं तथा मित्रों और शुभचिन्तकों द्वारा दी गई सलाहको ध्यानमें रखते हुए कार्य समिति कांग्रेसियों द्वारा उठाये गये कदमका समर्थन करती है; और राष्ट्रीय कांग्रेसके आगामी अधिवेशन तकके लिए इसपर और विचार-विमर्श स्थगित करती है।

अंग्रेजी (एस० एन० १५५९३)की फोटो-नकलसे।

१. देखिए अगला शीर्षक।

२. कांग्रेस कार्य समिति द्वारा पास किया गया प्रस्ताव इस प्रकार था: "वाइसराय द्वारा पहली नवम्बरको की गई घोषणा कांग्रेस तथा देशके अन्य राजनीतिक दलोंके सदस्यों द्वारा हस्ताक्षरित दिल्लीका घोषणापत्र, इसके परिणामस्वरूप हुई घटनाओं और मित्रोंकी इस सलाहको कि दिल्लीके घोषणापत्रमें निर्धारित की गई नीतिमें परिवर्तन करनेसे पूर्व हमें ब्रिटिश सरकारका रुख जाननेके लिए कुछ और इन्तजार करना चाहिए, ध्यानमें रखते हुए कार्य समिति दिल्लीमें कांग्रेसियों द्वारा उठाये गये कदमका समर्थन करती है। "इस सम्बन्धमें यह बात साफ-साफ समझ ली जाये कि कार्य समितिका यह समर्थन संवैधानिक रूपसे कांग्रेसके आगामी अधिवेशन तक ही लागू होता है"। **पायोनियर, २०-११-१९२९।**

३. देखिए परिशिष्ट १।

२०६. पत्र : वालजी देसाईको

प्रयाग
१८ नवम्बर, १९२९

भाईश्री वालजी,

घासका यह व्यापार करने लायक नहीं है। यह 'नौ की लकड़ी नब्बे खर्चे' वाला मामला है। इस घासके सम्बन्धमें नगीनदासको सूचित करना चाहिए।

ब्रजमोहनलाल वर्माके साहसका कोई अर्थ नहीं है। उनसे मैं मिला था। उन्हें सीधे वहींसे उत्तर दे देना कि हम कोई मदद नहीं दे सकेंगे।

हासानन्दवाली चन्देकी सूची यदि अभीतक मेरे पास है तो वह वहीं किसी फाइलमें होगी। मैं वहाँ लौटकर खोजूँगा।

उन निबन्धोंमें मैं तो हाथ ही नहीं लगा सका।

बापू

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ७४०३)की फोटो-नकलसे।
सौजन्य : वालजी देसाई

२०७. पत्र : शिवाभाई पटेलको

१८ नवम्बर, १९२९

भाई शिवाभाई,

तुम्हारा पत्र मिला। संयमसे रहनेका प्रयत्न करनेवालेको सफलता अवश्य मिलती है यह 'गीता'का वाक्य है और अनुभवसिद्ध है। इसमें धीरजकी आवश्यकता तो है ही। और अधिक मिलनेपर।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (एस० एन० ९४९६)की फोटो-नकलसे।

२०८. पत्र : महादेव देसाईको

प्रयाग
१८ नवम्बर, १९२९

चि० महादेव,

तुम्हारा पत्र मिला। आजकल प्यारेलालका उत्साह ठंडा पड़ गया है। उसके लिखे लेखोंको सुधारनेमें मुझे इतनी तकलीफ होने लगी थी कि आखिरकार मैंने लिखनेकी झंझटसे उसे मुक्त कर दिया। सुधारोंके बावजूद लेखोंमें कोई दम नहीं होता था। प्यारेलालने भी यह देखा, इसलिए आजकल वह पत्र-व्यवहारका काम सँभालता है। 'संयुक्त प्रान्तका दौरा' के अन्तिम तीन पत्र मेरे ही लिखे हुए हैं।[1] इस यात्राके दौरान मैंने अपने नामसे पत्र लिखना उचित समझा। हममें से यह कोई नहीं जानता कि 'ए' हस्ताक्षरकी उत्पत्ति कैसे हुई। मेरी इच्छा तो यही थी कि 'पी' ही जाया करे। किन्तु वालजीने जान-बूझकर 'पी' निकाल दिया होगा, और यदि ऐसा किया गया है तो मैंने उसमें किसी तरहकी रद्दोबदल न करना उचित समझा और इस बारेमें कोई प्रश्न भी नहीं उठाया।

जील[2] गायके बारेमें मुझे कुछ याद नहीं आ रहा है।

यह आश्चर्यकी बात है कि बहुत ध्यानसे डाकमें छोड़नेके बावजूद 'नवजीवन' की सामग्री शुक्रके बदले शनिवारको पहुँची। दूर बैठकर अखबार चलानेको तो एक प्रकारका अक्खड़पन ही कहा जा सकता है। किन्तु जबसे मैंने अखबार निकालना शुरू किया है, तभीसे यही स्थिति रही है।

जमनालालजी भी यहीं हैं। इसलिए गैरहाजिर लोगोंमें अकेले तुम्हीं बच गये। यहाँके समाचार मैं तुम्हें कैसे दूँ? इस मामलेमें देवदास आलसी और प्यारेलाल मन-मौजी है। अतः तुम चीखते-चिल्लाते रहो।

ब्रेनकी दूसरी पुस्तक[3] भी मैं पढ़ रहा हूँ। इस व्यक्तिका उत्साह मुझे चकित कर देता है।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (एस० एन० ११४६४)की फोटो-नकलसे।

१. देखिए "संयुक्त प्रान्तका दौरा", २४-१०-१९२९; ३१-१०-१९२९; ७-११-१९२९; १४-११-१९२९ २१-११-१९२९ और २८-११-१९२९।

२. देखिए खण्ड ३४, जील गायके साथ गांधीजी और मालवीयजी खड़े हैं।

३. ग्रामोत्थानके सम्बन्धमें; देखिए "क्या यह ग्राम सुधार है", १९-१०-१९२९।

२०९. पत्र : आश्रमकी बहनोंको

प्रयाग
मौनवार, १८ नवम्बर, १९२९

बहनो,

सन्तोकके ऑपरेशनसे मेरे मनमें एक विचार आया सो लिखे देता हूँ। हिन्दुस्तानमें बहनोंको अपना शरीर डाक्टरको दिखलानेमें संकोच होता है। यह प्रवृत्ति अच्छी नहीं, खराब है। इससे हमने बहुत नुकसान उठाया है। इस शर्मकी जड़में पवित्रता नहीं, परन्तु विकार है। मैं चाहता हूँ कि हम इस अन्ध-विश्वासको दूर कर दें। सन्तोकका ऑपरेशन अगर हरिभाईको न करने दिया होता तो वह ऑपरेशन न होता और उसका जीवन खतरेमें पड़ जाता। पुरुष डाक्टरको भी अपना शरीर दिखानेमें किसी स्त्रीको संकोच नहीं करना चाहिए। पासमें अपने सगे-सम्बन्धी तो होते ही हैं इसलिए भयका कोई कारण ही नहीं हो सकता। तुम्हें शायद पता नहीं होगा कि मैंने तो बाके आखिरी प्रसवके समय पुरुष डाक्टरको ही रखा था। बाका एक ऑपरेशन भी पुरुष डाक्टरके हाथसे कराया था। उसमें बा ने कुछ गँवाया नहीं था। ऐसे मामलोंमें हमें अपने मनमें एक अलग ढंगकी वृत्ति-भर पैदा करनी होती है। इसलिए तुम्हारे सामने यह बात रखी है। अब इस बारेमें यदि मुझसे कुछ पूछना हो तो २६ तारीख मंगलवारको पूछना।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (जी० एन० ३७१०)की फोटो-नकलसे।

२१०. पत्र : नन्दकिशोरीको

प्रयाग
मौनवार, [१८ नवम्बर, १९२९][1]

चि० नन्दकिशोरी,

तुमने प्रश्न ठीक पूछा है। प्रेम सात्विक है या नहीं इसका निश्चय उसके चिन्ह परसे हो सकता है। जो माता बालकको भोगविलास करती है उसका प्रेमा मोहजनित है। जो पत्नी पतिके धर्मार्थे दूर रहनेसे गभराती है उसका प्रेम स्वार्थी है। अैसा तो सेंकडो उदाहरण बता सकते हैं।

जो लोग आश्रमके नियमोंका पालन करना नहीं चाहते हैं उसे तो कोई स्थान आश्रममें नहीं है, परंतु जो सच्चे प्रयत्नशील है परंतु निष्फल होते है उसे स्थान है, होना चाहिए।

१. १९२९ में इस तारीखको गांधीजी प्रयागमें थे।

नियमभंग और अन्य दोषोंके लिए आश्रममें दण्डनीतिका स्थान नहीं है।
अैसी है हंमेश विचारमय जीवन व्यतीत करो।

बापुके आशीर्वाद

सी० डब्ल्यू० १६३८से।
सौजन्य : रमणीकलाल मोदी

२११. पत्र: तोताराम सनाढ्यको

प्रयाग
मौनवार [१८ नवम्बर, १९२९][१]

भाई तोतारामजी,

गंगादेवीके बारेमें दाक्तर जो कहती है बहोत विश्वसनीय नहिं है। दूध दही और फलके सिवाय और कोई चीझकी आज उनके लीये कोई जरूरत नहिं है। तदपि अब तो मैं आता हुं। शरीर देखकर और गंगादेवीकी इच्छा जानकर कुछ परिवर्तनकी आवश्यकता होगी तो करेंगे।

बापुके आशीर्वाद

जी० एन० २३३५की फोटो-नकलसे।

२१२. पत्र: चन्द त्यागीको

प्रयाग
मौनवार [१८ नवम्बर, १९२९][२]

भाई त्यागीजी,

बलवीर और वायुमंडलके बारेमें पं० देवशर्माजीसे पूछो। नारीयल न मीले तो तिलका या अलसीका [तिल] प्रयोग कीया जाय।

मेरा स्वास्थ अच्छा रहता है।

बापुके आशीर्वाद

श्री चन्द त्यागीजी
गुरुकुल-मायापुर
डा० कनखल
जिला : सहरनपुर

जी० एन० ६०९६की फोटो-नकलसे।

१. देखिए पिछले शीर्षककी पाद-टिप्पणी।
२. डाककी मुहरसे।

२१३. पत्र : सी० एफ० एन्ड्रयूजको

मुकाम मिर्जापुर
१९ नवम्बर, १९२९

दुबारा नहीं पढ़ा गया

प्रिय चार्ली,

मुझे न्यूयार्कसे लिखा तुम्हारा पत्र कल इलाहाबादमें मिला। आज तड़के सवेरे मिर्जापुर आनेके लिए गाड़ी पकड़ी और यहाँ पहुँचकर यह पत्र चरखा कातते-कातते प्यारेलालको बोलकर लिखवा रहा हूँ। मुझे यह जानकर खुशी हुई कि तुम बिना सलाह-मशविरा किये अन्तिम रूपसे कुछ नहीं लिखोगे। मेरे पास बहुत-सी चेतावनियाँ आई हैं पर ...के[1] सम्बन्धमें कही गई बहुत-सी बातों पर मैंने विवेकपूर्वक विश्वास नहीं किया है, क्योंकि मैंने सोचा कि यदि जैसा कि मैं चाहता था तुम्हारा पत्र छापूँ तो मुझे उसे उक्त चेतावनीके[2] साथ छापना चाहिए; और मैंने वैसा ही किया। जलवायु सुधरी है और उससे मुझे अच्छा लगा है। यात्रासे तो मुझे कोई हानि नहीं हुई; पर कच्चा खाना खानेके प्रयोगमें अवश्य ही कहीं त्रुटि थी। लगभग सभीने हाथ टेक दिये और जो चार या पाँच लोग बहादुरीसे अब भी उसे चलाये जा रहे हैं, उन्हें भी कुछ अच्छे परिणाम हाथ नहीं लग पाये हैं। पर वे उसे जारी रखे हैं; क्योंकि उनमें वैज्ञानिकों-जैसी लगन है।

निस्सन्देह मैकमिलन कम्पनीसे जो-कुछ भी मिलेगा[3] वह शान्ति निकेतनमें पियर्सन स्मारक बनानेके लिए दे दिया जायेगा। मुझे इस बातकी खुशी है कि तुमको उस कामके लिए एक क्वेकर डाक्टरकी सेवाएँ प्राप्त हो गई हैं। तुम्हें यह जानकर प्रसन्नता होगी कि एच० जी० अलेक्जेंडरकी प्रेरणासे एक युवक क्वेकर रेजिनॉल्ड रेनॉल्डस, जिसे कि तुम शायद जानते हो, आश्रममें आ गये हैं। मैं अभीतक उनसे नहीं मिला हूँ; २५ को मिलनेकी सम्भावना है। वे लिखते हैं कि पहले दिन भारतीयोंके सम्पर्कमें आनेपर उनपर जो प्रभाव पड़ा था उसे उनके दो सप्ताहके अनुभवने, पुख्ता कर दिया है।

मैं निस्सन्देह यह तो चाहता हूँ कि तुम जब भी आ सको, आ जाओ। पर मैं यह नहीं चाहता कि तुम अपने कामको बीचमें छोड़ आओ। जबतक तुम्हें लगे कि पश्चिममें तुम्हारी आवश्यकता है, तुम बड़ी खुशीसे वहाँ बने रहो। मैं समझता हूँ कि यहाँकी घटनाओंके सम्बन्धमें तो तुम सब-कुछ जानते हो।

१. मूलमें यहाँ अस्पष्ट है।

२. सम्भवत: गांधीजीका आशय "मेरी स्थिति" १४-११-१९२९ नामक लेखसे है।

३. सी० एफ० एन्ड्रयूज द्वारा सम्पादित **आत्मकथा**के अमेरिकी संस्करणकी रायल्टीके रूपमें मिलनेवाला पैसा।

पिछली रात संयुक्त परिषद हुई जिसमें हम एक व्यवहार्य विधि-सूत्र (फार्मूला) पर पहुँचे। मैं लॉर्ड इर्विनके मार्गको सरल बनानेका भरसक प्रयत्न कर रहा हूँ। शेष प्यारेलालपर पूरा करनेके लिए छोड़ रहा हूँ।

सस्नेह,

मोहन

अंग्रेजी (जी० एन० ९९६)की फोटो-नकलसे।

२१४. पत्र : सतीशचन्द्र दासगुप्तको

मुकाम इलाहाबाद
१९ नवम्बर, १९२९

प्रिय सतीश बाबू,

आपका दुःखभरा पत्र मुझे मिर्जापुरमें मिला।

कैसा दुर्भाग्य है! सेवाके नामपर हम क्या-क्या अपराध नहीं करते। क्या प्रसन्नबाबू कोई सन्तान छोड़ गये हैं।

हृदयसे आपका,
बापू

[पुनश्च :]

हेमप्रभा देवीको ईश्वर आरोग्य दें।[1]

अंग्रेजी (जी० एन० १६१३) की फोटो-नकलसे।

२१५. पत्र : रमणीकलाल मोदीको

मिर्जापुर
१९ नवम्बर, १९२९

चि० रमणीकलाल,

तुम्हारा पत्र मिला। कातनेके बारेमें तो मैं तुम्हें लिख ही चुका हूँ।[2] इसलिए अब और अधिक लिखनेकी आवश्यकता नहीं है। छगनलालकी रायसे मैं सहमत नहीं हूँ और यह मैंने उसे लिख भी दिया है। यदि उसकी आपत्ति ठीक हो तो उसके कारण प्रत्येक नियमके मूलपर आघात पहुँचता है। यदि हमें नियमके बन्धनकी आवश्यकता हो तो अनुभवके साथ-साथ नियमोंमें सख्ती या ढील देना जरूरी हो जाता है। फिर इसमें सिद्धान्तका प्रश्न खड़ा नहीं होता। किन्तु इस सम्बन्धमें यदि चर्चा करना आवश्यक हुआ तो जब हम सब मिलेंगे तब चर्चा करेंगे।

१. यह वाक्य हिन्दीमें है।
२. १४ नवम्बरको।

बा, कुसुम और जयन्तीको मैं चार दिन पहले रवाना कर देना चाहता हूँ। इस बारकी यात्रा जरा मुश्किल है। सुविधाएँ कम हैं। मोटर किराये पर लेनी होगी। ऐसी स्थितिमें मैं कमसे-कम लोगोंको अपने साथ रखना चाहता हूँ। प्रभावती कल पटना चली गई। मीराबहन कल रवाना होगी। इसलिए मेरे साथ सिर्फ प्यारेलाल और शायद देवदास रहेगा। वे किस गाड़ीसे अहमदाबाद पहुँचेंगे यह मैं अभी ठीक तरहसे नहीं देख पाया हूँ। इसलिए मैं बादमें तार दूँगा। रणछोड़भाई या अनसूयाबहनसे गाड़ी भिजवा देनेको कह देना।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (जी० एन० ४१५२) की फोटो-नकलसे।

२१६. पत्र : छगनलाल जोशीको

मिर्जापुर
१९ नवम्बर, १९२९

चि० छगनलाल,

तुम्हारा पत्र मिला। मेरे तारकी जो नकल तुमने भेजी है उसे समझना खुद मेरे लिए ही कठिन है। ऐसा नहीं लगता कि यह तार ठीक-ठीक भेजा गया था। कुछ भी हो सकता है। बम्बईकी स्त्री सभा खादीकी कढ़ाईके लिए विदेशी धागे काममें लाती है, किन्तु इस कारण उनके द्वारा बनाई गई चीजोंका बहिष्कार नहीं किया जाता। यह प्रथा बहुत वर्षोंसे चली आ रही है। अतः इस बार भी वैसा ही चलने दो। और अधिक लिखवानेका समय नहीं है।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (जी० एन० ५४७०) की फोटो-नकलसे।

२१७. पत्र : रामनारायण चौधरीको

मिर्जापुर
१९ नवम्बर, १९२९

भाई रामनारायण,

तुमारा पत्र मिल गया। मैं घीके बारेमें भूल गया था। मेरे नजदीक तो घी का प्रतिबन्ध करनेकी आवश्यकता नहीं। अब उसे छोड़ दिया जाये और आवश्यक मात्रामें घी लिया जाये। शरीर अच्छा बना लेना चाहिए। ता० २५ को प्रातःकाल मेरी ट्रेन अजमेर पहुँच जायेगी। मेरा मौन होगा।

बापुके आशीर्वाद

बापू : मैंने क्या देखा, क्या समझा?

२१८. पत्र : रमणीकलाल मोदीको

बाँदा
२० नवम्बर, १९२९

चि० रमणीकलाल,

तुम्हारा पत्र मिलना चाहिए था, किन्तु मिला नहीं। शायद कही दूसरे स्थान पर मिल जायेगा। कल मैंने अपने पत्रमें यह लिखा था कि बा, जयन्ती और कुसुम वहाँ गुरुवारको पहुँचेंगी किन्तु जयन्तीके बारेमें मैंने अपना विचार बदल दिया है। मुझे ऐसा लगा कि उसे आगरा, जयपुर और अजमेर देख लेने चाहिए। मेरे विचारसे शेष चार दिनकी यात्रामें उसे कुछ विशेष देखने या अनुभव लेनेको नहीं था, इसलिए उसे इन तीनों शहरोंको देख लेनेके लिए आज रवाना कर दिया। मुझसे पहले रवाना होनेकी आखिरी घड़ीमें बा और कुसुमका मन बहुत भारी हो आया, ऐसा जान पड़ा। इसलिए मैंने रवाना हो जानेका आग्रह नहीं किया। किन्तु बाने यहाँ ठहरकर अपने हिस्सेकी कमाई कर ही ली। वह यहाँ थी, इसलिए जिन सैकड़ों बहनों तक मैं नहीं पहुँच सका, वहाँ बा की उपस्थितिसे उन्हें कुछ आश्वासन मिला। और रास्तेमें जब मैं सो रहा था तो बा जो दूसरी मोटरमें थी, पैसोंकी थैलियाँ स्वीकार करती रहीं। इससे दरिद्रनारायणको इतना लाभ पहुँचा और लोगोंको कुछ सन्तोष मिला। अब तो हम सब साथ ही छोटी लाइनसे सोमवारकी रातको पहुँचेंगे। अनसूयाबहन और रणछोड़भाईसे मोटर भेजनेको कहलवा देना।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च :]

यह पत्र लिखनेके बाद मैंने दुबारा नहीं पढ़ा है।

गुजराती (जी० एन० ४१५३)की फोटो-नकलसे

२१९. पत्र : मीराबहनको

दुबारा नहीं पढ़ा गया

बाँदा
२० नवम्बर, १९२९

चि० मीरा,[1]

हमारी गाड़ी दो घंटे लेट हो जानेसे सारे कार्यक्रममें गड़बड़ हो गई। लेकिन फिर मैंने तीसरे पहरका आराम नहीं किया और स्नान रातके मुकामके लिए मुल्तवी कर दिया; इससे सब कुछ ठीक हो गया। मैंने कताई ९.३० पर खत्म की। अब रातके लगभग दस बज रहे हैं। मगर मैं यह पत्र लिखनेसे पहले नहीं सो सकता।

१. मीराबहनको लिखे इस पत्रमें तथा अन्य पत्रोंमें सम्बोधन देवनागरी लिपिमें हैं।

यह भूमिका तुम्हें यह बतानेके लिए दी कि मुझे दिन-भर तुम्हारा खयाल आता रहा है। चूँकि अब तुम मुझसे दूर हो, इसलिए तुम्हें दुःख पहुँचानेका मुझे और भी अधिक दुःख हो रहा है[1]। आज तक ऐसा कोई जालिम नहीं हुआ, जिसे दूसरोंपर किए गये जुल्मकी कीमत न चुकानी पड़ी हो और किसी प्रेमीने कभी पीड़ा पहुँचाकर कम पीड़ा नहीं सही। मेरा यही हाल है। मैंने जो कुछ किया वह अनिवार्य था। यह जरूर है कि अगर मुझे क्रोध न आता तो अच्छा होता, लेकिन जिन्हें मैं बहुत ज्यादा चाहता हूँ, उनके प्रति मैं कठोर भी बहुत ज्यादा रहता हूँ। लेकिन अब चूँकि तुम मुझसे दूर हो, मुझे तुम्हारी असाधारण भक्तिके सिवाय और किसी बातका खयाल नहीं आ सकता। भगवान या तो वह दूर कर दे जिसे मैं तुम्हारा मोह समझता हूँ या मेरी विवेककी आँखें खोल दे ताकि मैं अपनी भूल देख सकूँ।

तुम्हें स्वस्थ रहना है।

सस्नेह,

बापू

अंग्रेजी (जी० एन० ९४३५)से; तथा (सी० डब्ल्यू० ५३७९) से भी।

सौजन्य : मीराबहन

२२०. टिप्पणियाँ

फिजीमें भारतीय[2]

सुवासे प्राप्त एक तारमें लिखा है "आज कौंसिलने भारतीय सदस्यों द्वारा पेश किये गये समान मताधिकारके प्रस्तावको रद कर दिया। तीनोंने त्यागपत्र दे दिया।" इसका अर्थ यह हुआ कि फिजीकी विधान परिषद भारतीयोंको समान मताधिकार नहीं देगी। भारतीय मजदूरोंके शोषक गोरोंकी दृष्टिमें ऐसा करना एक बहुत बड़ी बात हो जायेगी। भारतीय मतदाताओं द्वारा चुने गये भारतीय सदस्योंका विधान परिषदमें वस्तुतः कोई प्रभाव नहीं है। मैं तीनों सदस्योंको विरोध स्वरूप कौंसिलसे त्यागपत्र देनेमें निहित उनकी देशप्रेम सम्बन्धी भावनाके लिए बधाई देता हूँ। मैं यह आशा करता हूँ कि वे किसी भी कारणसे अपने इस निश्चय पर तबतक पुनः विचार नहीं करेंगे जबतक कि समान मताधिकार नहीं मिल जाता। त्यागपत्र देनेपर भी उन्हें निष्क्रिय होकर नहीं बैठना चाहिए; बल्कि इस सामान्यसे न्यायके लिए जिसके कि वे अधिकारी हैं, अपना आन्दोलन जारी रखना चाहिए। यदि फिजीकी भारतीय बस्ती सुसंगठित रही तो भारतीय विरोधी पूर्वग्रहका किला उनके संगठित प्रयत्नोंसे अवश्य ही ढह जायेगा।

१. गांधीजीने मीराबहनको डाँटा था क्योंकि वे उनके स्वास्थ्यके सम्बन्धमें जरूरतसे ज्यादा चिन्तित रहती थीं।

२. देखिए "पत्र : फिजी कांग्रेसके सचिवको", १४-११-१९२९ भी।

इसे पापोंका प्रायश्चित्त नहीं समझा जा सकता

लखनऊसे एक छात्र लिखता है:[१]

मुझे यह जानकर दुःख होना स्वाभाविक है कि छात्र और दूसरे जो लोग खादी-कोषके लिए रुपया देते हैं स्वयं खादी पहननेकी नीयतसे रुपया नहीं देते; केवल अपनी आत्माको सन्तोष देनेके लिए देते हैं। मैंने चन्दा देनेवाले श्रोताओंको इस बातकी चेतावनी दी है कि उनका यह चन्दा, जहाँतक हो सके वहाँतक खादी पहननेकी उनकी इच्छाका सूचक है। लगता है कि पत्र-लेखक ऐसा सोचता है कि खादी पहननेवाले [कोषमें] चन्दा नहीं देते; किन्तु वास्तविकता तो यह है कि जो लोग खादी पहनते हैं वे व्यक्तिगत रूपसे अधिकसे अधिक देते हैं। यदि लोग खादी कोषमें केवल चन्दा दे दें और खादी कोई भी न पहने तो वह चन्दा देना सर्वथा व्यर्थ है, क्योंकि वे जो-कुछ भी देते हैं वह गरीबोंको दानस्वरूप नहीं दिया जाता वरन् उनके कामके बदलेमें उन्हें दिया जाता है और यदि लोग उनके इस कार्यका कोई उपयोग नहीं करते (अर्थात् लोग खादी नहीं पहनते) तो उनका वह सारा श्रम बेकार ही हो जाता है।

खादीके खरीदारो होशियार[२]

अखिल भारतीय चरखा संघके मन्त्री लिखते हैं:[३]

खादीके तमाम खरीदारोंको खादी खरीदते समय बड़ी सावधानी रखनेकी आवश्यकता है। निश्चय ही जो लोग अपने-अपने प्रान्तोंमें प्राप्त मामूली खादीसे सन्तुष्ट हो जाते हैं, साधारणतया उन्हें तो कोई डर नहीं है, लेकिन जो आन्ध्रकी महीन और उम्दा खादीको छोड़कर दूसरी तरहकी खादी पहनते ही नहीं है, उन्हें खादी खरीदते समय विशेष रूपसे सावधान रहना चाहिए। चरखा संघने बार-बार जनताको इस बातके लिए आगाह किया है कि वह खादीको तबतक शुद्ध न माने, जबतक की वह किसी प्रामाणिक खादी-भण्डारकी न हो। प्रामाणिक खादी-भण्डारोंकी सूची पहले ही पत्रोंमें छप चुकी है और एक आनेका टिकट भेजनेसे जब चाहें तब संघके मन्त्रीको लिखनेसे मिल सकती है। इतनी तो हुई सर्वसाधारणके प्रति — उनके कर्त्तव्यकी बात; किन्तु उन लोगोंसे कोई क्या कहे, जो बनावटी खादी बेच रहे हैं और इस तरह एक ऐसे राष्ट्रीय आन्दोलनको क्षति पहुँचा रहे हैं, जिसकी योजना विशेष रूपसे भूखों मर रहे लाखों लोगोंके हितके लिए की गई है। एक कसाईमें भी थोड़ी-बहुत दया होती है; उसी तरह इन व्यापारियोंको अपनी धन-लिप्साकी सीमा निर्धारित

१. पत्र यहाँ नहीं दिया जा रहा है। पत्र-लेखकने लिखा था कि खादी कोषमें चन्दा देनेके बाद ही छात्रोंने अपने कर्त्तव्यकी इति समझ ली है। देखिए "भाषण: इलाहाबाद विश्वविद्यालयमें", १७-११-१९२९ भी।

२. इसी विषयपर एक टिप्पणी **नवजीवन,** १५-१२-१९२९ में प्रकाशित हुई थी।

३. पत्र यहाँ नहीं दिया जा रहा है। पत्र-लेखकने अपने पत्रमें तूनीके व्यापारियोंकी एक सूची दी थी, जो मिलके सूतके कपड़ेको शुद्ध खादीके रूपमें बेच रहे थे।

करनी चाहिए और कमसे-कम भूखों मरते हुए लाखों-करोड़ोंको धोखाधड़ीके व्यापारका शिकार नहीं बनाना चाहिए। मुझे यह जानकर हर्ष होगा कि ये पंक्तियाँ तूनीके व्यापारियोंकी निगाहमें आ गई हैं और उन्होंने बनावटी खादीका व्यापार बन्द कर दिया है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २१-११-१९२९

२२१. शुद्ध मतभेद

नब्बे वर्षके श्री जे० बी० पेनिंगटनने, जिनसे 'यंग इंडिया' के पाठक परिचित हैं, ६ अक्टूबरको निम्नलिखित [पत्र] भेजा है:

> मैं आपको बार-बार लिखकर कष्ट देता रहता हूँ; बहुत सम्भव है कि यह पत्र मेरा आखिरी पत्र ही ठहरे। मैं यह अवश्य कहना चाहता हूँ कि आपने कांग्रेसका सभापति बनना अस्वीकार कर दिया, मुझे इससे प्रसन्नता हुई है क्योंकि मेरे विचारमें इसका अभिप्राय यह है कि आप स्वतन्त्र रहना ज्यादा पसन्द करते हैं; और मैं सोचता हूँ कि इस संकटकी घड़ीमें चाहे कुछ भी क्यों न हो जाये आप अपने ही निर्णयपर अटल रहेंगे। आपने मेरे इस प्रश्नका कि क्या आप भारतीय गणतन्त्रके प्रथम राष्ट्रपति बननेके लिए तैयार हैं, कभी उत्तर नहीं दिया। सम्भवतः आपने सोचा होगा कि यह हास्यास्पद प्रश्न है। परन्तु यह बात ऐसी बिलकुल नहीं है। क्योंकि यदि आप जिनका अनुभव और ख्यातिमें कोई सानी नहीं हैं, इस पदके लिए उपयुक्त न हों तो फिर और कौन हो सकता है। यदि आपने हमें उस समय निकाल बाहर किया तो क्या जाने गणतन्त्र स्थापित होगा या अराजकता फैल जायेगी। क्या आपके लिए करीब अगले और दस सालों तक मौजूदा प्रशासनके साथ काम करना बिलकुल असम्भव है? तबतक आपके पाँव जम जायेंगे। बारडोलीका आपका अनुभव इस बातका प्रमाण है कि आप मौजूदा सरकारपर साधारण तरीकोंसे प्रभाव डाल सकते हैं; और एक बार इस सरकारसे बराबरीकी शर्तोंपर सम्बन्ध बन जानेके बाद आप बिना रक्तपातके अपनी सारी माँगें आसानीसे मनवा सकते हैं। भगवान ही जानता है कि हमारी पिछली पूरी एक पीढ़ीने इस रक्तपातका कैसा जबर्दस्त अनुभव किया है। मैं तो अब भी यही आशा करता हूँ कि भारतमें सब कुशलसे ही निबट जायेगा।[1]

मुझे इसमें कोई सन्देह नहीं कि पाठक भी मेरे साथ श्री पेनिंगटनके दीर्घजीवनकी कामना करेंगे और यह आशा रखेंगे कि श्री पेनिंगटन इसी तरह पत्र भेजते रहें

१. पत्र-लेखकको भेजे गांधीजीके उत्तरके लिए देखिए "पत्र : जे० बी० पेनिंगटनको", १४-११-१९२९।

और भारतको अपना उद्दिष्ट लक्ष्य प्राप्त करते हुए भी देख सकें। श्री पेनिंगटनको जो बात सही मालूम देती है उसपर दृढ़ रहनेमें वह जो शक्ति, लगन और प्रयत्न प्रकट करते हैं, उसके लिए उनकी प्रशंसा किये बिना नहीं रहा जा सकता। उनकी निष्कपट सच्चरित्रतासे तो कोई इनकार ही नहीं कर सकता। यदि वे ब्रिटिश जुएके नीचे दबे हुए हम लोगोंकी तरह नहीं सोच पाते तो यह उनकी अपनी सीमा है। और उसके लिए उन्हें दोषी नहीं ठहराया जा सकता। उनकी आश्चर्यजनक लगन, उद्यम और आशावादिता तो ऐसी चीजें हैं जो इस देशके युवकोंके लिए अनुकरणीय हैं।

अब मैं श्री पेनिंगटनके प्रश्नका उत्तर देता हूँ। भावी भारतीय गणतन्त्रके पहले राष्ट्रपतिके बारेमें उनका प्रश्न मुझे खूब याद है। यदि मैं थोड़ी देरके लिए संकोच बिलकुल त्याग दूँ तो मैं पेनिंगटनसे कानमें यह कह देना चाहता हूँ कि यदि मेरे जीवनकालमें भारतीय गणतन्त्र बन जाये और इस देशके सीधे-सादे लोग वह बोझ मुझपर डाल दें तो मैं विश्वाससे कह सकता हूँ कि मैं उससे दब नहीं जाऊँगा। किसी भी तरह उस बोझको उठानेका भरसक प्रयत्न तो करना ही होगा। बहरहाल मैं भारतके लिए किसी अलग-थलग जीवनकी नहीं, अंग्रेजोंके साथ पूरी तरह बराबरीकी शर्तोंपर सहयोगपूर्ण जीवनकी कोशिश कर रहा हूँ। यदि हम अपने अंग्रेज शिक्षकोंकी नकल करनेका निश्चय कर लें और परिणामोंकी परवाह किये बिना यहाँ, वहाँ और सब कहीं सिर-फोड़ना शुरू कर दें तो मेरी रायमें गणतन्त्र कहिए, अराजकता कहिए, लाना काफी आसान होगा। परन्तु इससे मुझे प्रसन्नता नहीं होगी। और यदि इस तरह गणतन्त्र प्राप्त किया गया तो बहुत करके मैं बचूँगा नहीं और यदि बच भी गया तो ऐसा गणतन्त्र मुझे सिंहासनपर बैठानेके बजाय फाँसी पर लटकाना ही अपना प्रथम कर्त्तव्य समझेगा। इसलिए मेरी कल्पनाका गणतन्त्र अहिंसात्मक उपायों द्वारा ही प्राप्त हो सकेगा। और यदि देश अपनी लक्ष्य प्राप्तिके लिए अहिंसा और सत्यको ही सर्वोत्तम साधन बनाये रखे तो उसे अंग्रेजोंको बाहर निकालनेकी जरूरत नहीं रहेगी। तब अंग्रेजोंका हृदय-परिवर्तन हो जायेगा और अंग्रेज उस हृदय-परिवर्तनकी दशामें स्वेच्छासे देशके सेवक बनकर काम करेंगे और भारतीयोंसे मिल-जुलकर रहनेमें गौरवका अनुभव करेंगे। यदि ऐसी सफलता मिल जाती है तो यह एक ऐसी चीज होगी जिसपर भारत सकारण गर्व कर सकेगा और इससे संसारको भी लाभ ही होगा। चाहे यह कभी पूरा न होनेवाला कोई सपना हो परन्तु मेरे लिए इतना ही काफी है; क्योंकि इससे मुझे प्रसन्नता मिलती है। अब श्री पेनिंगटन समझ गये होंगे कि मेरे लिए मौजूदा प्रशासनके साथ १० सालकी तो बात ही क्या एक दिन भी काम करना बिलकुल नामुमकिन है। मौजूदा प्रशासनमें बराबरीकी बात असम्भव है। मेरी रायमें यह प्रशासन भारतके लिए अत्यन्त हानिकारक साबित हुआ है; और यह पशुबलपर आधारित है। श्री पेनिंगटन और भारतीय राष्ट्रवादियोंमें आधारभूत अन्तर यह है कि भारतीय राष्ट्रवादी समझते हैं कि किसी बाहरी व्यक्तिकी सहायताके बिना भारत अपने मामलोंकी देखरेख स्वयं कर सकता है। यदि कोई डाकू केवल शस्त्रोंकी शक्तिसे मुझसे मेरी सम्पत्ति छीन ले और मुझे अपना गुलाम बना

ले तो इसका यह अभिप्राय नहीं है कि मैं अपने आपको अपनी सम्पत्तिका मालिक बननेके अयोग्य समझूँ; फिर मेरे पास इतनी पर्याप्त शस्त्र-शक्ति भले ही न हो कि मैं अवैध तरीकेसे छीनी गई अपनी सम्पत्ति उससे वापस ले सकूँ। तीसरी बात यह है कि श्री पेनिंगटनका यह समझना कि मौजूदा सरकारपर बारडोलीके[1] मामलेमें साधारण उपायोंका कोई असर हुआ था, भूल है। सरदार वल्लभभाईने पूरी होशियारी और पूरी सचाईके साथ जिन असाधारण साधनोंका प्रयोग किया था और असहयोगियों द्वारा जब उन्हीं असाधारण साधनोंका प्रयोग किया गया तब उसका सरकारपर असर पड़ा था। मैं चाहूँगा कि देश इन्हीं असाधारण साधनोंका प्रयोग करे। और मैं जानता हूँ कि जैसे बारडोलीके सीधे-सादे किसानोंने अपना ध्येय प्राप्त किया वैसे ही देश भी अपना लक्ष्य प्राप्त कर लेगा।

अन्तमें मैं चाहूँगा कि श्री पेनिंगटन उस आदर्शका अनुसरण करें जिसकी [प्राप्तिके लिए] वह मण्डल जिससे उनका गहरा सम्बन्ध है, काम कर रहा है। जिस कागजका श्री पेनिंगटन अपने पत्र लिखनेके लिए उपयोग करते हैं, उसके ऊपर नेशनल 'होम क्राफ्ट एसोसिएशन लिमिटेड' छपा हुआ होता है। नेशनल होम क्राफ्ट एसोसिएशनका उद्देश्य है: "होम क्राफ्ट सेटलमैंटको प्रोत्साहित करना – अर्थात् बड़े-बड़े नगरोंके पासके उपनगरोंमें इस इरादेसे अनाजकी उपज बढ़ानेवाले क्षेत्र बनाये जायें कि वहाँ अलग अलग घरोंमें कामगर लोगोंको बसाया जाये। वे घर व्यक्तिगत खेतोंमें बनाये जायें और ये खेत इतने बड़े हों और वे इतने साधन-सम्पन्न हों कि अतिरिक्त समयमें परिवारके निजी परिश्रमसे परिवारकी भूमिमें ही उनकी जरूरत-भरका अनाज पैदा किया जा सके।" इन कागजोंके हर पन्नेके नीचे रस्किनकी निम्नलिखित उक्ति छपी है, "हम परिवर्तनशील और सम्भवतः क्रान्तिके युगमें रहते हैं। सभी चिन्तनशील लोगोंके मनमें विचारोंकी उथल-पुथल मची हुई है। मैं एक सिद्धान्तकी घोषणा करता हूँ जो क्रान्तिके सब युगोंको समाप्त कर सकता है और अन्तमें समाप्त करेगा भी – हर आदमीके पास उसकी जरूरत-भरके लिए जमीन हो; उससे ज्यादा बिलकुल नहीं;" मुझे आशा है कि श्री पेनिंगटन और पाठक इस मनोवृत्तिमें जो असंगति है उसपर ध्यान देंगे – कहाँ तो [श्री पेनिंगटन] एक ओर शोषणपर आधारित साम्राज्यके प्रति उदारता करते हैं और कहाँ दूसरी ओर इस उक्तिपर विश्वास करते हैं: "हर आदमीके पास जरूरत-भरके लिए जमीन हो; उससे ज्यादा बिलकुल नहीं।" क्या श्री पेनिंगटन सोचते हैं कि एक लाख अंग्रेज पुरुष और महिलाएँ, जिन्होंने भारत पर अधिकार जमा रखा है वास्तवमें १,८०० मील लम्बे और १,५०० मील चौड़े क्षेत्रका उपयोग कर सकते हैं। उनका ऐसा सोचना एक हैरतकी बात है। और फिर एक ऐसा राष्ट्र जिसका अपना घर है, यदि तीस करोड़ लोगोंकी भूमि छीन ले तो उसे किसी भी तरह न्याय-संगत कैसे माना जा सकता है?

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २१-११-१९२९

१. बारडोली सत्याग्रह, देखिए खण्ड ३७।

२२२. चरखेका गूढ़ार्थ

एक मित्रने 'टेक्सटाइल वर्ल्ड' में 'समयसे एक सदी पीछे' शीर्षकसे छपे लेखकी निम्न कतरन[1] भेजी है:

यह अपने पूर्वकल्पित विचारोंके समर्थनमें दिये जानेवाले तर्कका एक उदाहरण है। लेखकने सम्भवतः उसका, जिसे वह 'गांधी आन्दोलन' कहता है और जिसका अभिप्राय निस्सन्देह हाथ कताई आन्दोलनसे है, गूढ़ार्थ जाननेका कष्ट नहीं किया है। कताई आन्दोलनका उद्देश्य भारतकी उन लाखों झोंपड़ियोंमें फिरसे चरखेको पहुँचा देना है जहाँसे वह अनुचित, अवैध और बर्बर तरीकेसे हटा दिया गया था। यदि किसी न किसी तरीकेसे इन झोंपड़ियोंको इस पूरक धन्धेके बदले, जिससे इन्हें वंचित कर दिया गया था, कोई और धन्धा दे दिया जाता तो ऐसा कोई आन्दोलन चलानेका सवाल ही नहीं उठता था; इसे दुर्भाग्य कहिए चाहे सौभाग्य, ऐसा कोई धन्धा उन्हें नहीं दिया गया। अतः ग्राम्य जीवनका अध्ययन करनेवालेको [पूरक धन्धेकी] केवल आवश्यकतासे बाध्य होकर अन्य सब साधनोंको आजमा लेनेके बाद उस भयंकर दरिद्रताको दूर करनेके लिए एक मात्र साधनके रूपमें चरखेको फिरसे अपनाना पड़ा, जो गृह उद्योगके रूपमें सूत कातना बन्द होनेके कारण भारतके लाखों घरों प्रविष्ट कर गई है। जिस क्षण भी इन लाखों लोगोंको इसके बदले कोई और अच्छा धन्धा मिल सके, वे चरखा छोड़नेके लिए स्वतन्त्र हैं और चरखेके बदलेमें उनके इससे बेहतर धन्धा पानेपर किसी अन्य व्यक्तिको मुझसे अधिक प्रसन्नता नहीं होगी। इसमें कोई सन्देह नहीं कि आन्दोलनके प्रवर्तकोंके विचारमें जहाँतक आदमी सोच सकता है, चरखेकी जगह उससे कुछ और अच्छा धन्धा पा सकनेकी कोई आशा नहीं दिखलाई देती। उनका तो विश्वास यह है कि ज्यों ही पश्चिमके शक्तिशाली देशों द्वारा अपेक्षाकृत दुर्बल कहे जानेवाले देशोंका आजका शोषण समाप्त हो जायेगा, जो किसी न किसी दिन अवश्य समाप्त होगा — समस्त संसारको फिरसे चरखा अपनाना होगा। कभी ऐसा हो या न हो, जबतक भारत स्वयं शोषण करनेवाला बनकर शोषणके लिए नये देश नहीं ढूँढ़ लेता या स्वतन्त्र भारत पश्चिमी राष्ट्रोंको, उनपर थोपे गये अपने मालको खरीदनेके लिए बाध्य कर सकने योग्य वैसी बर्बर शक्ति अर्जित नहीं कर लेता जैसी शक्तिके बलपर आज वे भारतपर अपना माल लाद रहे हैं, यदि भारत अपनी आर्थिक तंगीसे छुटकारा पाना चाहता है तो उसे उसी प्रकार जैसे वह जीवनके लिए सबसे ज्यादा जरूरी चीज अनाज अपने खेतोंमें उगाता है, अपनी जरूरतकी चीजें अपने घरोंमें ही बनानी होंगी। इसलिए कताई आन्दोलनके प्रवर्तकोंका चरखा या ऐसी किसी मशीनको प्राप्त करनेका प्रयत्न जिससे उतने ही

१. यहाँ नहीं दी जा रही है। उसमें लिखा था 'गांधी आन्दोलन' द्वारा तेज चलनेवाले चरखेके लिए इनामकी घोषणा करना अपनी बुनियादी आर्थिक गलतीको मानना है।

समयमें वर्तमान चरखेसे ज्यादा और अच्छा सूत अपने घरोंमें ही काता जा सके, कोई असंगत बात नहीं है। टिप्पणीके लेखकको यह जान लेना चाहिए कि घरेलू मशीनोंको सुधारनेका यह प्रगतिशील कार्य पुरातन कालसे किया जाता रहा है। तकली या लकड़ीके तकुएकी जगह चरखेने ले ली। चरखेका भी धीरे-धीरे विकास होता रहा है, क्योंकि हम देखते हैं कि आजकल भी विभिन्न प्रान्तोंमें विभिन्न प्रकारके प्राचीन चरखे काममें लाये जाते हैं। विकासका यह सिलसिला चरखेका प्रयोग समाप्त हो जानेसे एकदम रुक गया। इसलिए अखिल भारतीय चरखा संघकी परिषद केवल उस रास्तेपर अग्रसर हो रही है जो ईस्ट इंडिया कम्पनीके एजेंटों द्वारा मशीनीकरणके कारण अचानक रुक गया था। वास्तविकता यह है कि परिषद और मैं कोई भी मशीनोंके खिलाफ नहीं हैं; पर हमारा कहना यह है कि घरेलू उद्योग-धन्धोंको समाप्त करने और उन्हें एक सीमामें बाँध देनेकी दृष्टिसे उद्योगोंका मशीनीकरण करना गलत है। दूसरे शब्दोंमें हम ग्रामीण सभ्यता और ग्राम्य-जीवनकी कीमत पर भारतके शहरीकरणके विरुद्ध हैं। 'टेक्सटाइल वर्ल्ड'में उक्त लेखकने यह कहा है कि वस्तुतः प्रतियोगिताकी सभी सम्बन्धित आवश्यकताओंको पूरा करनेवाली मशीन एक शताब्दी पहले अमेरिकामें प्रयोगमें आती थी। 'वस्तुतः' वाला क्रिया-विशेषण दुविधामें डालनेवाला है। पर यदि ऐसी कोई मशीन अमेरिकामें है और कोई अमेरिकी अन्वेषणकर्त्ता उसे प्रतियोगिताकी सभी सम्बन्धित आवश्यकताओंको पूरा करने योग्य बनानेका कष्ट करेगा तो वह संघ द्वारा घोषित इनाम तो पायेगा ही, करोड़ों मूक प्राणियोंका धन्यवाद भी प्राप्त करेगा। पर आलोचकोंको यह समझ लेना चाहिए कि यदि ऐसी किसी मशीनका आविष्कार नहीं होता और कोई इनाम नहीं जीतता तो भी कताई आन्दोलन आगे बढ़ता रहेगा। संघ भारतके लगभग २,००० गाँवोंकी १,५०,००० औरतोंकी और उनके द्वारा अनेक जुलाहों, धोबियों, दर्जियों, छीपियों और दूसरे अनेक लोगोंकी सेवा करनेमें समर्थ होनेके कारण अपने आपको धन्यवादका पात्र मानता है। संघ सात लाख गाँवोंमें से प्रत्येकको अपने कार्यक्षेत्रमें लाने और उनकी उन झोंपड़ियोंमें, जहाँ निराशाका राज्य है, आशा की किरण पहुँचानेकी उम्मीद रखता है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २१-११-१९२९

२२३. धर्मके नामपर

धारवाड़ युवक संघके मन्त्री लिखते हैं:[1]

पत्रमें जो-कुछ भी कहा गया है यदि वह सही है तो इससे एक बहुत ही दर्दनाक, भयानक स्थितिपर प्रकाश पड़ता है; यह निस्सन्देह बर्बरताके युगमें वापस जाना है। यह बहुत दुःख और खेदका विषय है कि अब भी इस देशमें ऐसे पढ़े लिखे लोग काफी तादादमें हैं जो कुछ ऐसे देवताओंके होनेमें विश्वास करते हैं जिन्हें पशुबलिसे प्रसन्न या तृप्त किया जा सकता है। यदि धारवाड़ युवक संघके मन्त्री ने निरीह बकरियोंकी हत्याका जो वर्णन किया है, वह सही है तो यह धर्मके नाम पर किया जानेवाला एक अमानवीय कृत्य है। मैं चाहता हूँ कि मन्त्री द्वारा किया हुआ वर्णन अतिशयोक्तिपूर्ण निकले। इसी तरहका एक पत्र बंगालसे आया है जिसमें पत्र-लेखकने मुझसे धर्मके नामपर इस महान् प्रान्तमें प्रतिदिन होनेवाली पशुबलिकी भर्त्सना करनेको कहा है। यदि मेरी भर्त्सनासे एक भी पशुकी हत्या बच सकती है तो मैं अपनी पूरी शक्तिके साथ इसकी भर्त्सना करता हूँ। पर लगता है कि आजकल ऐसी बलिको प्रोत्साहन देने और उसको उचित सिद्ध करनेका रिवाज-सा चल रहा है। मद्राससे एक पत्र-लेखकने मुझे मद्रास अहातेमें विद्वान ब्राह्मणों द्वारा की जानेवाली ऐसी हत्याके विवरण देनेवाले कागजात भेजे हैं। मैं चाहता हूँ कि देश भरमें युवक संघ इन हत्याओंके खिलाफ एक आन्दोलन खड़ा करे और इस प्रकार ऐसा जनमत तैयार करे कि ये हत्याएँ असम्भव हो जायें। मैंने लोगोंको ऐसे तर्क देते सुना है कि जबसे पशु-बलि समाप्त हुई है लोगोंमें युद्धोचित जोशकी भावना समाप्त हो गई है[2]। ईसाई-धर्मके प्रचारसे पूर्व यूरोपमें बहुत पशुबलि दी जाती थी। पर ऐसा नहीं लगता कि पशुबलि समाप्त करने अथवा उसकी भर्त्सना और निन्दा करनेसे वहाँ युद्धोचित जोशकी भावना समाप्त हो गई है। मैं युद्धोचित जोशकी भावनाका समर्थक नहीं हूँ, पर मैं जानता हूँ कि वह असहाय, भोले, गूंगे और निर्बल प्राणियोंकी बेहद नृशंस तरीकेसे हत्या द्वारा उद्भूत नहीं होती।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २१-११-१९२९

१. पत्र यहाँ नहीं दिया जा रहा है। पत्र-लेखकने पत्रमें अपने जिलेमें कुछ ब्राह्मणों द्वारा फिरसे पशुबलि प्रारम्भ करनेका उल्लेख किया था।

२. देखिए, "यह क्रूर प्रथा", २६-१२-१९२९।

२२४. सचित्र खादी तालिका

श्रीयुत विट्ठलदास जेराजाणीने अ० भा० च० संघ खादी भण्डार, ३९६ कालबादेवी रोड, बम्बईके सम्बन्धमें अंग्रेजीमें एक सचित्र तालिका प्रकाशित की है। उस तालिकामें खादीकी असंख्य किस्में और बहुत-से सिले-सिलाये कपड़े जैसे बनियान, आधी बाजूकी बण्डियाँ, अनेक प्रकारकी कमीजें, कोट, जाकेट, टोपियाँ, हाथ-कते ऊनी फ्राक, जम्फर, बच्चोंके जोड़े आदिका उल्लेख है। तालिकासे कोई भी यह साफ समझ सकता है कि खादीका कितना विकास हुआ है। मैं सब खादी प्रेमियोंको अपने लिये अथवा अपने दोस्तोंके लिए इस तालिकाकी एक प्रति अपने पास रखनेकी सिफारिश करूँगा

[अंग्रेजीसे]
यंग इंडिया, २१-११-१९२९

२२५. संयुक्त प्रान्तका दौरा – १०[1]

जैसे-जैसे संयुक्त प्रान्तके दौरेके खत्म होनेकी अवधि पास आ रही है, वैसे-वैसे कार्यक्रमव्यस्त अधिक और यदि कहा जाये तो दिलचस्प कम ही होता जा रहा है। पिछले सप्ताहमें हम रुहेलखण्डसे गुजरे, वहाँ कांग्रेसका कोई ज्यादा काम नहीं किया गया है, जब कि सम्भावनाएँ वहाँ बहुत अधिक हैं। बृन्दावनसे हम रास्तेमें कई जगहोंका दौरा करते हुए हाथरस[2] गये। हाथरसमें जितना मिला उससे कहीं ज्यादा आसानीसे मिल सकता था; क्योंकि वहाँ तो काफी चरखे चलते हैं और वह कपासकी काफी अच्छी मण्डी है। हाथरससे हम जल्दी-जल्दी एटा और वहाँसे कासगंज, बदायूँ[3] और बदायूँसे शाहजाँहपुर[4] गये। यद्यपि यह सोमवारका दिन (मौनवार) था फिर भी गांधीजी एक अमेरिकी मेथॉडिस्ट मिशन गर्ल्स स्कूलमें हो आये; उसमें हाथ कताई और कुछ हदतक बुनाई भी सफलतापूर्वक सिखाई जाती है। सभी लड़कियाँ तथाकथित दलित वर्गकी हैं। शाहजहाँपुरसे हम लोग पीलीभीत गये, जहाँ बहुत अमीर जमींदार लोग हैं; इस वजहसे हमें जो रकम मिली उससे कहीं ज्यादा मिल सकती थी। पीलीभीतसे हम लखीमपुर होकर गुजरे; वहाँका हाल थोड़ा बेहतर था। लखीमपुरसे हम सीतापुर[5] पहुँचे जहाँ असहयोग आन्दोलनके ख्याति प्राप्त लाला

१. देखिए "संयुक्त प्रान्तका दौरा", २४-१०-१९२९ की पाद-टिप्पणी।
२. ८ नवम्बरको।
३. ९ नवम्बरको।
४. १० नवम्बरको।
५. १२ नवम्बरको।

शम्भुनाथके उत्साहसे और पण्डित शिवरामके उत्साहपूर्ण त्यागसे कार्यक्रममें थोड़ी चैतन्यता और निखार आ गया। इस बातमें कोई सन्देह नहीं हो सकता कि जहाँ कहीं लोगोंके बीच कुछ ठोस कार्य किया गया है——एक या दो प्रमुख नेताओंने भी कुछ त्यागभाव दिखाया है——वहाँ उसके परिणाम साफ दिखलाई दिये हैं। हमने देखा कि सीतापुरमें अब भी एक राष्ट्रीय शाला चल रही है और उसमें काफी संख्यामें विद्यार्थी पढ़ते हैं। कोई भी व्यक्ति हर जगह 'बाइबिल'की इस उक्तिको चरितार्थ देख सकता था कि "फसल तो सचमुच बहुत अच्छी है लेकिन मेहनत करनेवाले कम हैं।" यदि कुछ मेहनत करनेवाले मिल जायें तो कोई कारण ही नहीं कि हम काफी बेहतर नतीजे न दिखा सकें। सीतापुरसे हम सिधौली गये। वहाँ गाधीजीके लिए पण्डित मोतीलालजीकी तरफसे यह संदेश पहलेसे ही पहुँचा हुआ था कि वे लखनऊ अपने इरादेके मुताबिक रेलसे जानेके बजाय, कारसे जायें; उन्हें वहाँसे होकर रायबरेली पहुँचना था। इसलिए वे अपने साथियोंके पहले ही कारसे रवाना हो गये। एक घण्टा पण्डितजीके साथ बिताया और वहाँसे सीधे रायबरेली[1] चले गये। रायबरेलीमें सारा प्रबन्ध इतना अच्छे और सही ढंगसे किया गया था कि उस पर दलके हर व्यक्तिका ध्यान गया। सार्वजनिक सभामें शुरूसे लेकर आखिर तक पूरा अनुशासन रहा। यद्यपि सभामें लोग बहुत बड़ी संख्यामें आये थे और वे सब किसान ही थे लेकिन जनसमुदायने गांधीजीके पास बढ़नेके लिए कोई धक्का-मुक्की नहीं की। मंच ठोस ईंटोंका बना था; उसपर मिट्टीका पलस्तर किया हुआ था और वह ऐसे पीले रंगसे पुता हुआ था जो इर्द-गिर्दके वातावरणसे पूरी तरह मेल खाता था। बिना किसी कठिनाईके मोटरकारके आ-जा सकनेके लिए काफी चौड़े-चौड़े रास्ते छोड़ दिये गये थे। सजावट भी थोड़ी कमखर्च और बड़ी प्रभावपूर्ण थी। आने और जानेके लिए अलग-अलग दो तोरण द्वार थे। वे सदाबहार पत्तोंके बने थे। गांधीजीको जिस बातसे सबसे ज्यादा खुशी हुई वह यह थी कि सारी सजावटपर ४ रु० से ज्यादा खर्च नहीं हुए थे; और इसका सीधा-सा कारण यह था कि ईंटें उधार ले ली गईं थीं, काम करनेवाले जिला परिषदसे निःशुल्क मिल गये थे और बाड़ बनानेका सामान एक व्यापारीने दे दिया था। इसलिए बहुत कम खर्च होना स्वाभाविक ही था। रायबरेलीसे रास्तेमें लालगंज और सलोन होते हुए हम कालाकाँकर[2] गये। यह तो हमें लखनऊमें ही मालूम हो गया था और कालाकाँकर पहुँच कर तो यह बात पक्की ही हो गई कि अवधके युवा ताल्लुकेदार धीरे-धीरे निर्भय होकर अपने ढंगसे राष्ट्रीय हितमें योगदान कर रहे थे। इनमेंसे कुछ युवकोंने खादीकी थैली और लालाजी स्मारकके लिए भी चन्दा दिया था। कालाकाँकरके राजा साहबकी बहुत इच्छा थी कि गांधीजी एक दो दिन उनके साथ उनके पुराने बड़े अच्छे ढंगसे बने परन्तु सादे महलमें गुजारें, जो ठीक गंगाके सुन्दर तट पर था। जब हम इस छोटे-से कस्बेमें घूमे तो हमने महसूस किया कि इस छोटेसे महलके चारों और कितना प्राकृतिक सौंदर्य है। गांधीजी और वस्तुतः

१. १३ नवम्बरको।

२. १४ नवम्बरको।

पूरा दल ही, २४ घण्टेके लिए ही सही, उत्सुक भीड़के शोर-शराबेसे दूर होकर बड़ा प्रसन्न था। लेकिन यहाँ कुछ अन्य बातें भी थी जिनसे गांधीजीकी खुशी और बढ़ गई। कालाकाँकरके रनिवासकी युवती महिलाएँ पर्दा नहीं करती हैं। राजा साहबकी तरह वे भी नियमित रूपसे खादी पहनती हैं। लेकिन अपने कपड़ोंकी अलमारीमेंसे सारे विदेशी कपड़े हटा देनेके लिए राजा साहबने आम सभाके साथ ही एक विशेष ढंगसे विदेशी वस्त्रोंकी होली जलानेकी बात सोच रखी थी। एक नई बहू थी जो केवल आठ दिन पहले ही आई थी। उसकी अलमारीमें काफी विदेशी कपड़ा था। उसने भी होलीमें जलानेके लिए अपना सारा विदेशी कपड़ा दे दिया। लेकिन सबसे ज्यादा और सबसे ज्यादा कीमती कपड़े तो समसपुरके राजा लाल साहबकी ओरसे आये थे। सभामें एक कोनेमें बनी वेदीपर जिसको चारों ओर अच्छी तरहसे बाड़ बनाकर सुरक्षित किया गया था, कपड़ोंके ऊँचे अम्बारमें आग लगानेसे पहले गांधीजीने प्रत्येक चीजको गौरसे देखा, और हम देख सकते थे कि उन्हें भारी कशीदाकारी किये हुए वस्त्र, खूब साज-सज्जा की हुई पेरिसकी महीन लेस बहुत कीमती साड़ियाँ और इसी तरहकी चीजें देखकर बड़ी खुशी हुई। जैसे ही उन्होंने उस अम्बारमें आग लगाई और लपटें आसमानमें उठी, भीड़ने जो बाड़के चारों तरफ उत्सुकतासे इकट्ठा हो गई थी और इस रस्मको देख रही थी, जोरकी हर्षध्वनि की। कपड़ोंके अम्बारमें आग लगानेके लिए गांधीजीके हाथमें जो मशाल दी गई थी, उसकी मूठ चाँदीकी थी। वह भी नीलाम कर दी गई और समसपुरके लाल साहबने उसे ५०० रु० में ले लिया। पिछले सप्ताहकी घटनाओंका जल्दीमें खींचा गया यह खाका मैं कालाकाँकरकी आम सभामें गांधीजीके भाषणके एक अंशका सारांश देकर समाप्त करूँगा।

गांधीजीने कहा "मुझे आप सबको और राजा साहबको भी आपके ही जैसे कपड़े पहने हुए आपके बीच स्वच्छंदतासे मिलते-जुलते देखकर बड़ी खुशी होती है। मुझे उनसे लखनऊमें मिलनेका सौभाग्य मिला था जबकि स्वागत-समितिकी तरफसे उन्होंने मुझे अपने लखनऊ निवासमें ठहराया था। चूँकि वे एक स्वयंसेवकके जैसे कपड़े पहने थे, मेरे दलके सदस्योंको उनके तथा अन्य स्वयंसेवकोंके बीच कोई अन्तर नहीं दिखलाई दिया और इसलिए मेरे दलके एक व्यक्तिने अनजानेमें बिना झिझकके उनको कोई छोटा-मोटा नौकरका काम करनेको दे दिया। उन्होंने ऐसी प्रसन्नतासे अपना वह काम इस तरह पूरा कर दिया, मानों वह उनके लिए बिलकुल स्वाभाविक हो। बादमें जब दलके एक सदस्यको पता चला कि जिन्हें नौकरका काम दिया गया था, वे कौन थे, तो उसने मुझे सारी बात बताई। मुझे व्यक्तिगत रूपसे तो खुशी ही हुई कि जमींदार और राजा लोग नौकरों सरीखे काम भी खुशीसे करते हुए देखे जा सकते हैं। मुझे यहाँ यह देखकर और भी ज्यादा खुशी होती है कि राजा साहब खुद अपनी रिआयाके बीच एक जीते-जागते बहादुर नेता हैं, और वे यहाँ भी उतने ही सादे, और स्वाभाविक ढंगसे रहते हैं जैसा कि मैंने उन्हें लखनऊमें रहते पाया था। मैं आशा करता हूँ कि अन्य युवा ताल्लुकेदार इस दृष्टान्तका अनुकरण करेंगे और यदि केवल अमीर लोग, चाहे वे किसी उपाधिसे विभूषित हों या न हों, इस तरहका आचरण

करेंगे, जैसा कि मैं समझता हूँ कि राजा साहब कर रहे हैं अर्थात् जनताके न्यासियोंके रूपमें रहेंगे और जमींदारीको उनके न्यासियों और संरक्षककी तरह सँभालेंगे तो वे शीघ्र ही सभी तरहसे सुखी हो जायेंगे। मैं जो स्वप्न साकार करना चाहता हूँ वह मालिकोंकी निजी सम्पत्तिको ध्वंस करनेका नहीं है, बल्कि उसके आनंदोपभोगको नियन्त्रित करनेका है; ताकि सारी कंगाली और उससे होनेवाला असन्तोष और वह बेहद भद्दी विषमता जो आज गरीबों और अमीरोंकी जिन्दगी और उनके वातावरणके बीच है, न रहने पाये। गरीबोंको ऐसा जरूर महसूस होने दिया जाये कि वे अपने जमींदारोंके साथ साझेदार हैं; उनके कोई ऐसे गुलाम नहीं हैं कि उन्हें मर्जीके मुताबिक चाहे जब चाहे जैसे कष्ट दिये जाते रहें। जनता और जमींदारोंको परस्पर एक-दूसरेके प्रति भय और अविश्वासकी भावना त्याग देनी चाहिए। यदि दोनों ही ऐसा करें तो आप [दोनों ही] सरकारका सामान्य भय भी त्याग देंगे। यदि आप केवल परस्पर मिलकर ईमानदारीसे चलें तो सरकार आपको या उनको कोई नुकसान नहीं पहुँचा सकती। आपने मुझे कीमती वस्त्र तथा विदेशी सूतके बने जमींदारोंके कपड़े आगकी लपटोंके सुपुर्द करते देखा। मैं इसे एक पवित्र रस्म मानता हूँ। शायद आज आप इस हवन — त्यागकी महत्ता न समझें। लेकिन मुझे सन्देह नहीं कि चाँदीकी मूँठवाली यह मशाल, यदि इसका भावी खरीददार इसे सँभाल कर रखेगा तो एक दिन उस राष्ट्रीय संग्रहालयमें, जरूर स्थान पायेगी जिसे भावी राष्ट्रीय सरकार इस तरहकी सभी चीजोंको संग्रहित करनेके लिए स्थापित करेगी, जो उन विविध स्थितियोंसे आगेकी पीढ़ियोंपर पड़नेवाले प्रभावोंकी याद दिलायेगी, स्वातन्त्र्य संघर्षका दौर जिनसे होकर गुजरेगा। मुझे इसमें जरा भी सन्देह नहीं है कि खादी और उससे सम्बन्धित तमाम प्रक्रियाओंके माध्यमसे भूखे रहनेवाले लाखों लोगोंके लिए विदेशी वस्त्रके विरुद्ध उठा हुआ यह आन्दोलन इतिहासमें यदि सबसे ज्यादा महत्त्वपूर्ण नहीं तो राष्ट्रीय कार्यक्रमकी महत्त्वपूर्ण बातोंमें से एक माना जायेगा। विदेशी सुन्दर वस्त्रोंके जलानेका एक अर्थ यह है कि उनके मालिकोंने आजसे अपने और आप लोगों के बीच एक सजीव सम्बन्ध स्थापित किया है और उसका दूसरा अर्थ यह है कि उन्होंने शोख वस्त्रों और आभूषणोंकी दुर्बल और पतित बनानेवाली उस रुचिको त्याग दिया है जो पुरुषोचित नहीं है और यह तय कर लिया है कि अबसे वे स्वेच्छापूर्वक ऐसी ही सादगीसे रहेंगे जैसी सादगीसे आप शायद मजबूरीमें रह रहे हैं।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २१-११-१९२९

२२६. कुछ प्रश्न

एक पाठक लिखते हैं:

सेवामें सविनय निवेदन है कि मैं कांग्रेसका एक तुच्छ सेवक तथा भक्त हूँ। आपके असहयोग आन्दोलनके सम्बन्धमें ९ मास कठिन कारावासका दण्ड भी भुगत चुका हूँ। आशा है, कृपया निम्नलिखित प्रश्नोंका उत्तर देकर आप मेरा समाधान कर देंगे।

उनका पहला प्रश्न यह है:

१. क्या आपको मालूम है कि . . . कांग्रेसमें प्रधान होते हुए और खद्दर पहनते हुए भी साइमन कमीशनसे सहयोग कर चुके हैं? और मेमोरेंडम भी भेज चुके हैं। क्या ऐसे सज्जनोंके कांग्रेसमें रहते हुए, आपको अब भी आशा है कि कांग्रेस द्वारा देशका उद्धार हो सकेगा?

देशका उद्धार किसी एक मनुष्यपर निर्भर नहीं है। कांग्रेसमें भले-बुरे सबको आनेका अधिकार है। कांग्रेसके सब आदेशोंको पालन करनेवालोंकी संख्या अधिक रहेगी तो अवश्य देशका उद्धार होगा। इसलिए दूसरे क्या करते हैं, इस बातका हम खयाल न करें; मैं क्या करता हूँ, यही प्रश्न सब कोई अपने सामने रखे।

दूसरा प्रश्न यों है:

२. क्या विद्यार्थियोंसे पाठशालाओं तथा कालेजोंका बहिष्कार करवाकर आपने देशको लाभ पहुँचाया है?

मेरा निश्चय है कि पाठशाला और कालेजका त्याग करनेवालोंने अपना और अपने देशका भला ही किया है। इसके कारण कालेज इत्यादिकी प्रतिष्ठा कम हुई है। और जिन थोड़े लड़कोंने बहिष्कार किया था उनमें से भी मुल्कको अच्छे स्वयंसेवक मिले हैं। यह बहिष्कारका ही प्रताप है कि आज, थोड़ी ही क्यों न हो, मगर कुछ राष्ट्रीय शालाएँ देशमें मौजूद हैं, जो स्वराज्य यज्ञमें काफी हाथ बँटा रही हैं। अकेले गुजरात विद्यापीठने इस यज्ञमें कितना हाथ बँटाया है, सो तो मैं 'हिन्दी नवजीवन'में पहले बतला चुका हूँ। यदि हम दूसरे राष्ट्रीय विद्यापीठोंके कार्यकी भी इसी तरह गणना करें तो, सरकारी कालेज आदिके बहिष्कारका महत्त्व हम कुछ हद तक समझ सकेंगे। मुझे आजतक ऐसे बहुत थोड़े लोग मिले हैं, जो इस बहिष्कारके सिद्धान्तको ही दूषित बताते हों। अधिकांश लोगोंकी यह धारणा है कि देश न तो सन १९२०-२१में इस तरहके त्यागके लिए तैयार था, न आज ही है। इसका मतलब तो यह होता है कि देश न तो उन दिनों स्वराज्यके लिए तैयार था न आज तैयार है। यदि यह बात सही है तो हम बहिष्कारकी निन्दा छोड़कर उसकी तैयारीमें लग जायें।

अपने तीसरे प्रश्नमें वह पूछते हैं :

३. प्रत्येक आदमीके लिए चरखा कातना कहाँतक लाभदायक हो सकता है और इससे अपना जीवन बितानेके लिए कितनी आय हो सकती है? जो समय इसमें लगाया जाता है, क्या उतने समयमें इससे अच्छा काम करके आदमी अपनी आर्थिक दशा नहीं सुधार सकता?

यह प्रश्न कई बार पूछा गया है और पुनः-पुनः इसका उत्तर दिया गया है। और वह यह है कि जो लोग आर्थिक लाभके लिए चरखा चलाते हैं, उन्हें यदि कोई अधिक लाभदायी धन्धा मिले तो बिलाशक वे उसे कर सकते हैं। चरखेके प्रचारकोंका मूल आशय तो यह रहा है कि करोड़ोंके लिए चरखेको छोड़कर और कोई धन्धा नहीं है। जो लोग यज्ञ समझकर चरखा चलाते हैं, उनके लिए हानि लाभका कोई प्रश्न ही नहीं उठता। याज्ञिक अपने लाभका कभी खयाल नहीं करता। वह तो लोकहितमें ही अपना हित समझता है।

चौथा प्रश्न यह है :

४. राजनैतिक दृष्टिसे चरखा कहाँतक सहायता दे सकता है? प्राचीन कालमें विधवाएँ और मामूली घरानेकी औरतें चरखा काता करती थीं। आज आप आदमियोंको चरखा कातनेके लिए क्यों बाध्य करते हैं?

मेरे मतमें राजनैतिक दृष्टिसे चरखेकी सहायता महत्वपूर्ण है, क्योंकि इस दृष्टिसे विदेशी वस्त्रका बहिष्कार अत्यन्त आवश्यक है और विदेशी वस्त्रका बहिष्कार खादीसे ही सफल हो सकता है। स्त्री और पुरुष, विधवा और सधवाके बीच ऐसे कामोंमें कोई भेद नहीं हो सकता। चरखा-यज्ञ सार्वजनिक है।

पाँचवा प्रश्न इस प्रकार है :

५. क्या आपने तथा अन्य नेताओंने जेलसे बाहर आये हुए कार्यकर्त्ताओंकी भी कभी कोई सहायता की है? और अगर नहीं तो, उन्हें अपना जीवन व्यतीत करनेकी कैसे सलाह दी है? उनको अब क्या करना चाहिए? क्या एक स्वातन्त्र सैनिकके लिए यही उचित है कि वह अपने जेल जाते हुए सिपाहीसे कहे कि जेल जानेवालेको कांग्रेसके नेताओंसे कोई भी आशा न करनी चाहिए और उनको तबाही और बेबसीकी दशामें छोड़ दिया जानेके लिए तैयार रहना चाहिए जैसे कि आजकलके आये हुए कांग्रेसके स्वयंसेवक देखे जाते हैं?

जेलसे छूटकर आये हुए ऐसे एक भी कार्यकर्त्ताको मैं नहीं जानता, जिसे सहायता पानेके योग्य होते हुए भी सहायता न मिली हो। ऐसे कार्यकर्त्ताओंको मैं जानता हूँ, जिन्हें बहुत मदद मिली है। कुछ ऐसे भी कार्यकर्त्ता मेरी नजरमें हैं, जो मनचाही मदद माँगते हैं और न मिलनेपर रूठते हैं।

छठा प्रश्न यों है :

६. कांग्रेसके नेता लोग जेलमें खास रिआयतके मुस्तहक होते हैं, जबकि स्वयंसेवक लोग मामूली कैदियोंकी तरह रखे जाते हैं। इसका उन्हें — नेताओंको

——कोई अधिकार है? और अगर वे लोग ऐसा करते हैं तो क्या जनताको उनपर श्रद्धा रखनी चाहिए?

मेरे मनसे तो सत्याग्रही कैदियोंको अपने लिये किसी भी तरहकी विशेष रिआयत नहीं माँगनी चाहिए—वैसी रिआयतकी आशातक न रखनी चाहिए।

सातवाँ प्रश्न निम्नलिखित है :

७. तिलक-स्वराज्य-कोषके लिए एक करोड़ रुपया आपने जमा किया। क्या आप कृपया बतला सकते हैं कि देश और जातिकी दरिद्रताके नामपर एकत्रित किया हुआ वह रुपया किस काममें आ रहा है, और सर्वसाधारण जनताको उससे क्या लाभ है?

इन पैसोंका हिसाब छप चुका है। कांग्रेसके कार्यालयसे आज भी उसकी प्रतियाँ मिल सकती हैं। इस द्रव्यसे नौ वर्षोतक कांग्रेस अपना काम जोरोंसे चला सकी है।

आठवाँ प्रश्न यों है :

८. क्या सन् १९२१ के बाद वाइसराय साहब बहादुरकी गोलमेज परिषदमें बैठना पाप था? अगर हाँ, तो क्या आप बता सकते हैं कि उसी गोलमेज परिषदमें अब सम्मिलित होना पुण्य कैसे है? क्या आपका स्वराज्य भारतवर्षमें इसी गोलमेज परिषद द्वारा उतरेगा? क्या स्वराज्यसे आपका मतलब इसीसे था? अगर हाँ, तो आपने इस बातकी घोषणा १९२१ में ही क्यों नहीं कर दी? और अगर नहीं तो सरकार बहादुरके साथ असहयोग करके, एक प्रकारसे राजा और प्रजामें घोर युद्ध कराके, सैकड़ों घर तबाह करनेका क्या अभिप्राय था और इस प्रकारसे डोमिनियन स्टेट्स (औपनिवेशिक स्वराज्य) मिलनेमें कांग्रेसके नेताओंका क्या एहसान है?

यदि वाइसराय साहब बहादुर कांग्रेसकी ओरसे दुबारा पेश की गई शर्तें कबूल कर लेते तो उसमें (गोलमेज परिषद्में) शामिल होनेमें कोई दोष न था। परन्तु कांग्रेसकी शर्तें स्वीकार नहीं की गई। आज भी शर्तोंकी स्वीकृतिके अभावमें मैं गोल-मेज परिषदमें सम्मिलित होना दूषित समझता हूँ।

परिषदसे या किसी बाहरी साधनसे स्वराज्य नहीं मिल सकता; हाँ, उचित शर्तोंपर बुलाई गई परिषद लोकशक्तिका एक माप जरूर बन सकती है। इसी कारण मैं कह चुका हूँ कि जनता परिषदका विचारतक न करे। हमारा काम तो बस लोकशक्तिको संगठित करना है, दूसरे शब्दोंमें, इसी कारण, हमें विदेशी वस्त्र–बहिष्कार वगैरा रचनात्मक कामोंमें सफलता पानी है।

उनका अन्तिम प्रश्न है :

९. आपका यह भी दावा है कि कांग्रेस ही एक ऐसी संस्था है, जो देशके दुःखोंको सत्य रूपमें प्रकट कर सकती है और उसकी रोकथाम भी कर सकती है। क्या आपको अपने कांग्रेसके नेताओंपर——उनके सब काम देखकर

और सुनकर — — अब भी विश्वास है? अगर हाँ, तो क्या आप कह सकते हैं कि सर्वसाधारणको भी उनपर विश्वास है? अगर नहीं, तो क्या आप बतला सकते हैं कि इस संस्थाके सुधारके लिए आपने कौन-सा मार्ग सोचा है?

कांग्रेसमें बहुतेरे दोष हैं। आजकल कांग्रेसमें कई स्वार्थी लोग घुस गये हैं, तथापि और संस्थाओंकी अपेक्षा कांग्रेसमें ज्यादा गुण हैं, उसमें सुधारकी काफी गुंजाइश अवश्य है। अगर सुधार न होगा तो कांग्रेस भी नाशसे नहीं बच सकेगी।

हिन्दी नवजीवन, २१-११-१९२९

२२७. पत्र: वसुमती पण्डितको

बाँदा
२१ नवम्बर, १९२९

चि० वसुमती,

तुम्हारे वर्धा पहुँचनेकी खबर मुझे जमनालालजीने दी है। वहाँ रहते हुए अपना स्वास्थ्य बिलकुल सुधार लेना और इसके लिए जो चीजें आवश्यक जान पड़ें उन्हें माँगनेमें तनिक भी संकोच मत करना। वहाँ रहते हुए अपनी योजनाके अनुसार जो 'गीता' आदि पूरी करनी थी सो कर लेना।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (एस० एन० ९२७१)की फोटो-नकलसे।

२२८. पत्र: मोहनलाल के० मेहताको

कुलपहाड़
२१ नवम्बर, १९२९

भाईश्री मोहनलाल,

आपका पत्र मिला। ली हुई प्रतिज्ञा तो यदि तीनके बदले तीन हजार मित्र भी आकर कहें और धमकियाँ दें तब भी नहीं तोड़ी जा सकती।

मोहनदासके वन्देमातरम्

गुजराती (जी० एन० २३५)की फोटो-नकलसे।

२२९. पत्र : रमणीकलाल मोदीको

२२ नवम्बर, १९२९

चि० रमणीकलाल,

यह पत्र मैं झांसी जाते हुए रेलगाड़ीमें लिख रहा हूँ। अबतक तुम्हारी भेजी हुई डाक नहीं मिली। ऐसा लगता है कि पत्र मेरे पीछे-पीछे भटक रहे होंगे या फिर तुमने कोई पत्र लिखा ही नहीं होगा। लगता है कि पंजाबके लोग छगनलालको रोके हुए हैं। मैं समझता हूँ कि उसे रुके रहना चाहिए। इससे उसका अनुभव बढ़ेगा और कुछ हद तक वह आश्रमकी चिन्तासे मुक्त भी रहेगा।

तुम्हें अपने ऊपर अधिक बोझ नहीं लाद लेना चाहिए।

जब मैं सोमवारको वहाँ पहुँचूँगा तो मेरा विचार उसी रात सन्तोकसे मिलकर मन्दिर जानेका है। अतः तुम तदनुसार व्यवस्था कर लेना। अर्थात् सन्तोकको भी इसका पता चल जाये। उसे तबतक जागते रहनेकी तनिक भी जरूरत नहीं है। मोटरके साथ जो हों उन्हें पता होना चाहिए कि वह कहाँ है।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (जी० एन० ४१५४)की फोटो-नकलसे।

२३०. पत्र : मीराबहनको

उरई

२२ नवम्बर, १९२९

चि० मीरा,

चिरगाँवमें किसीके हाथ भेजा तुम्हारा पुर्जा मुझे मिला। हम अभी-अभी वहाँसे यहाँ मोटरसे आये हैं। यह पूरे ५१ मीलकी यात्रा थी। बा पानी गरम कर रही है और इस बीच मैं तुम्हें यह पत्र लिख रहा हूँ। आजका कार्यक्रम कुछ बहुत व्यस्त है; और उसमें से अभी केवल आधा ही सम्पन्न हुआ है। कलके आखिरी दिनका कार्यक्रम बहुत व्यस्त नहीं है।

तुम्हें वहाँ हँसमुख साथी तो मिलने ही थे। इस बार अपने ग्राम्यजीवन सम्बन्धी अध्ययनको गहन बनाओ। तुम्हें काफी विश्राम भी करना चाहिए। पिछली बारकी तरह इस बार बीमार कतई न पड़ना। प्रतिदिन कुछ देर एकान्तवास अवश्य करना।

मुझे खेद है कि मैं तुम्हारा उन पदोंका उच्चारण नहीं सुधार पाया। वह असम्भव ही सिद्ध हुआ। मैंने अक्सर उसे सुधारनेका प्रयत्न तो किया, पर देखा कि

जो काम मेरे हाथमें है, उसे छोड़कर मैं इसमें नहीं लग सकता। यदि वर्धामें मुझे कुछ अवकाश मिला तो वहाँ उच्चारण सुधरवानेका प्रयत्न अवश्य करूँगा। लेकिन वहाँ तुम्हारी मददके लिए बालकृष्ण तो हैं ही। हम देखेंगे।

सस्नेह,

बापू

[पुनश्च :]

यह पत्र उरईमें नहीं छोड़ा जा सका। अमरैया पहुँचनेपर तुम्हारा तार मिला। अब मैं नई गतिविधियोंके सम्बन्धमें और अधिक साबरमतीमें सुननेकी आशा करता हूँ।

अंग्रेजी (जी० एन० ९४३६)से; और सी० डब्ल्यू० ५३८० से भी।
सौजन्य : मीराबहन।

२३१. तार : रुचीराम साहनीको

[२३ नवम्बर, १९२९ या उसके पश्चात्][1]

आपके गौरव प्रदान करनेके लिए कृतज्ञ हूँ। भार उठाने योग्य समय नहीं होगा। इसके अलावा मेरा रास्ता अकसर रूढ़ ढंगके सुधारकोंसे अलग है। कृपया क्षमा करें।

गांधी

अंग्रेजी (एस० एन० १५५७४)की फोटो-नकलसे।

२३२. बालक बनो

चार सालके बालकने पूछा : "पिताजी, स्त्री किसे कहते हैं?"

पिता (सिर खुजाते हुए) बोले : "बहन, माँ वगैरा स्त्री कहलाती हैं।"

बालक बोला : "हाँ, जो खाना पकाती है, बरतन मलती है, कपड़े धोती है, उसे स्त्री कहते हैं न?"

ये कोई मनगढ़न्त प्रश्नोत्तर नहीं है; बल्कि वास्तविक प्रश्नोत्तरोंमें से चुने हुए हैं। बालकने प्रतिदिन स्त्रियोंको खासकर उपर्युक्त काम करते देखा था, इसलिए पिता की व्याख्या उसके गले न उतर सकी।

१. रुचीराम साहनीके २३-११-१९२९ को मिले तारमें लिखा था : इंडियन नेशनल सोशल कान्फ्रेंसकी स्वागत समितिने सर्व-सम्मतिसे आपको अध्यक्ष चुना है, कृपया स्वीकार करें।

इस तरहके प्रश्नोत्तरोंका संग्रह एक मित्रने मेरे मनोविनोदके लिए भेजा था; उसे पढ़कर मनमें विचार पैदा हुए कि अगर हम भी बालकके समान निर्दोष बन सकें और उसके समान निर्दोष अवलोकन द्वारा अपने लिए सिद्धान्त स्थिर कर सकें तो हम बहुतसे प्रपंचोंसे, बहुतसे बखेड़ों और समयके दुरुपयोगसे बच जायें और साथ ही हमारी बुद्धि भी दिनोंदिन तेजस्वी बनती जाये। अतिशय तर्क-वितर्कसे बुद्धि तेजस्वी नहीं बनती, तीव्र भले होती हो। तर्क-वितर्ककी अतिशयतासे बुद्धिको भ्रष्ट होते किसने न देखा होगा?

इस बालकको सत्यका पुजारी वास्तवमें सभी निर्दोष बालकोंको अनजाने ही सत्यके पुजारी कहना चाहिए; इसी कारण वे दिनों-दिन तरक्की करते जाते हैं। इसलिए हमें भी बालक बनना चाहिए अर्थात् हर तरहका डर भुला कर सत्यका पुजारी बनना चाहिए। जो बात हमारे दिलको सच्ची लगे उसे अवश्य करना चाहिए। भूल तो होगी ही और उसका दण्ड हमें सह लेना चाहिए और फिर वैसी भूल नहीं करनी चाहिए। दुबारा भूल हो तो भले हो, हर बार दण्ड सहना और भूलको सुधारते जाना हमारा कर्त्तव्य है।

जो भूल करता है, वह दोष नहीं करता। दोषमें दोष करनेके ज्ञानका होना निहित रहता है। जान-बूझकर बुरा काम करना दोष है; पाप है। अनजाने अगर कोई बुराई हो जाये तो वह पाप नहीं मानी जाती। सजा भूलों और पापों दोनोंके लिए क्यों न मिलें; एकके लिए मिलनेवाली सजा उचित है जब कि दूसरेके लिए मिलनेवाला दण्ड जहर-सा कड़वा। समाज और ईश्वर भी पहलेको दण्ड देते हुए काँपते हैं और दूसरेको दण्ड देते समय लाल-पीले होते हैं।

उम्रमें अधिक होनेपर भी बालकके समान निर्दोष, सरल और स्वेच्छापूर्वक सत्यका पुजारी बनना और बने रहना आसान नहीं है; फिर भी यह हमारा कर्त्तव्य तो है ही।

हिन्दू धर्मके माने हुए पूर्णावतार कृष्ण बालक हैं। ईसामसीहने कहा था : "बालकोंके मुँहसे बुद्धिमानी टपकती है।" मुमुक्षुसे वे कहते थे : "बालकके समान बनो।"

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २४-११-१९२९

२३३. टिप्पणी

गुजरातका धर्म

वाइसरायके घोषणा-पत्रने इतनी धूम मचा रखी है कि अखबारोंके कालमके-कालम उसीकी चर्चासे भरे रहते हैं। उसी प्रकार लोग भी तरह-तरहकी कल्पनाएँ करते नजर आते हैं। मैं चाहता हूँ कि गुजरात इस तरहकी किसी कल्पनाके फेरमें न पड़े। परिचय हो या न हो; वह गोलमेज परिषद हो या चौरसमेज परिषद, कोई इसकी फिक्र न करके केवल अपना काम करता रहे। शब्दोंके जालमें कोई न फंसे। गुलाबके फूलको अगर कोई जहरीले नामसे पुकारे तो सिर्फ इसीलिए न तो वह अपने नामको छोड़ देगा और न अपनी सुगन्धको ही। इसी तरह किसी जहरीले फूलको गुलाब कहनेसे उसके रंग या गन्धमें कोई हेरफेर नहीं हो सकता। इसी प्रकार गुलामीको स्वतन्त्रता कहनेसे गुलामी नष्ट नहीं होगी। और सच्ची स्वतन्त्रता डोमिनियन स्टेट्स या औपनिवेशिक स्वराज्य कहनेसे परतन्त्रता नहीं हो जायेगी। ऐसा माना जाता है कि गुजरात व्यवहार-कुशल है। व्यवहार-कुशल आदमीका तो उद्देश्य-सिद्धिसे मतलब होता है, छूँछे आश्वासनसे उसको कोई सरोकार नहीं होता। स्वराज्य-तन्त्रको कोई भी नाम क्यों न दिया जाये किन्तु उसकी अपनी कुछ शर्तें तो होनी ही चाहिए। खास शर्त यह है कि भारत जब चाहे तब ब्रिटिश सल्तनतसे अपना नाता तोड़ लेनेको स्वतन्त्र रहे। दूसरी शर्त इसीमें आ जाती है, और वह यह कि आज हिन्दुस्तानमें जो अंग्रेज स्त्री-पुरुष रहते हैं उनकी सुरक्षाका आधार, तलवार, तोप या डरावने किले न हों, बल्कि हमारी भलमनसी और मित्रता ही उनकी रक्षाके गढ़ रहें। तीसरी शर्त यह होनी चाहिए कि अंग्रेज अधिकारी और भारतीय अफसर, जो जन्मसे हिन्दुस्तानी होते हुए भी अपने गुणोंके कारण हूबहू अंग्रेज अफसर होते हैं, अपनेको मालिक नहीं बल्कि हिन्दुस्तानकी जनताका सच्चा सेवक समझने लगें। इन तीनों शर्तोंको सही अर्थमें पूरा करनेवाली योजना ही मेरी दृष्टिसे सच्ची स्वतन्त्रता हो सकती है। उक्त स्थिति उत्पन्न हो सके ऐसा वातावरण आज तो मैं नहीं देख पा रहा हूँ। इसलिए इस तरहका स्वराज्य मिलनेकी आशा रखनेका कोई कारण नहीं है, लेकिन अगर वह मिल सकता हो तो उसे दूर ठेलनेकी भी जरूरत नहीं है। यदि प्रतिष्ठित अंग्रेजोंकी मनोवृत्ति बदल जाये और जबतक हम पूरी तरह समर्थ नहीं हो जाते तब तक वे हमारे साथ न्याय करनेको तैयार हों तो सच्चे स्वराज्यकी स्थापना हो सकती है। हम मेहरबानी तो किसी भी हालतमें नहीं चाहते। मेहरबानीसे मिली हुई चीजको आजतक कभी स्वतन्त्रता नहीं माना गया है। लेकिन यह जरूर है कि अंग्रेजोंकी न्यायबुद्धिके जागृत होनेसे हमारा बहुत-सारा काम सीधा और सरल हो सकता है। शान्तिमय युद्धके मूलमें दो बातें सदासे रही हैं; एक विरोधीके हृदय परिवर्तनका प्रयत्न और दूसरी, उसके हृदय-परिवर्तनकी आशा। मेरा तो यह दृढ़

विश्वास है ही कि अगर हिन्दुस्तान अन्ततक शान्तिके मार्गपर डटा रहेगा तो एक दिन कठोरसे-कठोर अंग्रेज अफसरका भी दिल पसीजेगा और जरूर पसीजेगा। यही वजह है कि जब कभी सम्मानपूर्वक समझौता कर लेनेकी बात चलती है तो मैं उसके लिए हमेशा ही तैयार रहता हूँ। अपनी इस नीतिके कारण न तो मैंने और न मेरे नेताओंने ही कभी हानि उठाई है। इसलिए आज तो मै गुजरातको विशेषकर यही सलाह दूँगा कि आजकल जो-कुछ कहा जा रहा है उनसे वह अपने चित्तको डाँवाडोल न होने दे और कांग्रेसने जो कार्यक्रम बनाया है उसे सफल बनानेमें ही अपना पूरा समय लगाये।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २४-११-१९२९

२३४. पत्र : प्रभावतीको

इटावा

२४ नवम्बर, १९२९

चि० प्रभावती,

तेरे चले जानेपर मुझे दुःख तो हुआ किन्तु वही उचित कर्त्तव्य था इसलिए मैंने अपने दुःखको दबा दिया। तूने अपना मार्ग चुन लिया है अतः तुझे उस मार्ग पर चलनेकी शक्ति भगवान अवश्य देगा। जयप्रकाशपर भी मुझे विश्वास है। जयप्रकाशसे कहना कि वह मुझे पत्र लिखे और तेरे साथ ही वर्धा आये। यदि किसी कारणवश वह वर्धा न आ सके तो तेरे आनेका रास्ता साफ कर दे।

अपने स्वास्थ्यका ध्यान रखना। 'गीता'का पाठ समझ-बूझकर करना। प्रतिदिनके अध्यायका पाठ . . .।[1]

गुजराती (जी० एन० ३३५२)की फोटो-नकलसे।

२३५. न्यासका घोषणा-पत्र[2]

२६ नवम्बर, १९२९

१. हम, मोहनदास करमचन्द गांधी, आयु लगभग ६० वर्ष, हिन्दू, पेशा बुनकर तथा खेती, निवासी सत्याग्रह आश्रम, वाडज, ताल्लुका उत्तर दशक्रोई, जिला अहमदाबाद और मोहनलाल मगनलाल भट्ट, आयु लगभग ३१ वर्ष, निवासी भोईवाडानी पोल, कालुपुर, अहमदाबाद इस वसीयतके द्वारा यह घोषित करते हैं कि :

१. यह पत्र अधूरा है।

२. न्यासका यह घोषणा-पत्र अहमदाबादके उप-रजिस्ट्रारके कार्यालयमें २७-११-१९२९ को दाखिल किया गया था और खाता संख्या १ में क्रम-संख्या ४९०४ पर पंजीकृत किया गया था। इसका मूल गुजराती पाठ १-१२-१९२९ के **नवजीवनके** क्रोड़पत्रमें प्रकाशित हुआ था। देखिए "पत्र : मोहनलाल भट्टको", २२-१०-१९२९ भी।

सन १९१९ में जनसेवाके उद्देश्यसे हम, मोहनदास करमचन्द गांधी तथा हमारे कुछ साथियोंने मिलकर 'नवजीवन मुद्रणालय' नामसे एक छापाखाना अहमदाबाद शहरमें शुरु किया और उसकी सहायतासे 'नवजीवन' तथा 'यंग इंडिया' नामक दो साप्ताहिकोंका सार्वजनिक सेवा करनेवाली संस्थाके रूपमें, मुद्रण, प्रचार और संचालन शुरू किया। ये पत्र हमने थोड़े ही समय पहले तत्कालीन मालिकों और संचालकोंसे उनके कुल मालिकाना हकोंके साथ खरीद लिये थे। बादमें इसी संस्थाकी ओरसे 'हिन्दी नवजीवन' नामक साप्ताहिक, नवजीवन प्रकाशन मन्दिर नामसे पुस्तक प्रकाशन का एक विभाग आदि अन्य प्रवृत्तियाँ आरम्भ की गई। उपर्युक्त साप्ताहिक, मुद्रणालय तथा पुस्तक प्रकाशन विभाग नवजीवन संस्थाके संयुक्त नामसे लोक शिक्षा देनेवाली एक सार्वजनिक संस्थाके रूपमें चल रहा है। जब उपर्युक्त नवजीवन संस्था पहले नवजीवन मुद्रणालयके नामसे शुरू की गई थी तो उसकी मिल्कियतकी कीमत लगभग दस हजार, अंके १०,००० रुपये थी। उक्त छापाखाना तथा साप्ताहिक पत्रों द्वारा अर्जित अतिरिक्त राशि समेत संस्थाकी मिल्कियत जिसपर कोई देनदारी नहीं है——की कीमत आज लगभग एक लाख रुपये है।

२. इस वसीयतके अनुच्छेद ३ तथा ४ में उल्लिखित संस्थाके लक्ष्य और उद्देश्यों का अनुसरण करते हुए उक्त नवजीवन संस्थाका प्रबन्ध तथा उसकी मिल्कियतका उपयोग संस्थाकी ओरसे स्वामी आनन्द करते थे और पिछले दो वर्षसे हममें से मोहनलाल मगनलाल भट्ट कर रहे हैं। उक्त उद्देश्योंको घोषित करते हुए हम इस वसीयतके द्वारा घोषित करते हैं कि उक्त मुद्रणालय, साप्ताहिक, प्रकाशन मन्दिर, उनके प्रकाशनका अधिकार और गुडविल आदि पूरी सम्पति उक्त नवजीवन संस्थाकी है; और उसका प्रबन्ध उक्त संस्थाकी ओरसे पहले स्वामी आनन्दके नामसे चलता था और फिलहाल हममें से मोहनलाल मगनलाल भट्टके नामसे उक्त संस्थाके न्यासीके रूपमें चलता है, उसमें हमारा मोहनदास करमचन्द गांधी तथा मोहनलाल मगनलाल भट्ट या हम दोनोंके अभिभावकों तथा वारिसों आदिका किसी प्रकारका कोई अधिकार या हिस्सा न तो कभी था और न है; और हमने अपने लिए लाभांशके रूपमें या अन्य प्रकारसे अपने निमित्त कभी कोई रकम उसमेंसे नहीं निकाली।

३. उक्त नवजीवन संस्थाके उद्देश्य जिनका उल्लेख उपर्युक्त अनुच्छेद २ में किया गया है, निम्नलिखित हैं:

उद्देश्य: गुजराती भाषाके माध्यमसे गुजरातके जीवनमें घुलमिल जाना; और इस प्रकार हिन्दकी सच्ची सेवा करनेके इच्छुक सुसंस्कृत और गुजराती भाषा परायण कार्यकर्त्ताओं द्वारा लोकशिक्षाका कार्य करते हुए हिन्दके लिए स्वराज्य प्राप्त करनेके शान्तिपूर्ण उपायोंका प्रचार करना।

४. इस उद्देश्यकी पूर्तिके लिए एक 'नवजीवन' पत्र चलाना; जिसके द्वारा शान्तिपूर्ण स्वराज्य प्राप्त करनेके लिए प्रचार-कार्य करना; तथा विशेष रूपसे

(क) चरखे तथा खादीका प्रचार करना;

(ख) अस्पृश्यता-निवारणका प्रचार करना;

(ग) हिन्दू-मुस्लिम और हिन्दमें रहनेवाली विभिन्न जातियोंके बीच एकताका प्रचार करना;

(घ) चर्मालय, दुग्धालय आदिके प्रचार द्वारा गोरक्षाके रचनात्मक उपाय जनता के सामने रखना;

(ङ) स्त्री-जातिकी उन्नतिके उपायोंका प्रचार करना जैसे कि

१. बाल-विवाह निषेध, (२) मर्यादित विधवा-विवाहका प्रचार, (३) स्त्री-शिक्षा;

(च) देशभरमें जनताके बीच अंग्रेजी भाषाको जो प्रतिष्ठा प्राप्त है उसे मिटाकर उसके स्थानपर राष्ट्रभाषा हिन्दी या हिन्दुस्तानीकी स्थापनाका प्रचार करना;

(छ) जिससे जनताकी धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक उन्नति हो ऐसे अन्य सभी उपायोंका अखबार तथा पुस्तकें प्रकाशित करके प्रचार करना;

(ज) संस्था द्वारा प्रकाशित किये जा रहे वर्तमान पत्रों, पुस्तिकाओं, पुस्तकों आदिके लिए विज्ञापन स्वीकार न करना तथा संस्थाके मुद्रणालयमें छपाईका ऐसा काम न लेना जो उसके उद्देश्योंके विरुद्ध हो;

(झ) संस्थाकी प्रवृत्तियोंका विवरण तथा उसका हिसाब हर वर्ष साल पूरा हो जानेके बाद तीन मासके भीतर प्रकाशित करना;

(ज) संस्थाकी सभी प्रवृत्तियोंको स्वावलम्बनके आधार पर ही चलानेका आग्रह करना;

५. हम यह घोषित करते हैं कि पूर्वोक्त उद्देश्योंके अनुसार उक्त नवजीवन संस्थाका सारा कारोबार चलानेके लिए निम्नलिखित व्यक्तियोंको न्यासी नियुक्त किया जाता है :

न्यासियोंके नाम

श्री वल्लभभाई झवेरभाई पटेल

श्री जमनालालजी बजाज

श्री दत्तात्रेय बालकृष्ण कालेलकर

श्री महादेव हरिभाई देसाई

श्री मोहनलाल मगनलाल भट्ट

६. हम घोषित करते हैं कि उक्त नवजीवन संस्थाकी पूरी सम्पत्तिके बारेमें उक्त न्यासियोंको निम्नलिखित अधिकार हैं :

(१) न्यासके उद्देश्योंको पूरा करनेके लिए समय-समयपर आवश्यक जान पड़नेवाले सभी कार्य करना तथा तदनुसार आवश्यक कदम उठाना और इस सम्बन्धमें जैसा उचित जान पड़े उस प्रकार न्यासकी सम्पत्तिका प्रबन्ध और उपयोग करना।

(२) उक्त न्यासके उद्देश्योंको पूरा करनेके लिए न्यासकी सम्पत्तिको बेचना या गिरवी रखना।

(३) न्यासियोंमें से यदि कोई त्यागपत्र दे दे या उसकी मृत्यु हो जाये तो ऐसी स्थितिमें रिक्त स्थान पर किसी अन्य व्यक्तिको न्यासी नियुक्त करना।

(४) कमसे-कम तीन न्यासियोंसे न्यासका काम चलाना।

(५) यदि न्यासियोंकी संख्या बढ़ानेकी आवश्यकता जान पड़े तो बहुमतसे दो न्यासी बढ़ाना।

७. फिलहाल संस्थाकी ओरसे चलाया जा रहा साप्ताहिक 'हिन्दी नवजीवन' इस वसीयतके अनुच्छेद ४की उपधारा (च) में उल्लिखित उद्देश्यकी पूर्तिके लिए जबतक न्यासियोंको उचित जान पड़े तबतक चलाया जाये। इसके अतिरिक्त न्यासियोंको संस्थाके उद्देश्योंकी पूर्तिके लिए प्रचारकी अपरिहार्य आवश्यकता जान पड़े तो उन्हें एक नियत समयके लिए अन्य भाषामें पत्र निकालने, पुस्तकें और पुस्तिकाएँ आदि प्रकाशित करनेका अधिकार है किन्तु ऐसी प्रवृत्तिको वे सदा गौण तथा पूरक प्रवृत्ति मानेंगे।

८. न्यासियोंको संस्थाके उद्देश्योंमें इस प्रकार संशोधन-परिवर्धन करनेका अधिकार है ताकि सत्य और अहिंसाके सिद्धान्तपर आँच न आये।

९. संस्थाके उद्देश्योंको किसी भी प्रकारकी क्षति पहुँचाये बिना संस्थाके कामकाजका प्रबन्ध करना; और यदि उचित जान पड़े तो विशुद्ध सेवाभावसे कार्य करनेवाले आजीवन सदस्योंका एक मण्डल बनाकर उसे संस्थाकी आन्तरिक व्यवस्था या संचालनका पूरा भार सौंपना; उक्त मण्डल तथा अन्य प्रकारकी व्यवस्थाके लिए आवश्यक नियम-उपनियमादि बनाने तथा उन पर अमल करनेवालेका न्यासियोंको अधिकार है।

१०. इस वसीयतके अनुच्छेद २में उल्लिखित इस न्यासकी सम्पत्ति फिलहाल अहमदाबादके सारंगपुर स्थित सखीगरानी वाड़ीमें है। नवजीवन संस्था द्वारा किराये पर ली गई उक्त इमारतकी नगरपलिका संख्या ५५१२ से ५५२१ है। इसके अतिरिक्त निम्नलिखित जमीन गांव अचेर, ताल्लुका व पेटाटुकंड़ी उत्तर दशक्रोई, जिला अहमदाबादमें है।

सर्वेक्षण संख्या	एकर-गुंठा	पूर्वी सीमा	पश्चिमी सीमा	उत्तरी सीमा	दक्षिणी सीमा	राजस्व की दर
१३	१-३७	४७	३३-३४-११	३४	१२	७-०-०
३४	२-६ ख-२	४५-४६-४७	१५-१४	३२-३५	१३	६-११-०
४५	२-२३ ख-१२	३९-४१ बंजर	३४-४६	३७-३५	४४	९-०-०
४७/५	२-२२	४८	लाट हिस्सा १-२-३-४-५	४६	४९	९-४-०

इस घोषणा-पत्रकी वसीयत हमने स्वेच्छा तथा सन्तुलित चित्तसे सावधानीपूर्वक आज तारीख २६–११–१९२९के दिन की है तथा वह हमारे और हमारे अभिभावकों व वारिसों, वकीलों, प्रबन्धकों-संचालकोंके लिए बन्धनकारक है।

अहमदाबाद,
तारीख २६-११-१९२९

हस्ताक्षरित
मोहनदास करमचन्द गांधी
मोहनलाल मगनलाल भट्ट

साक्षी
ह० : शंकरलाल बैंकर
ह० : रतिलाल प्र० महेता

[गुजरातीसे]
नवजीवन, (क्रोडपत्र) १-१२-१९२९

२३६. पत्र : मीराबहनको

साबरमती
२६ नवम्बर, १९२९

चि० मीरा,

तुम्हारे तीन पत्र मिले। मेरा वजन १००½ पौंड निकला। तुमने आखिरी बार वजन ८९ [पौंड] १५ तोला[1] लिखा था। इसलिए कुल वृद्धि ग्यारह पौंडकी हुई। कोई बुरा सौदा नहीं हुआ। वैसे भी सब ठीक है।

सस्नेह,

बापू

[पुनश्च :]

मुझे नहीं मालूम था कि पोस्टकार्डपर एक पता पहले ही से लिखा था। आशा है कि यह तुम्हें ठीकसे मिल जायेगा।[2]

अंग्रेजी (जी० एन० ९४३७)से; तथा (सी० डब्ल्यू० ५३८१) से भी।
सौजन्य : मीराबहन

१. मीराबहन एक रजिस्टरमें बापूका वजन लिखा करती थी।

२. पोस्टकार्डपर पहलेसे लिखे लाहौरके पतेको काटकर बिहारका पता लिखा गया था।

२३७. पत्र : वसुमती पण्डितको

२६ नवम्बर, १९२९

चि० वसुमती,

तुम्हारा पत्र मिला। अपना स्वास्थ्य वज्रकी तरह सुदृढ़ बना लेना। पढ़ने आदिका कार्यक्रम तो सराहनीय है। यदि शरीर माँगे तो उसे देने लायक चीज हमें चौड़ेमें बैठकर देनी चाहिए। इतना ही काफी है कि उसपर हमारा काबू हो। इस प्रकार यदि सबके सामने खानेमें संकोच होता हो तो फिलहाल अकेलेमें खाना। इसमें दुराव-छिपावके दोषकी बात नहीं है, क्योंकि तुम्हारा उद्देश्य किसीसे छिपाना नहीं बल्कि मर्यादाका पालन करना है। सम्भवतः मैं यहाँसे छः तारीखको चल पड़ूँगा।

बापूके आशीर्वाद

श्रीमती वसुमतीबहन
सत्याग्रहाश्रम
वर्धा (सी० पी०)

गुजराती (एस० एन० ९२७२)की फोटो-नकलसे।

२३८. संयुक्त प्रान्तका दौरा – ११[1]

कालाकाँकरसे रास्तेमें प्रतापगढ़ और दूसरे स्थानोंपर होते हुए हम इसी महीने की १५ तारीखको इलाहाबाद पहुँचे। वहाँ कार्यक्रम बड़ा व्यस्त रहा। दिल्लीकी तरह दिल्ली घोषणापत्रके[2] बादकी घटनाओंके प्रकाशमें स्थितिपर विचार करनेके लिए कार्य समितिकी सभा और संयुक्त सम्मेलनका आयोजन था। परन्तु चूँकि जवाहरलाल नेहरूका हाथ हर चीजमें दिखाई दे रहा था, इसलिए इलाहाबादमें थकावट बहुत कम ही हुई। जब सारा इन्तजाम ठीक व्यवस्थित ढंगसे किया जाये, समयका ध्यान रखा जाये ओर शोर तथा जमघटसे बचाया जा सके, तो थकावट वहुत कम महसूस होती है।

कार्यक्रम डा० सैम हिगिनबॉटमके प्रयोगात्मक फार्म और कृषि संस्थानको देखने से आरम्भ हुआ। गांधीजी इसे दरिद्रनारायणके लिए पैसा इकट्ठा करनेके लिए नहीं, बल्कि इसलिए देखना चाहते थे कि वे एक किसानकी तरह डा० हिगिनबॉटमके प्रयोगसे क्या सीख सकते हैं। यह कार्यक्रम आधे घंटेका था और अत्यन्त व्यस्त था।

१. देखिए पाद-टिप्पणी "संयुक्त प्रान्तका दौरा", २४-१०-१९२९।
२. सर्वदलीय नेताओंका संयुक्त वक्तव्य।

गांधीजीको कारखाना (वर्कशॉप), पशुशाला, मैलेके खादवाले खेत, मिट्टीको उपयोगी बनानेका क्षेत्र आदि स्थान जल्दी-जल्दी दिखाए गये। फार्ममें पशुओंकी नस्ल सुधारनेका प्रयोग किया जा रहा है। मैला उथले गड्ढोंमें भरा जाता है और जहाँ भरा जाता है वहीं इस्तेमाल किया जाता है। इसका परिणाम अच्छा निकलता है। गोठानमें तरल खादको सूखी खादसे अलग रखनेका प्रबन्ध है और यह तरल खाद उस फार्ममें जो लूसर्न (पशुओंके खानेकी एक घास) और इस तरहके पौदे लगानेके लिए बनाया गया है, उसी रूपमें पहुँचाई जाती है। इसे देखकर गांधीजीका ध्यान इस विषमतापर गया कि एक ओर यहाँ मैलेका आर्थिक और वैज्ञानिक ढंगसे प्रयोग किया जाता है और दूसरी ओर नगरपालिका मण्डल इसकी दुखदायी उपेक्षा करती है। इस कारण हजारों रुपयोंका मैला हर साल बेकार जाता है और गंगा और यमुनाका पवित्र जल उनके ठीक संगम स्थलपर जिसे देखने भक्तजन हजारोंकी संख्यामें भारतके सभी भागोंसे दूर-दूर तक यात्रा करके आते हैं, दूषित हो जाता है। हमने उन छोटे बच्चोंको भी देखा जिनका श्रीमती हिगिनबॉटम माँकी तरह ध्यानपूर्वक पालन-पोषण कर रही हैं। इनमें से बहुत-से बच्चे कुछ रोगियोंके हैं। अंतमें पाँच मिनटका एक समारोह भी हुआ। इस समारोहमें विद्यार्थियोंने विशेष रूपसे दरिद्रनारायणके लिए समर्पित एक थैली, जो उनकी अपनी मेहनतकी कमाई थी और फार्ममें ही धरती मातासे प्राप्त स्वादिष्ट पदार्थोंसे भरी एक बड़ी भारी टोकरी भेंट की। डॉ० और श्रीमती हिगिनबॉटम दलको समारोहके बाद पासके कुष्ठाश्रममें ले गये, जिसे वे चला रहे थे। ऐसा लगता था कि उन्हें अपने इस काममें विशेष गर्वका अनुभव होता था। छोटे बच्चोंने अपनी धर्मकी माँको जो सहज स्नेह दिया, उसके लिए गांधीजीके मनमें श्रीमती हिगिनबॉटम से ईर्ष्या-सी हुई। श्रीमती हिगिनबॉटमने बच्चोंकी टोलीका गांधीजीसे गर्वसे "ये मेरे बच्चे हैं" कहकर परिचय कराया; यह गर्व-भावना क्षम्य ही थी। कुछ रोगियोंको चौलमें गिरा तेलके इंजेक्शन नियमित रूपसे दिये जाते हैं और यह कहा जाता है कि इनसे नये बीमारोंकी हद तक ८० प्रतिशत पूर्ण या आंशिक सफलता मिलती है; पुराने बीमारोंके मामलोंमें कुछ कम सफलता मिलती है। यह दावा किया जाता है कि पुराने बीमारोंमें भी इस भयानक रोगकी विनाशकारी गति रुक जाती है।

फार्मको देखनेके बाद दलने इर्विंग कालिज और स्कूलके विद्यार्थियोंसे मुलाकात की। वहाँसे अच्छी खासी रकमकी थैली और मानपत्र दिया गया। वहाँसे हम क्रास्थवैट कन्या विद्यालयमें गये जहाँ कार्यवाही मनोरंजक, लेकिन लम्बी थी। लड़कियोंने मीराबाईके भजन गाये और कुछ एक छोटी लड़कियोंने मीराबाईके प्रसिद्ध भजन "मैं तो हरिगुण गावत नाचूँगी" गाते हुए अद्‌भुत लय-युक्त नृत्य किया। इससे गांधीजीको अपने भाषणके लिए सूत्र मिला। उन्होंने लड़कियोंको ये पवित्र भजन समझ-बूझकर और हृदयसे गानेके लिए कहा। लड़कियोंके समारोहके बाद दल थैली और मानपत्र लेने कायस्थ पाठशाला गया। अपराह्न जिलेके गाँव देखनेमें बिताया। यह दिन शनिवार और तारीख १६ थी।

१७ तारीखकी सुबहका आरम्भ विश्वविद्यालयके विद्यार्थियों और प्राध्यापकोंसे मुलाकात[1] करनेसे आरम्भ हुआ। इसकी अध्यक्षता उपकुलपति श्रीयुत गंगानाथ झाने की। यहाँ भेंट की गई थैली अबतक विद्यार्थियों और प्राध्यापकों द्वारा भेंट की गई थैलियोंमें सबसे बड़ी थी। यह ३,००० रु० से ज्यादा की थी और मानपत्र छात्रसंघने ३५७ रुपयोंमें ले लिया। इस दौरेकी अन्य विशेषताओंमें से एक बड़ी विशेषता यह थी कि विद्यार्थियों द्वारा भेंट की गई थैलियोंकी रकम लगभग निरन्तर हर मंजिल पर बढ़ती रही। इलाहाबादने पिछले सब रिकार्ड तोड़ दिये। दूसरोंसे मीलों आगे निकल गया।

दल विद्यार्थियोंके पाससे नगरपालिका कार्यालयमें गया जहाँ नगरपालिका और जिलाबोर्डों द्वारा गांधीजीको मानपत्र दिये जाने थे[2]। गांधीजीने नगरपालिकाके सदस्योंका ध्यान कचरेकी सफाईकी ओर दिलाया और सुझाव दिया कि शहरकी गन्दी नालियोंके पानीसे पवित्र नदियोंका जल संगम स्थलपर ही दूषित करना अपराध है। उन्होंने कहा कि नगरपालिकाका यह कर्त्तव्य है कि वह मैलेका निपटारा करनेका बुद्धिमत्तापूर्ण और वैज्ञानिक ढंग प्रयोगमें लाये और इस तरह अपने खजानेकी खाली सन्दूक फिरसे भरे। नगरपालिका चमड़ा तैयार करनेका एक स्कूल चला रही है। इस तरहका स्कूल चलानेके लिए नगरपालिकाको बधाई देते हुए गांधीजीने कहा कि वह मरे हुए पशुओंकी खालको देशी ढंगसे कमानेका काम आरम्भ करे। यह चमड़ा तो इलाहाबादमें मरनेवाले पशुओंसे ही पर्याप्त मात्रामें मिल जाना चाहिए। उन्होंने आगे कहा कि यदि चमड़ा कमानेका काम घृणित मानकर उपेक्षित वर्गके हाथमें रहने देनेके बजाय सही ढंगसे सँभाला जाये तो उससे राष्ट्रकी सम्पत्तिमें वृद्धि करना सम्भव है।

अपराह्नके कार्यक्रमका आरम्भ महिलाओंकी बड़ी भारी सभासे हुआ, जहाँ छोटी-सी इन्दिराने, जो अब पण्डित जवाहरलाल नेहरू द्वारा उसे लिखे गये पत्रोंसे प्रसिद्ध हो गई है, एक थैली भेंट की जिसमें ८,००० रुपयेका एक चैक था। इस यात्राके दौरान महिलाओं द्वारा भेंट की गई थैलियोंकी सभी थैलियोंसे चैककी यह रकम कहीं ज्यादा थी।

इसके बाद एक आम-सभा हुई, जिसमें बाकीका चन्दा जिसकी रकम १०,००० रु० थी भेंट किया गया। इलाहाबाद जिलेकी कुल रकम लगभग ३५,००० हो गई। यह बिलकुल अप्रत्याशित था। गांधीजीको, जो दलमें सबसे ज्यादा आशावादी थे, इसके २५,००० से ऊपर जानेकी कभी आशा नहीं थी। पण्डित जवाहरलाल नेहरूको सबसे कम आशा थी। परन्तु श्रीमती कमला नेहरूने यद्यपि वे कठिन ऑपरेशनके बाद हाल ही मैं अस्पतालसे बाहर आई थी, स्वागत समितिके सचिवका भारी दायित्व अपने ऊपर ले लिया था। उन्होंने न तो स्वयं विश्राम किया और न अपने साथियोंको ही विश्राम लेने दिया और यह उसीका फल था कि इतनी अच्छी रकम इकट्ठी हो सकी। पण्डित मोतीलालका नाम सूचीमें सबसे ऊपर था। उन्होंने २,५०० रु० दिये। दल इलाहाबादसे

१. देखिए "भाषण: इलाहाबाद विश्वविद्यालयमें", १७-११-१९२९।
२. देखिए "भाषण: अभिनन्दन समारोह, इलाहाबादमें", १७-११-१९२९।

मिर्जापुर और चुनार गया। चुनार गंगाके किनारे पर स्थित है और ऐतिहासिक महत्त्वका स्थान है। परन्तु इस स्थानका दौरा केवल इसलिए किया गया कि यह स्थान डॉ० भगवानदासने वानप्रस्थ जीवन बितानेके लिए चुना है। वे वहाँ अपनी प्रिय काशी नगरीके, जो उनके जीवन भरके क्रिया-कलापका केन्द्र रही, पास ही पूर्णतः शान्त और सुन्दर वातावरणमें रह रहे हैं और बड़े शहरके शोर और हलचलसे बचे हुए हैं।

चुनारसे हम इलाहाबाद वापस आये। वहाँसे हमें बुन्देलखण्ड जाना था, यह प्रान्तोंके इस बड़े समुदाय संयुक्त प्रान्तका अन्तिम गन्तव्य स्थान था।

रास्तेमें फतेहपुरसे होते हुए हम बुन्देलखण्ड पहुँच गये, निरन्तर भयानक अकालों की चपेटमें पड़ते रहनेसे यह क्षेत्र ऊसर हो चुका था। कुलपहाड़में एक खादी-आश्रम है। बुन्देलखण्डको एकसे ज्यादा खादी-केन्द्र और बहुतसे कार्यकर्त्ताओंकी जरूरत है। इससे हजारों अधभूखे परिवारोंको मदद मिल सकती है और वे इस लायक हो सकते हैं कि अकालके दिनोंमें कठिनाइयोंपर विजय पा सकें और अच्छे दिनोंमें भी उनकी नगण्य-सी आमदनीमें इससे वृद्धि हो सकती है। भारतीय किसानको पीढ़ियोंसे खुशहालीके वर्ष देखनेको नहीं मिले हैं। बुन्देलखण्डमें कोरी जातिके हजारों परिवार हैं। उनका परम्परागत धंधा बुनाई है और वे कताईका काम भी करते हैं। चार सदस्योंका परिवार जिसके पास एक खड्डी है हर महीने ११ से लेकर १२ रुपयेसे ज्यादा नहीं कमाता और इसलिए रागी और बाजरीसे मिलते-जुलते देसी अनाजपर बड़ी मुश्किलसे जैसे-तैसे गुजारा करता है। उन्हें न दूध मिलता है और न घी। उनसे मिलकर बड़ा दुःख हुआ। कोई कारण नहीं दीखता कि क्यों इन पुरुषों और महिलाओंको बारडोलीकी रानीपरज[1] जातिके लोगोंकी तरह कुछ ही सालोंमें बदला न जा सके। जीवनदायक चरखेके द्वारा उन्हींकी तरह उनके निराश जीवनको भी आशामय बनाया जा सकता है।

कुलपहाड़से हम झांसीमें दाखिल हुए और वहाँसे उरई, औरैया और अन्तमें इटावा पहुँचे। यहाँ प्रेम महाविद्यालयके स्नातक स्वामी स्वराजस्वरूप, जिन्होंने अपनेको देशकी सेवामें लगा दिया है, ग्राम सुधारकका काम करनेकी कोशिश कर रहे हैं।

संयुक्त प्रान्तका दौरा ११ सितम्बरको आगरासे आरम्भ हुआ और २४ नवम्बर को अर्थात् पूरे दो महीने और एक पखवाड़ेके बाद इटावामें समाप्त हो गया। यदि अलमोड़ाके पिछले तीन हफ्ते[2] भी जोड़ दिये जायें तो दौरेमें तीन महीने और एक हफ्ता लगा। मित्रोंको यह जानकर प्रसन्नता होगी कि यद्यपि दौरा निस्सन्देह श्रमसाध्य था, तो भी इस सारी अवधिमें गांधीजीका स्वास्थ्य बहुत अच्छा बना रहा।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २८-११-१९२९

१. गुजरातकी अनुसूचित जाति।

२. १३-६-१९२९ से २-७-१९२९ तक।

२३९. टिप्पणियाँ

कांग्रेस कमेटियो, सावधान

विदेशी कपड़ा बहिष्कार समितिके मन्त्रीने निम्न पत्र[1] समाचारपत्रोंमें प्रचारित किया है :

विदेशी कपड़ा बहिष्कार समिति द्वारा माँगे गये विवरणको भेजनेका भार कांग्रेस कमेटियोंका है। यदि उन्होंने अपना कर्त्तव्य वैसे ही निभाया होता जैसा चम्पारनने निभाया है तो विदेशी कपड़ा बहिष्कारकी कुछ और ही कहानी होती।

लालाजी स्मारक

संयुक्त प्रान्तके दौरेमें लालाजी स्मारकके लिए ३०,००० रु० मिले हैं। श्री पुरुषोत्तमदास टण्डनके प्रयत्नोंके बिना यह नहीं हो सकता था। लेकिन इस रकमको मैं पर्याप्त योगदान नहीं मानता। इस राष्ट्रीय स्मारकके लिए संयुक्त प्रान्त बड़े मजेसे इससे कहीं अधिक दे सकता है। मुझे आशा है, अभी और भी चन्दा आता रहेगा। हरएक प्रान्त भरसक कोशिश करनेका आग्रह रखे तो पाँच लाख शीघ्र ही पूरे हो जायेंगे; यह हमें करना ही चाहिए।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २८-११-१९२९

२४०. संयुक्त प्रान्तके दौरेके सम्बन्धमें कुछ विचार

बहुप्रतीक्षित संयुक्त प्रान्तकी यात्रा ईश्वरकृपासे २४ तारीखको समाप्त हो गई। मित्रोंको डर था कि इस यात्रासे कहीं मेरा स्वास्थ्य न बिगड़ जाये; लेकिन आचार्य कृपलानी और दूसरे साथियोंने मेरी हिफाजतके लिए सब ओरसे जो चहारदीवारी उठा रखी थी, उससे मुझे जितना आराम और विश्राम उन परिस्थितियोंमें मिल सकता था और मिलना जरूरी था मिल जाता था। इस हिफाजतका अधिकतर भार आचार्य कृपलानीपर ही था, इस कारण कभी-कभी वे सचमुच गुस्सा हो जाते थे। और उन्हें अक्सर उन जगहोंके स्थानीय नेताओंपर, जो अधिक समय देने या अधिक कार्यक्रमके लिए प्रार्थना करते थे, या उन लोगोंपर, जो मुझे देखना चाहते या मेरी मोटरगाड़ीको घेर लेना चाहते थे, बनावटी तौरपर भी नाराज होना पड़ता था। नतीजा यह हुआ कि कुछ जगहोंमें तो लोग उन्हें एक ऐसा हृदयहीन दुष्ट

१. पत्र यहाँ नहीं दिया जा रहा है। पत्रमें कांग्रेस कमेटियोंसे वर्ष भरके विदेशी कपड़ा बहिष्कार-सम्बन्धी कार्यका विवरण भेजनेको कहा गया था।

व्यक्ति मानने लगे, जो केवल अपने ही स्वार्थका खयाल रखता है तथा जिसे औरोंकी भावनाओंसे कोई सरोकार नहीं है। लेकिन उन्होंने चुपचाप ये सब उपाधियाँ सह लीं और अपना काम करते रहे। जब हम आगरासे विदा हुए, उन्होंने मुझसे यह कहा कि 'मुझे न तो क्षमा-प्रार्थना करनेकी आदत है, न वह मुझे पसंद ही है। मैं अपनी लियाकतके मुताबिक अपना फर्ज अदा कर देता हूँ। और इसीमें अपना काम पूरा हुआ मानता हूँ। जरूरी क्षमा-प्रार्थना मेरी ओरसे आप कीजिएगा।' १९१५में जब मैं पहली बार आचार्य कृपलानीसे मिला था, वे तभी एक अनुभवी योद्धा बन चुके थे। उस समय उन्हें ४०० रु० मासिक मिलता था, लेकिन ब्रह्मचारी होनेके कारण वे सिर्फ ४० रु० से अपना काम चलाते थे और बाकी रकम हैदराबाद (सिन्ध) के ब्रह्मचर्याश्रमके लिए डा० चोइथरामके पास भेज दिया करते थे। जब चम्पारनमें[1] रैयतके झुण्डके-झुण्ड मुझे चारों ओरसे घेरते और मुझे देखनेका आग्रह करते थे, उन दिनों भी कृपलानीजीने बड़ी चतुराई और योग्यताके साथ मेरे द्वारपालका काम किया था।

परिणामका कतई विचार किये बिना ही वह असहयोग आन्दोलनके मैदानमें कूद पड़े और अध्यापकी छोड़कर खादीकी फेरी लगाने और संगठन करने लगे। फिर वे सरदार वल्लभभाईके निमंत्रणपर विद्यापीठ चले आये और उसके जीवनको एक नया रूप दे दिया। आज कृपलानीजी अपने कुछ विश्वस्त कार्यकर्त्ताओंके साथ संयुक्त प्रान्तमें अनेक खादी-आश्रम ऐसे उत्साहसे चला रहे हैं कि उनका यह उत्साह हरएक नौजवानके लिए अनुकरणीय और स्पृहणीय है। अपने देशके लिए जन्मभूमि सिन्धसे उन्होंने अपने आपको निर्वासित कर लिया है और वे विहारियोंके साथ भी वैसे ही आरामसे रहते हैं जैसे संयुक्त प्रान्तके लोगोंके साथ। अखिल भारतीय चरखा संघकी साग्रह प्रार्थनापर उन्होंने संयुक्त प्रान्तके लिए पण्डित जवाहरलाल नेहरूका सहायक एजेंट होना स्वीकार कर लिया है। अपनी इसी हैसियतसे उन्होंने संयुक्त प्रान्तकी इस यात्राकी व्यवस्थाकी देख-रेख की थी। मुझे विश्वास है कि जिन लोगोंको उनकी झिड़कियाँ सहनी पड़ी हैं, वे उन्हें उनकी तेज-मिजाजीके लिए माफ करेंगे। अच्छा होता कि कृपलानीजीके समान और कार्यकर्ता मिल सकते। उनके ठोस कामके कारण हमारे शिथिल वातावरणमें शीघ्र ही सच्चे उत्साहकी लहरोंका बहने लगना निश्चित है। उनके प्रारम्भ होते ही लोग उनके उग्र स्वभावकी बात भूल जायेंगे।

मैं जानता हूँ कि आचार्य कृपलानीको लोगोंके जिस उत्साहपर पानी डालना पड़ा वह वास्तवमें उसी प्रेमसे उद्भूत था जो मुझे संयुक्त प्रान्तमें और उसी तरह आन्ध्रमें या कहीं और मिला था। जनता मुझे और मेरे साथियोंको जिस प्रेमभरी निगाहसे देखती थी, सचमुच ही कभी-कभी तो उसके कारण हमें [उनके उत्साहकी उपेक्षा करते हुए] परेशानी महसूस होती थी। जहाँ एक स्वयंसेवककी जरूरत होती, दस तैयार रहते। लोग खातिरदारीमें विवेक और संयमको भुला ही देते थे। मुझे यह स्वीकार करते हुए दुःख होता है कि हमने भी सदा गैरजरूरी चीजको लेनेसे इनकार करनेका आग्रह नहीं रखा। मेरा अपना अनुभव तो यह है कि जो चीज

१. सन् १९१७ में।

हमारे लिये जरूरी नहीं है, उसे नम्रता और दृढ़तापूर्वक अस्वीकार कर देनेमें कोई बुराई —— कोई असभ्यता नहीं है।

कार्यकर्त्ताको मुझे यही सलाह देनी है कि :

१. स्वयंसेवकोंका दुरुपयोग न कीजिए, अतिथि-सत्कारका यह कोई लक्षण नहीं है; हाँ, इससे संगठनात्मक-शक्तिकी कमी जरूर जाहिर होती है।

२. राष्ट्रीय कार्यकर्त्ताओंकी बातपर भरोसा कीजिए। जैसे कि अगर वे मिठाई लेनेसे इनकार करते हैं, तो उनके लिए मिठाई कभी न लाइए, उनकी बातको मानिए। यह खूब याद रखिए कि जो रुपया गैरजरूरी चीजोंपर खर्च होता है, वह करोड़ों आधे पेट भूखे रहनेवालोंका कौर छीनकर आता है।

३. अपने नियत कार्योंका समयानुसार क्षण-क्षण सँभालकर पालन कीजिए।

४. एक बार वचन दे चुकनेपर जानको जोखिममें डालकर भी उसे पूरा कीजिए। छोटी-छोटी बातोंको भी अपने लिए बन्धन या प्रतिज्ञा समझिए।

व्यवस्थापकोंमें फिजूलकी बकवास और ढिलाई काफी पाई गई। इससे समयका दुरुपयोग तो होता ही था, निराशा और सन्ताप भी बढ़ता था।

प्रान्तीय सेवा और दूसरी एक-दो बातोंपर विचार तो अगले सप्ताहके लिए ही मुलतवी कर देना चाहिए[1]।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २८-११-१९२९

२४१. लोक-वित्त और हमारी दरिद्रता

श्रीयुत [जे० सी०] कुमारप्पा एम० ए०, बी० एस० सी०, सोसाइटी आफ इनकोरपोरेटेड एकाउटेंट्सके फैलो हैं। उन्होंने व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त करनेके लिए विदेशोंकी यात्रा की है; और वह स्थायी रूपसे तो नहीं परन्तु फिलहाल गुजरात विद्यापीठमें है। उन्होंने लोक-वित्त और हमारी दरिद्रताके सम्बन्धमें कुछ एक ज्ञानवर्धक प्रकरण लिखे हैं। ये प्रकरण सामयिक हैं, इसलिए मेरा इन्हें इन पृष्ठोंमें क्रमशः प्रकाशित करनेका विचार है।[2] ज्यों-ज्यों पाठक इन्हें पढ़ते जायेंगे उन्हें मालूम हो जायेगा कि श्री कुमारप्पाके कथनानुसार जहाँ अमेरिकामें ऋण, सेना और प्रशासनपर ४८.८ प्रतिशत खर्च किया जाता है वहाँ भारतमें ९३.७ प्रतिशत खर्च होता है। भारत द्वारा इस तरह खर्च किया हुआ पैसा ज्यादातर बाहर हो चला जाता है और अमेरिका द्वारा खर्च किया हुआ पैसा अमेरिकामें ही रहता है। इस तरह संसारका सबसे गरीब देश भारत प्रशासनपर जितना खर्च करता है, संसारके सबसे ज्यादा धनी देश

१. देखिए "जमींदार और ताल्लुकेदार", ५-१२-१९२९, और "संयुक्त-प्रान्त राष्ट्र सेवा संघ", १२-१२-१९२९।

२. **यंग इंडियामें** २८-११-१९२९ से २३-१-१९३० तक क्रमशः प्रकाशित प्रकरण यहाँ नहीं दिये जा रहे हैं।

अमेरिकाका खर्च उससे लगभग आधा होता है। जबतक हमें पीस डालनेवाला यह बोझ दूर नहीं किया जाता चाहे उसे औपनिवेशिक स्वराज्य कहें या पूर्ण स्वराज्य, स्वराज्य नही होगा। पाठक इन प्रकरणोंको ध्यानसे पढ़ें जिनमें दलीलोंके बजाय तथ्य दिये गये हैं।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २८-११-१९२९

२४२. अछूतोंके लिए मन्दिर

तथाकथित अछूतोंके लिए आगे बढ़कर दृढ़ताके साथ संघर्ष करनेवाले श्री स्वामी आनन्द लिखते हैं:[१]

आन्दोलनके प्रारम्भमें सन् १९१५ में जब मैंने दक्षिण आफ्रिकासे लौटकर इस आन्दोलनकी नींव डाली थी, मैंने सोचा था कि अस्पृश्यता-निवारणके आन्दोलनके साथ अछूतोंके लिए अलग मन्दिर या पाठशालाएँ खोलना सर्वथा असंगत है। लेकिन बादमें अनुभवसे मुझे यह पता चला कि कोई तर्कके आधारपर यह आन्दोलन सफल नहीं हो सकता। हम हिन्दुओंने अपने एक-तिहाई हिस्सेको इतना अधिक दबा रखा है कि समझदार हिन्दुओंके एक स्वरसे अस्पृश्यताको मिटा डालनेकी घोषणा कर चुकनेपर भी दलित और अस्पृश्य वर्गको काफी समयतक कई तरहसे हमारी सहायताकी आवश्यकता होगी। सिद्धान्त और जबानी तौरसे छुआछूतको मिटानेके लिए निश्चय कर चुकने पर भी अगर कोई खास कोशिश नहीं की जायेगी तो अधिकांश अछूत इस अस्पृश्यता-निवारणसे लाभ नहीं उठा सकेंगे और अज्ञानी जनता भी उन्हें सह न सकेगी, खासकर उस हालतमें यदि अछूत भाई अपने स्वभावके अनुसार या तो पूर्ववत् फूहड़ बने रहेंगे या बहुत दिनों बाद प्राप्त स्वतन्त्रताका उपयोग करनेके लिए बहुत आगे बढ़ जायेंगे; यों यह क्षम्य ही होगा। इसलिए मेरा तो यह विश्वास है कि दोनों काम एक साथ होने चाहिए — याने साधारण मन्दिरों, आम मदरसों और कुओंका उपयोग करनेकी पूर्ण स्वतन्त्रताके साथ-ही-साथ अछूतोंके लिए खास तौरपर उनकी सुविधाके लिए बनाये गये विशेष नमूनेके मन्दिर और मदरसे बनाये जाने चाहिए। इन स्थानोंका उपयोग हमेशा अछूत तो पहले करेंगे ही, लेकिन सर्वसाधारण भी इनसे लाभ उठा सकेंगे। इसी विचारधाराके अनुसार मैंने 'कलकत्ता म्युनिसिपल गजट'के अपने छोटेसे लेखमें यह बतानेकी कोशिश की है कि दलित जातियों के लिए आदर्श मन्दिर और पाठशालाएँ बनाकर तथा मौजूदा मन्दिरोंको अपने इन

१. यह पत्र यहाँ नहीं दिया जा रहा है। पत्र-लेखकने कलकत्ता म्युनिसिपल गज़टमें गांधीजीके एक लेखका जिक्र करनेके बाद कहा था कि अछूतोंके लिए विशेष मन्दिर बनानेके लिए उनकी जो दलील है उसका गलत अर्थ निकाला जा सकता है। गांधीजीके उक्त गज़टमें छपे लेखके लिए देखिए खण्ड ४१ "खादी और अस्पृश्यता निवारण", १२-१०-१९२९।

देशभाइयोंके लिए खुलवा कर हमारी म्युनिसिपैलिटियाँ अस्पृश्यता-निवारणके काममें खासी मदद कर सकती हैं।

अतः मेरे इस लेखकी आड़में कोई अछूतोंके मन्दिर प्रवेश आन्दोलनको बेजा बतानेकी अथवा उसे रोकनेकी कोशिश न करे। बम्बईके जिन नेताओंने अपने घोषणापत्र द्वारा सारे बम्बई प्रान्तको अछूतोंके लिए अपने मन्दिर खुलेकर देनेकी जो सलाह दी है, उसकी जितनी प्रशंसा की जाये थोड़ी ही होगी। मुझे अभी-अभी यह पढ़कर अत्यन्त हर्ष हुआ कि बम्बईका रामचन्द्र-मन्दिर उसके एक न्यासी श्रीयुत ठाकुरदास नानाभाईने अछूतोंके लिए खोल दिया है। मुझे आशा है कि बम्बईमें जिस कामकी शुरूआत की गई है, उसमें कोई शिथिलता नहीं आयेगी।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २८-११-१९२९

२४३. देशी राज्य

एक सज्जनने मध्य भारतके कई व्यभिचारी राजाओंका उल्लेख करके पूछा है कि मैं इन बातोंको जानते हुए भी चुप क्यों हूँ। कई राजा बूढ़े हैं। कइयोंके अनेक रानियाँ हैं, लेकिन उनसे सन्तुष्ट न होकर वे कई औरतोंको उपरानियाँ (पासवान या रखेल) बनाये रहते हैं। क्या मैं ऐसे राजाओंसे भी कुछ आशा रखता हूँ?

मैं तो मनुष्य-मात्रसे पवित्र बननेकी आशा रखता हूँ, क्योंकि अपनेसे भी मैं यही आशा करता हूँ। इस जगतमें कोई पूर्णतया शुद्ध नहीं है। प्रयत्नसे सब शुद्ध बन सकते हैं। कोई-कोई राजा व्यभिचारी है, क्योंकि प्रजाजन भी व्यभिचारसे मुक्त नहीं है। इसलिए हम राजाओंपर क्रोध न करें। अथवा राज्य-संस्थाओंका विचार करते समय, व्यक्तिगत राजाओंके दोषोंको उसके साथ मिला न दें। यह तो इस बातका तात्विक निर्णय हुआ। परन्तु इससे कोई यह न समझ बैठे कि मेरे मतानुसार, हमारी राज्य-संस्थाओंके लिए या राजाओंके व्यभिचार आदिके लिए किसी भी तरहका कोई प्रयत्न ही न किया जाये। सामाजिक दोषोंको मिटानेका जो भी प्रयत्न भारतवर्षमें होता है, उसका प्रभाव राजा लोगोंपर भी कुछ-न-कुछ अवश्य ही पड़ता है। इस प्रभावका परिणाम निकालनेका हमारे पास कोई यन्त्र नहीं है। सच बात तो यह है कि सामाजिक शुद्धिके हमारे प्रयत्न बहुत शिथिल है। इसलिए सामाजिक शुद्धिकी गति भी यत्किंचित् है। व्यभिचारी राजाके लिए विशेष प्रयत्न हो सकता है और वह है, ऐसे राज्यसे उस राज्यकी प्रजाका असहयोग। दुःख है कि रिआयामें इस प्रकारकी जागृति और शक्तिका प्रायः अभाव है। यही नहीं बल्कि राजाओंके अधिकारीगण — अमले — स्वार्थके वश होकर राजाओंकी उनके कुकर्मोंमें पूरी-पूरी सहायता करते हैं।

अब रही देशी राज्य संस्थाओंकी बात। सो जैसे चक्रवर्ती, वैसे उनके माण्डलिक! हमारे देशकी चक्रवर्ती संस्था आसुरी है, इसीलिए सन् १९२० से असहयोगके प्रचण्ड

शस्त्रका उपयोग किया जा रहा है। चक्रवर्ती संस्था जब दैवी बनेगी, तब राजा भी अपने आप शुद्ध हो जायेंगे। यह सनातन नियम है — पुरातन रूढ़ि है। आज देशी राज्योंके विरोधमें जितना आन्दोलन हो रहा है, उससे चक्रवर्ती शासन दृढ़ बनता जाता है। क्योंकि, आन्दोलनका एक अर्थ यह भी है कि देशी राज्योंको दबानेमें चक्रवर्ती संस्थाकी सहायता मिले।

आशा है, इस खुलासेको पढ़कर देशी राज्योंके बारेमें मेरी चुप्पीको समझना मुश्किल नहीं रह जायेगा। मेरा यह मौन असहयोगका उपांग है।

हिन्दी नवजीवन, २८-११-१९२९

२४४. पत्र : मोतीलाल नेहरूको

३० नवम्बर, १९२९

प्रिय मोतीलालजी,

सर्वश्री जिन्ना, विट्ठलभाई और वल्लभभाई आज तीसरे पहर मेरे साथ थे। बातचीतका निष्कर्ष यह निकला कि यदि वाइसरायसे भेंट हो तो हम घोषणापत्रकी सभी शर्तोंपर चर्चा करनेके लिए स्वतन्त्र होंगे। यदि वाइसरायको ऐसा विश्वास हुआ कि उनके निमन्त्रणपर हमारी अनुकूल प्रतिक्रिया होगी तो वे हमें विट्ठलभाई या जिन्नाके कहनेपर बुलायेंगे। वाइसरायके पास २३ दिसम्बरको हमसे मिलनेके लिए समय होगा। प्रस्ताव यह है कि यदि निमन्त्रण मिले तो हमें २२ दिसम्बरको दिल्ली में मिलना चाहिए। दलमें आप, डा० सप्रू, जिन्ना, विट्ठलभाई और मैं रहूँगा। मैं समझता हूँ कि यदि निमन्त्रण मिले तो हमें उसे स्वीकार करना चाहिए। यदि आप सहमत हों तो कृपया विट्ठलभाईको दिल्लीमें और मुझे साबरमतीमें ५ तारीखतक तार द्वारा हाँ कह दीजिए। ६को मैं वर्धाके लिए रवाना हो जाऊँगा।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]
मोतीलाल नेहरू कागजात, फाइल सं० जी-१
सौजन्य : नेहरू स्मारक संग्रहालय और पुस्तकालय

२४५. डाकिनीकी आखिरी सांस

अन्त्यजोंके सेवक भाई रामनारायण मोम्बासासे लिखते हैं:[१]

पूर्व आफ्रिकाके भाई अन्त्यज-सेवाके लिए चन्दा दे रहे हैं, तदर्थ वे धन्यवादके पात्र हैं। जिनके पास धन है, लोग उन्हींसे माँग सकते हैं। अतएव चन्दा उगाहनेवालोंका पूर्व आफ्रिका आदि जगहों तक पहुँच जानेमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है। दानियोंकी शोभा, उनकी बड़ाई तो इसीमें है कि वे हरएकके गुण-दोषोंकी जाँचकर विवेक पूर्वक दान दें। धनिकोंका धर्म है कि केवल पेटके लिए भीख माँगनेवाले भिखमंगों और पाखण्डका पोषण करनेवाले पाखण्डियोंको वे एक कौड़ी भी दानमें न दें। उनके पास तो भले-बुरे सभी जा पहुँचते हैं। ऐसे लोगोंको परखनेमें ही उनके विवेककी कसौटी है।

पूर्व आफ्रिकामें प्राप्त मददसे भाई रामनारायणने अन्दाज लगाया है कि अस्पृश्यता रूपी डाकिनी अब अपने आखिरी साँस गिन रही है। लेकिन सिर्फ अपनेको मिले हुए दानसे ऐसा अनुमान लगाना तो दूरकी कौड़ी लाना कहा जायेगा। किन्तु इस डाकिनीकी यह अन्तिम घड़ी है अवश्य। ऐसे बहुतसे लक्षण अब दिखाई पड़ने लगे हैं। जबलपुरमें श्री जमनालालजीके प्रयत्नसे एक साथ आठ सुप्रसिद्ध मन्दिरोंका अन्त्यज भाई-बहनोंके लिए खुल जाना और उसमें प्रतिष्ठित लोगोंका भाग लेना तथा बम्बईमें सेठ ठाकुरदास नानाभाईका अन्त्यजोंके लिए रामचन्द्र-मन्दिरके द्वार खोल देना वगैरा युग-परिवर्तनके सूचक हैं। यह सही है कि अपनेको सनातनी माननेवाले कुछ लोग इन प्रयत्नोंका विरोध कर रहे हैं। लेकिन अगर सुधारकोंकी ओरसे अविनय न हो, वे धीरज न छोड़ें और अपना काम करते रहें, अपनी सीमाका उल्लंघन न करें तो इन विरोधियोंका विरोध भी शान्त होकर ही रहेगा।

अन्त्यज भाइयोंकी अधीरता भी समझमें आती है। जहाँ अपने अधिकारके औचित्यके सम्बन्धमें दो मत नहीं हैं, वहाँ जो लोग अपने साथ होनेवाले अन्यायको अनुभव करने लगे हैं, उनका अधीर होना स्वाभाविक है। फिर भी जब कि सुधारकोंकी ओरसे लगातार प्रयत्न करनेवाले अन्त्यजेतर हिन्दू जी-जानसे कोशिश कर रहे हैं, उस हालतमें अगर अन्त्यज भाई धीरज रखें तो मनचाहा फल शीघ्र ही मिलनेकी पूरी सम्भावना है। अगर कोई अन्त्यजेतर हिन्दू उनका साथ न देता हो अथवा उनकी सहायताका कोई परिणाम न निकल रहा हो तो अन्त्यजोंका कुछ करनेके लिए छटपटाना समझमें आ सकता है। लेकिन जब कि सुधारकोंकी ओरसे अथक प्रयत्न हो

१. पत्र यहाँ नहीं दिया जा रहा है। पत्र-लेखकने अन्त्यज-सेवासे सम्बन्धित अपने कार्यका ब्यौरा उक्त पत्रमें दिया था।

रहे हों और जबलपुर, बम्बई आदि स्थानोंमें निकले शुभ परिणाम हम प्रत्यक्ष देख रहे हों, तब धीरज तो निस्संदेह रखा ही जा सकता है।

[गुजरातीसे]
नवजीवन, १-१२-१९२९

२४६. नवजीवन ट्रस्ट

पाठकोंको याद होगा कि सन् १९१९ में जब रौलट ऐक्टके खिलाफ प्रचण्ड आन्दोलन चल रहा था तब भाई शंकरलाल बैंकर, उमर सोबानी, जमनादास द्वारकादास और इन्दुलाल याज्ञिककी इच्छानुसार मैंने 'यंग इंडिया' और 'नवजीवन' का सम्पादन अपने हाथमें ले लिया था। सभीने यह अनुभव किया कि इन पत्रोंका अपना निजी छापाखाना होना ही चाहिए। फलस्वरूप मुद्रणालय कायम हुआ। इस मुद्रणालयके संचालनके लिए तुरन्त ही एक मुस्तैद और होशियार संचालककी आवश्यकता जान पड़ी। सत्याग्रह आश्रमसे कुछ लोग उधर भेजे गये। लेकिन मुद्रणालयको गौरवशाली और स्वावलम्बी बनानेके लिए तो एक ऐसे एकनिष्ठ सेवककी जरूरत थी जो चौबीसों घंटे प्रेसके ही हितकी बातोंका चिन्तन करता रहे। इस पदको सुशोभित करनेके लिए आश्रमके ही किसी व्यक्तिको देना असम्भव था। आखिर स्वामी आनन्दकी ओर मेरा ध्यान गया। उन्होंने एक सिपाहीके नाते मेरी इच्छाको स्वीकार किया। फलस्वरूप मुद्रणालय स्वावलम्बी बना, और 'नवजीवन' संस्थाने सार्वजनिक सेवाके लिए सरदार वल्लभभाईको ५० हजारकी मोटी रकम सौंपी। यह मुनाफा नहीं था बल्कि 'नवजीवन' में काम करनेवाले सेवकोंके बलिदानका फल था। इनमें से न तो स्वामीने ही कोई वेतन लिया और न दूसरे मुख्य कार्यकर्त्ताओंने ही कुछ स्वीकारा। पूरी संस्था अबतक मात्र देशसेवाके लिए काम करती आ रही है। लेकिन उसका नियमानुसार संचालन पहले तो मेरी ओरसे स्वामी आनन्दने किया और अब उन्हींके हाथों गढ़े हुए, उनके दाहिने हाथ, भाई मोहनलाल उसे चला रहे हैं। हम सबने बहुत पहले ही यह मान लिया था कि निरपवाद होते हुए भी यह स्थिति निश्चयात्मक नहीं कही जा सकती। मैंने मनमें न्यास बनानेकी कल्पना कर रखी थी। लेकिन कुछ तो आलस्य और उससे भी अधिक अन्य अनेक कार्योंमें व्यस्त रहनेके कारण इस कामको कानूनी रूप देने और पंजीयन होनेमें देर हो गई। ईश्वरकी कृपा और मुफ्तके वकील मित्रकी मेहरबानीसे हम — भाई मोहनलाल और मैं — ता० २७ के दिन दस्तखत करके भार-मुक्त और निश्चिन्त हुए। जो बात हृदयमें थी वही प्रकट रूपसे दस्तावेजके पन्नोंमें दर्ज हो गई। उक्त दस्तावेज[1] इस अंकके साथ पाठकोंको मिलेगा। यह संस्था पाठकोंकी थी, अब अगर वे इसे खास तौरपर अपनी मानना चाहें तो जरूर मानें और जितनी चाहें उतनी इसकी सेवा करें। अबतक 'नवजीवन' के छोटे

१. देखिए "न्यासका घोषणा पत्र", २६-११-१९२९।

कार्यकर्त्ता अपनेको नौकर मानते होंगे। कल वे अपनेको उसका सच्चा मालिक समझने लगें, यही मेरी और मेरे साथियोंकी इच्छा है। इसी गरजसे साबरमती स्टेशनके नजदीक खुली जमीनका एक टुकड़ा खरीदा गया है। हमारी हार्दिक अभिलाषा है कि प्रेसके कार्यकर्त्ता और मजदूर वहाँ जाकर खुली हवामें रहें, नन्हा-सा आदर्श गाँव बसावें, सुखी बनें और इस सेवा-वृक्षको जलसे सींचें, खुद उसकी छायाका सुख उठायें और देशको भी उसका लाभ दें। संस्थाका उद्देश्य सर्वव्यापी है। उक्त संस्थाको सफल बनानेके लिए संचालकों, कार्यकर्त्ताओं और पाठकोंके बीच सम्पूर्ण सहयोग होना चाहिए। अबतक थोड़ा-बहुत सहयोग मिलता रहा है। मुझे इन पत्रोंको चलानेमें बोझ नहीं लगा। पाठकोंकी कृपा और साथियोंकी वफादारीसे मैंने अथाह रसपान किया है; और उसके द्वारा स्वराज्यकी झलक लेकर आत्मदर्शनकी आशाका सिंचन किया है। लेकिन जिस प्रकार लोग अँगुली पकड़कर पहुँचा पकड़नेकी आशा करते हैं, उसी तरह मैं पाठकोंसे और अधिक व्यावहारिक सहयोगकी अपेक्षा करता हूँ। अगर वह सफल हो तो स्वराज्य हस्तामलकवत् है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १-१२-१९२९

२४७. पत्र : छगनलाल जोशीको

२ दिसम्बर, १९२९

चि० छगनलाल,

तुम आश्रममें नहीं हो इस कारण मैं तुम्हें प्रतिदिन पत्र लिखनेकी चिन्ता नहीं करता। किन्तु तुम्हारे हालके पत्रसे ऐसा लगता है कि तुम आश्रमका बोझ अपने साथ ही लेते गये हो। तुम्हें इस बोझको उतार देना चाहिए। तुम आश्रमके कामसे बाहर निकल कर गये हो। अपना काम दूसरेको सौंप देनेके बाद तुम उस बोझको ढोते क्यों फिर रहे हो? जो होना हो सो हो। जनकका उदाहरण तो सदा हमारे सामने ही है। गिबनका इतिहास बहुत अच्छा होते हुए भी सच्चा इतिहास नहीं है। क्योंकि वह बाह्य साधनों तथा क्षणिक कालके अधूरे तथ्योंके आधारपर लिखा गया है। किन्तु 'महाभारत' अनन्त कालके चिरस्थायी आन्तरिक अनुभवके आधारपर रचित होनेके कारण ही सच्चा इतिहास है। अतः हमें जनकके दृष्टान्तको प्राचीन नहीं बल्कि आधुनिक मानना चाहिए। अस्तु, यह विश्वास रखो कि कृष्ण, अर्जुन, युधिष्ठिर आदि नामोंसे नहीं तो अन्य नामोंसे यही बातें कही जा रही हैं और तदनुसार आचरण किया जा रहा है। गिबनकी ऐतिहासिक कथाओंको भी तो हमने विश्वास रखकर ही माना है न? किन्तु उनपर विश्वास करनेका जो आधार है उसकी अपेक्षा कहीं अधिक प्रामाणिक आधार 'महाभारत'की कथाओंपर विश्वास करनेका हमारे पास है। यदि इतनी-सी सहज और स्पष्ट बात हमारी समझमें आ जाये तो हमारी बहुत-सी

समस्याएँ तत्काल हल हो जायें। अतः हम जनकके दृष्टान्तको कहानीमें वर्णित बैंगन न मानें बल्कि अपने खेतमें होनेवाले सुन्दर बैंगनकी तरह ही उसे भी तोड़कर खाया जा सकनेवाला पदार्थ समझें।

अब तुम समझ सकोगे कि जो प्रस्ताव मैंने तुम्हारी अनुपस्थितिमें लागू होने दिये अथवा कहो कि उन्हें लागू करनेकी प्रेरणा दी, उनके कारण तुम्हें आघात नहीं पहुँचना चाहिए। तुमने जिन बातोंको स्पष्ट कराना चाहा था उन्हें मैंने धैर्यपूर्वक आपसमें चर्चा करके और कराके स्पष्ट कर दिया है। इससे अधिक या कम हमसे हो ही नहीं सकता। यह जो बार-बार उफान आता है वह तो जरा फूँक मार देने या थोड़ेसे पानीके छींटे दे देनेसे बैठ जायेगा। हमें दूधको चूल्हे परसे उतारनेकी जरूरत नहीं है। यदि मैं चौकस रहूँगा तो न तो उसके जलनेकी संभावना है और न उफननेकी ही। और अगर चौकसीके बावजूद वह उफन जाये या जल जाये तो इसके लिए हम जिम्मेदार नहीं हैं। 'गीता' इसका प्रमाण है।

वहाँके कुछ काम तुम्हें अच्छे लगते हैं और यहाँके कुछ काम बुरे लगते हैं, इसमें सचाई है और नहीं भी है। किन्तु नहीं की मात्रा अधिक है। किन्तु हम अपने दोषोंको बढ़ा-चढ़ाकर देखें यही उचित है। ऐसा करते-करते ही हमें प्रमाणका अन्दाज हो जायेगा। इसलिए मैं यह मानता हूँ कि तुम सही हो। तुम्हारे पहलेके पत्रोंकी जो बातें मुझे याद रह गईं, इतना उनके उत्तरमें है।

अब तुम्हारे हालके पत्रका उत्तर देता हूँ। यदि तुम्हारा स्वास्थ्य वहाँ ठीक नहीं रहेगा तो मैं तुम्हें वहाँ नहीं रहने दे सकता। तुम्हारा स्वास्थ्य बिगड़नेका कारण यह है कि तुमने झूठी विनय और झूठी शर्म दिखाई है। कच्चा खाना तो खाना ही नहीं चाहिए। तुम्हें जिस चीजकी आवश्यकता है यदि वह वहाँ न मिल सके तो स्वयं दुःख माने बिना या किसीको आघात पहुँचाये बिना तुम्हें खुद बाहर जाकर उक्त वस्तु प्राप्त कर लेनी चाहिए। यही सच्ची मित्रताका लक्षण है। यदि तुम वहाँकी दाल नहीं खा पाते तो तुम दूध-रोटी और फलों या कच्ची तरकारियों जैसे टमाटर आदिपर आराम तथा आसानीसे रह सकते हो।

मैं तो तम्बूमें ही रहना चाहता हूँ। टंडनजीने भी यही तय किया है। वल्लभभाईने अहमदाबादमें जैसी व्यवस्था की थी यदि वैसी ही लाहौरमें भी हो जाये तो ठीक है। तुम्हारे विवरणसे मुझे ऐसा लगता है कि वैसी ही व्यवस्था होगी। डा० गोपीचन्द इतना याद रखें कि मेरे साथ बहुतसे लूले-लँगड़े होंगे। वे सब वहाँ रह सकें इतनी जगह होनी चाहिए। इसका मतलब यह हुआ कि मेरे लिए जो व्यवस्था हो उसे एक छोटे-मोटे आश्रमका रूप दे देना चाहिए। और दर्शनाभिलाषियोंसे त्राण पानेके लिए मैं कैद हो सकूँ ऐसी बाड़ लगा देनी चाहिए। यदि इतना हो जाये तो फिर कोई और कष्ट देने-लेनेको नहीं रह जायेगा।

यह एक बड़ा आशाजनक लक्षण है कि तुम्हें वहाँ जब-तब खादी-भक्तोंके दर्शन हो जाते हैं और वे सब मिलकर रहते हैं।

मगनलाल-स्मारकके सम्बन्धमें मैं अवश्य याद रखूँगा। हम उक्त स्मारककी आश्रममें व्यवस्था कर सकेंगे या नहीं, इस बारेमें मुझे सन्देह है। हम तो 'एसोसिएट'

(सहायक) को ही रख सकते हैं किन्तु यह नियम इस काममें बहुत आड़े आयेगा, ऐसा नहीं लगता। और इसमें मुझे कोई बुराई नजर नहीं आती। किन्तु यह जान लेनेके बावजूद कि 'एसोसिएट' (सहायक) मिलेगा ही नहीं, तुम्हें आत्मविश्वास हो तो मुझे लिखना। डाक्टरका मकान न तो मिल सकता है और न उसका उपयोग किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त नीचेके हिस्सेको मैं पर्याप्त नहीं मानता। स्मारक के लिए नया मकान चिनवानेपर ही मुक्ति मिलेगी। स्मारक विद्यापीठमें रहे, या वर्धामें जमनालालजीके बगीचेमें, मुझे इसमें कोई बुराई दिखाई नहीं देती। किन्तु दोनों जगहोंमें से कहाँ हो, इस प्रकारका दो टूक निर्णय फिलहाल नहीं कर सकता। पानी आदिके बारेमें यदि रतिलाल कोई अड़चन खड़ी करे तो उसपर ध्यान देनेकी जरूरत नहीं। क्योंकि वह उसका मालिक है। किन्तु हम उसके न्यासी हैं इसलिए हमें इस बातपर स्वतन्त्रतापूर्वक विचार करना है कि उस पानीका किस हदतक तथा कहाँ उपयोग करना चाहिए। यह बात मैंने रमणीकलालको समझा दी है।

सिन्ध संकट निवारणके बारेमें तुमने याद दिलाकर बहुत ठीक किया। मेरे ध्यानसे भी यह बात उतरी नहीं थी। किन्तु उतावलीमें उस पैसेका उपयोग कर बैठनेसे धर्मका पालन नहीं होता। मलाबार-संकटका धन खादीके काममें लगानेकी राय मैंने नहीं दी। बल्कि मलाबार-संकटके नामपर हमने जो पैसा उगाहा है उसे मलाबारके बाहरके संकटोंमें खर्च करनेकी छूट ली थी। संकटका निवारण खादीके द्वारा हुआ, क्योंकि ऐसे संकटोंके निवारणके लिए हमने खादीको चुना है। मलाबारमें भी खादी के द्वारा बहुत हद तक संकटका सामना किया गया था। इस सम्बन्धमें मेरे मनमें कोई दुविधा नहीं है। सिन्धके बारेमें तो निर्णय किया ही जा चुका है। वह इस प्रकार कि जब जयरामदास या मलकानी माँगें तब यह पैसा भेज दिया जाये। और ये दोनों संकटमें पड़े व्यक्तियोंको खादीके द्वारा मदद पहुँचानेकी योजना बना रहे हैं। मलकानीके पास फिलहाल तो पैसेकी इफरात है। उसमें का आधेसे अधिक पैसा बेकार खर्च हो चुका है और अब वह बेचारा टुकुर-टुकुर ताक रहा है। मलाबारके बारेमें एक बात लिखना मैं भूल गया। मलाबार संकट-निवारण [कोष] का ही दूसरा नाम दक्षिण संकट निवारण [कोष] था, किन्तु लोगोंको भ्रम न हो जाये इस विचारसे मैंने उक्त मामलेको अधिक स्पष्ट करते हुए नोटिस निकाला था। यह पैसा दक्षिणके संकट निवारणमें खर्च किया गया था। असमके पैसेके बारेमें मैं निर्णय नहीं कर सका। किन्तु इसका निर्णय करनेके लिए मुझे सतीशबाबूकी सलाह लेनी पड़ेगी। एक महीनेसे मैं उनसे पत्रव्यवहार कर रहा हूँ।

वरमाला पहननेके लिए दो उम्मीदवार हैं। एक तो सिलहटके धीरेन और दूसरे कोमिल्लाके सुरेश। अब सिर्फ इसी बातपर विचार करना है कि यह वरमाला किसको पहननी चाहिए या दोनोंको पहननी चाहिए।

औपनिवेशिक मददका खाता भले बना रहे। इस बारेमें मैंने रमणीकलालको कबका सब-कुछ समझा दिया है। अभी तो ऐसी स्थिति नहीं है कि मैं यह पैसा जहांगीरजीसे ले सकूँ। किन्तु जीतेजी यदि मैं यह पैसा न ले सकूँ और तुम उसे बट्टे खाते न

डाल दो या भूल न जाओ तो मेरे बाद भी उस पैसेको वहाँसे ले सकते हो। आज भी यदि मैं इस काममें अपना समय लगाऊँ, कुछ जोर डालूँ, बार-बार तकाजा करूँ तो यह पैसा मैं ले तो सकता हूँ किन्तु ऐसा करनेकी मेरी तनिक भी इच्छा नहीं है और ऐसा करनेकी आवश्यकता भी नहीं है। मुझे इतना विश्वास है कि जहाँगीरजीके पास जो पैसा पड़ा है वह इसी खातेका है; इसीमें मुझे सन्तोष है। आगामी वर्ष बिड़लाकी तरफसे जो पैसा मिलनेवाला है वह मिलेगा। वे और उनकी पेढ़ी अगर सही-सलामत रहेगी तो पैसा अवश्य मिलेगा। इस खातेमें से मजूर-महाजनको जो मदद दी जाती है, वह तबतक दी जाती रहेगी जबतक अनसूयाबहन चाहेंगी। वे कोई दूसरा प्रबन्ध कर लेनेकी कोशिश कर रही हैं।

जो रकमें वसूल होती नजर नहीं आतीं उन्हें मैं अवश्य जाँचना चाहूँगा। किन्तु ऐसी रकमें हमारे पक्के चिट्ठेमें अलगसे दिखाई जानी चाहिए ताकि किसी तरहका भ्रम पैदा न हो। क्योंकि आज जो रकम वसूल होती नजर नहीं आती उसे भविष्यमें वसूल करना सम्भव नहीं होगा। ऐसी एक-दो रकमें तो आज भी मुझे याद हैं — जैसे कि सीतलासहायकी और दूसरी रूपालीकी रकम।

नानुभाईको ले लेनेका प्रयत्न तो मैं कर रहा हूँ। वे कल मुझसे मिले थे। वे आश्रममें रहनेमें शरमाते हैं और बीजापुरमें रहना उन्हें रुचेगा नहीं। उन्होंने कहीं और रखनेका आग्रह किया है। मुझे नहीं लगता कि ऐसा करना सम्भव होगा। किन्तु मैं ऐसा मानता हूँ कि उन्हें आश्रमकी ओर आकृष्ट किया जा सकता है। उन्होंने इस बारेमें सोचने-विचारनेके लिए समय माँगा और वे कल बीजापुर चले गये।

मनजीकी समस्या ऐसी नहीं है जिससे परेशानी हो। जबतक गंगाबहनको पुसाये, सास-बहू वहाँ सुखसे रहें। यहाँतक मैंने ४.१५ बजे तक लिखवाया। यहाँसे आगे लिखवानेके लिए २.४५ बजे उठा। तुमपर उपकार करनेके लिए मैंने ऐसा नहीं किया बल्कि जिन लोगोंसे मुझे काम लेना है उनका पथ-प्रदर्शन करनेके लिए किया है। इससे मुझे आत्मिक शान्ति मिलती है।

कृष्णमैया देवीके बारेमें गंगाबहनसे बात करनेपर उन्होंने कहा कि अभी तो गाड़ी चल रही है और वह ठीक-ठीक काम कर रही है। मौनी भी काम करती जान पड़ती है। जबतक कि उसके बारेमें कोई शिकायत नहीं है तबतक कुछ करनेकी जरूरत नहीं जान पड़ती।

भणसालीसे बातचीत नहीं हो सकी। वे जबसे नानीबहनके बारेमें मुझसे मिलकर गये हैं उसके बाद फिर नहीं आये। मैं खुद भी नहीं जा सका। किन्तु मैं उनसे बात कर लूँगा। उनके बच्चोंका विद्यापीठ जाना मुझे अच्छा नहीं लगता। किन्तु वे एक प्रकारसे मेहमानके तौरपर रहते हैं, यह मानकर मैं अपनेको समझा लेता हूँ। किन्तु इस दृष्टान्तके आधारपर कोई मन्दिरवासी अपने बच्चोंको विद्यापीठमें नहीं भेज सकता। नयन और रूपी जाते हैं, इस बातको हमें सहन कर लेना चाहिए, क्योंकि उन्हें शिक्षा, ग्राम्य जीवन बितानेके लिए नहीं बल्कि शहरी जीवनकी दी जा रही है।

मैंने दिनकररावसे बात की थी। इस बारेमें मैंने गोशाला समितिकी बैठक भी बुलाई थी। इस सम्बन्धमें मुझे अब नियमोंका मसविदा तैयार करना होगा। वे जबतक मन्दिरमें रहें तबतक ब्रह्मचर्यका पालन करें, इतना ही काफी है। इससे मैं या हम कुछ गँवायेंगे नहीं। मनुष्य यदि अपने नैतिक कल्याण या सेवाके लिए ब्रह्मचर्यका पालन करे तो यह नहीं कहा जा सकता कि ऐसा करना निरर्थक अथवा अनुचित है। हमारे लिए इतना ही काफी होगा कि वह हमें चकमा न दे। मेरा विश्वास है कि मन्दिरमें रहनेवाले ईमानदारीसे प्रयत्न करते हैं। यह सम्भव है कि कोई हमें धोखा देता हो। किन्तु इससे न तो हमारे नियमोंका प्रभाव कम होता है और न उन्हें अनावश्यक ही सिद्ध किया जा सकता है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि जबतक यह दुनिया कायम है तबतक धोखा देनेवाले भी रहेंगे ही। हमें तो सिर्फ यही देखना है कि इस नियमकी शीतल छाया तले किसीको शान्ति मिली है या नहीं। इसका उत्तर तो इतना स्पष्ट है जिसके बारेमें कोई शंका ही नहीं कर सकता। इन नियमोंकी छायाके कारण मगनलाल तथा अन्य लोग तर गये। प्रभुदास तथा अन्य बालक, राधा तथा अन्य बालिकाएँ इन नियमोंके प्रतापसे टिकी हुई हैं। मुझे ऐसा नहीं लगता कि दिनकरराव धोखा देगा। यों कौन किसके बारेमें गारंटी दे सकता है? "अनिच्छन्नपि . . पापं चरति पुरुषः[1]" यह शाश्वत वाक्य है। मुझे विश्वास है कि दिनकरराव अपने वचनका पालन करेगा। पारनेरकर आदिका यही विश्वास है। फिलहाल दुग्धालयको मन्दिरके नियमोंके अनुसार ही चलाना चाहिए। वह अभी स्वतन्त्र रूपसे चलाने लायक नहीं बन सका है। यह उनका अपना स्वतन्त्र विचार है और इसमें दिनकरराव भी शामिल है।

सम्मिलित भोजनालयसे जो पुराने परिवार अलग होना चाहें, मैंने उन्हें अलग होनेकी अनुमति दे देनेको कह दिया है। इस मामलेमें रमाबहनने कल पहल की। मैंने इसे तुरन्त स्वीकार कर लिया। उसकी स्पष्टताके लिए मैंने उसे मन ही मन धन्यवाद दिया। इस कारण तुम्हें दुःख न करके प्रसन्न होना चाहिए। उससे मैं खुलकर बातें नहीं कर सका और शायद वह भी नहीं करना चाहेगी।

बालिकाओंके लिए अलग भोजनालयकी बात मेरे गले नहीं उतरती। जो होना होगा सो धीरे-धीरे सामने आ जायेगा।

आजकल कन्या-आश्रमके नियमोंका मतलब है गंगाबहन। वह भले ही अन्य नियमोंको ध्यानमें रखकर चले।

हमें यह आशा रखनी चाहिए कि जो यह सब हम आज नहीं कर पा रहे हैं उसे भविष्यमें करनेकी सामर्थ्य हममें आ जायेगी। यदि हम असफल होंगे और भूल दिखाई देगी तो हम उसे सुधार लेंगे।

शिवाभाईको मैं जिम्मेदार आदमी मानता हूँ। यदि वह गिरेगा तो अपनी जगहसे हट जायेगा और दूसरोंके लिए रास्ता छोड़ देगा। जहाँ नियमोंके बन्धनमें बंधकर चलना पड़ता है वहाँ दंभीको भी थोड़ी-बहुत जगह मिल जाती है। उसमें हम क्या

१. भगवद्गीता, ३-३६।

कर सकते हैं? सूरजके पीछे अँधेरा तो होता ही है। अब तुम्हारे पत्रोंकी किसी बातका उत्तर देनेको नहीं रहा।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (जी० एन० ४२११)की फोटो-नकलसे।

२४८. पत्र : मीराबहनको

प्रात: ५.३०, मौनवार, २ दिसम्बर, १९२९

चि० मीरा,

मैं यह पत्र साप्ताहिक मौन शुरू कर देनेके बाद लिख रहा हूँ। मुझे तुम्हारे सब पत्र और तार मिले। मुझे 'यंग इंडिया'के लिए लिखी तुम्हारी टिप्पणियाँ भी मिल गईं। इनमें से एक आगामी संस्करण[1] [में] प्रकाशित हो जायेगी। इस बार इसे [अधिक सामग्री हो जानेके कारण] स्थान नहीं मिला।

अब तुम्हारा स्वास्थ्य सामान्य है यह जानकर मुझे राहत मिली है। आशा है कि अब वह नहीं बिगड़ पायेगा।

मथुरादासने धुनाईका नया तरीका चलाया है। मैं इसे सीखनेकी कोशिश कर रहा हूँ।

डा० और श्रीमती शेरवुड एडी और श्री तथा श्रीमती कर्कले पेज कल आ रहे हैं। कितना अच्छा होता कि तुम उनसे मिल पाती। आशा है कि मैं उन्हें बहुत अच्छा पाऊँगा।

स्नेह,

बापू

[पुनश्च:]

सम्भव है कि इस पत्रके पहुँचनेसे पहले महादेव तुमसे मिल ले। तब वह तुम्हें सारी खबरें बतायेगा।

मैंने तुम्हारी दो टिप्पणियाँ रेल यात्रा[2] और हिंसा[3] पढ़ी हैं। तुमने दूसरी टिप्पणी उसी कागजपर शुरू कर दी है जहाँ पहली खत्म होती है। यह मेरे लिए और कम्पोजीटरके लिए असुविधाजनक होता है। अलग टिप्पणी अलग कागजपर शुरू की जानी चाहिए। टॉम-टॉम (Tom-Tom) तो एक तरहका नगाड़ा हुआ। गाड़ीको टमटम कहते हैं और उसके हिज्जेमें Tum-Tum किये जाते हैं। दोनों टिप्पणियाँ छप जायेंगी। एक जगह मुझे शिथिल विचार लगा था और दूसरी एक जगह घटनाओंके कथन अप्रासंगिक; उनको मैंने संशोधित कर दिया है। मुमकिन

१. देखिए "हमारे भाईबन्द पेड़", ५-१२-१९२९।
२. देखिए "तीसरे दर्जेका डिब्बा", १२-१२-१९२९।
३. यंग इंडिया, १९-१२-१९२९ में "द फ्यूटिलिटी ऑफ वायलेंस", शीर्षकसे प्रकाशित।

है कि दोनों संशोधन तुम्हारी निगाहमें आ जायेंगे। कुछ अन्य मामूली संशोधन भी किये हैं। यद्यपि टिप्पणियाँ छपने दी जा रही हैं: परन्तु वे तुम्हारे स्तरके अनुरूप नहीं हैं। सुधारकी काफी गुंजाइश है। सम्भवतः जब तुम अपने उस लिखे हुएको सपाट छपी-छपाई सामग्रीके रूपमें देखोगी तब तुम्हें खुद ऐसा ही महसूस होगा। इसलिए लिखनेमें नियमित होनेकी कोशिश मत करो। तुम जो लिखना चाहो उसपर खूब विचार करो और यदि तुम चाहो तो उसे बार-बार दस बार तबतक लिखो जबतक कि कमसे-कम खुद तुम्हें यह लगने लगे कि अब मैं इसमें और सुधार नहीं कर सकती। फिलहाल तुम तत्काल मेरा बोझ हल्का करनेके विचारसे बिलकुल मत लिखो; बल्कि इसलिए लिखती रहो कि भविष्यमें मेरा स्थान ले सको। बोझ तो पहलेसे ही हल्का हो गया है। वालजीने मुझे जितनी सामग्री दी है, उसमेंसे मैं इस हफ्तेके लिए सिर्फ छठवाँ हिस्सा ले सका हूँ। कुमारप्पा और महादेवने जो सामग्री दी है वह तुम देख चुकी हो।

बापू

[पुनश्चः]

तुमने मुंगेरके बारेमें स्वयं जो निर्णय किया है वह बिलकुल सही है।

अंग्रेजी (जी० एन० ९४३८)से; तथा सी० डब्ल्यू० ५३८२से भी।
सौजन्य: मीराबहन

२४९. पुर्जा : रेजिनॉल्ड रेनॉल्ड्सको

मौनवार [२ दिसम्बर, १९२९][1]

प्रिय रेनॉल्ड्स,

मैंने आपकी नाकसे खून बहते देखा था। चिन्ता करनेकी आवश्यकता नहीं है। थोड़ा आराम करें और नाकसे ठण्डा पानी पीकर उसे मुँहसे बाहर निकालें तथा सिर और उसके पीछेके भागपर ठण्डा पानी डालें।

मो० क० गांधी

अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ४५३७)की फोटो-नकलसे।
सौजन्य: स्वार्थमोर कालेज फिलाडेल्फिया

१. तिथिका निर्धारण **इन्सीडैंट्स आफ गांधीजीज लाइफ**के रेजिनॉल्ड रेनॉल्ड्सके **लैटर्स फ्रॉम बापू** नामक लेखमें दी गई उसके आधारपर किया गया है।

२५०. पत्र : एम० जे०को

उद्योग मन्दिर
सत्याग्रहाश्रम, साबरमती
२ दिसम्बर, १९२९

भाई एम० जे०,

यदि तुम अपना पूरा धन परोपकारार्थ खर्च करना चाहो तो बहनको कुछ देनेका प्रश्न ही नहीं उठता। जो गलती होनी थी सो हो गई। बहनपर कोई कर्ज नहीं है। फिलहाल तुमने जिस कर्जके बारेमें लिखा है वह काल्पनिक है और उसे द्रव्यके द्वारा नहीं चुकाया जा सकता। हाँ, स्त्री-जगतकी सेवा करके उक्त कर्ज कुछ हद तक चुकाया जा सकता है।

अब तुम्हारे बारेमें — यदि तुम्हारे पास पैसा है तो तुम यहाँसे थोड़ा-सा पैसा भी क्यों लेते हो? जिज्ञासु-मुमुक्षु बिना कारण ऐसा नहीं करते। यह बात तो मैंने सामान्य रूपसे कही। भाई छगनलाल जोशी यदि किसी रूपमें तुमसे वचनबद्ध हों तो उससे उद्योग मन्दिर और मैं दोनों ही बँधे हुए हैं। अतः तुमने जो पैसा माँगा है वह तुम्हें मिलना चाहिए या नहीं उसका निर्णय तो जोशी ही कर सकते हैं या फिर उनसे बात करनेके बाद मैं अपनी राय दे सकता हूँ। यदि भाई रमणीकलाल या शिवाभाई इस सम्बन्धमें कुछ जानते हों तो इस मामलेका तुरन्त निबटारा हो सकता है। तुम उनसे मिलना। इस प्रकार यदि तुम्हें पैसा दिया जा सके तो भी तुम्हारे सामने नैतिक प्रश्न तो बना ही रहेगा।

तुम्हारे छुट्टीपर जानेके बारेमें —

यह काम भाई रमणीकलालके अधिकार-क्षेत्रका ही है। यदि वे जाने दें तो अवश्य जाओ। तुम्हारा जाना आवश्यक तो है ही।

तुम्हें हिसाब-किताबका काम दे दिया गया है यह मुझे भी गलत ही लगता है। मैं यह नहीं जानता कि तुम्हें यह काम क्यों दिया गया है। सामान्यतः मेरी राय यह है कि जो नये लोग आयें जबतक वे कताई और उससे सम्बन्धित क्रियाएँ भलीभाँति न सीख लें तबतक बही-खाता आदि रखनेकी उनकी जानकारीका लाभ नहीं उठाना चाहिए।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (एस० एन० १५८३९)की माइक्रोफिल्मसे।

२५१. पत्र: प्रभाशंकर पट्टणीको

२ दिसम्बर, १९२९

सुज्ञ भाईश्री,

आपका पत्र और तार मिला। मैंने यह मान लिया था कि आप यह समझ लेंगे कि मेरा उत्तर तो उसीके बारेमें है जो वहाँ हुआ। कामकी फसल इतनी जोरदार है कि उससे मेरा दम ही घुटने लगा है। यदि ऐसा न होता तो आपको विस्तारसे लिखता। फिलहाल तो इतना ही आश्वासन दे सकता हूँ कि आपके जैसे मित्र समय-समयपर मुझे लिखते हैं उसे मैं ध्यानमें रखता हूँ। मैं आपको इतना विश्वास दिलाता हूँ कि मैं वही करूँगा जो मेरी अन्तरात्मा कहेगी। अपने कुकर्मोंके कारण यदि मेरी अन्तरात्मा जड़ हो जाये और कोई दूसरी शक्ति काम करने लगे तो कौन जाने, अन्तरात्मा कब पुकारती है तथा षड्रिपुओंमें से एक या सब, कब सिरपर चढ़कर बोलते हैं इस बातका कैसे पता चले? इसका पता तो मृत्युके बाद ही चल सकता है न? मेरी तबीयत बहुत अच्छी है। लगता है आप महीनेमें एकबार आश्रम जानेके अपने वचनका ठीक-ठीक पालन कर रहे हैं।

मोहनदासके वन्देमातरम्

गुजराती (जी० एन० ५९११)की फोटो-नकलसे।

२५२. पुर्जा: रेजिनॉल्ड रेनॉल्ड्सको

मौनवार [३ दिसम्बर, १९२९][1]

प्रिय रेनॉल्ड्स,

मैं आज आनेवाले मेहमानोंके सम्बन्धमें कुछ चिन्तित हूँ। मेरी यह हार्दिक इच्छा है कि हम अपनी शक्तिभर उन्हें आवश्यक शारीरिक सुविधाएँ मुहैय्या कर दें। आप कृपया उनका आथित्य करनेमें सीतलासहायकी मदद करें और इसका खयाल रखें कि इस अपरिचित जगहपर उन्हें अजनबी-जैसा न लगे।

मो० क० गांधी

अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ४५३८) की फोटो-नकलसे।
सौजन्य: स्वार्थमोर कालेज, फिलाडेल्फिया

१. देखिए "पुर्जा: रेजिनॉल्ड रेनॉल्ड्सको", तथा "पत्र: मीराबहनको", २-१२-१९२९।

२५३. भाषण: प्रार्थना-सभा, साबरमती आश्रममें

४ दिसम्बर, १९२९

किसीके मनमें यह प्रश्न उठेगा कि आश्रम और विवाह, इन दो बातोंका मेल कैसे बैठ सकता है?[1] इसका उत्तर यह है कि इसमें परस्पर कुछ भी विरोध नहीं है। जो ब्रह्मचर्यका पालन कर सकें वे ब्रह्मचारी रहें और जो न कर सकें वे विवाह कर लें, यह उचित है। कोई यह न समझे कि ब्रह्मचारी सभी अच्छे होते हैं और विवाहित सभी घटिया होते हैं। हो सकता है कि ग्रहस्थ गुणवान हो और ब्रह्मचारी दम्भी। यही कारण है कि विवाहको उपाधी समझते हुए भी हम इष्ट मानते हैं।

इस विवाहमें हम एक कदम आगे बढ़े हैं। मणिलाल (बापूके द्वितीय पुत्र) के विवाहमें हमने जातिकी बाड़ तोड़ी, इस विवाहमें प्रान्तकी सीमाको लांघा। गुजरातसे मेवाड़ गये। यह शुभ चिह्न है। परन्तु इससे हमारी जिम्मेवारी भी बढ़ गई है। हम जो विवाह यहाँ करते हैं वे धार्मिक विधि और धार्मिक दृष्टिसे करते हैं। उनमें मर्यादा-पालनकी चेष्टा रहती है। आजके इस आपत्कालमें देशकी स्थितिको देखकर यदि इन्द्रिय-निग्रह कर सकें तो बहुत अच्छी बात है; किन्तु यह बात जोर-जब्रसे नहीं हो सकती। इसलिए यदि लड़का-लडकी चाहें तो उनका विवाह कर देना चाहिये और उनके लिये जोड़ी ढूंढकर अपने आशीर्वादके साथ उनका विवाह कर देना आश्रमका कर्त्तव्य है। अबतक इसीके अनुसार यहाँ व्यवहार होता रहा है और उसका फल बुरा नहीं हुआ। हम बिना किसी आडंबरके, थोड़े समयमें, पवित्र हृदयके द्वारा विवाह-विधि सम्पन्न करते हैं, यह हर्षकी बात है।

इस विवाहके आरंभमें क्षोभ और व्यग्रता उत्पन्न हुई थी; पर धीरे-धीरे वह शान्त हो गई। इस सम्बन्धमें जितनी सावधानी रखी जा सकती है उतनी रखी गई है। वर-वधूकी सम्मती लेकर ही यह विवाह किया गया है। इसमें मैंने व्यक्तिगत सुखका विचार नहीं किया है। इसी बातको अपनी दृष्टिके सामने रखा है कि देशका हित किस बातमें है। इस विवाहके द्वारा एक प्रान्त दूसरे प्रान्तके निकट आता है। यह पहला प्रयोग है।

श्री शंकरलालको संबोधन करके कहा:

इसमें जितनी जिम्मेवारी उमियापर है उससे सौ-गुनी ज्यादा आपपर है। उमियाकी हिम्मतको देखकर मुझे खुशी हुई है। उसकी इच्छाओंको जानते रहियेगा। हिन्दू समाजमें स्त्रीका स्त्रीत्व कम हो गया है। वह अबला हो गई है। इसलिये आप उसे स्वतन्त्रता दीजियेगा। आप तो स्काउट हैं। स्काउटका धर्म है सबकी रक्षा करना। उमिया यह न अनुभव करे कि मुझे दुःख है। वह यही समझती रहे कि यहाँ तो

[1] इस दिन आश्रममें शंकरलाल अग्रवाल और उमियाका विवाह हुआ था।

सब मुझपर प्रेमामृत बरसाते हैं। मैं उसे हिन्दी अधिक न पढ़ा सका — सो उसे निबाह लीजियेगा। यदि सब अपनी-अपनी जिम्मेदारीको समझकर काम करें, तो मारवाड़ी और गुजरातीमें भेद नहीं रह सकता। धर्म और मर्यादाको कभी न भूलियेगा। दोनोंसे कहता हूँ कि मर्यादित रहकर भोगोंको भोगना और अपने देशको कभी न भूलना।

उमिया तुमसे क्या कहूँ? इतना समय नहीं कि तुमसे अकेलेमें बातचीत करूँ। तुमने बहादुरी दिखाई है। तुम अपने कुल, प्रान्त और आश्रमकी कीर्ति बढ़ाना। तुम्हारे हाथसे कोई बुरा काम न हो। मैंने तुम दोनोंको छोटासा हार पहनाया है। पर मेरी दृष्टिमें यह बड़ा है। 'गीताजी'का रोज पाठ करना। जब-जब मनमें निराशा आने लगे तब तब 'भजनावलिमें' से भजन गाना। फुरसतके समय तकली कातना और आनंदसे रहना। ईश्वर तुम लोगोंको सच्चे सेवक-सेविका बनावे, दीर्घायु करे। तुम दोनों इस तरह जीवन बिताना कि मुझे पश्चाताप न हो।

बापू : मैंने क्या देखा, क्या समझा?

२५४. हमारे भाईबन्द — पेड़[1]

यद्यपि समय बहुत हो चुका था फिर भी गांधीजी सोनेसे पहले थोड़ी रुई धुनकर पूनियाँ बना लेना चाहते थे। मैं धुनकी वगैरा ठीक करनेके लिए चली गई, और जल्दीमें एक स्थानीय स्वयंसेवकसे पासके बगीचेमें जाकर बबूलके कुछ पत्ते ले आनेको कहा। धुनकीकी तांतपर मलनेके लिए इन पत्तोंकी जरूरत पड़ती है।

स्वयंसेवक एक बड़ी-सी डाली ले आया, और जैसे ही उसने वह मेरे हाथपर रखी, मुझे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि उसके-सारेके सारे नन्हें पत्ते एक-दूसरेसे सटकर पड़े हुए थे।

मैं उन्हें लेकर गांधीजीके कमरेमें गई और बोली : "बापूजी, देखिए तो, ये नन्हें-नन्हें हरे पत्ते सो रहे हैं!"

गांधीजीने सिर उठाकर देखा। उनकी आँखोंमें रोष और दया भरी हुई थी। वह बोले : "सचमुच ही सो रहे हैं। क्योंकि पेड़ भी हमारे जैसे ही प्राणवान प्राणी हैं। उनमें जान है, वे सांस लेते हैं, हमारी ही तरह वे खाते-पीते हैं और हमारी ही तरह उन्हें सोनेकी जरूरत है। रातको जब कि पेड़ आराम करते हैं, उस समय पत्तियाँ तोड़ना बहुत बुरी बात है; दुःखद है। तुम इतनी सारी पत्तियाँ क्यों तोड़ लाई हो? दो-चार पत्तियाँ ही तो चाहिए थीं। कलकी सभामें फूलोंके बारेमें मैंने जो-कुछ कहा था, सो तो तुमने सुना ही होगा; मुझे यह देखकर कितना ज्यादा दुःख होता है कि लोग मुझपर बरसाने या

१. देखिए पृष्ठ २४३-४४।

मेरे गलेमें माला डालनेके लिए फूलकी ढेरों कोमल कलियाँको तोड़-मरोड़ डालते हैं। इस तरह इतनी रात बीते उस पेड़को कष्ट पहुँचानेके लिए, जब उसने सोनेके लिए अपनी पत्तियाँ समेट ली थीं किसीको भेजना, मूर्खता ही तो थी न? हमें शेष सब प्राणी-जगतसे अपना अत्यन्त सजीव प्रेम महसूस करना चाहिए।

मारे शर्मके सिर झुकाकर मैंने कहा: "बापू, आप ठीक कहते हैं। मैं समझ रही हूँ, मैं जानती हूँ कि सचमुच मैंने बड़ी बेवकूफी की। आगेसे मैं हमेशा खुद जाया करूँगी और जहाँतक बन सकेगा रात पड़नेपर कभी बिला जरूरत पत्तियाँ तोड़कर किसी पेड़की मीठी नींद नहीं तोड़ूँगी।

और जब मुझे यह विचार आया कि एक नहीं, बल्कि अनेक बार मुझे अपने इन बनवासी भाइयोंके द्वारा शान्ति मिली है, ये मेरे पथप्रदर्शक बने हैं, तब तो मेरी शर्मका ठिकाना न रहा। बहुधा किसी बड़े पुराने पेड़के तनेसे लिपटकर मैंने उससे उसकी मूक भाषामें शान्ति और बुद्धिमानीका सन्देश पाया है।

फिर भी मैं इतनी निर्दय कैसे बन सकी।

पाठक इन पंक्तियोंको किसी पागलकी बहक न समझें, न मुझपर या मीराबाई पर असंगतिका दोष ही मढ़ें। सम्भव है, वे कहें कि गाड़ियों शाक-भाजी खानेवाले आदमीको रातको सोते हुए पेड़की पत्ती न तोड़नेका उपदेश देना तो ऊँट निगलकर चींटीसे परहेज करना है। 'कसाई भी किसी हदतक दयालु हो सकता है।' जो आदमी मांस खाता है, वह रातमें सोती हुई भेंड़ोंके समूहको कत्ल नहीं करता। मनुष्यताका सार तो यह है कि प्राणी जगतकी हरएक चीजकी, चाहे वह पेड़ हो या पशु हो, – भरसक कद्र करे। जो आदमी अपने मनोविनोदके लिए दूसरोंके दुःख-दर्दका बहुत कम खयाल रखता है, वह निश्चय ही मनुष्य नहीं है; मनुष्यसे कुछ कम है। अर्थात् वह बुद्धिहीन है –– विचारहीन है।[१]

भारतने पेड़ों और अन्य चेतन वस्तुओंका भरपूर आदर करना जाना है। उसके कवियोंने जंगलमें दमयन्तीको पेड़-पौधोंसे रोते हुए अपना दुःख वर्णित करते हुए दिखाया है। पशु-पक्षियोंके साथ पेड़-पौधे भी शकुन्तलाके साथी थे। महाकवि कालिदास हमें बताते हैं कि उनसे बिछुड़ते हुए शकुन्तलाको कितना दुःख हुआ था।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ५-१२-१९२९ और **नवजीवन**, १२-१-१९३०

१. इसके आगेका अनुच्छेद **नवजीवन**, १२-१-१९३० से लिया गया है।

२५५. जमींदार और ताल्लुकेदार

हालके संयुक्त प्रान्तके दौरेमें मुझे जितना हर्ष इस बातको देखकर हुआ उतना और किसी बातसे नहीं हुआ कि कई युवक जमींदारों और ताल्लुकेदारोंने अपने जीवनको काफी सादा बना लिया है और देशभक्तिपूर्ण उत्साहसे वे किसानोंका भार कम कर रहे हैं। मैंने बहुतसे जमींदारोंके कथित अत्याचारोंके भयंकर वर्णन सुने थे और यह भी सुना था कि वे कैसे सभी तरहके मौकोंपर जायज और नाजायज कर वसूल करते हैं जिसके परिणामस्वरूप किसानकी स्थिति बिलकुल गुलाम की-सी हो गई है। इसलिए इस तरहके कई नौजवान ताल्लुकेदार जब मेरे देखनेमें आये तो मुझे सानन्द आश्चर्य हुआ।

परन्तु अभी इस तरहके सुधारकी और भी जरूरत है और इस सुधारको पूर्णता तक पहुँचना है। अभीतक इनमें जो अच्छेसे-अच्छे ताल्लुकेदार और किसान हैं उनके बीच एक बड़ी खाई है। जो थोड़ा-सा काम किया गया है उसके लिए उनके मनमें अहंकारमूलक कृपाकी और आत्म-सन्तोषकी भावना भी है, जो नहीं होनी चाहिए। असल बात यह है कि कितना भी किया जाये, वह किसानोंको उनका प्राप्य देरसे देनेके सिवाय और कुछ नहीं है। यह वर्णाश्रम-धर्मकी भयंकर विकृतिका परिणाम है कि तथाकथित क्षत्रिय अपनेको श्रेष्ठ मानता है और गरीब किसान परम्परागत निकृष्टताका दर्जा चुपचाप यह मानकर स्वीकार कर लेता है कि उसके भाग्यमें यही लिखा है। यदि भारतीय समाजको शान्तिपूर्ण तरीकेसे सच्ची प्रगति करनी है, तो धनिक वर्गको निश्चित रूपसे यह स्वीकार कर लेना होगा कि किसानके भी वैसी ही आत्मा है जैसी उनके है और अपनी दौलतके कारण वे गरीबसे श्रेष्ठ नहीं हैं। जैसा जापानके उमरावोंने किया, उसी तरह उन्हें भी अपने-आपको संरक्षक मानना चाहिए और उनके पास जो धन है उसे यह समझकर रखना चाहिए कि उसका उपयोग उन्हें अपने संरक्षित किसानोंकी भलाईके लिए करना है। उस हालतमें वे अपने परिश्रमके शुल्कके रूपमें वाजिब रकमसे ज्यादा नहीं लेंगे। इस समय धनिक वर्गके सर्वथा अनावश्यक दिखावे और फिजूलखर्ची तथा जिन किसानोंके बीच वे रहते हैं उनके गन्दगीसे भरे वातावरण और पीस डालनेवाले दारिद्र्यके बीच कोई अनुपात नहीं है। इसलिए एक आदर्श जमींदारको चाहिए कि वह किसानका बहुत कुछ बोझा, जो वह अभी उठाये चल रहा है, एकदम कम कर दे। वह रैयतोंके गहरे सम्पर्कमें आये और उनकी आवश्यकताओंको जानकर उस निराशाके स्थानपर, जो उनके प्राणोंको ही सुखाये डाल रही है, उनमें आशाका संचार करे। वह रैयतोंमें सफाई और तन्दुरुस्तीके नियमोंकी जो अनभिज्ञता है, उसे बर्दाश्त न करे और उन्हें इस बारेमें समझाये। किसानोंके जीवनकी आवश्यकताओंकी पूर्ति करनेके लिए वह स्वयं अपनेको दरिद्र बना ले। वह अपने संरक्षित किसानोंकी आर्थिक स्थितिका अध्ययन करे और ऐसे विद्यालय खोले

जिनमें किसानोंके बच्चोंके साथ-साथ वह अपने खुदके बच्चोंको भी पढ़ाये। वह गाँवके कुएँ और तालाबोंको साफ कराये। वह किसानोंको अपनी सड़कें और अपने पाखाने खुद आवश्यक परिश्रम करके साफ करना सिखाये। वह किसानोंके बे-रोकटोक इस्तेमालके लिए अपने खुदके बाग निःसंकोच भावसे खोल दे। जो गैरजरूरी इमारतें वह अपनी मौजके लिए रखता है, उनका उपयोग अस्पताल, स्कूल या ऐसी ही बातोंके लिए करे। यदि पूँजीपति वर्ग कालका संकेत समझकर सम्पत्तिके बारेमें अपने इस विचारको बदल डाले कि उसपर इस वर्गका ईश्वर-प्रदत्त अधिकार है, तो जो सात लाख धूरे आज गाँव कहलाते हैं उन्हें आनन-फानन शान्ति, स्वास्थ्य और सुखके धाम बनाया जा सकता है। मुझे दृढ़ विश्वास है कि पूँजीपति जापानके उमरावोंका अनुसरण करनेसे सचमुच कुछ खोयेगा नहीं और सब-कुछ पायेगा। केवल दो मार्ग हैं जिनमें से हमें अपना चुनाव कर लेना है। एक तो यह कि पूँजीपति अपना अतिरिक्त संग्रह स्वेच्छासे छोड़ दें और उसके परिणामस्वरूप सबको वास्तविक सुख प्राप्त हो जाये। दूसरा यह कि अगर पूँजीपति समय रहते न चेते तो करोड़ों जाग्रत किन्तु अज्ञानी और भूखे रहनेवाले लोग देशमें ऐसी गड़बड़ी मचा देंगे कि एक बलशाली हुकूमतकी फौजी ताकत भी उसे नहीं रोक सकेगी। मैंने यह आशा रखी है कि भारतवर्ष इस विपत्तिसे बचनेमें सफल रहेगा। संयुक्त प्रान्तके कुछ नौजवान ताल्लुकेदारोंसे मेरा जो घनिष्ठ सम्पर्क हुआ है उससे मेरी इस आशाको बल मिला है।

[अंग्रेजीसे]
यंग इंडिया, ५-१२-१९२९

२५६. खादी और ईमानदारी

श्री चक्रवर्ती राजगोपालाचारीने एक दिलचस्प पत्र भेजा है; कुछ व्यक्तिगत बातों और गैरजरूरी पंक्तियोंको निकाल कर मैं उसे यहाँ दे रहा हूँ:[1]

> **. . . मैं कबूल करता हूँ कि अबतक मैं खादीके प्रति लापरवाह रहा। लेकिन अब मैंने जाना है कि खादी-कार्यकर्त्ता सत्यके अनुयायी होते हैं। परसों मैं कोयम्बटूर खादी-भण्डारमें गया था . . . मेरे पास उस समय १०,००० रु० के नोट थे। मैंने उन्हें मेजपर रख दिया। फिर मुझे रुपयोंका कोई खयाल नहीं रहा, और मैं भण्डारसे चला आया। कुछ समय बाद आपके प्रबन्धकने वह रकम देखी; वह पोदानुर आये और वह रकम मुझे सौंप गये।**

इस पत्रसे हमारी बुद्धिहीनता और तर्कशून्यताका पता चलता है। वस्तुतः खादी और ईमानदारीके बीच कोई खास सम्बन्ध नहीं है। बदमाशोंको भी अपने आपको ढँकना है और इसलिए वे भी खादी पहन सकते हैं। मुझे दुःखके साथ कबूल करना पड़ता है कि अखिल भारतीय चरखा संघके अधीन काम करनेवाले सब कार्यकर्त्ता

१. केवल कुछ अंश ही यहाँ दिये जा रहे हैं।

हमेशा ईमानदार साबित नहीं हुए हैं। कितना अच्छा होता कि उनमें से हरएक ऐसा होता जो कभी लालचका शिकार न बन सकता। लेकिन अफसोस! सब सेवाओंकी तरह खादीके क्षेत्रमें भी बुरे लोग मिल जाते हैं। थोड़ी देरके लिए यह मान लें कि सब खादी-सेवक विशुद्ध होते हैं, तो भी हो सकता है कि खादी स्वयं ही एक भयंकर भूल हो या आर्थिक क्षतिका कारण हो। लेकिन मैं जानता हूँ कि कई ऐसे लोग हैं जो खादीके गुणोंपर मोहित होकर खादी नहीं पहनते, बल्कि किन्हीं अन्य कारणोंसे, जिनका खादीसे कोई वास्ता नहीं है, खादी-प्रेमी बने हैं; और मैं कुछ ऐसे लोगोंको भी जानता हूँ, जिन्होंने खादी पहनना छोड़ दिया है, और सो भी उसे गलत चीज समझ कर नहीं, बल्कि सिर्फ इसलिए कि उन्हें कुछ खादी-प्रेमियोंके किये कामों या त्रुटियोंसे नफरत हो गई थी। अतएव इन दस हजार रुपयोंवाले सज्जनने जो प्रत्युपकार किया है उससे मिलनेवाले आश्वासनकी ओर मैं लुब्ध होकर नहीं देखता और यह मानता हूँ कि स्थायी होनेके लिए खुद खादीको ही अजेय आधारपर खड़ा होना चाहिए। और उसका यह गुण तो, सौभाग्यसे, दिन-ब-दिन सिद्ध होता जा रहा है!

उक्त पत्रसे जो दूसरा विचार उठता है, वह कुछ शर्मनाक है। कोई यह देखकर बेहद खुश क्यों हो कि एक आदमीमें दूसरेके धनको न चुरानेकी सामान्य ईमानदारी है? क्या हम इतने गिर गये हैं कि यदि कोई हमारी दुकानपर कीमती चीज भूल जाये तो उसे इस बातका विश्वास ही न रहे कि वह चीज अब भी उतनी ही सुरक्षित होगी जितनी वह चीज उसके पास होनेपर थी। कुछ भी क्यों न हो, इस पत्रसे खादीसेवामें लगे हुए स्त्री-पुरुषोंको एक सबक तो मिलता ही है। उनकी ईमानदारीसे कई धनाढ्य दरिद्रनारायणके पुजारी बन सकते हैं। और दरिद्रनारायणको तो इन सबकी जरूरत है ही।

[अंग्रेजीसे]
यंग इंडिया, ५-१२-१९२९

२५७. बारडोलीकी कहानी

महादेव देसाईने, जो बारडोली सत्याग्रह आन्दोलनमें सरदार वल्लभभाईके साहित्यिक सचिव थे, उस महान एवं प्रसिद्ध संघर्षका इतिहास कुछ महीने पहले गुजरातीमें लिखा था। सरदार वल्लभभाईकी इच्छा थी कि इसका एक अंग्रेजी संस्करण भी प्रकाशित किया जाये, ताकि ज्यादा लोगोंको घटनाओंका सही विवरण मालूम हो सके। महादेव देसाईको उन उत्तेजनापूर्ण दिनोंकी हृदय हिला देनेवाली घटनाओंकी प्रत्यक्ष और गहरी जानकारी थी। अब उन्होंने जनताके सामने उसका अंग्रेजीका संस्करण भी रख दिया है। अगले सालके दौरान आनेवाली उथल-पुथलको ध्यानमें रखते हुए हर राष्ट्रीय कार्यकर्त्ताको यह पुस्तक पढ़नी चाहिए। इसकी पाठ्य-सामग्री ३२३ पृष्ठों में है और परिशिष्ट तथा सांकेतिका मिलाकर ३६३ पृष्ठ हो जाते हैं। यह नवजीवन प्रेस द्वारा प्रकाशित की गई है। इसकी कीमत रु० २-८-० है। गत्तेकी जिल्द है और

उसपर खादीका अस्तर है। इसमें खास तौर पर तैयार किया गया नकशा, अच्छे चित्र आदि और आये हुए गुजराती शब्दोंकी अर्थ-तालिका भी है जो उपयोगी है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ५-१२-१९२९

२५८. हमारा भ्रम

तुलसीदासजीने कहा है:

रजत सीप महं भास जिमि, यथा भानुकर वारि।
जदपि मृषा तिहुं काल सोई, भ्रम न सके कोउ टारि।।

इसमें जो गूढ़ सत्य भरा है, उसका अनुभव मुझे तो नित्य प्रति होता रहता है। अच्छी या बुरी, जो बात हमारे खयालमें या हृदयमें ठँस गई है, वह तबतक नहीं मिटती, जबतक तजुरबा नहीं होता।

ठीक इसी तरह अस्पृश्यता-रूपी भ्रम हिन्दू जनताके हृदयमें घर कर गया है। बुद्धिके सहारे हम देखते हैं कि कोई अस्पृश्य नहीं है। जनताके पास अस्पृश्यकी कोई संज्ञा या परिभाषा नहीं है। यदि अस्पृश्य अपनी मानी गई काल्पनिक अस्पृश्यताको छिपाये, तो उसे पहचाननेवाले चन्द आदमियोंको छोड़कर कोई इस बातका कयास भी नहीं कर सकेगा कि वह अस्पृश्य है। इस तरह कई 'अस्पृश्य' भाई हर जगह बगैर किसी रोक-टोकके मन्दिरोंमें और दूसरे स्थलोंमें चले जाते हैं।

यदि अस्पृश्यता कोई धर्म होता तो एक प्रान्तका अस्पृश्य हरएक प्रान्तमें अस्पृश्य माना जाता। किन्तु वस्तुतः असमके अस्पृश्य सिन्धमें अस्पृश्य नहीं माने जाते। त्रावणकोरके अस्पृश्य कहीं अस्पृश्य नहीं हैं। वहाँकी अस्पृश्यता, अनुपगम्यता, इत्यादिकी तो और जगहोंमें गन्धतक नहीं है।

हिन्दू जातिमें अस्पृश्यताका यह भ्रम इतना घोर — इतना भयानक हो उठा है। श्री जमनालालजी इसे मिटानेका खूब प्रयत्न कर रहे हैं। उन्हें मन्दिरोंको खुलवानेकी अपनी प्रवृत्तिमें काफी सफलता मिलती जाती है। जबलपुरमें एक साथ आठ मन्दिरोंका खुलना, उसमें प्रतिष्ठित लोगोंका शामिल होना इत्यादि आशाजनक बातें हैं। इस भ्रमको मिटानेका राजमार्ग तो यह है कि जिनका भ्रम दूर हो चुका है वे अपने कार्योंसे भ्रममें डूबे हुओंको बता दें कि अस्पृश्यता नामका कोई धर्म है ही नहीं।

हिन्दी नवजीवन, ५-१२-१९२९

२५९. तार: सरोजिनी नायडूको

[६ दिसम्बर, १९२९ से पूर्व][1]

देवी सरोजिनी नायडू
नैरोबी

वहाँके हमारे देशवासी किसी भी दशामें राष्ट्रीय सम्मानके प्रश्नपर समझौता न करें।

गांधी

अंग्रेजी (एस० एन० १५५१८) की फोटो-नकलसे।

२६०. तार: मोतीलाल नेहरूको

अहमदाबाद
६ दिसम्बर, १९२९

पण्डितजी नेहरू,
लखनऊ

आपका तार मिला।[2] मैं दिल्लीमें अपनी उपस्थिति सर्वथा अनावश्यक समझता हूँ। खयाल है कि आपके उनसे मिलनेसे स्थितिका तकाजा पूरा निभ जायेगा। यदि जरूरी हो तो वर्धा जवाब[3] दीजिए।
[अंग्रेजीसे]

गांधी

मोतीलाल नेहरू कागजात, फाइल सं०-जी-१।
सौजन्य: नेहरू स्मारक संग्रहालय और पुस्तकालय

१. सरोजिनी नायडूने ६-१२-१९२९ से नैरोबीमें हुई कांग्रेसकी अध्यक्षता की थी।

२. ५-१२-१९२९ का तार; वह इस प्रकार था: "आपका पत्र मिला। २३ तारीखके लिए वाइसरायका निमन्त्रण मुझे खुद सप्रूके जरिए मिला और मैंने स्वीकार कर लिया। वाइसरायका इरादा बहुत पहले ही आपको भी बुलानेका था लेकिन उन्हें आशंका थी कि आपको फुर्सत नहीं है। उन्हें अब सूचित कर सकते हैं कि आपका मिलना सम्भव। उनका उद्देश्य कांग्रेसके विचारोंपर हमारे साथ खुलकर बातचीत। सर्वथा भिन्न विचारोंवाले गैरकांग्रेसी लोगोंकी उपस्थितिसे लाभ नहीं होगा। मैं समझता हूँ कि केवल हम दोनों ही को उनसे मिलना चाहिए इसलिए विट्ठलभाईको तार नहीं दिया। अपने विचार तार द्वारा सूचित कीजिए।"

३. ७-१२-१९२९ को तार जो इस प्रकार था: "आपका तार मिला। समझता हूँ कि मुलाकातमें आपकी मौजूदगी जरूरी है। विट्ठलभाई कल रात दिल्लीमें मिल रहे हैं। तार दूँगा।"

२६१. पत्र : हरदत्त शर्माको[1]

[७ दिसम्बर, १९२९से पूर्व][2]

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला। मैंने दूसरा (कारण) केवल सत्यकी पूर्तिके लिए दिया था। निर्णायक कारण यह था कि कांग्रेस सप्ताहके दौरान जो राजनीतिक स्थिति हमारे सामने आयेगी उसके अलावा दूसरी किसी भी चीजके साथ न्याय कर पानेमें मैं पूरी तरह असमर्थ था।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]
ट्रिब्यून, १०-१२-१९२९

२६२. पत्र : रमणीकलाल मोदीको

वर्धा
७ दिसम्बर, १९२९

चि० रमणीकलाल,

हम लोग सुबह ६ बजे यहाँ पहुँचे।

ताराके बारेमें जुगतरामसे मेरी खूब खुलकर बातचीत हुई। जुगतरामका विचार है कि यदि तारा वर्धामें रहे तो अच्छा हो और स्वस्थ होकर उसे वेड़छीमें काम पर लग जाना चाहिए। जैसा कि हमने सोचा था जुगतराम वही काम उसे देगा। इस बातचीतके बाद कल मैंने तुम्हें एक पत्र लिखा था। मैं आज तारका इन्तजार कर रहा हूँ। इसके साथ मैं वे सब कागज-पत्र भेज रहा हूँ जो तुम्हारे पास फाइलमें रखे जाने चाहिए।

इस बार आश्रममें जो महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं, उन्हें नोट कर लेना। जिन-जिन कामोंमें जिस-जिससे गफलत हुई हो उसका ब्यौरा हमें अवश्य रखना चाहिए। जैसे मान लो कि पाठशालामें किसीने नियमानुसार अपना काम नहीं किया तो उसके

१. यह पत्र समाज परिषद्की अध्यक्षता करनेमें अपनी असमर्थताके विषयमें गांधीजीने जो कारण दिये थे उन्हें स्पष्ट करनेके लिए गांधीजीसे की गई हरदत्त शर्माकी प्रार्थनाके उत्तरमें लिखा गया था। देखिए "तार : रुचिराम साहनीको", २३-११-१९२९।

२. ***ट्रिब्यून***की रिपोर्टकी तारीख ७ दिसम्बर है।

बारेमें एक नोट कार्यालयको भेजा जाना चाहिए। भले ही उसके खिलाफ कोई कदम न उठाया जाये किन्तु इस बातकी जानकारी उस विभाग-विशेषके व्यवस्थापक तथा मुख्य व्यवस्थापकको अवश्य होनी चाहिए। जिम्मेदार विद्यार्थियों अर्थात् १६ वर्षकी आयुके सभी विद्यार्थियोंके पत्रक पूरे होने चाहिए, जिससे हमें यह पता चल सके कि उनमें से कौन कितने दिन दोनों समयकी प्रार्थनामें आया था और किसने किस दिन सूत्र-यज्ञ किया या नहीं किया था। सभीको अपना सूत हर हफ्ते अवश्य जमा करवा देना चाहिए और उस पूरे सूतको अलगसे इकट्ठा करके उसकी खादी बुनवा लेनी चाहिए। किसीसे १६० [गज]से अधिक तार इसमें कदापि नहीं लेने चाहिए।

सफाई विभागका काम अवश्य नियमित हो जाना चाहिए। यह काम जिसके जिम्मे हो उसे प्रतिदिन एक बार पाखानोंमें झांक लेना चाहिए। गंगाबहनके अतिरिक्त कुछ अन्य लोगोंको रोटी बनाना सीख लेना चाहिए।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (जी० एन० ४१५५) की फोटो-नकलसे।

२६३. पत्र : छगनलाल जोशीको

वर्धा
७ दिसम्बर, १९२९

चि० छगनलाल,

आज अधिक नहीं लिख सकूँगा। चरखा संघकी बैठकमें भाग लेने या सिर्फ मुझसे मिलनेकी खातिर वर्धा आनेकी तुम्हारी इच्छा हो और आ सको तो अवश्य चले आना। किन्तु किसी तरहकी परेशानी उठाकर आनेकी जरूरत नहीं है। मगनलालके स्मारकके बारेमें मैं अवश्य विचार करूँगा। बा, प्यारेलाल, कुसुम, बाल और कमला मेरे साथ हैं। अन्य दो व्यक्ति बनारससे आये हुए हैं।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (जी० एन० ५४७१) की फोटो-नकलसे।

२६४. पत्र : मथुरादास त्रिकमजीको

७ दिसम्बर, १९२९

तुम्हारे निश्चयसे[1] मुझे बहुत प्रसन्नता हुई। . . . यहाँ भी तुम्हारा समय बेकार तो जाता ही नहीं। दिलीप[2] व तारा[3] शारीरिक तथा मानसिक शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं। अलमोड़ा हिमालयमें है और हिमालयमें असंख्य साधु रहते आये हैं। यदि तारा इस बातको समझ ले कि हिमालयमें रहकर अनेक साधुओंने आत्मदर्शन किया है तो वह वहाँ रहते हुए आत्मिक शिक्षा भी प्राप्त कर सकेगी।

[गुजरातीसे]

बापुनी प्रसादी

२६५. अपील : अहमदाबादके मजदूरोंसे[4]

७ दिसम्बर, १९२९

पंच, दीवान बहादुर कृष्णलाल मोहनलाल झवेरीके फैसला देनेके बाद महात्मा गांधीने मजदूरोंके नाम एक अपील जारी की है जिसमें वह कहते हैं —— चूँकि पंचने उनकी माँग पूरी तरह स्वीकार नहीं की है इसलिए जैसा मजदूरोंको दुःख लगा होगा वैसा ही मुझे भी लगा है। उनकी माँग बिलकुल सही थी। परन्तु पंचफैसलेका सिद्धांत स्वीकार कर लेनेके बाद उन्हें मध्यस्थोंका या पंचका निर्णय अवश्य मान लेना चाहिए, चाहे वह उन्हें पसन्द हो या न हो।

पंचने एक सिद्धान्त स्वीकार किया है जो मजदूरोंके दृष्टिकोणसे बड़े महत्त्वका है। वे कई बरसोंसे संघर्ष करते आ रहे हैं कि उन्हें जीवन-निर्वाह करने योग्य मजदूरी भी नहीं मिलती; इसे पाना उनका हक है और उसमें कोई कटौती नहीं की जा सकती। पंचने यह बात सिद्धान्त रूपमें स्वीकार कर ली है। वह इस बातसे सहमत है कि उन्होंने खर्चेके जो आँकड़े दिए हैं वे न्यायसंगत हैं और उन आँकड़ोंकी तुलनामें उनकी मजदूरी कम है। इस आधारपर उनकी माँग पूरी तरह स्वीकार होनी थी। परन्तु पंचने जो-कुछ दिया है, उससे सन्तुष्ट होना उनका कर्त्तव्य है।

१. अलमोड़ामें रहनेके।

२. मथुरादास त्रिकमजीके पुत्र।

३. मथुरादास त्रिकमजीकी पत्नी।

४. इस विषयपर गांधीजीके लेखोंके लिए देखिए "एक महत्त्वपूर्ण फैसला" १२-१२-१९२९। और "मिल मजदूरोंकी माँग", १५-१२-१९२९। पंचका फैसला *यंग इंडिया*, १२-१२-१९२९ में "अहमदाबादके मजदूर", शीर्षकसे छपा था।

बहरहाल इसका यह मतलब नहीं कि वे निर्वाह-योग्य मजदूरी पानेका अपना प्रयत्न छोड़ दें। वह प्रयत्न सभी न्यायसंगत तरीकोंसे किया जाता रहेगा और जो पहलेसे पहला उपयुक्त अवसर प्राप्त होगा वे उसके मिलते ही इस बातकी मांग करेंगे। इस दौरान उनका यह कर्तव्य है कि अभी उनकी मजदूरीमें जो वृद्धि हुई है, वे उसका सदुपयोग अपनी बुरी बातें छोड़कर अपना सुधार करके और अपनी कार्यकुशलता बढ़ाकर करें। पंचने जितनी सावधानीसे उनके मामलेकी छानबीन की है, उसके लिए उन्हें पंचको धन्यवाद देना चाहिए।

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे क्रॉनिकल, १०-१२-१९२९

२६६. टिप्पणी

गुजरात विद्यापीठ

गुजरात विद्यापीठकी ओरसे सरदार वल्लभभाई और काकासाहब कालेलकरने जो अपील प्रकाशित की है, उसकी ओर मैं पाठकोंका ध्यान खींचता हूँ। इस विद्यापीठने जो सेवा की है और असहयोगमें जिस प्रकार सहायता पहुँचाई है, वह गुजरातसे छिपी नहीं है। आचार्य गिडवानी और आचार्य कृपलानीके बाद अब काकासाहब इस वृक्षके माली हैं। गुजराती भाई उसके लिए आवश्यक मात्रामें पानी पहुँचाते रहे हैं। अब और अधिक पानीकी जरूरत है। विद्यापीठने 'रक्षित कोष' रखनेके बदले लोक-कृपापर भरोसा रखनेकी नीति अपनाई है। यह संस्था जनताकी है। जबतक उन्हें रुचे तबतक वे सींचते रहें। सार्वजनिक संस्थाको शुद्ध बनाये रखनेका यह एक सर्वोत्तम बाह्य उपाय है। आमतौर पर घर-घर जाकर लोगोंसे द्रव्य माँगा जाता है। इस बार वल्लभभाई और काकासाहबने नई आशा प्रकट की है। सर्व-साधारणसे वे यह आशा रखते हैं कि द्वार-द्वार भटकनेके बदले वे स्वयं ही यथाशक्ति चन्दा भेज देंगे। मुख्य संचालकोंको पैसा इकट्ठा करनेमें समय खर्च करनेकी जरूरत नहीं होनी चाहिए। अपनी प्रिय संस्थाके लिए उन्हें खुद ही यथाशक्ति दान देना चाहिए। मुझे आशा है, गुजराती भाई सरदार और काकाकी आशा पूरी करेंगे। यह विनती गुजरातसे नहीं बल्कि गुजरातियोंसे है। यानी उन गुजरातियोंसे जो गुजरातके बाहर दूसरे प्रान्तों, ब्रह्मदेश, सिंगापुर, जापान, पूर्व, दक्षिण और उत्तर आफ्रिका, मॉरिशस, मैडागास्कर और दूसरे देशोंमें रहते हैं उनके लिए भी अपनी ओरसे यथाशक्ति चन्दा भेजना आवश्यक है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ८-१२-१९२९

२६७. कुछ महत्त्वके प्रश्न

वाइसरायने हमारे बीच गोला फेंककर जो खलबली पैदा कर दी है, और उसके कारण कुछ लोगोंने जो आशाएँ बाँध रखी हैं, उनके सम्बन्धमें एक मित्रने कुछ महत्त्वपूर्ण सवाल पूछे हैं। ये सवाल और भी बहुतसे लोगोंके दिलमें उठते होंगे। इसलिए उनके बारेमें अपना मत प्रकट कर देना एक हदतक जरूरी है। नीचे मैं उक्त प्रश्न और उनके उत्तर दे रहा हूँ:

१. औपनिवेशिक स्वराज्य (डोमीनियन स्टेटस) क्या है? ब्रिटिश साम्राज्यमें वास्तविक भागीदारी और समानता या अंग्रेजोंकी देखरेखमें उत्तरदायी शासन? १९१९से पहलेका 'औपनिवेशिक स्वराज्य' या १९२६ में साम्राज्य परिषद द्वारा निश्चित की गई व्याख्यावाला स्थान?

'औपनिवेशिक स्वराज्य' एक ऐसा शब्द है जिसकी कोई निश्चित व्याख्या नहीं। अगर उसके लिए जीवित प्राणीके अनुरूप भाषाका प्रयोग किया जा सकता हो तो मैं यह कहूँगा कि अभी तो वह बालिग भी नहीं हुआ है, इसलिए उसे रक्षाकी जरूरत है, और उचित खुराक मिलनेपर वह हृष्ट-पुष्ट हो सकता है। यदि वातावरण प्रतिकूल हुआ तो सम्भव है, वह अपनी सुकुमारताके कारण, निस्तेज हो जाये। और यदि प्राणवायु न मिले तो हो सकता है कि उसका दम ही घुट जाये। इसलिए वह बालक जिस वातावरणमें खा-पीकर बड़ा होगा, उसकी तन्दुरुस्ती और उसकी जीवनशक्ति उसीपर निर्भर करेगी। अगर वह भारतवर्षमें आया तो हम किस तरहसे उसकी सार-सँभाल करते हैं, उसका विकास इसपर निर्भर करेगा। इस कारण मेरी रायमें तो १९१९ और १९२६ की व्याख्यासे हमारा बहुत कम सम्बन्ध है। उसे पानेकी हमारी शक्तिपर 'औपनिवेशिक स्वराज्य' की व्याख्या निश्चित होगी। और जिसकी विस्तृत व्याख्या निश्चित नहीं हुई है, उसकी व्याख्या सब कोई अपने मनके अनुसार कर सकता है। मेरी व्याख्या यों है: भारतके लिए 'औपनिवेशिक स्वराज्य' का मतलब यह है कि हिन्दुस्तानमें अंग्रेजी राज्यके साथ सब तरहसे समान और ऐच्छिक सम्बन्ध हो और इस सम्बन्धको कोई भी पक्ष कारण बताकर या बिना बताये स्वेच्छासे तोड़ सकता हो। जहाँ ऊँच-नीचके खयालकी थोड़ी-सी भी गुंजाइश हो वहाँ 'औपनिवेशिक स्वराज्य' हो नहीं सकता। 'औपनिवेशिक स्वराज्य' का अर्थ है स्वतन्त्रता।

२. देशी रियासतोंको ब्रिटिश भारतके साथ एक ही परिषदमें भले ही बुलाया जाये। लेकिन अगर देशी रियासतें ब्रिटिश भारतके सच्चे स्वराज्यमें बाधक बनें तो? इसका क्या भरोसा कि अंग्रेज सरकार उनका पक्ष लेकर, उनके साथ हुई संधियोंका बहाना करके हमारी राजनैतिक प्रगतिमें रोड़ा नहीं अटकायेगी? आज तक देशी रियासतोंको, खासकर ब्रिटिश भारतके राजनैतिक आन्दोलनसे, जानबूझकर अलग रखा

जाता रहा है, तो फिर आज यह नीति एकाएक क्यों बदली जा रही है? स्वयं बटलर कमेटी भी रियासतोंकी रजामन्दीके बिना उन्हें ब्रिटिश भारतके साम्राज्यमें मिला देनेके खिलाफ है। ऐसी दशामें उक्त दृष्टिकोणमें एकाएक यह परिवर्तन क्यों हो रहा है? और देशी रियासतोंकी जनताका क्या होगा? क्या उनके प्रतिनिधियोंका आगामी परिषदमें कोई स्थान ही नहीं होगा?

देशी रियासतें चाहें या न चाहें, हममें, यानी स्वराज्य चाहनेवालोंमें दम न होगा तो वे जरूर राहके रोड़े बनेंगे। आज देशी राज्योंको आगे बढ़ानेमें स्वयं मुझे भी चालाकीकी बू आती ही है। पहले भी यह साम्राज्य देशी रियासतोंको अपनी बाजी का मुहरा बना चुका है। मालूम होता है इस बार फिर इन मुहरोंका उपयोग किया गया है। देशी राजाओंकी हस्ती साम्राज्यपर निर्भर है। इस कारण उन्हें साम्राज्यके इशारेपर नाचना ही पड़ता है, अगर यह बात हमारी समझमें आ जाये तो हम यह जान जायेंगे कि उन्हें डुबोकर हम कोई फायदा नहीं उठा सकते। उनकी गुलामी को ध्यानमें रखकर और यह जानकर कि वे साम्राज्यके अंग हैं, हमें सावधान रहना चाहिए; और ऐसे मौकोंपर वे जो बोलते या करते हैं, उसे सल्तनतका कथन और कार्य समझकर हम अपनी नजर साम्राज्यपर ही गड़ाये रखें। देशी रियासतोंकी रैयतके बारेमें मैं निर्भय हूँ। जबतक स्वराज्यकी स्थापना नहीं होती, साम्राज्यके बहुतेरे दोष तो देशी राज्योंमें ज्यादातर पाये ही जायेंगे। किन्तु मैं ऐसे किसी स्वराज्यतन्त्रकी कल्पना नहीं कर सकता, जिसमें स्वराज्य-पक्ष द्वारा देशी राज्यकी रियायाके अधिकार बेच दिये गये हों।

३. परिषदमें सबके एकमत होनेपर भी संसदको तो उसमें हेरफेर करनेका अधिकार रहेगा न? अधिकृत रूपसे यह कहा गया है कि इस सम्बन्धमें संसदने अपनी स्वतन्त्रता कायम ही रखी है, और ब्रिटेनके राजनैतिक दल भी इस बन्धनसे परे हैं। ऐसी दशामें आगामी परिषदकी सारी मेहनत व्यर्थ जानेकी सम्भावना नहीं है क्या? इस बारेमें भी कुछ आश्वासन मिलना चाहिए — और सो भी हमारे द्वारा सहयोग करनेसे पहले ही।

यह सवाल हमारी कमजोरीको प्रतिध्वनित करता है। एक वकीलकी हैसियतसे अवश्य ही संसद सर्वोपरि है। परिषदके कार्योंपर वह पानी फेर सकती है। लेकिन अगर भारतवर्ष परिषदमें अपने साथ अपनी शक्ति भी लेता जायेगा, तो परिषदके निर्णयके सम्बन्धमें प्रश्नकर्ताने जिस तरहका आश्वासन माँगा है, उसकी कोई जरूरत ही नहीं रहेगी। साथ ही मैं यह भी मानता हूँ कि इस तरहका आश्वासन माँगनेमें न तो हमारा गौरव है, और न कोई ब्रिटिश दल ही ऐसा है, जिसे ऐसा आश्वासन देनेका अधिकार हो।

४. सन् १९१७की नीति और १९२९के कानूनपर इतना ज्यादा जोर क्यों दिया जाता है? लॉर्ड इर्विन कहते हैं कि १९१७की नीतिके अनुसार स्वभावतः

भारतको स्वराज्य मिल जायेगा। 'समय आनेपर' से क्या तात्पर्य है? श्री बेन[1] कहते हैं कि "परिषद्‌की बैठक होनेके पहले न तो मूल विषयमें और न उसके समयमें किसी तरहका परिवतन होगा।"

क्या ये वाक्य भयावने नहीं मालूम होते? और इस सबमें भारतके आर्थिक अधिकारों — आर्थिक स्वातन्त्र्य — का तो कहीं जिक्र भी नहीं है। १९२२ की कांग्रेसके प्रस्तावके अनुसार अपना राष्ट्रीय ऋण चुकानेके लिए भारतकी जनता बंधी हुई नहीं है। क्या इस प्रस्तावको बिलकुल रद्द कर दिया गया है?

कोस्टल रिजर्वेशन बिल[2] भी खटाईमें पड़ जायेगा क्या? विदेशी बैंक बहुत-से हक हजम किये बैठे हैं, क्या हम उनका लेखा कभी ले सकेंगे? लार्ड इर्विनके स्पष्टीकरणमें ये सब बातें नहीं हैं, लेकिन इस कारण हम इन्हें कैसे भूल सकते हैं?

सन् १९१९ के कानूनपर जोर देना भयका कारण जरूर है, और भय न हो तो भी द्विअर्थक तो वह है ही। इसी कारण दस्तखत करनेवाले नेताओंने स्पष्टीकरण देनेकी इच्छा प्रकट की है। इस बातसे मुझे दुःख नहीं होता कि वाइसरायके वक्तव्यमें भारतके आर्थिक अधिकारोंका जिक्र नहीं है। जिसमें आर्थिक स्वतन्त्रता न हो उसे तो स्वराज्य कहा ही नहीं जा सकता। सन् १९२२ की कांग्रेसका ऋण सम्बन्धी प्रस्ताव कभी रद नहीं हुआ है। वह लागू है और स्वराज्यकी योजनामें उसपर विचार करना आवश्यक है। यही बात हाजीके बिल और बैंकोंके बारेमें कही जा सकती है। वाइसरायके वक्तव्यसे हम स्वराज्यकी योजनाकी आशा नहीं रख सकते। लेकिन इतनी बात अवश्य साफ हो जानी चाहिए कि कांग्रेस दलवाले तभी किसी परिषदमें भाग ले सकेंगे जब स्वराज्य सम्बन्धी प्रत्येक प्रश्नपर खुले दिलसे — स्वतन्त्रतापूर्वक चर्चा कर सकनेकी परिस्थिति पैदा हो जाये। लॉर्ड इर्विनके वक्तव्यमें इसका कोई खुलासा नहीं मिलता। अतएव मेरे विचारमें परिषद्‌में शामिल होनेसे पहले इसे स्पष्ट करा लेना न सिर्फ कांग्रेसका बल्कि सब दलोंका कर्त्तव्य है।

अन्तमें मैं यह भी कहे देता हूँ कि मजदूर दलकी सरकारके हाथमें अधिकार तो हैं, किन्तु उन अधिकारोंका पूरी तरह उपयोग करनेकी सामर्थ्य उसमें नहीं है। और हममें वह ताकत नहीं, जिससे हम अपनी माँग कबूल करा सकें। इसलिए मैं इस बातकी आशा छोड़े ही देता हूँ कि दो कमजोर पक्ष मिलकर भारतकी कोई भारी सेवा कर सकेंगे। मेरी अन्तरात्मा तो यह कहती है कि अगर इंग्लैंडका मजदूर दल सचमुच यह चाहता है कि भारतको स्वतन्त्रता मिले तो फिलहाल उसे अपनी शक्ति बढ़ानी चाहिए और फिर इस स्वतन्त्रताकी प्राप्तिके लिए मरते दमतक जूझते रहना चाहिए। हम अपनी शक्तिकी मर्यादा समझकर नम्रतापूर्वक परिषद वगैराके झगड़ोंसे दूर रहें। लेकिन दुनियाका काम इस तरह अकेले तर्कके आधार पर नहीं चलता। इसलिए जब कमजोर मजदूर दलकी ओरसे कोई आशाजनक बात कही जाती

१. वैजवुड बेन, भारत-मन्त्री।

२. कारखानों और बन्दर स्थानोंके विचारसे भारतके व्यापारको सुरक्षित रखनेसे सम्बन्धित विधेयक।

है, तो एकाएक हम उसे अस्वीकार नहीं कर सकते। सफलता पाने योग्य शर्तें पेश करके अगर यह विश्वास किया जा सके कि उनका पालन हो सकेगा, और ऐसी स्थिति पैदा हो जाये तो हम परिषदमें भाग ले सकते हैं और ऐसी परिषद्‌में भाग लेना सत्याग्रहीका धर्म होना चाहिए। सत्याग्रही समझौतेकी थोड़ी-सी भी सम्भावना होने पर उसकी उपेक्षा नहीं करता।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ८-१२-१९२९

२६८. पत्र : मथुरादास पु० गांधीको

वर्धा
८ दिसम्बर, १९२९

चि० मथुरादास,

प्रतिदिनकी उपस्थिति आदिके बारेमें मैंने जो सुझाव दिये थे, आशा है तदनुसार अमल किया जाता होगा। समय-समय पर मुझे सूचित करते रहना कि कैसा काम चल रहा है।

मोतीबहनके दैनिक कार्यके बारेमें मुझे सूचित करना। उससे रोज डायरी लिखवाना।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (जी० एन० ३७३४) की फोटो-नकलसे।

२६९. पत्र : रमणीकलाल मोदीको

वर्धा
८ दिसम्बर, १९२९

चि० रमणीकलाल,

तुम्हारा पत्र मिला। जिसने पूरे वर्ष नियमित रूपसे दैनन्दिनी रखी हो ऐसा व्यक्ति यदि चाहे तो वह पुस्तक भले ले ले। फिलहाल तो इतना ही काफी होगा कि जैसी छोटी-सी पुस्तक मैं काममें लाता हूँ वैसी ही सब काममें लाने लगें। दैनन्दिनी अच्छी तरह रखना भी तो एक कला है और इससे दैनन्दिनी रखनेवाले तथा आश्रम-को बहुत लाभ पहुँचता है। दैनन्दिनी रखनेवाला उसमें कमसे-कम शब्दोंमें अपनी दिनचर्या तथा किये हुए कामोंका विवरण लिख सकता है।

ताराके सम्बन्धमें मैंने तुम्हें बारडोलीसे ही एक पत्र भेजा था। आप्टेके[1] पत्रके साथ उक्त पत्र भेजा था।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (जी० एन० ४१५६) की फोटो-नकलसे।

२७०. पत्र : वी० ए० सुन्दरम्‌को

वर्धा
९ दिसम्बर, १९२९

प्रिय सुन्दरम्,

आप अकसर बीमार क्यों पड़ जाते हैं? आशा है कि बेबी मेरी ही तरह पनप रहा है। आप खाली पात्र किसीके द्वारा भेज दें। पैसे आप अपने पास ही बढ़ते रहने दें।

बापू

अंग्रेजी (जी० एन० ३१७५) की फोटो-नकलसे।

२७१. तार : विट्ठलभाई पटेलको

[९ दिसम्बर, १९२९ या उसके पश्चात्][2]

अध्यक्ष पटेल,
नई दिल्ली

शनिवारको[3] आपको लिखा था। मोतीलालजीने तार दिया है। वे आपसे मिल रहे हैं।

गांधी

अंग्रेजी (एस० एन० १५५७९) की फोटो-नकलसे।

१. खादी-कार्य की जानकारी हासिल करनेके लिए कोल्हापुर से आये थे।

२. यह विट्ठलभाईको ९-१२-१९२९ को मिले तारके उत्तरमें भेजा गया था, जिसमें लिखा था: "वाइसरायको लिखनेके लिए आपके तारकी उत्सुकतासे प्रतीक्षा कर रहा हूँ। सप्रूने सहमति दे दी है।"

३. इस पत्रका कथन विट्ठलभाई पटेलने वाइसरायको अपने ११-१२-१९२९ के पत्रमें इस तरह सूचित किया था: "अब गांधीने मुझे लिखा है कि उन्हें मोतीलालका तार मिला है . . . और उन्हें (मोतीलालजीको) आपका २३ दिसम्बरको मुलाकात करनेके लिए आमन्त्रण मिल चुका है; उसे उन्होंने स्वीकार कर लिया है। उद्देश्य यह है कि आपसे केवल कांग्रेसियोंके साथ कांग्रेसके दृष्टिकोणकी चर्चा की जाये। गांधीने आगे कहा है कि इन परिस्थितियोंमें इस मामलेमें मेरा आगे कुछ करना बिलकुल अनावश्यक है। इस पत्रके मिलनेपर मैंने इसकी एक प्रति तत्काल श्री जिन्नाको भेज दी और उन्हें सूचना देदी कि व्यवस्था विफल हो गई है।" **विट्ठलभाई पटेल: लाइफ एण्ड टाइम्स, पृ० १०७२।**

२७२. पत्र : आश्रमकी बहनोंको

वर्धा
मौनवार, ९ दिसम्बर, १९२९

बहनों,

इस बारकी दौड़धूपमें दो बातें रह गई। एक बात जो पकड़में आई थी उसपर ध्यान देनेका समय ही नहीं रहा था। दूसरी मैं भूल गया था।

आखिरी बातको मैं पहले लेता हूँ। हमारी स्त्रियाँ पुरुष डाक्टरोंको न तो अपने अवयव दिखाती हैं और न शल्य-क्रिया ही करने देती हैं। यह झूठी शर्म है और यह विकारपूर्ण मानसिक स्थितिके कारण उत्पन्न होती है। मै तो इस मामलेमें पश्चिम के लोगोंके रुखको पसन्द करता हूँ। मुझे मालूम है कि कभी-कभी उसका अनिष्ट परिणाम निकला है। दुष्ट डाक्टर और भोली तथा जल्दी ही विकारवश हो जानेवाली स्त्रीका मिलाप होनेपर दुराचार हुए हैं। ऐसा तो दुनियामें हर हालतमें होता रहा है। मगर इससे हम अच्छे और जरूरी काम करना बन्द न करें। हमें अपने पर भरोसा होना चाहिए। इसलिए सन्तोकका डा० हरिभाईसे ऑपरेशन कराना मुझे बहुत अच्छा लगा और सन्तोककी बहादुरीके बारेमें मेरा विश्वास दृढ़ हुआ है। फीनिक्समें तो यह नियम ही हो गया था। देवदासके जन्मके समय डाक्टर पुरुष था। बा को योनिकी बीमारी थी और उसकी शल्य-क्रिया करानी थी। वह पुरुष डाक्टरसे कराई थी। ऐसे मामलोंमें बा बहुत बहादुर और भोली है। हाँ, ऐसे अवसर पर उसे मेरी मौजूदगीकी जरूरत अवश्य रहती है। मगर यह तो छोटी-सी बात है। हरएकको ऐसे मौकपर कोई भरोसेका आदमी चाहिए और यह ठीक भी है। इतना सब लिखनेका उद्देश्य यही है कि आश्रममें हम अपनेमें इस किस्मकी हिम्मत पैदा करें और झूठी शर्मको छोड़ दें। झूठी शर्मके कारण सैकड़ों या हजारों स्त्रियाँ तकलीफ पाती हैं। विद्यावतीका उदाहरण तो हमारे सामने ही है। वह तो स्त्री डाक्टरको भी अपने अंग दिखलानेको तैयार नहीं थी। हम तो शुकदेवजी जैसी निर्दोषता साधना चाहते हैं। जबतक ऐसी निर्दोषता न आई हो, तबतक ऐसा दम्भ भी न करें। ऐसे पुरुष हैं जिनके मनमें स्त्रीमात्रके स्पर्शसे विकार आ जाता है। ऐसी स्त्रियाँ हैं, जिनका हर मर्दके स्पर्शसे यही हाल होता है। ऐसे लोगोंको तो जबरन ही सही, सबसे बचकर रहना उचित है, फिर भले ही शरीर रोगोंसे पीड़ित रहे। मैंने तो सिर्फ झूठी शर्म छोड़नेकी बात लिखी है। जिसके मनमें स्पर्शमात्रसे विकार उत्पन्न होनेका डर हो, उसे निश्छल भावसे इस बातको स्वीकार कर लेना चाहिए और अपनी मर्यादामें रहना चाहिए। ऐसी विकारी स्थिति एक तरहकी बीमारी है, और उसे पर पुरुष या स्त्रीका स्पर्श छोड़ ही देना चाहिए। समय पाकर सम्भव है वह रोग मिट जाये।

इस पत्रका यह भाग दो-चार बार पढ़कर भी समझनेकी कोशिश करना। यदि समझमें न आये तो मुझसे पूछना। वालजीभाईसे पूछोगी तो वे भी समझा देंगे। यह है तो सरल ही।

दूसरी बात उमियाकी शादीसे उठती है। विवाह होते ही उमियाने तुरन्त नाक-कानमें गहने पहन लिये। यह मुझे बिल्कुल अच्छा नहीं लगा। इसमें देनेवालेका कसूर था और लेनेवालेका भी। यह बात आश्रमके रिवाजके विरुद्ध हुई। उमिया अपनी ससुराल जाकर गहने पहन सकती थी, मगर वह बेचारी रह न सकी। मैं अपना दुखड़ा रोनेके लिए यह घटना बयान नहीं कर रहा हूँ, मगर सबक सिखानेके लिए ही इसका उल्लेख कर रहा हूँ। उमियाका अनुकरण कोई और लड़की न करे। बेचारी उमियाको आश्रमकी तालीम थोड़ी ही मिली है। जयसुखलालने उसपर पूरा ध्यान नहीं दिया। माँ भली हैं और अच्छा-बुरा सोचे बिना पुरानी सब बातोंको मानती हैं। इसलिए उसका दोष क्षम्य है। मैंने उमिया और उसके पतिको सावधान कर दिया है। पतिकी तरफसे तो उसे छोटी-सी चूड़ीके सिवा और कुछ नहीं मिला। मगर आश्रमके नियमोंको जाननेवाली स्त्री या कन्या ऐसा कभी न करे यह बतानेके लिए मैंने यह किस्सा बयान किया है। मगर मैं इससे एक और भी निष्कर्ष निकालना चाहता हूँ। स्त्रीको विकारी पुरुषोंने गिराया है। उसे अपनेको लुभानेवाले हाव-भाव सिखाये, बनाव-सिंगार करना सिखाया है। स्त्रीने इसमें अपनी पराधीनता नहीं देखी, अपना पतन नहीं देखा। उसे भी विकार अच्छे लगे इसलिए अपने नाक, कान छेदे और पैरोंमें बेड़ियाँ पहनकर वह गुलाम बनी। नाककी नथ या कानकी बालीसे लम्पट पुरुष स्त्रीको एक घड़ीमें घसीट ले जाये। इस प्रकार अपंग बनानेवाली चीज समझदार स्त्री क्यों पहनती होगी, यह मेरी समझमें नहीं आता। सच्ची शोभा तो हृदयमें है। आश्रमकी प्रत्येक स्त्री बाह्य शोभासे, नाक छिदवानेसे बचे। हम पशुको नाथते हैं, क्या इतना काफी नहीं है? अब छः बज गये हैं इसलिए बन्द करता हूँ। मैंने सुबह-सुबह तुम्हारा स्मरण किया, क्योंकि तुमसे बहुत काम लेना है।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (जी० एन० ३७११)की फोटो-नकलसे।

२७३. पत्र : रमणीकलाल मोदीको

वर्धा
मौनवार, ९ दिसम्बर, १९२९

चि० रमणीकलाल,

तुम्हारा पत्र मिला।

छगनलालका पत्र वापस भेज रहा हूँ। उसका दृष्टिकोण सही है। चर्मालय तो विद्यालय ही है। वह स्वावलम्बी बने इसमें कोई बुराई नहीं है। ऐसी बहुत-सी स्वावलम्बी पाठशालाएँ हैं किन्तु फिर भी वे पाठशालाओंके रूपमें जानी-पहचानी जाती हैं। हमारा उद्देश्य व्यापार करना नहीं बल्कि ज्ञानवृद्धि और सेवा करना है। इसलिए यदि तुम बचत कर सको तो करना। कानूनकी वह दफा जिसमें कहा गया है कि किन हालातमें मुकर्रर लगान नहीं बढ़ता, खोजकर मुझे भेज देना। किन्तु यदि यह माफी मिल रही हो तो उसे स्वीकार कर लेना।

तुम मुझे विस्तृत समाचार लिखते रहते हो इससे मेरा काम नहीं बढ़ता। बुधाभाईके बारेमें लिखना भी जरूरी था।

चिमनलालकी तबीयत क्यों नहीं सुधर रही है?

आज अब अधिक लिखनेका समय नहीं है।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (जी० एन० ४१५७) की फोटो-नकलसे।

२७४. पत्र : डाह्याभाई म० पटेलको

[१० दिसम्बर, १९२९][1]

भाईश्री डाह्याभाई,

पहले रावजीभाई और फिर ठक्कर बापासे यह सुनकर मुझे बहुत दुःख हुआ कि तुमने उन जाने-पहचाने अन्त्यज-सेवकोंको दुत्कार कर भगा दिया जिन्हें ठक्कर बापाने अपना लिया था। मुझे तो लगता है कि ऐसा करके तुमने एक बहुत बड़ा अपराध किया है। ठक्कर बापा कह रहे थे कि तुमने उनसे माफी चाही थी। माफी तो

१. डाककी मुहरसे।

अन्त्यज भाई-बहनोंसे माँगनी चाहिए थी। इसमें यदि मुझसे कहीं कोई अन्याय हुआ हो तो उसे सुधार लेना।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च :]

तुम्हारी रिपोर्ट छापी नहीं जायेगी।

गुजराती (सी० डब्ल्यू० २७००)से।
सौजन्य : डाह्याभाई म० पटेल

२७५. पत्र : रमणीकलाल मोदीको

वर्धा
१० दिसम्बर, १९२९

चि० रमणीकलाल,

आज तुम्हारी तरफसे डाक नहीं मिली। हर विभागके व्यवस्थापकको प्रतिदिन अपने विभागका निरीक्षण करना चाहिए और इसका उल्लेख उसे नोटबुकमें करना चाहिए। फुरसत मिलनेपर तुम्हें इन नोटबुकोंको जाँच लेना चाहिए। यदि हम सतर्क रहना चाहते हों और अपनी चौकसी खुद ही करते रहना चाहते हों तो हमें ऐसे कामोंकी तनिक भी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। हम सबको तो ऐसी उपेक्षा करनी ही नहीं चाहिए; क्योंकि हम उन्हें इतना महत्व देते हैं कि इसके कारण ही जगन्नाथको आश्रमसे चलता कर देना पड़ा। इसके अतिरिक्त अन्य कुछ लोगोंको भी हमने आश्रमसे अलग कर दिया था; किन्तु उनके नाम मैं भूल गया हूँ। सहज पालन किये जा सकनेवाले नियमोंके पालनमें यदि ढिलाई बरती जाये और उसे हम सहन करते रहें तो इसके फलस्वरूप एक दिन आश्रम न केवल टूट जायेगा बल्कि उसके नाम पर कलंकका टीका भी लगे बिना नहीं रहेगा। हमारी सतर्कताके बावजूद उसमें जो कमियाँ रह जायेंगी उनके लिए दुनिया हमें माफ कर देगी। किन्तु हमारे प्रमादके कारण जो-कुछ होगा उसके लिए दुनियाको हमारी बुराई करनेका हक है। मैं आजकल इस बारेमें काफी सोच-विचार कर रहा हूँ। मेरे मनमें बहुत उधेड़ बुन चलती रही है और मैंने वहाँ रहते हुए जो विचार व्यक्त किये थे वे दृढ़ होते जा रहे हैं। अर्थात् जो लोग उन नियमोंको भंग करते ही रहते हैं जिनका पालन करना सबके लिए सम्भव है, उन्हें या तो आश्रमसे निकाल दिया जाये या फिर वे स्वयं चले जायें। ऐसा होनेपर हम भी बहुतसे खतरोंसे बच जायेंगे। हमारा आश्रम कोई अपंगालय नहीं है। वहाँ एक विशेष उद्देश्यसे प्रेरित होकर प्रौढ़ भाई-बहन एकत्रित हुए हैं। जो बहनें बहुत दिनोंसे वहाँ रहती आ रही हैं उन बहनोंको आंशिक रूपसे मैं इसमें से छोड़ देता हूँ। इस प्रकार जो लोग सोच-समझकर एकत्रित हुए हैं यदि वे स्वेच्छासे

स्वीकृत किये गये नियमोंका पालन न करें और इसे हम सहन करते रहें तो इसमें मुझे धर्म और समाजके प्रति द्रोह नजर आता है।

यदि तुम सबको यह खबर न मिली हो तो जान लेना कि एक समय आश्रममें रहनेवाली राजीबहनकी अपने गाँवमें बीमारीके कारण मृत्यु हो गई है। भाई चन्दूलाल आये थे और उन्होंने मुझे यह खबर दी थी। उन्होंने भयंकर भूलें तो की थीं किन्तु चूँकि उन्होंने आश्रमका नमक खाया था अतः उनका स्मरण करना हमारा कर्त्तव्य है।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (जी० एन० ४१५८) की फोटो-नकलसे।

२७६. पत्र : प्रभावतीको[1]

वर्धा
११ दिसम्बर, १९२९

चि० प्रभावती,

तेरा पत्र मिला। आश्चर्यकी बात है कि तुझे मेरा पत्र नहीं मिला। मैंने तो उत्तर दिया ही था। मैंने यहाँसे रवाना होनेकी तारीखकी सूचना तुझे दी थी। जल्दी से जल्दी मैं यहाँसे २० तारीखको रवाना हो सकूँगा। तेरे सभी पत्र मुझे मिले हैं और मुझे बहुत सन्तोष हुआ है। मैंने एक पत्र लिखा था, उसीके साथ जयप्रकाशका पत्र भी रख दिया था। क्या वह भी रास्तेमें गुम हो गया? जितनी जल्दी आ सके उतनी जल्दी आ जा।

[गुजरातीसे]
बापुना पत्रो–१० : श्री प्रभावतीबहेनने

२७७. टिप्पणियाँ

अछूतोद्धार आन्दोलन

जबलपुरके आठ मन्दिरों और बम्बईके एक मन्दिरको[2] तथाकथित अछूतोंके लिए खोल देनेके कारण इन मन्दिरोंके न्यासी और अन्य सज्जन समयानुकूल काम करनेके लिए बधाईके पात्र हैं। अपने इस कार्य द्वारा उन्होंने हिन्दू-धर्मकी और हिन्दुस्तानकी सेवा की है और उन अछूतोंमें नई आशाका संचार किया है जिनमें अधीरताके लक्षण दिखाई देने लगे थे। अछूतोंको उनकी दुःखद स्थितिका भान करा देनेके

१. पत्रके अन्तमें दी गई एक टिप्पणीमें कहा गया है कि गांधीजी तकली और चरखेकी कताई प्रतियोगितामें भाग ले रहे थे, इस कारण इस पत्रपर खुद हस्ताक्षर नहीं कर सके।

२. रामचन्द्र मन्दिर; देखिए "अछूतोंके लिए मन्दिर", २८-११-१९२९।

बाद अगर हम समय रहते ही उनके लिए अनुकूल वातावरण पैदा करनेमें सफल न हों तो, उनकी अधीरता और उससे भी भयंकर बेचैनीके प्रदर्शनको रोक पाना हमारे लिये असम्भव है। जो जागृति आम जनतामें इस समय फैल गई है, उसके फलस्वरूप अछूतोंको भी स्वातन्त्र्य-सुखका पान करनेकी उतनी ही स्वतन्त्रता होनी चाहिए, जितनी स्वतन्त्रताकी आशा तथाकथित उच्च जातियाँ रखती हैं। जबतक हम हिन्दू अपने पाँचवें भागको गुलाम बनाये हुए हैं — ऐसे गुलाम, जो हमें छू नहीं सकते, एक निश्चित हदसे आगे हमारे पास या हमारी नजरोंके सामने नहीं आ सकते — तबतक हमें स्वतन्त्रताकी आशा नहीं रखनी चाहिए।

लालाजी स्मारक

संयुक्त प्रान्तमें लालाजी-स्मारकके लिए मिले हुए चन्देकी बात मैंने अपनी याददाश्तसे लिखी थी, और कहा था कि ३०,००० रु० से ऊपर मिले हैं।[1] श्रीयुत पुरुषोत्तमदास टण्डनने इस सम्बन्धमें मुझे एक पत्र लिखा है, जिसके अनुसार संयुक्त प्रान्तके दौरेमें लालाजी स्मारकके लिए मिले हुए चन्देकी कुल रकम ४२,१३८-८-९ होती है। इसमें दौरेसे पहले मिली हुई रकम और वचन दी हुई रकम, जो अभी मिली नहीं है, शामिल नहीं है। हालाँकि जैसा कि मैंने सोचा था, वह रकम उससे अधिक सन्तोषजनक है, लेकिन मेरी यह शिकायत तो फिर भी है कि उस महान् देशभक्तकी स्मृतिके साथ संयुक्त प्रान्तने पूरा-पूरा न्याय नहीं किया है। आशा है, श्री पुरुषोत्तमदास टण्डन एक बार और चन्दा उगाहीके लिए दौरा करेंगे और जबतक संयुक्त प्रान्तसे कमसे-कम १ लाख न मिल जाये, आराम नहीं करेंगे।

दिल्लीके हिन्दू कालेजका चन्दा

हिन्दू कालेजके प्रिंसिपल लिखते हैं:[2]

जो रकम वास्तवमें वहाँ मिली थी, उसे दिल्लीमें प्राप्त रकमके साथ मिलाकर स्तम्भोंमें छाप दिया गया था। ८०० रु० की इस प्राप्त रकमके लिए मैं आभारी हूँ। इसमें शक नहीं कि यात्राके वर्णनमें कालेजका कोई जिक्र नहीं था; ऐसी ही अनेक महत्वपूर्ण और दिलचस्प बातोंको भी छोड़ देना पड़ा था। सभी घटनाओंका इतना सविस्तार हवाला दे सकना असम्भव था। जो बातें बहुत ही ज्यादा महत्वकी थीं, वे चुन ली गई थीं। संयुक्त प्रान्तका सारा कार्यक्रम बड़ा व्यस्त और काफी लम्बा था तथा इतने बड़े प्रान्तके इतने भारी कार्यक्रमको पूरा करनेके लिए जितना समय चाहिए था, उससे आधे समयमें उसे पूरा करना पड़ा था।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १२-१२-१९२९

१. देखिए "टिप्पणियाँ", २८-११-१९२९ का उप-शीर्षक "लालाजी-स्मारक"।

२. यह पत्र यहाँ नहीं दिया जा रहा है। वायदेके मुताबिक ८०० रु० भेजते हुए हिन्दू कालेजके प्रिंसिपलने लिखा था कि उनके कालेजमें गांधीजीके आने और वहाँ जो रकम इकट्ठी की गई थी, उसका हवाला **यंग इंडिया**में छपे गांधीजीके दौरेके ब्योरेमें नहीं दिया गया था।

२७८. संयुक्त प्रान्त राष्ट्र-सेवा संघ

प्रान्तीय राष्ट्र-सेवा संघ कायम करनेके लिए पण्डित जवाहरलाल नेहरूने मेरी अभी हालकी यात्रामें धन संग्रह करनेका जो तरीका अख्तियार किया था, वह मुझे बहुत पसन्द आया। इस कामके लिए कुल १२,०३६–१५–९ रु० इकट्ठे हुए। जिस कामके लिए यह रकम माँगी गई थी, उसके लिए यद्यपि यह काफी नहीं है, तथापि इसमें शक नहीं कि प्रारम्भकी दृष्टिसे यह अच्छी रकम है। राष्ट्र-सेवा संघकी कल्पना नई नही है। सन् १९२०से यह प्रश्न देशके सामने रहा है। लेकिन पण्डित जवाहरलाल नेहरूने पहली बार उसे मूर्त रूप और आश्रय दिया है। जबतक हम अपने कामके लिए स्वयंसेवकोंपर निर्भर रहेंगे, राष्ट्रीय कामको जरूर हानि पहुँचेगी, क्योंकि स्वयंसेवक तो अपने समयका कुछ ही हिस्सा राष्ट्र-सेवा संघके काममें देते हैं और सो भी कभी-कभी। स्थायी कामके लिए तो स्थायी और पूरे समयतक काम करनेवाले लोगोंकी जरूरत है। यह काम पूरी खूबीके साथ तभी किया जा सकता है जब कि हरएक प्रान्त अपनी आवश्यकताके अनुसार एक-एक सेवा-संघ कायम करे और प्रान्त ही से उसके लिए जरूरी चन्दा जमा कर ले। कदम-कदमपर प्रशिक्षित और कसे हुए स्थायी कार्यकर्त्ताओंके अभावका अनुभव तो पण्डित जवाहरलाल कर ही रहे थे; सेवा-संघके कोषके लिए उन्होंने पिछली संयुक्त प्रान्तकी यात्राके अवसरसे लाभ अवश्य उठा लिया। आशा है कि अब नियम बनाने और संघके लिए प्रार्थनापत्र मँगानेमें देरी नहीं की जायेगी। अस्पृश्यता, हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य, विदेशी वस्त्र-बहिष्कार, शराबबन्दी और राष्ट्रीय शिक्षा वगैरा, ऐसे क्षेत्र हैं, जिनमें काफी बड़ी तादादमें स्थायी कार्यकर्त्ता खप सकते हैं। वास्तवमें हमारा ध्येय यह होना चाहिए कि देशके ७ लाख गाँवोंमें से हरएक गाँवमें हमारा कमसे-कम एक कार्यकर्त्ता जरूर हो। लेकिन अखिल भारतीय चरखा संघको छोड़कर, शायद देशके जिलोंमें भी हमारा एक-एक कार्यकर्त्ता नहीं है। अतएव स्वाभाविक है कि सब प्रान्त संयुक्त प्रान्तके भावी राष्ट्र-सेवासंघकी ओर ध्यान देंगे। अनुभव बताता है कि सच्चे अर्थमें राष्ट्रीय और स्थायी बननेके लिए किसी भी सेवा संघको, भले ही वह कांग्रेसका ही बनाया हुआ क्यों न हो, अनेकरूपा राजनीतिके क्षेत्रसे परे रहना चाहिए और उसे अपने आपमें सम्पूर्ण उत्तरदायी स्वशासित एकांश होना चाहिए। हमें अपने इन कार्यकर्त्ताओंको इस बातका पूरा-पूरा विश्वास दिला सकना चाहिए कि हर साल कांग्रेसके पदाधिकारियोंका नया चुनाव होनेपर भी वे बर्खास्त नहीं किये जायेंगे। इस तरहका आश्वासन तभी दिया जा सकता है, जब कि संघ स्वशासित हो और उसका अपना संविधान अच्छा और खूब सोच समझकर बनाया गया हो।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १२-१२-१९२९

२७९. तीसरे दर्जेका डिब्बा

पिछली बार २० नवम्बरको मैंने इलाहाबादसे पटना तक तीसरे दर्जेमें यात्रा की थी . . .

पिछले चार सालोंमें मैंनेसारे भारतमें हजारों मील तीसरे दर्जेमें सफर किया है और मेरा अनुभव है कि इस तरहकी कठिन परीक्षाएँ आम तौर पर होती रहती हैं।

किसी सुचारु रूपसे प्रशासित देशमें ऐसे हालात बिलकुल नामुमकिन हैं[1]।

महात्मा बन जानेके बाद यद्यपि मैंने पिछले १२ महीनों या उससे भी ज्यादा समयसे फिरसे तीसरे दर्जेमें सफर करना शुरू कर दिया है, मेरे भीड़के अनुभव, जो ज्यादातर मीराबाईके अनुभवोंसे मिलते-जुलते हैं, अभी १९१५ से १९१७ तक जैसे ही हैं। ये अखबारोंमें मेरे अनुभव कर चुकनेके बाद यथासमय ही प्रकाशित हुए थे।[2] बहरहाल ऐसा मानकर कि इन बातोंके प्रकट करनेके परिणाम-स्वरूप [गाड़ियोंकी] बहुत-ज्यादा भीड़ कमसे-कम अब उतनी असह्य नहीं रही है, मैं अपने मनमें प्रसन्न होता रहता था। परन्तु अब मुझे पता चला है कि वह मेरी गलतफहमी थी। जहाँतक यूरोपीयोंसे इतर या अंग्रेजी रहन-सहन न रखनेवाले भारतीयोंका सम्बन्ध है, रेलवेके प्रबन्धक लोगोंकी [परवाह] नहीं करते। इसमें कोई सन्देह नही कि तीसरे दर्जेमें यात्रा करनेवाले यूरोपीयों और अंग्रेजी रहन-सहनवाले भारतीयोंको जरूरतसे ज्यादा आराम मिलता है। तीसरे दर्जेके ६०,१७,७८,००० यात्रियोंको जिन्होंने १९२५-२६ में रेलवेको ३४,७६,४५,००० रु० की अदायगी की, डिब्बोंमें बन्द मछलियोंकी तरह यात्रा करके ही सन्तोष कर लेना पड़ता है। यद्यपि उनकी जरूरतें पहले और दूसरे दर्जेके यात्रियों जैसी हैं और वे उसके लिए किराया देते हैं, फिर भी उनके साथ ऐसा बरताव किया जाता है कि मानो वे मालगाड़ीमें एकके ऊपर एक डाल देने लायक सामानके गट्ठर हों। अगर मीराबाईने अपने रंग और जन्मके विशेषाधिकारका प्रयोग किया होता तो उन्हें जो अनुभव हुए, वे न हुए होते या वैसे अनुभव होते भी तो शिकायत करनेपर उनकी ठीक जगहपर सुनवाई हो जाती। पाठक तथा दूसरे सम्बन्धित लोग १९२५-२६ के निम्नलिखित ज्ञानवर्धक आँकड़ोंपर ध्यान दें :

यात्री

	पहला दर्जा	दूसरा दर्जा	ड्योढ़ा दर्जा	तीसरा दर्जा
संख्या हजारोंमें	११,६९	१,०४,८७	१,४०,०९	६०,१७,७८
आय हजार रुपयोंमें	१,२०,४२	१,८९,४२	१,५९,६१	३४,७६,४५[3]

१. केवल मीराबहनके लेखके कुछ अंश ही दिये जा रहे हैं।

२. देखिए खण्ड १३, पृ० २८७-९ तथा ५५८-६२ खण्ड १४, पृ० १२२-४ तथा १६४।

३. इसके बादका अनुच्छेद **नवजीवन**, १९-१-१९३० से लिया गया है।

लेकिन उनके लेखका अधिकारियोंपर कुछ असर होगा या नहीं; फिलहाल इसमें संदेह है।[1]

इस दुरवस्थाका एक कारण तो हम खुद ही हैं। 'चिल्लाये तो माल बिके' तथा 'माँगे बिना माँ भी दूध नहीं पिलाती' ये दोनों कहावतें जितनी प्रसिद्ध हैं उतनी ही सच भी हैं। हमारी सहिष्णुताकी हद हो गई है और उसके फलस्वरूप उत्पन्न हुए हैं आलस्य तथा दुःखद प्रमाद। यदि हममें स्वाभिमानकी भावना जाग्रत हो जाये, जहाँ कठिनाइयोंको सहन करना हमारा कर्त्तव्य नहीं है, वहाँ उन्हें दूर करना हम अपना कर्त्तव्य मानने लगें और इस कर्त्तव्यका पालन करते हुए जो कठिनाइयाँ सामने आयें उन्हें सहन करनेको तैयार हो जायें, तो बहुत-सी कठिनाइयोंको दूर किया जा सकता है। मुसाफिरोंको चाहिए कि जब डिब्बेमें कायदेके मुताबिक निश्चित संख्यासे अधिक मुसाफिर भरे हुए हों तो उन्हें उस डिब्बेमें बैठनेसे इनकार कर देना चाहिए। ऐसा करनेमें यदि कभी उन्हें अपनी गाड़ी भी छोड़ देनी पड़े तो उन्हें यह जोखिम उठानेको तैयार रहना चाहिए। मुझे ऐसा लगता है कि यदि यह बात रेलवे अधिकारीके ध्यानमें लानेपर वह गाड़ीमें मुसाफिरको जगह नहीं देता तो उसके खिलाफ मुकदमा भी दायर किया जा सकता है। सामान्य मुसाफिर यह कदम नहीं उठा सकते। वे या तो बक सकते हैं या मारपीट कर सकते हैं। धीरज, दृढ़ता और समझ-बूझके साथ तो पढ़े-लिखे तथा अनुभवी मुसाफिर ही उक्त कदम उठा सकते हैं। अतः ऐसे मुसाफिरोंको प्रसंग आनेपर सदा आवश्यक कदम उठाने चाहिए।

[अंग्रेजी व गुजरातीसे]

यंग इंडिया, १२-१२-१९२९ और **नवजीवन**, १९-१-१९३०

२८०. एक महत्त्वपूर्ण फैसला[2]

अहमदाबादके मिल-मालिक संघ और कपड़ा मजदूर संघने स्वेच्छापूर्वक पंचोंका जो गैर-सरकारी और स्थायी आयोग नियत कर रखा है, उसके द्वारा पेश किये गये मामलेमें सरपंच दीवान बहादुर कृष्णलाल मोहनलाल झवेरीने जो निर्णय दिया है, वह, जैसा कि पाठक अन्यत्र प्रकाशित[3] विषय-वस्तु पढ़कर खुद मानेंगे, एक महत्वपूर्ण दस्तावेज है। सरपंचका निर्णय यह बताता है कि मामलेके तथ्योंका ध्यानसे अध्ययन किया गया है। और उसमें साहसके साथ यह सिद्धान्त प्रतिपादित किया गया है कि जब "मजदूरको इतनी मजदूरी न मिले जिससे वह जीवन-निर्वाहका उचित स्तर कायम रख सके, तो वह अपने मालिकसे उसके लिए आवश्यक मजदूरीकी

१. यह और इसके बादका अनुच्छेद **नवजीवन**से लिया गया है।

२. देखिए "अपील: अहमदाबादके मजदूरोंसे", ७-१२-१९२९ और "मिल मजदूरोंकी माँग", १५-१२-१९२९ भी।

३. **यंग इंडिया**, १२-१२-१९२९ में प्रकाशित।

माँग कर सकता है।" मजदूर पिछले कई वर्षोंसे यह दावा कर रहे थे कि उन्हें जीवन-निर्वाह लायक वेतन पानेका अधिकार है, लेकिन मालिक उसे मान नहीं रहे थे। सरपंचने, जैसा कि मेरी रायमें होना ही चाहिए था, यह दावा पूरी तरह स्वीकार कर लिया है। यह भी ध्यान देने योग्य बात है कि उन्हें इस हकीकतका पता चल गया है कि कमसे-कम और अधिकसे-अधिक पानेवाले मजदूर परिवारोंकी औसत आमदनी ४० रुपये माहवारसे ज्यादा नहीं है और खर्च ५० रुपये मासिकसे कम नहीं है। सरपंचके सामने जो मामला पेश किया गया था, वह यह था कि १९२३ में मजदूरोंकी मजदूरीमें मिल-मालिकोंने जो १५ फीसदीकी कटौती कर दी थी, उसे पूरा कर दिया जाये। विद्वान् सरपंचने जब यह बात मान ली है कि मजदूरोंको जीवन-निर्वाहके योग्य वेतन पानेका अधिकार है और वास्तवमें अहमदाबादके कपड़ा उद्योगके मजदूरोंको उतना वेतन नहीं मिल रहा है; ऐसी हालतमें यह समझना कठिन है कि वेतनमें की गई पूरी कटौतीकी फिरसे पूर्ति क्यों नही की जाती। पाठक देखेंगे कि सारी कमी पूरी कर दी जाने पर भी मजदूरी बढ़कर ५० रुपये नही होगी। सिद्धान्तकी दृष्टिसे किये गये निर्णय और मजदूरीकी दृष्टिसे उसके प्रत्यक्ष अमलके बीच जो फर्क है, उसका मुझे यही कारण मालूम होता है कि या तो सरपंच अपने निर्णयके बारेमें ही सशंकित थे या उन्होंने अप्रत्यक्ष रूपसे सही, मिल-मालिकों द्वारा १९२३ में की गई कटौतीकी कार्रवाईकी निन्दा करनेमें संकोच किया है। कटौतीकी वह कार्रवाई पंच-फैसलेसे नहीं, बल्कि मिल-मालिकोंकी मजदूरोंको दबानेकी निरंकुश सत्ताके बलपर की गई थी। यह सच है कि तब मिल-उद्योगकी स्थिति उतनी अच्छी नहीं थी जितनी युद्धकालमें थी; फिर भी वह समय [१९२३] केवल कम मुनाफेका था, न कि घाटेका या मूल पूंजी खर्च करनेका। कटौतीका प्रश्न तभी खड़ा हो सकता है जब मजदूरी इतनी अच्छी हो कि जीवन-निर्वाहका खर्च चुका देनेके बाद वेतनमें कुछ बचत हो जाती हो और सम्बन्धित उद्योगको सचमुच घाटा उठाना पड़ रहा हो। परन्तु मजदूर पंच-फैसलेके सिद्धान्तसे बँधे हुए हैं, इसलिए उन्हें कटौती पूरी वापस न मिलनेपर भी सरपंचके निर्णयको सहर्ष स्वीकार करना चाहिए। दीवान बहादुरने उन्हें जो कुछ दिया है, उसे धन्यवाद सहित शिरोधार्य करना चाहिए और बाकीकी रकमके लिए लगातार शान्तिपूर्वक प्रयत्न करते रहना चाहिए। सच तो यह है कि उन्हें या मालिकोंको तबतक चैन नहीं लेना चाहिए, जबतक सचमुच जीवन-निर्वाहके लायक वेतन मिलनेकी स्थिति न आ जाये और बेहतर मकान और जीवनकी दूसरी साधारण सुविधाएँ न मिल जायें। परन्तु यदि हड़तालें अनावश्यक हो जायें और पंच-फैसलेके सिद्धान्तपर दोनों पक्ष पूरी तरह अमल करें, तो इससे बड़ा लाभ होगा। इसलिए मजदूरोंकी आंशिक असफलताके बावजूद मैं दीवान बहादुरको उनके अथक परिश्रमके लिए, जो उन्होंने दोनों पक्षों द्वारा सौंपे गये कठिन काममें किया और जिस तरह निष्पक्ष ढंगसे और जल्दीसे निर्णय दिया, उसके लिए बधाई देता हूँ।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १२-१२-१९२९

२८१. धर्मक्षेत्रमें अधर्म

एक काशीनिवासी लिखते हैं:[1]

सम्भव है, इसमें अतिशयोक्ति हो, लेकिन अतिशयोक्ति वाला अंश निकाल डालनेपर भी जो रहेगा, वह हमारे लिए शोचनीय होगा। कोई यह कहकर इन बुराइयोंकी ओर दुर्लक्ष्य न करे कि ऐसी अपवित्रता अन्य धर्मोंके क्षेत्रोंमें भी पाई जाती है, या हिन्दू धर्मके दूसरे तीर्थक्षेत्रोंकी भी यही दशा है। हर हालतमें, हर जगह ऐसी अनीति निन्दनीय है और उसे दूर करनेके लिए प्रयत्न करना जरूरी है। इन बुराइयोंको दूर करनेका सबसे अच्छा मार्ग तो यह है कि जो इन बुराइयोंको जानते हैं और इन्हें निन्दनीय समझते हैं, वे अपने जीवनको शुद्ध बनायें और शुद्धतामें दिनों-दिन वृद्धि करते रहें। यह प्राचीन मार्ग है। जब अधर्म बढ़ता है, तब साधु पुरुष तपश्चर्या करते हैं। और तपश्चर्याका अर्थ शुद्धि है।

एक दूसरा और आधुनिक मार्ग नवयुवकों द्वारा आन्दोलन करनेका है। आजकल युवक संघ बढ़ रहे हैं। युवकोंमें सेवाभाव बढ़ा है और बढ़ रहा है। यदि वे इस कामको उठा लें तो बहुत-कुछ कर सकते हैं। सब मन्दिरोंकी सूची बनाकर, उनके संरक्षकों और पुजारियोंसे परिचय बढ़ावें और जिन मन्दिरोंके खिलाफ शिकायत हो उनकी यथासम्भव जाँच करें। यात्रियों और दूसरे दर्शनार्थी लोगोंको इन बातोंसे सावधान कर दें। अनाथालय आदि संस्थाओंकी जानकारी हासिल करें। इन कार्योंसे बहुतेरा सुधार अपने आप हो जायेगा। क्योंकि अनीति अन्धेरेमें ही जी सकती है, प्रकाशमें नहीं।

ऐसे कार्य करनेवाले युवकोंका जीवन विशुद्ध होना चाहिए। जो दूसरोंकी शुद्धि करना चाहते हैं, उनके खुद शुद्ध न होनेपर, उनका कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

तीसरा सम्भावित मार्ग इज्जतदार और पवित्र लोगोंकी समिति बनाकर, उसके द्वारा तीर्थक्षेत्रोंके सुधारकी चेष्टा करना है।

ये तीनों मार्ग साथ-साथ चल सकते हैं, चलने चाहिए। ऐसी अनीति होते देख हम बहुधा निराश हो जाते हैं। परन्तु निराशाका कोई कारण नहीं है। हमारी निराशा और ढिलाईके कारण बहुतेरी अनीतियाँ जिन्दा रह सकती हैं। हममें यह श्रद्धा होनी चाहिए कि अनीति क्षणिक वस्तु है, और कुछ ही लोगोंकी क्यों न हो, मगर तेजस्विनी नीतिके सामने वह टिक नहीं सकती।

हिन्दी नवजीवन, १२-१२-१९२९

१. पत्र यहाँ नहीं दिया जा रहा है। पत्र-लेखकने इसमें बनारसमें विधवाश्रमों, अनाथालयों आदिमें होनेवाले व्यभिचार और अनाचारका वर्णन किया था।

२८२. पत्र : रमणीकलाल मोदीको

वर्धा
१२ दिसम्बर, १९२९

चि० रमणीकलाल,

तुम्हारा पत्र मिला। मैं पद्माकी चिन्ता नहीं करता। बुधाभाईसे सम्बन्धित कागजात इसके साथ भेज रहा हूँ। लीलाबहनको तुमने जो उत्तर दिया है वह ठीक है। यदि लीलाबहन अपनी माँके लिए अलग रसोई माँगती हो तो वह बुधाभाईके घरमें बना सकती है। भणसालीको हमने रख छोड़ा है, क्यों कि अभी उसे जवाबदार आदमी नही माना जा सकता। मैं तो यह मानता हूँ कि जब तक उसकी स्मरणशक्ति पूरी तरह लौट नहीं आती तबतक उसे रखना हमारा कर्त्तव्य है। इस सम्बन्धमें सुरेन्द्रसे बातचीत करना और इसमें यदि उसे कोई विचार-दोष नजर आये तो मुझे सूचित करना। पारनेरकर आदि यहाँ आये थे और कुछ घंटे ठहरकर चले गये। मथुरादासके बारेमें तुमने जो कुछ लिखा है वह मैं समझता हूँ। उसके सामने मुश्किलें आती ही रहेंगी। मैं यह नहीं कह सकता कि वहाँकी अपेक्षा यहाँ अधिक शान्ति है जब कि उसका मतलब यह हो कि वहाँ मुझे शान्ति नहीं मिली। हाँ, यह कहा जा सकता है कि वहाँ मुझे अशान्ति नहीं बल्कि आराम कम मिल पाता था। यहाँ मुझे अच्छा आराम मिल जाता है। यहाँ बाहरका काम थोड़ा ही होता है और आश्रमके मामलोंमें पड़नेकी मुझे जरूरत ही नहीं होती।

महादेव और मीराबहनको परसोंतक यहाँ पहुँच जाना चाहिए। प्यार अली और नूरबानू आ गये हैं। माधवजी और उनकी पत्नी महालक्ष्मी भी आ गये हैं। यहाँ आश्रममें १६ व्यक्ति हैं किन्तु आजकल लगभग ३२ व्यक्ति हो गये हैं, जिससे सभी जगहकी तंगीसे परेशान हैं।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (जी० एन० ४१५९)की फोटो-नकलसे।

२८३. पत्र : हेमप्रभादेवीदासगुप्तको

वर्धा
१३ दिसम्बर, १९२९

प्रिय भगिनी,

अब स्वास्थ्य कैसा है? मेरी अभिलाषा तो यह है कि आपका शरीर सर्वथा निरोग बन जाय। मेरा शरीर तो बहोत अच्छा कहा जा सकता है। मैं दूध दही और फल ही लेता हुं। अनाज बिलकुल नहिं।

बापूके आशीर्वाद

जी० एन० १६६५की फोटो-नकलसे।

२८४. पत्र : मथुरादास पु० गांधीको

वर्धा
१३ दिसम्बर, १९२९

चि० मथुरादास,

तुम्हारा मार्ग निष्कंटक नहीं है। इसके साथका पत्र पढ़ लेना। तुमसे बात करनेको मैंने रामसहायको भी लिखा है। यदि तुम अटूट प्रेम और धीरज रखो तथा कभी निराश न होओ तो आखिरकार तुम्हारी ही जीत होगी। तुम अपने कामसे तो जल्दी ही सन्तुष्ट मत होना; किन्तु दूसरोंके कामके बारेमें उदार बने रहना। ईमानदार आदमीके अधूरे कामको सहन मत करना और बेईमान व्यक्तिसे असहयोग करना। दोनोंके प्रति प्रेम रखनेका नाम ही समभाव है। भूखेको भोजन देना और अजीर्णके रोगीसे उपवास कराना ये दोनों प्रेमसे उत्पन्न होते हैं और कीड़ी कुंजरको एक जैसा माननेके कारण ही इसे समभाव कहा गया है। अपनी नई पद्धतिको सर्वथा सफल मानकर काम करनेके बजाय यदि तुम पुरानी पद्धतिका आग्रह करनेवालोंको समझा-बुझाकर उन्हें साथ लेकर आगे बढ़ोगे तो कमसे-कम संघर्ष होगा। पद्धति चाहे नई हो या पुरानी उसपर पूरी तरह अमल होना चाहिए। तुम्हारे सामने जो कठिनाइयाँ आयें उनके बारेमें मुझे लिखनेमें तनिक भी मत हिचकिचाना। यदि तुम्हें मेरी धारणा अधकचरी सूचनाओंपर आधारित या गलत जान पड़े तो ऐसी स्थितिमें मुझे चेता देना। मैं जिन सिद्धान्तोंका प्रतिपादन करता हूँ उनमें भले ही तुम्हारी श्रद्धा हो किन्तु किन्हीं तथ्योंके आधारपर मैं जो धारणा बनाऊँ वह श्रद्धाका विषय नहीं हो सकती। क्योंकि जो बुद्धिग्राह्य है वहाँ श्रद्धाके लिए स्थान हो ही नहीं सकता। इसलिए तथ्योंके बारेमें जहाँ तुम्हें मेरी भूल नजर आये और उसकी वजहसे गलती

हो सकती हो वहाँ मुझे सही बातकी जानकारी अवश्य करा देना। यदि तुम ऐसी आदत डाल लोगे तो मैं तुम्हें और भी खुलकर लिख सकूँगा तथा भली-भांति तुम्हारा पथ-प्रदर्शन कर सकूँगा।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (जी० एन० ३७३५)की फोटो-नकलसे।

२८५. पत्र : रमणीकलाल मोदीको

वर्धा
१३ दिसम्बर, १९२९

चि० रमणीकलाल,

तुम्हारा पत्र मिला। जयन्तीप्रसादकी स्त्रीको आनेकी अनुमति देकर तुमने अच्छा किया। व्रजबन्धु मिश्रकी पत्नीके बारेमें भी यही करो। दिनकररावकी पत्नी चली गई, अच्छा हुआ। मै समझता हूँ कि दिनकररावकी अनुपस्थितिमें तो वह वहाँ नहीं रहेगी। स्त्रियोंको आश्रममें लेनेके बारेमें एक अचूक नियम यह होना चाहिए कि जिस स्त्रीको गंगाबहन अनुमति दें उसीको लिया जाये। किसी स्त्रीको आश्रममें रखनेके बारेमें भी जैसा वे चाहें वैसा ही करना चाहिए। गंगाबहनको ऐसा चाहनेका अधिकार है और मुझे विश्वास है कि इससे अधिक और कुछ वे चाहती भी नहीं। इसी प्रसंगमें मैं यह बता देना चाहता हूँ कि सुमंगलप्रकाशकी बहन चन्द्रकान्ता आ गई है। मैं यह मानता हूँ कि गंगाबहन तथा प्रबन्ध समितिने भी उसे आश्रममें लेनेकी अनुमति दे दी है। मेरे विचारसे यह बालिका आश्रमका नाम रोशन करेगी। हालांकि १६ वर्षकी है किन्तु बहुत सयानी है, दृढ़ है और बहादुर है। वह तीक्ष्ण बुद्धि है, उसका चरित्र निर्मल जान पड़ता है तथा उसके विचार और अभिलाषाएँ परिपक्व हैं। किन्तु आखिरकार कैसी निकलेगी यह कैसे कहा जा सकता है? अतः इस सम्बन्धमें यदि अबतक विचार न हुआ हो तो पहले गंगाबहन और फिर प्रबन्ध समिति विचार कर लें।

दिल्लीसे जो रकमें प्राप्त हुई होंगी वे सब चरखा संघको दी जायेंगी। लाला लाजपतरायसे प्राप्त रकमें भी चरखा संघकी मारफत ही दी जा रही हैं न?

चिमनलाल और शारदाका बाहर जाना वांछनीय है। शारदापर नियंत्रण रखनेकी जरूरत है। वह खुद तो अपनेपर नियन्त्रण रख नहीं सकती इसलिए उस पर निर्दयतापूर्वक नियन्त्रण रखना चाहिए। जो हो किन्तु दोनों थोड़े दिन बाहर रहें तो अच्छा होगा। गोविन्दबाबूको मैं लिखूँगा।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (जी० एन० ४१६०)की फोटो-नकलसे।

२८६. पत्र : शिवाभाई पटेलको

वर्धा

१४ दिसम्बर, १९२९

भाई शिवाभाई,

तुम्हारा पत्र मिला। प्रश्न ही गलत आधारपर पूछा गया है। कार्यकलाप और नियम दो स्वतन्त्र वस्तुएँ नहीं हैं, जिस प्रकार कि हाथी और अंकुश स्वतन्त्र नहीं हैं। जिस प्रकार निरंकुश हाथी निरर्थक और खतरनाक प्राणी है उसी प्रकार नियमहीन निरंकुश कार्यकलाप भी निरर्थक है। अब तुम्हीं बताओ कि इनमें पहला स्थान किसका है। मजदूरोंको कम नहीं किया जा सकता या वे हमसे मिलतेजुलते नहीं ये दोनों कमियां हैं। और आश्रममें रहनेवाले सभी लोगोंका कर्त्तव्य है कि वे इन दोषोंको दूर करें। मैं जो चाहता हूँ यदि वह ठीक हो तो नियमका अर्थ यह है कि जो उसका पालन नहीं कर सकता वह आश्रममें न रहे। भोजनालयके बारेमें तुमने जो लिखा वह ठीक है। मैं देख पा रहा हूँ कि हमारी गतिविधियाँ बढ़ती जा रही हैं किन्तु चूँकि यह उन्हीं गति-विधियोंका विस्तृत रूप है अतः उनपर अंकुश लगानेकी इच्छा नहीं होती। मैं समझता हूँ कि जेठालाल, मनजी और भगवानजीको जो काम सौंपे गये हैं वे ठीक नहीं हैं। किन्तु अब मेरा काम आश्रमके संचालनमें दखल देना नहीं बल्कि दर्शक बने रहना और जहाँ आवश्यक जान पड़े वहाँ आलोचना करना है। तुम्हारा यह कहना ठीक है कि बहुतसे नियम लागू करनेकी आवश्यकताका अर्थ है कि मन्त्री कमजोर है। मन्त्री कमजोर है, यह बात वह स्वयं जानता है और हम सब भी जानते हैं। वह जान-बूझकर गलती नहीं करेगा। मेरे लिए तो इतना ही काफी है और हम सबके लिए भी काफी होना चाहिए कि वह अपनी तरफसे पूरी कोशिश करता है।

तुमने जो प्रश्न उठाये हैं वे सभी अच्छे हैं। मेरे लौट आनेपर उन सभी प्रश्नोंके बारेमें हम विचार-विमर्श करेंगे और तब जो हो सकेगा सो करेंगे।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (एस० एन० ९४९७) की फोटो-नकलसे।

२८७. पत्र : रमणीकलाल मोदीको

वर्धा
१४ दिसम्बर, १९२९

चि० रमणीकलाल,

तुम्हारा पत्र मिला। लीलाबहनके बारेमें इससे अधिक और कुछ नहीं किया जा सकता था। मेहमानोंको तकलीफ होती है, किन्तु हम लाचार हैं। नियमोंके बारेमें तुम्हारी कठिनाई मैं समझता हूँ। तुमसे जितना हो सके उतना करो, इतना ही काफी है। मुझे यह बात कतई पसन्द नहीं आती कि नवीन, कुसुम आदि जब चाहें तब उड़े-उड़े फिरते रहें। रेलगाड़ी एक सुविधाकी बजाय मुझे तो असुविधा नजर आ रही है; उसकी वजहसे होनेवाली जानीमानी असुविधाएं तो हमारे सामने ही हैं। जब रेलगाड़ी नहीं थी तो डाक हरकारों द्वारा ले जाई जाती थी। उन दिनों जब सगे-सम्बन्धी दूर रहा करते थे तो जो सिरपर आ पड़ती थी लोग उसे सह लिया करते थे और एक-दूसरेकी खातिर दौड़े नही जाते थे, जा ही नहीं पाते थे। आज भी करोड़ों लोगोंकी यही अवस्था है। पैसेवाले तरह-तरहके नखरे कर सकते हैं। हम भी इस कोटिमें आ जाते हैं। यह बात ऐसे हर मौके पर मुझे हमेशा ही खटकी है। इसी कारण बा का रसिकके पास दौड़े चले जाना मुझे अच्छा नहीं लगा। इस एक उदाहरणसे शेष सब समझा जा सकता है। ऐसे मामलोंमें जोर-जबरदस्तीसे किसीको कुछ समझाया नहीं जा सकता; किन्तु हम जानते हैं कि आश्रम धर्म कठोर धर्म है। यदि एक ओर सेवाका क्षेत्र बढ़ता है तो इसीलिए दूसरी ओर घटता भी है। हम सब आध्यात्मिक सम्बन्ध स्थापित करना चाहते हैं तो भौतिक सम्बन्ध क्षीण हो ही जाने चाहिए। किन्तु हमें यह भी याद रखना चाहिए कि इन कोरे उपदेशोंपर हम आज तो अमल नहीं करते।

मोती और तोतारामजीके बारेमें तुम जो कहते हो उसे मैं समझता हूँ।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (जी० एन० ४१६१) की फोटो-नकलसे।

२८८. पत्र : रघुनाथको

[१४ दिसम्बर, १९२९ के पश्चात्][1]

भाई रघुनाथ,

मैं तो तुम दोनोंसे बात करना चाहता था परंतु एक क्षण भी न मीली। और तुममें से किसीने मांगा नहिं।

भविष्यकी चिंता मत करो। आज कर्त्तव्यको भली भाँति पालन करनेसे भविष्यका पता मील जाता है।

सत्यकी कोई स्वतंत्र पहचान नहिं है। हमारे हृदयमें जो प्रतीत हो वह सत्य है। बहोत सी बातोंमें तो हम सत्यको जान लेते हैं और हृदयकी प्रतिति शुद्ध होनेके लिये हृदय शुद्धि आवश्यक है। इसी कारण यम नियमादिका पालन आवश्यक है।

बापुना आशीर्वाद

जी० एन० ४२१५ की फोटो-नकलसे।

२८९. विद्यापीठकी भिक्षा

वल्लभभाई और काकाकी अपीलको जिनके मनने स्वीकार कर लिया हो उन्हें यह लेटिन कहावत याद रखनी चाहिए: 'समयपर देनेवाला दूना देता है।' ऐसी ही एक कहावत हमारे यहाँ भी है: 'तुरत दान महाकल्याण।' इस कहावतमें छिपे हुए सत्यको हम हररोज अनुभव करते हैं। अगर डाक्टर या वैद्य समयपर रोगीकी चिकित्सा न करें तो या तो रोगीकी पीड़ा असह्य हो जाती है, या फिर वह मर जाता है—इस बातके उदाहरणोंकी कमी नहीं है। साँपके काटते ही अगर दवा की जाये तो आदमी जी जाता है, नहीं तो चल बसता है—यह हमारा रात-दिनका अनुभव है। भूखोंको खिलाना धर्म है, यह जानते हुए भी जो तुरत नहीं खिलाता वह हिंसा करता है। यही बात हर तरहके दानपर भी लागू होती है। किसीके माँगनेपर देनेमें उदारता नहीं, अविचार है, मूर्खता है, तथा उसमें मोह और अभिमान भी हो सकते हैं। लेकिन माँग वाजिब है, और वह अच्छे कामके लिए माँगी जा रही है, यह जानते हुए भी जो आदमी, जब कोई उसके दरवाजेपर जाये तभी कुछ देता है, तो वह जनताका समय नष्ट करता है, अपनी प्रतिष्ठा खोता है और इस तरह संस्थाके श्रेष्ठ कार्यकर्त्ताओंका दुरुपयोग करता है। इस दृष्टिसे विचार करने

१. यह पत्र रमणीकलाल मोदी द्वारा संग्रहीत और संरक्षित टाइप शुदा पत्रोंमें १४-१२-१९२९ के पत्रके बाद रखा गया है।

पर मालूम होगा कि विद्यापीठकी यह अपील एक प्रकारकी लोक-शिक्षा है। जिन्हें विद्यापीठसे प्रेम नहीं है, उनसे यह प्रार्थना नहीं की गई है। इसका उद्देश्य उन्हें अपने कर्त्तव्यपालनकी प्रेरणा देना है जिनके मनमें उसकी उपयोगिता और उसके द्वारा अबतक की गई सेवाके बारेमें जरा भी शंका नहीं है; और जो तटस्थ या उदासीन हैं, लेकिन विद्यापीठका महत्त्व जान लेनेपर ही देना चाहते हों उन्हें प्रोत्साहित करना, ललचाना भी इस अपीलका एक हेतु है। लोक-जागृतिके इस युगमें जहाँ तक हो सके किसीको तटस्थ नहीं रहना चाहिए। जो संकटके समय देशकी मदद नहीं करते वे भी उसके दुश्मनका काम करते हैं। ऐसे समय अपनी इच्छाके अनुसार कुछ देना उनका धर्म है। विद्यापीठ असहयोगकी यानी आपत्ति-कालमें सेवाके लिए निर्मित एक संस्था है। उसका उपयोग सदा होता रहेगा, यह उसका एक अतिरिक्त लाभ है। लेकिन उसका जन्म तो वृद्धकालमें और युद्धमें मदद करनेके लिए हुआ था। अतएव मैं आशा करता हूँ कि जो विद्यापीठको हानिकर या निकम्मी संस्था नहीं मान बैठे हैं ऐसे लोगोंके लिए विद्यापीठ क्या है, उसने क्या किया है और भविष्यमें क्या कर सकता है आदि बातें जान लेना आवश्यक है। और यह सब जान लेने तथा विश्वास हो जाने पर दानकी रकम पहुँचाना वे अपना कर्तव्य समझें। नीचे लिखे पतोंपर दान भेजा जा सकता है: सेठ जमनालाल बजाज, कोषाध्यक्ष, ३९५-३९७, कालबादेवी रोड, बम्बई-नं० २; गुजरात विद्यापीठ, अहमदाबाद; प्रान्तीय कमेटी, अहमदाबाद; 'नवजीवन' कार्यालय, अहमदाबाद और उद्योग-मन्दिर साबरमती।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १५-१२-१९२९

२९०. किंकर्त्तव्यविमूढ़ पति

एक किंकर्त्तव्यविमूढ़ पति लिखते हैं:[1]

मैं आश्वासन देना तो जरूर चाहता हूँ, लेकिन ऐसे उलझनके समय अगर मनुष्य खुद आश्वासन न पा सके तो दूसरे शायद ही उसे ढाँढस बँधा सकें। हाँ, सलाह-मशविरेसे भी आदमी बहुत-कुछ आश्वासन पा सकता है। इसलिए इन नवयुवक पतिकी उलझनका हम पृथक्करण कर देखें। उनकी उलझनके पीछे चली आ रही रूढ़िका प्रभाव दिखाई देता है। मालूम होता है कि पतिके मनमें स्वामित्वकी सत्ता आजमानेकी इच्छा काम कर रही है। अगर यह बात न होती और पति, पत्नीको मित्रवत् मानते होते तो निराशाका कोई कारण ही न रह जाता। मित्रको हम धैर्यपूर्वक समझाते हैं और उसके न माननेपर निराश नहीं होते, जबर्दस्ती नहीं करते। अगर पतिको पत्नीसे कुछ आशा रखनेका अधिकार है तो पत्नीको भी तो कुछ होगा

१. पत्र यहाँ नहीं दिया जा रहा है। पत्र-लेखकने लिखा था कि कम उम्रमें ही उन्हें मजबूरन विवाह करना पड़ा था और अब वे अपनी पत्नीके रूखे बरताव तथा उसकी नासमझीसे बहुत परेशान हैं।

न? देवदर्शनकी इच्छुक अनेक पत्नियोंको आजकलके सुधारक पतियोंकी धुन जब पसन्द न आती होगी तो वे बेचारी क्या करती होंगी? उन्हें तो पतिको समझानेकी हिम्मततक न होती होगी। इसलिए इन पतिको और इनके समान दूसरोंको मैं पहली सलाह तो यह देता हूँ कि वे जान-बूझकर अपना स्वामित्वका अधिकार छोड़ दें; पत्नीकी सेवा करते समय और शिक्षाके लिए शिक्षा देते समय वे अपने विकारोंको भी वशमें रखें; और फिर धैर्यके साथ उन्हें यह समझायें कि अन्धविश्वास, मन्दिरके पुजारियोंपर आस्था रखना, तथाकथित प्रसिद्ध मन्दिरोंमें भटकना वगैरा फिजूल है और ऐसा करना हानिकर भी हो सकता है। इस बारेमें मुझे तनिक भी सन्देह नहीं कि अगर पतिका प्रेम शुद्ध होगा तो पत्नी जरूर समझ जायेगी। जल्दीमें आम नहीं पकते। जब आम-जैसे वृक्षके लिए वर्षोंकी सार-सँभाल जरूरी है तो जिस स्त्रीरूपी वृक्षको ज्ञानहीन रखा गया है, उसकी परवरिशमें कितनी और कैसी कोमलतापूर्ण सार-सँभाल आवश्यक होगी? मेरा अपना अनुभव तो यह है कि इस तरह रोजरोज सींचनेसे ही सन्तोष और सफलता मिल सकती है। एक बार कहनेपर अगर बात गले न उतरे तो निराश होकर प्रयत्न करना नहीं छोड़ना चाहिए। उलटे यह विश्वास रखना चाहिए कि रोजरोज इसी तरह सिंचाई करनेसे आखिर हृदय अवश्य पिघलेगा। इस कारण मैं न तो जो हो चुका है उसे निभा लेनेकी और न त्यागनेकी सलाह ही दे सकता हूँ। इस तरहका सम्बन्ध करके माता-पिताने जो भूल की है, उसे ऊपर बताये अनुसार सुधार लेनेमें ही पुरुषार्थ है। पत्नीको धोखा देकर त्याग देना और उसीमें सुख मानना तो आसान है; लेकिन न यह सच्चा सुख है और न पुरुषार्थ और इसी कारण यह धर्म भी नही है। जिन्हें अपने देशकी कंगालीका ज्ञान हो गया है, वे उसे छोड़ नहीं देते बल्कि उसकी कंगालीको मिटानेका मरते दमतक प्रयत्न करते हैं; वे अनेक कष्ट सहते हैं, और केवल उसीमें सुख मानते हैं। अगर हम यह बात समझ जायें तो पत्नीके प्रति भी इसी तरहका बरताव करने लगें। क्योंकि जो असुविधा और कष्ट इन किंकर्त्तव्यविमूढ़ पतिको है वही दूसरोंको भी है, यह बात वे खुद कबूल करते हैं। अगर ऐसे सभी पति अपनी पत्नियोंको छोड़ दें तो देशकी इन सभी स्त्रियोंकी क्या दशा होगी? पति अगर नहीं सँभालेगा तो और कौन सँभालेगा? आज पति और पत्नीके बीच जो असंगति दिखाई पड़ती है, वह भी देशकी मौजूदा हालतकी एक निशानी है, यह सोचकर ही इस तरहके किंकर्त्तव्यविमूढ़ पतियोंको अपना मार्ग स्वयं ढूँढ़ लेना चाहिए। इस तरहकी समस्याओंको सुलझाते-सुलझाते वे सहज ही स्वराज्यकी समस्याको हल करना सीख जायेंगे, जिससे उन्हें और देशको दूना लाभ होगा।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १५-१२-१९२९

२९१. टिप्पणियाँ

सत्ताके सामने सत्य पानी भरता है

एक नवयुवक लिखते हैं :[1]

यह अच्छा सवाल पूछा गया है। सत्यके पालनमें ही शान्ति निहित है। सत्य ही सत्यका पुरस्कार है। कीमतीसे-कीमती वस्तु बेचनेवालेको जैसे उससे अधिक कीमती वस्तु नहीं मिल सकती, वैसे ही सत्यवादी भी सत्यसे बढ़कर और किस वस्तुकी कामना करेगा? हरिश्चन्द्रको मैं अपवाद मानना ही नही चाहता, लेकिन यह कहना भी गलत है कि हरिश्चन्द्र और धर्मराज आदि दुःखी रहे थे। उन्होंने दुःखमें सुख माना था, और हम जिसे दुःख कहते हैं उन्होंने उसका स्वागत किया था। इसी कारण भक्तकविने कहा है :

'हरिनो मारग शूरानो, नहि कायरनुं काम जोने।'

सत्य जहाँ सूर्यके समान ताप पहुँचाता है, तहाँ प्राणोंका सिंचन भी करता है। एक घड़ीके लिए भी अगर सूर्य तपना बन्द कर दे तो यह सृष्टि जड़वत् बन जाये, इसी तरह अगर सत्यरूपी सूर्य क्षणभरके लिए भी न तपे तो इस संसारका नाश हो जाये। सच तो यह है कि जिस तरह शरीरके भीतरका मैल बाहर निकलता ही रहता है उसी तरह हम झुठाईको भी संसारमें रात-दिन देखा करते हैं। परन्तु हम यह कदापि न भूलें कि करोड़ों प्राणी स्वभावतः ही सत्यका उपयोग करते हैं। मेरा अपना अनुभव तो निरपवाद है, और उससे पता चलता है कि मुझमें जो भी निर्मलता रही हो उसका दुरुपयोग आखिर तक कोई नहीं कर सका है। इसके विपरीत जो मेरी सत्यनिष्ठासे बेजा लाभ उठानेको तैयार हुए हैं उन्होंने अपनी प्रतिष्ठासे हाथ धोये हैं तथा और भी बहुत-कुछ खोया है। सत्य वचन, सत्य विचार और सत्य आचारके कारण मुसीबतें आई हैं, लेकिन उनके कारण किसी दिन मुझे दुःखका अनुभव नहीं हुआ। उनसे मुझे परम सुख और शान्ति ही मिली है। अपनी झुठाईका एक उदाहरण मैंने संसारके सामने रखा है।[2] वह जबतक मेरे भीतर रहा तबतक रात-दिन मुझे वह कुतरकर खाता रहा था। निकाल कर जब मैं शुद्ध हुआ तभी मुझे शान्ति मिली। अपने जीवनके ऐसे कुछ अन्य उदाहरण मुझे याद हैं। मैं तो समझता हूँ कि दक्षिण आफ्रिकाके सत्याग्रहको आज भी सारी दुनिया जीत ही मानती है। मालूम होता है, प्रस्तुत प्रश्नकर्त्ताको दक्षिण आफ्रिकाका कोई अनुभव नहीं है। संसारके और मेरे अनुभवसे तो यही सीख मिलती है कि सत्ताके सामने सत्य पानी नहीं भरता बल्कि सत्ताको ही हमेशा सत्यकी चेरी बनकर रहना पड़ता है।

१. पत्र यहाँ नहीं दिया जा रहा है। पत्र-लेखकका कहना था कि सत्यके मार्गपर चलनेसे मानसिक शान्ति नहीं मिलती।

२. देखिए खण्ड ३९ पृष्ठ ५४-७।

खादीका सूचीपत्र[1]

इस महीनेकी पहली दिसम्बरको श्री विट्ठलदास जेराजाणीने 'खादी-पत्रिका' के क्रोड़पत्रके रूपमें जो सूचीपत्र प्रकाशित किया है, मैं चाहता हूँ कि हरेक खादी-प्रेमी उसे मँगाकर देखें। यह सूचीपत्र पुराने सूचीपत्रका नया संस्करण है। पुरानेके मुकाबले इस नये सूचीपत्रमें जो प्रगति दिखाई देती है वही खादीके बारेमें भी लागू होती है। इस संस्करणमें सुन्दर नये चित्र दिये गये हैं। इसमें हमें शाक-भाजीके थैले, बगलझोले, बारडोली झोले और बर्मी ढंगके झोले वगैराका वर्णन मिलता है। खादीकी टोपीको धोनेका सही और गलत तरीका बतलानेवाले चित्र देखने योग्य हैं। सही तरीकेसे टोपीको ज्यादा टिकाऊ बनाया जा सकता है, और उसका आकार ज्योंका त्यों बना रहता है। खादीकी टोपी पहननेवाला अगर उसे साफ नहीं रखता और मैली होने देता है तो वह अपनी और खादीकी प्रतिष्ठा गँवाता है। चित्रोंको देखते ही यह तुरन्त मालूम हो जाता है कि खादीकी टोपीको धोना बिलकुल आसान काम है। खादी-टोपीके बारेमें यहाँ इतना और कह दूँ कि श्री दयालजीने आवश्यक लम्बाईवाले खादीके एक टुकड़ेसे जब मनमें आये तब वगैर सिये टोपी बनानेका एक तरीका ढूँढ़ निकाला है जो मुझे बहुत पसन्द आया है। मैं चाहता हूँ कि अगले सूचीपत्रमें इसका भी विवरण दे दिया जाये। इससे धुलाईमें सुविधा होती है और सिलाईका खर्च भी बच जाता है। लेकिन इस सूचिपत्रकी सबसे अधिक आकर्षक बात तो उसमें दिया गया निम्न आश्वासन है।[2]

ऊपर जो गारंटी दी गई है, वह अन्य विज्ञापनोंमें दी जानेवाली गारंटीके समान झूठी नहीं है। मुझे मालूम है कि इस तरहके खरीदारोंने अपने पैसे वापस पाये हैं। इसके सिवा इस सूचीपत्रमें और भी कई जानने योग्य बातें मिलेंगी; जैसे पुराने कश्मीरी कपड़ेको नया-सा बनानेकी तरकीब, ऊनी कपड़े धोनेकी रीति, ऊनी कपड़ेको सँभालनेका तरीका और इसी तरहकी अन्य जानकारी तथा सूचनाएँ इस पत्रकसे मिल सकती हैं।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १५-१२-१९२९

१. इसपर एक छोटी-सी टिप्पणी **यंग इंडियाके** २१-११-१९२९ के अंकमें भी प्रकाशित हुई। देखिए "सचित्र खादी तालिका", २१-११-१९२९।

२. यहाँ नहीं दिया जा रहा है।

२९२. मिल मजदूरोंकी माँग

अहमदाबादके मिल मजदूरोंकी सब माँगें सरपंच श्री कृष्णलाल झवेरी कबूल नहीं कर सके, यह देख कर मुझे दु:ख और आश्चर्य दोनों हुए हैं। मैं तो आज भी यह मानता हूँ कि उनकी तमाम माँगें मंजूर होनी चाहिए थीं, लेकिन वे कबूल नहीं की गई इस बातका मुझे दु:ख है, और आश्चर्य इस कारण होता है कि सरपंचके फैसलेमें नामंजूरीकी कोई वजह नहीं दी गई है। किन्तु मजबूत महाजनोंकी ओरसे पेश किये गये सिद्धान्तको सरपंचने पूर्णत: मंजूर किया है और वह सिद्धान्त इस प्रकार है: अपने गुजारेके लिए आवश्यक वेतन पाने और माँगनेका मजदूरोंको पूरा हक है। साथ ही सरपंचने मजदूर महाजनों द्वारा पेश किये गये आँकड़ोको भी स्वीकार किया है। श्री कृष्णलाल झवेरी कहते हैं कि मजदूर परिवारकी औसत मासिक आमदनी ४० रुपयेसे अधिक नहीं है, और उसका माहवारी खर्च ५० रुपयेसे कम नहीं है। सरपंच महोदय यह भी मंजूर करते हैं कि मजदूर महाजनों द्वारा दिये गये खर्चके आँकड़ोंमें, खर्चकी कुछ जरूरी मदें अर्थात् जन्म-मरणके अवसरोंपर होनेवाला खर्च, नहीं दिया गया है। इसके अतिरिक्त सरपंच यह भी कहते हैं कि मिलोंको अपने मूलधनमें घाटा नहीं सहना पड़ा है।

मेरी दृष्टिमें तो घाटा उसीको कहा जा सकता है जब पूंजीमें से रकम निकालनी पड़े। कम मुनाफा लेनेवालोंको नुकसान नहीं उठाना पड़ता। कम मुनाफा मजदूरोंकी मजदूरी घटानेका कारण कभी नहीं होना चाहिए। यह तो तभी हो सकता है जब मजदूर भी भागीदारोंकी तरह ही और उसी हदतक मालिक बन जायें। यदि हमारे विचार संकुचित न हों तो हम आसानीसे यह समझ सकते हैं कि भागीदारोंकी बनिस्बत मजदूरोंको ही स्वामित्वका ज्यादा अधिकार होना चाहिए। भागीदार तो पैसा देकर अलग हो जाता है; मगर मजदूर रोज अपना पसीना बहाता है और अगर वफादार हुआ तो कभी पृथक हो ही नहीं सकता। भागीदारके बिना मिल चल सकती है, मगर मजदूर न हों तो मिल चलाना नामुमकिन है। कोई कह सकता है, चूँकि मजदूर बुद्धिहीन होता है, इसलिए अगर वह मालिक बना तो मिलका सत्यानाश कर डालेगा। लेकिन यह कहना निराधार है। सभी भागीदार बुद्धिमान नहीं होते। उनके मन और बुद्धिकी कोई जाँच भी नहीं करता। फिर भी भागीदारोंको मताधिकार प्राप्त है, और मिलोंका काम चल सकता है। मेरी अपनी तो यह राय है कि अगर मजदूरोंको भी मालिकोंके अधिकार मिल जायें तो मिलोंका काम और भी अच्छी तरह चले। अमेरिकामें जो थोड़ेसे अरबपती इस तरहके प्रयोग कर रहे हैं उसका अनुभव भी मेरे विचारोंका समर्थन करता है। अगर मजदूरोंको आजीविकाके सिवा अपनी हालतको सुधारने या अच्छा बनाने योग्य मजदूरी मिलती हो तो ऐसी किसी स्थितिकी कल्पना की जा सकती है जब उसमें कुछ कमी करना आवश्यक हो जाये। जिस तरह मालिककी पूंजीपर हाथ डालना अनुचित है उसी तरह मजदूरकी

गुजर-बसरके लायक मजदूरीको घटाना भी अनुचित है। इस मामलेमें सबसे अच्छी बात तो यह होगी कि पंच हरसाल अनाज वगैराके भावोंके आधारपर मजदूरोंकी आजीविका योग्य मजदूरी ठहरा दें और जिस तरह भागीदारोंको ब्याज मिलता है उसी तरह और उसी अनुपातमें मजदूरोंको भी प्रति वर्ष तरक्की दी जाये। इस तरक्कीमें ब्याजके अनुसार घट-बढ़का होना मैं बिलकुल उचित समझता हूँ। लेकिन यहाँ तो मैं विषयसे बाहर चला गया।

सरपंचने अपने फैसलेमें कहा है कि १९२३ की अपेक्षा आजकल मिलोंको अधिक लाभ हो रहा है। ऐसी दशामें १९२३ में मजदूरीकी जो दर घटाई गई थी उसे पूरी न करनेका कोई उचित कारण दिख नहीं पड़ता। हाँ, सरपंचने एक बात जरूर कही है। उनका कहना है कि १९२३ में जो मजदूरी घटाई गई थी वह अनुचित मानी गई है, लेकिन यह ठीक नहीं है। उन दिनों लड़ाईके दिनोंकी अपेक्षा मिलोंकी हालत गिरी हुई थी, इस बातसे तो मजदूरोंने भी नहीं इनकार किया है। लेकिन उस साल मिलोंकी पूँजीपर हाथ नहीं डालना पड़ा था। किसी मिल विशेषकी ऐसी स्थिति साबित भी कर दी जाये तो भी सिर्फ उसके कारण पूरे मिल-उद्योगके लिए वही बात नहीं कही जा सकती। इसलिए आजीविका-योग्य मजदूरी देनेके सिद्धान्तको स्वीकार कर लेनेपर और यह मान लेनेपर कि मजदूरोंको उतनी मजदूरी नहीं मिलती है, मेरी नाकिस रायमें सरपंचके पास इस बातका कोई कारण न था कि वह मजदूरोंको पूरे पन्द्रह फीसदी दिलानेका निर्णय क्यों न कर सके। यहाँ यह याद रखना चाहिए कि पूरे पन्द्रह फीसदी मिलनेपर भी मजदूरी गुजर-बसर योग्य नहीं होती। आजीविकाके लिए आवश्यक रकम तुरत ही पानेकी माँग पेश न करके मजदूर-संघने विवेकका परिचय दिया है।

इस तरह मैं मानता हूँ कि मजदूरोंके साथ पूरा न्याय नहीं किया गया है फिर भी श्री कृष्णलाल झवेरीके लिए तो मेरे हृदयसे धन्यवाद ही निकलता है। उन्होंने इस कामके लिए जो भी परिश्रम किया, सब ईश्वर-प्रीत्यर्थं था। फिर भी उन्होंने अपनी ओरसे कोई बात उठा न रखी। उन्होंने सावधानीके साथ सारे मामलेकी जाँच की थी; जाँचके समय उनकी ओरसे एक दिनकी भी ढिलाई नहीं की गई; और उनके काममें मुझे केवल निष्पक्षताका ही अनुभव हुआ है। इसलिए उन्होंने तो जिसे न्याय समझा है उसे न्याय ही कहा है। इससे अधिककी कोई आशा भी नहीं रख सकता। सबको समान रूपसे सन्तुष्ट करना मनुष्य-जातिकी शक्तिसे परे है। वह तो इस बातकी कोशिश भर कर सकता है। सरपंचके फैसलेमें हम उक्त प्रयत्नको स्पष्ट देख सकते हैं।

अतएव मजदूरोंने कृतज्ञतापूर्वक सरपंचके फैसलेको स्वीकार करके ठीक ही किया है। मजदूरोंका क्या कर्तव्य है यह मैं उनके लिए लिखी गई विशेष पत्रिकामें[1] बता चुका हूँ। मिल-मालिकों और मजदूरोंके संघने पंच फैसलेको कबूल किया है, इस कारण उसे मन, वचन और कर्मसे पूरी तरह मानना दोनोंका धर्म है।

१. देखिए "अपील: अहमदाबादके मजदूरोंसे", ७-१२-१९२९।

और इसीलिए मैं मिल मालिकोंको भी धन्यवाद देता हूँ कि उन्होंने सरपंचके फैसलेको कबूल करनेका प्रस्ताव किया है। मै देखता हूँ कि उनके द्वारा असन्तोष प्रकट किया जा रहा है। मै इस असन्तोषको समझ नहीं सका। मैं यह भी नहीं समझ पाया कि उसके कारण मिल-उद्योगको क्योंकर हानि पहुँचेगी। अगर सरपंच द्वारा स्वीकृत आजीविका योग्य मजदूरीके सिद्धान्तको मिल-मालिक भी मंजूर करते हों — और वे ऐसा करनेको बँधे हुए हैं — तो उन्हें यह जानकर खुश होना चाहिए कि उन्हें लगभग बीस लाख रुपयोंकी बचत हुई है। और आजसे ही उन्हें ऐसी तैयारी शुरू कर देनी चाहिए जिससे वे मजदूरोंको जल्दीसे-जल्दी निर्वाहके योग्य मजदूरी दे सकें। उन्हें समझ लेना चाहिए कि यथासमय मजदूर इतनी तरक्कीके लिए अपनी माँग जरूर पेश करेंगे। अतएव मिल-मालिकोंका बड़प्पन तो इसीमें है कि वे उनकी माँगके पहले ही बढ़तीकी रकम तय कर लें और दे दें। सरपंच द्वारा ठहराई हुई रकम — औसत माहवार तनख्वाह ४० रु० और खर्च ५० रु० उन्हें मंजूर न हो तो वे बारीकीसे इन आँकड़ोंकी जाँच कर लें। अगर वे शुरुआत ही अनिच्छासे करेंगे तो दोनों पक्षोंमें मित्रता बढ़नेके बदले मनमुटाव ही बढ़ेगा।

पंचके निर्णयको मान लेनेपर मित्रता और पारस्परिक विश्वास बढ़ना चाहिए। और इस विश्वासको बढ़ानेके लिए पंच या सरपंचके फैसलेपर दोनों पक्षोंको अधूरे मनसे नहीं, बल्कि शुद्ध भावसे अमल करना चाहिए। इस बारेमें मजदूरोंकी ओरसे यदि थोड़ी भी गफलत हो गई हो तो मजदूरोंको उसे दूर कर लेना चाहिए। सो तो साफ ही है कि मिलमालिकोंकी ओरसे लापरवाही बरती जाती है। पानी, मकान वगैराका इन्तजाम करनेकी बात मालिकोंने कबूल की है, लेकिन इस सम्बन्धमें बहुत-सी मिलोंमें अबतक कुछ भी नहीं हुआ है। हालाँकि इन बातोंका उल्लेख पंचने अपने फैसलेमें भी किया है, फिर भी मालिक लापरवाही कर रहे हैं। लेकिन मुझे उम्मीद है कि यह शिकायत समय रहते दूर हो जायेगी।

एक दूसरी बातका विचार भी समय रहते ही हो जाना जरूरी है। सेठ मंगलदासको और मुझे अब छुट्टी मिलनी चाहिए। मैं बूढ़ा हो गया हूँ और मैं मानता हूँ कि मेरे साथीको भी अपने बारेमें यही लगता होगा। मेरी समझमें अब दूसरे पंच नियत करना आवश्यक है। मुझे लगभग हमेशा दौरेपर रहना पड़ता है, फिर भी मुझपर कृपा करके सेठ मंगलदास और मजदूर-महाजनोंने मेरी सुविधाका सदा खयाल रखा है। सरपंचकी ओरसे भी मुझे इसी तरहकी सुविधा माँगनी पड़ी थी। मेरी दृष्टिमें यह दयनीय स्थिति थी। मैं जानता हूँ कि मेरा कर्तव्य सरपंचकी सुविधा-का खयाल रखना और वे जहाँ होते वहाँ उनके पास जाना था, लेकिन मेरी प्रतिकूल स्थितिको उन्होंने निभा लिया और खुद परेशानी उठाई। लेकिन रोज-रोज यों नहीं निभ सकती। मजदूरोंकी छोटी-छोटी शिकायतें भी नियमानुसार और फौरन ही सुनी जानी चाहिए। और इसके लिए स्थानिक पंच अनिवार्य है। मौजूदा पंचोंको शोभा या 'अपील कोर्ट'के रूपमें रखना चाहें तो भले रखें। यह कोई जरूरी नहीं है कि दो आदमी ही नियुक्त होने चाहिए। अहमदाबादमें रहनेवाले एक ही निष्पक्ष व्यक्तिको

ढूँढ़ निकालना मुश्किल नहीं होना चाहिए। ईश्वर प्रीत्यर्थ इतना समय देकर काम करनेवाला यदि कोई स्त्री या पुरुष न मिल सके तो मेरे विचारमें वेतन देकर किसी व्यक्तिको नियुक्त करना भी लाभप्रद होगा। यह भी कोई आवश्यक नहीं कि पंच पुरुष ही हों। अहमदाबादके सौभाग्यसे हमारे यहाँ ऐसी सुशिक्षित बहनें भी हैं जो सेवा कर सकती हैं, निष्पक्ष रह सकती हैं और मामलेको समझ सकती हैं। और मैं समझता हूँ कि उनमेंसे किसी एकको सहज ही चुना जा सकता है। अभी तो ये सब बातें दोनों पक्षोंके सामने सूचनार्थ रखता हूँ। भारतके औद्योगिक केन्द्रोंमें बम्बईके बाद दूसरा नम्बर अहमदाबादका ही आता है। इसलिए अगर अहमदाबादका उद्योग स्थिर बन सके, पूँजी और मजदूरी, मालिकों और मजदूरोंके बीच निर्मल सम्बन्ध स्थापित किया जा सके तो यहाँका उदाहरण सारे भारतके लिए अनुकरणीय बन सकता है। इस कार्यमें खास जिम्मेदारी मालिकोंपर है। क्या वे उसे पूरा करेंगे?

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १५-१२-१९२९

२९३. स्त्रियोंकी दुरावस्था

एक काठियावाड़ी भाईने अपना नाम और पता देते हुए अपने पत्रमें दो स्त्रियोंके विषयमें लिखा है। मैं उनका पत्र संक्षेपमें नीचे देता हूँ:[1]

ये बातें इतनी विस्तारके साथ कही गई हैं कि इनमें अतिशयोक्ति होनेका डर नहीं रहता। यह एक महत्वपूर्ण प्रश्न है कि इस तरहकी दर्दनाक हालतमें फँसी हुई बहन क्या करें। ऐसी अधिकतर स्त्रियाँ खुद असहाय होती हैं; अर्थात् उन्हें अपने अधिकारोंका ज्ञान नहीं होता, और अगर होता भी है तो वे बेचारी यह नहीं जानतीं कि ऐसे मामलोंमें क्या किया जा सकता है। मुमकिन है कि वे यह भी जानती हों; तथापि वैसे उपायोंसे काम लेनेमें वे अपनेको असमर्थ पाती है। इसलिए सगे-सम्बन्धियोंकी सहायता मिलनेपर ही उनका उद्धार हो सकता है। प्रस्तुत पत्र-लेखकने जिस लेखका[2] जिक्र किया है, वह समझदार और समर्थ स्त्रियोंके लिए लिखा गया था। इन दो बहनोंको अगर कानूनकी सहायता मिल सकती हो तो उससे लाभ उठाना चाहिए। स्थानीय लोकमत बनाया जा सके तो बनाना चाहिए, धन या राज्यसत्ताकी प्रतिष्ठासे चौंधिया जानेकी जरा भी जरूरत नहीं है। ऐसी स्त्रियोंको आश्रय देनेवाले महिलाश्रम भी आजकल गुजरातमें मौजूद हैं। उन्हें वहाँ रखकर शिक्षित और स्वावलम्बी बनानेका प्रयत्न भी साथ-साथ करना चाहिए। अकसर झूठी लोकलाजके

१. पत्र यहाँ नहीं दिया जा रहा है। पत्र-लेखकने अपने पत्रमें 'धनवानोंकी पत्नियाँ अपने विरासतके हक छोड़ दें', गांधीजीके कथनको पढ़कर दो सम्पन्न पतियों द्वारा परित्यक्त उनकी पत्नियोंकी दशाका वर्णन किया था। इस समाचारके खण्डनके लिए देखिए "पत्र-लेखकोंसे", २३-२-१९३०।

२. देखिए "स्त्रियोंका स्थान", १७-१०-१९२९।

कारण ऐसे अन्यायोंपर पर्दा डाल दिया जाता है। लेकिन मेरी दृष्टिमें यह अनावश्यक और अनुचित है। बहुतेरे अन्याय और दुराचार ऐसे हैं जो प्रकाशमें आते ही समाप्त हो जाते हैं।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १५-१२-१९२९

२९४. झूठी खबर

'नवजीवन'के एक पाठकने किसी मासिकसे काटकर निम्न कतरन भेजी है:[1]

हालाँकि हम दोनों पति-पत्नी वैष्णव सम्प्रदायके हैं, तो भी लगभग पैंतीस वर्ष पूर्व जबसे हमारा सार्वजनिक जीवन शुरू हुआ है तबसे मेरी पत्नी कभी किन्हीं महराजके दर्शनार्थ गई हों, यह बात हममें से किसीको याद तक नहीं आती। मेरी समझमें नहीं आता कि लेखकने यह खबर देनेकी हिम्मत कैसे की होगी। मैं खुद किसीके पैर छूनेकी बातमें श्रद्धा नहीं रखता। फिर भी अगर इस भावनाका पोषण करना उचित हो तो ऐसे व्यक्तियोंके ही चरण-स्पर्श करने चाहिए जो अपने उच्च चरित्रके कारण प्रसिद्ध हो चुके हैं। साम्प्रदायिक महाराजोंके वंशमें उत्पन्न हर व्यक्ति गुरुदेवके समान है, यह बात मेरे गले कभी उतर ही नहीं सकी।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १५-१२-१९२९

२९५. महीन खादी पहननेवालोंसे

मुझे दुःखके साथ कहना पड़ता है कि आन्ध्रदेशकी मशहूर महीन खादीके बारेमें बहुत धोखाधड़ी चल रही है। जिस तरह मन्दिरके पुजारी मन्दिरकी चीजोंको चुराते हुए नहीं डरते उसी तरह दरिद्रनारायणकी प्रसादी-रूप खादीके बारेमें दरिद्रनारायणके संरक्षक चोरी करते नहीं झिझकते। खादीके नामपर विलायती सूतका महीन कपड़ा बेचते उन्हें जरा भी शर्म नहीं आती। चरखा संघको खबर मिलते ही उसने इस मामलेमें सख्तीसे काम लिया ही है लेकिन महीन खादी पहननेवालोंके लिए भी संघकी मदद करना जरूरी है। जिस थानपर चरखा संघकी मुहर न हो, और जो थान प्रमाणित खादी-भण्डारका न हो, उसे उन्हें छूना भी न चाहिए। जिन्हें प्रमाणपत्र प्राप्त भण्डारोंकी नामावलीकी जरूरत हो वे एक आनेका टिकट भेजकर चरखा संघके मन्त्रीसे उक्त सूची मँगा सकते हैं। शुद्ध किन्तु महीन खादी पहननेकी इच्छा

१. पत्र और कतरन यहाँ नहीं दी जा रही है। पत्र-लेखकने गांधीजीसे इस सूचनाके बारेमें अपना मत व्यक्त करनेका अनुरोध किया था कि कस्तूरबाने किन्हीं महाराजके चरण-स्पर्श किये थे।

रखनेवालोंका धर्म है कि वे इतना कष्ट उठायें। जो बाहरी दिखावेके लिए नहीं लेकिन स्वराज्यके लिए, भूखों मरनेवालोंके लिए खादी पहनना चाहते हैं उन्हें जबतक खादीकी शुद्धताका विश्वास न हो जाये तबतक सन्तोष नहीं करना चाहिए। ऐसे स्त्री-पुरुषोंको शुद्ध खादीकी जाँच करनेका तरीका भी जान लेना चाहिए।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १५-१२-१९२९

२९६. देहातकी बीमारियाँ[1]

लोक-शिक्षाका विचार करते समय किताबी ज्ञानकी आवश्यकताको बहुत ही गौण स्थान मिलता है। यों कहा जा सकता है कि जीवनके खास-खास अंगोंके लिए किताबी ज्ञानका कोई स्थान ही नहीं है। मोक्ष हमारी अन्तिम स्थिति है। इससे कौन इनकार करेगा कि इहलोक और पारलौकिक मोक्षके लिए पोथी-पण्डित होना जरूरी नहीं है। करोड़ोंके साक्षर हो जानेको आधार मानकर अगर हम स्वराज्य प्राप्तिकी राह देखते बैठे रहें तो स्वराज्य पाना लगभग नामुमकिन ही हो जायेगा। और यह तो कोई नहीं बता पाया कि दुनियाके बड़े-बड़े शिक्षक, जैसे कि ईसामसीह वगैरा, साक्षर थे या नहीं।

इस लेखमालाकी कल्पनामें किताबी ज्ञानका स्थान आखिरी है। वह साधन है, साध्य नहीं। यह तो दुनिया जानती है कि साधनके रूपमें उसका बहुत-कुछ उपयोग है। लेकिन काम-धन्धेमें लगे हुए बड़ी उम्रवाले करोड़ों किसानोंके लिए जिस ज्ञानकी बहुत जरूरत है, उसका विचार करनेसे हमें मालूम होता है कि ऐसी कई बातें हैं जिनका ज्ञान उन्हें अक्षरज्ञानसे पहले ही हो जाना चाहिए। श्री ब्रेनकी पुस्तकके कुछ अशोंका जो सारांश[2] मैंने दिया है उससे भी हम इसी नतीजेपर पहुँचते हैं।

इस बातको खयालमें रखकर हम गाँवोंकी सफाईका विचार कर चुके हैं। पिछले अध्यायोंमें जिन सुधारोंका जिक्र किया गया है, किसान उनका ज्ञान तुरन्त प्राप्त कर सकते हैं। इस जानकारीको पानेके मार्गमें जो रुकावट है, सो तो सच्चे शिक्षकोंकी कमी और किसानोंका आलस्य है।

आज हम गाँवोंकी मामूली बीमारियोंपर विचार करेंगे। गाँवोंमें रहनेलाले सब साथियोंका यही अनुभव है कि आम तौर पर बुखार, कब्जियत और फोड़ा-फूंसी ही गाँवके रोग है। और भी कई बीमारियाँ होती हैं लेकिन आज उनपर विचार करनेकी जरूरत नहीं। जिन रोगोंके कारण किसानोंके काममें रुकावट पड़ती है, सो तो ऊपर बताये गये तीन रोग हैं। इन रोगोंका घरेलू इलाज जान लेना किसानोंके लिए बहुत जरूरी है। इन रोगोंकी उपेक्षा करके हम करोड़ों रुपयोंका नुकसान उठाते

१. यह **नवजीवन**के क्रोडपत्र **शिक्षण अने साहित्य** में प्रकाशित हुआ था।

२. देखिए **ग्राम-सुधार**, १४-११-१९२९।

आये हैं, हालाँकि ये रोग बड़ी आसानीसे दूर किये जा सकते हैं। स्वर्गीय डाक्टर देवकी देखरेखमें जो काम चम्पारनमें शुरू हुआ था उसमें इन बीमारियोंको मिटाना भी एक था। स्वयंसेवकोंके पास तीन ही दवायें होती थी; चौथी नहीं होती थी। उसके बाद जो नये अनुभव हुए हैं, वे भी इसीकी पुष्टि करते हैं। लेकिन इस लेखमालाका ध्येय ऐसे उपायोंको अमलमें लानेके तरीके बताना नहीं है। यह तो एक सर्वथा अलग और रोचक विषय है। यहाँ तो मैं सिर्फ यही कहना चाहता हूँ कि किसानोंको यह बात सिखा देनी चाहिए कि इन तीनों रोगोंका शास्त्रीय ढंगसे इलाज कैसे हो सकता है, और यह सिखाना बिलकुल आसान है। अगर गाँवमें ठीक-ठीक सफाई रखी जाये तो बहुतेरे रोग यों ही मिट जायेंगे। और यह तो हरएक वैद्य जानता है कि किसी रोगका सर्वोत्तम इलाज उसे न होने देना ही है। बदहजमीको रोकनेसे कब्ज रुक जायेगा; गाँवकी हवा साफ रखनेसे बुखार मिट जायेगा। इसी तरह अगर गाँवका पानी साफ रखा जाये और रोज साफ पानीसे नहाया जाये तो फोड़े-फुंसी भी नहीं होंगे। अगर तीनों रोग एक-साथ आ धमकें तो उनका सबसे अच्छा इलाज उपवास है; उपवासके दिनोंमें कटिस्नान और सूर्यस्नान करना है। इस सम्बन्धमें 'आरोग्यके सम्बन्धमें सामान्य ज्ञान'[१] नामक पुस्तकमें विस्तारसे विचार किया गया है। हरएक स्वयंसेवकको मैं यह सलाह दूँगा कि वह उसे एक बार पढ़ जाये।

मैं देखता हूँ कि हर जगह लोग यह महसूस करते हैं कि गाँवोंमें एक अस्पताल होना चाहिए और अस्पताल न हो तो एक दवाखाना अवश्य होना चाहिए। लेकिन मैं इसकी कोई आवश्यकता नहीं समझता। बहुत-से गाँवोंके बीच एकाध ऐसी संस्थाका होना ठीक हो सकता है, लेकिन यह चीज इतनी महत्त्वपूर्ण नहीं है। जहाँ अस्पताल हैं वहाँ मरीज तो आयेंगे ही। इससे कोई यह सोचे कि देशके सात लाख गाँवोंमें अगर सात लाख अस्पताल हों तो बड़ा उपकार हो। गाँवका मदरसा ही गाँवका दवाखाना हो और वहीं गाँवका वाचनालय भी रहे। रोग हरएक गाँवमें होते हैं, वाचनालय भी हरएक गाँवमें होना चाहिए और मदरसा तो होना ही चाहिए। अगर इन तीनोंके लिए जुदा-जुदा मकान बनवानेका विचार किया जाये तो पता चलेगा कि इस तरह सब गाँवोंकी जरूरत पूरी करनेमें करोड़ों रुपये और बरसोंका समय चाहिए। इस कारण लोक-शिक्षा और ग्राम-सुधारका विचार करते समय हमें देशकी दर्दनाक गरीबीको कभी न भूलना चाहिए।

अगर इन बातोंके सम्बन्धमें अपने विचार हमने दूसरे देशोंको लूटकर धनवान हुए लोगोंसे उधार न लिये होते, और हममें सच्ची जागृति पैदा हुई होती तो बहुत पहले ही हमारे देहातोंकी दशा बदल गई होती।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, १५-१२-१९२९

१. इस शृंखलाके लेखोंके लिए देखिए खण्ड ११ तथा १२।

२९७. पत्र : रमणीकलाल मोदीको

वर्धा,
१५ दिसम्बर, १९२९

चि० रमणीकलाल,

'आश्रम समाचार' पढ़कर मैंने तुमसे उसके बारेमें लिखनेकी बात कही थी; उस विषयमें कल तुम्हारा पत्र मिला। परिवर्तनोंके बारेमें दी गई टिप्पणी ठीक है। खबरों [के कालम] से ज्ञात हुआ कि वेलाबहनने अलग रसोई बनानी शुरू कर दी है। अच्छा किया।

मीराबहन आ गई है। प्रभावती, उसके पति और महादेव आनेवाले हैं।

शुद्ध घी बेचनेवाला बम्बईका एक मारवाड़ी यहाँ आया था। वह गायका घी भी बेचता है। घीका भाव सवा रुपये रतल [पौंड] है किन्तु वह हमें एक रुपयेके भावसे देनेको कह गया है। उसका नाम खेमराज अग्रवाल है और पता १९२, कालबादेवी रोड, बम्बई है। वह घी-विक्रेताके रूपमें मशहूर है। जरूरत पड़नेपर काम आयेगा, इस खयालसे मैं तुम्हारी जानकारीके लिए यह लिख रहा हूँ।

उपर्युक्त अंश मैंने प्रातःकालीन प्रार्थनाके बाद लिखवाया था। अब आजकी डाक आ गई है; उसमें तुम्हारा पत्र भी है। क्या मैं तुम्हें यह लिख चुका हूँ कि माधवजी और उनकी पत्नी यहीं हैं? इसके अतिरिक्त प्यारअली और नूरबानू भी हैं। मुझे ऐसा लगता है कि दैनन्दिनीमें हर घंटेका काम लिखना आवश्यक है। किन्तु यदि कोई आठ घंटेके बादके या आश्रमके बाहर किये गये सामाजिक कामके बारेमें न लिखना चाहे तो वैसा करनेके लिए उसे मजबूर नहीं किया जा सकता। किन्तु मैं ऐसे व्यक्तिके बारेमें इतना अवश्य कहूँगा कि उसे विचार करना भी नहीं आता। परन्तु यह तो केवल खादीके विद्यार्थियोंके बारेमें है। तुम्हारे और मेरे पास तो ऐसा कोई क्षण ही नहीं है जिसे निजी क्षण कहा जा सके। अपना निजी समय या निजी विचार रखना, पैसे आदि रखनेकी तरह परिग्रह तो है ही; सम्भव है वह उसकी अपेक्षा कहीं अधिक बुरा परिग्रहतक हो। इसके भयंकर उदाहरण तो यह लिखवाते हुए ही मेरी जबान तक आ रहे हैं। सचमुच देखा जाये तो सुबह चार बजे [उठने] से रातके आठ बजे [सोने] तक की बातें दैनन्दिनीमें नोट की जानी चाहिए। यदि रोकड़-बही रखना आश्रमका कर्त्तव्य है तो दैनन्दिनी रखना भी सबका कर्त्तव्य है। क्योंकि सच्चा धन धातु नहीं, बल्कि समय है। [गीताका] वाक्य है 'कालः कलयतामहम'[1] और जो व्यक्ति अपने समयका हिसाब नहीं रखता वह छल करनेवालोंमें सरताज है।

१. गिननेवालोंमें काल मैं हूँ। भगवद्गीता, १०-३०।

प्रार्थनामें न आनेवालेसे यह कहनेका अर्थ कि "यदि तुम नहीं आते तो आश्रमसे चले जाओ", कदाचित मेरी समझमें भी न आये। किन्तु मेरा कहना तो यह है कि यदि किसीको प्रार्थना या किसी अन्य कार्यमें भाग लेना मंजूर है और फिर भी वह उसमें भाग नहीं लेता तो फिर उससे चले जानेके लिए कह देना चाहिए; क्योंकि सम्भावना है, जो व्यक्ति एक मामलेमें अपना वचनभंग करता है वह अन्य मामलोंमें भी करेगा। क्या यह दिनकी भाँति स्पष्ट नहीं है? किन्तु इन सभी नियमोंको आवश्यक मानकर भी तुम उनका पालन तत्काल नहीं करा सकते; क्योंकि इस मामलेमें हम काफी लम्बे अरसेसे ढिलाई बरतते आ रहे हैं। अतः फिलहाल तो तुम लोगोंको चेताते रहो। मेरे लौटनेपर यदि तुम सबकी राय होगी तो इनपर अमल करवानेकी जिम्मेदारी मैं ले लूँगा।

ताराका आनेसे इनकार करनेमें भी मेरे प्रति प्रेम था, यह बात मैं न समझता होऊँ ऐसा नहीं। आज ही मुझे उसका एक अच्छा पत्र मिला है। यह तो मैं एकदम बता सकता हूँ कि सामूहिक रूपसे वर्धा आश्रमसे क्या लिया जा सकता है। यहाँ की शान्ति, यहाँका नियमपालन और यज्ञ-कार्य मुझे बहुत पसन्द आये हैं। शान्तिसे मेरा मतलब शोर-गुलके अभावसे है। नियमपालनसे तात्पर्य है आश्रमके बाह्यजीवनको ठीक बनाये रखनेके लिए प्रार्थनासे लेकर निश्चित समयपर किये जानेवाले कार्य करना। यज्ञमें सभी तीस नम्बरका ही सूत कातनेपर बाध्य हैं। सवा आठ गजकी पचास [इंच] पनहेकी सुन्दर साड़ी अभी हाल ही में तैयार हुई है। उसे आश्रमवासियोंने ही बुना था। इसकी बुनाईमें चौबीस घंटे लगे। सूत बहुत अच्छा है। ऐसा बारीक कपड़ा पूरा बिक जाता है। आश्रमके लोग आठ-दस नम्बरके सूतसे अधिक बारीक सूतकी खादी पहनते ही नहीं। सारा काम नियमानुसार चलनेके कारण किसी का मन ऊबता नजर नहीं आता। इस स्थितिका एक कारण यह भी है कि यहाँ बहुत कम लोग हैं। मैंने तो सिर्फ तुम्हारे प्रश्नोंका उत्तर दिया है।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च :]

उमिया और उसके पतिके पत्र मिले हैं जो मैं इसके साथ भेज रहा हूँ। उक्त पत्र बहनोंकी प्रार्थनामें तो पढ़कर सुनाया ही जाये। अन्य लोगोंको भी यह समाचार दे देना।

गुजराती (जी० एन० ४१६२) की फोटो-नकलसे।

२९८. पत्र : रामानन्द चटर्जीको

वर्धा
१६ दिसम्बर, १९२९

प्रिय रामानन्द बाबू[1],

२६ नवम्बरका आपका पत्र मुझे आज ही मिला। आप चाहते हैं कि मैं आपको १००० शब्दोंमें कुछ लिखकर भेज दूँ। इस समय यह १००० मजबूत दाँत निकाल भेजनेके बराबर है; और आप यह क्रिसमसके अंकके लिए चाहते हैं। क्या इसका यह अभिप्राय नहीं कि अब जरूरतसे ज्यादा देर हो गई है? यदि मुझे ज्यादा देर न हुई हो तो भी जितने आकारकी चीज आप चाहते हैं, उसे लिखनेके लिए समय निकाल पाना शारीरिक रूपसे असम्भव है। हर मिनट पहलेसे ही किसी न किसी कामके लिए निश्चित किया जा चुका है।

मैं वायदेके बारेमें सब कुछ भूल गया हूँ। परन्तु यदि आप इन्तजार कर सकते हैं और यदि आप देखें कि मैं जनवरीमें कहीं यरवदाके नजदीक [जेलमें] ही विश्राम करने नहीं पहुँच गया हूँ और उस समय आप फिरसे याद दिला सकें तो मैं इसे खुशीसे पूरा करूँगा।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

अंग्रेजी (सी० ड्ब्ल्यू० ९२८२) से।
सौजन्य : शान्तादेवी

२९९. पत्र : आश्रमकी बहनोंको

वर्धा
मौनवार, १६ दिसम्बर, १९२९

बहनो,

पिछली बार तुम्हें जी भरकर लिखा था इसलिए आज थोड़ेमें ही निपटा देना चाहता हूँ। और भी बहुत-से पत्र लिखने हैं और समय पूरा हो गया है। मैं तो बहुत अधिक लिखा करता हूँ। उसमें से तुम जो आत्मसात कर सको वह ले लो। बाकी छोड़ सकती हो। जो समझ लो और स्वीकार करो, उसे जी-जानसे पूरा करनेकी कोशिश करो।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (जी० एन० ३७१३) की फोटो-नकलसे।

१. सम्पादक, **मॉडर्न रिव्यू**, कलकत्ता।

३००. पत्र : रमणीकलाल मोदीको

मौनवार, १६ दिसम्बर, १९२९

चि० रमणीकलाल,

तुम्हारा पत्र मिला। बुधाभाईसे कहना कि उन्होंने जो सुझाव दिया था तदनुसार दस्तावेजमें रद्दो-बदल जरूर की जा सकती है। छोटूभाईके आनेपर मैं उनसे मिलूँगा।

प्रार्थना [में उपस्थित रहने] के सम्बन्धमें कल लिख चुका हूँ, उससे मेरे विचार स्पष्ट हो जायेंगे। मैथ्यू-जैसे लोगोंके सामने यदि धार्मिक बाधा हो तो हमें उसका सम्मान करना चाहिए। हालाँकि ऐसे लोगोंको भी नियमानुसार उपस्थित तो रहना ही चाहिए। किन्तु मेरा यह कहना है कि जिसने नियमको स्वीकार कर लिया है उसे अनुपस्थित नहीं रहना चाहिए।

मैं तो तुम्हें पहले ही लिख चुका हूँ कि माधवजी और उनकी पत्नी यहीं हैं। वे अन्य सब काम छोड़कर सेवाके काममें लग जानेकी बात सोच रहे हैं। फिलहाल अनुभव प्राप्त करनेके लिए वे आश्रममें आना चाहते हैं। मेरा विचार है कि यदि वे आयें तो उन्हें अनुमति अवश्य दे देनी चाहिए। गंगाबहनके पत्रमें मैंने यह लिखा था। इस बारेमें प्रबन्ध समितिको और तुम्हें भी विचार करना चाहिए। मैं इस दम्पतीको हर तरहसे अच्छा मानता हूँ और वे नियमोंका पालन करनेवाले हैं।

किन्तु इससे सर्वथा भिन्न सवाल चन्द्रकान्ताकी माँका है। वे योग्य महिला हैं। फिलहाल मेरे पास इतना समय नहीं है कि पूरे किस्सेमें उतरा जाये। शायद वे फिलहाल सम्मिलित भोजनालयमें भोजन करते कुछ झिझकें। वे स्वयं स्वावलम्बी होना और अपनी कन्याके पास रहना चाहती हैं। मैंने उनसे कहा है कि वे अपना पूरा समय आश्रमको दें, जो काम दिया जाये उसे करें, २५ रुपये वेतन लें और बुधाभाईकी कोठरीमें रहें और अपनी रसोई स्वयं बनायें। शायद वे मेरे इस सुझावको स्वीकार कर लें। वे कहती हैं कि उन्हें सीने-पिरोनेका काम अच्छा आता है। मुझे लगता है कि यदि वे यह काम करें तो हमारे लिए भारी नहीं पड़ेंगी। इसके अतिरिक्त यदि वे अन्य सभी नियमोंका पालन करें तो उन्हें लेनेमें अड़चन नहीं होगी। इस बारेमें भी विचार करना।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (जी० एन० ४१६३) की फोटो-नकलसे।

३०१. पत्र : म को

१६ दिसम्बर, १९२९

भाई म . . .,

यदि तुम हर काम सोच-विचार कर और पूरी तरह करो तो इसकी वजहसे तुम्हें आगेका रास्ता अपने-आप सूझने लगेगा तथा उससे तुम्हें आत्मसन्तोष प्राप्त होगा।

गुजराती (जी० एन० ४२१६) की फोटो-नकलसे।

३०२. पत्र : म को

१६ दिसम्बर, १९२९

चि० म . . .,

किसी कामको स्वीकार ही न करनेमें कोई बुराई नहीं है किन्तु स्वीकार करके छोड़ देना सर्वथा गलत है। अब जब कि तुमने दैनन्दिनी लिखनेकी प्रतिज्ञा कर ली है तो यह क्रम किसी भी हालतमें टूटना नहीं चाहिए। क्योंकि हम कताई-यज्ञ करते हैं इसलिए हमें यह क्रिया भली-भाँति सीख लेनी चाहिए। मुझे पत्र लिखते रहना।

गुजराती (जी० एन० ४२१७) की फोटो-नकलसे।

३०३. पत्र : रमणीकलाल मोदीको

वर्धा
१७ दिसम्बर, १९२९

चि० रमणीकलाल,

तुम्हारा पत्र मिला। मैंने जो टिप्पणी लिखवाई थी उसपर भले ही सब लोग विस्तारसे पुनः विचार करें। जनवरीमें जब मैं वहाँ लौटूँगा तो उसपर हम फिर विचार करेंगे। इस बीच यह आवश्यक है कि सब लोग अपनी दृष्टिसे इसपर विचार कर लें।

सन्तोकको अपना भोजन बनानेकी अनुमति देकर ठीक ही किया। इस मामलेमें मैंने उदासीनताका रुख अख्तियार कर लिया है। हमने जो कदम उठाया है यदि उससे पीछे न हटें तो इतना ही काफी होगा। वर्धा जानेकी बात भी मैं समझता हूँ और इसके लिए सहमत हो गया हूँ। कलकत्तेके बारेम मुझे कुछ याद नहीं है

किन्तु फिलहाल तो मैं यह चाहता भी नहीं फिर भी मेरे वहाँ लौट आनेपर इस बारेमें हम लोग विचार कर लेंगे। मैं ऐसा नहीं होने दूँगा कि इस मामलेमें तुम्हें जिम्मेदारी उठानी पड़े।

रामचन्द्र कोस (लिफ्ट)[1] ने हमारे धैर्यकी कड़ी परीक्षा ली। 'गीताजी' लगभग पूरी हो आई है। इस कामको समेटकर और यहाँसे प्रूफ भेजनेके बाद ही मेरा रवाना होनेका विचार है। आज जवाहरलाल नेहरू आये हैं और दो दिन रहेंगे।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (जी० एन० ४१६४) की फोटो-नकलसे।

३०४. पत्र : रमणीकलाल मोदीको

वर्धा
१८ दिसम्बर, १९२९

चि० रमणीकलाल,

भाई माधवजीसे मैं घनिष्ठ परिचय करनेकी कोशिश कर रहा हूँ। मेरी नजर इन दोनोंपर अच्छी तरह जमी हुई है। डेढ़ वर्ष हुआ दोनों स्वेच्छासे ब्रह्मचर्य व्रतका पालन कर रहे हैं। कई वर्ष पहले ही माधवजीमें सेवावृत्ति जाग्रत हो चुकी है। उनमें पर्याप्त उत्साह है। वे चतुर व्यापारी हैं इसलिए हम उनकी योग्यताका पूरा उपयोग कर सकेंगे। मैंने उन्हें सलाह दी है कि वे सभी विभागोंके कार्यकी जानकारी प्राप्त कर लें। मैं तुम्हें यह सलाह दूँगा कि तुम उन्हें कताई तककी सभी प्रक्रियाओंकी पूरी जानकारी प्राप्त करनेमें तो लगाओगे ही किन्तु उन्हें प्रतिदिन कुछ समयके लिए खेती-बाड़ी और मजदूरीका काम भी दिया जाना चाहिए। मैं समझता हूँ कि वे भण्डारका काम भी कर सकेंगे और बही खातेका ज्ञान तो उन्हें होगा ही। उनकी पत्नी अच्छे स्वभावकी हैं; किन्तु वहाँ वे कैसी सिद्ध होंगी यह तो दैव जाने।

चन्द्रकान्ता और उसकी माँ तैयारी कर रही हैं। फिलहाल तो माँ ने भी भोजनालयमें भोजन करना स्वीकार कर लिया है इसलिए वेतन या अलग रसोईका प्रश्न ही नहीं उठता। इसके साथ चन्द्रकान्ताका मेरे नाम लिखा पत्र फाइल करानेके लिए भेज रहा हूँ। उसकी माँ का पत्र भी भेजूँगा।

मैं २१ तारीखको यहाँसे रवाना हो जाऊँगा। २२–२३को दिल्लीमें और २४ को लाहौरमें। २२–२३ के लिए पत्र लक्ष्मीनारायण गाडोदियाकी मारफत भेजे जाने चाहिए। यह पत्र तुम्हें २० तारीखको मिल जाना चाहिए। २० तारीखको पत्र दिल्ली भेजना और २१को भी। २२ तारीखसे लाहौर भेजना।

१. देखिए खण्ड ३३।

लीलाबहनने बुधाभाईके घरमें खाना बनाना शुरू कर दिया, इसकी चिन्ता मत करना। मुझे विश्वास है कि भणसाली अच्छे हो जानेपर कदापि नहीं रहेंगे। लीलाबहन अलग खाने-पकाने लगी है इसलिए अगर वह बुधाभाईके यहाँ जाकर रहने लगें तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं।

अयोध्याप्रसादका कोई पत्र नजर नहीं आया। तुमने उसके बारेमें जो लिखा है, वैसा करना।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (जी० एन० ४१६५) की फोटो-नकलसे।

३०५. पत्र : मणिलाल और सुशीला गांधीको

वर्धा
१८ दिसम्बर, १९२९

चि० मणिलाल और सुशीला,

तुम अच्छे आये। मणिलाल तो लाहौर अवश्य जायेगा। सुशीलाके बारेमें रामदासने अपने पत्रमें लिखा है कि बा की उत्कट इच्छा है कि सुशीलाको भी जानेकी अनुमति दी जाये। मेरी ओरसे तो कोई प्रतिबन्ध है ही नहीं। मैंने तो सिर्फ सलाह दी थी। बा यह मानती है कि सुशीलाको भी कांग्रेस देखनेकी इच्छा होगी। यदि यह बात सच हो और उसकी भी इच्छा हो, सीताका स्वास्थ्य ठीक हो और सुशीलाका शरीर भी पनप गया हो तो भले चली जाये। थोड़ेमें, तुम दोनों कुछ बच्चे नहीं बल्कि सयाने हो और स्वयं निर्णय करनेमें स्वतन्त्र हो। तुम मुझसे पूछते हो यह तो तुम्हारा विवेक और स्वेच्छासे लगाई हुई मर्यादा है। इसलिए तुम दोनोंको जो अच्छा लगे वैसा ही करो, यही मैं चाहता हूँ।

मणिलालको चार महीनेके भीतर लौट ही जाना चाहिए, जब हम मिलेंगे तो इसपर विचार कर लेंगे।

मैं ११ जनवरीके पहले तो आश्रम पहुँच ही जाऊँगा।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (जी० एन० ४७६४) की फोटो-नकलसे।

३०६. सैनिकीकरणका कार्यक्रम[1]

जॉर्ज जोजेफ मेरे सबसे ज्यादा प्रिय साथियोंमें से एक रहे हैं। जब मैं यरवदामें विश्राम कर रहा था वह 'यंग इंडिया' के सम्पादक थे। उससे पहले भी वे मेरे कहनेपर ही 'इंडिपेंडेंट' के — जो अब प्रकाशित नहीं होता — सम्पादक थे। उन्होंने देशके लिए अपनी वकालत — जिससे उन्हें बड़ी आय होती थी — त्याग दी थी। देशके लिए ही वे जेल गये। वे लगनवाले और ईमानदार कार्यकर्त्ता हैं। इसलिए उनकी बात आदरपूर्वक सुनी जानी चाहिए — खासकर जब ऐसे आदमीकी राय आपसे भिन्न हो और वह धर्मान्तिरण करनेवाले किसी व्यक्ति जैसे जोशसे पुरानी नीति छोड़कर नई नीति अपनानेका समर्थन करता हो। जॉर्ज जोजेफने ऐसा ही किया है। उनके पुराने साथियोंमेंसे एकने समाचारपत्रसे एक कतरन भेजी है, जिसमें जोजेफकी नई नीतिकी घोषणा की गई है और उसका शीर्षक दिया है "जॉर्ज जोजेफ द्वारा अपने मतकी स्वीकारोक्ति।" एक दूसरे आदमीने, जो जॉर्ज जोजेफके अपरिचित प्रशंसक हैं, एक रिपोर्टसे जोजेफ द्वारा की गई खादी कार्यक्रमकी सारी आलोचनाकी नकल करके भेजी है। उन्होंने यह बड़ी विक्षिप्त-सी मनोदशामें लिखा है और आग्रह किया है कि खादीके बारेमें जो टीका-टिप्पणी की गई है, उसपर मैं अवश्य ध्यान दूं।

इसमें व्याकुलता, दुःख अथवा भयका कोई कारण नहीं है। यदि महान् राष्ट्रीय उथल-पुथलमें हमें ऐसे आदमी न मिलें जो पुराने विचारोंका खण्डन करते और नये विचारोंका प्रतिपादन करते हों तो यह आश्चर्यजनक बात होगी। परिवर्तन प्रगतिकी शर्त है। एक ईमानदार आदमी जब उसका मन किसी भूलके विरोधमें क्रान्ति करता है तो वह यन्त्रवत नहीं बरत सकता। इसलिए जॉर्ज जोजेफ जो कुछ कहते हैं उसे धैर्यसे समझनेकी कोशिश करनी चाहिए और जो हमें युक्तिसंगत लगे उसे स्वीकार करनेमें संकोच नहीं करना चाहिए, चाहे इससे हमें किसी अभीष्ट आदर्शको त्याग भी देना पड़े।

मुझे आशा है कि मैंने उसी भावनासे जोजेफके भाषणका अध्ययन करनेका प्रयास किया है। उन्होंने खादीकी भर्त्सना की है। उन्हें "पूरा इतमीनान है कि अस्पृश्यता-निवारण मूलतः राजनयिकको समस्या नहीं है," उनका कार्यक्रम सरल वाक्यमें यह है: "भारतका सैनिकीकरण कर दो।" उनके भाषणका उद्धरण नीचे दिया जा रहा है।

हम सब सिपाही नहीं बन सकते। हम सब सिपाही बन जायें तो सबके लिए काफी जगह ही नहीं है। फिर भी हमारे लिये यह सम्भव होना चाहिए

१. इसी विषयपर दूसरा लेख **नवजीवन,** २९-१२-१९२९ में "खादी बनाम खाकी" शीर्षकके अन्तर्गत प्रकाशित हुआ था।

> **कि हम प्रेसीडेंसीके शहरी एकांशोंमें हर साल लगभग ५,००० आदमियोंको प्रशिक्षण देनेका विचार रखें। लोग हफ्तेमें दो या तीन बार कवायद करने जायेंगे और सालमें तीन हफ्ते शिविर [कैम्प] लगानेके लिए बाहर जायेंगे। ऐसा प्रशिक्षण केवल कालेजमें पढ़नेवाले विद्यार्थियोंके लिए ही नहीं बल्कि समाजमें और शिक्षा-क्षेत्रमें काफी प्रतिष्ठावाले लोगोंके लिए भी उपलब्ध किया जाना चाहिए। प्रवेशार्थीके लिए शिक्षाका स्तर शालाकी अंतिम कक्षा तकका होना चाहिए। यदि आपको खाकी [वर्दी] धारण किये हुए ऐसे लोग हर गलीमें घूमते हुए दिखाई दें तो हमारे आसपास एक नया वातावरण बन जायेगा। इस प्रकारका प्रशिक्षण पाकर लोग सिर उठाकर खड़े हो जायेंगे, उनकी विचारधारा सुलझेगी और वे सीधी बात कहेंगे। इससे हमारे जीवनमें परिपूर्णता आयेगी।**

मेरे अनुभव मुझे इससे विपरीत बात बताते हैं। मैंने खाकी [वर्दी] धारण किये हुए लोगोंको सिर उठाकर खड़े रहनेके बजाय गन्दी नालियोंमें लोटते हुए देखा है, मैंने डायर जैसे लोगोंको दूषित विचार रखते हुए और सीधी बातें नहीं बेतुकी बातें करते देखा है। मैं एक सेनाध्यक्षको जानता हूँ जो सुलझे विचारोंवाला होनेकी तो बात ही छोड़ दीजिए बिलकुल सोच ही नहीं सकता था। जिन्हें सैनिक प्रशिक्षणका मोह है वे सैनिक प्रशिक्षण जरूर ग्रहण करें, परन्तु यह सुझाव देना कि यह "नया और रचनात्मक कार्यक्रम है" अधीरता और उतावलेपनको ही सूचित करता है। इस नये कार्यक्रमके भारत-भूमिमें जड़ जमानेकी ज्यादा आशंका नहीं है। दूसरे, यह कार्यक्रम उस नये वायुमण्डलके भी विपरीत है जो युद्धसे तंग आये हुए पश्चिममें बन रहा है। पश्चिममें युद्धकी भावना मानवकी मानवता तकको नष्ट किये डाल रही है और उसे पशुके स्तरपर लाये दे रही है। आज जिसकी जरूरत है और ईश्वरका धन्यवाद है कि पहले कभी सपनेमें भी न आनेवाले परिमाणमें भारतने जिसे सीखा है, वह है निःशस्त्र-प्रतिरोधकी भावना — जिसके सामने संगीनोंको जंग लग जाता है और बन्दूकका बारूद धूलमें बदल जाता है। जोजेफने शस्त्रोंकी आवाजके द्वारा अल्पसंख्यकोंको अपनी मर्जीके आगे झुकानेवाली हथियारबन्द सरकारका जो नजारा हमारे सामने रखा है उससे जनतन्त्रकी भावना और उन्नतिकी अवहेलना होती है। यदि नया कार्यक्रम ऐसा ही कुछ कर दिखानेकी आशा बँधाता है तो हमारे यहाँ आज तो केवल अल्पसंख्यकोंका ही नहीं, भारी बहुसंख्यक लोगोंका सशस्त्र उत्पीड़न हो रहा है। मुझे आशा है कि हम जैसी सरकार चाहते हैं, वह अल्पसंख्यकोंका भी उत्पीड़न करके नहीं, उसके हृदय परिवर्तनपर आधारित होनी चाहिए। यदि इस परिवर्तनका इतना ही मतलब है कि गोरी फौजके बदले गेहुँएँ रंगकी फौज हो तो हमें ज्यादा हंगामा मचानेकी जरूरत नहीं है। तब फिर किसी भी हालतमें जनसमुदायका कोई महत्त्व नहीं होगा। तब भी उनका, यदि ज्यादा नहीं तो आजके जैसा ही शोषण होता रहेगा। जब जॉर्ज जोजेफकी अधीरता समाप्त हो जायेगी —

क्योंकि मै उन्हें जानता हूँ कि वे इतने ईमानदार हैं कि ऐसी दशामें वे अपनी भूल सुधारे बिना नहीं रहेंगे — तब वे जनतन्त्रम विश्वास रखनेवाले ऊँचे आदमीके रूपमें हमारे सामने आयेंगे — जैसा कि मैंने उन्हें खुशकिस्मतीसे १९१९ में मद्रासके समुद्रतट पर पाया था।

अब हम देखें कि वे खादीके बारेमें क्या कहते हैं:

> जबतक मैं कांग्रेसमें था रचनात्मक कार्यक्रममें केवल खद्दर, अस्पृश्यता निवारण और बादके सालोंमें मद्य-निषेध सम्मिलित थे। मैं आपको स्पष्ट बता दूँ कि मैं अब समझ-बूझकर इस निष्कर्षपर पहुँचा हूँ कि इनमें से एक भी चीज राष्ट्रकी मौलिक, प्राथमिक आवश्यकताकी जड़ तक नहीं पहुँचती। खद्दरका इससे कोई सम्बन्ध नहीं है। मेरे खयालसे यह आन्दोलनके जन्मदाता गांधीजीके बाद जीवित नहीं रहेगी। पर खद्दरमें जो मौलिक आर्थिक त्रुटि है उसके कारण मैं इस निष्कर्षपर पहुँचा हूँ कि खादी बनाई जानेमें और खरीदनेमें बहुत महँगी पड़ती है और परिणामतः उपभोक्ताके साथ न्याय नहीं होता। खद्दर जिसकी कीमत लगभग एक रुपया प्रति गज पड़ती है कल-कारखानों द्वारा बनाये गये ६ आने प्रति गज कीमतवाले कपड़ेके आगे नहीं टिक सकेगी। मेरा खद्दरका अनुभव यह है कि अन्तमें खादी बनानेवालेको भी हानि ही उठानी पड़ती है। कत्तिनोंको — जिनपर खद्दरका काम निर्भर है — दिनमें दस घंटे काम करके ३ आनेकी मजदूरीसे सन्तुष्ट रहना पड़ता है। मेरी राय यह है कि वह उद्योग, जिससे कुशल मजदूरको ३ आनेकी मजदूरी मिलती है; कभी सफल नहीं हो सकता। क्योंकि इसका मतलब तो मजदूरका पसीना बहाना ही है। मजदूरका पसीना बहानेका मतलब है कि उसे भरण-पोषणके लिए जरूरतसे बहुत कम मजदूरी देना। जवाबमें यह कहना कि देशमें अकाल रहता है, लाखों लोग बेकार हैं और इस कारण कुछ भी आमदनी न होनेसे तो ३ आने ही बेहतर है — युक्ति-संगत नहीं है। मैं यह दलील बिलकुल नहीं मानता। यह ऐसी दलील नहीं है जो अपने देशके मामलोंमें प्रगतिशील विचारधारावाले किसी राजनीतिज्ञ या मजदूर रखनेवाले किसी आदमीको अच्छी लग सके। ऐसा कहे जानेसे कोई सन्तोष नहीं होता कि मेरा किसीको दिनमें तीन आने मजदूरी देना सही होगा, जबकि मैं जानता हूँ कि आर्थिक स्थिति ऐसी है कि उसके परिवारकी तो बात ही क्या, काम करनेवालेके भरण-पोषणके लिए भी वह मजदूरी काफी नहीं होगी। मेरे मनमें यह निराशाजनक, अमिट और क्रूर पाप खद्दरके साथ संलग्न है। यही कारण है कि आज गांधीजीको ७ या ८ साल मेहनत करनेके बावजूद और इस उद्योगमें लाखों रुपया पानीकी तरह बहाये जानेके बावजूद खद्दरका निर्माण अत्यन्त कम हुआ है। इसकी तुलनामें समस्या जिसका कि समाधान करना है, बहुत बड़ी है, और वह है सारे भारतके लिए

कपड़ा बनाना; और ६० करोड़ रुपयेकी कीमतका जो कपड़ा हरसाल बाहरसे मँगवाया जाता है उसे समाप्त करना।

यहाँ जॉर्ज जोजेफ सुधारके उतावलेपनमें अपनी पुरानी स्मृति खो बैठे हैं। क्योंकि खादीको तुरत-फुरत मिटा देनेके पक्षमें वे कोई नई दलील नहीं दे रहे हैं। जिन चीजोंका वे पहले स्वयं भ्रम कहकर खण्डन किया करते थे, उन्हींको तथ्यके रूपमें प्रस्तुत कर रहे है। बादमें विचारकर दलीलें बदली जा सकती हैं, परन्तु तथ्य, जबतक झूठे साबित न हों, नहीं बदले जा सकते। लाखों लोगोंके प्रयोगके लिए जिस खादीकी कल्पना की गई है वह विदेशी कपड़ेसे ज्यादा महँगी नहीं बैठती। उसका सीधा कारण यह है कि यदि खादीका इस्तेमाल लाखों लोगों द्वारा किया जाना है तो उन्हें अपने-आप ही अपने लिये खादी तैयार करनी चाहिए और उसका उपयोग करना चाहिए। इन पृष्ठोंमें बताया गया है कि बारडोली और कई अन्य स्थानों पर खादी उसी तरह बनाई और इस्तेमाल की जा रही है जैसे कि लाखों घरोंमें लोग अपना खाना खुद पकाते और खाते हैं। पैसेके रूपमें यह दिखाया जा सकता है कि यदि चावल या रोटी कुछ एक कारखानोंमें तैयार की जाये तो उसकी कीमत उसकी निस्बत जो आज लाखों घरोंमें पड़ती है, काफी कम पड़ेगी। परन्तु इस कारण कोई यह सुझाव नहीं देगा कि लाखों लोग खाना पकाना बन्द कर दें और कच्चे चावल और गेहूँ पकाये जानेके लिए केन्द्रस्थ कारखानोंमें भेज दिये जायें।

और ऐसा कहना भी सही नहीं है कि कत्तिनें हररोज दस घंटे काम करती हैं। जितना भी कताईका काम वे करती हैं वह अपने खाली वक्तमें करती हैं और जो कुछ उन्हें मिलता है वह दिनकी मजदूरी नहीं, परन्तु ज्यादातर मामलोंमें उनके दैनिक कारोबारकी कमाईमें पर्याप्त बढ़ोतरी है। उन्हें कताईसे जो आमदनी होती है वह बेकार समयको पैसेमें बदलना है और जैसा जोजेफ कहते हैं: "मजदूरके पसीनेकी कीमत नहीं है।" और मैं जोजेफकी यह भूल भी यह कहकर सुधार दूँ कि कोई कतैया प्रतिदिन दस घंटे काम करके भी प्रतिदिन ३ आने नहीं कमा सकता। कताईकी दिन-भरके पेशेके रूपमें कभी कल्पना नही की गई है। अन्तमें यह कहना असत्य है कि इस उद्योगके संगठनमें "लाखों रुपया पानीकी तरह बहाया गया है।" राष्ट्रव्यापी स्तरपर किसी भी संगठनपर इतना कम खर्च नहीं हुआ है जितना इसके संगठन पर। सच यह है कि २५ लाखकी छोटी-सी रकम इस जबर्दस्त और प्रतिदिन बढ़नेवाले कुटीर-उद्योगपर पूंजीके रूपमें लगाई गई है, जिससे हजारों सूखे होठोंको पानी मिलता है। यह भविष्यवाणी करना जोजेफकी अपने देशवासियोंके प्रति बड़ी क्षुद्र भावनाको सूचित करता है कि वह संगठन जिसमें १,५०० गाँवोंमें कमसे-कम १,५०० स्वेच्छासे काम करनेवाले कार्यकर्त्ता हैं, वह संगठन जिससे लगभग १,५०,००० महिलाओंको प्रतिदिन राहत मिलती है, वह संगठन जिसे मिथुबाई पेटिट, नौरोजी बहनें, बैंकर, जमनालाल, राजगोपालाचारी, अब्बास तैयबजी, वेंकटप्पैया, पट्टाभि, गंगाधरराव, वल्लभभाई, लक्ष्मीदास, राजेन्द्रप्रसाद, जयरामदास, महादेव, कृपलानी, सतीशचन्द्र दासगुप्त, सुरेश बनर्जी और जवाहरलाल जैसों तथा कई और प्रसिद्ध वकीलों,

डाक्टरों, व्यापारियों, साधारण मनुष्यों, जिनकी काफी प्रसिद्धि है, पर जिनकी संख्या इतनी अधिक है कि उनका वर्णन नहीं किया जा सकता, ऐसे तमाम लोगोंका त्यागनिष्ठ उद्यम प्राप्त है — वह एक आदमीकी मृत्युके बाद समाप्त हो जायेगा। यह बड़ा दुःखद आश्चर्य होगा कि मेरी मृत्युके बादके दूसरे दिन सूरज निकलनेपर इन सब पुरुषों और महिलाओंको ऐसा लगे कि खादी एक 'महान भूल' थी।

सबसे ज्यादा दुःखकी बात तो यह है कि जोजेफने इसका कोई विकल्प नहीं सुझाया है। यदि हर शिक्षित भारतीय खादी पहने हो और सीधा निशाना लगाना जानता हो तब भी बढ़ती हुई गरीबीकी और लाखों किसानोंकी मजबूरन आंशिक रूपसे बेकारीकी समस्या इसी उद्देश्यसे विशेष कार्यक्रम तैयार किये जानेके बिना हल नहीं होगी। चाहे अच्छा हो या बुरा जबतक इससे अच्छा कोई कार्यक्रम ईजाद नहीं किया जाता, खादी ही उस तरहका कार्यक्रम है।

[अंग्रेजीसे]
यंग इंडिया, १९-१२-१९२९

३०७. पूँजीपतियोंका कर्त्तव्य

उस दिन महाराष्ट्र व्यापारी सम्मेलन (शोलापुर)की अध्यक्षता करते हुए श्रीयुत घनश्यामदास बिड़लाने जो भाषण दिया, उसमें जिस स्वतन्त्रतासे उन्होंने अपने विचार प्रकट किये वह ध्यान देने योग्य है। वह नहीं चाहते थे कि कपड़ेकी सुरक्षाके मामलेमें अंग्रेजी कपड़े और दूसरे विदेशी कपड़ेमें कोई भेदभाव रखा जाये। उन्होंने कहा:

> मैं सरकारसे यह कहना चाहता हूँ कि जब सूती उद्योगके हितमें भी देश भेदभावके[1] सिद्धान्तपर आधारित कोई शुल्क सहन नहीं करेगा, तो यह अत्यावश्यक है कि दरोंके आधारपर एक अतिरिक्त और समान सुरक्षा शुल्क लगाया जाना चाहिए। मेरा दृढ़ विश्वास है कि बम्बईका सूत उद्योग सस्ते मालके आयातसे ही नहीं बल्कि बढ़िया मालके आयातसे भी सुरक्षाकी अपेक्षा रखता है।

पूंजीपतियोंके कर्त्तव्यपर बोलते हुए उन्होंने जो आदर्श प्रस्तुत किया, उसमें और कोई सुधार सुझा सकना एक श्रमिकके लिए भी कठिन होगा। व्यापारीवर्गमें संगठनके लिए दलील पेश करते हुए उन्होंने कहा:

> परन्तु मैं यह स्पष्ट कर दूँ कि व्यापारियोंको जिस संगठनका मैं सुझाव दे रहा हूँ वह संगठन सेवाके लिए होना चाहिए, न कि शोषणके लिए। आधुनिक पूंजीपतिको पिछले कुछ दिनोंसे काफी कुछ भला-बुरा कहा जा रहा है।

१. सम्भवतः सूती कपड़ा उद्योग (सुरक्षा) विधेयक जो मार्च, १९३० में विधान सभा द्वारा पारित किया गया था।

वास्तवमें इस वक्त उसे एक अलग जातिका प्राणी ही माना जा रहा है। प्राचीनकालमें बात इससे बिलकुल अलग थी। यदि हम प्राचीनकालके वैश्यके कर्त्तव्योंका विश्लेषण करें तो हमें पता लगेगा कि उसे उत्पादन और वितरणका कर्त्तव्य सौंपा गया था — निजी लाभके लिए नहीं बल्कि सर्वसाधारणके हितके लिए। वह अपने द्वारा संचित सारी सम्पत्ति राष्ट्रकी धरोहरके रूपमें अपने पास रखता था। पूंजीपतियोंको यदि अपना सच्चा कर्त्तव्य निभाना है तो उन्हें शोषक बनकर नहीं बल्कि समाजके सेवक बनकर रहना होगा। यदि हमें अपने कर्त्तव्यका ज्ञान हो और हम कर्त्तव्य-पालन करें तो कोई साम्यवाद अथवा क्रांतिवाद नहीं पनप सकता। मैं तो यहाँ तक कहूँगा कि हमीने अपना कर्त्तव्य त्याग कर साम्यवाद और क्रान्तिवादके विकासके लिए उपयुक्त भूमि तैयार की है। यदि हम अपना कर्त्तव्य जानते और उसका सही ढंगसे पालन करते तो मुझे निश्चय है कि हम समाजको बहुत-सी बुराइयोंसे बचा सकते थे। मैंने कहा है कि हमारा वास्तविक कार्य उत्पादन और वितरण करना है . . . हम समाजकी सेवाके लिए उत्पादन और वितरण करें। हम सार्वजनिक हितके लिए जियें और यदि जरूरत हो तो उसके लिए अपने आपको न्यौछावर कर देनेके लिए भी तैयार रहें।

[अंग्रेजीसे]
यंग इंडिया, १९-१२-१९२९

३०८. कांग्रेस किसकी ?

संयुक्त प्रान्तके दौरेमें किन्हीं सज्जनने दो-तीन प्रश्न पूछे थे और उनका उत्तर 'हिन्दी नवजीवन' द्वारा माँगा था। उनमेंसे एक प्रश्न यह था :

> **क्या कांग्रेस हिन्दू मुसलमानोंका सम्मिलित गिरोह है ? यदि इसका उत्तर 'हाँ' हो तो क्या ऐसी कांग्रेसके कर्मचारी, जो हिन्दू-मुस्लिम उपद्रवके कारण होते हैं, कांग्रेसी कहलानेके अधिकारी और अनुकरणीय हैं ? और यदि ऐसी समस्या उपस्थित हो तो उस दशामें सर्वसाधारणको क्या करना चाहिए ?**

कांग्रेस हिन्दू मुसलमानोंकी तो है ही, लेकिन वह इससे भी कुछ अधिक है। कांग्रेस भारतवर्षमें रहनेवाले हरएक व्यक्तिकी संस्था है — हिन्दू, मुसलमान, पारसी, सिख, ईसाई, यहूदी वगैरा सब किसीकी है। कांग्रेसके सदस्य वे सब स्त्री-पुरुष हो सकते हैं, जो कांग्रेसके उद्देश्योंको स्वीकार करते हैं। कांग्रेसके कर्मचारियोंमें से यदि कोई हिन्दू-मुसलमानोंके उपद्रवका — झगड़ेका कारण बने, तो कांग्रेस उसका बहिष्कार कर सकती है। कांग्रेसका सदस्य बनकर जो एक-दूसरेके बीच वैमनस्य — दुश्मनी पैदा करता है, वह न केवल कांग्रेसका, बल्कि देशका भी द्रोही है।

यह तो ऊपरके प्रश्नका उत्तर भर है। परन्तु जब इतनेसे खुद मुझे सन्तोष नहीं होता, तो प्रश्नकर्त्ताको भला कैसे हो सकता है? दुखकी बात तो यह है कि दोनों कौमोंके बीच वैमनस्य पहले ही मौजूद है, उसे पैदा करनेकी आवश्यकता नहीं है इस हालतका असर, कुछ ही अंशोंमें क्यों न हो, कांग्रेसपर भी पड़ता है। इस वैमनस्यको मिटानेका तरीका क्या है? यह सवाल प्रश्नकर्त्ताके दिलमें तो है, लेकिन इसे वह प्रकट नहीं कर सके है।

वैमनस्यको मिटानेके लिए मनकी शुद्धि चाहिए। दोनोंमें साहस पैदा होना चाहिए। आज तो हम एक-दूसरेसे डरते हैं। यदि डर मिट जाये और आपसमें विश्वास पैदा हो जाये तो सब वैमनस्य — सारी दुश्मनी आज ही दूर हो सकती है। इस दौर्बल्य — कमजोरीको मिटानेका सबसे अच्छा मार्ग यह है कि हम इस सम्बन्धमें किसीका अनुकरण न करें, बल्कि खुद ही डरना छोड़ दें। अगर ऐसे कुछ भी लोग आज आगे आ जायें, तो कांग्रेससे कोई शिकायत ही न रहे। हाँ, यह मैं जानता हूँ कि ऐसा वायुमण्डल पैदा करनेकी कोशिश हो रही है, और इसे जानते हुए मै अपना निजी विश्वास नही छोड़ सकता।

हिन्दी नवजीवन, १९-१२-१९२९

३०९. पत्र : रमणीकलाल मोदीको

वर्धा
१९ दिसम्बर, १९२९

चि० रमणीकलाल,

सोमाभाईका पत्र मुझे मिला है। तुमने उसका कोई उल्लेख नहीं किया, इससे ऐसा लगता है कि तुमने उक्त पत्र नही पढ़ा है। उसमें जिन बातोंका उल्लेख किया गया है वे सही हैं या नहीं, मुझे लिखना। तुम देखोगे कि इससे और भी बहुतसे सवाल उठ खड़े होते हैं। सुरेन्द्रसे यह भी लिख भेजनेको कहना कि उसने सोमाभाईसे क्या कहा था। मुझे यही उचित जान पड़ता है कि तुम्हारा उत्तर मिलनेसे पहले मैं इस पत्रके बारेमें किसी तरहकी चर्चा न करूँ।

सम्भवत: डा० मेहता २३ तारीखको बम्बईमें उतरेंगे। रसोईघरके बारेमें मणिलाल कोठारीको लिखकर उसे तुरन्त खाली करवाकर साफ करवा लेना। मुझे पता नहीं कि आजकल मणिलाल कहाँ है। फिर भी मैं यहाँसे उसे बढवानके पतेपर तार तो दे ही रहा हूँ। यदि रसोईघरकी चाबी तुम्हारे पास हो तो उसके सामानकी सूची बनाकर किसी सुरक्षित स्थानपर रखवाकर उसे साफ करवा लेना।

चन्द्रकान्ता कल रवाना होकर रविवारको सुबह अहमदाबाद पहुँच जायेगी। उसके माता-पिता साथ आयेंगे। ऐसा जान पड़ता है कि उसके पितामें भी त्यागकी भावना है। अत: मैंने उन्हें सूचित किया है कि वे स्वयं ही चन्द्रकान्ताको आकर छोड़ जायें और आश्रम भी देख लें। और यदि वे कुछ दिन वहाँ रहें तो मैं स्वयं

और अधिक निश्चिन्त रह सकूँगा। ये दोनों व्यक्ति फिलहाल तो अलग ही भोजन करनेकी बात सोचते हैं। यदि माँ कुछ समयके लिए आश्रममें रहनेका निश्चय करेगी तो वह सम्मिलित भोजनालयमें ही भोजन करेगी। फिलहाल पति-पत्नीको बुधाभाई वाले मकानमें यदि कोई कोठरी खाली हो तो उसमें ठहरा देना। नानीबहन वहाँ नहीं है। पार्वतीबहन भी वहाँ नहीं है, इसलिए जगह तो खाली होगी ही। वे लोग वहाँ रहें और अपनी इच्छानुसार बनायें-खायें। सीधा भण्डारसे लें तो वह उनके नाम चढ़ा देना। यदि वे बिल माँगें तो दे देना। यदि न माँगें तो सम्बद्ध विभागके नाम लिख रखना और मेरे वापस लौटनेपर मुझसे पूछ लेना। चन्द्रकान्ता तो स्त्री-निवासमें ही रहेगी। मेरे वापस लौट आनेतक माता-पिता आश्रममें ही रहनेकी बात सोच रहे हैं। मैं तुम्हें इस सम्बन्धमें नित नये समाचार देता रहता हूँ। इससे तुम घबराना मत। मेरे पास पूरा किस्सा लिखनेका समय नहीं है; अन्यथा इस दम्पतीके अनिश्चयका कारण तुम सहज ही समझ जाते। मैं निश्चयपूर्वक यह नहीं बता सकता कि माधवजी कबतक आयेंगे। यदि यहाँसे मेरे रवाना हो जानेके बाद आनेवाले होंगे तो वे स्वयं ही तुम्हें तारीखकी सूचना देंगे।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च :]

पत्र दुबारा नहीं पढ़ा है।

गुजराती (जी० एन० ४१६६) की फोटो-नकलसे।

३१०. पत्र : शान्तिकुमार मोरारजीको

वर्धा
२० दिसम्बर, १९२९

चि० शान्तिकुमार,

तुम्हारा पत्र मिला। तुम्हारे अनुरोधको अस्वीकार करनेपर मुझे अत्यन्त खेद तो होता ही है, किन्तु मैं इस सभाके[1] लिए सर्वथा अनुपयुक्त व्यक्ति हूँ। मैं तो नामोंकी सूची देखकर ही डर गया हूँ। इस सभामें मेरा क्या उपयोग है और मैं क्या करूँगा। सर पुरुषोत्तम या सर दिनशा पेटिट अवश्य उपयोगी सिद्ध होंगे। मेरी तो सलाह यह है कि कोई दूसरा विचार छोड़ ही देना।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ४७९४) की फोटो-नकलसे।
सौजन्य : शान्तिकुमार मोरारजी

१. शान्तिकुमार मोरारजीके पिताके देहावसानपर होनेवाली शोक-सभा।

३११. पत्र : प्रेमाबहन कंटकको

२० दिसम्बर, १९२९

चि० प्रेमा,

तेरा पत्र मिल गया। लेकिन मैंने तेरे पत्रमें बाल-मन्दिरके वर्णन और वहाँकी स्थितिके चित्रणकी आशा रखी थी। क्या अब भी यह आशा रखूँ?

बापूके आशीर्वाद

[गुजरातीसे]
बापुना पत्रो – ५ : प्रेमाबहेन कंटकने

३१२. पत्र : रमणीकलाल मोदीको

वर्धा
२० दिसम्बर, १९२९

चि० रमणीकलाल,

'दत्त जयन्ती'[1] आदिके बारेमें मैं उदासीन रहा हूँ। मेरे मनमें इस तरहकी कोई भावना नहीं है; किन्तु उसके प्रति किसी तरहकी उपेक्षा भी नहीं है। लेकिन इस मन्दिरकी प्रसिद्धि हो और वहाँ बाहरसे लोग आकर पूजा भी करें, यह मैं नहीं चाहता। क्योंकि इसका दुष्परिणाम मेरी आँखोंके सामने तैरने लगता है। इसका कोई अच्छा परिणाम निकल सकेगा यह तुरन्त मेरी कल्पनामें नहीं आ पाता। मैं चाहता हूँ कि जो आश्रमवासी भक्तिभावसे इसका उपयोग करना चाहें, वे करें किन्तु इससे आगे न बढ़ें। पण्डितजी भी इसे पढ़ लें।

प्रेमाबहनके बारेमें तुमने जो निर्णय किया वही निर्णय मैं भी करता। इसमें मुझे नरमी नजर नहीं आई। यह ठीक है कि हमें विवाहोंमें सम्मिलित नहीं होना चाहिए किन्तु हमने ऐसा नियम तो लागू किया नहीं है कि कोई व्यक्ति कभी किसी विवाहमें भाग ले ही नहीं सकता। मुझे ऐसा लगता है कि इस कार्यमें आश्रमका पैसा खर्च नहीं करना चाहिए और जो हमारी बात सुनते हों उन्हें रोकना चाहिए।

सोमाभाईके बारेमें तो मैं तुम्हें कल लिख ही चुका हूँ। यदि उनका और हसमुखरायका समाधान हो गया हो तब तो यह किस्सा खत्म हो गया। यदि इस बारेमें कुछ और लिखने लायक हो तो लिखना।

चन्द्रकान्ताके बारेमें मैं कल तुम्हें लिख चुका हूँ। अब तो २५ रुपये देनेकी बात ही नहीं उठती। यहाँ दूर बैठे हुए यदि मुझे कोई विचार पसन्द हो तो उसका समर्थन तुम्हें या अन्य किसीको करना ही चाहिए, यह कोई जरूरी बात नहीं है।

१. भगवान दत्तात्रेयकी जयन्ती।

मेरा विचार गलत हो सकता है। फिलहाल तो कान्ताके माता-पिता हमारे अतिथिके रूपमें ही आ रहे हैं। अन्त्यज और सम्मिलित भोजनालय इन दोनोंको तो मैं अपनी दो ढालें मानने लगा हूँ। मुझे ऐसा लगता है कि ये न हों तो हम बरबाद हो जायें।

छगनलाल गांधीने जिन रकमोंका उल्लेख किया है वे उन्हें भिजवा देना, क्योंकि वे इसी तरहके कामके लिए रखी गई हैं। इससे सम्बन्धित एक पुर्जा भी वहाँ दफ्तरमें फाइल किया गया था। इस तरहके सभी दस्तावेजोंकी यदि कोई सूची हमारे पास न हो तो वह होनी चाहिए और जहाँ विशेष प्रयोजनके लिए कोई रकम खातेमें चढ़ी हुई हो या तो वहाँ उस रकमके उपयोगकी शर्त लिखी जानी चाहिए या दस्तावेजमें उसका उल्लेख हो तो उक्त दस्तावेजकी संख्याका वहाँ उल्लेख होना चाहिए। यदि ऐसा किया जाये तो फिर चाहे कोई भी व्यक्ति क्यों न काम करे, उसे ऐसी बातोंके बारेमें तत्काल ही जानकारी प्राप्त हो सकती है। हमारा हिसाब-किताब रखनेका ढंग इतना साफ-सुथरा होना चाहिए।

काशीनाथ अगर वहाँ हो तो उससे कहना कि विधवा बहनके बारेमें मैं कुछ ठीक समझ नहीं सका; फिर भी गंगाबहनसे मिलकर आपसमें जो निर्णय करना हो सो कर लें।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (जी० एन० ४१६७)की फोटो-नकलसे।

३१३. तार: वाइसरायके निजी सचिवको

वर्धा

[२० दिसम्बर, १९२९ या उसके पश्चात्][१]

निजी सचिव
वाइसरायका कैम्प

आपका तार[२] मिला। जैसी आज्ञा है अगले सोमवारको चार तीस पर परमश्रेष्ठकी सेवामें प्रस्तुत होऊँगा।

गांधी

अंग्रेजी (एस० एन० १५५८७)की फोटो-नकलसे।

१. वाइसरायके निजी सचिवके २०-१२-१९२९ के तारके आधारपर।

२. तार इस प्रकार था: "परमश्रेष्ठको सूचना मिली है कि यदि आपको पण्डित मोतीलाल नेहरू, सर तेज बहादुर सप्रू, श्री पटेल और श्री जिन्नाके साथ परमश्रेष्ठसे मिलने और उनकी हालकी घोषणापर अपने विचार प्रकट करनेके लिए बुलाया जाये, तो आपको प्रसन्नता होगी। इसलिए यदि आप उनसे मिलने वाइसराय भवन नई दिल्लीमें सोमवार २३ दिसम्बरको अपराह्न चार तीसपर आयें तो उन्हें बड़ी प्रसन्नता होगी। तार द्वारा पुष्टि कीजिए। परमश्रेष्ठ श्री पटेलसे सम्पर्क बनाये हुए हैं। मैं समझता हूँ कि वे आपको इस विषयमें लिखेंगे।"

३१४. तार : विट्ठलभाई पटेलको

[२० दिसम्बर, १९२९ या उसके पश्चात्][1]

अध्यक्ष पटेल
नई दिल्ली

आपका तार मिला। कृपया क्षमा करें। मैं आपके पास न ठहर सकनेका कारण बादमें बतलाऊँगा।

गांधी

अंग्रेजी (एस० एन० १५५७६)की फोटो-नकलसे।

३१५. तार : वल्लभभाई पटेलको

[२० दिसम्बर, १९२९ या उसके पश्चात्]

सरदार वल्लभभाई
सूरत

आशा है आज पत्र डाल दिया गया होगा। ईश्वर हमारा साथ दे।

बापू

अंग्रेजी (एस० एन० १५५७६)की फोटो-नकलसे।

३१६. तार : लक्ष्मीनारायण गाड़ोदियाको

[२० दिसम्बर, १९२९ या उसके पश्चात्]

गाड़ोदिया
दिल्ली

कृतज्ञतापूर्वक आपके पास ठहरूँगा। देवदास साथ रहेगा।

गांधी

अंग्रेजी (एस० एन० १५५७६)की फोटो-नकलसे।

१. सम्भवतः यह वाइसरायसे मिलनेके गांधीजीके निर्णयके बाद भेजा गया था" देखिए पिछला शीर्षक। इस और अगले तीन तारोंके मसविदे एक ही कागजपर मिले हैं।

३१७. तार : द० बा० कालेलकरको

[२० दिसम्बर, १९२९ या उसके पश्चात्]

काका साहेब
गुजरात विद्यापीठ
अहमदाबाद

चाहो तो सम्मेलनकी[1] तारीखोंकी घोषणा कर दो।

बापू

अंग्रेजी (एस० एन० १५५७६)की फोटो-नकलसे।

३१८. तार : मणिलाल कोठारीको

[२० दिसम्बर, १९२९ या उसके पश्चात्][2]

मणिलाल कोठारी
जोराव[र] नगर

आशा है कि डाक्टर मेहता २३ को पहुँचेंगे। रसोईघर खाली कर दिया जाये।

अंग्रेजी (एस० एन० १५५७६)की फोटो-नकलसे।

३१९. पत्र : मथुरादास त्रिकमजीको

२१ दिसम्बर, १९२९

तुम्हारा पत्र मिला। मुझे इस बातका पता नहीं था कि तुम जहाँ हो उस स्थानको भी तारामती कैदखाना मान सकती है। तिसपर वहाँके मूक साथियों, वहाँके दृश्योंके आगे दूसरोंकी जरूरत ही कहाँ होती है? किन्तु मेरे लिए तो यही सन्तोषकी बात है कि तुम सब वहाँ गये। और इतने दिन वहाँ टिके रहे इससे और भी सन्तोष होता है। अतः जनवरीके अन्तमें आरामसे नीचे उतर आना। आज दिल्लीके लिए रवाना हो रहा हूँ। अभी तो सुबहके पाँच बजे हैं। वाइसरायसे मिलना है किन्तु मैं कोई आशा लेकर नहीं जा रहा हूँ।

[गुजरातीसे]
बापुनी प्रसादी

१. सम्भवत: १३-१-१९३० को हुआ अखिल भारतीय राष्ट्रीय शिक्षा सम्मेलन।

२. इस तारका मसविदा उसी कागजकी पीठपर लिखा हुआ था जिसपर पिछले ४ तारोंका मसविदा था। देखिए पृ० ३०५-६।

३२०. पत्र : शिवाभाई पटेलको

गाड़ीसे
२१ दिसम्बर, १९२९

भाई शिवाभाई,

तुम्हारा पत्र मिला। 'आश्रम समाचार' ठीक बन पड़ा है। जिस वस्तुपर तुमने इसे छापा है बहुत करके उससे मैं परिचित हूँ। देखनेपर ही मालूम हो सकेगा।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (एस० एन० ९४९२) की फोटो-नकलसे।

३२१. पत्र : नारणदास गांधीको

२१ दिसम्बर, १९२९

चि० नारणदास,

तुम्हारा पत्र मिला। यह पत्र मैं दिल्ली जाते हुए गाड़ीमें लिख रहा हूँ। तुम्हारे कारणोंको मैंने समझ लिया है, इसलिए फिलहाल मैं चुप रहूँगा। यदि कुछ शान्ति मिल सकी तो मैं जनवरीमें इसपर गहराईसे विचार करूँगा। आशा है बहनोंकी कक्षा अच्छी तरह चल रही होगी।

बापूके आशीर्वाद

[गुजरातीसे]

बापुना पत्रो – ९ : श्री नारणदास गांधीने

३२२. किसानोंके लिए क्या करना चाहिए ?

एक नवयुवकने अपना नाम देते हुए मुझसे मिलनेकी इच्छा प्रकट की है किन्तु पता लिखना भूल गये हैं; वे लिखते हैं:[१]

इन नवयुवकके पिताकी इच्छा तो आजकलके बहुतेरे माता-पिताओंकी सामान्य इच्छा है। जिन नौजवानोंके मनमें देशके प्रति प्रेम उत्पन्न हो चुका है, और जो उसके लिए हर तरहके कष्ट उठानेको तैयार है, वे लोग ग्रेज्युएट बनकर सरकारी या रियासती नौकरी करनेकी इच्छा ही नहीं कर सकते। माता-पिताओंको यह बात मान लेनी चाहिए। बड़ी उम्रके लड़कों या लड़कियोंसे जबर्दस्ती कोई बात मनवानेकी जिद उन्हें छोड़ देनी चाहिए। प्रस्तुत प्रश्नकर्त्ताके समान अन्य नवयुवकोंको विनयपूर्वक किन्तु उतनी ही दृढ़तापूर्वक अपने विचार माता-पिताके सामने रख देने चाहिए और उनपर अमल करना चाहिए। लेकिन जो इस तरहका काम करना चाहें उन्हें पिताके धनको छोड़नेके लिए भी तैयार रहना चाहिए। पिताकी ओरसे प्राप्त या भविष्यमें प्राप्त होनेवाली विरासतके लिए जूझनेवाले पुत्र या पुत्रीको माता-पिताकी इच्छाके अनुसार काम न करनेका अधिकार नहीं है। ऐसी दशामें गरीबों या किसानोंके लिए क्या करना चाहिए, फिलहाल यह प्रश्न गौण हो जाता है। जिसमें विनयपूर्वक तथा देशसेवाके लिए पिताका आश्रय छोड़नेकी शक्ति है उसे गरीब किसानकी सेवाके सैंकड़ों मार्ग मिल जायेंगे। शुरुआत स्वयं किसानके समान बनकर की जा सकती है। इस कारण मैं तो चरखेकी ही बात सोच सकता हूँ। किन्तु जिसे चरखा न जँचे वह चाहे तो सेवाकी शुरुआत चरखे द्वारा न करे। किसी भी गाँवमें जाकर अगर वह बैठ जायेगा तो उसकी लियाकतके मुताबिक अपने-आप उसे अनेक मार्ग सूझ जायेंगे। लेकिन कोई यह पूछे कि वहाँ जाकर निर्वाह कैसे किया जाये तो इसका जवाब यह है कि ऐसे सभी लोगोंको चरखा संघ जैसी किसी संस्थासे सम्बद्ध होकर अपनी आजीविकाके योग्य वेतन लेकर काममें जुट जाना चाहिए। 'नवजीवन'के पाठकोंसे यह छिपा नहीं है कि इस तरह सैकड़ों नवयुवक काम कर रहे हैं। इसलिए जिन्हें सचमुच सेवा करनी है उनके लिए रास्ता साफ है। जिसमें सेवा करनेकी लगन तो है लेकिन योग्यता नहीं है, उसके लिए ऐसे साधन भी आज मौजूद हैं कि वह आवश्यक ज्ञान प्राप्त कर सकता है। लेकिन अकसर देखा जाता है कि देशसेवाकी लगनके पीछे जितना जोश और उफान होता है, उतना विवेक नहीं होता। कुछ नवयुवक जोश या उफानको ही इसके लिए काफी समझते हैं। लेकिन जिस तरह अनियन्त्रित भाप बेकार जाती या नुकसान पहुँचाती है उसी तरह विचारहीन जोश न केवल निरर्थक ही होता है बल्कि कभी-कभी हानिकर भी सिद्ध होता है। किसानोंकी सेवा करने

१. पत्र यहाँ नहीं दिया जा रहा है।

वाले युवकमें अटूट धैर्य, आत्मविश्वास, शारीरिक स्वास्थ्य, ठंड, धूप वगैरा सहनेकी शक्ति और प्रशिक्षण लेनेकी इच्छा इत्यादि होने ही चाहिए।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २२-१२-१९२९

३२३. स्त्रियाँ और गहने

हमारे राजा-महाराजाओंके गहनोंके शौकको मैं कभी समझ नहीं सका। अथवा गहनोंसे लदे राजा मुझे स्त्रियोंके समान मालूम हुए हैं। राजाओंकी स्त्रियोंसे उपमा देकर मैं स्त्रियोंकी निन्दा करना नहीं चाहता। मेरी दृष्टिमें तो उस स्त्रीकी भी शोभा नहीं है, जो पुरुष-सी प्रतीत होती है। अपने-अपने स्थानपर ही सब शोभा देते हैं और अपने स्थानपर रहकर ही वे उपयोगी साबित हो सकते हैं। जो अपनी जगहसे ऊपरकी ओर जानेकी चेष्टा करता है वह भी स्थानभ्रष्ट हो जाता है, और जो नीचे जाता है वह तो स्थानभ्रष्ट कहलाता ही है। 'श्रेयान् स्वधर्मो विगुणः परधर्मो भयावहः'[1] का ऐसाही कुछ अर्थ होना चाहिए। लेकिन मैं तो राजाओंके गहनोंका जिक्र करके स्त्रियोंके गहनोंके सम्बन्धमें कुछ कहना चाहता हूँ। राजा लोग तो 'नवजीवन' पढ़ते भी नहीं होंगे। अगर पढ़ते भी हों तो ऐसी बातोंपर वे विचार ही नहीं करेंगे। और विचार करना भी चाहें तो सम्राट उन्हें विचार करने नहीं देंगे। ये मांडलिक राजा अपने सम्राटके तेजसे तेजस्वी हैं। वे स्वयं प्रकाशित नहीं हैं। हो सकता है गहनोंको छोड़ देनेसे उन्हें गद्दीसे भी हाथ धोना पड़े। उनका कहना है कि अगर हम राजदरबारके मौकोंपर गहनोंसे लदे हुए न जायें तो इससे साहबका अपमान होगा और साहब रूठ जायेंगे। इसलिए हम चाहें या न चाहें, हमें बेशकीमती गहने रखने और पहनने ही पड़ते हैं। अतएव आज राजाओंके सवालको छेड़नेमें कोई सार नहीं है। सूर्यके अपने ठिकानेपर पहुँचते ही ग्रह अपने-आप ठिकानेपर आ जाते हैं। राजा ग्रहोंके समान हैं। उनमें भला-बुरा करनेकी स्वतन्त्र शक्ति आज नहीं है। सम्राटकी कैद या उसके प्रभावसे मुक्त होनेपर ही उनसे कही हुई बातका कोई फल निकल सकेगा।

लेकिन स्त्रियोंका क्या? जिन उद्देश्योंको लेकर 'नवजीवन' चलाया जा रहा है, उनमें एक मुख्य उद्देश्य उनकी उन्नति भी है। संयुक्त प्रान्तके दौरेके वक्त गरीब और अमीर बहनोंके गहने देखकर मैं घबरा उठता था। इस बीच मैंने ब्रेन साहबकी किताब पढ़ी। उसमें उन्होंने गहनोंके बारेमें जो आलोचना की है, वह मुझे विशेष रूपसे पसन्द आई। उन्होंने जेवरोंके इस शौकके लिए पुरुषोंको भी जिम्मेदार माना है। मैं मानता हूँ कि पुरुष इसके लिए जिम्मेदार हैं या पहले थे; अब वे इसके लिए

१. **भगवद्गीता**, ३-३५।

उतने जिम्मेदार नहीं रहे। फिर भी स्त्रियोंकी अपनी जिम्मेदारी इसमें कुछ कम नहीं है। अबतक बहुत-सी बहनोंको जेवर छोड़नेकी बात मैं समझा नहीं सका हूँ।

यह शौक कहाँसे और कैसे पैदा हुआ होगा, मैं इसका इतिहास नहीं जानता। इस कारण मैंने थोड़े अटकलसे काम लिया है। स्त्रियाँ पैरोंमें जो गहने पहनती हैं, वे उनके कैदीपनेकी निशानी हैं। पैरके कुछ गहने तो इतने वजनदार होते हैं कि स्त्री उन्हें पहनकर दौड़ना तो दूर, तेजीसे चल भी नहीं सकती। अनेक स्त्रियाँ हाथमें इतने सारे गहने पहनती हैं कि उन्हें पहननेपर हाथसे ठीक तरह काम भी नहीं लिया जा सकता। इसलिए ऐसे गहनोंको मैं हाथ-पैरोंकी बेड़ियाँ ही समझता हूँ। कान-नाक विंधाकर जो गहने पहने जाते हैं, मेरी नजरमें तो उनकी उपयोगिता यही है कि आदमी औरतको जैसे नचावे वैसे नाचनेमें उनसे मदद मिलती है। एक छोटा-सा बच्चा भी अगर किसी स्वस्थ स्त्रीकी नाक या कानका गहना पकड़ ले तो उसे बसमें कर सकता है। इसलिए मेरी रायमें तो ऐसे खास गहने सिर्फ गुलामीकी निशानी ही हैं।

इन तमाम पुराने गहनोंकी बनावट भी मुझे बुरी ही मालूम हुई है। मुझे तो उनमें किसी तरहकी कला नजर नहीं आती। हाँ, मैलके घरके रूपमें मैंने उन्हें जाना और देखा है। जिस स्त्रीने हाथ, पैर, कान, नाक और बालोंमें पुराने गहने लाद रखे हैं वह अपने शरीरके उन-उन अंगोंको साफ नहीं रख सकती। उन जगहोंपर मैंने मैलकी तह जमी हुई देखी है। इनमें कई गहने तो ऐसे होते हैं जिन्हें रोज-रोज निकाल भी नहीं सकते। अनेक बहनोंने मुझे अपने पैरके छड़े और हाथकी चुड़ियाँ दी थीं, जिन्हें निकलवानेके लिए सुनार बुलाने पड़े थे। जब वे गहने निकाले गये तो हाथों और पैरोंकी गोलाईमें मैलकी खासी तह जमी हुई थी, और गहनोंकी खुदाईमें तो मैलकी तह जमी हुई ही थी। उन बहनोंको भी वर्षोंका बोझा हलका हुआ-सा मालूम पड़ा।

आजकलकी स्त्रियाँ गहनोंकी इस उत्पत्तिको भूलकर उन्हें अपना सिंगार समझती हैं और इसीलिए नाजुक गहने बनवाती हैं। वे ऐसे गहनें पहनने लगी हैं जो जल्दी पहने और उतारे जा सकें; और अगर खूब पैसा पास हुआ तो सोने-चाँदीके बदले हीरे-मोतीके गहने बनवाती हैं। भले ही इन गहनोंमें मैल कम जमता हो और कुछ कला भी दीख पड़ती हो तो भी उनकी कोई उपयोगिता नहीं होती और जो शोभा होती है वह भी काल्पनिक है। जो गहने हमारी स्त्रियाँ पहनती हैं अन्य देशोंकी स्त्रियाँ उन्हें कभी नहीं पहनेंगी। शृंगारके बारेमें उनकी कल्पना सर्वथा अलग होती है। हर देशकी कला और शृंगारकी कल्पनाएँ जुदा-जुदा होती हैं। इसलिए हम समझ सकते हैं कि ऐसी बातोंमें शृंगार या कलाका हमारे पास कोई स्वतन्त्र अथवा सर्वमान्य प्रमाण नहीं है।

तो फिर समझदार और पढ़ी-लिखी स्त्रियाँ भी गहनोंका शौक क्यों करती हैं? विचार करनेसे मालूम होता है कि और बातोंकी तरह इस बारेमें भी रूढ़ि ही प्रधान है। हम अपने हरएक कामके लिए कारणकी तलाश नहीं करते, उसके औचित्य-अनौचित्यका विचार नहीं करते। एक बार रूढ़िकी नकल की कि बादमें वही बात हमें स्वतन्त्र रूपसे रुचने लगती हैं। और इसीका नाम विचारशून्य जीवन है।

किन्तु जो स्त्रियाँ जाग उठी हैं, जो स्वयं स्वतन्त्र रूपसे विचार करने लगी हैं, जिन्हें देश-सेवा करनी है, जो स्वराज्य-यज्ञमें हाथ बँटा रही हैं या बँटाना चाहती हैं, वे गहनों आदिके मामलेमें अपनी विवेकबुद्धिसे काम क्यों नहीं लेतीं?

गहनोंकी उत्पत्तिके बारेमें जो कल्पना मैंने की है अगर वह ठीक हो तो चाहे जैसे हलके और खूबसूरत गहने क्यों न हों वे सर्वथा त्याज्य हैं। बेड़ियाँ सोनेकी हों या हीरे या मोतीसे जड़ी हों आखिर हैं तो बेड़ियाँ ही। अँधेरी कोठरीमें बन्द करो या महलमें, दोनोंमें बन्द किये गये स्त्री-पुरुष कैदी ही तो कहे जायेंगे।

तो फिर स्त्रीकी शोभा किसमें है? उसके गहनोंमें, उसके हाव-भावमें, उसकी नित नई पोशाकमें या उसके हृदय और उसके आचार-विचारमें? मणिधर सर्पके मुखमें हलाहल भरा है। इसलिए मणिका मुकुट धारण करनेपर भी न तो कोई उसके दर्शन करता है, और न कोई उसे गले ही लगाता है।

जो स्त्री यह समझती है कि जिस 'कला' के कारण असंख्य पुरुषोंका पतन होता है, तो फिर वह कला गहनोंमें चाहे जितनी क्यों न हो, वह उसे क्यों अपनाती है? यह व्यक्ति-स्वातन्त्र्य नहीं है, और न यह व्यक्तिगत अधिकारकी बात है, यह तो निरी स्वच्छंदता है और त्याज्य है। क्योंकि इसमें निर्दयता है, बेरहमी है। प्रत्येक विचारशील और दयालु स्त्री-पुरुषका कर्त्तव्य है कि वह यह देखे कि उसके कामका औरोंपर कैसा प्रभाव पड़ता है और अगर दूसरी तरहसे उसकी उपयोगिता सिद्ध न होती हो, बल्कि उलटे उसका बुरा असर होता हो तो वह उस कामको कभी न करे।

अन्तमें, इस कंगाल देशमें जहाँ फी आदमी औसत आय सात या बहुत हो तो आठ पैसेसे ज्यादा नहीं है, वहाँ किसे अधिकार है कि वह एक रत्ती वजनकी भी अँगूठी पहने? विचारशील स्त्री, जो देशकी सेवा करना चाहती है, तो गहनोंको कभी छू भी नहीं सकती। अर्थशास्त्रकी दृष्टिसे देखें तो गहनोंमें हम जितना सोना-चाँदी लगाते हैं उससे तिहरा नुकसान होता है। एक नुकसान तो यह कि जहाँ खानेकी भी सांसत है, वहाँ हम गहने पहनकर उस परेशानीको और भी बढ़ाते हैं। हमें याद रखना चाहिए कि हमारी दैनिक औसत आय सात या आठ पैसे है, इनमें वे लोग भी शामिल हैं जो रोजाना हजार या इससे भी अधिक कमाते हैं। अर्थात् अमीरोंको छोड़कर अगर हम अकेले गरीबोंका विचार करें तो उनकी आमदनी एक या दो पैसे ठहरेगी। इसलिए जितना धन हम गहनोंपर खर्च कर देते हैं उतना मानो गरीबोंके मुँहसे छीन लेते हैं। दूसरे, गहनोंपर ब्याज नहीं मिलता, जिससे देशकी सम्पत्तिमें होनेवाली वृद्धि हमारे कारण रुकती है। तीसरे, गहनोंका अधिकांश आखिरकार घिस जाता है और उतना धन हमेशाके लिए नष्ट हो जाता है। सोनेकी ईंटोंको दरियामें फेंकना और स्त्रियोंके गहने बनानेमें पैसे खर्चना, लगभग दोनों बातें एक हैं। मैंने 'लगभग' शब्दका प्रयोग किया, क्योंकि कुछ गहने आफतके वक्त बेच दिये जाते हैं और यह माना जा सकता है कि उनका कुछ उपयोग हुआ। बेचनेसे पहले घिसाईमें जो-कुछ नष्ट हुआ सो तो हुआ ही; दूसरे, गहनेके खरीदारको गहना बेचते

समय कभी भी मूल कीमत नहीं मिलती और इस तरह जो नुकसान उठाना पड़ता है वह भी स्पष्ट ही है। इसलिए जो स्त्री गहनोंको स्त्री-धन या आपद्-धनके रूपमें रखना चाहती है, उसे अपने नामपर नकद रुपया ही जमा रखना चाहिए, और माता-पिता अथवा ससुरालवालोंको भी उसके नाम बैंकमें खाता खुलवाकर पास-बुक ही उसे सौंपनी चाहिए। सम्भव है, यह समय अभी दूर हो। फिर भी अगर समझदार और सेवा करनेकी इच्छुक बहनें अपने गहनोंका मोह छोड़ दें, तो मैं समझूँगा कि मेरा यह लेख लिखनेका प्रयास फिलहाल तो सफल हुआ।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २२-१२-१९२९

३२४. टिप्पणियाँ

स्वर्गीय जयकृष्ण इन्द्रजी

'नवजीवन'के एक पाठक लिखते हैं:[1]

पोरबन्दरमें श्री जयकृष्णसे मेरा परिचय हुआ था, और उसी समय अपने विषयमें सर्वोपरि बननेकी उनकी दृढ़ इच्छा और जबर्दस्त सादगी देखकर मैं आश्चर्यचकित रह गया था। वनस्पतियोंकी खोजमें वे कई बार बरडाके पर्वतीय प्रदेशोंमें घूमे थे, और अपने विशाल अनुभवके आधारपर उन्होंने एक सुन्दर पुस्तक भी लिखी। उन्होंने अपने घर ही में अनेक प्रकारकी वनस्पतियोंका एक संग्रहालय बना रखा था, जिसे हर मिलनेवालेको वे गर्वके साथ दिखाया करते थे। उन्हें वनस्पतियोंकी शोध-खोजके सिवाय और कोई बात ही नहीं सूझती थी। अपनी इसी धुनमें वे इस लोक और परलोकका श्रेय देखते थे। यही वजह थी कि मैं उन्हें आदर्श विद्यार्थी मानता था। कच्छकी यात्रा में[2] फिर उनसे मिला था। वहाँ भी उनपर वही धुन सवार थी। नये-नये पौधे लगानेका उनका शौक बुढ़ापेमें घटनेकी बजाय और भी बढ़ गया था। इस तरह अपने विषयपर अनन्य भक्ति रखनेवाले मनुष्य दुर्लभ हैं। श्री जयकृष्ण इन्द्रजी उनमें से एक थे। वे तो अपने कर्त्तव्यका पालन करके मुक्त हो गये, इसलिए उनकी आत्मा शान्त ही है। आइए, हम सब उनकी एकाग्रता और उनके आत्मविश्वासका अनुकरण करें।

मजदूर और मालिक

आजकल मजदूर और मालिक, ऐसे दो पक्ष बन गये हैं और दोनोंके बीच आमतौरपर विरोध पाया जाता है। दुनियामें एक ऐसा सम्प्रदाय उठ खड़ा हुआ

१. पत्र यहाँ नहीं दिया जा रहा है। पत्र-लेखकने गुजरातके वनस्पतिशास्त्री जयकृष्ण इन्द्रजीके देहावसानकी सूचना गांधीजीको दी थी।

२. देखिए खण्ड २८।

है जो यह मानता है कि मालिक-वर्ग रहना ही नही चाहिए या फिर सभीको मालिक होना चाहिए। मेरी रायमें संसारमें ऐसी स्थिति कदापि पैदा नहीं होगी। जो होने योग्य है, और होना चाहिए सो तो यह है कि दोनों पक्षोंके बीच अविश्वास और बैरके बदले विश्वास और प्रेम हो। जिस तरह मालिकोंको मिटानेवाला एक सम्प्रदाय खड़ा हो चुका है, उसी तरह आजकल पश्चिममें एक ऐसा सम्प्रदाय भी उभर रहा है जिसके मतानुसार दोनों दलोंके बीच प्रेम और विश्वास पैदा किया जा सकता है। अगर ऐसी स्थिति सम्भव हो तो उसे अस्तित्वमें लानेका काम खास कर मालिकोंका है। क्योंकि दोनों पक्षोंमें वे न केवल सबल हैं, बल्कि यदि कुछ त्याग करना भी है तो वह मालिक पक्षको ही करना है। मजदूर पक्षके पास अधिकार नामकी कोई चीज ही नहीं है; या उसके पास जो अधिकार है सो सिर्फ रूठनेका, यानी सत्याग्रह करनेका है। लेकिन यह मजदूर पक्षका कोई विशेष अधिकार नहीं है। मनुष्यमात्र इसका अधिकारी है। अभी हालमें सेठ घनश्यामदास बिड़लाने शोलापुरवाले अपने भाषणमें[1] यह स्वीकार किया है कि मालिकोंको इस तरहका त्याग करना चाहिए। अपने उक्त भाषणमें उन्होंने साफ-साफ कहा है कि मुनाफेकी खातिर किसीका दुरुपयोग करना या लूटना मिल-मालिकोंका कर्त्तव्य नही है। उनका कर्त्तव्य तो यह है कि वे जनताके सेवककी हैसियतसे और उसके लाभके लिए ही मालका उत्पादन करें और उसे वेचें। और उन्होंने यह भी कहा है कि अगर मालिक ऐसा नहीं करेंगे तो उनका निभाव मुश्किल हो जायेगा। अगर सब मिल-मालिक इस तरहका बरताव करें तो कलहका नाम भी न रहे, और मजदूरों तथा मालिकोंके बीच विश्वास पैदा हो और साथ ही वे प्रेमके बन्धनमें भी बँध सकेंगे। इसीको प्राचीन भाषाम धर्माचरण और आजकलकी भाषामें न्यायवृत्ति कहते हैं। इसी दृष्टिसे विचार करते हुए श्री घनश्यामदासने यह भी कहा है कि नाममात्रके लाभके लिए वे मुख्य वस्तुकी उपेक्षा न करें, अर्थात् इंग्लैंडके कपड़ेको छोड़कर दूसरे देशोंके कपड़ोंपर कर लगानेका लालच दिया जाये तो उसके लालचमें न फँसें। सेठ घनश्यामदास बिड़लाने यह भाषण शोलापुरके व्यापारी समाजके सामने सभापतिके आसनसे दिया था, और ऐसी कोई सूचना नहीं मिली कि किसीने इसका विरोध किया हो। लेकिन ऐसे विचारोंका विरोध न करना एक बात है किन्तु तदनुसार बरताव करना बिलकुल दूसरी बात है। जरूरत तो इन विचारोंके अनुसार आचरण करनेकी है। क्योंकि अगर उनपर अमल नहीं किया जाये तो अच्छेसे-अच्छे विचार भी निरर्थक हैं।

हज्जाम या नाई?

पालीतानासे एक भाई लिखते हैं:[2]

सच पूछा जाये तो हज्जाम शब्दके प्रयोगमें तिरस्कारकी भावना उस धन्धेके कारण है। 'हज्जाम' शब्दका प्रयोग पेशेवर बाल काटनेवालों या हजामत बनानेवालेके

१. देखिए "पूँजीपतियोंका कर्तव्य", १९-१२-१९२९।

२. पत्र यहाँ नहीं दिया जा रहा है। पत्र-लेखकने गांधीजीसे अनुरोध किया था कि वे 'हज्जाम' के बदले 'नाई' शब्दका प्रयोग किया करें। क्योंकि 'हज्जाम' शब्द तिरस्कारसूचक है।

लिए किया जाता है। अगर वह पसन्द न हो तो मैं 'नवजीवन' में 'नाई' शब्दका प्रयोग ही किया करूँगा। लेकिन मेरा दृढ़ विश्वास है कि इससे खास शिकायत दूर नहीं होती। जो धन्धे जरूरी होते हुए भी सफाईसे सम्बन्ध रखते हैं, उन धन्धोंके खिलाफ फैले हुए दुर्भावको दूर करना ही इसका सच्चा इलाज है। फिर तो नाम चाहे जो रहे, हमें उसकी चिन्ता न होगी। 'आँखोंके अन्धे और नाम नैनसुख' हो तो हम उसका क्या करेंगे? सिर्फ इसलिए हम 'नैनसुख' शब्दका तिरस्कार न करें। संसारमें मनुष्यकी प्रतिष्ठाकी भाँति ही शब्दोंकी प्रतिष्ठा भी घटती-बढ़ती रहती है और घटती-बढ़ती रहेगी।

इस सुधारवादी युगमें तो सब अपनी-अपनी हजामत आप बनाना सीख रहे हैं, जिससे नाईके पेशेकी कटुता सहज ही दूर हो जायेगी; और बहुत-कुछ दूर हो भी गई है। मेरे मनमें तो नाई, भंगी, चमार, ढेढ़ वगैरा शब्दोंके लिए किसी तरहका दुर्भाव रह ही नहीं गया है। मै खुद ये सारे काम करता हूँ, और दूसरोंसे भी करनेको कहता हूँ। ये काम खुद करनेमें मुझे आनन्द आता है। यह धन्धा करनेवाले भाइयोंसे मैं कहना चाहता हूँ कि वे इस बातको भूल जायें कि समाजको इन धन्धोंसे नफरत है। वे अपने-अपने धंधेमें कुशल बनें, अपने आचार-विचार शुद्ध बनायें और अपनी तथा अपने धन्धेकी प्रतिष्ठा बढ़ायें। हालाँकि मैं अपनी हजामत अच्छी तरह बनाना जानता हूँ किन्तु उक्त हेतुसे जहाँ मुमकिन होता है खादीधारी नाईको कष्ट देता हूँ और उसे देश-सेवाके लिए प्रेरित करता हूँ। हमें शुद्ध स्वराज्य हासिल करना है, इसीलिए हमें ऐसे तमाम पेशेवर लोगोंकी मददकी और उन्हें सुधारनेकी आवश्यकता है। जब कि पहले हमारे यहाँ चमार, जुलाहा, मोची, ढेढ़ वगैरा कौमोंके लोग ज्ञानी भक्त हो चुके हैं तो अब उन्हींमें से कोई अपनी सेवाके बलसे राष्ट्रपति बन जाये तो इसमें आश्चर्य ही क्या है? ये धन्धे करनेवाले लोग अपना आचरण खूब शुद्ध रख सकते हैं और अपनी बुद्धिको भी तेजस्विनी बना सकते हैं। दुःख तो यह है कि ऐसे धन्धेवाले लोग जब बुद्धिमान बन जाते हैं तो उन्हें अपना धन्धा करते हुए शर्म आती है, और आखिरकार वे उसे छोड़ देते हैं। मैं तो एक ऐसे राष्ट्रपतिकी कल्पना करता हूँ जो नाई या मोचीका धन्धा करके अपना निर्वाह करता हो और साथ ही राष्ट्रकी बागडोर भी अपने हाथोंमें थामे हुए हो। यह हो सकता है कि राष्ट्रके कामकी बढ़ती हुई जिम्मेदारीके कारण वह पूरी तरह अपना धन्धा न चला सके लेकिन यह तो एक जुदा सवाल है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २२-१२-१९२९

३२५. पत्र : आश्रमकी बहनोंको

दिल्ली
२३ दिसम्बर, १९२९

बहनो,

दिल्लीमें सुबहकी प्रार्थनाके बाद यह पत्र लिख रहा हूँ। ठंड इतनी कड़ाकेकी है कि मीराबहनके पैर ठिठुर गये हैं और वह बिस्तरमें घुसकर मेरे पास ही पड़ी है। लाहौरमें तो यहाँसे भी ज्यादा सर्दी है।

मगर मुझे ठंडकी बात नहीं लिखनी है। मुझे तो हमारे अपने कर्त्तव्यके बारेमें लिखना है। अभी तो इतना ही लिखना है कि जो अपने स्वार्थका विचार करेंगे वे जरूर गिरेंगे। जो सेवा-परायण रहेंगे, उन्हें गिरनेके लिए समय ही कहाँ मिलेगा? मेरा सदा यह अनुभव रहा है कि जो लोग भी गिरे हैं, वे सत्यसे विमुख रहे हैं या विमुख हुए हैं। पाप-कर्मके लिए अँधेरेकी जरूरत होती है। वह ज्यादातर छिपकर ही होता है। ऐसे मनुष्य भी देखनेमें आते हैं जिन्होंने शर्म छोड़ दी है और जो खुल्लमखुल्ला पाप-कर्म करते हैं; और कुछ ऐसे भी हैं जो पापको पुण्य मानते हैं। हम ऐसोंकी बात तो नहीं करते। हमारे बहुतसे काम रुक गये हैं इसका एक कारण, जैसा कि मैंने ऊपर कहा है, स्वार्थ है और उस स्वार्थमें हमारे और समाजके पतनकी सम्भावना छिपी हुई है। इसपर सोचना, मनन करना और इस दृष्टिसे सभी अपने-अपने जीवनका निरीक्षण करना।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (जी० एन० ३७१२)की फोटो-नकलसे।

३२६. पत्र : रमणीकलाल मोदीको

दिल्ली
मौनवार, २३ दिसम्बर, १९२९

चि० रमणीकलाल,

तुम्हारा पत्र मिला। महादेव यहाँ है। वल्लभभाई भी यहीं हैं।

हेनरीका[१] तार डाकसे भेजकर तुमने ठीक किया। ऐसे मामलोंपर विचार करके जैसा उचित जान पड़े वहीं निर्णय ले लिया करो। इसके लिए कोई निश्चित नियम नहीं बनाया जा सकता। हमारा लक्ष्य तो पैसे बचाना ही होना चाहिए।

१. हेनरी पोलक।

मणिलाल कोठारीको तुमने सही उत्तर दिया है।

बुधाभाई हमारे पड़ोसी हैं। मैंने उनके मामलेमें हस्तक्षेप किया। अब यदि हम उनके पैसे जमा नहीं करेंगे तो हमारी सेवा अधकचरी कही जायेगी। इसमें हम पर कम बोझ पड़ेगा। बुधाभाई और नानीबहन यदि निरपराध हों तो हमें पैसे जमा कर लेने चाहिए। यदि वे अपराधी होंगे तो हमें उसका पता चले बिना नहीं रहेगा। इस विकट संसारमें यह कोई नहीं कह सकता कि कौन अच्छा और कौन बुरा है। मुझे तो स्पष्ट कर्त्तव्य जान पड़ता है कि पैसा जमा कर लेना चाहिए तथा दोनोंसे सम्बन्ध बनाये रखना चाहिए। हमें कोठरी नानीबहनको नहीं देनी है। कोठरी तो बुधाभाईके घरमें उसे देनी है। यदि नानीबहन आश्रममें आकर रहती है तो वह भी वैसे ही रहे जैसे कि अन्य स्त्रियाँ रहती हैं। विशेष मिलनेपर।

यदि थानावाली जमीन ९०००में जाती हो तो इससे अच्छी बात और क्या हो सकती है। प्यारअली वर्धामें हमसे अलग हो गये थे। तुम उन्हें बम्बईके पते पर लिखना।

४-३० बजे वाइसरायसे मिलना है।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (जी० एन० ४१६८)की फोटो-नकलसे।

३२७. भाषण: सर्वेन्ट्स ऑफ पीपल सोसाइटी, लाहौरमें[1]

२४ दिसम्बर, १९२९

गांधीजीने इस अवसरपर बोलते हुए कहा कि मैं इसे अपना सौभाग्य समझता हूँ कि लाहौर पहुँचते ही मुझे लाजपतराय हालका उद्घाटन समारोह करनेके लिए कहा गया।

उन्होंने कहा कि मैं लालाजी और उनकी सोसाइटीकी प्रशंसामें बहुत नहीं कहना चाहता, क्योंकि पंजाबके लोग उन्हें बहुत अच्छी तरह जानते हैं। मैं बनिया हूँ और मैंने हमेशा बनियों जैसे काम किये हैं। श्री पुरुषोत्तमदास टण्डनने जो रिपोर्ट पढ़ी, उससे मुझे पता चला कि पण्डित मालवीय, डा० अन्सारी और श्री बिड़ला द्वारा लालाजी स्मारक कोषके लिए पांच लाख रुपयेकी जो अपील की गई है उसकी पूरी रकम अभी इकट्ठी नहीं हो पाई है। मुझे आशा है कि जो रकम बकाया है उसे पंजाबके लोग जमा करके पूरा कर देंगे।

मुझे जनहितका काम करनेकी पंजाबियोंकी योग्यताका पूरी तरह ज्ञान है। परन्तु मैं अभी तक लालाजीके प्रति पंजाबियोंके स्नेहका पूरा अन्दाज नहीं लगा सका हूँ।

१. इसके पहले वार्षिकोत्सवमें।

क्योंकि पंजाबियोंने, जिनके बीच लालाजी रहे और जिनके बीच लालाजीने प्राण त्याग दिये, इस अपीलपर अपना देय अंश नहीं दिया है। मुझे आशा है कि पंजाबके लोग इस सालसे पहले रकम पूरी कर देंगे और इस वजहसे मुझे जो चिन्ता है मैं उससे मुक्त हो जाऊँगा।

मैंने भारतके विभिन्न भागोंमें अपने दौरोंमें जितना हो सका है उतना पैसा इकट्ठा करनेकी कोशिश की है, परन्तु मैं पूरी रकम इकट्ठी नहीं कर सका हूँ। उन्होंने सभामें उपस्थित सब पुरुषों और महिलाओंसे अपील की कि वे लालाजी स्मारक कोषके लिए जितना पैसा दे सकें दें।

उन्होंनें कहा —— मेरा विचार बहुत पहले पंजाब आनेका था परन्तु चूँकि कांग्रेसको पंजाबमें आमन्त्रित किया गया था और कांग्रेसी, कांग्रेसके लिए चन्दा उगाहनेमें व्यस्त थे, इसलिए मैंने अपनी यात्रा स्थगित कर दी।

महात्माजीने कहा कि मैंने सुना है कि पंजाबी महिलाएँ रेशम और गहनोंकी बड़ी शौकीन हैं और वे बहुतेरी विदेशी वस्तुओं और विदेशी सुगन्धित तेलोंका इस्तेमाल करती हैं। इससे मुझे बड़ा दुःख होता है। उन्होंने कहा कि जबतक भारतको स्वराज्य न मिल जाये किसी महिलाको गहने नहीं पहनने चाहिए; और उनके पास जो भी गहने हों सो वे मुझे दे दें।

उपस्थित लोगोंको सम्बोधित करते हुए महात्माजीने कहा कि आप हमेशा वन्देमातरम्के ऊँचे नारे लगाते हैं, परन्तु जब आपको कोई ठोस काम करनेके लिए कहा जाता है, आप उससे इन्कार कर देते हैं। मैं आपको खद्दर पहननेके लिए बार-बार कहता रहा हूँ परन्तु आप वह नहीं पहनते। उन्होंने उनसे कहा कि आप फिजूलखर्ची घटाकर अपना सारा पैसा बचायें और वह पैसा मुझे दे दें।

इसके बाद महात्माजीने स्वयंसेवकोंसे कहा कि वे सभामें बैठे हुए पुरुषों और महिलाओंके बीच घूमें और कोषके लिए पैसा इकट्ठा करें . . .।

महात्माजीने अपनी अपीलकी समुचित प्रतिक्रियाके लिए सबको बधाई दी। उन्होंने कहा कि आपने अपने कामसे मेरी आशाएँ पूरी कर दी हैं। मैंने जो-कुछ इकट्ठा किया है उससे मुझे सन्तोष है।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दुस्तान टाइम्स, २६-१२-१९२९

३२८. भाषण: अखिल भारतीय दलितवर्ग सम्मेलनमें

२४ दिसम्बर, १९२९

महात्मा गांधीने दलितवर्ग सम्मेलनमें अपना अध्यक्षीय भाषण देते हुए कहा:

किसी अनजान आदमीपर बम फेंककर कभी स्वतन्त्रता नहीं प्राप्त की जा सकती। मैं इसे अत्यन्त निन्दनीय अपराध मानता हूँ।

उन्होंने कहा कि संसारकी कोई भी दूसरी शक्ति स्वतन्त्रता प्राप्तिमें बाधा नहीं बन सकती; हमारी अपनी कमजोरियाँ ही हमारी सबसे बड़ी शत्रु हैं। आगे बोलते हुए महात्माजीने अछूतोंसे अनुरोध किया कि वे अपनी सारी सामाजिक बुराइयाँ दूर कर दें, शराब पीना और मरे हुए जानवरोंका मांस खाना बन्द कर दें। उन्होंने सफाई और शिक्षा आदिपर जोर दिया। उन्होंने उनके पूर्व पुरुष और 'रामायण'के रचयिता ऋषि वाल्मीकिको श्रद्धांजलि अर्पित की और अछूतोंसे उनका अनुकरण करनेका आग्रह किया।

मन्दिरोंमें प्रवेशके प्रश्नका जिक्र करते हुए महात्मा गांधीने कहा कि बल प्रयोग करके मन्दिरोंमें दाखिल होना सत्याग्रह नहीं है। आपको सत्याग्रह मुझसे सीखना चाहिए। उन्होंने पाँच साल पहले दक्षिण भारतमें वाइकोम सत्याग्रहका[1] दृष्टान्त दिया। उन्होंने कहा कि बल-प्रयोग चाहे वह अंग्रेजों द्वारा किया जाये या भारतीयों द्वारा, अपराध है। आपको मन्दिर प्रवेशके लिए उच्च जातिके लोगोंको बाध्य नहीं करना चाहिए। आप बल-प्रयोग द्वारा ईश्वरके दर्शन नहीं कर सकते। ईश्वर आपके हृदयमें विद्यमान है, मन्दिरों और मस्जिदोंमें नहीं। उन्होंने अछूतोंको सलाह दी कि वे धैर्यसे कष्टोंको सहन करें और प्रार्थना करें कि उच्च-जातिके लोगोंकी क्रूरता समाप्त हो जाये।

भाषण जारी रखते हुए महात्मा गांधीने कहा कि भारतीयोंके एक बड़े वर्गने पण्डित मालवीय और सेठ जमनालाल बजाजके पथ-प्रदर्शनमें कांग्रेसकी अछूत-विरोधी समितिके नेतृत्वमें छुआछूतको समाप्त करनेका प्रण किया है। यदि वे छुआछूत दूर नहीं कर सकते और हिन्दू-मुसलमानोंमें सच्ची एकता नहीं ला सकते तो जन-साधारणके लिए स्वराज्य प्राप्त नहीं किया जा सकता। भाषण समाप्त करते हुए उन्होंने घोषणा की:

स्वराजकी कुंजी लन्दनमें या वाइसरायके पास नहीं है परन्तु वह भारतीयोंके अपने हाथमें है।

इसके बाद उन्होंने लालाजी स्मारक कोषके लिए अपील की।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दुस्तान टाइम्स, २७-१२-१९२९

१. देखिए खण्ड २६।

३२९. टिप्पणियाँ

दोषपूर्ण निर्णय

श्रीयुत च० राजगोपालाचारी द्वारा इकट्ठे किये हुए आँकड़ोंके अनुसार मद्रासने मद्य और मादक-द्रव्योंपर जो खर्च किया वह १६,८३,००,००० रु० अर्थात् करीब सत्तरह करोड़ रुपयेका बैठता है। इससे जो राजस्व प्राप्त हुआ वह ५,१०,००,००० रु० अर्थात् पाँच करोड़से कुछ ऊपर था। इसलिए कुल अपव्यय, हम कह सकते हैं, ११¾ करोड़ था। यह भू-राजस्वकी अपेक्षा चार करोड़से भी कुछ ज्यादा है। ये आँकड़े चौंका देनेवाले हैं और सुधारकको सोचनेके लिए बाध्य कर देते हैं। परन्तु इससे भी बुरा लक्षण तो अभी सामने आना है। श्री राजगोपालाचारीकी बारीक दृष्टिने यह भी लक्षित किया है कि शराबपर किया जानेवाला खर्च और आबकारी कानूनोंके प्रति किये जानेवाले अपराध भी हर साल बढ़ते रहते हैं। सूचना दी गई है कि मद्रास सरकार इन आँकड़ोंसे इस दोषपूर्ण निष्कर्षपर पहुँची है :

> **प्रेसीडेंसीके सब भागोंमें आबकारी कानूनोंके खिलाफ अपराधोंकी लगातार वृद्धि होती दिखाई दे रही है; उसकी वजहसे वैध शराबके वितरणकी कटौतीकी जो कार्रवाई की जा रही है, उसका तत्काल ही रोक देना आवश्यक है, ताकि इसका परिणाम सर्वसाधारणकी नैतिकताके लिए वर्तमान स्थितिसे भी ज्यादा गम्भीर साबित न हो।**

यह वैसे ही है जैसी यह कहना कि चूँकि चोरीके अपराधमें वृद्धि हो रही है इसलिए चोरीके विरुद्ध कानूनोंको उत्तरोत्तर ढीला करते चले जाना चाहिए। यह निर्णय इस कल्पनापर आधारित है कि मादक पेयोंका पिया जाना चोरीकी तरह कोई बीमारी या बुराई नहीं है। तथ्य जबकि यह है कि शराब पीनेकी आदत चोरी तथा दूसरे बहुतसे अपराधोंकी जननी प्रमाणित हुई है। बढ़ते हुए अपराधसे उपयुक्त निर्णय तो यह निकाला जाना चाहिए कि शराबकी दुकानोंका होना गरीब लोगोंके लिए एक नाग-फाँस ही है। और इसलिए सही तरीका यह है कि नुकसानकी परवाह किये बिना पूर्ण मद्य-निषेधकी तत्काल घोषणा कर दी जाये। मद्य-निषेधके कानूनोंके खिलाफ अपराध तो तब भी होंगे; जैसे कि चोरी आदि रोकनेके लिए बनाये गये कानूनोंके खिलाफ अपराध होते रहते हैं और हमेशा होते रहे हैं। जैसे कि किसीको चोरीका अनुमतिपत्र नहीं दिया जाता वैसे ही शराब पीनेका अनुमतिपत्र भी नहीं मिलना चाहिए। सीधा-सादा आदमी तो केवल इसी निष्कर्षपर पहुँच सकता है और यही सीधा-सादा तर्क भी है। जो सरकार खर्चीला विदेशी प्रशासन चलानेके लिए किसी न किसी तरह राजस्व चाहती है, अपने दूषित उद्देश्यके अनुकूल तर्क गढ़ लेती है।

'गांधीजीके साथ सात माह'

यह श्री कृष्णदास द्वारा निकाले गये दो खण्डोंमें प्रकाशित ग्रन्थका शीर्षक है। असहयोग आन्दोलनके दौरान जब मैं असम और दूसरे इलाकोंका दौरा कर रहा था,[1] उन हलचलके दिनोंमें वे योग्य सहायकके रूपमें मेरे साथ थे। उन्होंने उन दिनोंकी घटनाओंका विवरण अपनी डायरीमें मुख्य रूपसे अपने गुरु श्रीयुत सतीशचन्द्र मुकर्जीके लिए लिखा था। महादेवकी पण्डित मोतीलालजीको जरूरत पड़ जाने पर उन्होंने कुछ दिनोंके लिए कृष्णदासको मेरे पास भेज दिया था। इन खण्डोंमें मुख्य रूपसे उस डायरीके उद्धरण हैं और कुछ समय पूर्व प्रकाशित होकर वे जनताके सामने हैं। सतीश बाबूसे कुछ विदेशी मित्रोंने खण्डोंमें वर्णित तथ्योंकी प्रामाणिकताके बारेमें कुछ पूछताछ की है और सतीश बाबूने मुझसे पूछा है कि क्या मैं उन ग्रन्थोंको पढ़कर उन्हें प्रामाणिक कह सकता हूँ? कृष्णदास स्वयं अपने ग्रन्थोंके बारेमें मेरी राय जाननेके लिए उत्सुक थे। मैंने वे ग्रन्थ पढ़े हैं। मुझे लगता है कि तथ्य सही रूपमें सामने रखे गये हैं और उनका सांगोपांग विवरण दिया गया है। तथ्योंसे निकाले गये या तथ्योंपर आधारित निर्णयों और मतोंके बारेमें मैं कुछ नहीं कह सकता। हम जानते हैं कि विभिन्न व्यक्ति एक ही प्रकारके तथ्योंके अध्ययनसे विभिन्न निष्कर्षों पर पहुँचते हैं। हमें यह भी मालूम है कि एक ही व्यक्ति कालान्तरमें और अनुभवोंके अधिक परिपक्व हो जानेपर उन्हीं तथ्योंके आधारपर विपरीत निर्णय निकालता है। जहाँतक इन ग्रन्थोंका सम्बन्ध है कलम कृष्णदासकी है और उसकी दिशा-निर्देश करनेवाली प्रतिभा उनके गुरु और पथ-प्रदर्शक सतीशचन्द्र मुकर्जीकी है। कृष्णदास द्वारा दिया गया सात माहका यह विवरण हमें केवल इन ग्रन्थोंमें ही प्राप्त है। प्रथम ग्रन्थ एस० गणेशन, ट्रिप्लिकेन, मद्रास और दूसरा बाबूराम विनोद सिन्हा, गांधी कुटीर, डिगवाड़ा (बिहार) द्वारा प्रकाशित किया गया है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २६-१२-१९२९

३३०. निश्चित परामर्श

संयुक्त प्रान्तके दौरेमें प्रयागके विद्यार्थियोंकी ओरसे मुझे नीचे लिखा पत्र मिला था:[2]

यद्यपि विद्यार्थियोंकी एक सभामें मैं इस विषयकी चर्चा कर चुका हूँ और इन स्तम्भों द्वारा विद्यार्थियोंके लिए एक निश्चित कार्यक्रम प्रस्तुत कर चुका हूँ, तो भी पहले बताई हुई योजनाको यहाँ फिरसे अधिक दृढ़तापूर्वक पेश कर देना अनुचित न होगा।

१. १९२१ में, देखिए खण्ड २१।

२. पत्र यहाँ नहीं दिया जा रहा है। इसमें शिकायत की गई थी कि गांधीजीका ७-११-१९२९ का लेख 'नवयुवक क्या करें?', अस्पष्ट था। विद्यार्थी यह चाहते थे कि उनके लिए स्पष्ट रूपसे कोई निश्चित परामर्श दिया जाना चाहिए।

पत्र-लेखक जानना चाहते हैं कि पढ़ाई पूरी करनेके बाद वे क्या कर सकते हैं। मैं उनसे कहना चाहता हूँ कि बड़ी उम्रके विद्यार्थी, यानी कालेजोंके तमाम विद्यार्थियोंको पढ़ाई करते हुए भी ग्राम-सेवाका काम शुरू कर देना चाहिए। कुछ समय ऐसा काम करनेवालोंके लिए मैं नीचे एक योजना देता हूँ।

विद्यार्थियोंको अपनी सारी छुट्टियाँ ग्राम-सेवामें लगानी चाहिए। इस बातको ध्यानमें रखकर लकीरके-फकीर बननेके बदले वे अपने मदरसों या कालेजोंके पासके गाँवोंमें चले जायें और गाँववालोंकी हालतका अध्ययन करके उनके साथ मेलजोल करें। इस तरह वे गाँववालोंके निकट सम्पर्कमें आते चले जायेंगे, और बादमें जब कभी वे वहाँ जाकर रहने लगेंगे तो लोग किसी अजनबीकी तरह उनपर सन्देह करनेके बजाय एक मित्रकी हैसियतसे उनका स्वागत करेंगे। लम्बी छुट्टियोंके दिनोंमें विद्यार्थीगण गाँवोंमें जाकर रहें, प्रौढ़ोंके लिए मदरसे या कक्षाएँ खोलें, गाँववालोंको सफाईके नियम सिखायें और उनकी छोटी-मोटी बीमारियोंका इलाज करें। वे उनमें चरखेको दाखिल करें और उन्हें अपने अवकाशके समयके एक-एक मिनटका अच्छी तरह उपयोग करना सिखायें। इस कामके लिए विद्यार्थियों और शिक्षकोंको अपने छुट्टियोंके समयके सदुपयोग सम्बन्धी विचारोंको बदलना पड़ेगा। छुट्टीके दिनोंमें विचारहीन शिक्षक अकसर विद्यार्थियोंसे पाठ याद कर लानेको कहते हैं। मेरी रायमें यह एक बहुत ही बुरा चलन है। छुट्टीके दिनोंमें तो विद्यार्थियोंके दिमाग पढ़ाईकी आम दिनचर्यासे मुक्त रहने चाहिए, और स्वावलम्बन तथा मौलिक विकासके लिए स्वतन्त्र रहने चाहिए। जिस ग्राम-सेवाका मैंने जिक्र किया है, वह मनोविनोद और नये-नये अनुभव प्राप्त करनेका एक अच्छा साधन है। जाहिर है कि इस तरहकी तैयारी पढ़ाई खत्म करते ही जी-जानसे ग्राम-सेवामें लग जानेके लिए बहुत ही अच्छी सिद्ध होगी।

इसके बाद ग्राम-सेवाकी पूरी-पूरी योजनाका विस्तारसे वर्णन करनेकी कोई जरूरत नहीं बचती। छुट्टियोंमें जो कुछ किया था, उसको अब स्थायी रूप-भर देना रह जाता है। गाँववाले भी हर तरह इस कामकी सहायताके लिए तैयार मिलेंगे। गाँवोंमें रहकर हमें ग्राम्य जीवनके हर पहलूपर विचार और अमल करना है — क्या आर्थिक, क्या आरोग्य सम्बन्धी, क्या सामाजिक और क्या राजनैतिक। इसमें शक नहीं कि अधिकांश लोगोंके लिए चरखा ही आर्थिक संकट निवारणका तात्कालिक साधन है। चरखेके कारण गाँववालोंकी आमदनी तत्काल तो बढ़ती ही है, वे अन्य बुराइयोंमें पड़नेसे भी बच जाते हैं। आरोग्य सम्बन्धी बातोंमें गन्दगी और रोग भी शामिल हैं। इस बारेमें विद्यार्थियोंसे आशा की जाती है कि वे अपने हाथोंसे काम करेंगे और मैले तथा कूड़े-करकटकी खाद बनानेके लिए उसे गड्ढोंमें भरेंगे, कुओं और तालाबोंको साफ रखनेकी कोशिश करेंगे, नये-नये बाँध बनायेंगे, गन्दगी दूर करेंगे और इस तरह गाँवोंको साफ रखकर उन्हें अधिक रहने योग्य बनायेंगे। ग्राम-सेवकको सामाजिक समस्याएँ भी हल करनी होंगी और बड़ी नम्रताके साथ लोगोंको इस बातके लिए राजी करना होगा कि वे बुरे रीति-रिवाजों और बुरी आदतोंको छोड़ दें जैसे अस्पृश्यता, बाल-विवाह, बेजोड़-विवाह, शराबखोरी, नशाबाजी

और जगह-जगह फैले हुए हर तरहके वहम, भ्रम या अन्ध-विश्वास। आखिरी बात राजनैतिक पहलूकी है। इस सम्बन्धमें ग्राम-सेवक गाँववालोंकी राजनैतिक शिकायतोंका अध्ययन करेगा और उन्हें इस बातमें स्वतन्त्रता, स्वावलम्बन और आत्मोद्धारका महत्व सिखायेगा। मेरी रायमें इतना करनेसे प्रौढ़-शिक्षाका काम पूरा हो जाता है। लेकिन ग्राम-सेवकका काम यहाँ समाप्त नहीं होता। उसे छोटे बच्चोंकी शिक्षा-दीक्षा और उनकी सुरक्षाका भार अपने ऊपर लेना होगा और बड़ोंके लिए रात्रिशालाएँ चलानी होंगी। साक्षरताकी यह शिक्षा पूरे पाठ्यक्रमका एक अंग-मात्र होगी और ऊपर जिस बड़े ध्येयका उल्लेख किया गया है, उसकी पूर्तिका एक साधन भर होगी।

मेरा दावा है कि इस सेवाके लिए हृदयकी उदारता और असंदिग्ध चारित्र्य, ये दो जरूरी चीजें हैं। अगर ये दो गुण हों तो और सब गुण अपने-आप मनुष्यमें आ जाते हैं।

आखिरी सवाल दाल-रोटीका है। मजदूरी करनेवालेको उसकी मेहनतके मुताबिक मजदूरी मिलनी चाहिए। कांग्रेसके भावी अध्यक्ष राष्ट्रीय सेवा-संघका संघटन[1] कर रहे हैं। अखिल भारतीय चरखा संघ एक उन्नतिशील और स्थायी संस्था है। उसके पास सच्चरित्र नवयुवकोंके लिए सेवाका अनन्त क्षेत्र मौजूद है। वहाँ जीवन-निर्वाह लायक वेतन अवश्य मिलता है। इससे ज्यादा रकम वह दे नहीं सकता। स्वार्थ साधन और देशकी सेवा दोनों एक साथ नहीं हो सकते। देशकी सेवाके आगे अपना स्वार्थ बहुत ही सीमित हो सकता है; और इसलिए हमारे गरीब देशके पास जो साधन हैं, उनसे अधिक किसी जीविकाकी गुंजाइश नहीं है। गाँवोंकी सेवा करना स्वराज्य कायम करना है। और तो सब सपनेकी बातें हैं।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २६-१२-१९२९

३३१. यह क्रूर प्रथा

श्री गंगाधरराव देशपाण्डेने कर्नाटकमें प्रचलित पशु-बलिकी-प्रथा पर, जिसका विवरण इन स्तम्भोंमें[2] दिया जा चुका है, निम्नलिखित बातें लिखी हैं:[3]

मेरी तीव्र कामना है कि जनमत इतनी जल्दी जाग्रत हो जाये कि यह अमानवीय कृत्य पूरी तरह और अभी समाप्त हो जाये। हम लोग जो स्वतन्त्रताका महत्त्व मानते हैं, अपने साथी प्राणियोंको इससे किस प्रकार वंचित रख सकते हैं और उन पर ऐसा अत्याचार, जिसके बारेमें सोचा भी नहीं जा सकता, किस तरह कर सकते हैं और वह भी धर्मके नामपर!

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २६-१२-१९२९

१. देखिए "संयुक्त प्रान्त राष्ट्र सेवा-संघ", १२-१२-१९२९।

२. देखिए "धर्मके नामपर", २१-११.१९२९।

३. पत्र यहाँ नहीं दिया जा रहा है।

३३२. गोआ-निवासी

गोआके मुख-पत्र 'वॉयस'के सम्पादक लिखते हैं:[1]

यदि हममें कुछ भी योग्यता है तो भावी भारत ब्रिटिश नहीं भारतीय ही होगा। मैं चाहता हूँ कि 'वॉयस'के सम्पादक महोदय इतना समझ सकने योग्य कल्पनाशील होते। 'ब्रिटिश भारत' तो परस्पर विरोधी शब्दोंको साथ रखना है। भारत उस देशका नाम है जहाँ भारतीय रहते हैं। यदि हममें केवल यह गुलामीकी आदत, जिसपर हमने कभी आपत्ति नहीं की, न हो तो हम ब्रिटिश या भारतके साथ ऐसे कोई दूसरे विशेषणका प्रयोग अस्वीकार कर दें। भावी भारत स्वराज्यके अधीन होगा, ब्रिटेनके अधीन नहीं। स्वराज्यके अधीन भारतमें गोआ-निवासियोंको भारतीय कहलानेमें गर्वका अनुभव होगा। जब वे भारतमें पैदा हुए हैं तो उन्हें अपने आपको अब भी गोआ-निवासी क्यों कहना चाहिए? भारत सदा ही ब्रिटिश, पुर्तगाली और फ्रांसीसी आदिमें बँटा हुआ नहीं रहेगा; इसके भाग अलग-अलग सरकारी पद्धतियोंके अधीन भले रहें, देश एक ही होगा। स्वतन्त्र भारत किसी भी दशामें भूमिके किसी पुत्रको स्वतन्त्रतासे वंचित नहीं रखेगा। जब मैं देखता हूँ कि लोग इस बातकी चिन्ता करते हैं कि स्वतन्त्र भारतमें उनका भविष्य कैसा होगा तो दुःख भी होता है और आश्चर्य भी। मेरे लिए तो वह भारत स्वतन्त्र भारत ही नहीं है, जो केवल अपनी कृत्रिम सीमामें ही नहीं, बल्कि अपनी स्वाभाविक सीमामें भी पैदा हुए छोटेसे-छोटे व्यक्तिको स्वतन्त्रताकी गारंटी नहीं देता। हमारा भय हमारी चिन्तन-शक्तिको समाप्त कर देता है, अन्यथा हमें एकदम समझ जाना चाहिए कि स्वतन्त्रताका अर्थ एक ऐसी स्थिति है जो हरएक ईमानदार पुरुष और स्त्रीके लिए वर्तमान दशासे किसी न किसी तरह कुछ बेहतर ही होगी। स्वतन्त्रताके आगमनसे भय होना चाहिए शोषक, पैसा लूटनेवाले, समुद्री डाकू और इसी तरहके दूसरे लोगोंको।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २६-१२-१९२९

१. पत्र यहाँ नहीं दिया जा रहा है। पत्र-लेखकने भावी ब्रिटिश भारतमें गोआ-निवासियोंके दर्जेके बारेमें पूछताछ की थी।

३३३. राष्ट्रभाषा

हिन्दी ही राष्ट्रभाषा हो सकती है, ऐसा यद्यपि सब लोग बुद्धिसे कबूल करते हैं, तो भी जिन सूबोंमें हिन्दी मातृभाषा है वहाँ हिन्दी भाषाके प्रति जैसा प्रेम नवयुवकोंका होना चाहिए वैसा देखनेमें नहीं आता है। हिन्दीमें जो कुछ साहित्य निकलता है वह प्रायः अनुवाद है। यदि कुछ मौलिक वस्तु निकलती है तो वह प्रभावरहित देखी जाती है। यह कह सकते हैं कि रवीन्द्रनाथ हर जगह पैदा नहीं होते हैं, तुलसीदास करोड़ोंमें से एक ही होते हैं, परन्तु तुलसीदास, रवीन्द्रनाथ इत्यादिके पैदा होनेके लिए क्षेत्र हम सब तैयार कर सकते हैं। नवयुवकोंका सच्चा उत्साह ही वह क्षेत्र है। उनका प्रेम जब हिन्दी भाषाके प्रति बढ़ेगा तब हिन्दीमय वायुमण्डल पैदा हो जायेगा और उसमें से कुछ कवि भी निकल सकते हैं।

आज तो हिन्दी जिनकी मातृभाषा है उन नवयुवकोंकी बोलीमें न प्रेम देखनेमें आता है, न प्रयत्न। व्याकरणादिके जो दोष संयुक्त प्रान्त, बिहारके नवयुवकोंकी हिन्दीमें आते हैं, कभी बंगला और मराठीमें देखनेमें नहीं आते। राष्ट्रभाषाका प्रचार मद्रास आदि प्रान्तोंमें होता है, परन्तु मेरा अनुभव है कि हिन्दी शिक्षक कष्टसे ही मिलते हैं। उनमें भी तेजस्विता नहीं होती, त्यागशक्ति बहुत कम होती है। हिन्दी प्रचारके ही लिए सर्वार्पण करनेवाले अनेक नवयुवक होने चाहिए; परन्तु ऐसे यदि कोई हैं तो मैं उनको नहीं जानता हूँ। ऐसे अवश्य मिल सकेंगे जो आजीविका-मात्र लेकर सेवा करनेके लिए तत्पर होंगे, लेकिन उनके पास हिन्दी-भाषाकी शिक्षा देनेकी सामग्री नहीं होती।

नवयुवक चाहें तो इस त्रुटिको मिटा सकते हैं। एक नवयुवक भी इस कार्यको आरम्भ करेगा तो काम आगे बढ़ सकता है। जब किसी क्षेत्रमें दुर्दशा प्रतीत होती है तब निराश होकर बैठ रहनेसे दुर्दशा बढ़ती है। कर्त्तव्यपरायण मनुष्यका धर्म है कि दुर्दशाको देखकर उसके निवारणकी चेष्टा शीघ्र करे, रास्तेमें रुकावटोंका खयाल करके बिना कुछ किए न रहे।

प्रत्येक पाठशालामें हिन्दी भाषोत्तेजक संघ बनना चाहिए। ऐसे संघका कर्त्तव्य प्रत्येक क्षेत्रमें हिन्दीका उपयोग बढ़ाना, पारिभाषिक शब्दोंका शोध करना, विदेशी भाषाका उपयोग राजनीति इत्यादिमें कभी न करना, गूढ़ ग्रन्थोंका गहरा अध्ययन करना, जहाँ हिन्दी-शिक्षककी आवश्यकता देखी जाये वहाँ सहायता देना, बिना शुल्क हिन्दी-शिक्षक स्वयंसेवक तैयार करना, इत्यादि हो सकता है। प्रत्येक बड़ी पाठशालामें एक-एक नवयुवकके चित्तमें ऐसी लगन पैदा हो जाये तो वह बैठा नहीं रहेगा, अपने आप संघ बन जायेगा और अपने सहपाठीको उसमें प्रवेश करनेका निमन्त्रण देगा। नवयुवकोंमें आज जो जागृति आई है उसको स्थायी बनानेका तरीका यही है कि उनका प्रत्येक क्षण किसी न किसी सेवाकार्यमें ही व्यतीत हो।

खयाल रखना चाहिए कि इस लेखमें हिन्दीका अर्थ हिन्दुस्तानी भी है। मेरी दृष्टिके सामने वह हिन्दी नहीं है जिसमेंसे इरादतन फारसी या अरबी शब्दोंका त्याग किया गया हो।

हिन्दी नवजीवन, २६-१२-१९२९

३३४. लाहौर कांग्रेसके प्रस्तावोंका मसविदा – २

लाहौर
२६ दिसम्बर, १९२९[1]

'फ्री प्रेस ऑफ इंडिया' के विशेष संवाददाताके अनुसार विश्वस्त सूत्रसे पता चला है कि निम्नलिखित प्रस्ताव विचारके लिए कांग्रेस कार्यकारिणी समितिके सदस्योंके बीच घुमाये गये हैं। कहा जाता है कि पण्डित मोतीलाल और अन्य नेताओंसे सलाह करके महात्माजीने इन प्रस्तावोंका मसविदा तैयार किया है।

१. यह कांग्रेस वाइसरायकी गाड़ीपर बम फेंके जानेके हिंसात्मक आचरण पर दुःख प्रकट करती है और हिंसात्मक कार्य करनेमें विश्वास रखनेवालोंको चेतावनी देती है कि इस तरहका कार्य न केवल कांग्रेसके सिद्धान्तोंके खिलाफ ही है बल्कि इसके परिणामस्वरूप राष्ट्रीय हितको हानि भी पहुँचती है। यह कांग्रेस राष्ट्रको और परमश्रेष्ठ वाइसराय, लेडी इर्विन और उनके दलको उस अवसरपर सौभाग्यसे और बाल-बाल बच जानेपर बधाई देती है।

२. यह कांग्रेस औपनिवेशिक स्वराज्यसे सम्बन्धित ३१ अक्तूबरकी वाइसरायकी घोषणाके बारेमें कांग्रेसियों सहित, [विभिन्न] दलोंके नेताओं द्वारा हस्ताक्षर किये हुए घोषणापत्रके बारेमें कार्य-समितिकी कार्यवाहीका समर्थन करती हुई और स्वराज्य प्राप्तिके लिए राष्ट्रीय आन्दोलनके शान्तिपूर्ण समझौतेके प्रति किये गये परमश्रेष्ठ वाइसरायके प्रयत्नोंकी सराहना करती हुई और वाइसराय तथा पण्डित मोतीलाल नेहरू और अन्य नेताओंके बीच हुई मुलाकातके परिणामपर विचार करके, यह राय जाहिर करती है कि वर्तमान दशामें प्रस्तावित गोलमेज परिषद्में प्रतिनिधित्व करके कांग्रेसको कुछ लाभ नहीं होगा और वह पिछले साल कलकत्ता कांग्रेसमें पारित प्रस्तावके अनुसार घोषणा करती है कि कांग्रेसके सिद्धान्तमें स्वराज्यका अर्थ पूर्ण स्वतन्त्रता होगा; और इसलिए आगे यह घोषणा भी करती है कि औपनिवेशिक स्वराज्यकी नेहरू योजना निरर्थक हो चुकी है और अब जबकि साम्प्रदायिक प्रश्न कांग्रेसके सीमा-क्षेत्रसे बाहर हो गया है, वह आशा करती है कि कांग्रेसके सारे दल अपना पूरा ध्यान पूर्ण स्वतन्त्रताकी प्राप्तिपर लगायेंगे। वह यह आशा भी करती है कि वे लोग, जो नेहरू रिपोर्टमें सुझाये गये साम्प्रदायिक समस्याके अस्थायी समाधानके कारण कांग्रेसमें शामिल नहीं हो रहे थे या जिन्हें उस कारण इससे दूर रहनेकी प्रेरणा मिली थी, वे अब कांग्रेसमें दाखिल या फिरसे दाखिल हो जायेंगे और सामान्य उद्देश्यको पूरा करनेमें उत्साहसे

१. रिपोर्ट की तिथि पंक्तिमें "लाहौर दिसम्बर २६, १९२९", था।

जुट जायेंगे। यह कांग्रेस स्वतन्त्रताके आन्दोलनके संगठनके प्रति प्रारम्भिक कदमके रूपमें और कांग्रेस नीतिको परिवर्त्तित सिद्धान्तके अनुकूल बनानेके लिए केन्द्रीय और प्रान्तीय विधान सभाओंके पूर्ण बहिष्कारकी घोषणा करती है और कांग्रेसियोंसे भावी चुनावोंमें प्रत्यक्ष या परोक्ष रूपमें भाग न लेने और विधान सभाओंके वर्तमान सदस्योंसे त्यागपत्र देनेका अनुरोध करती है और राष्ट्रसे कांग्रेसके रचनात्मक कार्यक्रमोंपर ध्यान केन्द्रित करनेका अनुरोध करती है और अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीको अधिकार देती है कि वह जब भी ठीक समझे, सविनय अवज्ञाका कार्यक्रम चालू कर दे, जिसमें आवश्यक सावधानीके साथ कुछ चुने हुए या सभी क्षेत्रोंमें करोंकी अदायगी न करनेका कार्यक्रम भी शामिल हो सकता है।

३. यह कांग्रेस विदेशी वस्त्र बहिष्कार समिति, छुआछूत विरोधी समिति और मद्य-निषेध समितिको उन्हें सौंपे गये कार्यक्रमको पूरे जोरसे चलानेके लिए बधाई देती है, परन्तु इस बातपर खेद प्रकट करती है कि इस सम्बन्धमें राष्ट्रकी प्रतिक्रिया उतनी पर्याप्त नहीं रही जितनेकी आशा करनेका कांग्रेसको अधिकार था। इन समितियों और अखिल भारतीय चरखा संघको जो अनुभव हुआ है उससे पता चलता है कि विशेष कार्यके लिए बनाये गये स्वायत्त संगठनों द्वारा बहुत ज्यादा कारगर ढंगसे काम हो सकता है और इसलिए यह कांग्रेस पूर्वोक्त समितियोंको स्थायी घोषित करती है। ये समितियाँ पूर्ण-स्वायत्त होंगी; इनमें कांग्रेसका प्रभुत्व या हस्तक्षेप नहीं होगा; इन्हें अपनी संख्यामें वृद्धि करने, तत्सम्बन्धी संविधान बनाने और चन्दा उगाहनेका पूरा अधिकार होगा। इसमें शर्त यह होगी कि कांग्रेसके पास इनमें से किसी भी संस्थाको, जबकि कांग्रेसको ऐसा लगे कि वह राष्ट्रीय हितके खिलाफ काम कर रही है, त्याग देनेका या अपनेसे असम्बद्ध कर देनेका पूरा अधिकार रहेगा।

४. इसलिए कि कांग्रेस तेजीसे गतिशील और ज्यादा कुशल संगठन बन जाये यह आवश्यक हो गया है कि इसके प्रदर्शनकारी कार्योंको और इसके अमली तथा कामकाजी कार्यकलापोंको अलग-अलग कर दिया जाये और इसे अधिक सुसम्बद्ध संस्था बनाया जाये, कांग्रेस यह निश्चय प्रकट करती है कि प्रतिनिधियोंकी संख्या १०००से कम और अ० भा० कां० कमेटीकी १०० से कम कर दी जाये और अ० भा० कां० कमेटीको अधिकार देती है कि वह संविधानमें आवश्यक परिवर्तन समाविष्ट कर ले और आवश्यक पुनर्विभाजन कर ले।

५. चूँकि कांग्रेससे सम्बन्धित वार्षिक प्रदर्शनी मुख्य रूपसे और उत्तरोत्तर शैक्षणिक ढंगकी और खद्दर द्वारा विदेशी वस्त्रका बहिष्कार करनेके कार्यक्रमको बढ़ावा देनेवाली होनी चाहिए, यह कांग्रेस . . . की बनी हुई एक स्थायी समिति नियुक्त करती है और उसे या दूसरी सूरतमें अ० भा० च० संघको अधिकार देती है कि वह सारी प्रदर्शनीकी व्यवस्था करने और इसे चलानेके लिए स्थानीय लोगोंको नियुक्त कर ले तथा इस कार्यके लिए चन्दा उगाह ले।

६. चूँकि धारणा यह है कि कांग्रेस गरीब लोगोंकी प्रतिनिधि संस्था है और चूँकि दिसम्बरके अन्तमें कांग्रेसका आयोजन करनेसे गरीब लोगोंपर उन्हें अपने लिये

अतिरिक्त वस्त्र जुटानेमें बड़ा भारी खर्च आ पड़ेगा, और वैसे भी वह समय उनके लिए असुविधाजनक रहेगा, कांग्रेस सम्मेलनका समय सम्बन्धित प्रान्तके लिए जो सुविधाजनक हो फरवरी या उसके बादकी किसी तारीखके लिये बदला जा रहा है।

७. यह कांग्रेस अध्यक्ष द्वारा प्रचारित प्रान्तीय राष्ट्रसेवाओंके संगठनके विचारका तहेदिलसे समर्थन करती है और सब प्रान्तोंको सलाह देती है कि ऐसी सेवाओंका समारम्भ किया जाये और उस उद्देश्यके लिए स्थायी समितियाँ नियुक्त करती है, जिन्हें विदेशी वस्त्र बहिष्कार समिति और दूसरी समितियोंसे सम्बन्धित प्रस्ताव ३ में बताये गये तरीकेसे स्वायत्त अधिकार प्राप्त होंगे।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दुस्तान टाइम्स, २८-१२-१९२९

३३५. पत्र : रमणीकलाल मोदीको

लाहौर
२६ दिसम्बर, १९२९

चि० रमणीकलाल,

तुम्हारे पत्रोंका उत्तर देनेके लिए मैंने उन्हें सँभालकर रख छोड़ा था। अब कुछ फुरसत मिली है इसलिए यह पत्र लिखवा रहा हूँ। बुधाभाईके मकानके उपयोगके बारेमें मैंने जो सुझाव दिया था, उसके विरोधमें तुम्हारी दलील मुझे पसन्द आई और वह ठीक भी है। चन्द्रकान्ताके माता-पिताको वालजीभाईके निकट पड़ोसमें रखकर तुमने ठीक ही किया है।

हमारा आदर्श तो यही है कि सेवा-कार्यके लिए दम्पती निर्विकार भावसे, कामके सुभीतेके खयालसे साथ-साथ या अलग-अलग रहकर उसी प्रकार अपना जीवन बितायें जिस प्रकार कि दो मित्र बिताते हैं। किन्तु जबतक इस रूपमें सम्बन्ध निभानेका अभ्यास न हो जाये और वे एक-दूसरेके प्रति बहुत ही मुश्किलसे विकारहीन रह पाते हों तो वैसी स्थितिमें उनका अलग-अलग रहना ही उचित होगा और यही उनका कर्त्तव्य है। मुझे लगता है कि इतनेमें तुम्हारे सभी प्रश्नोंका उत्तर आ गया है। किन्तु यदि तुम्हें लगे कि कोई बात छूट गई है तो मुझे लिखना।

भणसालीका विचार दोषपूर्ण तो लगता ही है; किन्तु हम उसे सहन करते रहते हैं क्योंकि वे भले आदमी हैं, निश्छल हैं और जिस बातमें विश्वास करते हैं वही कहते हैं। वे हमारे सहयोगी रहे हैं और आजकल व्याधिग्रस्त भी हैं। इसलिए हम जहाँतक उन्हें निभा सकें, निभायें। बुधाभाईको मैंने कोई वचन नहीं दिया है किन्तु बुधाभाईको आश्रमके भोजनालयमें खींच लानेवाला मैं भी हूँ। उन्होंने जब यह कहा कि मैंने तो एक वर्षतक ही आश्रमके भोजनालयमें खानेकी प्रतिज्ञा की थी तो उनकी यह बात मुझे बहुत अच्छी लगी और मैंने उनसे कहा कि यह बहुत उत्तम विचार

है। मैं इसी हदतक उनसे वचनबद्ध हूँ, किन्तु मैं इसे कोई बन्धन नहीं मानता। मेरी सलाह मानते हुए इसी दिशामें यदि वे कुछ अधिक करें तो मैं उसे अच्छा मानूँगा। किन्तु इसका यह अर्थ नहीं लगाया जाना चाहिए कि मैं किसी प्रकारके वचनसे बँध गया हूँ। अतः तुम और प्रबन्ध समिति जो निश्चय करोगे उस पर मैं अमल करवाऊँगा। मेरे दृष्टिकोणके पक्षमें कारण यह है कि मैंने . . . भाई[1] और . . . बेन[2] को निर्दोष माना है तथा अब भी यही मानता हूँ। यदि मेरा विचार गलत हो तो भी उन्हें निर्दोष मानकर ही मुझे अपनी गलतीका पता चल सकता है। किन्तु यदि मेरे इस विचारका अन्य लोगोंपर अच्छा असर न पड़ा हो तो उन्हें जो उचित जान पड़े वही होना चाहिए; क्योंकि शक्की लोग किसीकी बातको स्वीकार नहीं कर सकते, यही नहीं, बल्कि वे उसके साथ उदारतापूर्ण व्यवहार भी नहीं कर सकते। किन्तु इससे एक अन्य प्रश्न उठता है कि यदि किसी व्यक्तिको मैंने निर्दोष माना हो और तुम या अन्य जो लोग मेरे विचारसे सहमत नहीं हो तो उन्हें मेरी बातका समर्थन नहीं करना चाहिए। उसका समर्थन करना गलत है, असत्यपूर्ण है। इस सम्बन्धमें अपने सर्वथा भिन्न विचारोंको छोड़कर मैं बहुमतके विचारके अनुसार कामकर सकता हूँ। मैंने पहले भी ऐसा ही किया है और यही हमारा कर्त्तव्य है। इसमें सिद्धान्तकी तो कोई बात ही नहीं है। यह तो अनुभव, पसन्द-नापसन्द या फिर विचारदोषकी बात है। और यदि अन्य सभी लोग उन्हें निर्दोष मानते हों तो पड़ोसीके नाते दोनोंको अपना लेना हमारा कर्त्तव्य हो जाता है। यदि तुम इस पूरी दलीलको न समझे होओ तो मुझसे पूछनेके लिए इसे नोट कर रखना।

यहाँ बहुत कड़ी सर्दी पड़ रही है। मैं तो मानता हूँ कि जो कुछ लोग यहाँ आये हैं यदि वे न आये होते तो अच्छा होता। जिन लोगोंका आना आवश्यक था उनके अतिरिक्त और किसीको नहीं आना चाहिए था।

आशा है कि मैं जैसा सोचता था उससे बहुत पहले वहाँ पहुँच जाऊँगा। कांग्रेसके बाद यहाँ रहनेकी बात आसानीसे टल गई है। अतः यदि मैं यहाँसे ३० तारीखको रवाना हो जाऊँ तो इसे कोई आश्चर्यकी बात मत मानना।

मेरे विचारसे महादेवके बारेमें कुछ करनेकी आवश्यकता नहीं। वह जिस तरह आजकल हमारे साथ रहता है उसी तरह रहेगा। मैं अब ऐसी व्यवस्था कर रहा हूँ ताकि वह आश्रममें ही रहे। यदि समय मिलेगा तो शेष फिर लिखूँगा।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च :]

पत्र लिखनेके बाद दुबारा नहीं पढ़ा।

गुजराती (जी० एन० ४१६९) की फोटो-नकलसे।

१ और २, नामोंको छोड़ दिया गया है।

३३६. भाषण : अ० भा० कां० कमेटीकी विषय समितिमें[1]

लाहौर
२७ दिसम्बर, १९२९

प्रस्तावका पहला हिस्सा दिल्ली घोषणापत्रसे[2] सम्बन्धित है और यह राजनीतिक आवश्यकता या समझदारी पर, आप इसे जो कुछ भी कहना चाहें, आधारित है। मैंने और पण्डित नेहरूने देशके लिए औपनिवेशिक स्वराज्य प्राप्त करनेकी कोशिश की और मैं यह जरूर स्वीकार करता हूँ कि यथा-सम्भव पूरी कोशिशोंके बावजूद हमें सफलता नहीं मिली। इस सम्बन्धमें मैं एक बात यह कहना चाहूँगा कि मेरी समझमें इस असफलताके लिए किसी तरह वाइसरायपर इल्जाम नहीं लगाया जा सकता। हमें किसी-न-किसी तरहका समझौता करनेकी उनकी कोशिशोंकी तारीफ जरूर करनी चाहिए। उनका जो दृष्टिकोण था, उसे ध्यानमें रखते हुए मैं उनपर कोई इल्जाम नहीं लगा सकता। हमारी जो उनसे भेंट हुई उसके दौरान वे बड़े विनम्र रहे और उनका व्यवहार बड़ा मधुर था। किन्तु जो भी कुछ हुआ है उसके बाद मैं कह सकता हूँ कि गोलमेज परिषदमें कांग्रेसका प्रतिनिधित्व होनेसे किसी तरहकी भलाईकी आशा नहीं है। इसलिए सवालपर सभी पहलुओंसे विचार करके हम महसूस करते हैं कि कांग्रेस गोलमेज परिषदमें प्रतिनिधि भेजकर देशका कुछ हित नहीं कर सकती। मुझे आशा है कि प्रस्तावके इस हिस्सेमें कोई परिवर्तन नहीं किया जायेगा।

प्रस्तावका दूसरा भाग कांग्रेसके सिद्धान्तोंके परिवर्तनसे सम्बन्धित है। यह भी पिछले साल[3] कलकत्ता कांग्रेसमें पारित किये गये प्रस्तावके तर्क-सम्मत निर्णयके अलावा और कुछ नहीं है। मद्रास कांग्रेसने[4] यदि सम्भव हो तो साम्राज्यके अन्तर्गत और यदि आवश्यक हो तो उसके बाहर स्वराज्यका आदर्श माना था। हमें परिस्थितियोंसे विवश होकर यह घोषणा करनी पड़ रही है कि कांग्रेस पूर्ण स्वतन्त्रता चाहती है और वह इसे ही अपना 'स्वराज' निश्चित करती है। मद्रास कांग्रेसने वास्तवमें कांग्रेसका उद्देश्य नहीं बदला था। कलकत्ता कांग्रेसने भी इस मामलेमें कोई निश्चित रुख नहीं अपनाया था। परन्तु अब हम अपना उद्देश्य बदलने जा रहे हैं और वह पूर्ण स्वतन्त्रताका निश्चित रूप होगा।

आज मैं यह कहना नहीं चाहता कि साम्राज्यके अन्दर भी किसी तरह स्वराज सम्भव है या नहीं किंतु हम यह तो साफ तौरपर कहते हैं कि स्वराजका अर्थ है पूर्ण स्वतन्त्रता।

१. पूर्ण स्वतन्त्रता प्रस्तावपर गांधीजीने हिन्दीमें भाषण किया देखिए: प्रस्ताव – २ पृष्ठ ३२९-३१।

२. देखिए "सर्वदलीय नेताओंका संयुक्त वक्तव्य", २-११-१९२९।

३. देखिए खण्ड ३८, पृष्ठ ३२९-३१।

४. १९२७ में।

प्रस्तावके तीसरे हिस्सेका सम्बन्ध इस बातसे है कि पूर्ण स्वतन्त्रताके इस नये सिद्धान्तको कार्यान्वित कैसे किया जाये। जैसे कि प्रस्ताव द्वारा सुझाया गया है, पहला कदम, विधान सभाओं और स्थानीय संस्थाओंका बहिष्कार है या दूसरे शब्दोंमें हम यह चाहते हैं कि प्रान्तीय और केन्द्रीय दोनों विधान सभाओंका कांग्रेसियों द्वारा बहिष्कार कर दिया जाये। इतना ही नहीं कांग्रेस इसके आगे यह भी चाहती है कि स्थानीय संस्थाओं जैसे नगरपालिकाओं, स्थानीय बोर्डों आदिका बहिष्कार किया जाये। निस्सन्देह यह बड़ा कदम है। परन्तु पूर्ण स्वतन्त्रताके उस महान् आदर्शकी प्राप्तिके लिए कुछ इस तरहके कठोर कदम उठाने ही पड़ेंगे। अब हमें आगे आनेवाले महान् संघर्षोंके लिए अवश्य ही तैयार रहना है। अब हम लोगोंको अपने अंदरूनी मतभेद और विरोध खत्मकर देने चाहिए। मैं एक और चीज आपके सामने स्पष्टकर देना चाहता हूँ। अब चूँकि यह घोषित कर दिया जायेगा कि औपनिवेशिक स्वराजकी पद्धतिपर आधारित नेहरू रिपोर्टकी कोई उपयोगिता नहीं रही है, इसे लेकर आगे कोई मतभेद नहीं हो सकता और होना भी नहीं चाहिए। मुझे आशा है कि सिख, मुसलमान और दूसरे सभी वर्गोंको, जिन्हें नेहरू रिपोर्टके किसी-न-किसी पहलूसे शिकायत थी, कांग्रेसमें दाखिल होनेमें कोई आपत्ति नहीं होगी और वे स्वातन्त्र्य-संग्रामके लिए इसके दायरेमें संगठित हो जायेंगे। अगर आपके बीच अनिवार्य मतभेद हों तो भी हमें कांग्रेसके बीच संगठित होकर काम करना चाहिए। यदि मुसलमान हिन्दुओंके गले काटते हैं तो काटें। परन्तु उस समय हमारे मनमें यह सान्तवना तो अवश्य होनी चाहिए कि हमें स्वतन्त्रता मिल गई है। या यदि सिखोंका हिन्दुओं या मुसलमानोंसे कोई झगड़ा हों तो वे अपने ऐसे सारे मतभेद भुला दें और कांग्रेसके बीच संगठित हो जायें।

मैंनें विधान सभाओंमें जानेकी बात कभी नहीं सोची और मुझे प्रसन्नता है कि इन वैधानिक संस्थाओंके बारेमें दूसरे नेताओंके मनमें भी ऐसी ही भावनाएँ हैं। अब यह बात भली-भाँति महसूस की जा रही है कि इनमें भाग लेकर देशका कोई हित नहीं किया जा सकता; इसलिए हम इन्हें छोड़ देनेका निश्चय करना चाहते हैं। जहाँतक नगरपालिकाओं और स्थानीय संस्थाओंका सम्बन्ध है मैं यह कहना चाहूँगा कि चाहे इन संस्थाओंको कितना भी स्वायत्त क्यों न बना दिया जाये इनसे भी अपेक्षित परिमाणमें हित-सम्पादन नहीं हो सकता। उदाहरणके तौरपर हमारे अध्यक्षने इलाहाबाद नगरपालिकामें बड़ी सेवा की। परन्तु अन्तमें वे इससे तंग आ गये और उन्होंने उसे छोड़ दिया। इसी तरह बाबू राजेन्द्रप्रसादने पटना नगरपालिकामें बहुत कुछ काम किया और अन्तमें वे भी उससे तंग आ गये और उसे छोड़ दिया। यदि हम देशके लिए स्वतन्त्रता चाहते हैं, यदि हम हृदयसे स्वतन्त्रता पाना चाहते हैं, तो हम उन संस्थाओंके बीच नहीं जा सकते, जिनसे हमारी शक्ति इस तरह घट जाती है।

इसलिए हमें यह निश्चय करनेमें कोई संकोच नहीं होना चाहिए कि हम अब आगे विधान सभाओं और स्थानीय संस्थाओंमें नहीं जाना चाहते।

यह साफ है कि करोंकी अदायगी न करना राष्ट्रीय संघर्षकी अन्तिम दशा है और मैं मानता हूँ कि हम अभी वहाँतक नहीं पहुँचे हैं। यह भी साफ है कि हमें

दो बातोंमें से एक चुननी है। अर्थात् या तो आप परिषदों और स्थानीय संस्थाओंमें जाना पसन्द करें और सविनय अवज्ञाकी बात करना बन्द कर दें या इन स्थानोंका बहिष्कार करना पसन्द करें और अपनी सारी शक्ति सविनय अवज्ञापर केन्द्रित करें। ऐसा कहना ठीक नहीं कि ये दोनों चीजें साथ-साथ की जा सकती हैं। यदि आप विधान सभाओं और स्थानीय संस्थाओंमें भाग लेना चाहें तो मैं आपसे स्पष्ट कह देना चाहता हूँ कि सविनय अवज्ञा असम्भव है। सविनय अवज्ञाके लिए निस्सन्देह बहुत अनुशासन, बहुत बल, और सबसे अधिक आवश्यकता तन्मयतायुक्त एकाग्रताकी है। यदि आप परिषदोंमें जायेंगे तो आप सविनय अवज्ञाके लिए पूर्णत: आवश्यक ये सारी शर्तें नहीं जुटा सकते हैं। यदि आप, जो बारडोलीमें[1] किया गया है वही कुछ करना चाहते हैं तो आप विधान परिषदों सभाओं जैसी अन्य चीजोंके बारेमें सोचना बन्द कर दें। यह अवश्य स्वीकार कर लेना चाहिए कि फिलहाल देश सविनय अवज्ञाके लिए तैयार नहीं है और देशको इसके लिए जरूर तैयार किया जाना चाहिए। यदि आप चाहते हों कि मैं सविनय अवज्ञा आन्दोलन चलाऊँ तो मैं इसे चलाऊँगा। परन्तु आप युद्धके सिपाही अवश्य बनें और सविनय अवज्ञाके लिए जो कुछ भी अपेक्षित है वह सब कुछ हासिल किये बिना न रहें।

अन्तमें महात्माजीने सब लोगोंसे कहा कि वे प्रस्तावके पक्षमें इसलिए मत न दें कि मैंने इसे पेश किया है और उन्होंने कहा :

मैं चाहता हूँ कि आप सारे प्रस्तावके बारेमें, इसके सभी पहलुओं और दाँव-पेचोंपर ठीकसे विचार करें और तब आपको जो सर्वाधिक उचित लगे उस पक्षमें अपना मत दें।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दुस्तान टाइम्स, ३०-१२-१९२९

१. बारडोली सत्याग्रह, देखिए खण्ड ३७।

३३७. सिख नेताओंसे बातचीत[1]

२७ दिसम्बर, १९२९

यह पता चला है कि सिख नेताओंके साथ, जिनमें एक तरफ सरदार खड़गसिंह, सरदार बहादुर मेहताबसिंह, सरदार तारासिंह और सरदार अमरसिंह शामिल थे [कांग्रेसके नेताओंकी] जिनमें दूसरी ओर महात्मा गांधी, पण्डित मोतीलाल नेहरू, डा० अन्सारी, डा० सत्यपाल और सरदार शार्दूलसिंह कवीश्वर थे, लम्बी और अनौपचारिक बातचीत हुई। बातचीत सिखोंके अधिकारके सवालपर केन्द्रित थी।

यह पता चला है कि महात्माजीने कार्य समितिके प्रस्तावका मूल पाठ, जिसमें औपनिवेशिक स्वराज्यका प्रस्ताव वापस ले लिया गया है, सिख नेताओंके सामने रखा। यह कहा जाता है कि महात्माजीने उन्हें बताया कि वह नेहरू रिपोर्टमें सिखोंकी विशेष सुरक्षाकी माँगको सही नहीं मानते।

चूँकि सिख सन्तुष्ट नहीं हैं, इसलिए कांग्रेस प्रश्नपर फिरसे विचार करनेको तैयार है। और अब तो स्थिति बदल गई है और कार्य समिति द्वारा औपनिवेशिक स्वराज्यका प्रस्ताद वापस ले लिये जानेसे नेहरू रिपोर्ट अपने-आप ही महत्त्वहीन हो गई है तथा प्रश्न पर फिरसे विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है।

महात्माजीने यह भी स्पष्ट कर दिया कि स्वतन्त्र भारतमें अधिकारका विभाजन जातीय आधारपर नहीं होगा। परन्तु यदि जातीयताको राजनीतिक अधिकारोंका आधार बनाया ही गया तो वह इस बातका पक्का ध्यान रखेंगे कि सिखोंको सन्तोष दिया जाये।

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे क्रॉनिकल, २८-१२-१९२९

१. अनौपचारिक बातचीत जिसमें एक तरफ सिखनेता सरदार खड्गसिंह, सरदार बहादुर मेहताब सिंह, सरदार तारासिंह और सरदार अमरसिंह और दूसरी तरफ गांधीजी, मोतीलाल नेहरू, डा० अंसारी डा० सत्यपाल और सरदार शार्दूलसिंह थे।

३३८. विद्यापीठका विकास

गुजरात विद्यापीठने क्या किया और वह क्या कर रहा है यह तो काकासाहब लिख रहे हैं। परन्तु एक बातका उत्तर वे नहीं दे सकते। कुछ लोग कहते हैं कि जबसे विद्यापीठकी बागडोर उनके हाथमें आई है तबसे वह बरबाद हो गया है। यदि विद्यापीठ बरबाद हुआ है तो उसका कारण वे नहीं बल्कि मैं हूँ। क्योंकि लोगोंमें मेरे प्रति मोह कहिए या प्रेम बना हुआ है। और वे अधिकतर मेरी सलाह मान लिया करते हैं; इस कारण विद्यापीठमें जो हेरफेर हुए हैं उनकी जिम्मेदारी मेरी है। मुझे यह बात नम्रतापूर्वक कह देनी या स्वीकार कर लेनी चाहिए कि सरकारी स्कूलोंका बहिष्कार करने तथा राष्ट्रीय शिक्षाकी योजना तैयार करनेमें मेरा खास हाथ रहा है। आचार्य गिडवानीको विद्यापीठमें लानेवाला मैं हूँ। उन्हें वहाँसे हटा लेनेवाला मैं हूँ। विद्यापीठके साथ शुरूसे ही काकासाहबका सम्बन्ध रहा है, किन्तु उन्हें बीचमें ही वहाँसे हटा लेनेवाला भी मैं ही हूँ। आचार्य गिड़वानीके कार्यकालमें विद्यापीठने विद्यार्थियोंको आकर्षित किया। विद्यापीठके लिए जमीन ली गई, मकान बने। यदि आचार्य गिड़वानी न होते तो शायद विद्यापीठ भी न होता। उन्होंने मुझे दो बार वचन दिया था कि मैं जब उन्हें बुलाऊँगा वे तभी पहुँच जायेंगे। मुझे भिवानीमें वल्लभभाईका तार मिला और मैंने आचार्य गिडवानीको विद्यापीठका कार्य-भार सँभाल लेनेकी सूचना दी, जिसे उन्होंने तत्काल स्वीकार कर लिया और इस प्रकार थोड़े ही दिनोंमें हिन्दुस्तानमें पहला असहयोगी विद्यालय आरम्भ हुआ। उनके गुजरात चले आनेसे सिन्ध और गुजरातमें जो सन्धि हुई थी वह आज भी बनी हुई है। विद्यापीठमें मतभेद पैदा हो जानेके कारण मैंने आचार्य गिडवानीको वहाँसे हटा लिया। उनमें से किसीपर कोई लांछन नहीं था। मेरा विश्वास है कि आचार्य गिडवानी आज भी गुजरातके ही हैं। वे प्रेम महाविद्यालयमें गये क्योंकि गुजरातने उन्हें वहाँ भेजा था। वे आज कराचीमें हैं तो भी उनकी वही [प्रतिनिधिकी] स्थिति है। तीनों जगहोंपर राष्ट्रीय दृष्टिकोणको विकसित करनेकी आकांक्षा है। तीनों स्थानों पर खादी-प्रचारका काम भी होता है।

आचार्य कृपलानीको तो काशी आश्रम, जो उन्हींकी कृति है, से कुछ समयके लिए माँग लिया गया था। मैं वचनबद्ध था, अतः तदनुसार उन्हें मुक्त कर देना पड़ा। उनके कार्यकालमें भी विद्यापीठकी अवनति नहीं हुई। वे विद्यार्थियोंके दिलोंको जीत सके थे या नहीं यह तो हम विद्यार्थियोंकी हड़तालके समय देख चुके हैं। सिन्धकी दूसरी भेंट आचार्य कृपलानी थे। किन्तु आज भी वे गुजरातके ही हैं। मेरे विचारसे तो उनके कार्यकालमें विद्यापीठ आगे ही बढ़ा है। सभीका आदर्श एक होते हुए भी प्रत्येक मनुष्यकी कृति, स्वभावमें तो अन्तर होता ही है और इस प्रकार संस्था जिस व्यक्ति-विशेषके हाथमें होती है उसीके अनुरूप उसका विकास होता है और वह विविध रंग धारण करती है। किन्तु यह विविधता इन्द्रधनुषके विविध रंगोंकी भाँति सुन्दर

होती है; ऐसा मुझे विद्यापीठके बारेमें लगा। एक आचार्यने किसी एक अंगको तो दूसरेने अन्य अंगको पुष्ट बनाया है। इसका फल अच्छा ही निकला है। अब पतवार काकासाहबके हाथमें है। वे विद्यापीठको गढ़ रहे हैं। विद्यापीठका पतन नहीं हुआ है, वह आगे बढ़ रहा है। जबतक पतवार काकासाहबके हाथमें है, उनके विषयमें यही कहा जा सकता है कि जिन्हें सन्देह हो वे विद्यापीठमें जाकर देख लें। जिस प्रकार तीनों आचार्य एक-दूसरेके पूरक हैं उसी प्रकार तीनोंका कार्यकाल एक-दूसरेका पूरक है। तीनों एक ही वृक्षके फल हैं अतः तीनोंके कार्यमें एकता छिपी ही हुई है। किसी आचार्यने पिछले कामको रद नहीं किया बल्कि कुल मिलाकर उसे आगे ही बढ़ाया है। विद्यापीठकी आजकी स्थिति यही सिद्ध करती है। विद्यापीठके आरम्भिक कालमें ही मैंने विद्यापीठको परखनेकी एक कसौटी बताई थी और वह बात आज भी लागू होती है। विद्यापीठको न तो उसके आलीशान भवनोंसे परखा जा सकता है और न विद्यार्थियोंके अंग्रेजी-ज्ञानसे। उसकी परख तो विद्यार्थियोंके देशप्रेमसे, पढ़े हुए विषयोंको गुजरातीके माध्यमसे दूसरोंको पढ़ा पानेकी उनकी सामर्थ्यसे, उनके हिन्दीके ज्ञानसे, उनके चरखा-शास्त्रके ज्ञानसे, उनके तथा शिक्षकोंके चारित्रिक बलकी वृद्धि और गाँवोंके प्रति झुकावसे ही हो सकती है। इस कसौटीपर परखनेसे ज्ञात होता है कि विद्यापीठ आगे बढ़ा है। यह मेरा दृढ़ विश्वास है और जो लोग विद्यापीठका निरीक्षण करने जायें वे इस बातका विश्वास कर सकते हैं। जिस प्रकार वृक्षकी परीक्षा उसके फलोंको जाँचनेसे होती है उसी प्रकार विद्यापीठको भी परखा जा सकता है। विद्यापीठ ऐसी संस्था नहीं है जो बहुत दूर हो और जिसके लिए परखनेवालेको मेरे या किसी अन्यके प्रमाणपत्रकी जरूरत हो। और नीति कहती है कि जहाँ हम खुद किसीकी जाँच कर सकते हों और उसकी जाँच करना आवश्यक हो वहाँ उसकी परीक्षा स्वयं ही करनी चाहिए। जाँच करनेके बाद यदि ऐसा लगे कि विद्यापीठकी उत्तरोत्तर उन्नति हुई है, उसकी सेवा करनेकी शक्ति बढ़ी है, तो लक्ष्मीदेवी उसके लिए घर ही चन्दा भिजवा देंगी।

[गुजरातीसे [

नवजीवन, २९-१२-१९२९

३३९. भाषण : अ० भा० कां० कमेटीकी विषय समितिमें[1]

लाहौर
२९ दिसम्बर, १९२९

सभापतिने मुझे आज्ञा दी है कि जो संशोधन पेश किये गये हैं उनपर मैं आपसे कुछ कहूँ। श्री केलकरने मुझे याद दिलाई कि मैंने अपने प्रथम भाषणमें कहा था कि मैं प्रस्तावपर दोबारा नहीं बोलना चाहता। उनका कहना कुछ हदतक सही है। वैसे मैंने कहा यह था कि चूँकि मैं यह नहीं चाहता कि मेरी किसी अपीलका मतदानके समय आपपर कोई प्रभाव पड़े, इसलिए मैं चुप रहना पसन्द करूँगा। मैं चाहता था कि आप अपने मनसे मेरा निजी लिहाज छोड़कर प्रस्तावके गुणदोषपर विचार कर अपनी धारणाके अनुसार इसपर अपना मत दें। परन्तु यदि आप मेरी बात सुनना चाहते हैं कि मैं संशोधनों और बहसपर अपना दृष्टिकोण आपके सामने रखूँ तो यह माँग करना आपका अधिकार है और उसे मानना मेरा कर्त्तव्य है।

आवाजें आने लगीं : महात्माजी कृपा करके बोलिए।

मैं बोलूँगा। पहले मैं इस बातके लिए क्षमा माँग लूँ कि कल जब बहस चल रही थी, मैं थोड़ी देरके लिए सभासे अनुपस्थित रहा। मैं सिर्फ हाजत रफा करने गया था। प्रस्तावपर जो भाषण हुए उनको मैंने बड़ी सावधानी और ध्यानसे सुना है।

मैं पहले आपको एक चेतावनी दे रहा हूँ। जो प्रस्ताव आपके सामने रखा गया है, वह कार्यसमिति द्वारा प्रस्तावित है। प्रस्तावोंके संशोधनोंपर विचार करते समय आपको इस बातके प्रति सावधान रहना चाहिए कि कार्यसमिति आपने नियुक्त की है और कार्यसमितिके सदस्य आपके सेवक हैं। आपको अपने सेवकोंपर विश्वास होना चाहिए कि प्रश्नके सभी पहलुओंको ध्यानमें रखनेके बाद जबतक वे इसे बिलकुल ही जरूरी नहीं समझते वे कोई भी प्रस्ताव आप पर नहीं थोपेंगे। इसलिए मैं आपसे अनुरोध करूँगा कि जबतक आपको यह पूरा निश्चय न हो जाये कि कार्यसमिति गलती कर रही है और संशोधनपर जोर देना ही आपका कर्त्तव्य है, तबतक आप किसी संशोधनका आग्रह न करें।

यह भी एक नियम है जो सभी सुसंचालित और उत्तरदायी संगठनोंमें बरता जाता है।

'वर्तमान परिस्थितियोंमें' शब्दोंके कारण कई एक वक्ताओंको त्रुटियोंका कुछ शक हुआ है; मैं उनका उल्लेख नहीं करूँगा। मैं इस बातसे बिलकुल सहमत हूँ कि समझौतेके सभी दरवाजे सदाके लिए बन्द रहेंगे, यह सोचना सही नहीं होगा। किसी-न-किसी वक्त गोलमेज परिषद या चौकोर मेज परिषद जरूर होगी। बहुतसे लोग कहते हैं कि यदि हमने एक बार स्वतन्त्रताको अपना उद्देश्य घोषित कर दिया

१. गांधीजी पहले हिन्दी और फिर अंग्रेजीमें बोले।

तो फिर किसी परिषदकी गुंजाइश नहीं रहेगी। अगर आप हिंसाको ही अपना सिद्धान्त मान लें तो भी शान्ति परिषद तो होगी ही। प्रश्न सिर्फ यह है कि परिषदमें चर्चा किस बातपर की जायेगी? मैं आपसे कह सकता हूँ कि अब चूँकि कांग्रेस स्वतन्त्रताकी घोषणा कर रही है, किसी भी कांग्रेसीके लिए यह उपयुक्त नहीं होगा कि वह औपनिवेशिक स्वराज्य पर विचार-विमर्श करनेके लिए किसी भी परिषदमें जाये। कांग्रेसी सिर्फ स्वतन्त्रताकी चर्चा करनेके लिए किसी परिषदमें जा सकते हैं।

शिकायत की गई है कि सबकी सहमतिसे प्राप्त जो वक्तव्य समाचारपत्रोंमें प्रकाशित हो चुका है उसमें हमने वह बातचीत जाहिर नहीं की है जो वाइसराय, नेहरूजी, मेरे और दूसरे नेताओंके बीच हुई थी। जितना कुछ आपको जानना आवश्यक था और जो-कुछ जाननेका आपको अधिकार था वह सब बता दिया गया है। नेहरूजी आपके दूतके रूपमें वाइसरायसे मिलने गये और उनपर विश्वास किया जाना चाहिए। वाइसरायके साथ हुई बातचीतके बारेमें जो कुछ प्रकाशित हुआ है उसे ध्यानमें रखते हुए 'वर्तमान परिस्थितियोंमें' ये शब्द बिलकुल समझमें आ सकते हैं।

पण्डित मालवीय और श्री केलकरने निर्णयको स्थगित करनेकी वकालत की है। मुझे उनके प्रति बड़ा आदर और स्नेह है। उन्होंने सर्वदलीय परिषदको फिरसे सक्रिय करनेकी वकालत की है। सर्वदलीय परिषदको लेकर मेरे मनमें कोई खेद नहीं है। उसने बहुत महत्त्वपूर्ण काम किया है। उसने कांग्रेसी और दूसरे दलोंके नेताओंको नजदीक कर दिया। उससे उन्हें एक दूसरेको समझनेमें मदद मिली है, उनके बीच सहयोगकी भावना आई है। उदारवादी और दूसरे दोस्त उसके कारण हमारे ज्यादा नजदीक आये हैं। इसलिए सर्वदलीय परिषद द्वारा किये गये इस बहुत उपयोगी कामका मुझे पूरा एहसास है।

पण्डित मालवीय और उन जैसे अन्य मित्रोंको मेरा जवाब यह है कि हम कांग्रेसजनोंको अपना कर्त्तव्य पालन करना है। हमें अपना कार्यक्रम बनाना है। हम जो आश्वासन चाहते थे, उसका वाइसराय द्वारा न दिया जाना और दूसरी शर्तोंका पूरा न करना हमारे कर्त्तव्य-पथको स्पष्ट कर देता है।

कलकत्तामें मैंने दो सालका वक्त दिये जानेकी वकालत की थी। अगर इतना वक्त दिया गया होता तो मुझे खुशी होती। इससे हमें तैयारीके लिए अधिक समय मिल जाता। परन्तु अपने उन नवयुवकोंकी, जो प्रगतिको और तीव्र करना चाहते थे, आकांक्षाएँ पूरी करनेके विचारसे, मैं दो सालके बजाय एक सालके लिए राजी हो गया। मुझे अपनी प्रतिज्ञापर अटल रहना होगा। मेरा विश्वास है कि अगर राष्ट्र एक बार कोई निश्चय कर ले, तो चाहे कुछ भी परिणाम क्यों न हों, फिर उसे उसपर दृढ़ रहना चाहिए। अन्यथा यह हमें गिरानेवाली एक बात होगी। इसलिए मैं चाहता हूँ कि आप स्वतन्त्रताके लिए घोषणा कर दें और अपना दृढ़ निश्चय कायम रखें। हममें ऐसे लोग भी हैं, जिनका विश्वास है कि अभी हम स्वतन्त्रताकी घोषणा करने योग्य समर्थ नहीं हुए हैं। यदि आपकी यही राय है और यदि आप सोचते हैं कि स्वतन्त्रताकी घोषणा करना गलत कदम है तो ऐसा कहनेमें संकोच मत कीजिएगा। यह अनुरोध किया जा रहा है कि जबतक विभिन्न सम्प्रदायोंमें परस्पर एकता स्थापित

न हो जाये, स्वतन्त्रताके लिए घोषणा स्थगित कर देनी चाहिए। मैं इस दृष्टिकोणसे सहमत नहीं हूँ। राष्ट्र, एक बार कोई दृढ़ निश्चय कर लें तो उन्हें उसे चाहे मुट्ठीभर लोगोंका समर्थन मिले या लाखों लोगोंका, अपने दृढ़ निश्चयोंपर अडिग रहना चाहिए। निस्सन्देह हमें अपने ज्यादासे-ज्यादा देशवासियोंका समर्थन पानेकी कोशिश तो करनी ही है।

अब मैं बहिष्कारोंका जिक्र करूँगा। मुझसे पूछा गया है कि अदालतों और स्कूलोंका बहिष्कार शामिल क्यों नहीं किया गया है। मैं आपको साफ तौरपर कह दूँ कि मैं तीनों बहिष्कारोंमें से किसी एकको भी छोड़ देनेके पक्षमें कदापि नहीं हूँ। वास्तवमें मैं पाँच प्रकारका बहिष्कार चाहता हूँ। परन्तु यह दूसरी बात है। मैं निश्चय ही तीन बहिष्कारोंके पक्षमें हूँ। यह मेरा विचार है। परन्तु क्या हम इसके लिए तैयार हैं? राष्ट्रके एक सदस्यके नाते मुझे राष्ट्रके साथ अवश्य कदम मिलाकर चलना है। यह अनुभव किया जा रहा है कि वकीलों और विद्यार्थियोंके आह्वानका अभी वक्त नहीं आया है, इसलिए मैंने सिर्फ कौंसिलों और स्थानीय संस्थाओंका बहिष्कार शामिल किया है। यदि आप समझते हैं कि वैसा आह्वान करनेका वक्त आ गया है और उस आह्वानका मन्तव्य पूरा हो जायेगा तो जरूर कीजिए।

कौंसिल-बहिष्कारकी चर्चामें अध्यक्ष पटेलके बहादुरीके कारनामोंकी याद दिलाई गई है। अध्यक्ष पटेलकी जो उपलब्धियाँ हैं उनके लिए पटेलकी श्लाघामें मैं किसीसे पीछे नहीं रहता। मैं मानता हूँ कि उन्होंने भारत और भारतीयोंकी इज्जत और मानको बढ़ाया है, परन्तु अध्यक्ष पटेल, या विधानसभा या विधान परिषदके प्रस्ताव, कोई भी हमें स्वतन्त्रता नहीं दिला सकते। वे हमें औपनिवेशिक स्वराज्य भी नहीं दिला सकते। परिषदोंका बहिष्कार स्वीकार करनेमें कार्यसमिति एकमत थी।

जहाँतक स्थानीय संस्थाओं और नगरपालिकाओंका सम्बन्ध है, मैं आपको बता देना चाहता हूँ कि उन्हें मैंने अपने मूल मसविदेमें शामिल नहीं किया था, परन्तु मैं इसमें विश्वास नहीं करता कि स्थानीय संस्थाएँ राष्ट्रीय कार्यका कोई हित कर सकती हैं। पण्डित जवाहरलाल जो इलाहाबाद नगरपालिकाके अध्यक्ष थे, बाबू राजेन्द्रप्रसाद जो पटना नगरपालिकाके अध्यक्ष थे और सरदार वल्लभभाई पटेल जो अहमदाबाद नगरपालिकाके अध्यक्ष थे — उनके अनुभव मेरे विचारको पुष्ट करते हैं। मेरे कोई निजी अनुभव नहीं हैं। बहरहाल मैं आपको बता सकता हूँ कि यदि सरदार पटेल अहमदाबाद नगरपालिकाका अध्यक्षपद नहीं छोड़ते तो बारडोली आन्दोलन नामकी कोई चीज न होती। मैंने ऐसी स्थानीय संस्थाएँ कदाचित् ही देखी हैं जिन्होंने लोगोंके हितमें वृद्धि की हो। मैं चाहता हूँ कि ग्रामीण लोगोंको प्रोत्साहन दिया जाये। हम स्वतन्त्रताकी माँग करते हैं; परन्तु हम छोटे-छोटे लाभ छोड़नेके लिए भी तैयार नहीं हैं। छोटे लाभ छोड़नेके लिए तो हमें तैयार रहना ही चाहिए। हमें केवल उन्हीं लाभोंको अपनाये रखना चाहिए जो हमें अपने ध्येयतक पहुँचनेमें सहायता दें। परन्तु ये तो मेरे निजी विचार हैं। निर्णय आप लोगोंपर निर्भर है।[१]

१. अगला अनुच्छेद ट्रिब्यूनसे लिया गया है।

हम असहयोग केवल क्रमशः कर सकते हैं। कृपया प्रस्तावमें परिवर्तन न करें क्योंकि यह एक पूर्ण प्रस्ताव है। परन्तु गोल-मोल तरीकेसे बात मत कीजिए। यदि आपको मेरे प्रस्तावपर विश्वास नहीं तो मतदान द्वारा इसे गिरा दीजिए या इसमें संशोधन कर दीजिए। मैंने अदालतोंका बहिष्कार शामिल नहीं किया क्योंकि उसकी प्रतिक्रियाके सम्बन्धमें मुझे निश्चित रूपसे पता नहीं था।

अब मैं इस प्रस्तावकी भूमिका अर्थात् दिल्ली घोषणापत्रके समर्थन और वाइसरायकी तारीफके बारेमें उठाई गई आपत्तियोंकी बातपर आता हूँ। वह भूमिका अत्यन्त आवश्यक थीं। नेताओंने औपनिवेशिक स्वराज्य पानेकी गारंटीके लिए किसी भी बातचीतके लिए अपने-आपको तैयार रखकर कलकत्ता प्रस्तावके आज्ञानुसार ही काम किया है। जहाँतक वाइसरायकी तारीफका सम्बन्ध है, पण्डित मोतीलालजी, और मैं दोनों ऐसा महसूस करते हैं कि वाइसराय एक सच्चे व्यक्ति हैं, जो हृदयसे शान्ति बनाये रखना चाहते हैं। मैं समझता हूँ कि मैं वाइसरायके बारेमें इतना कह सकता हूँ। वाइसरायके साथ सम्पर्कमें आनेके परिणामस्वरूप मेरी ऐसी धारणा बनी है। यही नेहरूजीका भी विचार है।

स्वतन्त्रता अहिंसा द्वारा प्राप्त नहीं की जा सकती — इस तरहकी जो शंकाएँ व्यक्त की गई हैं, अब मैं उनपर चर्चा करूँगा। मैं इस विचारसे सहमत नहीं हूँ। यदि आप मुझसे सहमत नहीं हैं और यदि आप यह महसूस ही करते हैं कि हमें हिंसाकी बात अपने ध्यानसे एकदम नहीं निकाल देनी चाहिए तो वैसा कहिए और सिद्धान्तको बदल दीजिए। मेरे लिहाजसे अपने हाथ मत रोकिए। आपका जैसा दृढ़ विश्वास हो वैसा कीजिए। खैर, मैं आपको अपनी धारणा बता दूँ। वह यह है कि यदि राष्ट्र अहिंसाके कार्यक्रमको पूरी ईमानदारीसे निभा दे तो अपने ध्येयकी प्राप्तिके बारेमें कोई शककी गुंजाइश नहीं है। यदि हम सरकारी खजानेको करोंकी अदायगी करके अपने पैसोंसे न भरें, यदि हमारे सिपाही सेवा करनेसे इनकार कर दें और फौजसे बाहर आ जायें, यदि हमारे वकील अदालतोंका बहिष्कार कर दें, यदि हमारे विद्यार्थी स्कूलोंका बहिष्कार कर दें, तो शककी गुंजाइश ही कहाँ रह जाती है? हिंसाकी आवश्यकता ही कहाँ है? हमारे राष्ट्रके तीस करोड़ लोगोंके लिए हिंसाकी कोई आवश्यकता नहीं है। आपके द्वारा इस अहिंसाके सिद्धान्तकी इतने बरसों तक परीक्षा की जा चुकनेके बाद तो अहिंसाकी अमोघता और शक्तिपर मैं आपसे ज्यादा कुछ नहीं कहना चाहता। दस साल बीत चुकनेपर भी जब आप इसकी शक्तिके बारेमें आश्वस्त नहीं हैं, तो मैं इसके प्रतिवादमें क्या कह सकता हूँ? पिछले दस सालोंकी कार्य-विधिका पुनर्वेक्षण कीजिए। राष्ट्रीय जागृति, राष्ट्रीयताका आग्रह, विचार-स्वातन्त्र्य और लोगोंने जो मेल-जोल और काम करके दिखाया है उसपर नजर डालिए। क्या ये अहिंसाके सिद्धान्तके कार्यान्वित होनेके परिणाम नहीं है? परन्तु यदि आप मुझसे सहमत नहीं हैं तो अहिंसा-सिद्धान्तके विरोधमें मत देनेमें संकोच मत कीजिए। ऐसा मत कीजिए कि आपके मनमें एक बात हो और आप कहें कुछ दूसरी। स्पष्टवादी और उत्साही बनिए और अपनी धारणाओंके अनुसार मत दीजिए।

उसके बाद महात्मा गांधी हिन्दी भाषणमें कही बातोंका प्रत्याख्यान करते हुए अंग्रेजीमें बोले। उन्होंने इस बातपर बल दिया कि उनका मालवीयजी, श्री केलकर और दूसरे दोस्तोंके प्रति जो मान और स्नेह है उसके कारण वह उस पथसे जो उन्हें ऐसा लगा है कि राष्ट्रके हितमें है, सम्भवतः विचलित नहीं हो सकते। उन्होंने कहा कि मुझे मालूम है कि सर्वदलीय परिषदके निर्णयको पीछे सब दलोंकी सहमति प्राप्त है, परन्तु तत्काल औपनिवेशिक स्वराज्य न मिलनेपर भी उस सर्वसम्मतिपर कायम रहना बहुत महँगा पड़ेगा। यदि लोगोंने इस सर्वसम्मतिका ख्याल नहीं किया है तो यह सिर्फ दुबारा एक-दूसरेके नजदीक आनेके लिए किया गया और अब औपनिवेशिक स्वराज्यके मंचपर नहीं, स्वतन्त्रताके मंच पर। मैं जानता हूँ कि यहाँ, इंग्लैंडमें और दूसरी जगह उनकी बड़ी भर्त्सना की जायेगी; परन्तु राष्ट्रके हितमें उन्हें यह खतरा मोल लेना ही पड़ेगा।

जहाँतक प्रस्तावके संविधान सभाओंके बहिष्कारसे सम्बन्धित भागका सम्बन्ध था महात्मा गांधीने घोषणा की कि मेरी अब भी केवल त्रिविध बहिष्कारमें नहीं, अपितु पंचविध बहिष्कारमें, जिसे मैंने मूल रूपमें प्रस्तुत किया था, आस्था है। परन्तु मैं वहींतक चल सकता हूँ जहाँतक राष्ट्र मेरा साथ दे। इसमें सिद्धान्तकी कोई बात नहीं है और जब मैंने देखा कि अत्यन्त श्रद्धेय साथी और मित्र मुझसे सहमत नहीं है; मैंने ईमानदारीसे उनका निर्णय स्वीकार कर लिया और संविधान सभाओंमें प्रवेशके कार्यक्रममें जहाँतक बन पड़ा उनका साथ दिया। परन्तु जब मुझे उन साथियोंने उनको जो अनुभव हुआ है वह बताया और कहा कि जो-कुछ उनसे हमें मिल चुका है उससे ज्यादा उनके द्वारा और कुछ प्राप्त नहीं किया जा सकता, तो मुझे प्रसन्नता हुई और मैंने विधानसभाओंके बहिष्कारका विचार उनके सामने रखा। अदालतों और स्कूलोंके बहिष्कारके बारेमें मैं वही बात नहीं कह सकता। परन्तु जब ऐसा वक्त आयेगा तो मैं प्रसन्नतासे वह बात भी विचारके लिए प्रस्तुत करूँगा। परन्तु इस वक्त जहाँतक मैं देशकी विचारधाराको समझ सका हूँ, इन दो बहिष्कारोंके लिए अभी उपयुक्त वातावरण नहीं है।

जहाँतक स्थानीय संस्थाओंके बहिष्कारका सम्बन्ध है, इसे कार्यसमितिने अपने एक सदस्यके सुझावपर स्वीकार किया था। इस सदनको यह निर्णय करना है कि इनका बहिष्कार किया जाये या नहीं। परन्तु मेरा विचार है कि इन संस्थाओंके द्वारा आजादी नहीं मिल सकती और इन संस्थाओंका, जो सरकारकी ही ईजाद की हुई हैं और जिन्हें अभी किसी सीमातक ही सही, सरकारसे मददकी अपेक्षा रहती है, जितना कम मुँह ताका जाये उतना ही अच्छा है।

बीमा-कम्पनियों और बैंकों आदिके बहिष्कारके बारेमें बहुत-कुछ कहा जा चुका है। जहाँतक मेरा सम्बन्ध है, मैं उस सारे कार्यकलापको जिससे सरकारका सम्बन्ध है, छोड़ देनेका प्रयत्न अवश्य ही करूँगा; लेकिन असहयोगके मेरे जैसे सूत्रधारके लिए

भी यह कर सकना असम्भव रहा है, इसे स्वीकार करते हुए उन्हें लज्जा तो आती है परन्तु यही बात सही है।[1]

जहाँतक प्रस्तावकी भूमिकाका सम्बन्ध है महात्मा गांधीने इस बात पर बल दिया कि अहिंसा-धर्ममें सामान्य शालीनता तो अनिवार्य रूपसे निहित ही है।

यदि कोई अंग्रेज भारतका हित चाहता है और यह सदन उसके प्रति शालीनता नहीं दिखाता तो वह इस सदनके अनुरूप बात नहीं होगी। मैं अंग्रेजोंको हानि पहुँचाकर स्वतन्त्रताका प्रतिपादन नहीं करना चाहता। यह अंग्रेजोंके हितमें है कि वे भारतसे चले जायें; परन्तु मैं नहीं चाहता कि उन्हें एक भी गोली चलाकर भगाया जाये।

आगे बोलते हुए महात्मा गांधीने इस बातको साफ करते हुए कहा कि मेरे पास अंग्रेजोंको भारतसे विदा करनेसे ज्यादा प्रभावपूर्ण तरीके हैं। वे ये है कि उन्हें सलाम करना और महसूल देना बन्द कर दिया जाये। जिस क्षण लोग ऐसा करने लगेंगे उसी वक्त अंग्रेजोंको गुलामोंके मालिक होनेकी हैसियत समाप्त हो जायेगी। परन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि वाइसरायकी उनपर और पण्डित मोतीलालपर यही छाप पड़ी है कि वे ईमानदार आदमी हैं।

अन्तमें गांधीजीने उस संशोधनके बारेमें अपना अभिप्राय प्रकट किया जिसके अनुसार पूर्ण स्वतन्त्रताका केवल शान्तिपूर्ण उपायोंसे ही नहीं अपितु सभी सम्भव उपायों द्वारा प्राप्त किया जाना जरूरी था। उन्होंने कहा कि राष्ट्रने असहयोग आन्दोलन द्वारा भयको बहुत हदतक त्याग दिया है। यदि आपमें यह विश्वास नहीं है कि अहिंसा और सत्यसे न केवल औपनिवेशिक स्वराज्य, जो अब सदाके लिए अतीतकी वस्तु बन गया है, बल्कि स्वतन्त्रता तक प्राप्त हो सकती है, तो आपको इस [संशोधन]का समर्थन करना चाहिए।

[अंग्रेजीसे]

अमृत बाजार पत्रिका, ३१-१२-१९२९

ट्रिब्यून, ३१-१२-१९२९

१. आगेका अंश **ट्रिब्यून**से लिया गया है।

३४०. पत्र : आश्रमकी बहनोंको

लाहौर
मौनवार, ३० दिसम्बर, १९२९

बहनो,

आज मौनवारको तुम्हारी याद आ रही है और यह बतानेके लिए ही यह पत्र लिख रहा हूँ। वहाँ ५ तारीखको पहुँचनेकी आशा रखता हूँ। ठण्ड काफी पड़ रही है। इस समय चारों तरफसे आवाज आ रही है। मैं सभामें बैठा हूँ इसलिए अधिक लिखनेकी कोशिश नहीं करूँगा।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (जी० एन० ३७१४)की फोटो-नकलसे।

३४१. पत्र : रमणीकलाल मोदीको

लाहौर
३० दिसम्बर, १९२९

चि० रमणीकलाल,

आज मेरा मौनवार होनेके बावजूद जवाहरलाल मुझे विषय समितिमें घसीट लाये हैं। वहीं बैठा हुआ मैं पत्र लिख रहा हूँ। कुछ खास लिखनेको नहीं है किन्तु मौनवारको मैं जहाँ होता हूँ, वहाँ तुम सबकी याद तो आती है। इसलिए इतना भर लिखे दे रहा हूँ।

ऐसा लगता है कि हम यहाँसे शायद ३ तारीखको रवाना हो सकेंगे। ऐसी स्थिति आ खड़ी हुई है कि मैं छूट ही नहीं सकता।

अच्छी-खासी ठंड-पड़ रही है और सब उसे महसूस कर रहे हैं।

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च :]

आशा है डा० मेहतासे सबका परिचय हो गया होगा। उनकी अच्छी तरह देखभाल होती होगी।

गुजराती (जी० एन० ४१७०)की फोटो-नकलसे।

३४२. भाषण : अ० भा० का० कमेटीकी विषय समितिमें – १[1]

३० दिसम्बर, १९२९

प्रस्तावपर बोलनेसे पहले मैं सभापतिकी इजाजतसे एक बातका जिक्र करूँगा। श्री हरिसर्वोत्तम रावने कौंसिल बहिष्कार संशोधन पर मुझसे अपील की थी कि इस विषय पर [सदस्योंकी] भावनाओंको ध्यानमें रखते हुए मुझे कौंसिल बहिष्कारकी बात [प्रस्तावमें से] निकाल देनी चाहिए, अन्यथा आपसमें झगड़ा बढ़ेगा। अब इस बातको ध्यानमें रखते हुए कि संशोधन एक ही अधिक मतसे गिरा[2] है श्री राजाने मुझसे मुख्य प्रस्तावकी[3] भूमिका निकाल देनेके लिए अपील की है।

श्री हरिसर्वोत्तम राव मुझे याद दिलाते हैं कि मैंने इलाहाबादमें अपने हाथ किस तरह रोके लिये थे और इसलिए अब भी मुझे वैसा ही करना चाहिए। मैं आपको बता दूँ कि यदि यह मेरे हाथमें हो और साथ ही ऐसा करनेका कोई महत्त्व हो, और यदि मैं समझूँ कि इसमें देशका हित है, तो मैं कौंसिल बहिष्कारका अपना प्रस्ताव एक बार नहीं सौ बार वापस ले लूँगा। मैंने मुख्य प्रस्ताव आपके सामने अपनी ओरसे नहीं, बल्कि कार्यसमितिकी ओरसे रखा है। अगर यह बात केवल मुझपर ही छोड़ दी जाती तो मैंने आपके सामने त्रिसूत्री बहिष्कार रखा होता। उस संशोधनको जो एक ही मतपर गिर गया है, स्वीकार कर लेनेके लिए मुझसे जो अपील की गई है उसके सम्बन्धमें मैं आपको याद दिला दूँ कि हम लोकतान्त्रिक संविधानके अन्तर्गत काम करनेका दावा करते हैं। आज एक मतका मतलब यह हुआ है कि संशोधन गिर गया है। परन्तु एक अधिक मत दूसरी ओर होता तो इसका मतलब होता कि संशोधन बरकरार है। आपको ध्यान इस बातपर देना है कि क्या संशोधनके गिर जानेसे देशको हानि होगी।

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे क्रानिकल, ३१-१२-१९२९

१. गांधीजीने हिन्दीमें भाषण दिया जो उपलब्ध नहीं है।

२. ११६ मत पक्षमें और ११७ विपक्षमें आये।

३. नृ० चि० केलकर द्वारा प्रस्तुत किया गया। ११३ मत पक्षमें और ११४ विपक्षमें आनेसे गिर गया। संशोधनमें राष्ट्रीय संघर्षको शान्तिमय उपायोंसे सुलझानेकी दिशामें वाइसराय द्वारा की गई सेवाओंकी प्रशंसाका जिक्र प्रस्तावमें से निकाल देनेकी बात थी।

३४३. भाषण: अ० भा० कां० कमेटीकी विषय समितिमें – २

३० दिसम्बर, १९२९

यह कांग्रेस विदेशी वस्त्र बहिष्कार समिति, छुआछूत विरोधी समिति और मद्य-निषेध समितिको सुपुर्द किये हुए काम पूरी शक्तिसे कार्यान्वित करनेके लिए उन्हें बधाई देती है परन्तु खेदपूर्वक विचार प्रकट करती है कि राष्ट्रकी ओरसे इस दिशामें उतना प्रोत्साहन नहीं मिला जितना पानेकी आशा करनेका कांग्रेसको अधिकार था। इन समितियों और अखिल भारतीय चरखा संघसे जो अनुभव हुआ उससे यह पता चलता है कि विशेष तरहके कामोंके लिए बनाई गई ऐसी स्वायत्त संस्थाओं द्वारा काफी प्रभावशाली काम सम्भव है। इसलिए यह कांग्रेस पूर्वोक्त समितियोंको स्थायी घोषित करती है। वे समितियाँ सर्वथा स्वायत्त होंगी और उन्हें अपनी संख्यामें वृद्धि करने और अपने-अपने संविधान बनाने और चन्दा उगाहनेके अधिकार होंगे बशर्ते कि वे कांग्रेसकी सामान्य नीतिका अनुसरण करें और यदि कभी कांग्रेसको ऐसा लगे कि इनमेंसे कोई भी संस्था राष्ट्रहितके विरोधमें काम कर रही हैं तो कांग्रेस उससे सम्बन्ध विच्छेद करनेका अधिकार अपने पास रखती है।[1]

इसके बाद महात्माजीने कहा:

आपके सामने जो प्रस्ताव पेश किया गया है उसके बारेमें कई प्रश्न पूछे गये हैं। यह पूछा गया है: "क्या यह साम्राज्यके भीतर साम्राज्य बनानेका इरादा है?" मेरा उत्तर है 'हाँ'। वे भी कहते हैं – 'इम्पीरियम इन इम्पीरियो'।[2] मैं इन प्रस्तावित समितियोंको औपनिवेशिक स्वराज्य देना चाहता हूँ। आपने अखिल भारतीय चरखा संघको औपनिवेशिक स्वराज्य दे दिया है और परिणाम यह है कि १५०० गाँवोंमें वे काम कर रहे हैं और जो भी काम किया जाता है उसका श्रेय कांग्रेसको मिलता है। यदि कभी अखिल भारतीय चरखा संघकी प्रवृत्ति कांग्रेस विरोधी हो जाये तो आपने अपना नाम इस्तेमाल करनेकी जो आज्ञा उसे दे रखी है, सो आप वापस ले सकते हैं। आज कांग्रेस खादीके पक्षमें है। लेकिन हममें ऐसा विचार रखनेवाले लोग हैं जो खादीके विरोधी हैं और उसके विरुद्ध काम करते हैं। फिर हममें से कुछ लोग यह विचार भी रखते हैं कि केवल खादी तैयार करनेसे ही विदेशी वस्त्रका पूर्ण बहिष्कार नहीं हो सकेगा और कांग्रेसके कार्यक्रममें मिलका कपड़ा भी शामिल कर दिया जाना चाहिए। अखिल भारतीय चरखा संघका विश्वास है कि हमें खादीसे स्वराज्य मिल जायेगा। यदि कल कांग्रेसका विश्वास खादी परसे उठ जाये और

१. पण्डित जवाहरलाल नेहरूने विषय समितिके सामने यह प्रस्ताव महात्माजीकी ओरसे रखा।

२. लेटिन उक्ति जिसका अर्थ है – साम्राज्यके भीतर साम्राज्य।

कांग्रेसके खयालमें चरखा संघकी नीति कांग्रेस नीतिकी विरोधी हो जाये तो उस संस्थाको अपनेसे अलग कर देनेके लिए कांग्रेसको महासभामें एक प्रस्ताव-भर पारित करना पड़ेगा।

फिर यह पूछा जाता है कि चरखा संघ इस बीच कांग्रेसके नामका प्रयोग करके जो प्रतिष्ठा, अधिकार और बल प्राप्त कर चुकेगा, उसका क्या होगा। यह खतरा तो इसमें जरूर है। परन्तु आपको खतरा मोल लेनेके लिए तैयार रहना ही चाहिए। आपमें इतना आत्मविश्वास होना चाहिए कि जबतक कांग्रेस सच्ची पद्धति पर रहकर काम करती रहती है, वही सर्वोच्च संस्था रहेगी और कोई भी अधीनस्थ संस्था उसका अधिकार या मान नहीं छीन सकती। इतिहासमें ऐसे दृष्टान्त है जहाँ अनुचित रीतिसे अधिकार हथिया लिये गये हैं। परन्तु आपको इतना खतरा मोल लेनेके लिए तैयार रहना चाहिए। इस मामलेमें कोई अनिवार्यता नहीं है। यह काम करवानेका एक तरीका है। जिनकी किसी एक कामको करनेमें विशेष रुचि है कांग्रेस उनसे कहती है—'आगे बढ़ो और हमारे नामपर और हमारे अनुमोदनसे अच्छा काम करो।' इसके परिणामस्वरूप अच्छा काम होता है और इससे कांग्रेसकी प्रतिष्ठा और अधिकार बढ़ता है। इस सम्बन्धमें मुझे चिरला-पेरला उदाहरणकी याद हो आई है। डुग्गिराला गोपाल कृष्णैयाने जब चिरला-पेरला सत्याग्रह[1] शुरू किया, मुझसे सलाह ली। मैंने उनसे और जब मैं चिरला-पेरला गया तो वहाँ लोगोंसे भी कहा कि वे आन्दोलनके लिए कांग्रेसके नाम और अधिकारका प्रयोग किसी भी हालतमें न करें। यह आन्दोलन वे अपने ही बलबूतेपर करें। यदि वे सफल हो गये तो श्रेय कांग्रेसको मिलेगा। यदि वे असफल हुए तो अपमानका भाजन उन्हें बनना पड़ेगा।

यहाँ मैं आपके सामने जो प्रस्ताव रख रहा हूँ वह इससे विपरीत है। इस प्रस्तावके अन्तर्गत जो काम किया जायेगा उसका श्रेय कांग्रेसको मिलेगा; परन्तु कांग्रेस उसके लिए पैसा नहीं देगी। वह इस दिशामें खुद कोई प्रयत्न भी नहीं करेगी। आप चाहें तो आज विदेशी वस्त्र-बहिष्कार समिति, मद्य-निषेध समिति और छुआछूत विरोधी समितिको भी बन्द कर दे सकते हैं। मैं पिछले दो बरसोंसे अस्पृश्यता निवारण संबंधी काम जमनालालजीके मारफत करनेकी कोशिश कर रहा हूँ।

कई बरसोंतक इस दिशामें कुछ ज्यादा काम नहीं किया जा सका। इसी दौरान कलकत्ता कांग्रेसने[2] प्रस्ताव पास किया और उसके द्वारा अस्पृश्यतानिवारण समितिकी नियुक्ति की गई और वह काम जमनालालजीको सुपुर्द कर दिया गया। उन्होंने कुछ सफलता प्राप्त करके दिखाई और उसका श्रेय कांग्रेसको मिला। सामाजिक कार्यकी पूरी जिम्मेदारी लेना कांग्रेसका मुख्य कार्य नहीं है। किन्तु साथ ही इसे सामाजिक कार्यको बढ़ावा तो देना ही चाहिए। कांग्रेस एक राजनीतिक संस्था है और उसमें बहुधा मतभेद होना जरूरी है। मेरा अनुरोध है कि हम दूरंदेशी

१. देखिए खण्ड २१, पृष्ठ १६-१८।

२. १९२८ में।

से काम लें, ये समितियाँ बनायें तथा उन्हें अपने ही बनाये संगठनों द्वारा और अपने ही द्वारा इकट्ठे किये हुए पैसोंसे अच्छा काम करने दें।

मै आपका सेवक हूँ। मैं आपकी सेवा करनेके लिए बाध्य हूँ। मैं आपसे स्पष्ट बात कह देना चाहता हूँ। तथ्योंकी उपेक्षा करनेसे क्या लाभ है? इन सब कामोंके लिए कांग्रेसको जितना पैसा चाहिए वह सारा पैसा कांग्रेसके नामपर इकट्ठा कर पाना आसान नहीं है। कांग्रेसकी ओरसे ही मैं आपसे यह बात कह सकता हूँ। अपनी लम्बी यात्राओंके दौरानके अपने अनुभवसे मेरा ध्यान बहुत-सी चीजोंपर गया है और मैंने बहुत-सी चीजें देखी हैं। आन्ध्र और संयुक्त प्रान्तमें मुझसे कांग्रेस कोषके बारेमें कई प्रश्न पूछे गये। मुझसे पूछा गया — तिलक स्वराज्य कोषका क्या हुआ? उसे किसने खर्च किया? आप लोगोंने इसे कैसे खर्च किया? इसका हिसाब कहाँ है? फिर वे यह भी कहते हैं हम पैसा आपको आपके नामपर दे देंगे। हम आपको पैसा दे देंगे परन्तु कांग्रेसको नहीं देंगे। मैं उनसे कहता हूँ, कि आप किसी भी नामसे मुझे पैसा दे दें। मैं आपको हर पाईका हिसाब दूँगा। अब मैं आपसे कहता हूँ कि मुझे यह पैसा उन उद्देश्योंकी पूर्तिके लिए खर्च करने दीजिए जिनका कांग्रेस आज अनुमोदन करती है। परन्तु बदलेमें मैं आपसे यही कहता हूँ कि इन समितियोंको औपनिवेशिक स्वराज्य दे दीजिए। जहाँतक कांग्रेसका सम्बन्ध है, हमें धनके लिए की गई हमारी अपीलोंपर जो प्रतिक्रिया होती है उसे जान लेना चाहिए। हमने आमदनीपर एक प्रतिशत कर लगाया। हमें मालूम है कि कितने थोड़े लोगोंने वह कर दिया। हमारे लिये यह शर्मकी बात है। ये समितियाँ आपसे कोई पैसा नहीं चाहती — आदमी नहीं माँगती। केवल आपके नामपर काम करनेकी अनुमति माँगती हैं। परन्तु आप लोग जिन्हें न पैसा मिलता है और न आदमी, यह कहते हैं: "नहीं अधिकार हमारा जरूर होना चाहिए।" मैं आपको बता दूँ कि आपको यह अधिकार बिलकुल नहीं है। यदि आपको यह अधिकार होता तो इन समितियोंको आप वह औपनिवेशिक स्वराज्य नहीं दे रहे होते जिसे देनेकी मैं आपसे प्रार्थना कर रहा हूँ। यह बात सही है। इन समितियोंको औपनिवेशिक स्वराज्य दीजिए या मत दीजिए, परन्तु कोई गलतफहमी नहीं होनी चाहिए। मैं विदेशी सरकारसे कहता हूँ कि स्वतन्त्रता मेरा अधिकार है। परन्तु मैं आपसे कहता हूँ, आपसे प्रार्थना करता हूँ, आपसे याचना करता हूँ कि इन समितियोंको औपनिवेशिक स्वराज्य या स्वतन्त्रता दीजिए, फिर भी अब आपको जैसा सही लगे वैसा कीजिए।

परन्तु मुख्य प्रस्तावके सम्बन्धमें मेरी आपसे एक अपील है। आपने दो दिन मुझसे अपनी ताकत आजमाई है। आपको उस प्रस्तावपर कांग्रेसके खुले अधिवेशनमें भी ऐसा करनेका हक है। मैं आपका सामना करने और आपसे लड़नेके लिए तैयार हूँ। परन्तु कृपया दूसरे प्रस्तावोंमें आप बाधा न डालिए। यह दिखा दीजिए कि आप समयकी कीमत जानते हैं। कृपया व्यवहारकुशल बनिए। आप व्यवहारकुशल बननेको भी तैयार नहीं होते। आप एक प्रस्तावपर दो दिन लगाते हैं। आप कार्यसमितिको समय नहीं देते। और फिर प्रस्तावकी प्रतियाँ आपको न देनेपर आप उसकी खबर

लेते हैं। क्या यह ठीक है? क्या यह व्यवहार्य है? मैंने अभी हालमें समाचारपत्रोंमें पढ़ा कि करोड़ों रुपयोंके प्रबन्धसे सम्बन्धित बैंक ऑफ इंग्लैंडकी बैठक साढ़े तेरह मिनटमें समाप्त हो गई। हमें उनसे कुछ सीखना चाहिए। मैं आपसे अपील करता हूँ कि आपको जैसा अच्छा लगे वैसा निश्चय कर लीजिए, परन्तु व्यवहारकुशल बनिए और भाषण कम दीजिए। सूचना प्राप्त करनेके लिए प्रश्न पूछिए। परन्तु बहुत समय न कीजिए, क्योंकि यह समयका अपव्यय होगा।

डा० रहीमको उत्तर देते हुए महात्माजीने कहा कि इन समितियोंका प्रस्ताव कामके विशेष ज्ञानके सिद्धान्तपर किया गया था। डा० हार्डिकर कांग्रेसके नामपर परन्तु स्वायत्त संविधानके अन्तर्गत हिन्दुस्तानी सेवादल द्वारा जो काम कर रहे थे, महात्माजीने उसका दृष्टान्त दिया। भाषण जारी रखते हुए महात्माजीने कहा:

यदि कांग्रेस सब कुछ अपने हाथमें रखना चाहती है, तो कोई काम नहीं होगा और कोई प्रगति नहीं होगी। कुछ एक लोग ऐसे होते हैं, जिनकी केवल एक किस्मके काममें रुचि होती है और जो विशेष उद्देश्योंके लिए अपना समय और शक्ति लगानेको तैयार रहते हैं। जो उद्देश्य कांग्रेसकी नजरमें है और जिनसे उसकी प्रतिष्ठा बढ़ती है, उनकी पूर्तिमें इन लोगोंको जुटा देना चाहिए।

श्री रामनारायणसिंहको उत्तर देते हुए गांधीजीने कहा कि यह सही है कि किन्हीं मामलोंमें खद्दरका प्रचार लोगोंमें केवल आर्थिक अपीलके आधारपर करना पडा। खद्दरके आर्थिक और राजनीतिक दोनों पहलू हैं। राजपूतानामें और कुछ अन्य राज्योंमें खादीकी बातपर शासक भड़क उठे। तब उनके सामने खद्दरका आर्थिक पहलू पेश किया गया। गांधीजीने कहा —

मैं उस दिन एक मुख्य न्यायाधीशके पास गया और उनसे खद्दरके लिए रुपया माँगा। उन्होंने कहा यह एक राजनीतिक बात है। मैंने कहा इसके राजनीतिक पहलू हो सकते हैं, परन्तु आपको इससे कोई वास्ता नहीं। यह लोकहितकी बात है।

श्री अणेको उत्तर देते हुए गांधीजीने कहा कि एक बार समिति बन जानेपर कांग्रेसको उसके कर्मचारी वर्गके बारेमें बोलनेका कोई हक नहीं होगा।[1]

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे क्रॉनिकल, १-१-१९३०

१. इसकेबाद प्रस्ताव मतदानके लिए पेश किया और वह भारी बहुमतसे गिर गया।

३४४. भाषण : अ० भा० का० कमेटीकी विषय समितिमें – ३[1]

३० दिसम्बर, १९२९

मुझे मालूम है कि आपने अभी मेरा पेश किया हुआ एक प्रस्ताव गिरा दिया है और शायद आप यह प्रस्ताव भी गिरा दें। परन्तु चूँकि आप कुछ प्रस्ताव गिरा देना चाहते हैं, कार्यसमिति और मैं अपना काम नहीं रोक सकते। कार्यसमितिके सदस्य आपके सेवक हैं। उनके काम पर आप कुछ भी निर्णय क्यों न दें, उन्हें अपना काम करना ही चाहिए। चूँकि ऐसा प्रतीत होता है कि कार्यसमितिमें आपका विश्वास नहीं रह गया है, मेरे विचारमें आपको अपनी एक अलग कार्यसमिति चुन लेनी चाहिए। नागपुर कांग्रेस[2] के दिनोंसे मैं कांग्रस संविधानमें यह महत्त्वपूर्ण परिवर्तन लानेका अनुरोध कर रहा हूँ। मेरा यह विश्वास दृढ़ हो गया है कि कांग्रसके सदस्य इतने ज्यादा हैं कि इसका काम शान्तिसे, तत्परतासे और सुव्यवस्थित ढंगसे नहीं चल सकता। मेरा यह भी विश्वास है कि अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीके ३५० सदस्य होना बहुत ज्यादा है। मैं यह अपना कर्त्तव्य समझता हूँ कि आपके कामके लिए कार्यक्रम आपके सामने रखूँ। और इसपर निर्णय लेना आपपर निर्भर करता है। आपको पूरी तरहसे यह एहसास होना चाहिए कि आपका क्या काम है। मैं जोर देकर आपसे कहना चाहूँगा कि यदि आप आज यह प्रस्ताव पारित नहीं करते तो यह आपको कल और कल नहीं तो परसों पास करना ही पड़ेगा। यदि आप चाहें तो एक और कार्यसमिति चुन लें। परन्तु जबतक यह कार्यसमिति है आपको ऐसा करना चाहिए कि जो भी कुछ यह सामने रखे पास कर दिया जाये। मुझे यकीन हो गया है कि आजकल कांग्रेसमें जो निर्देशक विभाग है वह अलग कर दिया जाना चाहिए। इससे बहुत ज्यादा पैसे और शक्तिका अपव्यय हो रहा है। इस प्रस्तावका उद्देश्य है कि कांग्रेसकी शक्ति केन्द्रित की जाये। यदि आपकी विधानसभामें इतने ज्यादा सदस्य नहीं है तो आपको यह बात क्योंकर उचित समझनी चाहिए कि अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीमें इतने ज्यादा सदस्य हों? आप राष्ट्रीय संसदकी बात करते हैं, तो आपको यह एहसास होना चाहिए कि आपकी राष्ट्रीय संसदका आकार कितना होना चाहिए। यदि कांग्रस सारे देशमें दूर-दूर तक फैलना चाहती है तो उसे अपने कार्यक्रमपर ध्यान केन्द्रित करना चाहिए। आप सविनय अवज्ञा चाहते हैं। परन्तु इतनी भारी-भरकम किसी राष्ट्रीय संस्थासे सविनय अवज्ञाके कार्यान्वित किये जानेकी आप कभी आशा ही नहीं कर सकते। मैं सविनय अवज्ञाके लिए जीवित हूँ और यदि आवश्यकता हुई तो मैं अलगसे सविनय अवज्ञा जारी रखूँगा। जैसी अनुशासनहीनता

१. प्रस्ताव रखनेके बाद गांधीजी अ० भा० का० कमेटीके प्रतिनिधियोंकी संख्यामें कमी करनेके बारेमें बोले। मूल पाठके लिए देखिए, प्रस्ताव संख्या – ४, पृष्ठ ३३०।

२. १९२० में।

आज विद्यमान है, उसमें आप सविनय अवज्ञाकी बात कभी सोच भी नहीं सकते। मैं प्रस्ताव पर और ज्यादा नहीं बोलना चाहता। अब आपको जैसा अच्छा लगे वैसा निर्णय करें।

[अंग्रेजीसे]

बोम्बे क्रॉनिकल, १-१-१९३०

३४५. भाषण : कांग्रेस अधिवेशन लाहौरमें – १

३१ दिसम्बर, १९२९

श्री मो० क० गांधीने . . . निम्नलिखित प्रस्ताव पेश किया :

यह कांग्रेस वाइसरायकी गाड़ी पर बम फेंके जानेके नृशंस हिंसात्मक आचरण पर दुःख प्रकट करती है और अपना यह विश्वास फिर दोहराती है कि ऐसा आचरण कांग्रेस सिद्धान्तके ही खिलाफ नहीं है, बल्कि इसके परिणामस्वरूप राष्ट्रीय हितको भी हानि पहुँचती है। यह कांग्रेस वाइसराय, लेडी इर्विन और गरीब नौकरों सहित उनके दलको सौभाग्यसे और बाल-बाल बच जाने पर बधाई देती है।

हिन्दुस्तानीमें बोलनेके बाद श्री गांधीने भाषण जारी रखते हुए कहा :

सभापति महोदय और मित्रो,

मैंने जो-कुछ कहा उसका सार अंग्रेजीमें देनेके लिए मुझसे कहा गया है। मेरी रायमें यदि कांग्रेसके सामने जो काम है उससे सम्बन्धित प्रस्ताव एक मतसे पारित कर दिये जायें तो यह शुभारम्भ होगा। आपके सामने आनेमें मैंने इस मामलेमें अपनी जिम्मेदारीको पूरी तरहसे समझा है और मेरा निश्चित विश्वास है कि यदि कांग्रेस इस प्रस्तावको लिपिबद्ध नहीं करती तो अपना स्पष्ट कर्त्तव्य निभानेमें चूक जायेगी। आपको इसका कारण प्रस्तावमें ही निर्दिष्ट मिलेगा। जबतक कांग्रेसका सिद्धान्त जैसेका-तैसा रहता है अर्थात् हम चाहे जिस तरीकेसे नहीं अपितु शान्तिमय और न्यायसंगत तरीकेसे स्वराज्य प्राप्त करना चाहते हैं तबतक इस शर्तको भंग करनेवाली भारतमें घटनेवाली हरएक घटना पर ध्यान देना हमारा परम कर्त्तव्य है। शायद आपसे यह कहा जाये और मैं कह सकता हूँ कि कहा जायेगा कि जब वे लोग जो कांग्रेस संगठनके नहीं हैं और किसी भी रूपमें अथवा किसी भी प्रकारसे उससे सम्बन्धित नहीं है, ऐसे काम करते हैं जो हमारे सिद्धान्तके विपरीत हों, तब हम किसी भी तरह और किसी भी अर्थमें उत्तरदायी नहीं हैं। जो इस तरह सोचते हैं उनसे, मैं विनम्रतापूर्वक कहता हूँ कि उनके कन्धोंपर जो बड़ा भारी उत्तरदायित्व है, उसका उन्हें जरा-भी ज्ञान नहीं है और कांग्रेसकी जो महती-प्रतिष्ठा है, उन्हें उसका भी कोई ज्ञान नहीं है। या तो हम यह मानें कि हम हिन्दुस्तानके तीस करोड़ लोगोंका

या तो प्रतिनिधित्व करते हैं या यह मानें कि नहीं करते। यदि हम उनका प्रतिनिधित्व करनेका दावा करते हैं — कांग्रेसका एक विनम्र कार्यकर्त्ता होनेके कारण मैं तो निश्चित रूपसे करता हूँ, और मुझे आशा है आप भी करते हैं — तब यह हमारा कर्त्तव्य हो जाता है कि हिन्दुस्तानमें पैदा हुआ कोई भी व्यक्ति जो-कुछ करे उसके लिए हम अपनेको उत्तरदायी समझें। मुझे इससे रत्ती-भर भी सरोकार नहीं कि वह आदमी विवेकशील है या खुफिया विभागसे सम्बन्धित है। मुझे आशा है कि आप खुफिया विभागके भारतीयोंको भी अपना सम्बन्धी मानते होंगे। हम अपने आचरणसे हर भारतीयको अपने सिद्धान्तके अनुरूप बना लेनेकी और उसकी सेवाओंका अपने ध्येयकी प्राप्तिके लिए उपयोग करनेकी आशा करते हैं। इतना ही नहीं बल्कि प्रस्तावमें कहा गया है, और मुझे आशा है कि आप भी ऐसा विश्वास करते हैं कि इस तरहके आचरणसे राष्ट्रहितको बड़ी हानि होती है।

कांग्रेसके इतिहासकी विभिन्न युगान्तरकारी घटनाओंकी ओर आपका ध्यान आकृष्ट करके मैं आपका वक्त नहीं लेना चाहता; उनसे आपको संतोषप्रद रूपसे यह मालूम हो जायेगा कि बम फेंककर किया गया हर हिंसात्मक आचरण भारतको मँहगा पड़ा है। आप चाहें तो कह सकते हैं कि जो सुधार हासिल किये गये हैं, वे बम फेंककर किये गये हिंसात्मक आचरणके बिना या बिना हिंसाके नहीं हासिल किये जा सकते थे; किन्तु मैं आपको यह बता देना चाहता हूँ कि इनमें से हरएक सुधारकी जितनी कीमत चुकाई जा सकती थी हमें उनसे कहीं ज्यादा कीमत चुकानी पड़ी है। मानो हमने सिर्फ खिलौनोंपर लाखों दे डाले हैं।

कांग्रेस प्रस्तावमें वाइसराय, लेडी इर्विन और गरीब नौकरों समेत उनके दलको भी बधाई दी गई है। मेरी विनम्र रायमें प्रस्तावके पहले भागमें जो-कुछ कहा गया है, वाइसराय, लेडी इर्विन और उनके दलको बधाई देना उसका सहज परिणाम है। सामान्य शिष्टाचार बरतनेसे हमारा कुछ नहीं घटता है। सिर्फ इतनी ही बात नहीं है, जो अंग्रेज भारतमें रहना चाहते हैं वे चाहे अधिकारी वर्गके हों या न हों उनकी हमें देखभाल करनी है और हम लोगोंको तो, जो इस अहिंसा-धर्मका दम भरते हैं, उनकी जीवन-रक्षाके लिए अपने-आपको उनका न्यासी समझना चाहिए और यदि हम यह बात भूल गये तो हम अपने सिद्धान्तका तात्पर्य न समझ पानेके अपराधी होंगे। हमारे ऊपर सेनाका जबर्दस्त बोझ है। यह बोझ भारतके ७,००,००० गाँवोंमें रहनेवाले लाखों भूखसे पीड़ित लोगोंको पीसे डाल रहा है। वास्तवमें सेनाके इस बोझकी आवश्यकता सीमा-सुरक्षाके लिए नहीं है। मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि यह बोझ इसी कारण है कि इंग्लैंडसे आये हुए कुछ एक हजार अंग्रेज तीस करोड़ लोगोंपर शासन करते रहना चाहते हैं। यदि हम इस सैनिक बोझसे किसी समय छुटकारा पा जायें तो यह अत्यन्त आवश्यक हो जायेगा कि जिन्हें हम अपना शत्रु भी मानते हों, उनके जीवन भी हमारे निकट एक पवित्र धरोहर हों। मेरी नम्र रायमें भारतकी राजनैतिक मुक्तिके लिए अहिंसा-धर्मका स्पष्टतम तात्पर्य यही है और यदि आप मुझसे सहमत हों तो आपकी ओरसे यह मामला शिष्टताका ही नहीं, बल्कि कर्त्तव्यका है कि हम वाइसराय, लेडी इर्विन और नौकरों

सहित उनके दलको बधाई दें। यदि आप ऐसा करेंगे तो आप भी बधाईके पात्र होंगे। मुझे उम्मीद है कि इस प्रस्तावके विरोधमें जो-कुछ कहा जाये वह सब सुन चुकनेके बाद आप इसे सर्वसम्मति और पूरे हृदयसे पास कर देंगे।[1]

भाइयो और बहनो,

मैं जानता हूँ कि पिछली बार इस प्रस्तावपर मैंने काफी कहा है — और मैं अब कुछ भी न बोलूँ तो अच्छा रहेगा। लेकिन जब किसीको एकाध खास बातमें बहुत विश्वास रहता है तो उसे उसके पक्षमें बोलनेकी लगन रहती है; और यह इसलिए ताकि जो चीज वह समझाना चाहता है, उसे समझा सके। इसी लगनके कारण मैं यहाँ खड़ा हो गया हूँ।

आपकी यह कांग्रेस एक बड़ा काम उठानेवाली है। यह उम्मीद है। आप बड़ी उम्मीदसे यहाँ इकट्ठे हुए हैं। और वह यह है कि इस कांग्रेसमें हम यह अंगीकार करते हैं कि स्वराज्यका अर्थ स्वतन्त्र हिन्दुस्तान है। मेरे लेखे हिन्दुस्तानी स्वतन्त्र तब हो सकते हैं, जब जो कौमें हिन्दुस्तानमें रहती हैं वे उनकी स्वतन्त्रताको कायम रखें। अगर यह बात, जो मैं आपसे कह रहा हूँ, सही है, तो आज हमारा क्या धर्म हो जाता है? किसी भी अंग्रेज, छोटेसे एक लड़के, एक अदना अंग्रेजसे हम यह कह सकते है कि जितने भी लोग स्वतन्त्र हिन्दुस्तानमें हैं उनकी हिफाजतकी जिम्मेदारी हिन्दुस्तानपर है। इसमें पशोपेशकी कोई बात ही नहीं है। आज आप पूरे जोशमें आकर यह बात भले ही न समझें, मगर मैं इतना चाहता हूँ कि आप भी इसे समझ लें।

बहुतसे भाइयोंने इस प्रस्तावकी मुखालफत की। स्वामी गोविन्दानन्द और डाक्टर आलम तो यहाँतक कहते हैं कि रेजोल्यूशन (प्रस्ताव)की जरूरत नहीं है। लेकिन मैं यह कहता हूँ कि फिर यह नॉनवॉयलेन्स (अहिंसा) नहीं है; और डाक्टर आलमने यह दावा किया कि वह नॉनवॉयलेन्स (अहिंसा) मानते हैं। काम कोई भी करे, मैं यह कहता हूँ कि हमको यह कहना चाहिए कि हमने यह किया है। लेकिन अभी थोड़े दिनोंमें हवा बदल गई है। एक काम जो अभी वॉयलेन्स (हिंसा)का हुआ उसके लिए कहा जाता है कि हमें उसपर कुछ कहनेकी जरूरत नहीं है। हम अपना काम करते हैं वह अपना करें। मैं कहता हूँ कि यह हिन्दुस्तानको आजाद करनेका तरीका नहीं है। आप साथ ही यह कहते हैं कि कांग्रेस हिन्दुस्तानकी सबसे बड़ी संस्था है। अगर ऐसा है तो जो काम होगा कांग्रेस [उसपर] अपनी राय जाहिर कर देगी।

अगर आप रेजोल्यूशन (प्रस्ताव)को फेंक देना चाहते हैं तो फेंक दें। कांग्रेसके क्रीड (सिद्धान्त)को भी फेंक देना चाहते हैं तो फेंक दें। लेकिन अगर कांग्रेसका क्रीड (सिद्धान्त) रहता है तो आप इस रेजोल्यूशन (प्रस्ताव)को पास करनेके अलावा कोई काम नहीं कर सकते। एक बात और कही गई है, जिसको सुनकर मुझे तकलीफ हुई है। वह यह कि अगर कांग्रेस इस रेजोल्यूशन (प्रस्ताव)को ले लेगी तो नौजवानों

१. इसके बाद प्रस्तावपर बहस हुई जिसमें डा० अन्सारी, स्वामी गोविन्दानन्द, पुरुषोत्तमदास टण्डन और दूसरे लोग बोले। बहसका जवाब गांधीजीने हिन्दीमें दिया।

को नहीं पहचानता हूँ, ऐसा नहीं है। मैं हजारों नौजवानोंसे मिला हूँ . . . . यूरोपमें भी हजारोंसे मिला हूँ। किसीने किसी बातमें मेरा विरोध नहीं किया। यहाँ भी वे हमारे पास आ जाते हैं, तो मुझे इस बातका डर नहीं है कि एक भी नौजवान, [यदि मैं] सच्ची बात कहूँ या कांग्रेसकी ओरसे एक बात कहूँ तो वह मुझसे हट जायेगा। लेकिन मान भी लें कि नौजवानोंको इसमें रंज होता है। [वे] रंज भी होंगे तो भी जो हिन्दुस्तानके हितके लिए, धर्मके लिए है वह हम करते रहेंगे। ईश्वर ताकत दे कि हम और अच्छी बात करें। अगर मैं अपने कर्त्तव्यको छोड़ देता हूँ, इसलिए कि लोग मुझको छोड़ देंगे, तो मैं समझूँगा कि मैं कांग्रेसका सेवक होनेके लायक नहीं हूँ। अगर कांग्रेसको आप मानते हैं, तो आपका यह काम है कि जो बात आप सत्य मानते हैं उसको करें। आप लोग यह मानते हैं कि स्वराज्य होना चाहिए। आप बड़ा काम उठाना चाहते हैं, राष्ट्रवादी बनना चाहते हैं। मैं बड़े अदबसे अपने उन मित्रोंसे यह कहूँगा कि उसके लिए आपमें शक्ति नहीं है। जो चीज आपमें नहीं है, उसको आप छिपाना चाहते हैं। हममें शक्ति है या नहीं है; परन्तु हम स्वराज्य चाहते हैं। हम छोटे मुँह बड़ी बात करनेका इरादा करते हैं, तो मैं यह कहना चाहता हूँ कि अगर आप नये प्रोग्राम (कार्यक्रम) पर चलना चाहते हैं तो आप दिलको साफ करके चलें।

आपसे मैं कहना चाहता हूँ कि आपको इस प्रस्तावसे डरपोकपनकी बू आती है, बूका अर्थ बदबू है। आप देखें, इसमें अंग्रेजोंकी खुशामदकी क्या बात है? इसमें खुशामदकी तो कोई बात नहीं है। कांग्रेसने तो खुशामद करना छोड़ दिया है। स्वराज्यकी बात एक तरफ और खुशामदकी बात दूसरी तरफ, यह जहनियत निकाल दीजिए। जो आदमी कर्त्तव्यको भूल जाता है, वह डरपोक होता है। जो ईश्वरको छोड़कर किसीसे नहीं डरता वह बम फेंकनेवालेसे क्यों डरे? जो हमारा कर्त्तव्य है, जो क्रीड (सिद्धान्त) है, मैं उसको मानता हूँ। जो लोग कांग्रेसके क्रीड (सिद्धान्त)के माफिक नहीं हैं और उसका इजहार करते हैं, तो जो शख्स ऐसा काम करता है कांग्रेस उसे जरूर कहेगी कि यह क्या काम है, कैसा काम है। अगर वह आदमी गुस्सेमें भी आ जाये तो भी यह करना होगा। जब-जब ऐसा मौका आया है, लोग गुस्से हुए हैं। नौजवानोंने समझ लिया है कि विचार यह है। बस, मेरा कहना यह है कि आप लोग समझें कि आप प्रतिनिधि बनकर आये हैं। आप लोग प्रतिज्ञा करके आये हैं, आप ईश्वरको मानते हैं, सत्याग्रहको मानते हैं, कांग्रेसको मानते हैं तो यह समझ लें कि कांग्रेसको या किसको मानते हैं। ईश्वरको मानते हैं तो ईश्वरको दरम्यान रखकर जो ठीक हो वह करें। अगर ठीक नहीं तो रेजोल्यूशन (प्रस्ताव)को फेंक दें।[1]

[अंग्रेजीसे]

अखिल भारतीय कांग्रेसके ४४वें अधिवेशनकी रिपोर्ट

१. इसके बाद प्रस्तावपर मत लिया गया और वह पारित घोषित कर दिया गया।

३४६. भाषण : कांग्रेस अधिवेशन लाहौरमें – २

३१ दिसम्बर, १९२९

श्री मो० क० गांधीने अपना दूसरा प्रस्ताव पेश किया जो इस प्रकार है :

यह कांग्रेस औपनिवेशिक स्वराज्यसे सम्बन्धित ३१ अक्तूबरको की गई वाइसरायकी घोषणापर कांग्रेसियों समेत सभी दलोंके नेताओं द्वारा हस्ताक्षरित घोषणाके सम्बन्धमें कार्यसमिति द्वारा उठाये गये कदमका समर्थन और स्वराज्यके लिए किये जा रहे राष्ट्रीय आन्दोलनके सम्बन्धमें वाइसराय द्वारा समझौतेके लिए किये गये प्रयत्नोंकी सराहना करती है। तथापि तबसे जो-कुछ हुआ है तथा मो० क० गांधी, पण्डित मोतीलाल नेहरू और अन्य नेताओं तथा वाइसरायकी भेंटसे जो परिणाम निकले हैं उन्हें देखते हुए कांग्रेसका यह विचार है कि वर्तमान परिस्थितियोंमें प्रस्तावित गोलमेज परिषदमें कांग्रेसके प्रतिनिधित्वसे कोई लाभ नहीं होनेवाला है। इसलिए यह कांग्रेस पिछले साल अपने कलकत्तेके अधिवेशनमें पास हुए प्रस्तावको ध्यानमें रखते हुए यह घोषणा करती है कि कांग्रेस संविधानके अनुच्छेद एकमें आये 'स्वराज्य' शब्दका अर्थ पूर्ण स्वराज्य होगा; वह यह भी घोषित करती है कि नेहरू समितिकी रिपोर्टकी समूची योजना रद हो गई है और वह यह आशा करती है कि अबसे आगे सभी कांग्रेसी अपना पूरा ध्यान भारतके लिए पूर्ण स्वराज्य हासिल करनेपर लगायेंगे। स्वराज्य आन्दोलन चलानेके लिए प्रारम्भिक कदमके रूपमें तथा कांग्रेसकी नीतिको बदले हुए उद्देश्यके यथासम्भव अनुरूप बनानेके लिए यह कांग्रेस केन्द्रीय और प्रान्तीय विधान सभाओं तथा सरकार द्वारा गठित समितियोंका पूर्ण बहिष्कार करती है और कांग्रेसियों, तथा अन्य लोगोंसे, जो राष्ट्रीय आन्दोलनमें भाग ले रहे हैं भविष्यमें प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूपमें चुनावोंमें भाग न लेनेका आग्रह करती है तथा कांग्रेसके वर्तमान सदस्योंको विधान सभाओं और समितियोंसे त्यागपत्र देनेका आदेश देती है। यह कांग्रेस राष्ट्रसे कांग्रेसके रचनात्मक कार्यक्रमपर चलनेकी जोरदार अपील करती है और अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीको जब भी वह उचित समझे तथा जैसे भी वह आवश्यक समझे वैसे बचावोंके साथ सविनय अवज्ञाका कार्यक्रम, जिसमें कुछ चुने हुए या अन्य इलाकोंमें कर न देनेकी बात शामिल है, करनेका अधिकार देती है।[1]

सभापति महोदय, भाइयो और बहनो,

१. इसके बाद महात्मा गांधी हिन्दुस्तानीमें बोले।

जो-कुछ मैं आपसे कह रहा हूँ अगर आप नहीं सुन रहे हैं तो मुझे बतला दें। आप नहीं सुन रहे हैं क्या? (नहीं, नहीं)। अब आप सुनते हैं? आपको कृपा करके जरूर सुन लेना चाहिए (हास्य ध्वनि) आप सुन लें तो सम्भव है कि आपको लाभ होगा। नहीं भी सुनेंगे तो मेरा कुछ हर्ज नहीं है। (हास्य ध्वनि)। आप लोगोंके हाथमें दूसरा प्रस्ताव है, मैं उसको पढ़ रहा हूँ।

जो प्रस्ताव आप लोगोंके हाथमें है उस प्रस्तावको मैं पढ़ता हूँ। अगर आप इजाजत दे दें तो मैं उसे न पढ़ूँ, क्योंकि आप सब भाइयों और बहनोंके हाथमें वह प्रस्ताव अंग्रेजीमें है, और उसे आपने समझ लिया होगा। अगर आप समझते हैं तो कृपा करके आप सुनिये। मैं अंग्रेजीमें उसे पढ़नेके बजाय उसका जो मतलब हिन्दीमें बतलाना चाहता हूँ सो बतलाऊँगा। पहले तो यह एक लम्बा प्रस्ताव है और यह प्रस्ताव हम कांग्रेसकी जो कार्रवाई करना चाहते हैं, उसकी जड़ है। इसलिए मैं चाहता हूँ कि आप सब लोग इस प्रस्तावको अच्छी तरह समझ लें और इसके बारेमें निश्चित विचार बना लें।

हमारे सामने बड़े काम पड़े हैं। मैं बड़े अदबसे कहूँगा कि कोशिश करके जो काम हमारे सामने हैं, उन्हें करना चाहिए। तो पहली बात उस प्रस्तावमें यह है कि कार्यसमितिने, वाइसरायने इस वर्षमें अक्टूबर मासकी ३१ तारीखका जो ऐलान किया था, उसके बारेमें हमारे अगुआ लोगोंने जवाब[१] दिया और गोलमेज परिषद की जो शर्तें रखी गई थी, उस बारेमें कार्यसमितिने जो कुछ किया यह कांग्रेस उसको बहाल रखती है। यह एक हिस्सा है।

और दूसरा हिस्सा यह है कि इस बारेमें वाइसरायने स्वराज्यके बारेमें समझौता होनेके लिए जो मेहनत की है यह कांग्रेस उसकी तारीफ करती है।

तीसरा हिस्सा यह है कि अगरचे यह कांग्रेस उसकी कद्र तो करती है लेकिन कांग्रेस गांधी, पण्डित मोतीलालजी नेहरू, तेजबहादुर सप्रू और जिन्ना वगैराके वाइसरायके पास जाने और उनकी वाइसरायसे हुई गुफ्तगूका नतीजा सुननेके बाद यह निश्चय करती है कि मौजूदा हालातमें गोलमेज परिषदमें कांग्रेसके प्रतिनिधियोंके जानेसे कोई फायदा हासिल नहीं हो सकता। तो इस कारण कांग्रेसके प्रतिनिधियोंको गोलमेज परिषद हो तो भी उसमें नहीं जाना चाहिए। बहुतसे लोग तो जायेंगे मगर हम क्या करें, हमको यह देखना है।

कांग्रेसने कलकत्तेमें पिछले साल एक प्रस्ताव पास किया था। कलकत्तेमें इंडिपेंडेंस (स्वराज्य) का प्रस्ताव पास किया था। इसके लिए राजनीतिक भाषामें स्वराज्यके मानी सम्पूर्ण स्वतन्त्रता कर दिया गया था। आजसे इंडिपेंडेंस (स्वराज्य) [प्रथम ध्येय] हो जाता है। इसलिए कांग्रेस यह बतलाना चाहती है कि नेहरू रिपोर्ट, जिसके पक्षमें हम ब्रिटिश गवर्नमेंटको करना चाहते थे, अब खत्म हो जाती है — क्योंकि उसके लिए जो वक्त रखा था वह गुजर गया — उसकी आयु कलकत्तेमें १ वर्ष निश्चित की गई थी। कहा गया था कि एक वर्षके भीतर स्वीकार करना चाहे तो ब्रिटिश

१. देखिए "सर्वदलीय नेताओंका संयुक्त वक्तव्य", २-११-१९२९।

गवर्नमेंट उसे स्वीकार कर ले। मगर यह पूरा नहीं हुआ। इसलिए नेहरू रिपोर्ट अब कांग्रेसके लिए नहीं है। यह इस प्रस्तावमें लिखा हुआ है। इसलिए कांग्रेस यह उम्मीद करती है कि कांग्रेसके मातहत जो संस्थाएं हैं वे सम्पूर्ण आजादी पानेके लिए जो-कुछ कर सकती हैं, उसकी कोशिश करेंगी। इसके बाद यह लिखा है कि यह काम करनेके लिए पहले कांग्रेसने स्वराज्य शब्दके लिए इंडिपेंडेंस (स्वराज्य) को कांग्रेसके क्रीड (सिद्धान्त) में शामिल कर लिया है, तो इसके मुताबिक काम करना चाहिए। इस कारण अब कांग्रेस यह निश्चय करती है कि जो एसेम्बली (विधानसभा) और कौंसिल (विधान परिषद)के ऐलेक्शन (चुनाव) होते हैं उनमें कांग्रेसके लोग कोई हिस्सा नहीं लेंगे। और सब लोग जो वहाँ हैं, उनसे इस्तीफा दे दें। और एसेम्बली (विधानसभा) और कौंसिल (विधान परिषद) से हट जायें। यह बताया है। और कांग्रेसका राष्ट्रसे यह कहना है, कौमसे, जनतासे उसका यह कहना है कि अब कांग्रेसका जो रचनात्मक कार्य है जैसे खद्दर, अस्पृश्यता निवारण इत्यादि, सब लोग इसमें लग जायें। और कांग्रेस, अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीको यह अख्तियार दे दे कि जब वायुमण्डल अनुकूल है, ऐसा लगे, और जो शर्तें सामने हैं उसके साथ जिस सूबेमें, या जहाँ अच्छा लगे वहाँ अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी, जिस हल्केको अच्छा समझे, वहाँ सिविल नाफ़रमानी (सविनय अवज्ञा) करें — और नॉनपेमेंट ऑफ टैक्सेस (कर न देना) भी इसमें शामिल हैं। सिविल डिसोबिडिएन्स (सविनय अवज्ञा)को पूरा करें। यह सब मतलब इस प्रस्ताव का है।

अभी मैं इस प्रस्तावके बारेमें कुछ ज्यादा कहना नहीं चाहता। आप देख रहे हैं कि इस प्रस्तावमें सुधार करनेके लिए १०, १२ संशोधन पेश किये गये हैं। मैं आपको भी और अपनेको भी आराम देना चाहता हूँ। इसलिए मैं आपका वक्त बरबाद नहीं करूँगा। यह जरूर कहूँगा कि आप अच्छी तरह ध्यान देकर जो मुखालफतमें कहा जाता है उसे सुनें। एक छोटी बात और जरूर कहूँगा। पहले हिस्सेमें जो लिखा है, जो बयान किया गया है — उसमें यह नहीं आता है कि वाइसराय साहबकी तारीफ की गई है। असलमें वह एक स्वतन्त्र चीज है। दूसरी बात यह कि एसेम्बली और कौंसिलसे इस्तीफा देंगे। तो मैं आपसे यह कहना चाहता हूँ कि आप इसपर खयाल करके बहस सुनें। सच तो यह है कि यह लम्बा-चौड़ा पूरा एक ही प्रस्ताव है और सबपर एक साथ बहस हो। यह प्रस्ताव कलकत्तेमें कांग्रेसने जो इकरार कर लिया था उसपर चलनेके लिए रखा गया है। तो आप सारी बहस सुन लेंगे — जो अच्छा होगा उसको मंजूर कर लेंगे, जो अच्छा नहीं होगा उसको बहाल नहीं करेंगें। (हास्य ध्वनि)[१]

सदर साहब, भाइयो और बहनो,

मेरी उम्मीद है कि अब लाउडस्पीकर अपना काम देगा। (हास्य ध्वनि) क्या लाउडस्पीकर अब काम दे रहा है?

१. इसके बाद बहस हुई जिसमें मोतीलाल, मदनमोहन मालवीय, नृ० चि० केलकर, सतीशचन्द्र बोस तथा अन्य लोगोंने भाग लिया। बहसके बाद गांधीजीने हिन्दीमें भाषण दिया।

[ध्वनि] हाँ, हाँ।

पहले तो आप सब भाइयों और बहनोंसे मैं माफी माँग लेना चाहता हूँ। आप लोगोंने इस प्रस्तावका विरोध किया, अपने अमेंडमेंट (संशोधन) पेश किये। उस सब बहसको सुननेके लिए मैं यहाँ हाजिर नहीं रह सका। इसे बेअदबी माना जा सकता है। लेकिन आप मुझको लाचार समझें। सभापतिजीकी आज्ञा लेकर, चूँकि मैं बहुत थका हुआ था, चला गया, और कुदरतकी चीज भी तो आप जानते हैं, कि कोई रोक नहीं सकता। हाजतके लिए चला गया। पैगाम आया तो वापस आया। मुझे थोड़ा दुःख है कि जो कुछ मेरे भाइयोंने इस सम्बन्धमें कहा मैं उसे सुन नहीं सका। तो भी चूँकि मैंने अमेंडमेंट (संशोधन) सबके-सब पढ़ लिये हैं और इन भाइयोंकी बहस मैंने सबजेक्ट्स कमेटी (विषय-समिति) में सुन ली थी, इसलिए मैं, क्या-क्या कहा गया है, [उसका अनुमान करके] काम चला सकता हूँ।

दूसरे यह भी बात है कि मेरा तरीका कोई बहस करनेका या उत्तर देनेका नहीं है। मैं तो जो कहना चाहता हूँ वही कह दूँ तो काफी काम हो जाता है। जब मैंने कहा कि प्रस्ताव सुना दिया जाये तो राष्ट्रभाषामें मेरे मान्य पण्डित मोतीलालने इस प्रस्तावके मानी क्या है यह सुना दिया। उसका कारण क्या है, यह भी सुना दिया। सभापति महोदयने कहा कि जो-कुछ मैं कहना चाहता हूँ वह अंग्रेजी भाषामें आपको सुना दूँ, क्योंकि तमिल और बंगाली लोगोंको भी सुनाना चाहिए। मैंने सभापति महोदयसे यह कहा कि मेरे पास कोई नई बात नहीं है। आपको मालूम है कि आपका पैगाम लेकर वाइसरायके पास हम लोग चले गये थे। जो कुछ उन्होंने कहा है, वह लेकर मैं आपके सामने खड़ा हूँ। जो कुछ भी राय हो सकती थी वर्किंग कमेटी (कार्यसमिति) की तरफसे सबजेक्टस कमेटी (विषय-समिति) में पेश की गई थी, अब आपके पास आई है।

आप लोगोंने देखा है कि इस प्रस्तावके ३ हिस्से हैं — ज्यादा भी बन सकते हैं। अब मैं तीनों हिस्सोंको लेना चाहता हूँ। एक तो प्रस्तावना है। उसका मुख्य मतलब यह है कि सम्पूर्ण स्वतन्त्रता हो। यह वही बात है जो पहले सोची गई थी; उसका मौका आ गया है। इसका सबब बतानेके लिए जो अगली चीज है वह आप देखेंगे कि वर्किंग कमेटी (कार्यसमिति) ने क्या-क्या किया। वाइसरायके बारेमें क्या हुआ। ये सब चीजें आप सब अच्छी तरह समझ लें। यह प्रस्ताव एक मकान है। एक ईंट निकाल दें तो मकान कमजोर हो जाता है। दीवार गिरा दें तो मकान गिर जाता है। यह ऐसा है कि इसमें से एक चीजको ले लें तो आप उसके स्वरूपको काट डालते हैं, मकानको ढा देते हैं। सूरतको बदसूरत कर देते हैं। आप कृपा करके यह समझते हैं तो जितने अमेंडमेंट (संशोधन) हैं उनको गिरा दें।

आप एक बातपर गौर करें। आप एक वर्किंग कमेटी (कार्यसमिति) हर साल बना देते हैं। ३६० दिनतक उस कमेटीका काम है कि वह देखे कि कांग्रेसके लिए क्या करना चाहिए क्या नहीं। उसका काम है कि जिन प्रश्नोंका निर्णय करना है उनका निश्चय करे और फिर उन्हें यहाँ रखे। अगर पूरा काम वर्किंग

कमेटीपर छोड़ दें तो नुकसान हो सकता है। आप उसमें जो पसन्द करें ठीक कर दें। वर्किंग कमेटी प्रस्तावको सबजेक्ट्स कमेटी के सामने पेश करती है। वहाँ भी छानबीन होती है और फिर यह आपके सामने पेश होता है। जो प्रस्ताव आपके सामने मेरे नामसे, पण्डितजीके नामसे रखा गया है उसकी छानबीन हो गई है; इसलिए आप इसमें अब कोई परिवर्तन न करें।

जरा देखिए, कि इसमें क्या-क्या बातें बतलाई गई हैं। एक चीज तो वाइसरायके बारेमें है। मैं कहूँगा कि जो हिन्दुस्तानकी आजादी चाहते हैं, वे भी बुनियादी उसूल नहीं छोड़ेंगे। उसमें अपनी दृढ़ता और वीरता, बहादुरी नहीं छोड़ेंगे। बहादुरी घमण्ड नहीं है। आपको इसका विरोध नहीं करना चाहिए। सच्चा बहादुर तो दुश्मनकी भी तारीफ करनेपर तैयार होगा। मान लो कि वाइसराय हमारा दुश्मन है। ब्रिटिश सल्तनतका हिन्दुस्तानमें प्रतिनिधि है। सल्तनतको दुश्मन मानते हैं, इसलिए मानते हैं कि वह दुश्मन है – लेकिन दुश्मनमें भी इन्सानियत होती है। तो इन्सानियतके तौरपर यह बात की गई है –– लेकिन वाइसराय तो असर रखता है। हमारी कौमपर हुकूमत करता है। हर इन्सानका खयाल रखना हमारा काम है। यह सत्य है कि वाइसराय सल्तनतको कायम रखनेके लिए काम करता है। परन्तु फिर भी जो कुछ उन्होंने किया है उसके लिए यह लिखा गया है। और चूँकि सबजेक्ट्स कमेटी (विषय समिति)में इसपर बहस हुई थी इसलिए कुछ-न-कुछ इस वक्त यहाँ भी कह दिया है।

दूसरे अमेंडमेंट (संशोधन)भी दिये गये हैं –– उनके बारेमें भी कह देना चाहता हूँ। एक यह भी कि "मौजूदा हालातमें कान्फ्रेंस (परिषद)में नहीं जाना चाहिए" तो 'मौजूदा हालात'का लफ्ज निकाल देना चाहिए। इस बारेमें निहायत अदबके साथ मेरा कहना यह है कि ऐसी कोई बात मेरे जहनमें नहीं है कि आपके प्रतिनिधिको कान्फ्रेंस (परिषद)में जानेकी जरूरत है। जब भी इग्लैंड मजबूर होगा तो ऐसी बात हो सकती है कि जाना जरूरी हो जाये। मौजूदा हालातमें ऐसा मौका नहीं है। लेकिन आ भी सकता है। तो इतना इसके बारेमें कह देना चाहता हूँ कि इससे यह माना जायेगा कि कान्फ्रेंस (परिषद)में जा भी सकते हैं। लेकिन इसका यह मतलब नहीं है कि मौजूदा हालातमें जा सकते हैं। अगर 'मौजूदा हालात'को निकाल दें तो क्या रह जाता है? तो इस चीजको आप नहीं निकाल सकते।

एक चीज और है जो सब्जेक्ट्स कमेटी (विषय-समिति)में कही गई थी। कौंसिलके बारेमें कहा गया। मेरे भाई जमनादास मेहताने कहा कि गांधीने यह नहीं कहा है कि कौंसिलोंका बहिष्कार करना चाहिए – तो यह कहना पड़ेगा कि आपको जो चीज पसन्द हो वह करें। कैसा भी बड़ा आदमी हो वह हुक्म तो नहीं दे सकता। मैं क्या हूँ? मैं कौमका बन्दा कौमका नौकर बनकर, प्रस्ताव बनाता हूँ। तो मुझे क्या अधिकार है कि हुक्म दूँ? मैं तो राय दे सकता हूँ। यह साफ है कि बुरे विचारसे नहीं कहता हूँ। सब काम और बातको विचार कर यह कहा जाता है। मेरा कहना है कि कौंसिलोंसे बहुत-कुछ मिल सकता है। जितना चाहें ले लें। आप कौंसिलों और एसेम्बलीसे लिया ही करते हैं। जो कुछ चाहें अपने भाइयों और

भतीजोंके लिए आपको मिल सकता है। भाई-भतीजोंको छोड़कर हिन्दुस्तानके लिए भी मिल सकता है। मदरसोंके लिए हजार गुना रुपया मिल सकता है। लोग घरोंमें कुत्ते और बैल भी तो रखते ही हैं। जानवर भी रखते हैं। गुलामोंको भी रखते थे। गाय, कुत्ते, बैलोंको कुछ-न-कुछ मिलता ही है। गुलामोंको खाना तो खिला देते हैं। लेकिन जानवर तो जानवर ही होता है? कौंसिल और एसेम्बलीसे कुछ-न-कुछ मिल सकता है इसमें शक नहीं लेकिन अगर आप आजादी चाहते हैं तो उनसे क्या मिल सकता है?

मेरा विश्वास तो मदरसोंके बहिष्कारके लिए भी है और वकीलोंके लिए भी। मेरा विश्वास तो बहुत-सी चीजोंके [बहिष्कारके] लिए है। लेकिन चूँकि मैं तो राय देनेवाला हूँ, साथ देनेवाला हूँ — मैं तो वही कहना चाहता हूँ जो और लोगोंकी रायमें भी होनेवाला है। जैसे पण्डित मोतीलालजी — उन्होंने एसेम्बलीका तजुरबा वहाँ बैठकर कर लिया है। उन्होंने एसेम्बलीमें जाकर कुछ-न-कुछ मुल्कका काम किया। और कुछ नहीं तो वे आज कौंसिलोंके खिलाफ हो गये। अब इन लोगोंने देख लिया। पहले इन लोगोंने एसेम्बली और कौंसिलमें जानेका खयाल किया था। मैंने देखा, यह लोग चाहते हैं तो अच्छी तरह काम करके देख लें, क्या होता है। यह आप लोग जानते हैं। आप लोग यहाँ ५ या ६ हजारकी संख्यामें आये हैं। आप अपने अनुभवसे कहें कि यह चीज जरूरी है, इसके बिना स्वराज्य मिलनेमें देरी लगेगी तो आप जरूर इस प्रस्तावको फेंक दें — अगर आपका अनुभव कहता हो कि इस चीजसे नहीं दूसरी चीजसे स्वराज्य हासिल करेंगे, तो आप सोच लें। मैं मानता हूँ कि कौंसिलोंसे कुछ नहीं होगा। पण्डित मोतीलालजी भी ऐसा मानते हैं। वह तो अपने तजुरबेसे यह मानते हैं। तो आप उचित समझते हैं तो बायकाट [बहिष्कार]को कायम करें और अमेंडमेंट (संशोधन)को छोड़ दें।

अब मदरसोंकी बात आती है। लोग कहते हैं कि मदरसोंका बायकाट (बहिष्कार) क्यों नहीं रखा जाता। मैं तो चाहता हूँ सब लड़के-नौजवान भेंट चढ़ जायें। कमसे-कम १६ वर्षसे ज्यादाके जो हैं वह मैदानमें आ जायें लेकिन, क्या वायुमण्डल ऐसा है? मैं तो कहता हूँ कि नहीं है। तालीम उनको क्या मिलती है; २५ करोड़ रुपया शराबमें से, अफीममें से आता है, उससे तालीम पाते हैं — वह तालीम किस कामकी चीज हो सकती है? लेकिन क्या यह समझानेका अवसर है? इतने वर्ष हो गये — हमने देख लिया। क्या आप समझते हैं कि वकील लोग कचहरियोंसे निकलकर पत्थर तोड़ेंगे, चरखा चलायेंगे? एक वकील ऐसा नहीं है। सबको खाना-पीना चाहिए, उनको खर्च चाहिए। वह कहते हैं कि हमारा काम नहीं चलेगा। १९२०में जब वकालत छोड़नेको कहा था तो पण्डित मोतीलाल और देशबन्धु चित्तरंजनदासने तो अपना काम छोड़ दिया था। लेकिन और छोटे-मोटे वकीलोंने नहीं छोड़ा। इसलिए इन सब चीजोंको साथ-साथ चलानेके लायक वायुमण्डल नहीं है। इसलिए इन चीजोंको छोड़ दिया गया है। हम यह नहीं कहते कि अपनी वकालत छोड़ अगर वकील रचनात्मक कार्योंमें हिस्सा लेनेके लिए गावोंमें जायें तो यह उनके लिए ठीक नहीं

होगा, लेकिन यह एहसास हम अवश्य करते हैं कि इसके लिए अभी अनुकूल वातावरण तैयार नहीं हुआ है।

दूसरे भी अमेंडमेंट (संशोधन) हैं; उनपर मैं बहस नहीं करना चाहता। एक बात जरूर है सिविल डिसोबिडिएन्स (सविनय अवज्ञा)को सब चाहते हैं, मैं भी चाहता हूँ, उसपर कुछ कहना चाहता हूँ। लोग कहते हैं कि उसका ऐलान सारे हिन्दुस्तानमें कर देना चाहिए। मैं भी चाहता हूँ कि ऐसा कर सकता। मगर मैं इसके लिए अभी वायुमण्डल नहीं देखता। आल इंडिया (अखिल भारतीय) कांग्रेस कमेटीपर यह काम छोड़ा है, लेकिन अभी मैं वह आबोहवा नहीं देखता कि आल इंडिया (अखिल भारतीय) कांग्रेस कमेटी भी कुछ कर सकेगी। आप लोग जो यहाँ आये हैं उनमें अमन होना चाहिए, कांग्रेस-क्रीड (सिद्धान्त) पर विश्वास होना चाहिए। कहा जाता है कि यह लोग गुनहगार हैं, जो कानून तोड़ते हैं; तो मैं कहता हूँ कि कानूनको तोड़नेसे गुनहगार नहीं बन जाता। उसमें दोष नहीं, उसमें कुछ अच्छाई है। लेकिन उसको तो वह तोड़ सकता है, जिसमें अमन अच्छी तरह पैदा हो चुका है। जो कांग्रेसके ऐलान पर यकीन रखता है, उसकी ताईद करता है, उसपर अमल करता है। आज तो यह देखता हूँ कि हर मनुष्यको डिवीजन (मतभेद) चाहिए। हमारे सामने ऐसी चीज नहीं देख पड़ती कि जिससे सिविल डिसोबिडिएन्स (सविनय अवज्ञा)के लिए वायुमण्डल पाया जाता हो। ऐसा वायुमण्डल नहीं देखता कि १-२ मासमें सल्तनतका मुकाबला कर सकें। परमात्मा चाहे तो कर सकते हैं। उसकी बड़ी शक्ति है। वह अब भी देखता है कि हम भूल करते हैं।

जो नौजवान लाल कागजके पुरजे हिलाकर, झण्डा दिखलाकर सल्तनतको हटाना चाहते हैं उनसे तो हमारा काम नहीं चलेगा। आजादी पानेके लिए तो हाथमें शक्ति आनी चाहिए। कुछ लोग समझते हैं बाअमन रहनेसे शक्ति नहीं आती, तलवार निकालनेसे शक्ति आती है। मैं कहता हूँ कि दुश्मनकी मारपीट बर्दाश्त करनी चाहिए। सिख भाई १९२१-२२में कत्ल हो गये — वे बहादुर थे। मैं कबूल करता हूँ कि ठण्डी ताकत तलवारको निकालनेसे बड़ी चीज है। इससे सिविल डिसोबिडिएन्स (सविनय अवज्ञा)का काम अच्छी तरह हो सकता है। अगर कोई भाई यह समझता है कि बाअमन तरीकेसे सम्पूर्ण स्वतन्त्रता नहीं आती तो वह ठण्डी ताकतमें विश्वास नहीं रखता। ठण्डी ताकत हमारे पासमें आ जाये तो हम स्वतन्त्रता हासिल कर सकते हैं।

इंडिपेंडेंस (स्वराज्य)के मानी क्या हैं? इंडिपेंडेंस (स्वराज्य)का मतलब है वह आजादी जो ७ लाख देहातोंको मिलनी चाहिए। इसलिए आप अमेंडमेंट्स (संशोधन) को न मानें और प्रस्तावको पास करें। एक प्रकारका अमेंडमेंट (संशोधन) यह है कि फरवरी तक चलने दिया जाये कोई फैसला न किया जाये। ऑल पार्टीज कान्फ्रेंस (सर्वदलीय परिषद) करें। यह बात मुझे पसन्द नहीं है। न इसका कुछ नतीजा होगा। दूसरी बात है यह कि पैरेलल गवर्नमेंट (समानान्तर सरकार) कायम की जाये साथ-साथ गवर्नमेन्ट कायम हो। यह सुभाषचन्द्र बोसका अमेंडमेंट (संशोधन) है। कलकत्तेमें भी यह कहा गया था। मेरे दिलमें सुभाषचन्द्र बोसके लिए बड़ा मान

है। मुझको उन्होंने समझ लिया है; वह यह समझते हैं कि मैं ६० वर्षका हो गया हूँ। मेरी ताकत तो गिर गई है, वह मुझे चाहें तो गोदमें उठा सकते हैं। मगर मेरा दिल नौजवानका है (हास्य ध्वनि)। नौजवानसे भी बढ़ सकता हूँ। इसलिए मैं ऐसा कबूल करता हूँ कि अगर मैं बूढ़ा हो गया हूँ तो काम नहीं दे सकता। ६० वर्षके बाद दिमाग नहीं रह जाता यह कहा जाता है, वह मैं महसूस नहीं करता। मैं आज भी नौजवानोंका उपयोग कर सकता हूँ। मुझे ऐसा लगता है — मुझमें ऐसी शक्ति है, ऐसा मैं समझता हूँ। आज घोड़ेकी सवारी भी मिल जाये तो अच्छी बात है। मैं उसकी बागडोर ले लूँगा। घोड़ेपर सवारी नहीं करूँगा (हास्य ध्वनि) घोड़ा मैं ले जा सकता हूँ। बागडोरके लिए जवाहरलाल नेहरू हैं। (हास्य ध्वनि) आज तो बागडोर नौजवानोंके हाथमें है। उनको मौका है कि हिन्दुस्तानको आजाद बनानेके लिए इकट्ठे होकर काम करें। उन्हें यह कहनेको न रह जाये कि मौका नहीं मिला। कहा जाता है कि मैं जवाहरलालको मानता हूँ। हाँ मैं मानता हूँ। मैं देखता हूँ, कि वह कामकी बात करते हैं। अगर आप लोग इकट्ठे होकर काम नहीं करेंगे तो बहुत नुकसान होगा। पैरेलल गवर्नमेन्ट (समानान्तर सरकार) का प्रोग्राम फायदा नहीं देगा। यह फायदेकी चीज नहीं है। पैरेलल गवर्नमेन्ट (समानान्तर सरकार) के लिए हम तैयार नहीं हैं। जितना काम कर सकते हैं उतना ही उठाना चाहिए।

आपको सात लाख गाँवोंमें प्रचार करना है। गाँवमें कोई काम नहीं हुआ है। ७ लाख गाँवमें ७ लाख कांग्रेसके मेम्बर भी नहीं हैं। हमारे देहातोंमें कांग्रेसका नाम भी लोग नहीं जानते। इस हालतमें पैरेलल गवर्नमेन्ट (समानान्तर सरकार) की जगह देहातोंमें काम करना चाहिए। तालीम पहुँचानी चाहिए। यह सब हो जाये तो पैरेलल गवर्नमेन्ट (समानान्तर सरकार) कर सकते हैं। लेकिन अभी मौका नहीं है।

भाइयो, जो-कुछ अमेंडमेंटके बारेमें कहना था कह दिया और यह जो मेरा प्रस्ताव है उसका भी पृथक्करण करके बतला दिया कि क्या रखना चाहिए। इसलिए मैं कहता हूँ कि सचमुच इस प्रस्तावको आप चाहें तो फेंक दें। मगर ऐसा न करें कि उसको एक-एक टुकड़ा करके काटें। एक सुन्दर मनुष्यकी नाक काटें या आँख काटें इससे अच्छा है इसे फेंक दें। नाक-कान काटना ठीक नहीं (हास्य ध्वनि)। ऐसा करना गलत होगा। ऐसा करनेकी कोशिश न करें। एक चीज रखी गई है, वह पसन्द हो रखें, पसन्द न हो न रखें।[१]

अब कुछ शब्द दक्षिण और बंगालके मित्रोंके लिए कहता हूँ। यहाँ आते हुए मुझे एक प्रतिनिधिने दो बार यह बताया कि अब वह समय आ गया है जबकि कमसे-कम कांग्रेसमें राष्ट्रभाषा हिन्दी अथवा हिन्दुस्तानी ही बोली और सुनी जानी चाहिए। वास्तवमें यह बहुत ही उचित और ठीक राय है। इतने वर्ष बीतनेपर प्रतिनिधितक भी राष्ट्रभाषामें सारी कार्यवाही करनेके योग्य अपने आपको नहीं बना पाये। मैं आशा करता हूँ कि अगली बार जब हम मिलेंगे तो हम सब जो कुछ भी यहाँ हिन्दुस्तानीमें कहा जायेगा उसे समझनेके लिए तैयार होकर आयेंगे। परन्तु अब

१. इसके बाद गांधीजी अंग्रेजीमें बोले।

हमें जो तथ्य है उसे उसी रूपमें लेना चाहिए और हमें समझना चाहिए कि कुछ ऐसे लोग हैं जो हिन्दुस्तानी नहीं समझते। उनके लिए मैं कुछ शब्द कहूँगा।

इस प्रस्तावके सम्बन्धमें जो संशोधन पेश किये गये हैं उनके सन्दर्भमें मैं वही उपमा देना चाहता हूँ जो मैंने हिन्दुस्तानीमें दी है कि इस प्रस्तावको पूर्ण रूपमें एक मकान अथवा एक पूरी तस्वीरके रूपमें लिया जाये। जो व्यक्ति तस्वीरके अथवा मकानके एक हिस्सेको नष्ट करता है वह उसे पूरा ही नष्ट करता है। आप कुछ ईंटें अथवा एक दीवारको निकाल देंगे तो इससे सारा मकान ही गिर जायेगा; उसकी नींव हिल जायेगी, तब वह मकान नहीं होगा जिसका नक्शा शिल्पी ने बनाया था। ऐसा ही तस्वीरका हाल होगा। आप एक तस्वीर बनायें और उसके किसी एक भाग में कोई रद्दोबदल कर दें तो इससे सारी तस्वीर ही नष्ट हो जायेगी। कार्यसमितिने उसमें जितनी योग्यता थी, उससे इस प्रस्तावको गढ़ा। इसके बाद यह विषय समितिके सामने पेश हुआ, वहाँ इसमें सभी प्रकारके रद्दोबदल किये गये और अब यह आपके सामने आया है। अब यह आपपर निर्भर है कि आप इसे पूर्ण रूपसे अस्वीकार कर दें या पूर्ण रूपसे स्वीकार कर लें, पर इसमें किसी प्रकारका रद्दोबदल न करें। उदाहरणार्थ एक संशोधन है कि 'वर्तमान परिस्थितियों' आदि शब्दोंको निकाल दिया जाये। मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि इसका वहाँ होना आवश्यक है। अब यह समय आ गया है कि हम यह समझ लें कि किसी-न-किसी दिन हमें दुश्मनके साथ स्वराज्यकी स्थापनाके लिए बातचीत करनेको मिलना होगा। ये शब्द आवश्यक हैं। पर साथ ही यह भी उतना ही सच है कि ये शब्द कांग्रेसको इसके लिए बाध्य करते हैं कि जिस किसी परिषदमें स्वराज्यकी चर्चा नहीं होगी, उसमें वह भाग नहीं लेगी।

इसी प्रकार इसमें स्वराज्य सम्बन्धी समझौतेके लिए वाइसराय द्वारा किये गये प्रयत्नोंकी सराहना की गई है। या तो आप अपने दो चुने हुए प्रतिनिधियोंके कथनको मानिए अथवा उसे अस्वीकार कर दीजिए। यदि आप-अपने प्रतिनिधियोंका यह कथन कि "हमें ऐसा लगा कि वाइसराय सदाशय हैं; सारे समय उनका व्यवहार बड़ा सौजन्यतापूर्ण रहा; उन्होंने सारे मामलेपर, जैसे दो मित्र मिलकर विचार करते हैं, उस प्रकार विचार किया" सत्य, पूर्णरूपेण सत्य तथा सत्यके अलावा और कुछ नहीं मानते और यदि जैसा कि मैं कहता हूँ, आप इस सबपर विश्वास करते हैं तो क्या आपके लिए यह उचित नहीं है, क्या यह सामान्य सौजन्यता नहीं है और क्या आपका यह निश्चित कर्त्तव्य नहीं है कि आप उस प्रयत्नकी सराहना करें? दूसरी ओर यदि आप उनके कथनका विश्वास नहीं करते तो आपको उन्हें कांग्रेससे निकाल भगाना चाहिए। जो कुछ कोई अनुभव करता है, उसे कहनेमें शर्म करना साहसका सूचक नहीं है, परन्तु अपने शत्रुकी भी अच्छी बातको स्पष्टतः मानना तो निश्चय ही साहस-सूचक बात है। सच तो यह है कि जो लोग अहिंसाके सिद्धान्तके लिए प्रतिज्ञाबद्ध हैं, वे हमेशा सीमासे बाहर जाकर भी शत्रुके प्रति सौजन्यता बरतेंगे, उसका भला सोचेंगे और अंधकारमें भी आशाकी किरण देखेंगे, क्योंकि सत्य और अहिंसाके सिद्धान्तको माननेवाला मनुष्य सदैव आशावान बना रहता है। आशा रखनेसे आशाकी पूर्ति होती है तथा आशासे साहसका संचार होता है तथा इसलिए

आशासे निर्णायक कर्मको निष्पत्ति प्राप्त होती है। इसलिए उन मनुष्योंकी तरह जो इस सिद्धान्तके प्रति प्रतिज्ञाबद्ध हैं आपका यह दोहरा कर्त्तव्य है कि आप मूल प्रस्तावमें इस कथनको मानें और पेश किये गये संशोधनोंको एकदम रद कर दें।

और फिर विधान सभाओंके बहिष्कारका प्रश्न है। इस सम्बन्धमें मैं केवल इतना ही कह सकता हूँ कि इसका समर्थन उनमें से भी कुछ लोगोंने किया है जो बड़ी-बड़ी आशाएँ लेकर विधानसभाओंमें गये थे; तथा इन सबमें भी सबसे ऊपर हैं पण्डित मोतीलाल नेहरू। वह आदमी जिसने केन्द्रीय विधान सभामें बहुत ही बुद्धिमत्तापूर्ण कार्य किये और जिसे अपने विपक्षियोंका भी आदर मिला, जब यह कहता है कि विधानसभाओंमें रहकर हम और आगे नहीं बढ़ सकते तो उसका यह कथन मेरे लिये अन्तिम बात है और आपके लिए भी वह अन्तिम ही होना चाहिए। इन विधानसभाओंका मेरा कोई व्यक्तिगत अनुभव नहीं है, पर विधानसभाओं तथा अन्य [संस्थाओं] के सम्बन्धमें जो कुछ मैं १९२९ में कहता था उसपर मेरा अटल विश्वास आज भी बना हुआ है। यदि कह सकूँ तो वही विश्वास और भी अधिक दृढ़ हो गया है।

यह कहा जाता है कि यदि आप विधानसभाओंका बहिष्कार करते हैं तो स्कूलों और अदालतोंका बहिष्कार क्यों नहीं करते? यह पूरी तरहसे एक संगत और तर्कसम्मत बात है, पर मनुष्य सदैव संगत और तर्कसम्मत बातें ही नहीं करता। कभी-कभी वह तर्कहीन बातें भी करता है; प्रत्यक्षत: और जंगली ढंगसे वह अपनी कमजोरी और शक्तिका प्रतिपादन करता है। स्कूलों, अदालतों, डाकखानों, रेलों आदिका बहिष्कार न करके विधानसभाओंका बहिष्कार करके हम निश्चय ही असंगत कार्य कर रहे हैं। पर हमें अपनी सामर्थ्यको समझना चाहिए और कार्यसमितिने हमारी सामर्थ्यको समझा है, यद्यपि विषय-समितिमें विधानसभाओंमें न जानेका विरोध किया गया, पर विषय-समितिका बहुमत इस निर्णयपर पहुँच गया है कि अब हमें विधान सभाओंमें नहीं जाना चाहिए तथा विधानसभाओंसे बाहर रहने लायक ताकत अब हममें आ गई है। मैं जानता हूँ कि एक बड़ा घिसा-पिटा तर्क यह दिया जाता है कि आप कुछ भी करें पर [विधानसभाओं] की आपकी जगहें खाली नहीं रहेंगी; परन्तु ऐसा कोई विचार नहीं है कि जगहें खाली रहनी चाहिए। एक चँडूखाना है; मान लीजिए कि उसमें आप समेत वहाँ पचास हजार लोग जाते हैं तो क्या हम वहाँसे इस खयालसे बाहर आनेमें हिचकेंगे कि कोई और जाकर हमारी जगह ले लेगा? मुझे पूरा विश्वास है कि हम बिलकुल नहीं हिचकेंगे। यदि हम यह मानते हैं कि विधान सभाएँ राष्ट्रके और कांग्रेसके लिए धोखेकी चीजें हैं तो उनसे बाहर रहना बुद्धिमानी होगी। दूसरे हमारी जगह ले लेंगे, इसमें कोई तुक नहीं है। तुक तो यह सोचनेमें है: क्या हम इन विधानसभाओंमें एक पूर्ण स्वतन्त्र व्यक्तिके रूपमें जा सकते हैं या नहीं अथवा क्या इन सभाओंमें जाकर या रहकर हम अपने ध्येयकी ओर आगे बढ़ सकते हैं? यदि आप यह सोचते हैं कि इन विधानसभाओंमें जाकर आप स्वतन्त्रताके अपने ध्येयकी ओर आगे बढ़ सकते हैं तो आप वहाँ बड़ी खुशीसे

जा सकते हैं। मैं अब आपसे विधानसभाओंमें ली जानेवाली शपथके सम्बन्धमें कुछ नहीं कहूँगा, जबकि मेरे जैसे आदमीके लिए वह भी एक निर्णायक तर्क है।

जहाँतक स्कूलों और अदालतोंके बहिष्कारका सम्बन्ध है, जैसा कि मैंने आपसे कहा है, मैं आज ऐसे बहिष्कारके लिए आवश्यक वातावरण नहीं पाता हूँ। जबकि ऐसा वातावरण ही नहीं है तब ऐसी किसी धाराको रखनेका क्या लाभ जो प्रयोगमें नहीं लाई जा सकती और जिसपर वे ही लोग अमल नहीं करेंगे जिनको लक्ष्य करके वह कही गई है?

अब सवाल आता है सविनय अवज्ञाका। सविनय अवज्ञाकी मैंने शपथ ली है; क्योंकि सम्भवतः मैं भारतकी स्वतन्त्रता पानेकी बात अविनय अवज्ञाके द्वारा नहीं सोच सकता; अविनय अवज्ञाका अर्थ है बम और तलवार। मैं भारतके एक छोरसे दूसरे छोरतक फैले सात लाख गाँवोंमें बिखरे करोड़ों भूखे लोगोंके लिए स्वतन्त्रता और आजादी पानेकी बात वैध और शान्तिपूर्ण तरीकोंसे ही सोच सकता हूँ। अवज्ञाको पूर्ण रूपसे प्रभावकारी बनानेके लिए उसका सविनय याने हमेशा अहिंसक होना आवश्यक है; और यदि आप निकट भविष्यमें सविनय अवज्ञा करना चाहते हैं, तो आपको स्वयं अपनेको पूरी तरह बदलना होगा। तब आपके मनमें विभिन्न विचारोंकी उथल-पुथल नहीं होगी; तब आप अपने-आपको धोखा नहीं देंगे और अवचेतन मनसे ही सही, आप देशको ऐसा विश्वास दिलानेका धोखा भी नहीं देंगे कि बम और अहिंसा साथ-साथ चल सकते हैं। भारत जैसे देशमें जहाँ सर्वशक्तिमान संस्था अहिंसाके लिए प्रतिज्ञाबद्ध है, यदि आप अपने स्वयंके सिद्धान्तमें विश्वास करते हैं, अर्थात् यदि आप स्वयंमें विश्वास करते हैं, यदि आप अपने राष्ट्रमें विश्वास करते हैं तब जिस चीजकी आवश्यकता है वह है सविनय अवज्ञा और यदि वह आवश्यक चीज सविनय अवज्ञा है तो आपको कठोर अनुशासनका पालन करना चाहिए, आपको यह देखना चाहिए कि कमसे-कम आपसमें किसी प्रकारकी उत्तेजना न पैदा हो, जैसे हमने यहाँ और विषय-समितिमें घृणास्पद प्रदर्शन देखे, वैसे नहीं; हम शान्त, ठंडे, स्थिर, साहसी और वीर हों; तथा हम हमेशा विषयसंगत ही बोलें, विषयमें बाधा डालनेके लिए कभी न बोलें। यदि मेरा प्रत्येक सुझाव रद हो जाता है तो भी कोई फर्क नहीं पड़ता; मुझमें इन संशोधनोंको पेश करनेवालों और उनका समर्थन करनेवालोंको सहन करनेकी शक्ति होनी चाहिए। तभी मैं अहिंसात्मक संस्थाओंके सम्मुख अपने विश्वासका प्रतिपादन कर सकूँगा। और इसलिए यदि आप वास्तवमें निकट भविष्यमें सविनय अवज्ञा करना चाहते हैं तो आपको चाहिए कि आप कांग्रेस और विषय-समितिके कार्यक्रमको एक शान्तिप्रिय व्यक्तिके योग्य ढंगसे चलायें। यदि आपके मनमें स्वतन्त्रताके प्रति वास्तविक प्रेम है तब चिड़चिड़ाहट, आपसी वैमनस्य, झगड़ेके लिए कोई स्थान नहीं है; स्थान है तो वह है केवल एक संगठित साहसपूर्ण, शान्त तथा स्थिर प्रयत्नके लिए। इसलिए मैं जितना जोर देकर कह सकता हूँ कहता हूँ कि आप इस प्रस्तावको पूर्ण समर्थनके साथ पास कर दें, क्योंकि इस अधिवेशनका यही मुख्य प्रस्ताव है। संसारमें लोग यह न कहें कि हम जो आज स्वतन्त्रताके लिए प्रतिज्ञाबद्ध हैं, विभिन्न विचारधाराओंमें बँटे हैं अर्थात् हमारे स्वयंके घरमें ही फूट

पड़ी हुई है और इसलिए निश्चय ही हमारा पतन होगा। हम समस्त संसारको यह बतायें कि हम सब मिलकर एक साथ स्वतन्त्रता पानेके लिए उठ खड़े हुए हैं और हमने उस स्वतन्त्रताको कमसे-कम समयमें पानेके लिए प्रतिज्ञा की है। अतः मैं आपसे श्री सुभाषचन्द्र बोसके संशोधनको भी एकदम रद करनेकी प्रार्थना करता हूँ। मैं जानता हूँ कि वे बंगालके एक कर्मठ कार्यकर्त्ता हैं; बहुत-से क्षेत्रोंमें वे चमके हैं; बंगालमें हमारे कार्यकर्त्ताओंके वे सेनापति थे। उन्होंने एक बात रखी है जो संशोधन नहीं है, वह वास्तवमें मूल प्रस्तावके बदलेमें रखा गया एक प्रस्ताव ही है। मैं इस बातसे नहीं मुकरता कि यह एक अच्छा सुझाव है पर यह मेरे प्रस्तावसे कहीं आगे जाता है। इसमें समानान्तर सरकारका सुझाव दिया गया है। यदि आप यह सोचते हैं कि आज आप समानान्तर सरकारकी स्थापना कर सकते हैं तब मैं आपसे यह कह दूँ कि इस समय एक हजार गाँवोंमें भी कांग्रेसी झण्डा नहीं फहराता। जो लोग इस संशोधनका समर्थन करते हैं उनके प्रति मेरा पूरा आदरभाव है, पर यह वीरता नहीं है; यह दूरदर्शिता नहीं है; यह बुद्धिमानी नहीं है। आप मात्र प्रस्ताव पास करके स्वराज्यकी स्थापना नहीं कर सकते। आप स्वराज्यकी स्थापना शब्दोंसे नहीं वरन् अपने कार्योंसे करेंगे। इसलिए यह सोचिए कि क्या आज आप समानान्तर सरकारकी स्थापना कर सकते हैं, क्या आप प्रस्तावमें उल्लिखित सभी बहिष्कारोंको लागू कर सकते हैं। इस बातका ध्यान रखें कि हम स्वराज्यकी घोषणा नहीं कर रहे हैं। मद्रासमें स्वराज्यकी हमने अपने ध्येयके रूपमें घोषणा की थी। यहाँ हम एक कदम और आगे बढ़कर यह घोषणा करते हैं कि स्वराज्य हमारा दूरस्थ ध्येय नहीं है वरन् हम उसे इसी समय तुरन्त पाना चाहते हैं। परन्तु सुभाषचन्द्र बोस चाहते हैं कि आप उससे भी एक कदम और आगे जायें। यदि मैं यह समझता कि समानान्तर सरकार वर्तमान स्थितियोंमें सम्भव है तो मैं उनके इस प्रस्तावका पूर्णतः अनुकरण करता। समानान्तर सरकारका अर्थ है अपनी अदालतें, अपने स्कूल और कालेज आदि। यदि आप यह सोचते हैं कि सुभाष बोसके प्रस्तावमें आई सभी बातोंको कार्यरूप देनेकी योग्यता आप लोगोंमें है तो आप उसे पास कर दें और मेरे प्रस्तावको रद कर दें। पर मैं आपसे यह कह दूँ कि आज हममें वह योग्यता नहीं है और मैं आपसे अपने जैसा ही सोचनेको कहता हूँ कि कार्यसमिति द्वारा सुझाया गया कार्यक्रम ही वह बड़ेसे-बड़ा कदम है, जो हम आज उठा सकते हैं; इससे आगे एक भी कदम हमें गड्ढेमें डाल देगा। यह मेरा निश्चित विश्वास है; अतः मैं आपसे अपनी पूरी शक्ति-भर प्रार्थना करता हूँ कि आप एक अर्धविराम भी बदले बिना इस प्रस्तावको पास कर दें।[1]

[अंग्रेजीसे]

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसके ४४ वें अधिवेशनकी रिपोर्ट।

१. प्रस्तावपर मतदान हुआ और वह पारित हो गया।

३४७. भाषण : अ० भा० कां० कमेटीकी विषय-समितिमें – १

१ जनवरी, १९३०

प्रस्तावका[1] समर्थन करते हुए महात्मा गांधीने कहा :

मैं किसी भी अन्य व्यक्तिसे देश-भरमें अधिक घूमा हूँ।

श्री जमनादास मेहता : मेरा खयाल है कि सेठ जमनालाल बजाजके अलावा [अन्य लोगोंसे अधिक घूमे हैं]।

महात्माजी : मैं नहीं समझता इसमें कोई अपवाद रखनेकी बात है।

श्री जमनादास मेहता : पर जमनालालजी ऐसा दावा करते हैं।

महात्माजी : मैं इस आरोपका खण्डन करता हूँ। मैंने देश भरमें तीसरे दर्जेमें यात्रा की है और किसी भी अन्य व्यक्तिकी बनिस्बत गरीबोंसे अधिक हिला-मिला हूँ तथा स्वयं अपनी आँखोंसे देखा है कि सर्दीमें गरीबोंको कितनी कठिनाई उठानी पड़ती है। वर्षके सभी महीनोंका बहुत सावधानीसे अध्ययन करनेके बाद यह प्रस्ताव आपके सम्मुख रखा गया है। सुझाए गये महीनेमें वर्षा नही होती, मलेरिया या महामारी अथवा बीमारी नहीं फैलती। यह कहा जा सकता है कि क्रिसमसपर रेल किराएमें छूट मिलती है। पर मैं समझता हूँ कि ऐसा कहना अर्थहीन है। फिर हम काफी जल्दी रेलोंके अपने अधिकारमें होनेकी आशा करते हैं। (हर्ष-ध्वनि)। इसी प्रकार यह सवाल कि हमें छात्र स्वयंसेवक नहीं मिलेंगे, अर्थहीन लगता है; क्योंकि छात्रोंके साथ-साथ ऐसे लाखों लोग हैं जो छात्र नहीं हैं और मैं आशा करता हूँ कि ये गरीब लोग कांग्रेस अधिवेशनमें भाग लेंगे। फरवरी और मार्चके महीने सुविधा और कम खर्चको देखते हुए सबसे अच्छे हैं। मैं इस उक्तिको काफी कुछ ठीक महसूस करता हूँ कि हम लोग छुट्टियोंमें मनोरंजनके लिए मिलकर राजनैतिक चर्चा करनेवाले राजनीतिज्ञ हैं। इसके अनन्तर हम अपने कार्यक्रमको बहुत जल्दी समाप्त करना चाहते हैं। मैं समझता हूँ कि इस प्रस्तावपर मुझे और अधिक बोलनेकी आवश्यकता नहीं है।

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे क्रॉनिकल, २-१-१९३०

१. प्रस्ताव इस प्रकार था : जहाँतक कांग्रेस स्वयंको गरीब जनताका प्रतिनिधि मानती है तथा जहाँ तक कांग्रेस [अधिवेशन] दिसम्बरके अन्तमें करनेकी बात है, जिसमें गरीब लोगोंको अपने लिए अतिरिक्त कपड़े बनवानेपर पर्याप्त पैसा खर्च करना पड़ेगा तथा उनके लिए असुविधाजनक भी होगा, कांग्रेस अधिवेशनको फरवरी या मार्चमें किसी तारीखको, जिसका निर्धारण कार्यसमिति सम्बन्धित प्रान्तकी प्रान्तीय कमेटीसे सलाह करके करेगी, रखा जाता है।

३४८. भाषण : अ० भा० कां० कमेटीकी विषय समितिमें – २

१ जनवरी, १९३०

इसके बाद महात्मा गांधीने राष्ट्रीय ऋणको अस्वीकार करते हुए कार्य समितिके प्रस्तावको यह घोषणा करते हुए पेश किया कि भारतके राष्ट्रीय ऋणके अन्तिम भुगतानके समय यह तय करनेके लिए कि भारत कौनसे ऋणका भुगतान करे एक न्यायाधिकरण नियुक्त किया जायेगा और ऋणका भुगतान भारत उस न्यायाधिकरणके फैसलेके अनुसार करेगा।

इस कांग्रेसका यह मत है कि विदेशी शासन द्वारा भारतपर प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूपसे लादे गये आर्थिक भार ऐसे हैं जिनको स्वतन्त्र भारत वहन नहीं कर सकता तथा जिन्हें वहन करनेकी उससे आशा नहीं की जा सकती। अतएव, यह कांग्रेस १९२२ में गया कांग्रेसमें पास किये गये प्रस्तावकी पुनः पुष्टि करते हुए, प्रत्येक सम्बन्धित व्यक्तिकी जानकारीके लिए अपना यह मत प्रकट करती है कि स्वतन्त्र भारतको उत्तराधिकारमें मिलनेवाले प्रत्येक ऋण और रियायतकी एक स्वतन्त्र न्यायाधिकारण कड़ी छानबीन करेगा और ऐसे प्रत्येक ऋण और रियायतको — चाहे वह जैसे भी दिया गया हो अथवा दी गई हो — यदि यह न्यायाधिकरण उचित और न्याय सम्मत नहीं मानेगा, भारत अस्वीकार कर देगा।[1]

प्रस्ताव सर्वसम्मतिसे पास हुआ।

श्री सान्याल : क्या मैं जान सकता हूँ कि इस न्यायाधिकरणमें कौन-कौन लोग होंगे।

जोरकी हँसीके बीच महात्मा गांधीने कहा :

यदि आप यह जानकारी चाहते हैं तो आप इस बारेमें पत्राचार करें। मैं नहीं बता सकता। स्वतन्त्र भारत उसका गठन करेगा।

[अंग्रेजीसे]
बॉम्बे क्रॉनिकल, २-१-१९३०
यंग इंडिया, २०-२-१९३०

१. यह प्रस्ताव यहाँ **यंग इंडिया**, २०-२-१९३० से दिया जा रहा है।

३४९. भाषण : अ० भा० कां० कमेटीकी विषय समितिमें – ३

१ जनवरी, १९३०

विरोधियोंको उत्तर देते हुए महात्माजीने कहा :

मुझे विश्वास है कि आप इस प्रस्तावके[1] वास्तविक महत्वको समझेंगे। आप सब जानते हैं कि इस राष्ट्रीय सप्ताहसे कुछ दिन पूर्व पण्डित मोतीलाल नेहरू लाहौर आये थे। वे केवल दो कारणों अर्थात् सिखोंमें व्याप्त गलतफहमीको दूर करने तथा पंजाब कांग्रेसके झगड़ेको तय करनेके लिए यहाँ आये थे। गलतफहमीको दूर करनेके लिए पण्डितजी, मैं और डा० अन्सारी सिख नेता सरदार खड़गसिंहसे इस सम्बन्धमें मिले थे। उनकी यह शिकायत थी कि नेहरू रिपोर्टमें उनको समुचित स्थान नहीं दिया गया। हमने सिखोंसे बातचीत[2] की और उन्हें इस बातका आश्वासन दिया कि भविष्यमें यदि किसी भी राष्ट्रीय समस्याका समाधान साम्प्रदायिक स्तरपर किया गया तो हम उनको और अन्य अल्पसंख्यकोंको पूरी तरहसे सन्तुष्ट करेंगे। साथ ही मैं यह कहता हूँ कि स्वतन्त्र भारतमें प्रत्येक समस्याका समाधान राष्ट्रीय स्तरपर होगा, साम्प्रदायिक स्तरपर नहीं। फिर भी चूँकि हमारे ये भाई नेहरू रिपोर्टसे नाराज हुए हैं मैं उन्हें सन्तुष्ट करना चाहता हूँ और उन्हें अपने साथ लाना चाहता हूँ। मैं यह नहीं कहता कि जिस क्षण हम इस प्रस्तावको पास करेंगे, उसी क्षण यह पण्डाल सिखों और मुसलमानोंसे भर जायेगा। यदि वे आते हैं तो हमें उनका स्वागत करना चाहिए और यदि वे नहीं आते हैं तो भी हमें स्वतन्त्रताके लिए संघर्ष जारी रखना है। यदि हम केवल पाँच ही आदमी हों तो हम पाँचको ही स्वतन्त्रता पानेके लिए संघर्ष करना है।

[अंग्रेजीसे]

बॉम्बे क्रॉनिकल, २-१-१९३०

१. प्रस्ताव इस प्रकार था : यह देखते हुए कि नेहरू संविधान रद हो गया है साम्प्रदायिक प्रश्नपर कांग्रेसकी नीतिकी घोषणा करना अनावश्यक है; क्योंकि कांग्रेसका यह विश्वास है कि स्वतन्त्र भारतमें साम्प्रदायिक प्रश्नको पूरी तरहसे केवल राष्ट्रीय स्तरपर ही हल किया जा सकता है। पर चूँकि विशेष रूपसे सिखोंने तथा सामान्यतया मुसलमानों तथा अन्य अल्पसंख्यकोंने नेहरू रिपोर्टमें सुझाये गये साम्प्रदायिक प्रश्नोंपर असन्तोष व्यक्त किया है, यह कांग्रेस सिखों, मुसलमानों तथा अन्य अल्पसंख्यकोंको यह आश्वासन देती है कि भविष्यके किसी भी संविधानका ऐसा कोई भी समाधान कांग्रेसको मान्य नहीं होगा, जो सम्बन्धित दलोंको पूरा सन्तोष नहीं देता होगा।

२. देखिए "सिख नेताओंसे बातचीत", २७-१२-१९२९।

३५०. भेंट : पत्र-प्रतिनिधियोंसे

[लाहौर,
१ जनवरी, १९३०][1]

१९२१ के असहयोग आन्दोलन और वर्तमान आन्दोलनमें क्या अन्तर है?

वर्तमान आन्दोलन स्वतन्त्रता प्राप्तिके लिए है जबकि १९२१ का आन्दोलन खिलाफत और पंजाबमें हुई ज्यादतियोंको दूर करनेके लिए तथा यदि सम्भव हो सके तो साम्राज्यमें रहकर अथवा यदि आवश्यक हो तो उससे बाहर रहकर स्वराज्य प्राप्त करनेके लिए किया गया था। इस बार बहिष्कार केवल विधान सभाओं तक ही सीमित है, परन्तु सविनय अवज्ञा और करबन्दी आन्दोलन, तथा सत्य और अहिंसा भी दोनोंके समान तत्व है।[2]

क्या सविनय अवज्ञा बारडोली [आन्दोलन] जैसी ही होगी?

आपका मतलब १९२८ के सत्याग्रहसे है? जी हाँ, कुछ-कुछ उसीके जैसा है; अन्तर इतना ही है कि बारडोलीमें लोगोंने कुछ खास स्थानीय शिकायतोंको दूर करनेके लिए संघर्ष किया था।[3]

अन्य बहिष्कारोंके बारेमें आपका क्या कहना है?

यदि हम सविनय अवज्ञाको उचित रूपसे कर सकें तो हो सकता है कि उनकी आवश्यकता ही न हो।

आपको कबतक सफल होनेकी आशा है?

यह बता सकना मानव-शक्तिके बाहरकी बात है।

मान लीजिए कि चौरी-चौरा जैसा काण्ड[4] फिर हो जाये, तो क्या आप सविनय अवज्ञा स्थगित कर देंगे?

मैं एक ऐसी योजना तैयार करनेका प्रयत्न कर रहा हूँ जिसमें किसी बाहरी अड़चनकी वजहसे इसे स्थगित न करना पड़े — ऐसी योजना जिसके अन्तर्गत सविनय अवज्ञा एक बार प्रारम्भ हो जानेपर बिना किसी रुकावटके अपने ध्येयकी प्राप्ति होनेतक चलती रहे।

क्या आपके पास ऐसी कोई योजना है?

अभी तो फिलहाल मेरे सामने ऐसी कोई ठोस योजना नहीं है। पर मैं सोचता हूँ कि ऐसी योजना बनाना असम्भव बात नहीं होनी चाहिए। इसके लिए मैं कोई

१. गांधीजीने यह भेंट १-१-१९३० को लाहौरसे जानेके पहले की थी।

२. इसके बादका अंश **स्टेट्समैन**, ५-१-१९३० में भी छपा था।

३. देखिए खण्ड ३७।

४. देखिए खण्ड २२।

भी प्रयत्न उठा नहीं रखूँगा। ऐसा भी हो सकता है कि मानवसुलभ रोकथामके सभी उपाय काममें लानेपर भी कोई विस्फोट हो जाये। जो योजना बनानेका विचार मैं कर रहा हूँ वह यह है कि ऐसी स्थिति आनेपर भी सविनय अवज्ञाको स्थगित होनेसे बचाना।

पर मान लीजिए आपको अपनी गलती नजर आ जाये?

उस स्थितिसे पार निकलने भरकी शक्ति मुझमें है।

लेकिन यदि आप, जैसा कि आप सोच रहे हैं, वैसी योजना न बना सके तो आप क्या करेंगे?

यदि मैं ऐसा कोई उपाय ढूँढ़ पानेमें सफल नहीं हुआ और यदि फिर दोबारा चौरी-चौरा जैसा काण्ड हुआ तो मैं आन्दोलनको रोकनेमें हिचकूँगा नहीं।

[अंग्रेजीसे]
यंग इंडिया, ३०-१-१९३०

३५१. बमकी उपासना

भारतके राजनैतिक विचार रखनेवाले तबके के वातावरणमें हम लोगोंके चारों ओर इतनी ज्यादा हिंसा व्याप्त है कि कभी इधर तो कभी उधर बमोंके फेंके जानेसे किसीको कोई परेशानी महसूस नहीं होती; और शायद ऐसी किसी घटनाके हो जानेपर कुछ लोगोंके दिलोंमें खुशी तक होती है। यदि मैं यह न जानता होता कि यह हिंसा किसी हिलाये गये तरल पदार्थमें ऊपरके तलपर उठकर आया हुआ झाग ही है तो शायद मैं निकट भविष्यमें अहिंसासे स्वतन्त्रता दिला सकनेमें सफल होनके बारेमें निराश हो जाता। हिंसा या अहिंसाका सिद्धान्त माननेवाले हम सब लोग ही स्वतन्त्रताके लिए प्रयत्नशील हैं। खुशकिस्मतीसे पिछले लगभग १२ महीनोंमें भारतके अपने दौरेके अनुभवोंके आधारपर मुझे ऐसा कुछ विश्वास हो गया है कि देशकी विशाल जनता जो इस तथ्यसे वाकिफ है कि हमें स्वतन्त्रता प्राप्त करनी ही है, हिंसाकी भावनासे अछूती है। इसलिए वाइसरायकी रेलगाड़ीके नीचे हुए बम विस्फोटोंकी तरह होनेवाले इक्के-दुक्के हिंसापूर्ण विस्फोटोंके बावजूद मैं यह मानता हूँ कि हमारे राजनीतिक संघर्षमें अहिंसाकी जड़ें जम गई हैं। राजनीतिक संघर्षमें अहिंसाकी प्रभावशीलतामें मेरे बढ़ते हुए विश्वास और जनताके इसपर चल सकनेकी सम्भावनाके कारण ही, मैं उन लोगोंको जो अभी हिंसाके विचारोंसे इतने ओतप्रोत नहीं हुए हैं कि उनपर तर्कोंका कोई असर ही न हो, अपनी बात समझाना चाहता हूँ।

तो फिर हम एक क्षण यह सोचें कि यदि वाइसराय गम्भीर रूपसे घायल हो जाते या मारे जाते तो क्या होता। तब यह तो निश्चित ही है कि पिछले महीनेकी २३ तारीखको कोई सभा नहीं हो पाती और इसलिए यह निश्चित न हो पाता कि कांग्रेसको क्या तरीका अपनाना है। कमसे-कम कहा जाये तो भी यह एक अवांछनीय

परिणाम तो होता ही। हम लोगोंके सौभाग्यसे वाइसराय और उनके दलमें कोई जख्मी नहीं हुआ और उन्होंने बड़े सहज भावसे दिनभरका अपना कार्यक्रम इस तरह निभाया, मानो कुछ हुआ ही न हो। मैं जानता हूँ कि जिन लोगोंको कांग्रेसका भी कोई खयाल नहीं है, जो उससे कुछ आशा नहीं रखते और जिन्हें सिर्फ हिंसाके साधनका ही भरोसा है, उनपर इस परिकल्पी तर्कका कुछ असर नहीं पड़ेगा। लेकिन मैं आशा करता हूँ कि अन्य लोग इस दलीलके सारको समझ सकेंगे और मैंने जिस परिस्थितिकी कल्पना करके बात सामने रखी है उससे जो महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं उन्हें एक साथ मिलाकर देख सकते हैं।

फिर, इस देशमें अभीतक राजनीतिक हिंसासे जो-कुछ हाथ लगा है, उसे लीजिए। जब-जब हिंसा हुई है, हर बार हमें गहरा नुकसान पहुँचा है; अर्थात् सैनिक खर्च बढ़ा है। अगर कोई इसके उत्तरमें मार्ले-मिन्टो सुधार, मॉन्टेग्यु सुधार जैसी चीजोंकी ओर इशारा करे तो मैं उन्हें माननेको तैयार हूँ। लेकिन अब दिनों-दिन राजनीतिज्ञोंमें यह बात महसूस करनेवालोंकी संख्या बढ़ती जा रही है कि जबर्दस्त आर्थिक बोझके बदले हमें खिलौनों-जैसे ये सुधार दिये गये हैं। नगण्य रियायतें तो दी गई हैं, कुछ और भारतीयोंको सरकारी नौकरियाँ मिल गई हैं, किन्तु उस जनताका बोझ, जिसके नामपर और जिसके लिए हम स्वतन्त्रता चाहते हैं, और भी बढ़ गया है और बदलेमें उसे कुछ भी नहीं मिला है। यदि हम इतना ही समझ लें कि सिर्फ विदेशियोंको डराकर ही हमें स्वतन्त्रता प्राप्त नहीं होगी, बल्कि खुद भय त्याग कर और ग्रामीणोंको अपना भय त्यागना सिखलाकर हम सच्ची स्वतन्त्रता प्राप्त करेंगे, तो यह बात तुरन्त हमारी समझमें आ जायेगी कि हिंसा आत्मघातक है।

फिर आप इसकी खुद हम लोगोंपर होनेवाली प्रतिक्रियाकी बात सोचिए। विदेशी शासकोंको मारनेके बाद अपने ऐसे देशवासियोंको मारना एक स्वाभाविक कदम ही होगा, जिन्हें हम देशकी प्रगतिमें बाधा डालनेवाला मानेंगे। अन्य देशोंमें हिंसात्मक कार्यवाहियोंका चाहे जो भी परिणाम हुआ हो और अहिंसाके दर्शनका हवाला दिये बिना भी यह समझनेमें कुछ बहुत बौद्धिक प्रयत्नकी जरूरत नहीं है कि यदि हम प्रगतिमें बाधा डालनेवाले उन अनेक दोषोंसे समाजको मुक्त करानेके लिए हिंसाका सहारा लेते हैं तो हम केवल अपनी कठिनाइयाँ ही बढ़ायेंगे और इससे स्वतन्त्रताका दिन और भी दूर हटेगा। जो लोग सुधारोंकी आवश्यकता नहीं समझते क्योंकि वे उनके लिए तैयार नहीं है, सुधारोंके जबर्दस्ती लाये जानेपर वे क्रोधसे पागल हो उठेंगे और बदला लेनेके लिए विदेशोंकी मदद मागेंगे। क्या पिछले कई वर्षोंमें हमारी आँखोंके सामने यही नहीं होता रहा है; अब भी इसकी दुःखद याद हमारे सामने स्पष्ट है।

अब तर्कका भावात्मक पहलू ले लीजिए। जब १९२०में अहिंसा कांग्रेसके सिद्धान्त का अंग बन गई[1] और कांग्रेस मानो जादूसे एक सर्वथा परिवर्तित संस्था बन गई। कोई नहीं जानता कि जनतामें जागृति कैसे आ गई। यहाँतक कि दूरस्थ गाँवोंमें भी हलचल मच गई। ऐसा लगता था कि बहुतेरी बुराइयाँ बिलकुल निकल गई हैं

१. देखिए खण्ड १९, पृष्ठ १६२-७७।

और लोग अपनी शक्ति पहचानने लगे हैं। उन्होंने सत्ताधारियोंको मदद देना बन्द कर दिया। अलमोड़ामें तथा भारतके अन्य कई भागोंमें जहाँ कहीं जनताको अपने भीतर निहित शक्तिका भान हुआ, बेगारकी प्रथा कुहरेकी तरह छट गई। यह स्वयं अपनी शक्तिसे स्वतन्त्रता प्राप्त करना था। यह आम जनता द्वारा आम जनताके लिए प्राप्त सच्चा स्वराज्य था। यदि चौरी-चौरा काण्डमें परिणत होनेवाली घटनाओंसे अहिंसाकी प्रगतिमें बाधा न पड़ी होती, तो मैं बिना संकोचके यह कह सकता हूँ कि हम लोग अबतक पूर्ण स्वराज्य पा चुके होते। इस बातपर किसीने मतभेद प्रकट नहीं किया है। लेकिन कई लोगोंने मतभेद प्रकट करते हुए यह तो अवश्य कहा है, "लेकिन आप आम जनताको अहिंसा नहीं सिखला सकते"। यह तो व्यक्तियोंको ही सिखलाई जा सकती है और ऐसे व्यक्ति भी बिरले ही होंगे। मेरी समझमें ऐसा सोचना अपने आपको जबर्दस्त धोखा देना है। यदि मानव स्वभावसे अहिंसक न होता तो वह अपने आपको युगों पूर्व नष्ट कर चुका होता। लेकिन हिंसा और अहिंसाकी शक्तियोंमें होनेवाले द्वन्द्वमें अन्तमें अहिंसा सदैव विजयी रही है। सच तो यह है कि हममें प्रतीक्षा करने और लोगोंमें यह प्रचार करनेके लिए अपने आपको पूरे मनसे लगा देनेका धैर्य नहीं है कि वे राजनीतिक उद्देश्योंके लिए अहिंसाको साधन रूपमें अपनायें।

अब हम लोग एक नये युगमें प्रवेश कर रहे हैं। पूर्ण स्वराज्य — हमारा गन्तव्य दूरस्थ नहीं वरन तात्कालिक उद्देश्य है। क्या यह स्पष्ट नहीं है कि यदि हमें करोड़ों लोगोंमें स्वराज्यकी सच्ची भावना उपजानी है तो वैसा हम सिर्फ अहिंसा द्वारा और उसके अन्तर्गत आनेवाली सभी चीजों द्वारा ही कर सकेंगे। इतना ही काफी नहीं है कि हम गुप्त हिंसा द्वारा अंग्रेजोंका जीवन खतरेमें डालकर उन्हें बाहर भगा दें। इससे स्वराज्य नहीं मिलेगा; एकदम अराजकता फैल जायेगी। हम अपनी बात लोगोंके दिल और दिमागको जँचाकर, अपने बीच परस्पर एकता पैदा करके और अपने मतभेद समाप्त करके स्वराज्य स्थापित कर सकते हैं; और जिन्हें हम अपनी प्रगतिमें बाधा डालनेवाला मानते हैं उन लोगोंको डराकर या मारकर नहीं बल्कि उनसे धैर्य और नरमीसे व्यवहार करके, विरोधीका हृदय-परिवर्तन करके हम सामूहिक सविनय अवज्ञा करना चाहते हैं। यह बात तो सभी स्वीकार करते हैं कि यह उपाय एक निश्चित उपाय है। सभी समझते हैं कि सविनयका अर्थ यहाँ पूर्ण अहिंसा है; और क्या यह कई बार स्पष्ट नहीं हो चुका है कि सामूहिक अहिंसा और सामूहिक अनुशासनके बिना सविनय अवज्ञा असम्भव है? और कुछ नहीं तो जिसकी ओर मैंने संकेत किया है ऐसी सीमित ढंगकी अहिंसा हमारी स्थितिकी माँग है; इस बातका विश्वास दिलानेके लिए हमारी धार्मिक भावनाको उभारनेकी निश्चय ही आवश्यकता नहीं है। इसलिए जो लोग विवेकशील हैं उन्हें इस हालके बम-विस्फोट जैसे कार्योंका छुपे या खुले ढंगसे अनुमोदन करना बन्द कर देना चाहिए। बल्कि उन्हें खुले आम और पूरे हृदयसे इन विस्फोटोंकी निन्दा करनी चाहिए, ताकि हमारे बहके हुए देशभक्तअपनी हिंसात्मक भावनाओंको मिलनेवाले प्रोत्साहनके अभावमें

मानते हो। किन्तु दूसरे पत्रसे यह जान पड़ता है कि तुमने अपनी राय बदल दी है। . . . तो कहती ही है कि वही उसके पिता हैं। सब बातोंपर सोच-विचार करनेके बाद मैंने यह फैसला किया है:

१. . . .को पत्नीकी तरह . . .के पास जाकर रहना चाहिए।

२. यदि उसकी इस तरह रहनेकी इच्छा न हो और वह निर्विकार भावसे रह सके तो उसे ब्रह्मचर्यका पालन करना चाहिए।

३. यदि वासनाको दबा न सके तो उसे किसी अन्य नवयुवकसे विवाह कर लेना चाहिए।

४. जबतक उसका विवाह नहीं होता तब तक . . .के साथ उसे पवित्र सम्बन्ध रखना चाहिए था। हालाँकि दोनों यह दावा करते हैं कि वे पवित्र हैं किन्तु मैं उनके आपसी सम्बन्धको धर्म नहीं मानता। इसके अतिरिक्त यदि वे एक-दूसरे के साथ सम्भोग किये बिना न रह सकते हों तो दोनोंको खुले तौर पर सम्बन्ध रखना चाहिए। किन्तु इस चौथी अवस्थामें उन्हें न तो मेरा आशीर्वाद मिल सकता है और न मेरी सहमति ही मिल सकती है और जिन संस्थाओंसे मेरा निकट सम्बन्ध है उन संस्थाओंमें भी वे नहीं रह सकते। मुझे भय है कि . . . के बिना नहीं रह सकती। मेरे विचारसे उसे हिस्टीरियाके दौरे पड़नेका कारण उसकी विषयेच्छा है। और . . . का विकारयुक्त स्पर्श उसके हिस्टीरियाको और भी बढ़ा देता है।

अब तुम्हें जो उचित जान पड़े सो करना। मैंने यह पत्र दुबारा नहीं पढ़ा है।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ६०६९)की नकलसे।
सौजन्य : हरिभाऊ उपाध्याय

३५६. पत्र : वसुमती पण्डितको

आश्रम
साबरमती
८ जनवरी, १९३०

चि० वसुमती,

इस बार बहुत दिनों बाद तुम्हारा पत्र मिला। जब मैं कांग्रेसमें भाग लेता होऊँ तो एक पोस्टकार्डकी तो बात ही क्या, मैं अपने बेटे-बेटियोंके पत्रोंको भी पी सकता हूँ। तुम्हारा वजन कितना है? तुम्हारा स्वास्थ्य कैसा रहता है? यदि तुम अपनी दैनन्दिनी नियमसे न लिखती हो तो नियमपूर्वक लिखना और उसमें अपने मनोभावोंको भी दर्शाना। जो व्यक्ति अपने भले-बुरे विचारोंको नहीं छिपाता, वह धन्य है। जो उन विचारोंको छिपाता है वह निश्चय ही अस्तेयव्रतका भंग करता है। यदि यह बात तुम्हारी समझमें न आई हो तो विनोबासे समझ लेना। कमलासे

पत्र लिखनेको कहना। उसे भी दैनन्दिनी लिखनी चाहिए। मेरी तबीयत अच्छी है। मैंने बहुत-सा काम किया; थकावट भी महसूस हो रही है। किन्तु फिर भी तबीयत नहीं बिगड़ी।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (एस० एन० ९२७३)की फोटो-नकलसे।

३५७. पत्र : नौतमलाल भगवानजीको

आश्रम
साबरमती
८ जनवरी, १९३०

भाईश्री नौतमलाल,

डाक्टर[1] साहब कल रात यहाँ पहुँचे। उन्होंने यहाँ पहुँचते ही अपनी यह इच्छा व्यक्त की कि जैसे रतिलालका[2] विवाह यहाँ आश्रममें हुआ था वैसे ही मगनलालका[3] भी किया जाये तथा इस सम्बन्धमें मैं आपको लिखूँ। यह एक सामान्य बात है कि विवाहके अवसरपर स्त्री जाति उससे अनेक प्रकारका आनन्द उठानेकी इच्छा रखती है। किन्तु यदि आप डाक्टरकी इच्छाका सम्मान करते हों तो मेरी ओरसे स्त्रियोंसे प्रार्थना करना और उन्हें समझाना। यह तो आप स्वीकार करेंगे ही कि यदि धनाढ्य माता-पिता अपनी सन्तानका विवाह धार्मिक विधिसे करें तो उसमें लोक कल्याण है और गरीबोंके लिए वह अनुकरणीय उदाहरण होगा। अतः मैं आशा करता हूँ कि आप बहनोंको समझा सकेंगे और ऐसी व्यवस्था कर देंगे ताकि विवाह यहीं हो सके। यह तो आप जानते ही होंगे कि यहाँ गाना-बजाना और खान-पान नहीं होता। केवल धार्मिक विधि ही होती है और वर-कन्या खादी ही पहनते हैं।

मोहनदासके वन्देमातरम्

गुजराती (जी० एन० २५८३)की फोटो-नकलसे।

१. प्राणजीवन दास मेहता।
२ और ३. प्राणजीवन दास मेहताके पुत्र।

३५८. पत्र : ब्रजकृष्ण चाँदीवालाको

आश्रम
साबरमती
८ जनवरी, १९३०

चि० ब्रजकिशन,

तुम्हारा पत्र मिला। आज भी मिलनेकी आशा करता था। अब तो प्रभुदास अच्छा होगा। तुम्हारी रोजनिशी अच्छी तरहसे चलती होगी। अब उसमें खलल पहुँचना ही नहीं चाहिए। वर्धा जानेका दिन निश्चित कर लेना और मुझे लिखना। धुनकी तो चलती है ना?

बापूके आशीर्वाद

जी० एन० २३७१ की फोटो-नकलसे।

३५९. पत्र : घनश्यामदास बिड़लाको

[९ जनवरी, १९३०से पूर्व][1]

भाई घनश्यामदासजी,

आपका आखरका तारका उत्तर मैंने नहीं दिया। दूर बैठा हुआ मैं सूचना क्या दूं? आपकी तरफसे जतनमें तो कुछ भी न्यूनता हो हि नहीं सकती है। केशाको[2] आश्वासन चाहिये इतना मैं जानता हूँ। इसलिए देवदासको भेज रहा हूँ। दवाइओंमें मेरा विश्वास कम है। लेकिन मेरेसे जो दूर रहते हैं उनकी भावनामें मैं कुछ दखल नहीं देता। इसलिए तारके उत्तरमें कोई सूचना देनेकी जरूरत नहीं थी। मेरा उपचार तो जाहिर है — उपवास या तो फलोंका रस, और सूर्यस्नान। रातको भी खुले कमरेमें सोना। पखाना न आवे तो इनीमा। इतने उपचारसे केशवके जैसे बहुत केस ठीक हुए। परंतु दूर बैठा हुआ इस पांडित्यको मैं चलाना नहीं चाहता। आपका दिल चाहे

१. पत्रके पाठसे पता चलता है कि यह ९-१-१९३० के पत्रसे पहले लिखा गया था। देखिए "पत्र : घनश्यामदास बिड़लाको", ९-१-१९३०।

२. मगनलाल गांधीका पुत्र।

वैसे करें। केशव अपने आप दवाईका आग्रह न करे, न ऐसा आग्रह किया जाय। मेरी उम्मीद तो यह है कि इस पत्रके पहुँचनेसे पहले केशव भयमुक्त हुआ होगा।

आपका,
मोहनदास

सी० डब्ल्यू० ६१७९से।
सौजन्य: घनश्यामदास बिड़ला

३६०. वक्तव्य: 'न्यूयार्क वर्ल्ड' को

[९ जनवरी, १९३०से पूर्व][1]

संसारको यह समझ लेना चाहिए कि कांग्रेसी प्रतिनिधि होनेके नाते, केन्द्रीय विधान सभाके राष्ट्रवादी नेता पण्डित मोतीलाल नेहरू और मैं वाइसरायकी भारतमें औपनिवेशिक स्वराज्य सम्बन्धी घोषणाको १९२८की कलकत्ता कांग्रेसके प्रस्तावकी[2] केवल एक प्रतिक्रिया मान सकते हैं। इसलिए उस प्रस्तावको देखते हुए हम इस प्रकार एक स्पष्ट घोषणा करनेपर जोर डालनेके लिए बाध्य हो गये कि प्रस्तावित गोलमेज परिषदमें केवल औपनिवेशिक स्वराज्यके संविधानका गठन करनेके तौर तरीकोंपर विचार किया जायेगा, किसी अन्य बातपर नहीं। वाइसराय लॉर्ड इर्विन ऐसा कुछ नहीं कर सके। इसलिए यद्यपि हम उनके सत्प्रयत्नोंकी सराहना करते हैं और उनकी कठिनाइयोंको समझते हैं, पर हमारे सामने प्रस्तावित परिषदमें कांग्रेसका प्रतिनिधित्व करना नामंजूर करनेके अलावा कोई और रास्ता नहीं बचा था। परिषदने, जहाँतक कांग्रेसका सम्बन्ध है, स्वतन्त्रता प्रस्तावको[3] गलत ढंगसे लिया है; पर इससे किसीको घबरानेकी आवश्यकता नहीं है। मैंने बार-बार यह कहा है कि मेरे लिए, जैसा कि सारे कांग्रेसियोंके लिए है, औपनिवेशिक स्वराज्यका अर्थ वास्तविक स्वतन्त्रता है, अर्थात् आपसी लाभके लिए एक ऐसी स्वैच्छिक साझेदारी, जिसे किसी भी एक साझेदारकी ओरसे समाप्त किया जा सके। इससे [वायसरायकी घोषणासे] मामला बिलकुल साफ हो जाता है, विशेषकर भारत मन्त्री वैजवुड बेनके इस दुर्भाग्यपूर्ण वक्तव्यसे कि भारतमें अब भी औपनिवेशिक स्वराज्य है।

शान्तिप्रिय लोगोंके लिए सन्तोषकी बात असलमें यह है कि अन्य सब तरीकोंको छोड़कर पूरी बहसमें कांग्रेसने अहिंसा और सत्यके मार्गका ही समर्थन किया। सविनय अवज्ञा अहिंसाका एक शक्तिशाली प्रदर्शन है। निःसन्देह इस रास्तेमें बहुतेरे खतरे और कठिनाइयाँ हैं; पर वे बहुतसे युवकोंके समझमें आने योग्य और क्षम्य, उतावलेनपनके कारण भारतके कई हिस्सोंमें आजकल हो रही बेलगाम, पर गुप्त हिंसाके

१. यह **न्यूयार्क वर्ल्ड**, ९-१-१९३० में प्रकाशित हुआ था।
२. देखिए खण्ड ३८, पृष्ठ ३०३-१५।
३. देखिए "भाषण: कांग्रेस अधिवेश लाहौरमें-२", ३१-१२-१९२९।

खतरोंसे अपेक्षाकृत निश्चय ही कम हैं। सविनय अवज्ञाकी शुरुआत करनेकी जिम्मेदारी मेरी है और मैं इसके सम्बन्धमें कोई उतावलापन करनेवाला नहीं हूँ। इसके साथ ही साथ मैं यह भी मानता हूँ कि मैं कमसे-कम उतना जोखिम उठानेमें नहीं हिचकूँगा, जो किसी भी स्वतन्त्रता संघर्षके लिए उठानी अनिवार्य है। लदी हुई यह गुलामी और उसके कारण होनेवाली वर्तमान पीड़ाको और आगे जारी रहने देनेका जोखिम उस जोखिमसे कहीं बढ़कर है जिसे मैं उठाने जा रहा हूँ।

विधान सभाओंका बहिष्कार भी राष्ट्रीय माँगको जोरदार ढंगसे पेश करनेके कार्यक्रमका एक अंग है। स्वतन्त्रता प्रस्तावका यह स्वाभाविक और सहज फल था और मुझे यह कहते हुए प्रसन्नता होती है कि कांग्रेसियोंमें इसकी पर्याप्त प्रतिक्रिया हुई है। एक रचनात्मक कार्यक्रम जैसे अस्पृश्यता उन्मूलन, साम्प्रदायिक एकता, शराबबन्दी और विदेशी कपड़ा बहिष्कार चलाना बाकी है। इनका अत्यधिक सामाजिक व आर्थिक महत्व है तथा इसमें बहुतसे राजनीतिक परिणाम निहित हैं। स्वभावतः ही नेहरू संविधान, अपने प्रयोगात्मक साम्प्रदायिक समाधानोंके साथ रद हो जाता है।

अतः कांग्रेस अलग सम्प्रदायोंकी दृष्टिसे नहीं वरन पूर्णतः राष्ट्रीय दृष्टिसे साम्प्रदायिक प्रश्नका समाधान करने पर अपना ध्यान केन्द्रित करेगी। ऋणोंके सम्बन्धमें भी एक प्रस्ताव था।[1] इससे किसी वैध हितवाले विदेशीको घबरानेकी आवश्यकता नहीं है। यह बात सदैव ध्यानमें रखनी चाहिए कि किसी भी विदेशी सरकारके अन्तर्गत ऐसे ऋण लिए जाते हैं और रियायतें दी जाती हैं, जो किसी भी तरह सम्बन्धित देशके हितमें नहीं होते और निश्चय ही अकसर उस देशके लिए नुकसानदेह होते हैं। इनको उत्तराधिकारियों द्वारा, जो इस प्रकारके प्रत्येक ऋण और रियायतकी जाँच करनेका अधिकार रखते हैं, कभी नहीं स्वीकार किया जा सकता। कांग्रेसने इनकी जाँच एक स्वतन्त्र न्यायाधिकरणके सुपुर्द की है। अन्तमें मेरा कहना यह है कि ऐसी परिषदके लिए जो राष्ट्रीय आकांक्षाओं अर्थात स्वाधीनताकी योजनाकी रूपरेखा तैयार करनेके उद्देश्यसे बुलाई जाये, रास्ता खुला रखा गया है।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, २५-३-१९३०

१. देखिए "भाषण: अ० भा० कां कमेटीकी विषय-समितिमें—२", १-१-१९३०।

३६१. टिप्पणियाँ

स्वर्गीय मजहर-उल-हक

स्वर्गीय मजहर-उल-हक एक महान देशभक्त, अच्छे मुसलमान और दार्शनिक थे। स्वभावसे आराम-पसन्द होते हुए भी, जब असहयोग शुरू हुआ, उन्होंने उसे उसी तरह छोड़ दिया जैसे हम गैरजरूरी मैलको अपने शरीरसे छुड़ा देते हैं। बादमें तो वे साधु जीवनके उतने ही शौकीन बन गये, जितने कि वे शाही जीवनके थे। हमारे आपसी मतभेदोंसे आजिज आकर वे सबसे अलग रहने लगे थे और चुपचाप उस तरहकी सेवा करते रहते थे जिसे लोग देख न सकें और अच्छी स्थितिके लिए ईश्वर से प्रार्थना करते रहते थे। वह निडर होकर बोलते और निर्भीक होकर काम करते थे। पटनाके समीप जो सदाकत आश्रम है, वह उन्हींके रचनात्मक पुरुषार्थका फल है। यद्यपि वह अपनी इच्छानुसार उस आश्रममें बहुत समयतक नहीं रह सके, तथापि उनके आश्रम सम्बन्धी विचारोंकी बदौलत बिहार विद्यापीठको आश्रमके रूपमें एक स्थायी भवन मिल सका। यही कारण है कि आज भी वह दोनों कौमोंको एक बनानेका एक जरिया हो सकता है। ऐसे पुरुषका अभाव सदा खटकता रहता है। खासकर देशके इतिहासकी वर्तमान स्थितिमें उनका अभाव और भी खटकेगा। मैं बेगम मजहर-उल-हक और उनके कुटुम्बियोंके प्रति अपनी हार्दिक सहानुभूति व्यक्त करता हूँ।

मद्यनिषेध अभियान

मद्यनिषेध परिषदने लाहौरमें अन्य प्रस्तावोंके साथ एक प्रस्ताव यह भी पास किया था :[1]

यह दुःखकी बात है कि भारतवर्ष-जैसे देशमें, जहाँ शराबखोरी प्रायः सब जगह दुर्व्यसन मानी जाती है, ऐसे प्रतिष्ठित अखबार भी काफी तादादमें हैं, जो एक ओरसे शराब आदि मादक वस्तुओंके विज्ञापन छापते हैं और दूसरी ओर अपने सम्पादकीय स्तम्भोंमें पूर्ण मद्य-निषेधका समर्थन करते हैं। मैं आशा करता हूँ कि परिषदके इस प्रस्तावसे प्रभावित होकर ऐसे अखबार इन घातक विज्ञापनोंको छापना बन्द कर देंगे। इस सम्बन्धमें विज्ञापकोंके साथ किये गये करारका सवाल खड़ा हो सकता है। लेकिन चूंकि अखबारोंके मालिकोंने अबतक ऐसे विज्ञापनोंको लेकर राष्ट्रकी काफी हानि की है, अतएव उनसे यह आशा करना अनुचित न होगा कि वे मियादसे पहले ऐसे इकरारोंसे हाथ खींच लें और ऐसा करनेमें जो हानि उठानी पड़े उसे अनुचित रूपसे कमाये गये मुनाफेमें से पूरी करें।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ९-१-१९३०

१. यह प्रस्ताव यहाँ नहीं दिया जा रहा है। इसमें माँग की गई थी कि समाचारपत्रोंमें और सार्वजनिक स्थानोंपर मादक पेयोंका विज्ञापन तत्काल बन्द किया जाये।

३६२. कांग्रेस

अध्यक्ष

पण्डित जवाहरलाल नेहरूको अध्यक्ष चुनना उचित ही था। उनका भाषण छोटा, सारगर्भित और जोरदार था। उग्र विचारोंको उन्होंने सौम्य भाषामें प्रकट किया था। उनका भाषण इस बातका सबूत था कि उग्र विचार रखते हुए भी पूरी तरह तटस्थ रहकर स्थिति देख सकनेकी ताकत उनमें है। वह खुद तो पक्के समाजवादी हैं, लेकिन देशके लिए वह उतना ही कार्यक्रम रखना चाहते हैं, जितना वह सँभाल सकता है। वे एक व्यावहारिक राजनीतिज्ञ हैं और अपने आदर्शोंको देशके लिए कुछ हलका बनाते हुए अपने जीवनमें आदर्शोंका सम्पूर्ण पालन करनेके लिए हमेशा प्रयत्नशील रहते हैं।

जैसा उनका भाषण था, ठीक वैसा ही अध्यक्ष पदसे उन्होंने काम भी किया। सख्त होते हुए भी नम्र और लचीले रहे। कई बार मुश्किल मौकोंपर विनोद भरी बातों द्वारा वह उनसे पार पा जाते थे; फिर भी जब कोई कार्य अपेक्षित होता, तो उसे करनेमें कभी नहीं झिझकते थे। उनके अथक उत्साह और अखण्ड तन्मयता, उनकी सहज सादगी और भलमनसीपर सभी मुग्ध थे। किसी भी सरकारके लिए जो जरा भी इन्साफ करना चाहती है, जवाहरलाल नेहरूसे डरनेकी कोई वजह नहीं है। दुष्ट सरकारको देशकी सरहदसे बाहर निकाल फेंकनेके लिए जो बहादुर हर तरहकी कुरबानीके लिए तैयार है, उसके तेजको सरकार जल्दी ही महसूस करेगी।

देशके नौजवानोंको अपने इस प्रतिनिधिपर गर्व करनेका पूरा हक है। मुल्कको भी जवाहरलाल नेहरूके समान स्वाभिमानी सपूत पाकर खुशी होगी। ईश्वर जवाहरलालको आशीष दे और उन्हींके कार्यकालमें देश अपनी मंजिल तय करे, यही चाह है।

स्वराज्य

कांग्रेसके प्रस्ताव[1] अध्यक्षीय भाषणके रुखके अनुरूप ही थे। आइए हम पहले मुख्य प्रस्तावपर[2] ही विचार करें। कलकत्ताके प्रस्तावकी[3] राय और उसकी आत्माका अनुसरण करते हुए और उसके बाद जो किसीकी गढ़ी हुई नहीं थीं ऐसी कई घटनाओंके फलस्वरूप ३१ दिसम्बर, १९२९ की आधी रातको कांग्रेसका ध्येय औपनिवेशिक स्वराज्यके बदले पूर्ण स्वराज्य निश्चित किया गया। कांग्रेसके संगठनकी पहली धारामें जो 'स्वराज्य' शब्द है, उसका अर्थ अबसे 'पूर्ण स्वराज्य' होगा। और यह ठीक हुआ। कलकत्ताके प्रस्तावको छोड़ दें तो भी श्री [बेजवुड] बेनके इस कथनसे कि भारतवर्षको तो आज भी व्यवहारमें औपनिवेशिक स्वराज्य प्राप्त है, औपनिवेशिक

१. देखिए "लाहौर कांग्रेसके प्रस्तावोंका मसविदा", २६-१२-१९२९।

२. देखिए "भाषण: कांग्रेस अधिवेशन लाहौरमें–२", ३१-१२-१९२९।

३. देखिए खण्ड ३८, पृष्ठ ३०३-१५।

स्वराज्यका जो अर्थ निकलता है वह हमारा ध्येय कदापि नहीं हो सकता है। हिन्दुस्तान खास-खास राजनैतिक मौकोंपर ब्रिटिश सरकार द्वारा पसन्द किये गये अपने प्रतिनिधि भेज सकता है। अगर 'औपनिवेशिक स्वराज्य' का मतलब यही है, तो भगवान उससे भारतवर्षको बचाये! कांग्रेस तो इससे बिलकुल जुदा ही कोई चीज चाहती है। कांग्रेसके लिए औपनिवेशिक स्वराज्यका मतलब है, पूरी आजादी और ब्रिटेनके साथ इच्छानुसार भाईचारा, जिसे हिन्दुस्तान दूसरे किसी भी देशके साथ एक-दूसरेके कल्याणकी इच्छासे जोड़ सकता है। इसके सिवाय एक और भी वजह है। कई जगह आजकल यह अफवाह गर्म है कि पूर्ण स्वराज्यकी बात करना कानूनके खिलाफ है, और औपनिवेशिक स्वराज्यके बदले पूर्ण स्वराज्यको अपना ध्येय बनानेसे कांग्रेसका अन्त हो जायेगा। इस धमकीके कारण तो कांग्रेसका यह और भी पवित्र कर्त्तव्य हो गया है कि वह अपने ध्येयमें पूर्ण स्वराज्यको स्थान दे। जिस चीजको पाना देशका जन्मसिद्ध अधिकार है, उसे साफ-साफ जाहिर करनेसे कांग्रेस अगर डर जाये तो वह राष्ट्रकी प्रतिनिधि संस्था कहलाने योग्य नहीं रहेगी। अगर 'स्वराज्य' शब्दके मतलबके बारेमें कोई शंका थी तो 'पूर्ण-स्वराज्य' लिखनेसे वह शंका दूर हो जाती है।

'सत्य और अहिंसा'

अब रही साधनकी बात। मौजूदा साधनों — सत्य और अहिंसामें परिवर्तन करानेका प्रयत्न किया गया; लेकिन कांग्रेसने बहुत बड़े बहुमतसे उसे ठुकरा दिया। विषय समितिमें कुछ सदस्योंने अपना यह विचार प्रकट किया था कि अहिंसा और सत्यके रास्तेसे पूर्ण स्वराज्य नहीं मिल सकता। वायुमण्डलमें भी जहाँ-तहाँ हिंसा दिखाई पड़ती थी। लेकिन मैं तो यह अनुभव कर रहा हूँ कि जो लोग हर साल कांग्रेसके अधिवेशनमें आते हैं, उनमें भारतकी खोई हुई स्वतन्त्रताको फिरसे पानेके लिए एक ही साधनके प्रति जागृत श्रद्धा है, और वह साधन अहिंसा है। अगर करोड़ों लोगोंके आलस्य और जड़ताको दूर करना हो और एक दूसरेसे झगड़ा करनेवाली कौमोंको आपसमें मिलाना हो तो अहिंसा और सत्य ही इस देशके लिए नितान्त आवश्यक है। अगर किसी कौमको दूसरी कौम या कौमोंके साथ जबर्दस्ती करनी हो तो जरूर ही उसे बाहरी ताकतकी जरूरत होगी। लेकिन कांग्रेसको तो सभी कौमोंका प्रतिनिधित्व पाना है; उसका दावा भी यही रहा है, अतएव उसे तो अहिंसक रहना ही होगा। इसलिए मैं तो यह कहना चाहता हूँ कि पूर्ण स्वराज्य पानेमें एक सालका समय लगे या कई साल बीत जायें, तो भी अहिंसा और सत्यका रास्ता ही उसे पानेके लिए सबसे छोटा रास्ता है। कांग्रेसने जिस पूर्ण स्वराज्यको अपना ध्येय बना लिया है, उससे विदेशियोंके न्यायोचित हित-सम्बन्धोंको कोई खतरा नहीं है और न किसी अंग्रेजके, जो स्वाधीन भारतमें सब जगह लागू होनेवाले कानून-कायदोंको मानते हुए एक मित्रकी तरह रहना चाहता है, डरनेकी कोई वजह है।

यह बात कांग्रेसके दो प्रस्तावों द्वारा साफ जाहिर है — एक, वाइसरायकी स्पेशलको उड़ा देनेकी गरजसे, जो बम फेंका गया था उसकी निन्दा करनेवाले प्रस्ताव

द्वारा, और दूसरे, राजनैतिक सवालको शान्तिमय तरीकेसे हल करनेके लिए वाइसरायने जो कोशिश की, उसकी कद्र करनेकी जो बात मुख्य प्रस्तावमें कही गई है, उसके द्वारा। इन दोनों प्रस्तावोंपर गर्मा-गर्म बहस-मुबाहसा हुआ था; लेकिन कांग्रेसने दोनों प्रस्तावोंको पास करके अपने ध्येयका पालन किया है और दुनियाकी निगाहोंमें अपने आपको ऊँचा उठाया है। इनमें से एक प्रस्ताव तो मत लिये जानेके बाद पर्याप्त बहुमतसे पास हुआ और दूसरा बहुत बड़े बहुमतसे पास हुआ। इसके खिलाफ अगर बम-काण्डकी निन्दा करनेवाला प्रस्ताव गिर गया होता और जिस शासनको हम मिटाना चाहते हैं उसके प्रतिनिधि द्वारा किये गये अच्छे कामकी कद्र करनेके मामूली विवेकमें हमने भूल की होती तो भारत अपने ध्येयका पालन करनेसे चूक जाता और दुनियाकी नजरोंमें उसकी कीमत घट जाती।

विधानसभाओंका बहिष्कार

रचनात्मक कार्यक्रमके साथ कांग्रेसने विधान सभाओंके बहिष्कारका कार्यक्रम भी जोड़ दिया है। मेरी रायमें यह अनिवार्य था। जिन लोगोंको पूर्ण स्वराज्य लेना है, उन्हें विधानसभाओंसे बाहर लोगोंमें जाकर काम करना होगा। कांग्रेसियोंके विधान-सभाओंसे निकल आनेपर भी वहाँ कोई जगह खाली नहीं रह जायेगी, यह दलील बहिष्कारके विरोधमें कोई ठीक दलील नहीं है। जो लोग विधानसभाओंमें विश्वास रखते हैं, वे खुशीसे विधानसभाओंमें जायें। हमारे लिये तो यही काफी है कि कांग्रेसी विधानसभाओंमें जानेके बदले दूसरे अच्छे कामोंमें लगें और उनके जानेसे इन संस्थाओंको जो इज्जत मिल रही है वह उन्हें न मिलने दें। मेरे लिए तो पण्डित मोतीलालजी द्वारा बहिष्कारका स्पष्ट समर्थन ही इस सम्बन्धका प्रस्ताव करनेके लिए काफी था।

अगर इस बहिष्कारमें अदालतों और सरकारी मदरसोंका बहिष्कार भी जोड़ दिया जाता तो निस्सन्देह यह कार्यक्रम खूब पुख्ता हो जाता, मगर इसके लिए वातावरण न था। कांग्रेस सिद्धान्त बनानेवाली संस्था नहीं है, बल्कि राष्ट्रकी अभिलाषा और आवश्यकताको जानकर उसे सफल करने योग्य उपायोंको, खास सिद्धान्तोंके अंतर्गत, काममें लानेवाली संस्था है।

स्थानीय संस्थाओं या बोर्डोंका सवाल इससे जुदा है। मूल प्रस्तावमें उनको भी शामिल किया गया था। लेकिन उसपर तीव्र मतभेद पैदा हो जानेसे, मैं इस बातका आग्रह न कर सका कि उन्हें बहिष्कारकी धारामें बना रहने दिया जाये। लेकिन कोई यह न समझे कि सिर्फ इसलिए ऐसी संस्थाओंमें जाना और उनपर अपना अधिकार जमाना कांग्रेसियोंका कर्त्तव्य हो जाता है, इसके विपरीत अगर इन संस्थाओंके कारण हमारे अच्छे-से-अच्छे कार्यकर्त्ताओंका ध्यान अधिक अच्छे कामोंकी ओर न लग पाता हो, या इन संस्थाओंमें जानेसे हमेशा मारपीट और गाली-गलौज और उससे भी बुरी कुछ बातें सामने आती रहती हों तो इन संस्थाओंसे हट जाना और इनसे दूर रहना ही हरएक कांग्रेसीका कर्त्तव्य हो जाता है। लेकिन अगर उन्हें यह पक्की प्रतीति हो कि इन संस्थाओंमें उनके जानेसे किसी उचित हितकी ही नहीं, किन्तु राष्ट्रहित

याने पूर्ण स्वराज्यकी भी साधना की जा सकती है, वह प्राप्त किया जा सकता है, तो जरूर वे इन संस्थाओंमें बने रहें या इनके लिए चुने जानेकी कोशिश करें।

सविनय अवज्ञा

लेकिन कांग्रेसके ध्येयको सफल करनेके लिए सबसे बड़ा और अमोघ साधन तो सविनय अवज्ञा और कर देनेसे इनकार करना है। वैसे तो इस शस्त्रका उपयोग करनेका समय और उसके तरीकेको निश्चित करनेका भार कार्यसमितिपर नाममात्रको छोड़ा गया है, और यही उचित भी है; तो भी मैं जानता हूँ कि आखिरकार इस कामकी सारी जिम्मेदारी खासकर मुझ पर ही पड़नेवाली है। मुझे कबूल कर लेना चाहिए कि इसके लिए आज मैं अनुकूल वातावरण नहीं पा रहा हूँ। चौरी-चौरा जैसा विघ्न आ पड़नेपर भी सविनय अवज्ञाकी लड़ाईको रोकना न पड़े, इस तरहके किसी उपायकी मैं खोजमें हूँ।[१] किसी न किसी दिन बगैर कहीं रुके, सिर देकर भी सौदा कर ही लेना पड़ेगा। लेकिन बहुतेरे कांग्रेसियोंकी मौजूदा तबीयतको देखते हुए, हमारे आपसी झगड़ोंका खयाल करते हुए, जातिगत द्वेषको देखते हुए, ऐसा कोई कारगर और निर्दोष उपाय ढूँढ निकालना आज मुश्किल हो रहा है। मौजूदा हालतको देखते हुए मुमकिन है कि कांग्रेसके नामसे सविनय अवज्ञा करना नामुमकिन हो जाये और शायद यह जरूरी हो जाये कि बगैर कांग्रेसकी मुहरके तथा कांग्रेससे अलग रहकर ही सविनय अवज्ञा करनी पड़े। लेकिन अभी तो फिलहाल मिट्टी चाकपर है। फिर भी मैं अधीर देशभक्तोंको यह विश्वास दिला देना चाहता हूँ कि किसी कामचलाऊ उपायकी खोजमें मैं अपनी सारी शक्ति लगा रहा हूँ। ये देशभक्त देशमें अहिंसक वातावरणको पैदा करनेमें मदद करके और रचनात्मक कार्यक्रमको आगे बढ़ाकर मुझे सहायता पहुँचा सकते हैं। मैं जानता हूँ कि बहुतेरे लोगोंकी रायमें रचनात्मक कार्यक्रम और सविनय अवज्ञाके बीच कोई सम्बन्ध नहीं है। लेकिन जिस आदमीका अहिंसामें विश्वास है, उसके लिए तो रचनात्मक कार्यक्रम और स्वराज्यके लिए की जानेवाली सविनय अवज्ञाके बीचके तात्त्विक सम्बन्धको खोज निकालना कठिन नहीं है। 'स्वराज्यके लिए' शब्दोंका उपयोग मैं जानबूझकर कर रहा हूँ और मैं चाहता हूँ कि पाठक भी मेरे आशयको ठीक-ठीक समझ लें। हो सकता है कि किसी खास स्थानीय सवालको हल करनेके लिए स्थानिक सविनय अवज्ञा करते समय, जैसा कि बारडोलीमें हुआ था, रचनात्मक कार्यक्रम अनिवार्य न हो। उसके लिए सिर्फ यही काफी हो सकता है कि एक खास जगहकी कुछ सामान्य शिकायतें हों और लोग उन्हें दूर कराना चाहते हों। लेकिन स्वराज्यके समान अमूर्त वस्तुके लिए देशव्यापी पैमानेपर आन्दोलन करते समय तो लोगोंको खास तौरसे प्रशिक्षित होनेकी जरूरत है। ऐसे काममें जनताको और उनके नेताओंको, जिनपर जनताका अखण्ड विश्वास हो एक दूसरेके निकट सम्पर्कमें आना ही होगा। रचनात्मक काममें बराबर इस तरह लगे रहनेसे उत्पन्न विश्वास ही नाजुक मौकेपर बेशकीमती पूँजीका

१. देखिए "भेंट: पत्र-प्रतिनिधियोंसे", १-१-१९३०।

काम देता है; इसलिए जैसे हिंसक लड़ाई लड़नेवाली सेनाके लिए कवायद वगैराकी तालीम जरूरी है, वैसे ही अहिंसक सेनाके लिए भी इस तरहके रचनात्मक कार्यकी आवश्यकता है। अगर वे लोग जो ठीकसे प्रशिक्षित नहीं हैं और वे नेता जिन्हें लोग जानते नहीं हैं और जिनपर लोग विश्वास नहीं करते, व्यक्तिगत सविनय अवज्ञा करेंगे, तो उसका कोई उपयोग नहीं होगा और सामूहिक सविनय अवज्ञा भी अशक्य हो जायेगी। इसलिए रचनात्मक कार्यक्रमकी जितनी प्रगति होगी, सविनय अवज्ञाकी भी उतनी ही अधिक सम्भावना रहेगी। अगर पूर्ण अहिंसामय वातावरण और पूर्ण तथा सफल रचनात्मक कार्यक्रम, ये दो बातें हों, तो कुछ ही महीनोंके भीतर सामूहिक सविनय अवज्ञाको सफल बनानेका विश्वास मैं दिला सकता हूँ।

'मौजूदा हालतें'

यों मुख्य प्रस्ताव देशके ध्येय और उसकी प्राप्तिके तरीकोंको साफ शब्दोंमें बयान करता है, तो भी उसमें गोलमेज परिषदमें जानेकी बातको हर हालतमें असम्भवनीय नहीं कहा गया है। प्रस्ताव तो सिर्फ यही कहता है कि मौजूदा हालतमें कांग्रेसके प्रतिनिधियोंके गोलमेज परिषदमें जानेसे हमें कुछ भी लाभ नहीं हो सकता। तो फिर वह कौन-सी हालतें हैं, जिनमें कांग्रेसके प्रतिनिधि ऐसी परिषदमें शामिल हो सकते हैं? ऐसा कमसे-कम एक अवसर तो मैं बता सकता हूँ। अगर ब्रिटिश सरकार कांग्रेसको परिषदमें शामिल होनेका न्योता दे, याने चाहे जिस योजनापर चर्चा करनेके लिए नहीं, बल्कि पूर्ण स्वराज्यकी एक योजनापर विचार करनेके लिए बुलाई गई परिषद्में सरकार भारतको निमन्त्रित करे, और उस परिषदके सम्बन्धमें दूसरी शर्तें भी मान ले तो मैं समझता हूँ कि कांग्रेसके नेता ऐसे निमन्त्रणको खुशीसे स्वीकार करेंगे। यह तो है नहीं कि परिषद कभी होगी ही नहीं। परिषदके दो मौके हो सकते हैं—या तो वह ब्रिटेनकी मेहरबानीसे या संसारके लोकमतके दबावमें आकर बुलाई जाये या फिर हमारे खुदके दबावमें आकर बुलाई जाये। ऐसा समय जल्दी ही आयेगा या देरसे आयेगा, इसका फ़ैसला तो इस बातपर निर्भर है कि हम इस अनमोल सालका सदुपयोग करते हैं या दुरुपयोग।

कर्ज का बोझ

मुख्य प्रस्तावके बाद महत्त्वकी दृष्टिसे दूसरे नम्बरका और प्रायः मुख्य प्रस्तावका ही अंगरूप एक प्रस्ताव हमारे ऋण-भारके सम्बन्धमें था।[1] हमारे देशकी आर्थिक स्थितिका जिसे ज्ञान है, वह जानता है कि यह सरकार कितना फिजूल खर्च करनेवाली है और जनता कर्जके कैसे भयंकर बोझके तले पिसी जा रही है। यह भी सभी जानते हैं कि देशके हितको एक ओर रखकर इस देशमें विदेशियोंको कैसी-कैसी [व्यापारिक] सुविधाएँ दी गई हैं। इस बातकी आशा नहीं की जा सकती कि आजाद भारत इन सुविधाओं या लाभोंको 'निहित अधिकारों'के नामसे मंजूर कर लेगा। यह सम्भव नहीं कि सभी 'निहित स्वार्थों' की रक्षा की जायेगी। जैसे जुआखोरी या

१. देखिए "भाषण: अ० भा० कां० कमेटीकी विषय समितिमें–२", १-१-१९३०।

व्यभिचारकी दुकान चलानेवालेको उसे चलाते रहनेका कोई निहित अधिकार नहीं है, वैसे ही देशकी दौलतका जुआ खेलकर देशको निःसत्व बनानेवाली सरकारको भी वैसा करनेका कोई 'निहित अधिकार' नहीं है। इसीलिए १९२२ में गया कांग्रेसने[1] कुछ कर्जोंको नामंजूर करनेवाला एक व्यापक प्रस्ताव पास किया था। इस सालके प्रस्तावसे गयाका प्रस्ताव फिरसे ताजा किया गया है, और यह तय किया गया है कि कोई भी निष्पक्ष और स्वतन्त्र न्यायाधिकरण जिन-जिन कर्जों और व्यापारिक लाभोंको अन्यायपूर्ण और अनुचित बतायेगा, आजाद भारतकी सरकार उन्हें कबूल नहीं करेगी। मेरी रायमें इस न्यायोचित प्रस्तावका कोई विरोध कर ही नहीं सकता। इस सवालको लेकर दलबन्दी करना आफत बुलाना है।

साम्प्रदायिक प्रश्न

साम्प्रदायिक प्रस्ताव[2] भी इतना ही महत्वका है। यद्यपि यह प्रस्ताव सिखोंके लिए किया गया था, फिर भी उसके मूलमें जो सिद्धान्त है उसका प्रतिपादन करना वैसे भी आवश्यक था। स्वतन्त्र भारतवर्षमें साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्वका तत्त्व रह ही नहीं सकता, तथापि अगर स्वतन्त्र भारत छोटी-छोटी कौमोंको दबाकर राज्य करना नापसन्द करता है, तो उसके लिए सब कौमोंको सन्तुष्ट करना जरूरी है। लेकिन कांग्रेसको तो अब एक राष्ट्रीयताकी भावना पैदा करनेकी जरूरत है। और साम्प्रदायिक सवालके समान महत्त्वपूर्ण मामलेमें तो कांग्रेसको सिर्फ आँखमें धूल डालनेकी गरजसे या क्षणिक लाभके खयालसे कुछ भी नहीं करना चाहिए। कांग्रेसमें रहकर हमें दूसरी जातियोंका निरादर करना भूलना होगा और हिन्दू, मुसलमान, सिख, पारसी, ईसाई या यहूदी न रहकर हिन्दुस्तानी बनना होगा। हम सब अपने-अपने धर्मपर दृढ़ रहते हुए भी कांग्रेसमें तो हरएक सवालका निबटारा हिन्दुस्तानी, केवल हिन्दुस्तानीके ही रूपमें करेंगे। एक अच्छे हिन्दू या अच्छे मुसलमानके देशभक्त बननेसे उसे और भी अच्छा हिन्दू या मुसलमान बन जाना चाहिए। देशके सच्चे हित और धर्मके हितके बीच कोई विरोध ही नहीं हो सकता है। जहाँ इनमें विरोध पाया जाता है, वहाँ समझना चाहिए कि उसके धर्ममें याने उसकी नीतिमें सम्भवतः कोई खामी है। सच्चा धर्म तो सद्विचार और सदाचारमें है। सच्ची देशभक्तिका अर्थ भी सद्विचार और सदाचार ही है। अतएव इस तरहकी दो समानार्थक चीजोंकी परस्पर तुलना करना गलत है। लेकिन अगर कभी कांग्रेसको कौमी खयालसे प्रतिनिधित्वके सवालको हल करना ही पड़े, तो लाहौरके प्रस्ताव द्वारा यह ठहराया गया है कि कोई ऐसा फैसला न किया जाये, जो सम्बद्ध दलोंको सन्तुष्ट न कर सके। जो भी हो कांग्रेसके सामने इस सवालको कौमी बुनियादपर हल करनेका मौका ही न आये, इसलिए मुसलमानों, सिखों और दूसरी कौमोंको चाहिए कि वे हिन्दुस्तानको अखण्ड राष्ट्र समझकर राष्ट्रीय कांग्रेसमें बड़ीसे-बड़ी तादादमें शामिल होने लगें। कांग्रेस किसी

१. सन् १९२२ में।
२. देखिए "भाषण : अ० भा० कां० कमेटीकी विषय समितिमें–३", १-१-१९३०।

जाति विशेषकी संस्था बन जाये, इसकी अपेक्षा तो मैं यह चाहूँगा कि वह मुसलमान, सिख, पारसी, ईसाई और यहूदियोंके हाथोंमें चली जाये। जिनमें सेवाभाव है, वे कांग्रेसपर अपना अधिकार जमा सकते हैं। कांग्रेसका मताधिकार नितान्त प्रजातान्त्रिक है। जो सेवा करना चाहते हैं, उनके लिए इसके दरवाजे हमेशा खुले हैं। अतएव मैं आशा करता हूँ कि उसमें सब शामिल होंगे और कांग्रेसको गरीबसे-गरीब, कमजोरसे-कमजोर तथा दलितसे-दलित-लोगोंके लिए पूर्ण स्वराज्य पानेका एक शक्तिशाली साधन बनायेंगे। इस महत्त्वपूर्ण कांग्रेसके दूसरे प्रस्तावों और अन्य बातोंपर विचार अगले या किसी दूसरे अंकके[1] लिए मुल्तवी कर देना होगा।

[अंग्रेजीसे]
यंग इंडिया, ९-१-१९३०

३६३. सदाबहार पेनिंगटन

कांग्रेसपर व्यक्त मेरा मन्तव्य इस पत्रका उचित उत्तर है।[2] हमें क्या चाहिए इसका निर्णय खुद हमें करना है न कि अंग्रेजोंको; फिर चाहे उनकी भावनाएँ कितनी ही अच्छी क्यों न हों।[3]

[अंग्रेजीसे]
यंग इंडिया, ९-१-१९३०

३६४. जवाहरलाल नेहरू

जवाहरलाल नेहरू हिन्दका जवाहर सिद्ध हुआ है। उनके व्याख्यानमें उच्चतम विचार मधुर और नम्र भाषामें प्रकट हुए हैं। अनेक विषयोंका प्रतिपादन होनेपर भी व्याख्यान छोटा है। आत्माका तेज प्रत्येक वाक्यसे झलकता है। कई लोगोंके दिलमें जो भय था, भाषणके बाद वह सब मिट गया। जैसा उनका व्याख्यान था वैसा ही उनका आचरण भी। अधिवेशनके दिनोंमें उन्होंने अपना सारा काम स्वतन्त्रता और सम्पूर्ण न्यायबुद्धिसे किया। और अपना काम सतत उद्यमसे करते रहनेके कारण सब कुछ ठीक समयपर निर्विघ्न पूर्ण हुआ।

ऐसे वीर और पुण्यात्मा नवयुवकके सभापतित्वमें यदि हम कुछ न कर पायेंगे तो मुझे बड़ा आश्चर्य होगा। परन्तु यदि सेना ही नालायक हो तो वीर नायक भी क्या

१. देखिए "आगामी कांग्रेस", १६-१-१९३०।

२. देखिए पिछला शीर्षक।

३. गांधीजीके लेख "शुद्ध-मतभेद" २१-११-१९२९ का हवाला देते हुए श्री पेनिंगटनने लिखा था कि इसमें अंग्रेजोंके राज्यकी बुराईयोंको बढ़ा-चढ़ाकर दिखाया गया है और भारतके लिए तत्काल स्वतन्त्रता [मिलना] असम्भव है।

कर सकता है? इसलिए हमें आत्मनिरीक्षण करना चाहिए। क्या हम जवाहरलालके नेतृत्वके लायक हैं? यदि हैं, तो परिणाम शुभ ही होगा। स्वतन्त्रताकी घोषणा करने मात्रसे स्वतन्त्रता नहीं मिल सकती। हममें स्वतन्त्रताका वायुमण्डल पैदा होना चाहिए। स्वतन्त्रता एक चीज है, स्वच्छन्दता दूसरी। कई बार हम स्वच्छन्दताको ही स्वतन्त्रता मान बैठते हैं और स्वतन्त्रता गँवा देते हैं। स्वच्छन्दताकी पराकाष्ठा स्वार्थ है; स्वतन्त्रताकी परमार्थ। स्वच्छन्दता समाजका नाश करती है, स्वतन्त्रता समाजको जीवन देती है। स्वच्छन्दतामें मर्यादाका त्याग किया जाता है; स्वतन्त्रतामें मर्यादाका पूर्ण पालन किया जाता है। पराधीनतामें हम बहुत-सी बातें डरके मारे करते हैं; स्वाधीनतामें वे ही बातें हम इच्छापूर्वक करते हैं।

पराधीन मनुष्य डरके वश होकर चोरी नहीं करेगा, किसीके साथ फसाद नहीं करेगा, झूठ नहीं बोलेगा, बाह्याचारमें शुद्ध-सा प्रतीत होगा, डाकू आदिसे स्वामीके बलसे बचेगा। पराधीन मनुष्य जो-कुछ करता है, उसमें वह अपने मनका साथ नहीं देता। स्वाधीन मनुष्यके जैसे आचार होते हैं; वैसे ही विचार भी। वह जो-कुछ अच्छा बुरा करता है, स्वेच्छासे करता है। इसलिए स्वाधीन मनुष्य अपने सत्कार्यका पूरा फल पाता है, और ऐसा होनेसे समाजकी दिनोंदिन प्रगति होती है। स्वाधीन मनुष्य दूसरोंकी रक्षाके कर्त्तव्यकी उपेक्षा नहीं करेगा।

इसलिए यदि हममें सच्ची स्वतन्त्रता आई है तो हम कौमी डरको छोड़ देंगे। हिन्दू-मुसलमान एक दूसरेसे डरना भूल जायेंगे। दोनों साथ-साथ भूलें तो बहुत ही अच्छा है, परन्तु स्वतन्त्र मनुष्य डर छोड़नेके लिए साथियोंके सहयोगकी अपेक्षा न करे। यदि एक पक्ष न्यायकी मर्यादाको छोड़ दे तो भी वह तीसरी ताकतका सहारा नहीं माँगेगा। वह अपनी ताकतपर ही निर्भर रहेगा, और हार गया तो अपनी ताकत बढ़ानेकी कोशिश करेगा। लड़ते हुए मर जाना जीत है, धर्म है। लड़नेसे भागना पराधीनता है, दीनता है। शुद्ध क्षत्रियत्वके बिना शुद्ध स्वाधीनता असम्भव है। इसीलिए क्षत्रियके लक्षणमें 'अपलायनम्' को ही अद्वितीय स्थान है। इस कारण हमें अपनी हरएक बातमें 'अपलायनम्' का सेवन करना आवश्यक है।

हिन्दी नवजीवन, ९-१-१९३०

३६५. पत्र : बहरामजी खम्भाताको

आश्रम
साबरमती
९ जनवरी, १९३०

भाईश्री खम्भाता,

तुम्हारा ३४५ रुपयेका चेक मिला। तुम्हारे लिखे अनुसार रकमका उपयोग किया जायेगा। आशा है, तुम दोनोंका स्वास्थ्य अच्छा होगा।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (जी० एन० ७५४३) की फोटो-नकलसे।

३६६. पत्र : घनश्यामदास बिड़लाको

आश्रम
साबरमती
९ जनवरी, १९३०

भाईश्री घनश्यामदासजी,

आपका पत्र मिला है। केशुके लिए आप सबकी तरफसे प्रेमधारा वह रही है ऐसा देवदास लिखता है और राधाबहिन भी लिख रही है। इस बारेमें तो क्या कहूँ? उपचार भी करीब करीब मैं चाहता था वैसे ही हो रहे हैं। बस इस बारेमें और कुछ लिखना अविनय समझता हूँ। मैं निश्चिन्त हूँ।

लाहौरके बारेमें जो कुछ प्रस्ताव हुए हैं वह मुझको बहुत प्रिय लगते हैं। और अब जो हो रहा है उससे मेरा अभिप्राय दृढ़तर होता जा रहा है। 'यं० इं०' में मैंने लिखा[1] है उसे पढ़े और कुछ लिखनेका उचित समझें तो लिखें। आपको अभिप्राय और सलाह देनेका सम्पूर्ण अधिकार हैं।

आपका,
मोहनदास

सी० डब्ल्यू० ६१८० से।
सौजन्य : घनश्यामदास बिड़ला

१. देखिए "कांग्रेस", ९-१-१९३०।

३६७. पत्र : जवाहरलाल नेहरूको

१० जनवरी, १९३०

प्रिय जवाहरलाल,

२६ तारीखके अपने प्रस्ताव या अपनी घोषणाका मसविदा[1] इस पत्रके साथ भेज रहा हूँ। मुझे अभीतक किसीसे कोई सुझाव नहीं मिला है। लेकिन मैंने सोचा कि अब मैं अन्ततक इन्तजार नहीं करूँ। अब तुम इसे काट-छाँट लो या तुम्हें जैसा ठीक लगे वैसा परिवर्द्धन-संशोधन कर लो। जितना ज्यादा छोटा होगा उतना ही ज्यादा अच्छा रहेगा।

लाहौरमें जबसे हम लोग एक दूसरेसे अलग हुए हैं तभीसे मैं सविनय अवज्ञाकी योजनाएँ बनाता रहा हूँ। अभीतक तो मुझे अपना रास्ता साफ नहीं दिखाई दिया है। लेकिन मैं इस निर्णय तक तो पहुँच गया हूँ कि कांग्रेसकी वर्तमान स्थितिमें उसके नामसे किसी भी प्रकारकी सविनय अवज्ञा अभी नहीं की जा सकती है और न ही की जानी चाहिए। वह अकेले या कुछ साथियोंके साथ मेरे द्वारा ही की जा सकती है — जैसी कि मैंने दक्षिण आफ्रिकामें की थी। उसके बारेमें यदि तुमने सत्याग्रहका इतिहास[2] पढ़ा है तो तुम जानते होओगे। यदि तुमने उसे न पढ़ा हो तो वह पढ़ लेना। यदि मुझे अन्ततोगत्वा अपना रास्ता साफ दिखाई दिया तो मैं सोचूँगा कि उसमें कांग्रेस कितना हाथ बटा सकती है। कुछ भी हो, इस सबपर मुझे पत्र-व्यवहार द्वारा बातचीत करने योग्य समय नहीं है। यदि मैं कुछ और सोच सका तो तुम्हें सूचित करूँगा। यदि तुम्हें इसपर कुछ कहना हो तो मुझे सूचित करना। हर हालतमें तुम कार्य समितिकी बैठकवाले दिनसे एक या दो दिन पहले आनेको तैयार रहना। यों तो तुम और भी जल्दी आ सकते हो . . .[3] यदि आवश्यक हो तो २६ से भी पहले।

आशा है कि निश्चित तिथिपर पिताजी बंगाल जा रहे होंगे।

मैं तुम्हारे कार्यकालके वर्षमें अपनी स्थिति मजबूत करनेको बहुत उत्सुक हूँ लेकिन सर्वथा अपनी दृष्टिके अनुसार। इसलिए मैं जो-कुछ कहूँ या सुझाव दूँ उसकी आलोचना करनेमें अपने आपको स्वतन्त्र समझो। मैं ऐसा कुछ भी नहीं करना चाहता जो तुम्हारे उद्दिष्ट कार्यके विपरीत पड़े या तुम्हारी योजनाओंको, यदि तुमने उन्हें स्वतन्त्ररूपसे बनाया हो, चोट पहुँचाये। मैं जितना ही ज्यादा सोचता हूँ उतना ही मुझे और विश्वास होता जाता है कि देशके लिए यह अच्छी ही बात हुई कि मैं अध्यक्ष नहीं बना। तब सर्वथा तटस्थ रहकर योजनाओंको पक्की बनानेमें मुझे अड़चन

१. देखिए अगला शीर्षक।

२. देखिए दक्षिण आफ्रिकाके सत्याग्रहका इतिहास; खण्ड २९।

३. मूलमें यहाँ कुछ अस्पष्ट है।

महसूस होती। जैसा कि अभी है, जबतक तुम कांग्रेसके मुखिया हो मैं अपना परीक्षण करनेका इससे और बेहतर मौका नहीं सोच सकता।

तुम्हारा,
बापू

[पुनश्चः]

यह लिखनेके बाद तुम्हारा पत्र मिला।[1] मैंने ऊपर जो कुछ कहा है उसे देखते हुए मुझे बाहर कतई नहीं जाना चाहिए। तुम्हारे पिता ही एकमात्र ऐसे व्यक्ति हैं जो कुछ जगहोंकी यात्रा कर सकते हैं और जिनका प्रभाव पड़ेगा। कौंसिल-बहिष्कारके मामलेमें उनकी बातका जितना वजन हो सकता है उतना किसीका नहीं हो सकता। क्या वे जा सकते हैं?

तुम्हारी टिप्पणियोंको[2] पढ़नेके बाद मैं अपना मसविदा बदलना जरूरी ही समझता हूँ।

बापू

[अंग्रेजीसे]

अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी १६-९-१९३०
सौजन्य: नेहरू स्मारक संग्रहालय और पुस्तकालय

३६८. २६ जनवरीकी घोषणाका मसविदा[3]

[१० जनवरी, १९३०][4]

हमारा विश्वास है कि अपनी प्रगतिके लिए पूरा-पूरा अवसर पानेकी दृष्टिसे दूसरे देशवासियोंकी तरह हिन्दुस्तानके लोगोंका स्वाधीनता पाने, अपनी मेहनतका सुख

१. पत्रमें यह कहा गया था कि मैं कुछ दिनोंमें २६ के लिए आपके वक्तव्य और प्रस्तावको पानेकी आशा कर रहा हूँ। क्या आप वह दिन कैसे मनाया जाये इसके सम्बन्धमें कुछ निर्देश भी दे सकते हैं? —राजगोपालाचारीका पत्र साथमें भेज रहा हूँ। मैं समझता हूँ कि वे जो कहते हैं उसमें कुछ सार तो है। समाचारपत्रोंमें कितने ही वक्तव्य और उनके जवाबमें वक्तव्य आते रहते हैं। इनसे मामलोंके उलझ जानेकी सम्भावना है। निजी तौरपर मैं बहुत ज्यादा दौरे करना नापसन्द करता हूँ लेकिन यदि आप समझते हैं कि मुझे इधर-उधर भाग-दौड़ करनी चाहिए तो मैं वैसा करूँगा। राजगोपालाचारीका यह सोचना कि कुछ गैर कांग्रेसी सदस्योंको भी शायद विधानसभाओंसे बाहर ला सकें, मुझे बेहद आशावादी लगता है. . . लेकिन कौंसिल बहिष्कारके अलावा भी देशको यह महसूस कराना वांछनीय है कि हमारा इरादा सच्चा है। यदि हम कुछ हफ्ते चुप रहे तो शायद इसका असर बुरा पड़े . . .। (एस० एन० १६३३५)।

२. इंग्लैंड द्वारा किये गये भारतके शोषणके सम्बन्धमें। (एस० एन० १६३३५)।

३. अन्तिम घोषणाके लिए देखिए "२६ को यह याद रखिए", २३-१-१९३०।

४. देखिए पिछला शीर्षक।

भोगने तथा जीवनके लिए आवश्यक वस्तुओंको प्राप्त करनेका पूर्ण अधिकार है। हमारा यह भी विश्वास है कि अगर कोई सरकार लोगोंको उनके अधिकारसे वंचित करती है और उनपर जुल्म करती है तो लोगोंको यह भी अधिकार है कि वे उसे बदल दें या उसे समाप्त कर दें। भारतकी अंग्रेज सरकारने हिन्दुस्तानियोंको न केवल उनकी स्वाधीनतासे वंचित कर दिया है, बल्कि उसने जनताके शोषणको ही अपना आधार बनाया है और हिन्दुस्तानको आर्थिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक तथा आध्यात्मिक दृष्टिसे तबाह कर दिया है। इसलिए हम मानते हैं कि हिन्दुस्तानको अवश्य ही ब्रिटेनसे सम्बन्ध तोड़ देना चाहिए और 'पूर्ण-स्वराज्य' या पूर्ण-स्वाधीनता हासिल करनी चाहिए।

आर्थिक दृष्टिसे भारत बरबाद कर दिया गया है। लोगोंसे जो कर वसूल किया जाता है, अनुपातमें उसका हमारी आमदनीसे कोई मेल ही नहीं बैठता। हमारी औसत आमदनी प्रतिदिन सात पैसा (दो पैंससे भी कम) है, और जो कर हम देते हैं वह २.५ पाई प्रतिदिन है। २० फीसदी किसानोंसे लगानके रूपमें वसूल किया जाता है, और उसका ३ फीसदी नमक-करसे वसूल किया जाता है। नमक-करका भार गरीबों पर ही सबसे ज्यादा पड़ता है।

गाँवके उद्योग-धन्धे, जैसे कि हाथ-कताई, नष्ट कर दिये गये हैं और इस कारण किसानोंको सालमें कमसे-कम चार महीने बेकार रहना पड़ता है। हस्त-कला-कौशलके अभावमें उनकी बुद्धि मन्द होती जा रही है। जो हुनर इस तरह नष्ट हो गये हैं, उनके बदलेमें और देशोंकी भाँति, कोई नया धन्धा भी नहीं मिल सका है।

आयात-निर्यात-कर और मुद्राकी कुछ ऐसी व्यवस्था की गई है कि उनसे किसानोंका बोझ और भी ज्यादा बढ़ जाता है। इस देशमें ब्रिटेनका तैयार किया गया माल ही ज्यादा तादादमें आता है और इनपर लगनेवाली चुंगी, जिसे जनतापर करोंका बोझ कम करनेके लिए प्रयुक्त किया जाना चाहिए था, भारतमें रूसकी बनिस्बत ४४ दर्जे और अमेरिका और जर्मनीकी बनिस्बत क्रमशः ४४[१] और २४[२] दर्जे कम है। विनिमय दरके मनमाने निर्धारणसे देशका करोड़ों रुपया बाहर भेजा जा रहा है।

राजनैतिक दृष्टिसे हिन्दुस्तानकी प्रतिष्ठा पहले कभी इतनी नहीं घटी थी, जितनी कि अंग्रेजी राज्यमें घटी है। हमारी सारी शासन-क्षमता समाप्त कर दी गई है और जनताको पटेल-पटवारी या मुहर्रिरीके छोटे-मोटे पदोंसे ही सन्तोष कर लेना पड़ता है। हममें से बड़ेसे-बड़े व्यक्तिको भी विदेशी सत्ताके सामने झुकना पड़ता है। जो सुधार किये भी गये हैं उनमें से किसी एकसे भी जनताके हाथमें सच्ची राजनैतिक शक्ति नहीं आई है।

सांस्कृतिक दृष्टिसे देखें तो इस शिक्षा-प्रणालीके कारण हम अपनी संस्कृतिसे कट कर दूर जा पड़े हैं और हमें जो प्रशिक्षण मिला है उसने हमें उन्हीं जंजीरोंसे और जोरसे लिपटे रहना सिखाया है जो हमें [दासतामें] बाँधे हैं।

१ और २. संख्याओंमें हुए अन्तिम सुधारके लिए देखिए "तार: जवाहरलाल नेहरूको", १६-१-१९३०।

आध्यात्मिक दृष्टिसे देखें तो हथियार न रखने देनेकी नीतिने हमें नामर्द बना दिया है। हमारे प्रतिरोधकी भावनाको कुचल डालनेके घातक इरादेसे जो विदेशी सेना रखी गई है, उसके कारण हम ऐसा कुछ सोचने लगे हैं कि न तो हम अपनी रक्षा कर सकते हैं न विदेशियोंके आक्रमणका सामना कर सकते हैं और न ही अपने घरों तथा कुटुम्बियोंको चोर, डाकू या गुण्डोंके हमलोंसे बचा सकते हैं।

इसलिए जिस शासनने हमारे देशपर इन चार प्रकारकी विपत्तियोंका बोझ लाद दिया है, उस राज्यके अधीन रहना हम अब ईश्वर और मानव जातिके प्रति अपराध करना समझते हैं। हम मानते हैं कि स्वाधीनता प्राप्त करनेके तरीकोंमें हिंसाका तरीका सर्वाधिक कारगर तरीका नहीं है। अतः हम ब्रिटिश सरकारसे जहाँतक हमसे हो सकता है स्वेच्छापूर्वक सहयोग करना छोड़कर सविनय अवज्ञा करनेकी, जिसमें कर न देना भी शामिल है, तैयारी करेंगे। हमारा विश्वास है कि यदि हम ब्रिटिश सरकारसे सहयोग करना-भर छोड़ दें और उत्तेजनाका कारण उपस्थित होने पर भी उपद्रव न करते हुए, कर देनेसे इनकार कर दें तो इस अमानुषिक शासनका अन्त निश्चित है। अतएव हम पवित्र प्रतिज्ञा करते हैं कि पूर्ण-स्वराज्यकी स्थापनाके लिए कांग्रेस समय-समयपर जो हिदायतें देगी उनका पालन करेंगें।

बापू

[अंग्रेजीसे]

अ० भा० कां० क० फाईल संख्या, १६-ए, १९३०
सौजन्य : नेहरू स्मारक संग्रहालय और पुस्तकालय

३६९. पत्र : डॉ० सैयद महमूदको

साबरमती
१० जनवरी, १९३०

प्रिय डा० महमूद,

आपका मर्मस्पर्शी पत्र मिला। निस्सन्देह इस समय यह मृत्यु[1] हमारे इतिहासपर एक बहुत बड़ा धक्का है। आशा है कि बेगम साहिबाको मेरा तार मिल गया होगा। उनसे कहें कि वे दुःखी न हों। हम सबको ही उस घटनाका, जो सभी प्राणियोंके लिए अनिवार्य है, साहसपूर्वक सामना करना चाहिए।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

अंग्रेजी (जी० एन० ५०७४) की फोटो-नकलसे।

१. मजहर-उल-हककी मृत्यु, देखिए "टिप्पणियाँ", ९-१-१९३० का उपशीर्षक 'स्वर्गीय मजहर-उल-हक'।

३७०. एक पत्र

साबरमती
१० जनवरी, १९३०

प्रिय मित्र,

अब्बास साहबका एक पत्र मुझे मिला। मुझे ऐसा जरूर लगता है कि यदि आप गवर्नरके समारोहमें जाना टाल सकते हों तो आपको यही करना चाहिए।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

अंग्रेजी (एम० एम० यू० २२/६६)की माइक्रोफिल्मसे।

३७१. पत्र : दुनीचन्दको

११ जनवरी, १९३०

प्रिय लाला दुनीचन्द,[१]

आपके पत्रके लिए धन्यवाद। आप जो-कुछ कहते हैं उसे मैं निश्चय ही ध्यानमें रखूँगा।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

अंग्रेजी (जी० एन० ५५८०) की फोटो-नकलसे।

१. लाहौर उच्च न्यायालयके एक वकील।

३७२. भाषण : गुजरात विद्यापीठके दीक्षान्त समारोहमें

११ जनवरी, १९३०[1]

नरेन्द्रदेवजीने आपसे कहा कि "आप राष्ट्रकी सेवा करनेको उत्सुक हैं। आपका हृदय शुद्ध है, आप वीर हैं, त्यागी हैं और राष्ट्रकी सेवा करनेके इच्छुक हैं तथा जब आप इस संसारमें प्रवेश करेंगे तो कुछ-न-कुछ करके दिखायेंगे।" मैं कामना करता हूँ कि ये सभी विशेषण सही सिद्ध हों। किन्तु आजतकके अनुभवके आधारपर मैं तो आपसे यह कहना चाहता हूँ कि आप शुद्ध बनें और शुद्ध रहें। आपने अभी जो प्रतिज्ञा ली है उसे कागजपर ही न रहने दें बल्कि उसे अपने हृदयपर अंकित कर लें तथा आपपर जो धन और अध्यापकोंकी शक्ति खर्च हुई है उसे सफल बनायें।

श्री वल्लभभाई और काकाने भिक्षाकी झोली फैलाई है। इस भिक्षाके लिए किसी अंग्रेजी अखबारमें अपील देखनेमें नहीं आई; क्योंकि उसका उद्देश्य यह देखना है कि विद्यापीठके प्रति गुजरातका मुख्य कर्त्तव्य क्या है। मुझे आशा थी कि इस बीच हमारी माँगके अनुसार साठ हजार मिल जायेंगे। यदि इस राष्ट्रीय कार्यको तेजीसे प्रगतिकी ओर ले जाना हो तो जनताको चाहिए कि वह राष्ट्रीय कार्यकर्त्ताओंको आर्थिक चिन्तासे मुक्त कर दे। यदि अहमदाबादके नागरिक ही चाहें तो इस माँगको पूरा कर सकते हैं। यदि ऐसा हो सका तो अध्यापकगण अपने कामपर पूरी तरह ध्यान दे सकेंगे। विद्यापीठमें हमें संख्याकी अपेक्षा शक्तिकी अधिक आवश्यकता है। सविनय अवज्ञाका प्रस्ताव लागू करने तथा उस पूरे प्रस्तावके पीछे हमारे मनमें यह भावना काम कर रही थी कि कुछ थोड़े-से विद्यार्थी तो अपने कर्त्तव्यका पालन अवश्य करेंगे।

कलकत्तेमें अ० भा० कांग्रेस कमेटीने निर्णय किया था कि पण्डित नेहरूकी योजनानुसार औपनिवेशिक स्वराज्य यदि न मिला तो पूर्ण स्वराज्यका प्रस्ताव पास कर दिया जायेगा फिर भले ही संसार उसकी निन्दा करे। यदि स्वतन्त्रता और औपनिवेशिक स्वराज्यमें चुनाव करना हो तो मेरे जैसा व्यक्ति स्वतन्त्रताकी ही हिमायत करेगा।[2]

यह स्वाभाविक है कि आप मुझसे यह आशा रखें कि मैं लाहौर कांग्रेसमें पारित स्वतन्त्रता प्रस्तावपर[3], विशेषकर इसके सविनय अवज्ञावाले भाग पर कुछ कहूँ और संघर्षमें आपका क्या भाग होगा यह भी आप जानना चाहेंगे। जैसा कि मैंने यहाँ अक्सर कहा है, यह ठीक है कि हम संख्याके बलपर नहीं परन्तु चरित्र

१. बॉम्बे सीक्रेट एब्सट्रैक्टसे।

२. यह और इससे पहलेके दो अनुच्छेद गुजराती **प्रजाबन्धु** १२-१-१९३० से लिये गए हैं। अगले अनुच्छेद **यंग इंडिया**से लिये गए हैं।

३. देखिए "भाषण: कांग्रेस अधिवेशन लाहौरमें–२", ३१-१२-१९२९।

के बलपर विश्वास करते हैं। सविनय अवज्ञा प्रस्ताव ज्यादातर तो इसलिए सामने रखा गया था कि मुझे आह्वानके प्रत्युत्तरमें आगे आनेवाले लोगोंकी संख्याकी अपेक्षा उद्देश्यके लिए आत्मत्याग करनेवाले कुछ-एक लोगोंपर विश्वास था। आपको मालूम है कि कलकत्ता प्रस्तावने[1] हमें कांग्रेस संविधानके प्रथम अनुच्छेदको बदल देने और यदि औपनिवेशिक स्वराज्य १९२९ तक न मिले तो सविनय अवज्ञाके कार्यक्रमके लिए तैयार होनेको वचनबद्ध किया था। इसमें यह कहा गया था कि यदि यह काम पूरा नहीं हुआ तो हमारे पास प्रतिकूल आलोचना और गलत अर्थ निकाले जानेके खतरेके बावजूद प्रतिज्ञा निभानेके सिवाय और कोई चारा नहीं बचेगा। प्रस्तावके उपरान्त जो घटनाएँ घटी हैं, उन्होंने प्रस्तावको और भी बल पहुँचाया है। अर्ल रसलने हमें साफ तौरपर बतला दिया है कि भारतका औपनिवेशिक स्वराज्य हमारे विश्वासके विपरीत है; अर्थात् कनाडा, न्यूजीलैण्ड और आस्ट्रेलियाके जैसे औपनिवेशिक स्वराज्यसे कुछ भिन्न है। अर्ल स्वीकार करते हैं कि ये देश वास्तवमें स्वतन्त्र हैं। जब मैंने भारतके लिए औपनिवेशिक स्वराज्यकी बात की थी, उस समय मेरे मनमें कोई और बात कभी नहीं थी। जो अर्ल रसल कहते हैं उसका तो यही अभिप्राय है कि भारत बरसोंसे जिन लोहेकी जंजीरोंमें जकड़ा रहा है, वह अब उन्हें चाहे तो सोनेकी जंजीरोंमें बदल सकता है। ऐसा लगता है कि हममें से कुछ लोगोंको यह प्रस्ताव प्रिय लगता है। हम लोग इस भयसे आक्रान्त हैं कि हमारे लिये अंग्रेजोंसे सम्बन्ध तोड़ देनेका मतलब होगा — हिंसा और विप्लव। मैं एक बार फिर अपना अभिप्राय स्पष्ट कर देना चाहता हूँ। वैसे तो मैं अहिंसाके सिद्धान्तका हामी हूँ परन्तु यदि मुझे विवश होकर विप्लव और शाश्वत दासतामें से एकको चुननेका विकल्प दे दिया जाये तो मैं निःसंकोच कहूँगा कि मैं भारतमें विप्लव देखना कहीं ज्यादा पसन्द करूँगा, मैं हिन्दुओं और मुसलमानोंको एक-दूसरेको मौतके घाट उतारते देखना ज्यादा पसन्द करूँगा बनिस्बत इसके कि देश नित्य दासताकी स्वर्ण श्रृंखलामें जकड़ा रहे। मेरे खयालसे सोनेकी जंजीरें लोहेकी जंजीरोंसे कहीं ज्यादा बुरी हैं, क्योंकि आदमी लोहेकी जंजीरोंका भारीपन और उनसे होनेवाली पीड़ाको आसानीसे अनुभव करता है और सम्भव है कि सोनेकी जंजीरोंकी पीड़ाको भूल जाये। इसलिए यदि भारतको जंजीरोंमें ही बँधा रहना है तो मैं चाहूँगा कि वे सोने या और किसी कीमती धातुकी बनी होनेके बजाय लोहेकी ही बनी हों।

जिस क्षण हम स्वतन्त्रताकी बात करते हैं — कुछ लोग अफगान — आक्रमणका भूत खड़ा कर देते हैं। ब्रिटेनसे दासताका सम्बन्ध तोड़ चुकनेपर यदि हमपर आक्रमण भी हो जाये तो उसकी मुझे कोई परवाह नहीं है। परन्तु मैं पक्का आशावादी हूँ; मेरा यह अडिग विश्वास है कि भारतको रक्तपात रहित क्रान्ति द्वारा स्वतन्त्रता प्राप्त होगी। पण्डित जवाहरलाल नेहरू जैसा व्यक्ति हमारा कर्णधार है। मैं समझता हूँ कि हमें अपने अध्यक्षके रूपमें इससे ज्यादा अच्छा कोई नौजवान कभी नहीं मिलेगा। कितना अच्छा हो कि हम अपने मामलोंकी बागडोर उसके हाथमें रहते हुए अपना उद्देश्य प्राप्त कर लें। मैं समझता हूँ कि यदि आप अपनी प्रतिज्ञापर दृढ़ रहें तो

यह बिलकुल सम्भव है। मैं इस विद्यापीठके स्नातकोंको स्वराज्यके लिए किये गये किसी भी आन्दोलनमें सबके आगे देखना चाहूँगा। मैं चाहता हूँ कि आप यह समझ लें कि क्या होनेवाला है। आपकी परीक्षा जेल जानेसे ज्यादा कठिन है। चोर, डाकू और हत्यारे भी जेल जा सकते हैं और वे वहाँ पूरी तरह आरामका अनुभव करते हैं। परन्तु वे जेल जाकर देशकी सेवा नहीं करते। केवल जेल जानेवाला आदमी देशकी सेवा नहीं करता। मैं आपसे यह चाहता हूँ कि आप संघर्षमें स्वेच्छासे शुद्ध त्याग करनेके लिए तैयार रहें। वातावरणमें जबर्दस्त हिंसा भरी हुई है। यदि मुझे जेलमें डाल दिया जाये और हिंसा फूट पड़े तो आपको अपने-आपको हिंसाकी ज्वालामें होम कर देना होगा। यदि आप अपनी सत्य और अहिंसाकी प्रतिज्ञाके प्रति सच्चे हैं तो जब हिंसा या आगजनी हो रही हो तब आप अपने घरोंमें नहीं छिपे रहेंगे और न उसमें सक्रिय भाग ही लेंगे। परन्तु आप शान्त करनेके विचारसे प्रचण्ड अग्निमें घुस जायेंगे; आपसे निस्सन्देह यही अपेक्षित होगा। हिंसाके समर्थक भी आपसे यही आशा रखेंगे और कुछ नहीं। पाप, पुण्यका मान करता है; और कभी वह पुण्यका मान करनेके लिए जो मार्ग चुनता है, वह यह है कि पुण्यसे यह आशा रखे कि जब चारों ओर पाप व्याप्त हो तो भी वह अपनी जगहसे न हिले।

आप निस्सन्देह जेल जानेके लिए तैयार होंगे; परन्तु मैं नहीं समझता कि जेल जानेके लिए आपका आह्वान किया जायेगा। अभी जिस बड़ी और कठिन परीक्षाकी तसवीर मैंने आपके सामने खींची है, वह आपकी प्रतीक्षा कर रही है। मुझे नहीं मालूम कि सविनय अवज्ञा कैसा रूप धारण करेगी परन्तु मैं किसी प्रभावपूर्ण सूत्रकी खोजमें हूँ।[१]

यदि रचनात्मक कार्यमें ढिलाई आ गई हो, तो उसे दूर करें। यदि उसमें हिंसा और असत्य हो तो उन्हें निकाल फेंकें। इस वर्ष हमें कुछ न कुछ कर ही डालना चाहिए; और हिन्दमें इसका उत्तरदायित्व मुझपर है। सबको यह आशा है कि मैं इस समस्याको हल कर सकता हूँ। मुझे भी यह विश्वास है कि मैं इसे हल कर सकता हूँ। मैं यह सब आपको उत्साहित करनेके लिए नहीं बल्कि सचेत करनेके लिए कह रहा हूँ। आप इसपर विश्वास करें कि कल कुछ न कुछ होकर रहेगा।

यदि हम अहिंसा और सत्य द्वारा ध्येयकी प्राप्ति कर सकें तो मैं इसके लिए आतुर हूँ। यदि हम अहिंसा और सत्यका त्याग किये बिना ध्येयतक न पहुँच सकें तो मुझमें प्रतीक्षा करनेका असीम धैर्य है। इन दोनों भावोंका जन्म अहिंसा और सत्यकी श्रेष्ठतापर मेरे अटल विश्वाससे हुआ है। मुझे मालूम है कि यह रास्ता चाहे कितना भी लम्बा क्यों न लगे, मेरी रायमें यही सबसे छोटा रास्ता है।

[अंग्रेजीसे]
यंग इंडिया, १६-१-१९३०
प्रजाबन्धु, १२-१-१९३०

१. इससे अगला अनुच्छेद गुजराती **प्रजाबन्धु**, १२-१-१९३० से लिया गया है।

३७३. कुएँ और तालाब[1]

पहलेकी भाँति आज भी नया गाँव बसानेवाला पहली बात पानीकी सोचेगा; और अगर पानीकी ठीक व्यवस्था न हो या न हो सके तो वहाँ गाँव बसानेका विचारतक नहीं करेगा। दक्षिणमें ऐसे प्रदेश पाये जाते हैं जहाँ और सब तरहकी सहूलियत और सुन्दरता रहते हुए भी पानीकी दिक्कत है; और इसी कारण वहाँ गाँव नहीं बसाये जा सकते। हवा मनुष्यकी पहली आवश्यकता है, किन्तु उसे कहीं खोजने नहीं जाना पड़ता। पानी उसकी दूसरी आवश्यकता है। और यद्यपि पानी हवाके समान आसानीसे नहीं मिल सकता तो भी इसे प्राप्त करनेमें अन्न उत्पन्न करने जितना कष्ट नहीं उठाना पड़ता। लेकिन जिस तरह हवा और अनाजका अच्छा होना जरूरी है उसी तरह पानी भी अच्छा होना चाहिए।

हममें से सभी यह जानते हैं कि या तो गाँववाले इन बातोंसे अनजान हैं या जानते हुए भी वे इस तरफसे लापरवाह रहते हैं। इसलिए ग्रामसेवकके लिए गाँववालोंको सिखानेके कार्यक्रममें पानीके बारेमें जरूरी बातें बताना बहुत महत्त्व रखता है, और इस काममें सेवकके धैर्यकी पूरी-पूरी परीक्षा हो जाती है। हम इस बातकी तो आशा भी नहीं कर सकते कि गाँववाले खुद मेहनत करके पानी साफ रखनेके उपाय ढूँढ़ निकालेंगे या उसका प्रबन्ध कर लेंगे। धीरे-धीरे गाँववालोंको पानी साफ रखनेके फायदे और नियम बताने होंगे और इस तरह अपने काममें उनकी मदद लेनी होगी। कई जगह ऐसा भी देखनेमें आया है कि अपने फायदेकी बातमें भी गाँववाले मदद करनेको तैयार नहीं ही होते। ऐसे मौकेपर सेवकको अकेले ही मजदूरी करके और भरसक अकेले ही अपने हाथों काम करके गाँववालोंको शर्मिन्दा करना होगा।

अब हम जरा यह देखें कि हमें क्या करना चाहिए। कई गाँवोंमें एक ही तालाब होता है। उसमें मवेशी पानी पीते हैं, मनुष्य नहाते धोते हैं, बरतन साफ करते हैं, कपड़े धोते हैं और वही पानी पीते भी हैं। आरोग्य शास्त्रके जानकारोंने तरह-तरहके प्रयोगों द्वारा यह साबित कर दिया है कि ऐसे पानीमें जहरीले कीटाणु पैदा हो जाते हैं और उसे पीनेसे सहज ही हैजा वगैरा बीमारियाँ पैदा हो जाती हैं। थोड़ी ही मेहनत और प्रयत्नसे ऐसे तालाब साफ रखे जा सकते हैं। गाँवके तालाबको चारों ओर पक्का बाँध लेना चाहिए, जिससे उसमें ढोर न जा सकें। लेकिन वहाँ ढोरोंके पानी पीनेकी सहूलियत तो होनी ही चाहिए। उसके लिए कुओंकी तरह तालाबके नजदीक ही पानीके हौज बना लेने चाहिए। उस हौजमें अगर गाँवके सब लोग एक-एक घड़ा पानी रोज डालते रहें तो जरूरतके लायक काफी पानी उसमें भरा रहेगा।

१. यह **नवजीवन**के क्रोड़पत्र **शिक्षण अने साहित्य**में प्रकाशित हुआ था।

जिस तालाबका पानी पिया जाता हो, उसमें न तो कभी बरतन मलने चाहिए और न कपड़े ही धोये जाने चाहिए। इसके दो उपाय हैं। एक तो यह कि सब कोई अपनी जरूरतका पानी अपने घर ले जायें और वहीं सब-कुछ धो लें। दूसरा उपाय यह है कि तालाबके पास ही एक टंकी रखी जाये और उसमें भी सब अपने-अपने हिस्सेका पानी भरें और फिर उस पानीका उपयोग करें। यह तभी हो सकता है जब गाँववालोंमें इतना सहयोग और इस तरहकी परोपकारवृत्ति हो। अगर इस तरह एक-दूसरेकी मददसे काम न हो सके तो थोड़ी मजदूरी देकर टंकी और हौज भरवाये जा सकते हैं। कपड़े धोनेकी जगह पानी गिरना तो अनिवार्य है; इसलिए उतना हिस्सा पक्का बनवा लेना चाहिए जिससे वहाँ कीचड़ न हो सके। पीनेका पानी भरनेके बर्तन पहले बाहर साफ कर लिये जायें और फिर पानीमें डुबाये जायें। इसमें भी कुछ ऐसी सुविधा होनी चाहिए कि जिससे पानी भरनेवालोंके पैर पानीमें न पड़ें। यह उन गाँवोंकी बात हुई जहाँ एक ही तालाब है।

कई गाँवोंमें एकसे अधिक तालाब होते हैं, या एकसे अधिक तालाब बनानेकी व्यवस्था होती है। वहाँ पीनेके पानीका तालाब जुदा ही होना चाहिए।

तीसरी तरहके गाँवोंमें कुएँ होते हैं। इन कुओंका पानी साफ रहना चाहिए। इसलिए ऐसे कुओंके आसपास बाँध होना चाहिए और वहाँ कीचड़ न रहना चाहिए। कुएँकी गादको समय-समयपर निकलवाते रहना चाहिए। यह सारा काम सेवकको पहले खुद करके फिर गाँववालोंसे कराना होगा। यह तालीम सस्ती, सच्ची और आवश्यक है।

[गुजरातीसे]
नवजीवन, १२-१-१९३०

३७४. पत्र : जवाहरलाल नेहरूको

साबरमती
१२ जनवरी, १९३०

प्रिय जवाहरलाल,

मैंने अपने पत्रमें[1] २६ तारीखसे सम्बन्धित तुम्हारे एक महत्त्वपूर्ण प्रश्नका उत्तर नहीं दिया था। मैं समझता हूँ कि जुलूसोंके बारेमें कुछ नहीं कहना चाहिए। हम नहीं चाहते कि लोग लाइसेन्सके अधीन अथवा लाइसेन्सके बिना जुलूस निकालें। इसलिए एकमात्र बात जो उन्हें करनी चाहिए वह यह कि वे सभाएँ करें और यदि हो सके तो सारा दिन सदस्य बनानेमें लगायें। मैं भाषण आवश्यक या उचित नहीं समझता। मैं संकटकी सम्भावनाको टालना चाहता हूँ। सविनय अवज्ञा शुरू करनेके लिए मैं पूर्ण शान्तिको महत्त्व दूँगा। इस सम्बन्धमें मैं 'यंग इंडिया' में लिख[2] रहा हूँ।

१. १०-१-१९३० को लिखे पत्रमें।
२. देखिए "स्वतन्त्रता दिवस", १६-१-१९३०।

आशा है तुम्हें घोषणाका मसविदा ठीक समयपर मिल गया होगा।

हृदयसे तुम्हारा,
बापू

[अंग्रेजीसे]

ए० आई० सी० सी० फाइल सं० १६-ए, १९३०
सौजन्य : नेहरू स्मारक संग्रहालय और पुस्तकालय

३७५. पत्र : वी० एस० श्रीनिवास शास्त्रीको

साबरमती
१२ जनवरी, १९३०

प्रिय बन्धु,

यह पत्र मैं आपको यह पूछनेके विचारसे लिख रहा हूँ कि क्या आप 'इंडियन ओपिनियन' का कार्यभार सँभालनेके लिए किसीको दक्षिण आफ्रिका भेज सकते हैं। मणिलाल अपनी पत्नीके साथ आजकल यहाँ है। वे दोनों अब भारतमें रहना चाहेंगे। मणिलालको किसी भी प्रकार कुशाग्रबुद्धि अथवा कामके लायक सम्पादक भी नहीं कहा जा सकता। एक बार देवधर[1] किसीको भेजनेकी बात सोच रहे थे। यदि आप इस प्रस्तावको उपयुक्त एवं सम्भाव्य मानते हैं, तो कृपया मुझे सूचित करें।

आशा है आप लाहौरमें मेरे किये कार्योंपर जरूरतसे ज्यादा नाराज नहीं होंगे। मैंने अपनी अन्तरात्माकी आवाजका अनुसरण भर किया है। इसके अतिरिक्त मुझे और कोई सम्मानजनक तरीका नजर नहीं आया। रसलके भाषणने[2] मेरे विचारसे निर्णयकी पुष्टि की है। लेकिन मैं जानता हूँ कि गहरे मतभेदोंके बावजूद हम एक दूसरेको प्यार कर सकते हैं।

आजकल आपका स्वास्थ्य कैसा है?

आपका,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]
लेटर्स ऑफ श्रीनिवास शास्त्री

१. सर्वेन्टस ऑफ इंडिया सोसाइटीवाले गो० कृ० देवधर।

२. समाचारपत्रोंकी सूचनाके अनुसार रसलने कैम्ब्रिजमें मजदूर दलकी सभामें कहा था कि इस बातको भारतीयोंसे ज्यादा अच्छी तरह और कोई नहीं जानता कि पूर्ण स्वतन्त्रताकी बात करना कितना मूर्खतापूर्ण है।

३७६. पत्र : रामी पारेखको

साबरमती
१२ जनवरी, १९३०

चि० रामी,[१]

तू भला क्यों पत्र लिखेगी? बा तेरे नामकी माला जपती रहती है। मुझे तो तुममेंसे किसीके बारेमें सोचनेकी फुरसत ही नहीं मिलती। मैं भी यह चाहता हूँ कि यदि कुंवरजी तुझे छुट्टी दें और तेरी इच्छा हो तो तू चली आ। बा तो अभी बीजापुर गई हुई है। वहाँसे वह थोड़े दिनमें लौट आयेगी। मणिलाल यहीं है और सुशीला तो है ही।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (एस० एन० ९७१३)की फोटो-नकलसे।

३७७. पत्र : नौतमलाल भगवानजीको

आश्रम
साबरमती
१२ जनवरी, १९३०

भाईश्री नौतमलाल,

आपका पत्र मिला। उक्त पत्र मैंने डाक्टरको पढ़नेको दिया था। वे प्रसन्न हुए और मुझे आशा है कि आपका प्रयत्न सफल होगा।

मोहनदासके वन्देमातरम्

श्री नौतमलाल भगवानजी
जैतपुर, काठियावाड़

गुजराती (जी० एन० २५८२)की फोटो-नकलसे।

१. हरिलाल गांधीकी कन्या और कुँवरजी पारेखकी पत्नी।

३७८. पत्र : ब्रजकृष्ण चाँदीवालाको

आश्रम
साबरमती
१२ जनवरी, १९३०

चि० ब्रजकृष्ण,

तुम्हारा खत मिला है। यदि प्रभुदास और उत्तमचंद नीकलनेके लायक हो गये हैं तो दोनोंको वहांसे हटा दो और दोनोंको छोटी लाईनसे यहां आ जाव और पीछे वर्धा चले जाना। देवदास कहता है प्रभुदासको उसके आने तक वहां रखनेकी कोई आवश्यकता नहीं है प्रभुदाससे कहो वैद्यकी पुडीयां खाता है उसमें कोई हर्ज नहीं है।

बापूके आशीर्वाद

जी० एन० २३७२ की फोटो-नकलसे।

३७९. तार : जवाहरलाल नेहरूको

अहमदाबाद
१३ जनवरी, १९३०

उत्सवकी घोषणाका[1] मजमून मिल गया हो और मंजूर हो गया हो तो तार दो। यदि बहुत परिवर्तन किये जाने हैं तो 'यंग इंडिया'के अगले अंकमें छापना चाहता हूँ। मजमून तार से भेजो ताकि कल सवेरे मिल जाये।

गांधी

[अंग्रेजीसे]

अ० भा० कां० क० फाइल सं० १६-ए, १९३०
सौजन्य : नेहरू स्मारक संग्रहालय और पुस्तकालय

१. देखिए "२६ जनवरीकी घोषणाका मसविदा", १०-१-१९३०।

३८०. भाषण : अखिल भारतीय राष्ट्रीय शिक्षा-परिषद, अहमदाबादमें[1]

[१३ जनवरी, १९३०][2]

इस विद्यापीठका जन्म असहयोग आन्दोलनके सिलसिलेमें हुआ। और जैसा कि मैंने कुछ साल पहले कहा था, विद्यापीठका ध्येय स्वराज्य प्राप्त करना है। राष्ट्रीय शिक्षा संस्थाओंमें पढ़नेवाले और इनसे सम्बन्धित उन सब लोगोंको वे सब काम अवश्य करने चाहिए जो देशको करने पड़ रहे हैं और उसी अनुशासनमें अवश्य बँधे रहना चाहिए जिस अनुशासनमें देशको स्वराज्य प्राप्तिके लिए बँधे रहना पड़ रहा है, ताकि वे जब वक्त आये तो स्वेच्छासे त्याग करनेके लिए अपने आपको समर्पित कर दें।

हमारा आन्दोलन आत्मशुद्धिका आन्दोलन है। कुछ लोग ऐसे हैं जो सोचते हैं कि नैतिकताका राजनीतिसे कोई सम्बन्ध नहीं है, हमें अपने नेताओंके चरित्रसे कोई मतलब नहीं है। जब नैतिकताका राजनीतिसे कोई वास्ता पड़ता है तो यूरोप और अमेरिकाके प्रजातन्त्र नैतिकताको एक तरफ कर देते हैं। दुश्चरित्र लोग अक्सर बड़े कुशाग्रबुद्धि होते हैं और वे कुछ खास मामले अपनी तीव्र बुद्धिके बलपर काफी अच्छी तरह चला लेते हैं। ब्रिटिश लोकसभाके कुछ मूर्धन्य लोगोंका निजी चरित्र कसौटी पर खरा नहीं उतरेगा। [प्रारम्भमें] हमने भी अपना राजनीतिक आन्दोलन उसी तरह चलाया। हमने कांग्रेसके सदस्यों अथवा नेताओंके चरित्रसे कोई मतलब नहीं रखा। परन्तु १९२० में हमने बिलकुल नया रास्ता तय किया और हमने घोषणा की कि चूँकि अपने ध्येयको पानेके लिए कांग्रेसको केवल सत्य और अहिंसाके साधन अपनाने हैं, इसलिए राजनीतिक जीवनमें भी आत्मशुद्धि आवश्यक है।

आज इस विचारका खास खुला विरोध कोई नहीं करता; हालाँकि बहुत लोग ऐसे हैं जो मन ही मन ऐसा मानते हैं कि राजनीतिका नैतिकतासे कोई सम्बन्ध नहीं होना चाहिए। यही कारण है कि हमारी प्रगति इतनी धीमी है और किसी-किसी मामलेमें तो बिलकुल ही नहीं हो पाई है। यदि हम अपने १९२० के सिद्धान्तपर चले होते तो हमें वर्तमान दशापर पहुँचनेतक भी नौ साल नहीं लगते। यदि स्वराज्यका अभिप्राय हमें सभ्य बनाना और हमारी सभ्यताको शुद्ध और स्थायी बनाना नहीं है, तो इसकी कोई कीमत नहीं है। हमारी सभ्यताका सार यह है कि अपने सभी मामलोंमें, चाहे वे राजनीतिक हों या निजी, नैतिकताको सर्वोत्तम स्थान दिया जाये। और चूँकि विद्यापीठका एक काम हमें सभ्य बनाना है, इसलिए स्वराज्यकी लड़ाई राष्ट्रीय शिक्षा संस्थाओंसे सबसे ज्यादा बलिदानकी अपेक्षा रखती है।

१. **यंग इंडिया**, २३-१-१९३० में "नोट ए पालिसी बट क्रीड" शीर्षकसे प्रकाशित।
२. **बॉम्बे क्रॉनिकल**, १४-१-१९३० से।

मैं चाहता हूँ कि आप सब लोग हमारे सिद्धान्तका आशय समझ लें। यदि आप यह समझते हैं कि सत्य और अहिंसा मिलकर कोई सिद्धान्त नहीं परन्तु कांग्रेसकी नीति ही बनाते हैं तो मुझे नहीं मालूम कि मेरा यहाँ क्या स्थान हो सकता है। परन्तु यदि आपको पूरा विश्वास है कि वे आपके निजी सिद्धान्त हैं तो मुझे उनपर विस्तारसे बोलनेकी आवश्यकता नहीं है। यही तथ्य कि कोई व्यक्ति विद्यापीठसे सम्बन्धित है, उसकी सच्चाई और अहिंसाकी प्रतीतिके लिए काफी होना चाहिए। इसलिए इस राष्ट्रीय शिक्षा परिषदका और इसमें सम्मिलित होनेवाले सब लोगोंका पहला काम यह होना चाहिए कि वे अपने आपसे यह पूछें कि क्या उनके सारे काम उस सिद्धान्तके अनुरूप रहे हैं या नहीं। यदि आपने सत्य और अहिंसाका नीति रूपमें अनुसरण करते हुए अपना कामकाज किया है तो शायद एक दिन ऐसा आयेगा जब आपको इस नीतिमें परिवर्तन करनेकी इच्छा हो। उदाहरणके तौरपर मेरे मित्र अलीभाइयोंने सत्य और अहिंसाको नीतिके रूपमें अपनाया और उन्होंने इस बातको कभी छिपाया नहीं। उन्होंने हमेशा कहा कि वे इन्हें सिद्धान्तके रूपमें स्वीकार नहीं कर सकते। उनकी जैसी विचारधाराके बहुत-से और लोग भी हैं और उनका निस्सन्देह देशकी सेवामें अपना स्थान है। परन्तु आप लोगोंके लिए, जो राष्ट्रीय शिक्षा संस्थाओंके विद्यार्थी और अध्यापक हैं, ऐसा रुख काफी नहीं होगा। आपको दोनों नियम अपने सिद्धान्तके रूपमें अवश्य स्वीकार करने चाहिए और वे नियम आपके अस्तित्वका अत्यन्त महत्वपूर्ण अंग होने चाहिए। यदि सब अहिंसाको नीति बनायें और सिद्धान्त रूपमें इसका समर्थन करनेवाला केवल मैं ही रहूँ तो हम कोई प्रगति नहीं कर सकते। इसलिए हम अपने मनमें एक बार फिर सवाल करें और निश्चय करें कि हम किन्हीं भी परिस्थितियोंमें स्वराज्यकी प्राप्तिके लिए असत्य और हिंसाको स्थान नहीं देंगे। तब सब-कुछ ठीक हो जायेगा।

सत्य और अहिंसाके सिद्धान्तसे रचनात्मक कार्यक्रमका विकास हुआ है। हम इसके प्रत्येक अंगपर विचार करें। जबतक हिन्दू मुसलमानोंके प्रति और मुसलमान हिन्दुओंके प्रति हिंसाका भाव रखेंगे, हिन्दू-मुसलमानोंमें एकता असम्भव है। लाहौरमें कौमी सवालपर कांग्रेसका प्रस्ताव इस सिद्धान्तका ही परिणाम था। सिख चाहते थे कि केवल उनके साथ न्याय किया जाये। परन्तु जैसा कि शायद आपने ध्यान दिया होगा प्रस्ताव इससे भी आगे गया है और यह केवल सिखोंके लिए ही नहीं परन्तु भारतकी सारी जातियोंके लिए है।

अस्पृश्यता-निवारणकी ही बात लीजिए। इस प्रश्नपर बात करते हुए कुछ लोग शारीरिक छुआछूतकी बात करते हैं, कुछ तथाकथित अछूतोंकी आम कुओंसे पानी लेने तथा स्कूलों और मन्दिरोंमें प्रवेश करनेकी निर्योग्यताओंको दूर करनेकी बात करते हैं। परन्तु आपको इससे बहुत आगे जाना चाहिए। आपको चाहिए कि आप उनसे उसी तरह प्रेम करें जैसे कि आप अपने-आपसे करते हैं, ताकि वे आपको देखते ही यह समझ लें कि आप उनमें से ही एक हैं। केवल तभी आपको रचनात्मक कार्यक्रममें उनका सहयोग मिल सकता है।

शराबबन्दीके मामलेमें भी यही बात लागू होती है। खादी कार्यक्रमके बारेमें भी यही बात है। परन्तु उसकी यहाँ चर्चा करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। यह काम इतना ठोस और व्यवहार्य है कि एक आदमी, जो नियमित रूपसे अपने दिन-भरके कामका रोजनामचा रखता है, स्पष्ट रूपसे यह बता सकता है कि उसने राष्ट्रीय धनमें कितनी वृद्धि की है। यदि हमने उस भावनासे काम किया होता तो हमने अबतक बड़ी प्रगति कर ली होती। विदेशी-वस्त्र बहिष्कार समितिने हमें बताया है कि हमने पिछले साल थोड़ा-सा करके ही कितना कार्य सम्पन्न कर लिया है। मेरे विचारमें तो जो हुआ है वह बहुत थोड़ा है। परन्तु यदि हम सबने यह काम दृढ़ इच्छाशक्ति और अटूट विश्वासके साथ किया होता तो इसका क्या परिणाम होता? हमें सच्चे और कुशल कार्यकर्त्ताओंकी बेहद जरूरत है। परन्तु मुझे मालूम है कि आप लोगोंमें से भी बहुत-से लोग ऐसे हैं जिनमें दृढ़ इच्छाशक्तिकी कमी है और इसलिए क्षमताकी भी कमी है। हमें अपनी निष्क्रियता समाप्त करनी है और विश्वासकी कमीको दूर भगाना है; क्षमता तब अपने-आप ही आ जायेगी।

मैंने आपको अभीतक यह बताया कि हमें क्या करना चाहिए। अब मैं आपको वे कुछ बातें बताऊँगा जो हमें नहीं करनी चाहिए। साहित्यिक प्रशिक्षण, विद्वत्तापूर्ण अनुसन्धान, और भाषा सम्बन्धी अध्ययन, अंग्रेजी, संस्कृत और ललित कलाओंका अध्ययन इन सबको गौण स्थान दिया जाना चाहिए। हमारे सब राष्ट्रीय स्कूल हमारी राष्ट्रीय युद्धकी सामग्री अर्थात् रचनात्मक कार्यके कारखानोंमें बदल दिये जाने चाहिए। आज भारतमें लाखों बच्चे ऐसे हैं जो बिना किसी शिक्षाके और उससे भी ज्यादा बिना राष्ट्रीय शिक्षाके और जो दूसरी बड़ी-बड़ी चीजें मैंने बताई हैं, उनके बिना रहते हैं। तो फिर हम, कमसे-कम स्वतन्त्रता प्राप्त कर लेनेतक, उनके बिना क्यों नहीं रह सकते हैं?

कार्यसमितिने देशसे सदस्य और स्वयंसेवक भरती करनेकी अपील की है। इस कामके लिए किसी दूसरी संस्थाकी आवश्यकता क्यों पड़नी चाहिए? आप सभी लोग सदस्य और स्वयंसेवक बन सकते हैं और कामको सँभाल सकते हैं। सोचिए, पिछले महायुद्धमें यूरोपमें विद्यार्थियोंने क्या किया। उन्होंने जो त्याग किया, क्या हम वैसा त्याग करनेके लिए तैयार हैं? यदि हमारा अपने अन्तरतममें यह विश्वास हो कि जबतक हम स्वतन्त्रता नहीं प्राप्त कर लेंगे तबतक हम शान्तिसे साँस नहीं लेंगे, तब हम रचनात्मक कार्यक्रमको अमलमें लानेके लिए जियेंगे और काम करेंगे।

अन्तमें आपसे जो अपेक्षा की जाती है उसे मैं एक शब्दमें आपके सामने रख दूँ। हमें चूँकि शुद्ध-पवित्र होना है, हम मृत्युका भय त्याग दें। एक अंग्रेजने अभी हालमें कहा कि गांधी भले ही यह सोचें कि अंग्रेजोंके भारतसे चले जानेपर भारतको कोई नुकसान नहीं होगा, परन्तु मुझे इसमें कोई सन्देह नहीं है कि जिस क्षण मेरे देशवासी [अंग्रेज] भारतसे चले जायेंगे, अमीर लोगोंकी सम्पत्ति सुरक्षित नहीं रहेगी और एक भी कुँवारी लड़की पवित्र नहीं बचेगी। इससे पता चलता है कि हम भारतीयोंके प्रति वे कितनी हीन भावना रखते हैं। परन्तु ऐसा क्यों न हो? आज

हम इतने भयभीत हैं कि हमें अपनी सम्पत्ति और अपना मान बचानेके लिए किरायेके लोगोंसे काम लेना पड़ता है। जिस क्षण हम मौतका भय त्याग देंगे, हमारी यह दुर्दशा नहीं रहेगी। मैं विद्यापीठमें पढ़नेवाली हर लड़कीसे यह आशा रखता हूँ कि वह इतनी जाग्रत हो जाये और उसमें इतना नैतिक बल हो कि कोई दुष्ट व्यक्ति उसे छू तक न सके। मैं चाहता हूँ कि आप सब मृत्युका भय त्याग दें, ताकि जब स्वतन्त्रताका इतिहास लिखा जाये, राष्ट्रीय स्कूल और कालेजोंके लड़के-लड़कियोंके नाम हिंसा करके मरनेवालोंमें नहीं अपितु हिंसाका प्रतिरोध करते हुए मरनेवालोंमें लिखा जाये, चाहे वह हिंसा किसीके भी द्वारा की गई हो। आत्म-रक्षाके लिए हत्या करनेकी सामर्थ्य होना जरूरी नहीं है; आदमीमें मरनेकी शक्ति होनी चाहिए। जब आदमी मरनेके लिए पूरी तरह तैयार होगा तो वह हिंसा नहीं करना चाहेगा। निस्सन्देह मैं इसे स्वतः सिद्ध कथनके रूपमें सामने रखूँ कि प्राण-त्यागकी इच्छा जितनी तीव्र हो, हत्या करनेकी इच्छा उतनी ही कम होती है। इतिहास ऐसे लोगोंके उदाहरणोंसे भरा पड़ा है जो साहसके साथ अपने होठोंपर करुणाका भाव लेकर मरे और उन्होंने हिंसापर उतारू अपने शत्रुओंका हृदय-परिवर्तन कर दिया।

भाषणके अन्तमें एक प्रश्नके उत्तरमें गांधीजीने कहा :

आप पूछते हैं कि यदि मैं संघर्षमें विद्यार्थियोंके भाग लेनेके बारेमें इतना उत्सुक था तो मैंने स्कूलों और कालेजोंके बहिष्कारके बारेमें क्यों जोर नहीं डाला। मैं कहता हूँ [उपयुक्त] वातावरण नहीं था। परन्तु मुझे आशा है कि आप इसका ऐसा जवाब नहीं देंगे कि यदि [उपयुक्त] वातावरण नहीं था तो फिर ये विद्यार्थी भी क्या कर सकते हैं? ये बहुत कुछ कर सकते हैं। यदि इनकी लगन अपने लक्ष्यके प्रति अधिक तीव्र होती तो उससे सरकारी स्कूलों और कालेजोंके विद्यार्थी स्कूल-कालेज छोड़नेके लिए बाध्य हो जाते। जो ये अबतक नहीं कर सके हैं, सो अब भी कर सकते हैं।[१]

चूँकि मैंने यह कहा है इसलिए आप उत्तेजित न हों। एक ओर तो आप मरनेके लिए अवश्य तैयार रहें और दूसरी ओर अपने वर्तमान कर्त्तव्यको निभानेमें इस तरह संलग्न रहें मानो कि आप अमर हैं; आपको कभी मरना नहीं है।

[अंग्रेजीसे]
यंग इंडिया, २३-१-१९३०
नवजीवन, १९-१-१९३०

१. अगला अनुच्छेद **नवजीवन**, १९-१-१९३० से लिया गया है।

३८१. स्वतन्त्रता दिवस

लाहौरमें स्वतन्त्रताका प्रस्ताव पास कर लेना तो आसान था। लेकिन 'शान्तिमय और वैध' उपायोंसे ही क्यों न हो, स्वराज्यको पाना बड़ी टेढ़ी खीर है। सबसे पहले तो जरूरी है कि सर्वसाधारण कांग्रेसके सन्देशको जानें, समझें और सराहें। उन्हें यह मालूम होना चाहिए कि स्वतन्त्रताका मतलब क्या है और उसके लिए कितनी कीमत चुकानी पड़ेगी। इसीलिए कांग्रेसकी कार्यसमितिने, जिसका कर्त्तव्य है कि वह कांग्रेसको लोगोंकी प्रतिदिनकी चर्चाका विषय बना दे, रविवार ता० २६ को पूर्ण स्वराज्यका दिन ठहराया है। उस दिन जो लोग इकट्ठा होंगे वे कार्यसमिति द्वारा स्वीकृत घोषणाका[1] उच्चार करेंगे। यह घोषणा अपने-आपमें पूर्ण होगी। अतएव उस दिन अलग भाषणोंकी जरूरत नहीं होगी। भाषण देना उचित भी नहीं होगा, क्योंकि यह बात फैल चुकी है कि स्वतन्त्रताकी बात फैलते ही लोग शायद गप्प उड़ाने लगेंगे। ऐसे लोगोंको समझ लेना चाहिए कि गैर-जिम्मेदार और छूछी बातें स्वतन्त्रता नहीं हैं, वह तो एक तरहका परवाना 'लाइसेंस' हुआ; वह स्वतन्त्रताके प्रेमके कारण उत्पन्न उत्साह भी नहीं है, बल्कि एक ऐसा फेन है, जो निकम्मा और हानिकर समझकर ठुकरा दिया जाना चाहिए। लेकिन यह २६ जनवरीका दिन तो हमारे लिए पूर्ण अनुशासन, संयम, संग्रह, प्रतिष्ठा और सच्ची शक्तिका दिन होगा। अच्छा तो यह हो कि यह घोषणा प्रत्येक शहर और प्रत्येक गाँवमें उद्घोषित हो, जैसा कि १९१९ की स्मरणीय ६ अप्रैलके दिन हुआ था।[2] यह और भी अच्छा हो कि सब जगह एक ही निश्चित समयपर सभाएँ हों। इन सभाओंकी उपस्थिति बहुसंख्यक बनानेके लिए घर-घर जाना चाहिए और लोगोंमें पर्चे भी बाँटने चाहिए। गाँवोंमें पुराने रिवाजके अनुसार डुग्गी द्वारा ही सभाके वक्तका ऐलान किया जा सकता है। जो लोग धार्मिक वृत्तिके हैं, वे पूर्ववत् उस दिनका कार्यक्रम भी शौच-स्नान आदिसे शुरू करें और अपनी सारी शक्ति देशकी समस्या पर विचार करने और उसे हल करनेके उपायोंमें खर्च करें। इसलिए उस दिन वे अपना सारा समय किसी रचनात्मक कार्यक्रममें लगायेंगे, चाहे वह कताईका हो, 'अछूतों' की सेवाका हो, हिन्दू-मुसलमानोंके पुनः मेल-मिलापका हो, शराबबन्दीका हो या फिर ये सभी काम हों; ये नामुमकिन तो नहीं हैं। जैसे कि एक हिन्दू किसी अछूतको अपने साथ ले ले, और मुसलमान, पारसी, ईसाई, सिख वगैराको बुलाकर उनके साथ कुछ निश्चित समयके लिए चरखा-दंगलमें शामिल हो, और फिर यों कहिए कि वे सब मिलकर एक घंटेतक खादीकी फेरी लगायें—यह खादी वे सब मिलकर खरीदें और फिर बेचें, और बादमें एक घंटेके लिए पासमें किसी शराबकी दूकानपर चले

१. देखिए "२६ को यह याद रखिए", २३-१-१९३०।

२. देखिए खण्ड १५।

जायें, और शराब विक्रेताको समझायें कि इन गन्दे उपायोंसे धन कमाना या जीविका उपार्जन करना कितना बुरा है। वे ऐसी दूकानोंपर आनेवाले शराबखोरोंसे भी दो बातें कर सकते हैं और फिर शामकी सभामें हाजिर होकर उस दिनका कार्यक्रम समाप्त कर सकते हैं। यह भी याद रहे कि यह रविवार झण्डा फहरानेका दिन है। और इसलिए ध्वजारोहण समारोहसे उस दिनका कार्यक्रम प्रारम्भ किया जा सकता है।

अगर कांग्रेस समितियाँ और कांग्रेसके कार्यकर्त्ता लाहौरके प्रस्तावकी गम्भीरताको समझते हैं और खुद गम्भीर हैं, तो मुझे आशा है कि उन्होंने नये सदस्य बनाने शुरू कर दिये होंगे और पुराने सदस्योंको नये सालका चन्दा देनेके लिए कहने लगे होंगे। इसके साथ ही, उन्हें, याने पुराने और नये सदस्योंको, कांग्रेसके ध्येयके परिवर्तन की बात भी समझा दी जानी चाहिए। अगर कांग्रेस समितियाँ सही ढंगसे काम शुरू कर दें तो उनसे कांग्रेसको पक्की नींवपर पुनः संगठित करनेमें बड़ी मदद मिलेगी। और इस तरह जो लोग केवल २६ जनवरीके महोत्सवमें शामिल होंगे वे निरे तमाशाई या निठल्ले लोग नहीं होंगे, बल्कि ऐसे स्त्री-पुरुष होंगे, जिन्हें इस बातकी काफी अच्छी जानकारी होगी कि वे किसलिए इकट्ठे हुए हैं और अपने उस समान उद्देश्यको पूरा करनेका पक्का इरादा रखते होंगे। आगामी महोत्सवको व्यापक बनाना और देश-भरमें, उत्तरसे दक्षिण, पूरबसे पश्चिमतक और फिर भी पूर्ण सुव्यवस्थाके साथ उसे मनाना सम्भव होना चाहिए। इस स्वतन्त्रता दिवसपर कोई अशुभ या अवांछनीय घटना नहीं होनी चाहिए। केन्द्रीय कार्यालयमें प्रत्येक गाँव और प्रत्येक स्थानसे उस दिनकी सारी कार्रवाईका पूरा-पूरा विवरण भेजा जाना उतना ही जरूरी है, जितना कि इस महोत्सवका मनाया जाना, ताकि कार्यालय आन्दोलन और कांग्रेसके संगठनकी ताकतका अन्दाज लगा सके। उस दिनके पूरे और सच्चे विवरणपर ही कार्यसमिति, जिसकी बैठक १४ फरवरीको होनेवाली है, अपना आगेका कार्यक्रम निश्चित कर सकेगी।

इस तमाम कामके लिए पूरे समयके कार्यकर्त्ताओंकी जरूरत है। दूसरे शब्दोंमें, इसके लिए स्थायी वैतनिक स्वयंसेवकोंकी आवश्यकता है। जो लोग अपना कुछ समय ही इन कामोंमें देते हैं, उनकी सेवा तभी उपयोगी और बहुमूल्य होती है, जब उनके साथ उस जगह कमसे-कम एक वैतनिक कार्यकर्त्ता भी हो। मैं पहले ही कह चुका हूँ [1] कि संयुक्त प्रान्तके लिए एक ऐसा प्रान्तीय सेवा-संघ होना चाहिए, जो अपने लिये एक कारगर संविधान बनाकर फौरन ही रँगरूट भरती करना शुरू कर दे। हमें आशा करनी चाहिए कि इस अत्यन्त वांछनीय संस्थाकी स्थापना करनेमें थोड़ा भी विलम्ब नहीं किया जायेगा। अगर इस संघने योग्यतासे और सच्चाईसे काम किया तो दूसरे प्रान्तोंके लिए भी यह एक दृष्टान्तका काम देगा।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १६-१-१९३०

१. देखिए "संयुक्त-प्रान्त राष्ट्रीय सेवा", १२-१२-१९२९।

३८२. आगामी कांग्रेस

मेरी रायमें लाहौर कांग्रेसने यह निश्चय करके कि भविष्यमें कांग्रेसके अधिवेशन दिसम्बरमें न होकर फरवरी या मार्चमें किसी समय हुआ करेंगे, बड़ी ही बुद्धिमानीका काम किया है।[१] बेकार और खुशहाल लोगोंके लिए तो दिसम्बरका महीना बेशक बहुत अनुकूल है। किन्तु कांग्रेसमें हाजिर होनेवाले गरीबोंकी तादाद हर साल बढ़ती जाती है। इन गरीबोंके लिए भारतके कई प्रान्तोंमें दिसम्बरका महीना बहुत कष्टदायक होता है। ये लोग बेचारे जहाँ-तहाँ खुली जगहोंमें बिना कुछ ओढ़े-बिछाये पड़ रहते हैं और इन्फ्लुएँजा तथा दूसरे रोगोंके शिकार बन जाते हैं। बड़े दिनोंकी छुट्टियोंके कारण मिलनेवाले सस्ती दरके टिकटोंसे गरीबोंको नाममात्रका ही लाभ होता है। स्वागत समितिको प्रतिनिधियों और प्रेक्षकोंकी सुख-सुविधाका प्रबन्ध करनेमें बड़ी कठिनाइयोंका सामना करना पड़ता है। इस हेरफेरके पक्षमें ये सारी दलीलें तो स्पष्ट हैं ही। फिर कांग्रेसी लोगोंपर इतने वर्षोंसे दिसम्बर महीनेकी जो मोहिनी छाई हुई थी, उसे तोड़ना भी जरूरी था। शुरुआतमें दिसम्बर महीना वकीलों और उन लोगोंकी सुविधाके खयालसे पसन्द किया गया था, जो देशके प्रशासनसे और इसलिए उसके शोषणसे सम्बन्धित थे। इसलिए पूर्ण-स्वराज्यके प्रस्तावकी मंजूरीके साथ ही साथ इस अनुचित परम्पराका नष्ट होना उचित ही हुआ है। आमतौरपर कांग्रेस एक कठपुतलीका खल या छुट्टीमें करने-देखनेका तमाशा समझी जाती है। अगर पूर्ण-स्वराज्य हासिल करना है, तो उसे तमाशा नहीं समझा जाना चाहिए, वरन् उसे काम करने तथा करानेवाले कर्मठ मनुष्योंका मण्डल बन जाना चाहिए।

यह सब देखते हुए विषय समितिका अपनी या प्रतिनिधियोंकी संख्याको घटानेवाला प्रस्ताव नामंजूर कर देना एक दुर्भाग्य ही कहा जायेगा।[२] लेकिन मुझे इससे आश्चर्य नहीं होता। क्योंकि कांग्रेस भी अधिकार और उससे भी बुरी चीजोंके लोभका स्थान बन गई है। आये दिन अनेक समितियोंमें पद पानेके लिए इतनी छीना-झपटी होती है कि चुनावके झगड़े हमारी राष्ट्रीय संस्थाके लिए एक दुःखद किन्तु रात-दिनकी बात बन गये हैं। सत्ताके लोभमें कांग्रेसके संविधानकी एक-एक धाराका निर्दयतापूर्वक दुरुपयोग किया जाता है। अतः जो यह कहा गया है सो ठीक ही है कि अगर संख्या इतनी अधिक घटा दी जायेगी तो शायद नतीजा और उलटा होगा। भ्रष्टाचार खत्म होने या कम होनेके बदले शायद बढ़ेगा। मुझे इस खतरेका पूरा-पूरा खयाल है, और मैं यह भी जानता हूँ कि बाहरी उपायोंकी अपेक्षा आन्तरिक शुद्धिकी ज्यादा जरूरत है। किन्तु कांग्रेसको शुद्ध करनेके लिए हरएक उचित बाह्य साधनका इस्तेमाल करना, उसे अपने ध्येयको सचाईके साथ कार्यमें परिणत करनेवाली संस्था बनाना और फलस्वरूप एक जबर्दस्त तथा भलीभाँति काम करनेवाली संस्थामें बदल देना हमारा कर्त्तव्य है।

१. देखिए "भाषण: अ० भा० कां० कमेटीकी विषय समितिमें-१", १-१-१९३०।
२. देखिए "लाहौर कांग्रेसके प्रस्तावोंका मसविदा", २६-१२-१९२९।

कराची कांग्रेससे[1] मुझे बड़ी-बड़ी आशाएँ हैं। सम्भव है कि उस समयके आनेसे पहले ही कदाचित मैं किसी अधिक अच्छे स्थान [जेल] में जा बैठूँ और यह भी सम्भव है कि अगले कांग्रेस अधिवेशनसे पहले ही सारे देशकी शक्ल बदल जाये। लेकिन वैसे, हमारा कर्त्तव्य तो यह है कि हम, जो हो चुका है, उसका सिंहावलोकन सामान्यतया प्रत्याशित भविष्यको ध्यानमें रखकर करलें।

प्रतिनिधियोंकी संख्या घटाना सिंधके कार्यकर्त्ताओंके वशकी बात नहीं है। फिर भी ऐसी कई दूसरी बातें हैं, जिनसे आगामी अधिवेशन अपेक्षाकृत कम अव्यवस्थित और बहुत-कुछ कम व्ययसाध्य बनाया जा सकता है। खेमोंका नगर इस देशके लिए बहुत खर्चीली चीज है। घासफूसके खुले मण्डप बाँध लेने और भीतरकी ओर दस-दस फुटकी दूरी पर आधी-आधी दीवारें खड़ी करनेसे थोड़ा एकान्त भी मिल जायेगा और ऐसे मण्डप सबसे ज्यादा सस्ते भी पड़ेंगे। इन्हें बनानेके लिए जिन चीजोंसे काम लिया जायेगा, वे एक ही बारके उपयोगके बाद निकम्मी नहीं हो जायेंगी। जो जमीन पसन्द की जाये वह समतल और सुव्यवस्थित होनी चाहिए। उस जमीनमें से प्रतिनिधियों और प्रेक्षकोंको खुले चौरस 'ब्लाक' किरायेपर दिये जा सकते हैं, जिनमें वे अपनी इच्छानुसार रहने-बैठनेका इन्तजाम कर सकें। अभीसे इस बातके जानकार लोगोंकी एक छोटी-सी समिति बनाकर उसे एक अस्थायी नगर बनानेकी अच्छीसे-अच्छी और सस्तीसे-सस्ती योजना तैयार कर लेनेका काम सौंप दिया जाना चाहिए। स्वागत समितिको खाने-पीनेका प्रबन्ध नहीं करना चाहिए। कुछ चुनिन्दा देशभक्त होटलवालोंको होटल या भोजनालय चलानेके ठेके दे दिये जायें और वे हरएक प्रान्तके लोगोंको अपने-अपने प्रान्तके रीति-रिवाजके अनुसार मनपसन्द भोजन दिया करें। प्रति वस्तु और प्रति समयके भोजनकी दर पहलेसे ही ठहरा ली जाये। इन बातोंका प्रबन्ध शौकिया तरीकेसे करनेके कारण हम अपना बहुतेरा समय और धन तो बरबाद कर ही बैठते हैं, इसके सिवा प्रतिवर्ष नया-नया प्रबन्ध करनेसे हर साल मिलनेवाला अनुभव भी व्यर्थ चला जाता है, अगर यह सच न होता तो ४५ सालके अनुभवके बाद आज कांग्रेसका वार्षिक अधिवेशन करना बच्चोंका खेल हो जाना चाहिए था, और व्यवस्था तो पूर्णतया निर्दोष ढंगका नमूना होनी थी; लेकिन हकीकत इससे उलटी है। आज उन शहरोंकी स्वागत समितियोंको जहाँ कांग्रेस अधिवेशन होता है, कांग्रेसका प्रबन्ध करनेमें अत्यन्त कठिन समयसे गुजरना होता है और सब कुछ शान्तिपूर्वक समाप्त हो जानेपर वे ईश्वरका आभार मानती हैं। आरोग्य-रक्षा, पानीकी व्यवस्था, अस्पताल, आकस्मिक घटना हो जानेपर सेवा-शुश्रूषाका प्रबन्ध, होटल या भोजनालय, इमारत बनाना वगैरा कामोंके अलग-अलग विभाग होने चाहिए और ईमानदार राष्ट्रभक्त ठेकेदारोंको ठेके देकर उनके द्वारा इन सब विभागोंका इन्तजाम होना चाहिए। राष्ट्रीय जीवनका सुव्यवस्थित निर्माण इसी तरह हो सकता है। अब ऐसी स्थिति तो पैदा हो ही जानी चाहिए कि जिससे राष्ट्रके प्रतिनिधि पूर्ण शान्ति और निश्चितताके साथ राष्ट्रकी समस्याओंपर विचार करके उन्हें हल कर सकें।

१. आगामी कांग्रेस अधिवेशन कराचीमें होना था।

प्रदर्शनीको भी स्वागत-समितिके व्ययकी पूर्तिका साधन नहीं बनाना चाहिए। स्वागत-समितिके खर्चका प्रबन्ध तो बड़ी आसानीसे हो सकता है, बशर्ते कि वह व्यवहार-कुशल हो और होशियारीके साथ काम करना जानती हो। ऊपर जिस तरहके ठेकेदारोंका जिक्र किया है, उनसे ठेकेके बदलेमें मिलनेवाली रकमसे ही प्रधान कार्यालयका सारा खर्च चलाना चाहिए और मैंने जिस योजनाका सुझाव दिया है, उसमें प्रधान कार्यालयका काम इतना ही होना चाहिए कि वह विभिन्न विभागोंकी देखभाल करे और सामान्य व्यवस्थाकी निगरानी रखे। प्रदर्शनीका काम उस विषयके किसी विशेष जानकार मण्डलको सौंपा जाना चाहिए। मैंने इस कामके लिए अखिल भारतीय चरखा संघका सुझाव दिया है, लेकिन अगर किसीको उसके खिलाफ कोई शिकायत हो तो दूसरा कोई मण्डल पसन्द किया जा सकता है। शिक्षाकी दृष्टिसे इस प्रदर्शनीको महत्त्वपूर्ण बनानेके लिए नीचे लिखी शर्तोंका पालन जरूरी है।

१. प्रदर्शनीमें खेलकूद और खिलौनों या पुतलोंके तमाशोंको स्थान नहीं होना चाहिए। मेलों-ठेलों और त्यौहारोंके मौकोंपर अन्य एजेन्सियाँ इन्हें जनताके लिए प्रस्तुत करती ही हैं।

२. प्रदर्शनीमें स्वदेशी वस्तुओंके सिवा और कोई भी चीज नहीं रखी जानी चाहिए। वही वस्तु स्वदेशी है, जो हिन्दुस्तानमें हिन्दुस्तानी कारीगर द्वारा बनाई गई हो और अगर वह किसी कम्पनीकी बनी हुई है, तो वह कम्पनी मुख्यतः भारतीय साझेदारोंकी होनी चाहिए, जो साझेदारोंके लाभके लिए ही चलती हो। मसलन, हारमोनियमके जुदा हिस्सोंको विदेशसे मँगाकर हिन्दुस्तानमें जोड़ लेनेसे वह स्वदेशी नहीं कहा जा सकता। इसी तरह विलायती सूतका देशमें बना हुआ कपड़ा भी स्वदेशी नहीं हो सकता और न अधिकांश विदेशी साझेदारोंके बलपर बनी हुई किसी कम्पनी द्वारा बनाया गया कपड़ा ही स्वदेशी कहा जा सकता है।

३. प्रदर्शनीमें सब तरहकी स्वदेशी चीजें न रखी जायें। जिन चीजोंसे देशको सच्चा लाभ होता हो और जिन्हें मददकी जरूरत हो वे ही चीजें प्रदर्शनीमें रखी जानी चाहिए। अतएव प्रदर्शनीमें देशी सिगार, देशी शराब, देशी दवायें, देशी श्रृंगारकी चीजें, पेटैंट दवा, अश्लील साहित्य, मिलके कपड़े वगैरा कदापि नहीं रखे जा सकते।

४. चरखे और खादीको केन्द्र मानकर उसके चारों ओर प्रदर्शनीकी अन्य सब चीजोंको सजाया जाये।

इस तरहकी प्रदर्शनी राष्ट्रके लिए अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगी, और अगर इसके पीछे एक स्थायी व्यवस्थाका बल होगा तो इससे जनसाधारणको उत्तम आर्थिक महत्त्वकी शिक्षा मिलेगी। सिंधके कार्यकर्त्ता पिछली भूलोंसे सबक लें। उनके पास १२ महीनोंसे भी अधिकका समय है। उन्हें विचार करने या काम करनेसे इसलिए हाथ नहीं समेट लेना चाहिए कि कोई असंगत या गम्भीर या भारी घटना घटनेवाली है। किसी असाधारण घटनाकी आशा या आशंकासे रोजमर्राके और आवश्यक काम-काजको बन्द कर देना घबराहटकी निशानी है। जिस तरह हम अपना रोजका काम बिना रुकावटके, जीवनकी सबसे बड़ी घटना — मौत — होनेतक करते ही रहते हैं, इस

असाधारण घटनाके लिए भी हमें उसी तरह तैयार रहना चाहिए। अगर कांग्रेसके द्वारा ही पूर्ण स्वराज्य लेना हो तो कांग्रेसको अनुशासित, संगठित, ऐक्यबद्ध और गरीबों तथा करोड़ों मूक देशवासियोंकी जरूरतोंका विचार करके तदनुसार काम करनेवाली संस्था बनना चाहिए।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १६-१-१९३०

३८३. प्रस्तुत प्रश्न

काशी विद्यालयके एक राजनीतिके विद्यार्थीने निम्नलिखित प्रश्न पूछे हैं:[1]

सन् १९२२ में जो प्रश्न पूछे जाते थे, ठीक वैसे ही प्रश्न इस विद्यार्थीके हैं। परन्तु मुझे इनसे कोई आश्चर्य नहीं होता। प्रश्नोंके उत्तर प्रश्नकर्त्ताके अतिरिक्त थोड़े ही लोग पढ़ते हैं। उनमें से समाधान तो बहुत कमका होता है। कइयोंको ऐसे प्रश्नोत्तरोंका खयाल भी नहीं रहता। इसलिए जब-जब ऐसे प्रश्न पूछे जायें, तब-तब सम्पादकका कर्त्तव्य है कि वह उनका उत्तर देता रहे।

पहली बात त्याग-भावनाके अभावकी है। यह ठीक है और ठीक नहीं भी है। ठीक इसलिए है कि प्रश्नकर्त्ताके नजदीकी वायुमण्डलमें त्याग भावना प्रतीत नहीं होती है, और इस कारण वह यही समझता है कि देशभरमें त्याग-वृत्ति कम है; ठीक इसलिए नहीं है कि यदि त्याग-भावनाकी सर्वथा कमी होती तो देशका कुछ भी कार्य होना सम्भव न था। यह स्वीकार करते हुए भी कि त्यागकी मात्राके बढ़नेकी काफी गुंजाइश है, मेरा अनुभव मुझे बताता है कि देशमें त्याग-भावना है और वह बढ़ती जाती है। इसमें जरा भी शक नहीं कि पूर्ण स्वराज्य पानेके लिए त्यागकी मात्रा बहुत अधिक होनी चाहिए। खद्दर पहननेके सम्बन्धमें विद्यार्थीने जिस वैश्य वृत्तिका उल्लेख किया है, उसे आगे चलकर उदार और पारमार्थिक वृत्तिमें परिवर्तित होना पड़ेगा।

त्रिविध बहिष्कारके विषयमें विद्यार्थीने जो-कुछ लिखा है, उसमें मुझे अज्ञान ही अधिक प्रतीत होता है, कारण कि कांग्रेसने पाठशालाओं और अदालतोंके बहिष्कारका पुनरुद्धार नहीं किया है। परन्तु मेरा यह विश्वास अवश्य है कि तीनों बहिष्कार आवश्यक हैं। यह कहना कि कौंसिलोंमें कोई-न-कोई तो जायेगा ही, फिर कांग्रेसवाले क्यों न जायें, उचित नहीं। शराबकी दुकान खाली न रहेगी, तो क्या उसमें भी हमें जाना ही चाहिए? यदि हम कौंसिलोंको निरर्थक अथवा हानिकर मानते हों तो

१. यहाँ नहीं दिये जा रहे हैं। अपने पत्रमें पत्र-लेखकने लिखा था कि त्रिविध बहिष्कारमें जितने त्यागकी अपेक्षा है लोग उतना करनेको तैयार नहीं; यदि बहिष्कार सफल भी हो जाये तो भी उससे सरकार नहीं पलटी जा सकती, पर पूर्वमें किये गये सत्याग्रह आन्दोलन सफल रहे हैं, क्योंकि उनमें सरकारके अस्तित्वतकको चुनौती नहीं दी गई थी।

उनमें क्यों जायें? अब पाठशालाओंकी बात लीजिए। सरकारी पाठशालाओंको त्यागनेसे लड़के अशिक्षित रहेंगे, इस मान्यतामें मैं भयंकर आत्मवंचना पाता हूँ। अंग्रेज सरकारके आनेसे पहले लड़के अशिक्षित नहीं रहते थे। बात यह है कि अंग्रेजी सत्ताके भारतमें कायम होनेसे पूर्व प्राथमिक शिक्षा आजसे कहीं अधिक थी और उच्च प्रकारकी शिक्षा भी लोग काफी पाते थे। क्या आज हम इतने गिरे हुए हैं कि सरकारी शिक्षा बन्द कर देनेसे हमारी शिक्षा ही बन्द हो जायेगी? इस विद्यार्थीको जानना चाहिए कि आजकल भारतवर्षमें राष्ट्रीय विद्यापीठ मौजूद हैं और उनमें हजारों नवयुवक राष्ट्रीय शिक्षा पा रहे हैं। यदि लड़के तमाम सरकारी पाठशालाएँ छोड़ दें, तो भी उन्हें अशिक्षित रहनेकी आवश्यकता न पड़ेगी। हाँ, यह अवश्य है कि उन्हें गरीबोंके खूनसे सने हुए पैसोंसे निर्मित शानदार मकान पाठशालाके लिए नहीं मिलेंगे और न स्वतन्त्रता-नाशक शिक्षा मिलेगी।

अदालतोंके बहिष्कारके सम्बन्धमें यह स्वीकार करना चाहिए कि वह कठिन काम है। आज उनके प्रति जो मोह है, वह देशहितका घातक है। जहाँतक हो सकता है, इस मोहको हटानेकी कोशिश करके ही हमें सन्तुष्ट हो जाना पड़ता है। किन्तु यह भूलना नहीं चाहिए कि अदालतें प्रत्येक सल्तनतका प्रधान आश्रय स्थान होती हैं। इस कारण जितने वकील इन्हें छोड़ सकें, जितने वादी और प्रतिवादी इन्हें छोड़ें, उतना लाभ ही है। हमें तो अदालतोंकी प्रतिष्ठाको प्रतिदिन कम ही करना चाहिए।

अन्तमें यह जानना चाहिए कि प्रत्येक संस्था व मनुष्य अपनी प्रतिष्ठापर ही निर्भर रहता है। विधानसभा, पाठशाला, अदालत इत्यादिसे सरकार प्रतिष्ठा पाती है। बहिष्कारसे प्रतिष्ठा टूटती है। अतः उसे प्रजाके सम्मुख रखनेसे सरकारकी प्रतिष्ठा कम होगी। यह सर्वथा स्वाभाविक है। केवल बन्दूकके बलसे कोई सरकार कायम नहीं रह सकेगी।

सत्याग्रहसे बारडोलीके लोगोंने कमाया कम और गँवाया अधिक, यह कहना यथार्थ नहीं है। वे स्वयं जानते हैं कि सत्याग्रहसे उन्हें अत्यधिक लाभ पहुँचा है। यदि यह प्रत्यक्ष देखना हो तो बारडोली जाकर आज कोई भी देख सकता है। हाँ, स्वराज्य पानेके लिए अधिक कष्ट उठाना होगा, इसमें न दुःखकी बात है, न आश्चर्यकी।

हिन्दी नवजीवन, १६-१-१९३०

३८४. तार : जवाहरलाल नेहरूको

साबरमती
१६ जनवरी, १९३०

जवाहरलाल नेहरू
इलाहाबाद

तार मिले। आँकड़ोंकी फिरसे जाँच की गई। सही पाये गये। जरूरत हो तो छोटा-सा प्रस्ताव जोड़ा जा सकता है।

गांधी

[अंग्रेजीसे]

अ० भा० कां० क० फाइल सं० १६-ए, १९३०
सौजन्य : नेहरू स्मारक संग्रहालय और पुस्तकालय

३८५. तार : जवाहरलाल नेहरूको

साबरमती
१६ जनवरी, १९३०

जवाहरलाल नेहरू
इलाहाबाद

पत्र तार भेजे जानेके बाद मिला। जो प्रस्ताव तैयार किया है वह बिलकुल गैरजरूरी है। संशोधित घोषणा घुमा दी जानी चाहिए। तटकरकी औसत अमेरिका और जर्मनीकी ओरसे क्रमशः चौबीस और आठ गुना कम होनी चाहिए।

गांधी

[अंग्रेजीसे]

अ० भा० कां० क० फाइल सं० १६-ए, १९३०
सौजन्य : नेहरू स्मारक संग्रहालय और पुस्तकालय

३८६. पत्र : घनश्यामदास बिड़लाको

१६ जनवरी, १९३०

भाई घनश्यामदासजी,

आपके दोनों पत्र मीले हैं। आज कल मैं इतना काममें पड़ा हुं कुछ समय ही पत्रोत्तर देनेका नहीं रहता है। व्याख्यान पढ़कर अभिप्राय पीछे भेजुंगा। मालवीजी महाराजसे मेरी भी बात हो गई थी। यदि वे दूसरे दल वालोंको सहिष्णुता सीखा सकेंगे तो बहोत काम सुधर सकता है। इस बारेमें जो प्रयत्न कर सकते हैं कीजीये।

आपकी प्रवृत्तिके बारेमें मीलनेसे बातें करेंगे।

केशुके बारेमें मैं कुछ भी चिंता नहिं करता हुं।

आपका,
मोहनदास

सी० डब्ल्यू० ६१८१ से।
सौजन्य : घनश्यामदास बिड़ला

३८७. तार : जवाहरलाल नेहरूको

अहमदाबाद
१७ जनवरी, १९३०

जवाहरलाल नेहरू
इलाहाबाद

अभी सुबह तीन बजे आयात-कर मुद्रासे सम्बन्धित अनुच्छेद पढ़ रहा हूँ। अच्छा नहीं लग रहा है। यदि ज्ञापन अखबारोंको भेज नहीं दिया गया है तो सम्बन्धित अनुच्छेदको इस तरह कर दे "आयात कर और मुद्राके बारेमें बरती नई चालाकीसे किसान वर्गपर और ज्यादा बोझ पड़ गया है। हमारे आयातका अधिकांश भाग अंग्रेजों द्वारा तैयार किया हुआ माल होता है। अंग्रेजों द्वारा तैयार किये गये मालके प्रति सीमा शुल्कमें पक्षपात साफ दिखाई देता है। और वहाँसे उगाहे गये राजस्व का इस्तेमाल आम लोगोंका बोझ कम करनेके लिए नहीं परन्तु अत्यन्त खर्चीले प्रशासनको कायम रखनेके लिए होता है। मुद्रा विनिमयकी औसतको ठीक बैठानेमें

और भी स्वेच्छाचारितासे काम लिया गया है — जिसका परिणाम यह हुआ है कि लाखोंकी मुद्रा देशसे बाहर चली गई है[1]।"

गांधी

[अंग्रेजीसे]

अ० भा० कां० क०, फाइल सं० १६-ए, १९३०
सौजन्य: नेहरू स्मारक संग्रहालय और पुस्तकालय

३८८. भाषण: छात्रालयमें रहनेवाले छात्रोंके सम्मेलन, साबरमतीमें[2]

१७ जनवरी, १९३०

छात्रालयकी मेरी कल्पना यह है कि छात्रालय एक कुटम्बकी तरह हो, उसमें रहनेवाले गृहपति और छात्र कुटुम्बियोंकी तरह रहते हों, गृहपति छात्रोंके माता और पिता दोनोंके स्थानकी पूर्ति करें। यदि गृहपतिके साथ उसकी पत्नी भी हो, तो पति-पत्नी दोनों मिलकर माता-पिताकी तरह बरतें। आज तो हमारे यहाँ स्थिति करुणाजनक हो रही है। गृहपति ब्रह्मचर्यका पालन न करता हो, तो उसकी पत्नी छात्रालयमें माँका स्थान हरगिज नहीं ले सकती। उसे शायद पतिका छात्रालयमें काम करना ही पसन्द न आये और शायद आये तो इसीलिए कि बदलेमें रुपये मिलते हैं। वह छात्रालयमें से थोड़ा घी चुरा लाये, तो भी पत्नी खुश होगी कि चलो, मेरे बच्चोंको ज्यादा घी खानेको मिलेगा। मेरे कहनेका मतलब यह नहीं है कि गृहपति ऐसे ही होते हैं, बल्कि यह है कि आज हमारे सारे कामकाज इसी तरहकी अस्त-व्यस्त हालतमें हैं।

मेरी कल्पनाके छात्रालय आज गुजरातमें या भारतमें विरल ही होंगे। काफी हों तो मुझे उनके बारेमें मालूम नहीं है। गुजरातके बाहर तो हिन्दुस्तानमें ये संस्थाएँ वैसे भी बहुत कम हैं। छात्रालयकी संस्था गुजरातकी खास देन है। इसके कई कारण हैं। गुजरात व्यापारियोंका देश है। जो व्यापारसे धन कमाते हैं, उन्हें शौक होता है कि अपनी जातिके बच्चोंके लिए छात्रालय खोलें। 'छात्रालय' जैसा बड़ा नाम तो बादमें पड़ा। उन बेचारोंने तो 'बोर्डिंग' ही कहा था; और लड़कोंके खाने-पीनेका प्रबन्ध कर देनेके सिवा उनका और कोई विचार नहीं था। बादमें जब इन बोर्डिंगोंमें संस्कारवान गृहपति आये, तब उन्होंने इनमें भावनाका समावेश प्रारम्भ किया।

मैं स्वयं विद्यालयसे छात्रालयको ज्यादा महत्व देता हूँ। ऐसी बहुत-सी बातें, जो स्कूलमें नहीं सीखी जा सकतीं, छात्रालयमें सीखी जा सकती हैं। शालाओंमें थोड़ा-बहुत बौद्धिक शिक्षण भले ही दिया जाता हो, किन्तु वहाँ जो-कुछ पढ़ाया जाता है

१. अन्तिम ज्ञापनमें इसे बदल दिया गया था। देखिए "२६ को यह याद रखिए", २३-१-१९३०।

२. छात्रोंके लिए आदर्श छात्रावासके बारेमें गांधीजीका क्या दृष्टिकोण है, इसकी जानकारीके लिए छात्रावासके प्रबन्धकों (सुपरिंटेंडेंट्स)के निवेदनपर यह भाषण दिया गया था।

विद्यार्थी उसे भी आत्मसात नहीं कर पाते। बस इतना ही होता है कि इच्छा न रहते हुए भी थोड़ी-बहुत बातें दिमागमें रह जाती हैं। यहाँ मैं विद्यालयोंका अन्धकारमय पक्ष ही सामने रख रहा हूँ। लड़कों और लड़कियोंका छात्रालयमें जैसा विकास किया जा सकता है, उतना केवल विद्यालयमें नहीं हो सकता। मेरी आखिरी कल्पना तो यह है कि छात्रालय ही विद्यालय हो।

सेठोंने जो छात्रालय खोले, वे दूसरी ही तरहके थे। वे स्वयं छात्रालय खोलकर दूर रहे। गृहपति भी इतनेसे ही अपना काम पूरा हुआ समझ लेता था कि लड़के खा-पीकर स्कूल-कॉलेज चले जायें। सेठों और गृहपतियों दोनोंने दिलचस्पी ली होती, तो छात्रालय आज-जैसे न रहते। अब हमें परिस्थितिको देखकर यह सोच लेना है कि उन्हें किस तरह सुधारा जा सकता है। यदि हम इरादा कर लें तो इन संस्थाओंकी शक्ल बहुत-कुछ बदल सकते हैं। जो बात स्कूलोंमें नहीं की जा सकती, वह छात्रालयोंमें सम्भव है। गृहपति सिर्फ हिसाब रखनेवाला ही न रहे, बल्कि इसकी भी जाँच करे कि विद्यार्थी स्कूलमें जाकर क्या सीखता है। वह विद्यार्थीको पुत्र या अपना शिष्य मानकर उसके विषयमें सचिन्त बना रहे। आज तो बहुत-सी जगहोंका ऐसा हाल है कि गृहपतिको यह भी पता नहीं रहता कि विद्यार्थी क्या खाते-पीते हैं।

छात्रालयोंमें जो एक गम्भीर अराजकता फैली हुई है, उसकी तरफ मैं खास तौरपर ध्यान खींचना चाहता हूँ। इस चीजकी हमेशा उपेक्षा की जाती है। यह समझकर कि हमारे छात्रालयकी बदनामी होगी, गृहपति लोग उसे जाहिर करते शरमाते हैं और छिपाते हैं। वे सोचते हैं कि हमारे विद्यार्थी जो बुरा काम करते हैं वह खुल जायेगा, अतः वे माता-पिताको भी इसकी खबर नहीं देते। किन्तु इस तरह भी बात नहीं छिपती। गृहपति अपने मनमें यह समझते होंगे कि कोई नहीं जानता, किन्तु बदबू तो देखते-देखते फैल जाती है। अनुभवी गृहपति समझ गये होंगे कि मैं क्या कहना चाहता हूँ। गृहपतियोंको मैं इस बारेमें चेतावनी देता हूँ। वे सावधान रहें, अपना धर्म अच्छी तरह समझें। जो छात्रालयको शुद्ध न रख सकें, वे इस्तीफा देकर इस कामसे अलग हो जायें। यदि छात्रालयमें रहकर लड़के निकम्मे बनें, उनमें दृढ़ता न रहे, उनके विचार तितर-बितर हो जायें, बुद्धिके स्रोत सूख जायें, तो इस सबसे गृहपतिकी अयोग्यता सूचित होती है।

मैं जो कहता हूँ उसकी बहुत-सी मिसालें दे सकता हूँ। मेरे पास विद्यार्थियोंके ढेरों पत्र आते हैं। बहुत-से गुमनाम होते हैं और उन्हें मैं रद्दीकी टोकरीमें डाल देता हूँ, किन्तु उनका सार समझ लेता हूँ। बहुत-से भोले-भाले विद्यार्थी अपना नाम-पता देकर मुझसे उपाय पूछते हैं। जब कुटेव नई-नई पड़ती है, तब गृहपतिकी तरफसे उन्हें उसे छोड़नेमें सहारा नहीं मिलता, उलटे कभी-कभी उस दिशामें उत्तेजन मिलता है। फिर जब उनकी आँखें खुलती हैं, तब उनकी दृढ़ता नष्ट हो चुकी होती है, मनपर काबू नहीं रह जाता और मुझ-जैसा कोई व्यक्ति सलाह दे तो उसपर चलनेकी शक्ति नहीं रह जाती।

गृहपतिका काम करनेमें समर्थ व्यक्ति वेतन बहुत माँगते हैं, वे कहते हैं कि हमें अपनी विधवा बहनोंकी परवरिश करनी पड़ती है, लड़के-लड़कियोंके शादी-ब्याहमें

खर्च करना पड़ता है। इस तरहके गृहपति योग्य हों, तो भी हमें उन्हें छोड़ना पड़ेगा। कुछ गृहपति ऐसे भी होते हैं, जो यह मानते हैं कि हमारा तो काम ही यह है। उन्हें दूसरा काम पसन्द ही नहीं आता। कुछ ऐसे लोग भी मिलते हैं, जो गुजारेके योग्य लेकर काम करनेको तैयार रहते हैं।

मैं जो कहता हूँ उससे स्पष्ट होगा कि गृहपतिको लगभग निर्दोष पुरुष होना चाहिए। जो व्यक्ति विद्यार्थियोंपर असर डाल सके, उनके मनमें जगह बना सके, वही गृहपति बन सकता है। ऐसा गृहपति न मिले तो लड़कोंको इकट्ठा करना भयंकर है।

यह तो गृहपतियोंकी बात हुई। अब छात्रोंसे दो शब्द। छात्र अज्ञानवश गृहपतिको नौकर मान लें और यह सोचने लगें कि उनका सब काम नौकर ही करेंगे और वे स्वयं हाथसे कुछ भी नहीं करेंगे, तो यह उनकी भूल होगी। छात्रोंको जानना चाहिए कि छात्रालय उनके ऐश-आरामके लिए नहीं है। वे यह न सोचें कि छात्रालयको वे रुपया देते हैं। वे जो-कुछ देते हैं, उससे ही खर्च पूरा नहीं हो जाता। छात्रालय खोलनेवाले सेठ गलती करके यह मान लेते हैं कि विद्यार्थी लाड़-प्यारसे रखनेसे अच्छे बनते हैं और उन्हें आराम देना धर्म है। इस समझके कारण वे विद्यार्थियोंको सहूलियतें देते हैं, किन्तु इससे अकसर धर्मके बजाय पाप पल्ले पड़ता है। इससे विद्यार्थी उलटे बिगड़ते हैं और परावलम्बी बनते हैं। जो विद्यार्थी बुद्धिसे काम लेता है, वह यह हिसाब लगा लेगा कि छात्रालयके जिस मकानमें वह रहता है, उसका किराया कितना है, नौकर-चाकरों और गृहपतिकी तनख्वाह कितनी है? यह सब छात्रोंसे नहीं लिया जाता। वे तो सिर्फ खानेका खर्च देते हैं। बहुत-से छात्रालयोंमें तो खाना, कपड़ा, पुस्तकें वगैरा भी मुफ्त दी जाती हैं। दान देनेवाले लोग यह लिखा लेते हों कि पढ़-लिखकर ये लड़के देशसेवा करेंगे तो भी ठीक है, परन्तु वे इतने उदार होते हैं कि ऐसा भी कुछ नहीं करते। परन्तु छात्रोंको समझ लेना चाहिए कि वे जो खाते हैं उसका बदला नहीं देंगे, तो कहा जायेगा कि चोरीका धन खाते हैं। बचपनमें मैंने अखा भगतकी कविता पढ़ी थी:

'काचोपारो खावो अन्न, तेवुं छे चोरीनुं धन।'[1]

चोरीका माल खानेसे छात्र वीर नहीं बनते, दीन बनते हैं। तब छात्र यह निश्चय करें कि हम भीखका अन्न नहीं खायेंगे। वे छात्रालयकी सुविधाओंका फायदा भले ही उठायें, किन्तु इस सम्मेलनसे लौटकर वे तत्काल गृहपतिसे सारे नौकरोंको विदा कर देनेकी प्रार्थना करें। या नौकरोंपर दयाका भाव हो तो उनकी नौकरी रहने दें, किन्तु अपना सारा काम तो स्वयं ही करें। पाखाना साफ करनेतक सारे काम अपने ही हाथोंसे कर लेनेका निश्चय करें। तभी आगे चलकर वे अच्छे गृहस्थ बन सकेंगे, देशकी सेवा कर सकेंगे। आज तो हमारे लोग ईमानदारीके धन्धेसे अपना, स्त्रीका या माँ का गुजारा करनेकी भी ताकत नहीं रखते।

यदि कोई कहीं नौकरी मिलनेपर यह घमण्ड करता हो कि मैं ईमानदारीका धन्धा करता हूँ, तो उसे यह विचार भी करना चाहिए कि मिलमें गुमाश्तेका काम

१. चोरीका धन कच्चा पारा खानेके समान है।

करनेपर मुझे ७५ रुपये मिलते हैं और वहीं उस मजदूरको बड़े कुनबेवाला होनेपर भी सिर्फ १२ रुपये मिलते हैं। ऐसा क्यों? यदि वह यह सोचेगा तो फौरन समझ जायेगा कि बड़ी तनख्वाह लेना योग्य नहीं है, यह रोजी ईमानदारीकी नहीं है और शहरोंमें हम सब चोरीका ही अन्न खाते हैं। हम तो डाकुओंके एक बड़े जत्थेके कमीशन एजेंट हैं। लोगोंसे हम जो-कुछ लेते हैं, उसका ९५ फीसदी भाग विलायत भेज देते हैं। ऐसा काम करके कमाना भी न कमानेके बराबर है।

मैंने आज जो-कुछ कहा है, उसपर विश्वास हो तो आप आजसे ही उसपर अमल करने लगें।

छात्रालयको तो ऋषिकुल होना चाहिए। वहाँ सब ब्रह्मचारी ही रहने चाहिए। जो ब्याहे हुए हों वे भी वानप्रस्थ धर्मका पालन करें। यदि आप ऐसी आदर्श स्थितिमें दस-पाँच साल रहें, तो आप इतने समर्थ बन सकते हैं कि भारतके लिए जो करना चाहें, कर सकते हैं। आज स्वराज्यका यज्ञ शुरू हो गया है। किन्तु भिक्षाकी आशा रखनेवाले लोग इसमें क्या भाग लेंगे? मुझ-जैसा शायद कोई निकल पड़े, किन्तु मेरे पास तो ज्वार-बाजरेकी रोटियाँ हैं और आपको तो साँझ पड़ते ही पकौड़ियाँ चाहिए। यदि किसीके मनमें ऐसा गर्व हो कि समय आनेपर हम यह सब कर सकते हैं, आजसे ही उसकी चिन्ता करनेकी क्या जरूरत है — तो ऐसा सोचने-कहनेवाले मैंने बहुत देखे हैं। वे समय आनेपर कुछ नहीं कर पाते। जेलमें जानेवाले वहाँ कैसा बरताव करते हैं, इसका हमें अनुभव हो चका है। सन् १९२०-२१में जो जेल गये, उन्होंने खाने-पीनेके मामलेमें कितना झगड़ा किया और कैसे-कैसे काम किये, यह सबको मालूम है। उससे हमें शरमाना पड़ा। यह नहीं मानना चाहिए कि इच्छा करते ही त्याग करना आ जाता है। वह बहुत प्रयत्न करनेसे ही आता है। जिस आदमीमें त्यागकी इच्छा है, परन्तु जिसने छोटे-छोटे रसोंको जीतनेका प्रयत्न नहीं किया, उसे वे ऐन मौकेपर दगा देते हैं। यह बात अनुभवसे सिद्ध हो चुकी है। यदि आज सब छात्र समझनेका प्रयत्न करें, तो आप देखेंगे कि मैंने जो बातें कही हैं, वे सादी हैं और उनपर आसानीसे अमल किया जा सकता है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २३-२-१९३०

३८९. भाषण: साबरमती आश्रमकी प्रार्थना सभामें[1]

[१७ जनवरी, १९३० या उससे पूर्व][2]

मुझे खुशी है कि आप सब लोग चाहते हैं कि मैं प्रार्थनाके अर्थ और उसकी आवश्यकताके बारेमें कुछ कहूँ। मैं मानता हूँ कि प्रार्थना धर्मका प्राण है और सार है। और इसलिए प्रार्थना मनुष्यके जीवनका मर्म होनी चाहिए, क्योंकि कोई आदमी धर्मके बिना जी ही नहीं सकता। कुछ लोग हैं जो अपनी बुद्धिके अहंकारमें कह देते हैं कि उन्हें धर्मसे कोई सरोकार नहीं। मगर यह तो ऐसा ही है जैसे कोई मनुष्य कहे कि वह साँस तो लेता है मगर उसकी नाक नहीं है। बुद्धिसे कहिए या स्वभावसे अथवा अन्ध-विश्वाससे कहिए, मनुष्य दिव्य तत्वसे अपना कुछ-न-कुछ नाता स्वीकार करता ही है। घोरसे-घोर नास्तिक या अनीश्वरवादी भी किसी नैतिक सिद्धान्तकी आवश्यकताको मानता है और उसके पालनमें कुछ-न-कुछ भलाई और उसका पालन न करनेमें बुराई समझता है। ब्रैडलॉ, जिनकी नास्तिकता मशहूर है, सदा अपने आन्तरिक दृढ़ विश्वासको घोषित करनेका आग्रह रखते थे। उन्हें इस प्रकार सच कहनेके कारण अनेक कष्ट उठाने पड़े, परन्तु इसमें उन्हें आनन्द आता था और वे कहते थे कि सत्य स्वयं अपना पुरस्कार है। उन्हें सत्यका पालन करनेसे होनेवाले आनन्दका बिलकुल भान न हो, सो नहीं था, परन्तु यह आनन्द सांसारिक बिलकुल नहीं होता, यह ईश्वरके साथ अपने सम्बन्धकी अनुभूतिसे पैदा होता है। इसीलिए मैंने कहा है कि जो आदमी धर्मको नहीं मानता वह भी धर्मके बिना नहीं रह सकता और नहीं रहता।

अब मैं दूसरी बातपर आता हूँ। वह यह है कि प्रार्थना जैसे धर्मका सबसे मार्मिक अंग है वैसे ही मानव-जीवनका भी। प्रार्थना या तो याचना-रूप होती है या व्यापक अर्थमें वह ईश्वरसे भीतर लौ लगाना होती है। दोनों ही सूरतोंमें अन्तिम परिणाम एक ही होता है। जब वह याचनाके रूपमें हो तब भी वह याचना आत्माकी सफाई और शुद्धिके लिए, उसके चारों ओर लिपटे हुए अज्ञान और अन्धकारके आवरणोंको हटानेके लिए होनी चाहिए। इसलिए जो अपने भीतर दिव्य ज्योति जगानेको तड़प रहा हो उसे प्रार्थनाका आसरा लेना चाहिए। परन्तु प्रार्थना शब्दों या कानोंका व्यायाम-मात्र नहीं है, खाली मन्त्र-जाप नहीं है। आप कितना ही राम नाम जपिए, अगर उससे आत्मामें भाव-संचार नहीं होता तो वह व्यर्थ है। प्रार्थनामें शब्दहीन हृदय हृदयहीन शब्दोंसे अच्छा होता है। प्रार्थना स्पष्ट रूपसे आत्माकी

१. जैसा कि महादेव देसाईने अपने विवरणमें बताया है, गांधीजीने यह भाषण छात्रावासके लड़कोंकी परिषद्में भाग लेनेवाले विद्यार्थियोंके समक्ष दिया था।

२. जिस राष्ट्रीय शिक्षा-सप्ताहके दौरान सम्मेलनमें एकत्र छात्रोंके समक्ष यह भाषण दिया गया था उसका समापन १७-१-१९३० को हुआ था।

व्याकुलताकी प्रतिक्रिया होनी चाहिए। जैसे कोई भूखा आदमी मनचाहा भोजन पाकर सुखका अनुभव करता है, ठीक वैसे ही भूखी आत्माको हार्दिक प्रार्थनामें आनन्द आता है। यह मैं अपने और साथियोंके यत्किंचित अनुभवके आधारपर कहता हूँ कि जिसे प्रार्थनाके जादूकी प्रतीति हुई है वह लगातार कई दिनतक आहारके बिना तो रह सकता है, परन्तु प्रार्थनाके बिना एक क्षण भी नहीं रह सकता। कारण, प्रार्थनाके बिना भीतरी शान्ति नहीं मिलती।

कोई कहेगा कि अगर यह बात है तो हमें अपने जीवनके हर क्षणमें प्रार्थना करते रहना चाहिए। निस्संदेह बात यही है; परन्तु हम तो भूलमें पड़े हुए प्राणी हैं; एक क्षणके लिए भी भगवानसे भीतर लौ लगानेके लिए बाहरी विषयोंसे हटकर अन्तर्मुख होना हमें कठिन जान पड़ता है। तब हर क्षण ईश्वरसे लौ लगाये रखना तो हमारे लिए असम्भव ही होगा। इसलिए हम कुछ समय नियत करके उस समय थोड़ी देरके लिए सांसारिक मोहोंको छोड़ देनेका गम्भीर प्रयत्न करते हैं, या कहिए कि इन्द्रियातीत रहनेकी दिली कोशिश करते हैं। आपने सूरदासका भजन[1] सुना है। यह ईश्वरसे मिलनेके लिए भूखी आत्माकी करुण पुकार है। हमारे पैमानेसे वे एक सन्त थे, परन्तु उनके अपने पैमानेसे वे घोर पापी थे। आध्यात्मिक दृष्टिसे वे हमसे मीलों आगे थे, परन्तु उन्हें ईश्वर-वियोगकी पीड़ाकी इतनी ज्यादा अनुभूति थी कि उन्होंने आत्मग्लानि और निराशाके स्वरमें अपनी पीड़ा इस तरह व्यक्त की।

मैंने प्रार्थनाकी आवश्यकताकी बात कही है और उसके द्वारा प्रार्थनाके सार पर भी प्रकाश डाला है। हमारा जन्म अपने मानव बन्धुओंकी सेवाके लिए हुआ है और यदि हम पूरी तरहसे जाग्रत न रहें तो यह काम हम अच्छी तरह नहीं कर सकते। मनुष्यके हृदयमें अन्धकार और प्रकाशकी शक्तियोंमें सतत संघर्ष होता रहता है। अत: जिसके पास प्रार्थनाकी डोरका सहारा नहीं है वह अन्धकारकी शक्तियोंका शिकार हो जायेगा। प्रार्थना करनेवाला आदमी अपने मनमें शान्तिका अनुभव करेगा और संसारके साथ भी उसका सम्बन्ध शान्तिका होगा। जो मनुष्य प्रार्थनापूर्ण हृदयके बिना सांसारिक कर्म करेगा वह स्वयं भी दुःखी रहेगा और संसारको भी दुखी करेगा। इसलिए मनुष्यकी मरणोत्तर स्थितिपर प्रार्थनाका जो प्रभाव होता है, उसके सिवा भी प्रार्थनाका मनुष्यके पार्थिव जीवनमें असीम महत्व है। हमारे दैनिक कार्योंमें व्यवस्था, शान्ति और स्थिरता लानेका एकमात्र उपाय प्रार्थना है। आश्रमके अन्तेवासी हम लोग सत्यकी खोजमें और सत्यपर जोर देनेके लिए यहाँ आये और हमने प्रार्थना की क्षमतामें विश्वास करनेकी बात कही, लेकिन अभीतक प्रार्थनाको परमावश्यक विषय नहीं बनाया है। हम अन्य मामलोंपर जितना ध्यान देते हैं उतना इसपर नहीं देते। एक दिन मेरी निद्रा भंग हुई और मैंने अनुभव किया कि इस मामलेमें अपने कर्त्तव्यके प्रति मैं बहुत ही लापरवाह रहा हूँ। इसलिए मैंने कठोर अनुशासनके साधनोंका सुझाव दिया है और आशा है कि हम बिगड़नेके बजाय सुधरेंगे ही। इस मूलभूत

१. मो सम कौन कुटिल खल कामी।
जिन तनु दियो ताहि बिसरायो ऐसो नमकहरामी॥

वस्तुको सँभाल लिया जाये तो और सब बातें अपने-आप सँभल जायेंगी। किसी वर्गका एक कोण सम कर दिया जाये तो दूसरे कोण अपने-आप सम हो जाते हैं।

इसलिए दिनका काम प्रार्थनासे शुरू कीजिए और उसमें इतनी आत्मा उँड़ेलिए कि वह शामतक आपके साथ बनी रहे। दिनका अन्त भी प्रार्थनाके साथ कीजिए, ताकि आपकी रात शान्तिपूर्ण तथा स्वप्नों और दु:स्वप्नोंसे मुक्त रहे। प्रार्थनाके स्वरूपकी चिन्ता न कीजिए। स्वरूप कुछ भी हो, वह ऐसा होना चाहिए, जिससे भगवानके साथ हमारे मनकी लौ लग जाये। इतना ध्यान रखिए कि स्वरूप कैसा भी हो, मगर आपके मुँहसे प्रार्थनाके शब्द निकलते समय आपका मन इधर-उधर न भटकने पाये।

मैंने जो-कुछ कहा है, यदि वह आपने हृदयंगम कर लिया है तो आपको तबतक चैन नहीं आयेगा जबतक कि आप अपने छात्रालयके अधिकारियोंको अपनी प्रार्थनामें दिलचस्पी लेने और उसे अनिवार्य बना देनेको विवश नहीं कर देंगे। स्वत: स्वीकार किये गये संयममें कोई जबर्दस्ती नहीं होती। जो मनुष्य संयमसे मुक्तिका या भोगका रास्ता चुनता है, वह विषय-विकारोंका क्रीत दास ही बनेगा, और जो अपनेको नियमोंसे बाँध लेता है, वह मुक्त हो जाता है। विश्वके सब पदार्थोंको, जिनमें सूर्य, चन्द्र और तारे भी शामिल हैं, कुछ नियमोंका पालन करना पड़ता है। इन नियमोंके नियन्त्रणके बिना दुनियाका काम क्षणभर भी नहीं चल सकता। आपका जीवनोद्देश्य अपने मानव-बन्धुओंकी सेवा करना है। यदि आप अपनेपर किसी-न-किसी तरहका अनुशासन नहीं लगायेंगे तो आपका सर्वनाश ही हो जायेगा। प्रार्थना एक प्रकारका आवश्यक आध्यात्मिक अनुशासन है। अनुशासन और संयम ही हमें पशुओंसे अलग करता है। अगर हम सिर ऊँचा करके चलनेवाले मनुष्य होना चाहते हैं और चौपाये नहीं बनना चाहते, तो हमें यह बात समझ लेनी चाहिए और अपने-आपको स्वेच्छासे अनुशासन और संयममें रखना चाहिए।

[अंग्रेजीसे]
यंग इंडिया, २३-१-१९३०

३९०. पत्र : वसुमती पण्डितको

आश्रम
साबरमती
१८ जनवरी, १९३०

चि० वसुमती,

तुम्हारा पत्र मिला। तुम अपनी दैनन्दिनी जैसे ठीक समझो वैसे लिखो। यह आश्चर्यकी बात है कि अभीतक तुम्हारा कब्ज गया नहीं। क्या तुम्हें गोलियाँ खानी पड़ती हैं? तुम्हारी लिखावटमें सुधार तो हुआ है किन्तु अब भी सुधारकी काफी गुंजाइश है।

यहाँ ठसाठस लोग भरे हुए हैं।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (एस० एन० ९२७४)की फोटो-नकलसे।

३९१. पत्र : मथुरादास त्रिकमजीको

१८ जनवरी, १९३०

जिस जमीनका ब्यौरा तुमने दिया है वह ब्यौरा तो आकर्षक है किन्तु पानीकी कमीकी बात अखरती है। और पानीकी व्यवस्था भी हो जाये तो भी इस वर्ष किसी नये काममें हाथ लगानेकी इच्छा नहीं है। जिस लड़ाईकी कल्पना मेरे मनमें पनप रही है वह इतनी दारुण है कि यह नहीं कहा जा सकता कि उसके अन्तमें क्या होगा और क्या नहीं। ऐसा भी हो सकता है कि आखिरकार मुझे कोई रास्ता ही न सूझे और मैं हाथपर हाथ धरकर बैठ जाऊँ। किन्तु ७५ प्रतिशत सम्भावना तो इसी बातकी है कि मेरे अन्तरकी पुकार मुझे बैठे रहनेको नहीं, बल्कि जूझनेको कहेगी।

बम्बई लौटनेपर तुमने कहाँ ठहरनेका निश्चय किया है? तुम्हें जो लाभ हुआ है वह तभी टिक सकता है जब कि तुम उपनगरमें कोई छोटा-सा बंगला लेकर रहो। किन्तु इसकी क्या जरूरत है? क्या किसी अच्छे गाँवके पास छोटा-सा घर लेकर नहीं रह सकते? तुमसे जितनी हो सके, गाँवकी उतनी सेवा भी करना।

[गुजरातीसे]

बापुनी प्रसादी

३९२. पत्र : बनारसीदास चतुर्वेदीको

१९ जनवरी, १९३०

भाई बनारसीदास,

प्रवासी भारतीयोंके उद्यममें और उनके व्यवहारमें आज कुछ परिवर्तन करनेकी आवश्यकता नहिं देखता हुं। परंतु इस बारेमें चर्चा अनावश्यक है।

डीनबंधुके विरोधमें अमेरिकामें जो कुछ हुआ उसका मुझे पूरा पता है।

आपका,

मोहनदास

श्रीयुत बनारसीदास चतुर्वेदी
कलकत्ता

जी० एन० २५६१ की फोटो-नकलसे।

३९३. पत्र : सतीशचन्द्र दासगुप्तको

२० जनवरी, १९३०

प्रिय सतीश बाबू,

या तो पोस्टकार्ड लिख दूँ या फिर लिख ही नहीं सकूँगा। मुझे आपका पत्र मिला। यह अच्छी बात है कि अब आप उत्कल खादी व्यापारमें पूरी तरह पैठते जा रहे हैं। जब मैं उत्कलमें था, मैंने निरंजन बाबूकी उपस्थितिमें कार्यकर्त्ताओंसे उनकी सुस्ती और उनके अज्ञानके बारेमें बात की थी। मुझे आशा है कि आप दोनों ठीक होंगे। क्या आपने अभय आश्रमको २५०० रुपये नहीं भेजे हैं? क्या आपके पास रकम है? मुझे अभय आश्रमसे एक स्मरण पत्र आया है।

आपका,
बापू

श्रीयुत सतीशचन्द्र दासगुप्त
खादी प्रतिष्ठान
सौदपुर

अंग्रेजी (जी० एन० १६१४)की फोटो-नकलसे।

३९४. पत्र : हरिभाऊ उपाध्यायको

२० जनवरी, १९३०

भाई हरिभाऊ,

तुम्हारा पत्र मिला। यदि सभाएँ करनेपर पाबन्दी लगा दी जाये तो देशी रियासतों या उन क्षेत्रोंमें, जहाँ पाबन्दी लगी हुई है, सभाएँ न करना ही उचित होगा।

'अर्जुन' में जो छपा है, उसके बारेमें क्या किया जा सकता है? तुम्हारा क्या विचार है?

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ६०७१)की नकलसे।
सौजन्य : हरिभाऊ उपाध्याय

३९५. पत्र : गंगाबहन वैद्यको

मौनवार [२० जनवरी, १९३०][1]

चि० गंगाबहन,

निम्नलिखित बातोंके सम्बन्धमें भोजनके समय, दोपहरको या साँझको अथवा जब तुम्हें समय मिले, मुझे जानकारी देना।

चरखा द्वादशीके[2] दिन तुमने चूड़ियाँ किसको दी थीं? किसलिए दी थीं?

दोपहरको बिस्कुट किन्हें दिये जाते हैं? यदि सम्बन्धित व्यक्ति घी और शक्कर न खाते हों तो वे उन्हें कितनी मात्रामें दिये गये थे?

क्या आजकल बच्चोंकी कताईकी कक्षाकी कोई बहन देखरेख करती है? यदि न करती हो तो आजसे ही किसीको इसके लिए भेजना चाहिए। उक्त कक्षा किस समय और कितनी देर चलती है?

[गुजरातीसे]

बापुना पत्रो – ६ : गं० स्व० गंगाबहेनने

३९६. पत्र : शारदाबहन शाहको

आश्रम
साबरमती
२१ जनवरी, १९३०

चि० शारदा,

तुम्हारा मूल नाम तो बड़ा सुन्दर है। जो शारदा होगी वह इशारेसे ही यह समझ जायेगी कि हितेच्छु कोई प्रतिबन्ध क्यों लगा रहे हैं। प्रतिबन्धका एक कारण तो तुम तीनों बहनोंने दिया है। सभीने एक ही ढंगका पत्र लिखा है, किन्तु उस एक ही पर तीनोंने हस्ताक्षर न करके तीन अलग-अलग पत्र लिखे और इस तरह न केवल जनताका समय नष्ट किया बल्कि सार्वजनिक धनका भी दुरुपयोग किया है। सत्याग्रहियोंके पास न तो अपना पैसा होता है और न उनका अपना कोई समय ही। वे तो अपना सब-कुछ कृष्णार्पण कर देते हैं। नामके खिलाफ दूसरी बात यह है[3] कि बुद्धिमती स्त्रियाँ आवश्यक पत्र पेंसिलसे नहीं लिखतीं। जहाँसे मेरी हस्तलिपि

१. साधन-सूत्रके अनुसार।

२. विक्रम सम्वत्‌के अनुसार भाद्र बदी द्वादशीको गांधीजीका जन्म-दिन पड़ता है। गुजरातमें गांधीजीका जन्म-दिन "चरखा द्वादशी" के रूपमें मनाया जाता था।

३. इससे आगे पत्र गांधीजीकी लिखावटमें है।

शुरू होती है वहाँ इस पत्रको उठाकर रख दिया गया था, जिसे मैं आज २१ तारीखको पूरा कर रहा हूँ।

सच बात तो यह है कि तुम्हारे लिए कुछ धीरज रखना आवश्यक है। सभी जगह सबका कूद पड़ना ठीक नहीं होता। अपने इन्हीं विचारोंके कारण मैंने तार नहीं दिया।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (सी० डब्ल्यू० २८४०)की फोटो-नकलसे।
सौजन्य : फूलचन्द शाह

३९७. पत्र : देवचन्द पारेखको

२१ जनवरी, १९३०

भाईश्री देवचन्दभाई,

आपका पत्र मिला। मैं यह अवश्य मानता हूँ कि यदि मोरवीके ठाकुर साहब बीच-बचाव करनेको कहें तो सत्याग्रह धीमा कर ही देना चाहिए। समझमें नहीं आता कि मणिलाल इतना उतावला क्यों हो रहा है। फिर भी फूलचन्द तो साथमें है ही। समय-समयपर मुझे लिखते रहें। यदि आप जा सको तो मालिया तक पहुँच ही जाना।

बापूके वन्देमातरम्

गुजराती (जी० एन० ५७२४)की फोटो-नकलसे।

३९८. पत्र : कुँवरजी पारेखको

बुधवार [२२ जनवरी, १९३०][1]

चि० कुँवरजी,

रामी और बच्चे कुशलपूर्वक यहाँ पहुँच गये। तुम्हारा पत्र वीरमगाँवकी गाड़ी निकल जानेके बाद मिला, इसलिए मैं वहाँ किसीको नहीं भेज सका। अपनी हालतके बारेमें मुझे समय-समयपर लिखते रहना।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (एस० एन० ९७१४)की फोटो-नकलसे।

१. डाककी मुहरसे।

३९९. पत्र : हरिइच्छा देसाईको

बुधवार [२२ जनवरी, १९३०][1]

चि० हरिइच्छा,

तुम तीनों बहनोंके पत्र पढ़कर मुझे प्रसन्नता हुई। समय-समयपर मुझे इसी प्रकार लिखती रहना। मैं वहाँ आऊँ, इसकी अपेक्षा यदि तुम सब यहाँ आओ तो? तुम्हारी पढ़ाई-लिखाई कैसी चल रही है? कताई तो छोड़ी ही नहीं जा सकती। कताई छोड़नेकी बात भला कैसे सोची जा सकती है?

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (जी० एन० ७४६२)की फोटो-नकलसे।

४००. पत्र : बनारसीलाल बजाजको

२२ जनवरी, १९३०

चि० बनारसीलाल,

जमनालालजीका खत है। चि० रुक्मिणीके पितामहका भी खत है। शुभ मुहूर्त फा० सु० २ का है। इस रोज मार्च २ तारीख रविवार है। यही लग्नका दिन निर्धारित मानो। लग्न आश्रममें हि होंगे। यह तो ठीक है न? कुछ भी लीखना है तो लीखीये।

बापुके आशीर्वाद

श्रीयुत बनारसीलाल
न्यू स्वदेशी मिल्स
रेलवेपुरा
अहमदाबाद

सी० डब्ल्यू० ९३०१ से।
सौजन्य : बनारसीलाल बजाज

१. जी० एन० रजिस्टरके अनुसार।

४०१. भेंट : 'डेली एक्सप्रेस' के प्रतिनिधिसे

अहमदाबाद
२२ जनवरी, १९३०

गांधीजीने अपना अभिप्राय समझानेके लिए थोड़ी देरके लिए कातना बन्द करते हुए दृढ़तासे घोषणा की :

इस देशमें अभी निकट भविष्यमें महान शक्ति-परीक्षा होनेवाली है। अब घटनाएँ पूरी तरह अंग्रेज सरकारपर निर्भर करती हैं। क्योंकि हम अब या भविष्यमें किन्हीं भी परिस्थितियोंमें किसी भी परिषदमें तबतक भाग नहीं लेंगे जबतक यह परिषद ग्रेट ब्रिटेनसे हमारे बिलकुल सम्बन्ध-विच्छेदकी बात करनेके लिए न बुलाई गई हो। वह दिन गुजर गया है जब हम इससे कुछ कम स्वीकार कर सकते थे।

दुनियाको अवश्य मालूम हो जाना चाहिए कि हम अंग्रेजोंसे अपने वर्तमान सम्बन्ध पूरी तरह तोड़नेके लिए संघर्षमें लगे हुए हैं और जबतक वह उद्देश्य सफल नहीं हो जाता हम विश्राम नहीं करेंगे।

हमने अब शुरुआत कर दी है। आपको देशके हर भागमें हमारे लाखों पुरुष और स्त्रियाँ अपनी झोंपड़ियोंमें घंटों चरखा कातते हुए मिलेंगे। इसका मतलब है विदेशी कपड़ेका राष्ट्रव्यापी बहिष्कार। और वक्त आनेपर इसका मतलब होगा एक ऐसे उद्योगमें अंग्रेजी प्रभुताका अन्त जो इस देशमें अंग्रेज सेनाओंकी उपस्थितिका प्रधान कारण है।

सविनय अवज्ञाके धर्मयुद्धको कार्यान्वित करनेकी योजनाओंकी विस्तृत रूपरेखाके बारेमें पूछे जानेपर गांधीजीने उत्तर दिया।

इस सम्बन्धमें मैं अभी निश्चित रूपसे नहीं जानता कि इसका क्या रूप होगा। मैं यहाँ आया हूँ और मुझे आशा है कि मैं अपने एकान्तवासमें सविनय अवज्ञाकी ऐसी योजना बनाऊँगा, जो विनाशकारी नहीं होगी और जिसके कारण खून-खराबी नहीं होगी। परन्तु वह इतनी बड़ी होगी कि जैसा मैं चाहता हूँ वैसा असर डालेगी। मैं यहाँ यही-कुछ कर रहा हूँ, अन्यथा जैसा कि आप देख सकते हैं, मैं कात रहा हूँ।

इसके बाद वे सावधानीसे तैयारी करनेकी आवश्यकताका लम्बा सैद्धान्तिक स्पष्टीकरण देने लगे। उन्होंने कहा कि मैं भरोसेके साथ यह नहीं कह सकता कि आगामी क्रान्तिमें इस प्रथम पगकी सफलताके सुनिश्चित होनेका क्षण आ गया है अथवा नहीं। परन्तु इससे मुझे रास्ता दिखेगा —— जिस हदतक इसे सफलता मिलेगी उस हदतक इससे मेरा पथ-प्रदर्शन होगा। उन्होंने आगे समझाते हुए कहा :

ऐसे आन्दोलनका नियमन करनेवाले व्यक्तिके लिए यह बहुत ही जरूरी है कि वह अपनेको अपने अनुयायियोंकी आवाजके साथ सस्वर रखे और इसलिए उसका

बाहरी प्रभावोंसे अछूता रहना और अन्दर जो छोटीसे-छोटी चीज हो रही है उसके प्रति सजग रहना, समान रूपसे जरूरी है।

मैंने गांधीसे पूछा: क्या अभी भी उन कठोर कदमोंको जिन्हें वे उठाने जा रहे हैं टालना सम्भव नहीं है। जब उन्होंने तत्काल हाँ में उत्तर दिया और कहा कि अंग्रेज सरकारकी ओरसे रत्तीभर संकेतसे चमत्कार हो सकता है, मैंने पूछा कि उनके विचारमें इस संकेतमें क्या कुछ होना चाहिए। उन्होंने उत्तर दिया:

अंग्रेज सरकार और अंग्रेज लोगोंकी ओरसे कोई वास्तविक संकेत मिलना चाहिए या हम लोगोंके ही किसी अप्रत्याशित संगठनकी ओरसे जो स्वाभाविक और स्वस्थ हो, कोई वास्तविक संकेत मिले, और यह संकेत केवल अंग्रेज लोगोंका ही नहीं अपितु संसारभरका ध्यान आकृष्ट करने योग्य काफी दबाव डालनेवाला हो।

इसका अभिप्राय निस्सन्देह उग्र पंथियोंके साथ मेलसे है; परन्तु ब्रिटेनसे किस किस्मका संकेत चाहिए?

मान लीजिए कि कल ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल यह कहे: "हम भारतीय स्वतन्त्रताकी योजनापर विचार करनेके लिए और उसे आगे बढ़ानेके लिए तैयार हैं," और जैसा कि ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल कर सकता है, वह ऐसा वातावरण तैयार करे जो ऐसी योजना बनानेके लिए अनुकूल हो, तो उससे सविनय अवज्ञाके लिए की जानेवाली किसी तरहकी भी तैयारी अपने आप रुक जायेगी।

क्या प्रस्तावित गोलमेज परिषद आपको इस बातपर पूरी चर्चा करनेका अवसर नहीं देती?

उन्होंने कुछ जोर देकर कहा:

नहीं, किसी भी रूप या शक्लमें नहीं।

क्योंकि जहाँतक मैं इसे विश्वस्त सूत्रोंसे समझ पाया हूँ, गोलमेज परिषदकी योजना, आजकल जो अधिकार हैं उनसे भी बहुत ही कम अधिकार देनेवाली और औपनिवेशिक स्वराज्यके बीचकी किसी बातचीतपर चर्चा करनेके लिए बनाई गई है। उदाहरणके तौरपर जिम्मेदार भूतपूर्व अधिकारियों द्वारा यह प्रस्ताव किया गया है कि भारतके लोगोंको अबतक जो अधिकार प्राप्त थे, वर्तमान दशामें, वे उनसे छीन लिये जाने चाहिए; क्योंकि इन आलोचकोंका वास्तवमें यह कहना है कि हम इन अधिकारोंके लिए भी कुपात्र साबित हुए हैं। इसलिए इस तरहकी गोलमेज परिषदका जहाँ पूर्ण-स्वराज्यके लिए भारतकी पात्रता भी सन्देहास्पद है, मेरी दृष्टिमें किसी तरहका कोई स्थान नहीं है। उसमें मेरे शरीक होनेका कोई सवाल बिलकुल ही नहीं उठता। मैं केवल ऐसी परिषदमें उपस्थित हो सकता हूँ जो भारतको कितना अधिकार मिलना या नहीं मिलना चाहिए यह विचार करनेके लिए नहीं परन्तु पूर्णस्वराज्यकी योजना बनानेके उपाय और तरीकोंपर विचार करनेके लिए वचनबद्ध हो। फिलहाल मैं केवल इस तरहकी परिषदमें सम्मिलित होनेकी बात सोच सकता हूँ।

इस बातपर मैंने गांधीजीसे बड़े दो-टूक ढंगसे पूछा — क्या आप सचमुच यह विश्वास करते हैं कि अंग्रेज सरकार आपके तरीकोंसे डर जायेगी और आपकी माँगोंके आगे झुक जायेगी?

यह सब लोगोंकी प्रतिक्रियापर निर्भर है। मुझे विश्वास है; परन्तु निश्चय नहीं है। मैं सोचता हूँ कि यह अपनी योजनाएँ बनानेके लिए उपयुक्त समय है। मेरी अपनी ही सीमाओंके कारण मेरे लिए आसपासके अन्धकारके अन्दर झाँककर देखना असम्भव हो रहा है।

दूसरे शब्दोंमें मेरे इर्द-गिर्दका वातावरण निराशाजनक है। निस्सन्देह ऊपरी सतहपर हिंसाकी शक्तियाँ दिखाई दे रही हैं और मैं शायद उन्हें वशमें न रख सकूँ।

परन्तु जैसा मैंने कहा है सच्ची अहिंसा, जिसकी मैं वकालत करता हूँ शायद इस समय इन शक्तियोंको काटकर आगे बढ़ सके और इन शक्तियोंसे ऊपर भी उठ सके। परन्तु चूँकि मैं स्वयं सदोष हूँ इसलिए हो सकता है कि मैं सही प्रकारकी अहिंसाको, जो इन परिस्थितियोंका मुकाबला करेगी, एकदम हासिल न कर सकूँ। हिंसा ही वह भयावह शक्ति है जो देशको आक्रान्त किये हुए है और जिसे पहले शक्तिहीन किया जाना चाहिए।

गांधीने जोर देकर कहा कि वे जिस कार्यवाहीकी स्वीकृति देंगे उसकी चरम सीमा सविनय अवज्ञा है। उन्होंने यह भी कहा कि सविनय अवज्ञा अहिंसाकी चरम सीमा है। जिस कार्यक्रममें हिंसाका लेश भी होगा वे उसके पक्षमें कभी नहीं होंगे।

अगले प्रश्नका उत्तर देते हुए उन्होंने कहा:

उग्रवादियोंकी शक्ति आज बड़ी नहीं है, परन्तु यह बढ़ती जा रही है।

लेकिन मान लीजिए कि अगर उग्रवादी वशके बाहर हो जायें और उनपर खून खराबीका उत्तरदायित्व आ जाये और इसलिए आपपर भी — तब क्या होगा? मान लीजिए कि तब अंग्रेज जनताकी माँगपर अंग्रेज सरकारको कार्यवाही करनेके लिए बाध्य होना पड़े और वह लोगोंको गिरफ्तार करने लगे और आपको भी कैद कर ले तब क्या होगा?

उन्होंने गंभीरतासे जवाब दिया:

मैं कैद होनेसे नहीं डरता। अंग्रेज सरकारको खुली छूट है कि जैसा उसने पहले किया है उसी तरह हिंसाका आतंक फैलानेमें देर न करे। तब इसके क्या परिणाम होंगे, सो मैं नहीं कह सकता। परन्तु मेरी रायमें इस तरहका कदम अत्यन्त मूर्खतापूर्ण होगा।

तब आपका निकट भविष्यके बारेमें क्या विचार है?

मुझ जैसे आशावादी व्यक्तिके लिए निकट भविष्य अत्यन्त उज्ज्वल है, परन्तु यदि मैं पक्ष-विपक्षपर विचार करूँ और स्थितिका पूरा हिसाब-किताब लगाऊँ तो मुझे यह अवश्य स्वीकार कर लेना चाहिए कि समस्याका समाधान नहीं हो सकता।

मुझे नहीं मालूम कि क्या होने जा रहा है। मैं उस सेनाध्यक्षकी सुखद स्थितिमें नहीं हूँ जो अपनी सारी योजनाको पहलेसे ही जानता है, और जो समय-तालिकाके अनुसार काम करता है और निश्चित रूपसे परिणामोंकी भविष्यवाणी कर सकनेका दावा कर सकता है।

परन्तु मैं आपको इतना विश्वास दिला सकता हूँ। भारतमें शक्ति परीक्षाकी घड़ी पास आ गई है। परिणाम पूरी तरह अंग्रेज सरकारपर निर्भर करता है।

उनके लिए दो ही रास्ते हैं। एक वही पुराना आतंक फैलानेवाला तरीका है जो डायरवाद, भय, पागलपनपूर्ण दमन और फिर अराजकताकी ओर ले जायेगा। दूसरा रास्ता उस बुद्धिमान आदमीका है जो अपने अतीतके पापोंपर सोचता है, पश्चात्ताप करता है और अपनेको सुधार लेता है। हमें आशा रखनी चाहिए।

[अंग्रेजीसे]

सर्चलाइट, १२-२-१९३०

४०२. भारतीय आलोचकोंसे

मैं जानता हूँ, आप लोग मुझसे नाराज हैं। क्योंकि आपके खयालसे वाइसरायके साथ समझौतेकी बातचीतको बीच ही में तोड़ देनेवाला मैं ही हूँ। आप समझते हैं कि मैंने शुरूमें ही बातको बिगाड़ दिया है। अगर मैंने ऐसा किया भी है तो इसलिए कि मुझे वैसा करना ही पड़ा। मैं तो [मुलाकात करनेवालोंके] दलके साथ जाना भी नहीं चाहता था; मगर मेरी जरूरत समझी गई, भले ही इसलिए कि सर्वसाधारणपर मेरा प्रभाव माना जाता है, मैं गया और अपनी अन्तरात्माकी आज्ञाके अनुसार बोला। मुझमें जो कुछ भी शक्ति है और देशकी जो थोड़ी-सी भी सेवा मैं कर सका हूँ उसका यही कारण है कि अपनी अन्तरात्माकी आवाजको सुन सकता हूँ और मान सकता हूँ। आप यह तो चाहते ही नहीं होंगे कि जीवनके इस कालमें मैं अपना रास्ता बदल दूँ और अन्तरात्माके सिवा और किसीको सुनने लगूँ।

और आखिर पण्डित मोतीलालजीने और मैंने मिलकर अपराध ही क्या किया है? यही कि हमने कांग्रेसके आदेशोंका उल्लंघन नहीं किया; दिल्लीके प्रसिद्ध घोषणापत्रकी[1] शर्तोंको भंग नहीं होने दिया? इन शर्तोंको भले ही कोई किसी नामसे पुकारे, यह सब लोग भली-भाँति जानते हैं कि उनकी पाबन्दी करना सब कांग्रेसियोंका फर्ज था। हमारी बातचीत औपनिवेशिक स्वराज्यके मुख्य विषयपर ही तो खत्म हो गई। मैं साहसके साथ कह सकता हूँ कि पण्डित नेहरूजीने और मैंने जो सही रुख अख्तियार किया, उससे देशको लाभ ही पहुँचा है।

अवश्य ही, अगर ब्रिटिश मन्त्रिमंडलकी नीयत अच्छी है, तो कांग्रेसके गोलमेज परिषदमें शामिल न होनेसे भी कोई हानि न होगी। जिन लोगोंको विश्वास हो वे

१. देखिए सर्वदलीय नेताओंका संयुक्त वक्तव्य।

जायें। यदि वे स्वाधीनताके दृष्टिकोणसे देखने योग्य कोई चीज लेकर आये तो कांग्रेस हथियार डाल देगी। परन्तु अब कीमती खिलौनोंसे सन्तुष्ट होनेके दिन गये। भारतको तत्वकी चीज चाहिए।

अंग्रेजोंका प्रभुत्व खत्म ही होना चाहिए।

अंग्रेजों द्वारा हमारा शोषण बन्द ही होना चाहिए।

अंग्रेजोंका प्रशासन, जिसकी इस देशको अपनी हैसियतसे कहीं ज्यादा कीमत देनी पड़ती है, सुदूर भविष्यमें नहीं, अभी खत्म हो जाना चाहिए।

कांग्रेसियोंके भारी बहुमतका विश्वास है कि जबतक इसके लिए एक सही वातावरण नहीं बन जाता तबतक किसी गोलमेज परिषदके द्वारा यह सब नहीं हो सकता। कटनीतिकी उस भाषासे भारत कभी स्वतन्त्र नहीं होगा, जिसका कि अंग्रेज मतदाताओंके लिए एक अर्थ हो और भारतीय किसानोंके लिए दूसरा। ब्रिटिश जनताको अब यह मालूम हो जाना चाहिए कि इस साम्राज्यका अन्त होकर रहेगा। और वे तबतक यह महसूस नहीं करेंगे जबतक कि भारतमें हम अपनी बात मनवानेके लिए भीतरी शक्ति पैदा नहीं कर लेते। अंग्रेजोंको जो स्वतन्त्रता मिली है, वह उन्होंने बड़े मँहगे दामों ली है। इसलिए वे उन्हीं लोगोंका आदर करते हैं, जो अपनी आजादीके लिए पूरी कीमत चुकानेको तैयार हों। इसलिए असली परिषद तो हमें आपसमें ही करनी होगी।

अतः स्वाधीनताके आन्दोलनको विरोधकी दृष्टिसे देखनेके बजाय आलोचकोंको चाहिए कि चाहे वे एकरूप न हो सकें, तो भी इसे आशीर्वाद दें।

लेकिन शायद उनको स्वाधीनताके प्रचारकी इतनी परवाह नहीं है, जितनी सविनय अवज्ञाके विचारकी। तो क्या वे इसके बजाय सशस्त्र विद्रोह पसन्द करेंगे? स्वतन्त्रताका प्रस्ताव[१] पास कर चुकनेके बाद कांग्रेस तो हाथ पर हाथ धर कर बैठ नहीं सकती। यह कोई धमकी नहीं थी, दिखावा नहीं था; यह तो कांग्रेसकी मनोवृत्तिमें विचार पूर्वक एक निश्चित परिवर्तन हुआ है। अतः स्वाधीनताकी प्राप्तिके उपाय सोच निकालना, जितना मेरा कर्तव्य है, उतना ही आलोचकोंका भी है।

बेशक, देशमें हिंसावादियोंका एक दल है। उसका बल बढ़ रहा है। उसकी देशभक्ति हममेंसे किसीसे कम नहीं है। एक बात और है कि उसने कुरबानी बहुत की है। साहसमें तो हममेंसे कोई भी उससे बढ़कर नहीं है। इस दलके सदस्योंको बुराभला कहना आसान है, परन्तु इससे वे अपना विश्वास नहीं बदल लेंगे। यहाँ मैं उस थोथी वक्तृत्व शक्तिके प्रदर्शनका जिक्र नहीं कर रहा हूँ, जो देशभक्ति कही जाती है। मेरे ध्यानमें तो युवक और युवतियोंका वह छिपा हुआ, चुपचाप और लगनसे काम करनेवाला दल है, जो हर कीमतपर देशको स्वतन्त्र देखना चाहता है। परन्तु जहाँ मैं उनकी देशभक्तिकी प्रशंसा करता हूँ, पूजा करता हूँ, मुझे उनके तरीकोंमें जरा भी विश्वास नहीं है। उनमें और मुझमें जमीन आसमानका अन्तर है। भारतवर्षका उद्धार हिंसासे नहीं हो सकता। मेरा विश्वास है कि देशको उनके

१. देखिए "भाषण: कांग्रेस अधिवेशन लाहौरमें–२", ३१-१२-१९२९।

तरीकोंके कारण उससे कहीं अधिक कीमत देनी पड़ी है, जितनी कि वे जानते हैं या स्वीकार करनेकी परवाह करेंगे। वे उन सुधारोंका अध्ययन कर देखें, जिन्हें वे अपने कामका नतीजा समझते हैं। उनका यह दावा सही भी मान लिया जाये, तो भी उन्हें याद रखना चाहिए कि देशको सुधारोंके लिए अपनी शक्तिसे कहीं ज्यादा कीमत चुकानी पड़ी है। परन्तु वे किसी दलीलको, चाहे वह कितनी ही युक्तिसंगत क्यों न हो, सुननेवाले नहीं हैं। वे तो तभी मानेंगे, जब उन्हें यह भरोसा हो जाये कि देशके सामने ऐसा कार्यक्रम है कि जो कमसे-कम उतना ही त्याग चाहता है, जितना उनमेंसे बड़ेसे-बड़ा आदमी करनेको तैयार हो। वे हमारे भाषणों, प्रस्तावों या सम्मेलनों तकके प्रलोभनमें नहीं आयेंगे। उनपर तो केवल कार्यका ही असर हो सकता है। मैं कहता हूँ कि यह असर सिर्फ अहिंसात्मक कार्यसे ही पैदा होगा, जो सत्याग्रहके सिवाय और कुछ नहीं है। मेरे विचारमें एक यही उपाय देशको आनेवाली अराजकता और गुप्त अपराधोंसे बचा सकता है। निस्सन्देह एक यह सम्भावना भी है कि सत्याग्रह असफल रहे और उसके कारण अराजकता भी जल्दी शुरू हो जाये। परन्तु यदि वह अपने उद्देश्यमें असफल रहा तो वह सत्याग्रहकी असफलता नहीं होगी; वह असफलता होगी सत्याग्रहियोंमें श्रद्धाके अभावकी और तज्जन्य अयोग्यताकी। यह दलील शायद आलोचकको अच्छी न लगे। यदि नहीं लगी तो मुझे दुःख होगा। फिर भी शायद उसे मेरे उद्देश्यकी पवित्रता तो स्वीकार ही होगी।

अगर हम इस देशको स्वाधीन देखना चाहते हैं तो हमें हिंसासे डरना छोड़ना होगा। क्या हम यह नहीं देख सकते कि हम हिंसाके जालमें मजबूतीसे जकड़े हुए हैं? जिस अमन-चैनको हम इतनी बड़ी चीज समझते हैं, वह तो थोड़े दिन काम चलानेकी तरकीब-भर है और करोड़ों भूखों मरनेवालोंका खून देकर खरीदी गई है। अगर आलोचक सिर्फ यह महसूस कर लें कि सर्वसाधारणको किस तरह जबर्दस्ती भूखों रखा जाता है और वे कैसे कष्टसे धीरे-धीरे मरते हैं तो इस वेदनाका अन्त करनेके लिए वे अराजकता, उससे भी खराब किसी चीजकी जोखिम उठानेको तैयार हो जायेंगे। जबतक इस लुटेरे राज्यका अन्त नहीं होगा, यह वेदना बन्द न होगी। अगर मुझे विश्वास हो सकता कि अंग्रेजी राज्यमें जनताकी अवस्था बराबर सुधरती गई है तो मैं और भी ठहर जाता। लेकिन अफसोस, जिसके आँखें हैं वह देख सकता है कि इस राज्यमें उनकी दशा बराबर बिगड़ती ही गई है। यह जानते हुए चुपचाप बैठे रहना पाप है। यह भी पाप है कि काल्पनिक अराजकता या उससे भी बुरी चीजके डरसे ऐसा कार्य न किया जाये, जिससे अराजकता रुक सकती है और यदि वह कार्य सफल हो जाये तो एक अच्छी हालतकी हकदार कौमका यह हृदयहीन शोषण अवश्य ही समाप्त हो जाये।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २३-१-१९३०

४०३. अंग्रेज मित्रोंसे

अनेक परिचित और उनसे भी अधिक संख्यामें अपरिचित अपने अंग्रेज मित्रोंसे ऐसे अवसरपर, जिसका शायद जीवन और मरणके संघर्षमें समापन हो, मुझे सम्भवत: एक शब्द कहना है। अपनी रायके बावजूद मैंने ऐसा विश्वास करनेकी कोशिश की कि प्रस्तावित गोलमेज परिषदमें स्वाभिमानी कांग्रेसियोंके सम्मिलित होनेकी सम्भावना है। मेरे मनमें तो शंकाएँ थीं ही; क्योंकि मुझे मालूम था कि यद्यपि कांग्रेस निश्चित रूपसे देशकी प्रतिनिधि संस्था है, अपनी स्थिति पुष्ट करनेके लिए इसके पीछे काफी ताकत नहीं है। इसलिए इस परिषदमें वह तभी प्रतिनिधित्व कर सकती थी जब इसे यह मालूम हो जाता कि अंग्रेज सरकार और लोगोंने उदारतापूर्ण प्रवृत्तिके कारण या दुनियाकी रायके दबावके कारण तत्काल औपनिवेशिक स्वराज्य देना तय कर लिया है और परिषदकी बैठक, अलग-अलग दल जो कुछ चाहें उसपर वाद-विवाद करनेके लिए नहीं, अपितु औपनिवेशिक स्वराज्यके संविधानका विषय तय करनेके लिए होने जा रही है। वाइसरायने स्पष्ट शब्दोंमें यह घोषणा कर दी कि वह ऐसा कोई आश्वासन नहीं दे सकते। जब ऐसी स्थिति थी तो अपनी पिछली घोषणाओंकी संगतिको देखते हुए और राष्ट्रहितको ध्यानमें रखते हुए, जिसका प्रमुख न्यासी होनेका कांग्रेस दावा करती है, यह साफ ही है कि कांग्रेस परिषदमें अपना प्रतिनिधित्व नहीं कर सकती थी। परन्तु यह पूछा जा सकता है: मान लिया जाये कि इस परिस्थितिमें कांग्रेससे अपने प्रतिनिधि भेजे जानेकी आशा नहीं की जा सकती थी तो उसके औपनिवेशिक स्वराज्यकी बातपर से स्वतन्त्रताकी बातपर चले जानेकी जरूरत कहाँ थी? उत्तर सीधा है। व्यक्तियोंकी ही तरह, यदि संस्थाओंको आदर प्राप्त करना और आगे बढ़ना हो तो उन्हें अपनी मान-मर्यादाका ध्यान अवश्य होना चाहिए और उन्हें अपने वायदे अवश्य पूरे करने चाहिए। यह एक तथ्य है कि कांग्रेसने कलकत्तामें ३१ दिसम्बर, १९२९ तक औपनिवेशिक स्वराज्य न मिलनेपर अपना मत स्वतंत्रतामें बदल देनेका वायदा किया था। ऐसा नहीं हुआ। और निश्चित रूपमें निकट भविष्यमें औपनिवेशिक स्वराज्यके मिलनेकी कोई सम्भावना भी नहीं रही। यदि कांग्रेस 'आत्मघात' नहीं करना चाहती थी तो इसके पास इसके सिवा और कोई चारा नहीं था कि वह औपनिवेशिक स्वराज्यके स्थानपर पूर्ण स्वतन्त्रताको अपना तात्कालिक उद्देश्य घोषित करती।

परन्तु स्वतन्त्रताकी इच्छा करनेमें सचमुच गलत क्या है? मैं यह नहीं समझ सकता कि सुलझे हुए विचारोंवाले अंग्रेज लोग इस बातके प्रतिपादनका विरोध क्यों करते हैं कि प्रत्येक राष्ट्रको स्वतन्त्र होनेका अटूट अधिकार है — तब तो यही मानना पड़ेगा कि वे सुलझे हुए विचारोंवाले अंग्रेज लोग भी भारतको स्वतन्त्र होने नहीं देना चाहते।

कुछ एक कहते हैं: 'लेकिन आप आजादीके लायक नहीं हैं'। निस्सन्देह यह हमें ही तय करना है कि हम इसके लायक हैं या नहीं। और यह भी मान लिया

जायें कि हम इसके लायक नहीं हैं तो भी यदि हम स्वतन्त्रताके लिए आकांक्षा रखें और इस प्रयत्नमें अपने आपको दिनोंदिन योग्य बनाते जायें, तो इसमें कुछ गलत या अनैतिक नहीं है। यदि हमें यह सिखाया जाये कि हम असहाय हैं, और हम आपसमें लड़ना बन्द करनेके लिए या पड़ोसियों द्वारा निगले जानेसे बचनेके लिए अंग्रेजोंकी तलवारोंके आश्रयपर निर्भर रहना है तो इससे हम कभी लायक नहीं बनेंगे। यदि हमें गृहयुद्धका या विदेशी आक्रमणका कष्ट भी झेलना पड़े तो उन राष्ट्रोंके इतिहासमें जिन्होंने स्वतन्त्रताके लिए संघर्ष किया है यह कोई नई बात नहीं होगी। इंग्लैंडको दोनों तरहके अनुभव हुए हैं। आखिर स्वतन्त्रता कोई उन पौधोंकी तरह नहीं है जिन्हें गर्म कमरेमें आसानीसे पनपा लिया जाता है।

जो हृदयसे भारतके कल्याणके लिए उत्सुक हैं उन अंग्रेज मित्रोंका काम है कि वे भारतकी स्वतन्त्रताकी लड़ाईमें सहायता करें और उसीकी शर्तोंपर। भारतको क्या चाहिए सो तो भारतको ही सबसे ज्यादा अच्छी तरह मालूम है। पूर्ण स्वतन्त्रताका अभिप्राय अभिमानपूर्ण अलगाव या सब तरहकी सहायताके प्रति असामान्य अवज्ञा नहीं है। उसका अभिप्राय अंग्रेजोंकी दासतासे बिलकुल छुटकारा पाना जरूर है चाहे वह दासता कितनी ही कम या अच्छी तरह गुप्त रखी हुई क्यों न हो। इसलिए जिन्हें सम्मेलनका विचार सूझा है, तत्काल स्वतन्त्रताकी माँगके विरोधसे उन लोगोंकी सद्भावनाओंके प्रति बड़ा भारी सन्देह पैदा होता है। यह साफ तौर पर समझ लिया जाना चाहिए कि भारतका सबसे बड़ा राष्ट्रीय दल राष्ट्रको अधीन स्थिति या असहायावस्थामें डालकर किये जा रहे शोषणकी प्रक्रियाके आगे अब और देर तक कदापि नहीं झुकेगा। इस दोहरे अभिशापसे बचनेके लिए वह कोई भी खतरा मोल लेनेको तैयार है।

क्या अब भी यह बात समझमें नहीं आ रही है कि निश्चित खतरोंके बावजूद मैं किसी तरहकी सविनय अवज्ञाकी योजना क्यों बना रहा हूँ जिससे सारी अहिंसक शक्तियोंको इकट्ठा कर दिया जाये और यह देखा जाये कि इससे बढ़ती हुई हिंसाकी लहर थमती है या नहीं? घृणा और दुर्भावना तो वातावरणमें हैं। यदि समय पर उनका अन्दाज न लगाया जाये तो उनका कभी न कभी प्रचण्ड रोषपूर्ण कार्योंके रूपमें फूट पड़ना अवश्यम्भावी है। मुझे यह गहरा विश्वास हो गया है कि केवल सविनय अवज्ञासे ही उस रोषका फूट निकलना रुक सकता है। राष्ट्र स्वतन्त्रता प्राप्त करनेसे भी ज्यादा अपनी इस शक्तिको महसूस करना चाहता है। ऐसी शक्तिका होना ही स्वतन्त्रता है।

मुझे यह खेदपूर्वक स्वीकार करना पड़ता है कि यदि सविनय अवज्ञा हिंसक अवज्ञामें बदल जाये तो यह कोई अनहोनी घटना नहीं होगी। परन्तु मुझे मालूम है कि इस हिंसाका कारण सविनय अवज्ञा नहीं होगी। हिंसा पहलेसे ही सारे राजनीतिक ढाँचेको क्षीण करती जा रही है। सविनय अवज्ञा पवित्रीकरणकी प्रक्रिया होगी। सारे ढाँचेके अन्दर और नीचे जो चीज आँखसे ओझल रह कर उसे खोदती चली जा रही है उसे ऊपरी सतहपर ले आयेगी। और यदि अंग्रेज अधिकारी चाहें, तो वे सविनय अवज्ञाका इस तरह विनियमन कर सकते हैं कि हिंसाकी शक्तियोंका

ह्रास हो जाये। वे चाहे ऐसा करें या जैसा हममें से बहुतोंको भय है कि वे प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूपमें, जानबूझकर या अनजानेमें हिंसाको उत्तेजित करें, मेरा कर्त्तव्य-पथ स्पष्ट है। मेरे पास देशकी स्थितिका जो साक्ष्य है और सविनय अवज्ञामें मेरा जो अटूट विश्वास है उसके कारण अन्तरात्माकी आवाज मुझे जिस मार्गपर ले जाती हुई प्रतीत होती है, उससे मैं कभी नहीं रुकूँगा।

परन्तु मेरे कहने और कुछ भी होनेके बावजूद आशा है कि मेरे अंग्रेज दोस्त मेरी यह बात मान लेंगे कि यद्यपि मैं अंग्रेजी दासताको तोड़नेके लिए अधीर हूँ, मैं ब्रिटेनका शत्रु कदापि नहीं हूँ।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २३-१-१९३०

४०४. २६ को यह याद रखिए–

१. याद रखिए कि २६ जनवरीका दिन स्वाधीनताकी घोषणा करनेका दिन नहीं है, किन्तु यह घोषित करनेका दिन है कि तथाकथित औपनिवेशिक स्वराज्यके बजाय अब हम पूर्ण-स्वराज्यसे कम किसी चीजसे सन्तुष्ट नहीं होंगे। इसी कारण कांग्रेसके संविधानमें स्वराज्य शब्दका अर्थ अब पूर्ण-स्वराज्य हो गया है।

२. याद रखिए कि २६ को हमें सविनय अवज्ञा शुरू नहीं करनी है बल्कि सिर्फ सभाएँ करके पूर्ण-स्वराज्य हासिल करनेका अपना संकल्प और इस लक्ष्यकी सिद्धिके लिए समय-समयपर प्रकाशित होनेवाली कांग्रेसकी आज्ञाओंपर अमल करनेका अपना निश्चय प्रकट करना है।

३. याद रखिए कि हम चूँकि अपने ध्येयको अहिंसात्मक और सच्चे उपायोंसे ही प्राप्त करना चाहते हैं, और यह काम हम केवल आत्मशुद्धि द्वारा ही कर सकते हैं, इसलिए हमें चाहिए कि उस दिन हम अपना सारा समय यथाशक्ति कोई रचनात्मक कार्य करनेमें बितायें।

४. याद रखिए कि सभाओंमें भाषण बिलकुल नहीं होने हैं। जो घोषणा-पत्र तमाम कांग्रेस कमेटियोंके पास भेजा गया है, केवल वही पढ़ा जायेगा और लोग अपने हाथ उठाकर उसकी ताईद-भर करेंगे। घोषणापत्र प्रान्तीय भाषामें पढ़ा जाना चाहिए।

पाठकोंकी सुविधाके लिए २६ जनवरीको की जानेवाली मूल घोषणा[1] नीचे दी जाती है:

> **हमारा विश्वास है कि अपनी प्रगतिके लिए पूरा-पूरा अवसर पानेकी दृष्टिसे दूसरे देशवासियोंकी तरह हिन्दुस्तानके लोगोंका स्वाधीनता पाने**

१. घोषणाके गांधीजीके मसविदेके लिए देखिए "२६ जनवरीकी घोषणाका मसविदा", १०-१-१९३०।

और अपनी मेहनतका सुख भोगने तथा जीवनके लिए आवश्यक वस्तुओंको प्राप्त करनेका अटल अधिकार है, हमारा यह भी विश्वास है कि अगर कोई सरकार लोगोंको उनके अधिकारसे वंचित करती है और उनपर जुल्म करती है तो लोगोंको यह भी अधिकार है कि वे उसे बदल दें या उसे समाप्त कर दें। भारतकी अंग्रेज सरकारने हिन्दुस्तानियोंको न केवल उनकी स्वाधीनतासे वंचित कर दिया है, बल्कि उसने जनताके शोषणको ही अपना आधार बनाया है और हिन्दुस्तानको आर्थिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक तथा आध्यात्मिक दृष्टिसे तबाह कर दिया है। इसलिए हम मानते हैं कि हिन्दुस्तानको अवश्य ही ब्रिटेनसे सम्बन्ध तोड़ देना चाहिए और 'पूर्ण-स्वराज्य' या पूर्ण-स्वाधीनता हासिल करनी चाहिए।

आर्थिक दृष्टिसे भारतको बरबाद कर दिया गया है। लोगोंसे जो कर वसूल किया जाता है, वह अनुपातमें हमारी आमदनीसे कहीं ज्यादा है। हमारी औसत आमदनी प्रतिदिन सात पैसा (दो पेंससे भी कम) है, और जो भारी कर हम देते हैं उसका २० फीसदी किसानोंसे लगानके रूपमें वसूल किया जाता है, और ३ फीसदी नमक-करसे वसूल किया जाता है। इस पिछले करका भार गरीबोंपर ही ज्यादा पड़ता है।

गाँवके उद्योग-धन्धे, जैसे कि हाथ-कताई, नष्ट कर दिये गये हैं और इस कारण किसानोंको सालमें कमसे-कम चार महीने बेकार रहना पड़ता है। हस्तकला कौशलके अभावमें उनकी बुद्धि मन्द होती जा रही है। जो हुनर इस तरह नष्ट हो गये, और देशोंकी भाँति, उनके बदलेमें कोई नया धन्धा भी नहीं मिल सका है।

आयात-निर्यात कर और मुद्राकी कुछ ऐसी व्यवस्था की गई है कि उनसे किसानोंका बोझ और भी ज्यादा बढ़ता है। इस देशमें ब्रिटेनका तैयार किया गया माल ही ज्यादा तादादमें आता है। इस मालपर जो आयात कर वसूल किया जाता है, उससे उस मालके प्रति पक्षपात स्पष्ट प्रकट होता है, और इससे जो आमदनी होती है उसका उपयोग जनताके बोझको हलका करनेमें नहीं किया जाता, बल्कि वह एक अत्यन्त फिजूलखर्ची प्रशासनको बनाये रखनेमें खर्च होता है। इससे भी अधिक निरंकुशता विनिमयकी दरको ठहरानेमें की गई है, जिसके कारण देशसे करोड़ों रुपये बाहर खिचकर चले जाते हैं।[1]

राजनैतिक दृष्टिसे हिन्दुस्तानकी प्रतिष्ठा पहले कभी इतनी नहीं घटी थी, जितनी कि अंग्रेजी राज्यमें घटी है। एक भी सुधारसे जनताके हाथमें सच्ची राजनैतिक शक्ति नहीं आई है। हममेंसे बड़ेसे-बड़ेको भी विदेशी सत्ताके सामने झुकना पड़ता है। विचार व्यक्त करनेकी स्वतन्त्रता और सम्मेलन करने

१. देखिए "तार: जवाहरलाल नेहरूको", १७-१-१९३०।

की स्वतन्त्रताके अधिकारोंसे हमें वंचित रखा गया है। हमारे कई देशभाई निर्वासितोंकी भाँति विदेशोंमें रहनेको विवश किये गये हैं और वे अपने घर वापस नहीं आ सकते। हमारी सारी शासन-क्षमता मार दी गई है। और जनताको पटेल, पटवारी या मुहर्रिरीके छोटे-मोटे कामसे ही सन्तोष कर लेना पड़ता है।

सांस्कृतिक दृष्टिसे देखें तो इस शिक्षा-प्रणालीके कारण हम अपनी संस्कृतिसे कटकर दूर जा पड़े हैं और हमें जो प्रशिक्षण मिला है उसने हमें उन्हीं जंजीरोंसे और जोरसे लिपटे रहना सिखाया है जो हमें [दासतामें] बाँधे हैं।

आध्यात्मिक दृष्टिसे देखें तो हथियार न रखने देनेकी नीतिने हमें नामर्द बना दिया है। हमारे प्रतिरोधकी भावनाको कुचल डालनेके घातक इरादेसे जो विदेशी सेना रखी गई है, उसने हमें ऐसा सोचनेवाला बना दिया है कि न तो हम अपनी रक्षा कर सकते हैं, न विदेशियोंके आक्रमणका सामना कर सकते हैं और न ही अपने घरों तथा कुटुम्बियोंको चोर, डाकू या गुण्डोंके हमलोंसे बचा सकते हैं।

इसलिए जिस शासनने हमारे देशपर इन चार प्रकारकी विपत्तियोंका बोझ लाद दिया है, उसके अधीन रहना हम सब ईश्वर और मानव जातिके प्रति अपराध करना समझते हैं। हम मानते हैं कि स्वाधीनता प्राप्त करनेके तरीकोंमें हिंसाका तरीका सबसे ज्यादा कारगर नहीं है। अतः हम ब्रिटिश सरकारसे जहाँतक हमसे हो सकता है स्वेच्छापूर्वक सहयोग करना छोड़कर सविनय अवज्ञा करनेकी, जिसमें कर न देना भी शामिल है, तैयारी करेंगे। हमारा विश्वास है कि यदि हम ब्रिटिश सरकारसे सहयोग करना भर छोड़ दें और उत्तेजनाका कारण उपस्थित होनेपर भी उपद्रव न करते हुए कर देनेसे इनकार कर दें तो इस अमानुषिक शासनका अन्त निश्चित है। अतएव हम पवित्र प्रतिज्ञा करते हैं कि पूर्ण-स्वराज्यकी स्थापनाके लिए कांग्रेस समय-समय पर जो हिदायतें देगी उनका हम पालन करेंगे।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २३-१-१९३०

४०५. क्या अहिंसा छोड़ दी ?

एक मित्र कहते हैं[1]:

किसी भी पत्रकारके लिए, बगैर जाँच-पड़ताल किये इस तरह किसीके सम्बन्धमें गलत खबर छाप देना, बहुत बुरी बात है। जो बात ऊपर कही गई है, वह मैंने कही ही नहीं। अहिंसा मेरे प्राणके साथ जुड़ी हुई चीज है, उसे मैं कभी छोड़ नहीं सकता। मेरा विश्वास अहिंसापर दिन प्रतिदिन बढ़ता ही जाता है। और उसकी सफलताका प्रत्यक्ष अनुभव भी मुझे होता रहता है। मेरे पकड़े जानेके बाद लोगोंको क्या करना होगा, इस बारेमें मैंने जो-कुछ भी कहा था वह ठीक इसका उलटा था। अर्थात्, मैंने तो यह कहा था कि अगर उस मौकेपर लोग हिंसक प्रवृत्ति ग्रहण करें तो अहिंसावादी उसे रोकनेकी चेष्टा करें। पराधीनताके बारेमें जो कहा था वह यह था कि अगर मुझको पराधीनताका या हिंसाकाण्डका साक्षी होनेके लिए विवश होना पड़े, तो मैं हिंसाकाण्डका साक्षी होना अवश्य पसन्द करूँगा। इस कथनमें और जो अखबारमें छपा है, उसमें बहुत फर्क है। हिंसा करनेकी तो मेरे कथनमें कोई बात ही नहीं है। हम सब तो हिंसादि अनिष्ट कर्मोंके साक्षी, अनिच्छासे ही क्यों न हो, मगर हमेशा रहते आये हैं, और रहना होगा।

उक्त पत्रसे एक बात सीखने योग्य है। वह यह कि जब किसी प्रसिद्ध लोकसेवक या लोकनेताके सम्बन्धमें कोई भी सामान्य अनुभवसे बाहरकी बात सुननेमें या पढ़नेमें आये तो जबतक उससे पूछ न लिया जाये, उसपर कभी विश्वास न करना चाहिए।

हिन्दी नवजीवन, २३-१-१९३०

४०६. पत्र : डॉ० रोमरको

साबरमती
२३ जनवरी, १९३०

प्रिय डा० रोमर,

क्या आप कृपया साथ भेजे जा रहे श्रीमती गांधीके सेटकी[2] मरम्मत कर सकते हैं? यह उनके हाथसे छूट गया और टूट गया।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

अंग्रेजी (जी० एन० ४५८२) की फोटो-नकलसे।

१. पत्र यहाँ नहीं दिया जा रहा है। पत्र-लेखकने लिखा था कि कुछ समाचारपत्रोंने लिखा है कि गांधीजीने अपने कैद किये जानेपर हिंसाका समर्थन किया है।

२. अनुमानतः कृत्रिम दन्तावली।

४०७. पत्र : रामेश्वरदास पोद्दारको

आश्रम, साबरमती
२३ जनवरी, १९३०

भाई रामेश्वरदास,

तुम्हारा पत्र मिला। तुम्हें चिंता नहीं करनी चाहिए। जो भूल हो गई है उसे मैं सुधार लूँगा। तुमने अपनी ओरसे तो कोई गलत काम किया ही नहीं। कहा जा सकता है कि गलती मेरी ओरसे हुई है। किन्तु गलती कैसे हुई यह मैं नहीं कह सकता। मुझे तो इतना ही याद है कि प्यारेलाल या कुसुमबहनको मैंने यह ठीक-ठीक समझा दिया था कि क्या करना चाहिए। किन्तु यदि यह गलती उनसे हुई हो तो भी मेरी ही मानी जायेगी। यह सामान्य न्याय नहीं बल्कि शुद्ध न्याय है।

गुजराती (जी० एन० २०२) की फोटो-नकलसे।

४०८. तार : नलिनी रंजन सरकारको[1]

[२४ जनवरी, १९३० या उससे पूर्व][2]

सुभाष और दूसरे मित्रोंको मेरी बधाई। मुझे पूरा विवरण भेजिए। यह भी बताइये कि क्या कदम उठाये जा रहे हैं।

[अंग्रेजीसे]

अमृत बाजार पत्रिका, २५-१-१९३०

४०९. पत्र : वसुमती पण्डितको

आश्रम, साबरमती
२४ जनवरी, १९३०

चि० वसुमती,

तुम्हारा पत्र मिला। जब भी तुम्हारी यहाँ आनेकी इच्छा हो तब तुम आ सकती हो। यदि २ मार्च से पहले मुझे गिरफ्तार न किया गया तो तबतक मैं यहीं हूँ। २ तारीखको रुखीका विवाह है।

१. सुभाषचन्द्र बोस और दूसरोंको सजा सुना दिये जानेपर।
२. रिपोर्ट की तिथि पंक्तिमें "कलकत्ता, जनवरी २४" थी।

कमलाको कब्ज कहाँसे हो गया? हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि कब्जको एक दिनके लिए भी सहन नहीं किया जा सकता।

यहाँके उत्थान-पतनके सभी समाचार तो तुम्हें गंगाबहनसे मिल ही जाते होंगे।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (एस० एन० ९२७५)की फोटो-नकलसे।

४१०. पत्र : ब्रजकृष्ण चाँदीवालाको

आश्रम,
साबरमती
२४ जनवरी, १९३०

चि० ब्रजकृष्ण,

तुम्हारा खत मिला है। किसी न किसी तरहसे हाजमा अच्छा बनना ही चाहिये। उसके लिये उपचार तो बहुत ही है परन्तु अंतमें तो तुम्हारे ही उपचार ढूंढ लेना होगा।

कामके बारेमें मेरी सलाह यह है जो दिया जाय उसे प्रफुल्लित चित्तसे किया करो। उसीमेंसे सच्ची शक्ति पैदा हो जायगी। जो काम करनेकी आवश्यकता प्रतीत होवे उस बारेमें जमनालालजीसे थोडी सी बहस कर लेना। उनको पसंद होगा तो वह काम दे देंगे। न हुआ तो भी निशिचंत रहना। यही सच्ची सीपाहीगिरी है। तंत्रके भलेमें ही हमारा भला है और तंत्रकी भलाईका न्याय तंत्री ही कर सकता है। भले वह दोषमय क्यों न हो।

खोराकका खर्च जितना आश्रममें होता है उसका दाम तो विनोबाको अवश्य दिया जा सकता है और जमनालालजीके रसोडेमें जो खर्च होता है उस बारेमें उनसे पूछनेमें कुछ भी . . .[1] न रखा जाय। ऐसी बातोंसे उनको कुछ दुःख ही नहीं लगता है बल्की प्रिय लगता है।

प्रभुदास वीजापुर पहुँच गया है। बीजापुर पहुँचनेके बाद ही वह ज्वर मुक्त हुआ।

बापूके आशीर्वाद

जी० एन० २३७३ की फोटो-नकलसे।

१. मूलमें यहाँ अस्पष्ट है।

४११. नवजीवन कार्यालय

इस अंकके साथ दी गई 'नवजीवन' कार्यालयकी गतिविधियोंकी पूरी रिपोर्टकी ओर मैं 'नवजीवन' के प्रेमियोंका ध्यान आकर्षित करता हूँ। उसमें यदि पाठकोंको आत्मसन्तोषकी गन्ध आये तो वे उसे क्षमाके योग्य मानें। कुछ ऐसी परिस्थितियोंमें यह कार्यालय अस्तित्वमें आया जिनकी पहलेसे किसीने कल्पना नहीं की थी। कार्यालयको स्वामी आनन्द जैसा कार्यकर्त्ता मिला और उसने अपना वर्तमान स्थायी रूप लिया। रिपोर्टकी ओर ध्यान आकर्षित करनेका कारण यह है कि ईमानदारी और सेवाकी भावना किन्तु व्यावहारिक कुशलतासे चलाये गये व्यापारमें सफलता मिल सकती है और यह धारणा गलत है कि पूरी ईमानदारीसे व्यापार नहीं चलाया जा सकता।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २६-१-१९३०

४१२. पत्र : एम० आर० जयकरको

२८ जनवरी, १९३०

प्रियश्री जयकर,

आपकी पुरजीके लिए धन्यवाद। मैंने कहा था कि यदि सब ठीक रहा तो म उन सज्जनोंकी मदद[1] करनेकी कोशिश करूँगा। तथापि मैंने सुना है कि सर पुरुषोत्तमदास यह भार उठानेको राजी नहीं हैं। यदि मुझे ठीक-ठीक याद है तो उन मित्रोंको भी बराबरका कोष जुटानेकी बात थी। मैंने कुल काम श्री बबन गोखलेको सौंपा था; वे इसके औचित्यको महत्ता नहीं दे रहे थे। यदि आप समय निकाल सकें तो मैं चाहूँगा कि श्री गोखलेको बुला भेजें और उनसे मिलें। इस मामलेमें मैं आपका सक्रिय योग चाहूँगा।

[अंग्रेजीसे]

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

जयकरके निजी कागजात, पत्र व्यवहार फाइल सं० ४२२
सौजन्य : नेशनल आर्काइव्ज ऑफ इंडिया, नई दिल्ली

१. बम्बईमें दलित वर्गके विद्यार्थियोंके लिए एक छात्रावासके निमित्त एन० डी० भौंसलेको १५००० का कोष जमा कराकर देनेका गांधीजीने वायदा किया था।

४१३. 'कथाकुसुमांजलि' की प्रस्तावना

उद्योग मन्दिर, साबरमती
२९ जनवरी, १९३०

यह भाई वालजी देसाईके लेखोंका संग्रह है। इस संग्रहका हर लेख लिखनेमें उन्होंने जो परिश्रम किया है उससे 'नवजीवन'के सभी पाठक परिचित हैं। ये लेख पत्रकारके दृष्टिकोणसे नहीं बल्कि लोकसंग्रहकी दृष्टिसे लिखे गये हैं। इसलिए ये पुस्तकाकार प्रकाशित होने योग्य हैं। इसमें संग्रहीत लेखोंका विषय सत्संगके इच्छुक लोगोंके लिए बहुत उपयोगी है। भाषाकी दृष्टिसे भी उनकी उपयोगिता कम नहीं है, क्योंकि भाई वालजी देसाईकी भाषा उनकी अपनी ही है।

मोहनदास करमचन्द गांधी

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ९२७६)की नकलसे।
सौजन्य : वालजी देसाई

४१४. पर्दाफाश हो गया

मैंने हिन्दुस्तानके लोगोंको इस भ्रममें रखनेकी कभी कोशिश नहीं की कि उद्देश्यकी कितने भी साफ शब्दोंमें व्याख्या कर देने या दो एक शब्दोंपर प्रकाश डाल देनेसे ही उन समस्याओंका समाधान हो जायेगा, जिन्हें उद्देश्यके पूरा होनेसे पहले हल करना है। अवश्य ही ध्येयका निश्चित होना, फिर यह कितने ही उपयुक्त शब्दोंमें क्यों न हो, एक बात है और उसकी प्राप्ति दूसरी बात है। किसी भी समझदार यात्रीको यह नहीं लगेगा कि उसके गन्तव्य स्थानकी साफ परिभाषा और उसका सफर तय हो जाना एक ही बात है।

हालाँकि यह परिषद साम्राज्य सरकारके कर्त्तव्यको अपना काम नहीं बना सकती, तो भी यह जिस मतलबके लिए बुलाई जायेगी वह कम महत्त्वका नहीं है। इसका काम यह होगा कि वह सारे मतभेदोंको समाप्त करके एक स्पष्ट सम्मति दे और इस तरह साम्राज्य सरकारको रास्ता दिखाए। बादमें प्रस्ताव बनाकर संसदके सामने पेश करनेकी जिम्मेदारी तो सरकारकी ही होगी।

वाइसराय साहबके विधान सभावाले भाषणसे[1] लिये गये इन अंशोंसे यह बात प्रायः स्पष्ट हो जाती है कि प्रस्तावित 'गोलमेज परिषद'का तात्कालिक विषय

१. २५ जनवरीको।

औपनिवेशिक स्वराज्य कभी नहीं था। और हममेंसे किसी भी व्यक्तिके द्वारा इसपर सन्देह करनेकी तो बात ही नहीं उठती कि लॉर्ड बर्कनहेड किसी दूरवर्ती भविष्यमें औपनिवेशिक स्वराज्य भारतका उद्देश्य हो सकनेकी बात स्वीकार कर लेंगे। जहाँ समय ही मुख्य महत्त्वकी चीज है, वहाँ तो इससे बात पूरीकी-पूरी बदल जाती है। दिल्लीकी मुलाकातमें[1] बातके इस स्वरूपका भेद देखनेमें आया और तब वाइसरायकी मनोवृत्ति और कांग्रेसकी मनोवृत्तिके आपसमें मेल खानेकी कोई गुंजाइश ही नहीं रही। वाइसराय तो उस समयतक भारतके लिए औपनिवेशिक स्वराज्यकी राह देखनेमें भी कुछ बुरा नहीं समझते जबतक कि देशके लखपती और करोड़पतीकी हालत भी सात पैसा रोज पैदा करनेवाले मजदूर जैसी हो जाये; जबकि कांग्रेस यह चाहती है कि अगर हो सके तो आज ही आधापेट भूखे रहनेवाले किसानको ऐसा खुशहाल कर दे कि उसे कुछ नहीं तो लखपतियोंकी तरह पर्याप्त भोजन अवश्य मिलने लगे? जब किसानोंको अपनी सच्ची दशाका पूरा-पूरा ज्ञान हो जायेगा और वे समझेंगे कि 'किस्मत' के कारण नहीं, किन्तु इस सरकारके कारण ही उनका यह बुरा हाल हुआ है, तो वे अधीर हो उठेंगे और बिना किसीकी मददके स्वयं ही वैध और अवैध ही नहीं, हिंसात्मक तथा अहिंसात्मक साधनोंके बीचके भेदको भी मिटा डालेंगे।

कांग्रेस इन किसानोंको सही रास्तेपर ले चलनेकी आशा रखती है।

वाइसराय साहबके भाषणसे एक और बात भी स्पष्ट हो गई है। हमें अब पता चला कि साइमन साहबने देशी राज्योंकी समस्याको भी अपनी शानदार जाँचका एक अभिन्न अंग बना लेनेकी बात किस कारण सोच निकाली है। देशी राजा लोग शुद्धरूपसे ब्रिटिश सरकारकी ही रचना हैं। उन्हें तो ब्रिटिश भारतवालोंकी तरह बोलने तककी स्वतन्त्रता प्राप्त नहीं है; वे तो परिषद्में शोषणके खेलके मोहरे भर हैं। एक ओर तो परिषदके भवनमें जोर-जोरसे औपनिवेशिक स्वराज्यकी झूठी बातें की जायेंगी और दूसरी ओर मर-खपकर काममें लगे हुए भूखों मरनेवाले लाखों लोगोंपर और भी बोझ लादनेकी कोशिश की जायेगी। जिस खेलमें दलके लोग बनावटी पासे हाथमें लेकर खेलनेपर कटिबद्ध हैं; जिन्हें उसमें शामिल होना हो वे बाखुशी उसमें शामिल हो सकते हैं।

कांग्रेसने राष्ट्रीय ऋणके[2] बारेमें जो प्रस्ताव पास किया है, वह वाइसराय साहबको बहुत बुरा लगा है। क्यों? ध्यान रहे कि कांग्रेसने ऐसे ऋणके औचित्य अथवा अनौचित्यकी जाँच-पड़तालके लिए एक निष्पक्ष न्यायाधिकरण मुकर्रर करनेकी बात उस प्रस्तावमें कही है। क्या राष्ट्रीय ऋणकी कुछ मदोंके औचित्यके बारेमें अपनी शंकाएँ प्रकट करना भी कोई गुनाह है? इस अत्यन्त निर्दोष प्रस्तावपर लॉर्ड इर्विनका इतना अधीर हो उठना ब्रिटिश मनोवृत्तिकी विशेषताका सूचक है। हजारों अंग्रेज सचमुच ही यह माने बैठे हैं कि भारतके लिए जो भी कर्ज लिया गया है,

१. २३ दिसम्बरको।

२. देखिए "भाषण: अ० भा० कां० कमेटीकी विषय-समितिमें – २", २१-१-१९३०।

सब स्वेच्छासे और उसके भलेके लिए लिया गया है, और इसलिए भारत-मन्त्री द्वारा किये गये लेन-देनके औचित्य-अनौचित्यपर शंका करना कृतघ्नताकी हद है।

[वाइसरायके] इस भाषणमें [देशके विभिन्न दलोंकी] एकतापर बहुत ही ज्यादा जोर दिया गया है। लेकिन जबतक विदेशी सरकार अपना पंजा जमाये रखनेके लिए प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूपसे इस देशके लोगोंको उनके छोटे-मोटे हितोंके लिए आपसमें लड़ानेकी नीतिको बरतती रहेगी तबतक इस तरहकी एकताका पूरे तौरपर स्थापित होना असम्भव है। यह अच्छा हुआ कि कांग्रेस इस दलदलसे निकल गई। इस प्रकार यदि कांग्रेस देशमें अपने बहुमतको खो दे तो भी वह चिन्ता नहीं करेगी। मगर २६ तारीखके जुलूसों और सभाओंसे यह साफ साबित हो गया है कि आज भी कांग्रेस ही एक ऐसी संस्था है जिसका देशकी जनताके हृदयपर प्रभुत्व है। ईश्वरकी कृपा है कि [देशवासी] भूखे होनेमें तो एक हैं ही। अपना एक फर्ज अदा करनेमें यह सरकार पूरी तरह निष्पक्ष है; और वह है किसानोंसे, फिर वे हिन्दू हों, मुसलमान हों या कोई और, उनकी पाई-पाई छीन लेना।

लॉर्ड रीडिंगके सामने मुझे 'बच्चोंकी-सी' जो बातें[1] रखनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ था, (लगभग) वे ही बातें मैं लॉर्ड इर्विनके समक्ष भी पेश करता हूँ। लॉर्ड इर्विन और ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल नीचे लिखे सुधार जारी कर दे:

१. परिपूर्ण मद्य-निषेध,

२. विनिमयकी दरको घटाकर १ शि० ४ पैं० कर दिया जाये,

३. मालगुजारी कमसे-कम आधी कर दी जाये और उसपर विधान सभाका नियन्त्रण रख दिया जाये,

४. नमक करकी समाप्ति,

५. शुरू-शुरूमें फौजी खर्च कमसे-कम आधा कर दिया जाये,

६. घटी हुई मालगुजारीको पूरा करनेकी दृष्टिसे उच्च कर्मचारियोंकी तनख्वाह आधी या उससे भी कम कर दी जाये,

७. विदेशी कपड़ेपर कपड़ा उद्योगके संरक्षणके विचारसे चुंगी,

८. भारतीय जहाजोंके लिए समुद्र-तट सुरक्षित करनेका कानून पास कर दिया जाये,

९. जो लोग साधारण न्यायालय द्वारा हत्या या हत्या करनेकी चेष्टाके दोषी ठहराये गये हैं, उनके सिवा और सब राजनैतिक कैदियोंको छोड़ दिया जाये; सब राजनैतिक मुकदमे वापस ले लिये जायें; १२४ अ की धारा और १८१८ का विनियम और ऐसे ही दूसरे कानून रद कर दिये जायें और तमाम भारतीय निर्वासितोंको स्वदेश लौटनेकी इजाजत दी जाये,

१०. खुफिया पुलिसका महकमा या तो उठा दिया जाये या फिर वह जनताके अधीन कर दिया जाये,

११. जनताके नियन्त्रणमें आत्म-रक्षाके लिए हथियार रखनेके परवाने दिये जायें।

१. देखिए खण्ड २२, पृष्ठ ३१७-२०।

यह देशकी बहुत ही बड़ी-बड़ी जरूरतोंकी कोई पूरी सूची नहीं है[1]; फिर भी वाइसराय साहब इन सीधी-सादी, किन्तु जीवन-मरणसे सम्बन्ध रखनेवाली जरूरतोंको ही पूरा कर दें। अगर ये माँगें मंजूर कर दी जायें तो फिर उन्हें देशमें सविनय अवज्ञाकी आवाज भी नहीं सुन पड़ेगी; यही नहीं, बल्कि अपने विचार और अपनी माँग पूरी स्वतन्त्रताके साथ प्रकट करनेकी सुविधा होनेपर कांग्रेस किसी भी परिषद में हृदयसे हाथ बँटायेगी।

हमारी आपसी फूट इन सुधारोंके आड़े नहीं आती। कांग्रेस किसी काल्पनिक वस्तुके लिए प्रयास नहीं कर रही है। कांग्रेसके वार्षिक अधिवेशनमें शामिल होनेवाले लाखों आदमी नाममात्रकी स्वाधीनता पानेकी गरजसे इकट्ठा नहीं होते, वे इस आशासे इकट्ठा होते हैं कि स्वातन्त्र्य-सूर्यके उदय होते ही उसकी किरणोंका प्रकाश देशके सुदूर गाँवों तक पहुँच जायेगा। इसमें शक नहीं कि रुपये-पैसेकी तंगी और जीवनके हर क्षेत्रमें अपने-आपको छोटा अनुभव करते रहनेकी घुटन, इस देशके मार्गकी जबर्दस्त बाधाएँ हैं। हमारी हालत सर नारायण चन्दावरकरकी बकरीके समान है। उनके अच्छे हवादार मकानमें ले जाते समय तो वह बड़ी मुश्किलसे गई; परन्तु जब उसकी मालकिन उसे वहाँसे वापस पूनाकी एक सड़कसे अपने अंधेरे घर ले जा रही थी तो स्व० सर नारायणने देखा कि बकरी उछलती-कूदती जा रही है। जैसे बकरी हवाई शान्तिसे सन्तुष्ट नहीं हो सकी थी वैसे ही हम भी हवाई शान्तिसे सन्तुष्ट नहीं हैं। यदि दैवयोगसे इस पीस डालनेवाली गरीबीसे मुक्ति पानेके लिए अन्धकारमयी अराजकता ही आवश्यक हो जाये तो हम उस जोखिमको भी उठा लेंगे।

वाइसराय साहबने अहिंसक अथवा हिंसक ढंगसे प्रतिरोध करनेवालोंसे भयंकर बदला लेनेकी जो धमकी दी है, वह फिजूल है। इन दोनोंके बीच एक यह समानता है कि दोनोंने, उन्हें क्या कुरबानी देनी पड़ेगी सो समझ लिया है। दोनों ही कष्ट सहनेके लिए तैयार हैं। क्या ही अच्छा होता अगर उनके साधन भी एक ही होते। बदनसीबीसे ये साधन एकदूसरेके पूरक होनेके बदले एकदूसरेके प्रभावको व्यर्थ बना देनेवाले हैं। मैं जानता हूँ कि मेरे समान अहिंसक क्रांतिकारीके कारण हिंसक क्रान्तिकारियोंकी प्रगतिमें बाधा पड़ती है। मैं चाहता हूँ कि वे भी यह समझ लें कि मैं उनके लिए जितना बाधक हूँ उससे कहीं अधिक वे मेरे लिये हैं; और चूँकि मैं महात्मा माना जाता हूँ, इसलिए यदि वे बाधा देना छोड़ दें तो जितनी प्रगतिकी वे आशा कर सकते हैं, उसकी अपेक्षा मैं कहीं अधिक प्रगति कर सकता हूँ। उनको यह भी मालूम हो जाना चाहिए कि उन्होंने मुझे अभी तक पूरा मौका नहीं दिया है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि उनमेंसे कुछ लोगोंने मेरा बहुत ही लिहाज रखा है। परन्तु मैं तो चाहता हूँ कि वे अपना काम बिलकुल छोड़ ही दें। यदि वे इसमें सन्तोष मानें तो मैं यह कबूल करनेको तैयार हूँ कि लॉर्ड इर्विनके कोपकी अपेक्षा मैं उनके कामोंसे ज्यादा डरता हूँ।

१. वास्तवमें ये वे शर्तें थीं जो गांधीजीने बोमनजीको लिख भेजी थीं। बोमनजी जनवरी १९३० में प्रधानमन्त्री रैम्जे मैक्डॉनल्डसे बातचीत करनेवाले थे। (**हिस्ट्री आफ द इंडियन नेशनल कांग्रेस,** खण्ड १, पृष्ठ ३६६)

वाइसराय महोदय इस तरह बातको साफ कर देने और हमें उनकी तथा अपनी स्थितिको ठीक-ठीक जाननेका मौका देनेके लिए हरएक कांग्रेसीके धन्यवादके पात्र हैं।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ३०-१-१९३०

४१५. आचरणकी कठिनाई

पाठकोंको इस अंकमें अन्यत्र प्रकाशित रेव० बी० डी लिग्टका पत्र[1] पढ़ना चाहिए। अहिंसाके क्षेत्रमें एक सहयोगी अन्वेषकके इस पत्रका मैं स्वागत करता हूँ। यह पत्र इस योग्य है कि इसपर आदरपूर्वक विचार किया जाये। ऐसी मैत्रीपूर्ण चर्चाओंसे अहिंसाकी सम्भावनाओं और सीमाओंका अधिक स्पष्ट रूपसे ज्ञान हो जाता है।

तटस्थ रहनेका अधिकसे-अधिक प्रयत्न करनेके बावजूद कोई व्यक्ति अपने वातावरणका या अपने संस्कारोंका प्रभाव नहीं मिटा सकता। विभिन्न स्थितियोंमें रहनेवाले दो व्यक्तियोंकी अहिंसा बाहरसे एक ही रूप नहीं लेगी। इस तरह अपने पिताके प्रति पुत्रकी अहिंसा, जब वह क्रुद्ध हो जाये तो उसकी हिंसाके आगे स्वेच्छासे जानबूझकर झुकनेके रूपमें होगी। लेकिन यदि बच्चा क्रुद्ध हो उठा है तो बच्चेकी हिंसाके आगे पिताका झुकना अर्थहीन होगा। पिता बच्चेको हृदयसे लगा लेगा और बच्चेकी हिंसाको तत्काल प्रभावहीन कर देगा। हर मामलेमें निश्चय ही ऐसा माना जाता है कि बाह्य क्रिया भीतरी इरादेकी अभिव्यक्ति है। जो व्यक्ति मनमें बदलेकी भावना रखते हुए हिंसाके आगे नीतिके कारण झुकता है, वह वास्तवमें अहिंसक नहीं है, और यदि वह अपना इरादा छुपाता है तो वह मक्कारी भी हो सकती है। यह भी स्मरण रखना चाहिए कि अहिंसा जब हिंसाके सम्पर्कमें आती है तभी काम करती है। जब हिंसा करनेका कोई मौका ही नहीं है, तब किसी व्यक्तिका हिंसासे बचे रहना केवल हिंसा-विहीनता है और उसके हिंसा न करनेसे उसको कोई श्रेय नहीं मिलता।

अब चूँकि औपनिवेशिक स्वराज्य हेतु नहीं रह गया है अतः उस काल्पनिक स्थितिसे उठनेवाले मुद्दोंपर बातचीत करनेकी जरूरत नहीं है। केवल इतना ही कहना है कि भारत द्वारा औपनिवेशिक स्वराज्य पानेका अर्थ यह होता है कि तब वह बजाय इसके कि ब्रिटेनसे शासित होता ब्रिटेनका बराबरका साझेदार हो जाता और ब्रिटेनकी विदेश-नीतिमें उसका प्रमुख हाथ होता।

नेहरू रिपोर्टका मैंने जो सामान्य तौरपर हार्दिक अनुमोदन किया है उसका यह अर्थ नहीं समझना चाहिए कि मैं उसके प्रत्येक शब्दका अनुमोदन करता हूँ। जरूरी नहीं है कि मेरे अनुमोदनमें स्वतन्त्र भारतके भावी शासनकी रचनात्मक योजनाका भी अनुमोदन हो। जब भारत स्वतन्त्र होगा उस समय बहुत-से ऐसे प्रश्न उठेंगे ही जिनपर मेरी अहिंसा अपने देशवासियोंसे झगड़ा करनेसे मुझे रोकेगी। कोरी

१. "कैट एन्ड माउस", शीर्षकसे प्रकाशित।

सैद्धान्तिक चर्चा अहिंसाकी वर्तमान प्रगतिमें रुकावट ही पैदा कर सकती है। जो भी हो, मैं जानता हूँ कि यदि मैं स्वतन्त्रताके संघर्षके बाद तक जीवित रहा तो शायद मुझे अपने ही देशवासियोंसे अहिंसात्मक संघर्ष करना पड़े और वह शायद उतना ही दृढ़ होगा जितना कि यह संघर्ष जिसमें मैं अभी लगा हुआ हूँ। लेकिन बड़े-बड़े भारतीय नेता जिन सैनिक योजनाओंपर अभी विचार कर रहे हैं, बहुत सम्भव है कि तबतक वे शायद उन्हें भी सर्वथा अनावश्यक लगें; बशर्ते कि हम जाहिरा तौर पर जानबूझकर चुने गये और प्रयोगमें लाये गये अहिंसात्मक उपायोंसे अपनी स्वतन्त्रता तक पहुँचें।

अपने देशवासियोंके साथ अभी मेरा सहयोग हमारी बेड़ियाँ तोड़नेके सवाल तक ही है। उन्हें तोड़ देनेके बाद हम कैसा अनुभव करेंगे या क्या करेंगे यह मेरी या उनकी समझसे परे है।

यह सोचनेसे कोई लाभ नहीं कि मेरी जगहपर टॉल्स्टॉय होते तो क्या वे मुझसे कुछ भिन्न ढंगसे काम करते। मेरे लिये यूरोपमें अपने मित्रोंको इतना आश्वासन देना काफी है कि अपने एक भी काममें मैं जानबूझकर हिंसाके अनुमोदनका दोषी नहीं हुआ हूँ और न मैंने अपने सिद्धान्तसे ही कभी समझौता किया है। यहाँतक कि बोअर युद्ध[1] और जुलू क्रान्तिमें[2] ब्रिटेनकी ओरसे मैंने जो हिस्सा लिया उससे जो हिंसा कार्यमें हाथ बँटानेका आभास होता है, वह भी अहिंसाके हितमें एक अनिवार्य स्थिति को मान्यता देना था। तथापि यह सम्भव है कि मेरा उनमें भाग लेना मेरी दुर्बलता या अहिंसाका सार्वभौम नियम किस तरह काम करता है, यह न जाननेकी कमीके कारण हुआ हो। मुझे न तो तब इस दुर्बलता या अज्ञानका दोषानुभव हुआ न आज ही मुझे वैसी प्रतीति होती है।

एक अहिंसात्मक व्यक्ति स्वभावतया हिंसापर आधारित किसी शासन-प्रणालीमें, जिसमें उसके मजबूरन शामिल होनेके सिवा और कोई चारा ही न हो, प्रच्छन्न रूपसे भाग लेनेके बजाय सीधे ढंगसे भाग लेना पसन्द करेगा। मैं एक ऐसी दुनियाका व्यक्ति हूँ, जो आंशिक रूपसे हिंसापर आधारित है। यदि मुझे इन दोनों बातोंमें से ही चुनाव करना पड़े कि अपने पड़ोसियोंको मारनेके लिए सिपाहियोंकी सेनाके लिए धन दूँ या खुद सिपाही बन जाऊँ तो मैं अपने सिद्धान्तके अनुरूप सिपाहियोंमें नाम दर्ज करवाऊँगा और हिंसाकी शक्तियोंका नियन्त्रण और अपने साथियोंका हृदय-परिवर्तनतक करनेकी आशा रखूँगा; मेरे लिए यही उचित हो सकता है।

राष्ट्रीय स्वतन्त्रता कोई काल्पनिक चीज नहीं है। यह उतनी ही आवश्यक है, जितनी कि व्यक्तिगत स्वतन्त्रता। परन्तु इन दोनोंमें से कोई भी चीज यदि अहिंसा पर आधारित है तो वह शायद अपनी तरह स्वतन्त्र किसी भी राष्ट्र या व्यक्तिकी स्वतन्त्रताके लिए कोई खतरा नहीं बन सकती। जो बात व्यक्तिगत और राष्ट्रीय स्वतन्त्रतापर लागू है वही अन्तर्राष्ट्रीय स्वतन्त्रतापर भी लागू है। कानूनका

१. देखिए खण्ड–३।

२. देखिए खण्ड–५।

यह कथन कि अपनी सम्पत्तिका उपभोग इस तरह करो कि किसी दूसरेको असुविधा न हो, जितना कानूनसे सम्बन्धित है उतना ही नीतिसे भी है। यह ठीक ही कहा गया है कि ब्रह्माण्ड अणुमें समाहित है, अणुके लिए एक नियम और ब्रह्माण्डके लिए दूसरा नियम नहीं है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ३०-१-१९३०

४१६. टिप्पणियाँ

बंगालके देशभक्त

श्री सुभाष बोस और उनके साथियोंको देश-सेवा करनेका साहस दिखानेपर एक-एक सालकी कड़ी कैदकी सजा दिये जानेपर मैं उन्हें बधाई देता हूँ। बंगालमें दलबंदी और आपसी मतभेद कितना ही क्यों न हो, बंगालकी वीरता और उसके स्वार्थत्यागमें कभी कमी नहीं आ सकती। सजाके इन आदेशोंपर देशकी एक ही प्रतिक्रिया हो सकती है और वह यह कि हम सरकारी जेलोंको इतना भर दें कि सरकार हमें कैद करते-करते थक जाये। कभी-कभी कुछ लोगोंकी रिहाईसे जनता-का ध्यान अपने सच्चे लक्ष्यसे हट जाता है; सच्चा लक्ष्य तो यह है कि ऐसे मुकदमोंका चलाया जाना ही असम्भव बना दिया जाये और यह केवल तभी होगा जब ब्रिटिश लोगोंका दृष्टिकोण बदल जाये, या जब हम अपने गौरवके अनुकूल सरकारी जेलोंको भरकर स्थिति ऐसी बना दें कि और अधिक लोगोंको गिरफ्तार करनेका कोई अर्थ ही न बचे। अगर कैदके कारण एक भी आदमी तथाकथित अपराध करनेसे न डरे तो कोई भी सरकार लोगोंको कैदमें नहीं डालेगी।

चौवालीस आदमी मरे

श्रीयुत बनारसीदास चतुर्वेदी और पण्डित भवानी दयालने नीचे लिखा तार भेजा है :

वेस्ट इंडीजसे आनेवाले 'सतलज' पर गन्दा भोजन तथा रहनेका प्रबन्ध और भी बुरा होनेके कारण ४४ प्रवासी मर गये। पत्र भी भेज रहे हैं।

मैं पत्रकी प्रतीक्षामें हूँ। किन्तु यह संक्षिप्त समाचार ही यह बतानेके लिए काफी है कि अभी कुछ दिन पहले प्रवासियोंके सम्बन्धमें जो दुःखद घटना घट चुकी है, उसके बाद भी उनके साथ किये जानेवाले व्यवहारकी पुरानी पद्धतिमें कोई सुधार नहीं किया गया है। सारे मामलेकी पूरी-पूरी जाँच होनी चाहिए और जो देश अपने लिए मेहनत-मशक्कत करनेवाले लोगोंकी जानकी परवाह नहीं करते, उन्हें मिलने-वाली सभी सुविधाएँ बन्द कर दी जानी चाहिए।

स्थानीय बोर्ड

मानभूम जिला बोर्ड और पुरुलिया नगरपालिकाके सदस्य श्री शशधर गांगुली लिखते हैं:[1]

मैं इस पत्रमें दिये गये सुझावका हृदयसे अनुमोदन करता हूँ। कोई भी ऐसी नगरपालिका, जिसका प्रतिनिधित्व राष्ट्रवादी करते हों, कौन-सी छुट्टियाँ मनाई जायें और कौन-सी नहीं इस सम्बन्धमें कोई आदेश नहीं स्वीकार कर सकती। देशभक्तोंकी स्मृतिमें किसी अन्य छुट्टीकी आड़में, छुट्टी रखना तो उन दिवंगत देशभक्तोंकी स्मृतिका अपमान होगा। हर राष्ट्रवादी नगरपालिका और स्थानीय या जिला बोर्डको यह अधिकार है कि वह अपनी इच्छासे छुट्टियोंके दिन निश्चित करे।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ३०-१-१९३०

४१७. राक्षसी विवाह

श्री बनारसीदास चतुर्वेदी लिखते हैं:

बड़ी लज्जाके साथ मैं आपका ध्यान 'माथुरी हितैषी' के ३० दिसम्बरके अंकमें प्रकाशित 'मथुरामें बाल-विवाहोंकी भरमार' शीर्षक लेखकी ओर आकर्षित करता हूँ। ये विवाह हमारी माथुर चतुर्वेदी जातिमें हुए हैं। २ वर्ष और २॥ वर्ष और ३ वर्षकी कन्याओंके विवाह करनेका दुर्भाग्य हमारी जातिको ही प्राप्त है। काफी आन्दोलन किया गया। हमारी जातिके प्रतिष्ठित नेता श्री राधेलालजी चतुर्वेदीने बहुत प्रयत्न किया, पर ये बाल-विवाह नहीं रोके जा सके। पिछले वर्ष तो ८ महीने और सवा सालकी लड़कियोंकी शादी की गई थी। समझमें नहीं आता कि इन लोगोंका क्या इलाज किया जाये। यह बात ध्यान देने योग्य है कि हम लोग, यानी चतुर्वेदी समाज, अपनेको सर्व-श्रेष्ठ ब्राह्मण समझते हैं और दूसरे ब्राह्मणों तकके हाथकी रोटी खानेमें पाप मानते हैं।

जिन विवाहोंका वर्णन बनारसीदासजीने किया है, ऐसे विवाहोंको राक्षसी न कहें तो क्या कहें? दुःखकी बात यह है कि ऐसे विवाहोंमें हिस्सा लेनेवाले लोग प्रतिष्ठित रहते हैं। इससे उनको रोकनेमें बहुत कठिनाइयाँ पैदा होती हैं, और इसके साथ जब धर्मको मिलाया जाता है, तब तो कठिनाइयोंकी मात्रा और भी बढ़ जाती है। कैसे भी हो, सब उपद्रवोंके लिए सत्याग्रह एक सम्पूर्ण उपाय हो सकता है; हमेशा, हर हालतमें सत्याग्रहका प्रयोग करनेकी हममें शक्ति नहीं होती, या प्रयोग करनेका तरीका हमको मालूम नहीं होता, यह दूसरी बात है। इससे सत्याग्रहकी

१. पत्र यहाँ नहीं दिया जा रहा है। पत्र-लेखकने पूछा था कि क्या स्थानीय संस्थाओंको नौकरशाही आदेशोंका प्रतिरोध करके उसका परिणाम भोगना चाहिए।

नहीं, लेकिन सत्याग्रहीकी सीमा जाहिर होती है। एक प्रयोग उपरोक्त परिस्थितिमें प्रत्येक मनुष्य कर सकता है: जिस घरमें ऐसे विवाहका आदर किया जाये, उसका त्याग करना चाहिए और उसकी तरफसे किसी प्रकारकी मदद नहीं लेनी चाहिए। जैसे कि पिता अगर अपनी छोटी लड़कीको ब्याहना चाहता है या उसे बेचना चाहता है, तो उस हालतमें उस घरके सब लड़कियाँ, लड़की या कोई एक ही, जिसमें शक्ति है, पिताके घरका त्याग करे और उसकी तरफसे कुछ भी मदद न ले। ऐसा करनेसे पिताके हृदयपर कुछ-न-कुछ असर अवश्य होगा। परन्तु असर न भी हो तो भी जिन्होंने त्याग किया है, वे इस पापसे बच जायेंगे। साथ ही उन्हें श्रद्धा रखनी चाहिए कि ऐसे त्यागका अन्तिम परिणाम शुभ ही हो सकता है। मैंने तो दृष्टान्त रूपसे ऐसे मौकेपर सत्याग्रहका यह एक ही प्रयोग बतलाया है। परिस्थितिको देखकर प्रत्येक सत्याग्रही और भी प्रयोगोंकी तलाश कर सकता है।

हिन्दी नवजीवन, ३०-१-१९३०

४१८. पत्र : रेहाना तैयबजीको

१ फरवरी, १९३०

प्रिय रेहाना,

मुझे तुम्हारा मधुर पत्र मिला। २६ [जनवरी] का दिन महान दिन था। मेरे आशीर्वाद सदा तुम्हारे साथ हैं। तुम्हारे दिन गाते-गुनगुनाते बीतें।

बापू

अंग्रेजी (एस० एन० ९६१३) की फोटो-नकलसे।

४१९. पत्र : वसुमती पण्डितको

आश्रम, साबरमती
१ फरवरी, १९३०

चि० वसुमती,

तुम्हारा पत्र मिला। अब तो तुम आ ही रही हो इसलिए विशेष कुछ नहीं लिख रहा हूँ। इस बार मैं सोच रहा हूँ कि जहाँ मैं बैठता हूँ उसके बगलकी कोठरी तुम्हें दे दी जाये। जयसुखलाल और काशीके घर खाली पड़े हैं। किन्तु ये दोनों घर इतने बड़े हैं कि उनमें बहुत-से लोग रह सकते हैं। आजकल हृदयकुंज[1] ठसाठस भरा हुआ है। तुम हृदयकुँजमें सो सकती हो किन्तु इस बारेमें और अधिक विचार तो तुम्हारे यहाँ पहुँच जानेके बाद करूँगा।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती पत्र (एस० एन० ९२७९) की फोटो-नकलसे।

१. आश्रममें गांधीजीकी कुटिया।

४२०. पत्र : ब्रजकृष्ण चाँदीवालाको

आश्रम साबरमती
१ फरवरी, १९३०

चि० ब्रजकृष्ण,

तुम्हारा खत मिला। ऐसे हारना नहीं। बीजापुरका जलवायु अगर सबसे अच्छा लगे तो अवश्य वहां चले जाय। बारडोलीका लगे तो वहां। और गरमीके दिनोंमें ताड़ीखेतमें रह सकते हैं। तबीअतको सुधरना होगा ही। अगर बीजापुर तरफ मन दौडता हो तो यहां आ जाय उस वख्त मोरबीका भी विचार कर लेंगे।

बापूके आशीर्वाद

जी० एन० २३७४ की फोटो-नकलसे।

४२१. टिप्पणियाँ

खाखरेची-सत्याग्रह

खाखरेची-सत्याग्रहको सादा और छोटा सत्याग्रह कहा जा सकता है। इस सत्याग्रहमें किसानोंकी एक छोटी-सी माँग थी। लेकिन इस सत्याग्रहके मूलमें किसानोंकी जो हिम्मत थी, वह काठियावाड़ और उसके एक कोनेमें बसे हुए राज्यकी दृष्टिसे आश्चर्यजनक थी। यह बात तमाम राज्योंके लिए ध्यान देने योग्य है कि किसानोंने स्वयं ही सत्याग्रह छेड़ दिया था। किसानोंकी माँग इतनी वाजिब थी कि कोई भी उसका विरोध नहीं कर सकता था। जिस अन्यायको लेकर सत्याग्रह किया गया था, वह अन्याय स्पष्ट था। दुःख और आश्चर्यकी बात है कि दरबारने किसानोंको लगभग डेढ़ महीने तक सताया। सत्याग्रह-संगठनका इन किसानोंकी मददको पहुँचना उसका कर्त्तव्य ही था। सत्याग्रहियोंने धैर्यपूर्वक दुःख सहे मगर मर्यादाका उल्लंघन कहीं भी नहीं होने दिया। तदर्थ वे धन्यवादके पात्र हैं। यह कहना कठिन है कि इस सत्याग्रहकी समाप्तिपर दरबारने विवेकसे काम लिया है। हाँ, किसानोंके साथ थोड़ा न्याय करके और कुछ न्याय करनेका वचन देकर उन्हें सन्तुष्ट जरूर कर दिया गया है। इसके लिए दरबार धन्यवादकी अपेक्षा रखें तो वह उन्हें मिल सकता है, लेकिन मुझे जो समाचार मिले हैं, उनसे तो मालूम होता है कि दरबारने सत्याग्रह-संगठनके साथ जो बर्ताव किया उसमें विनय, विवेक और सभ्यताका अभाव था। दलके सदस्योंका बरताव मर्यादापूर्ण होते हुए भी दरबारका उन्हें राज्यसे बाहर निकलवा देना और सिपाहियोंका उनके साथ उद्दंडताका व्यवहार करना, आदि बातें दरबारको शोभा

नहीं देतीं। फलस्वरूप सत्याग्रहकी विजयके बाद जो सुगन्ध फैलनी चाहिए थी वह नहीं फैली, यह दुःखकी बात है। प्रत्येक काठियावाड़ीको इस बातकी आशा रखनेका अधिकार है कि अपनी शान्तिप्रियताके लिए प्रसिद्ध श्री मणिलाल कोठारी, श्री फूलचन्द आदि कार्यकर्त्ताओंके साथ काठियावाड़के तमाम राज्य सभ्यतापूर्ण बरताव करेंगे। इस छोटेसे सत्याग्रहसे राजा और प्रजा दोनों अपने-अपने अनुरूप सबक सीखें।

बाल-विवाह

एक पाटीदार नवयुवक लिखता है:[1]

ऐसी हालत बहुतोंकी होगी। उन सभीको मैं यही सलाह दूँगा कि वे दृढ़तापूर्वक ऐसे विवाह-बन्धनोंमें बँधनेसे इनकार कर दें और फलस्वरूप जो भी मुसीबतें आयें उन्हें सह लें। ऐसे विवाह हमारी मानसिक कमजोरीके चिह्न हैं। यह कमजोरी सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक और आध्यात्मिक उन्नतिमें बाधक है, इसलिए एक क्षेत्रमें अगर हम अपने मनोबलका परिचय दे सकें तो उसका असर दूसरे क्षेत्रों पर भी अवश्य पड़ेगा। अतएव ऐसे नवयुवकोंको मैं विशेष रूपसे यह सलाह दूँगा कि उन्हें चाहे जितने कष्ट क्यों न सहने पड़ें किन्तु उन्हें चाहिए कि वे बाल-विवाह इत्यादि कुरीतियोंके आगे न झुकें। गुरुजनोंके प्रति पूरी तरह नम्रतापूर्ण व्यवहार करते हुए भी उन्हें उतनी ही दृढ़तापूर्वक सत्यके आग्रहकी रक्षा करनी चाहिए। सत्यके आग्रहसे शून्य विनय, विनय नहीं बल्कि खुशामद है, दम्भ है अतएव वस्तुतः वह अविनय है।

मृत्यु-भोज

विसनगर नागर युवक-संघके मन्त्री लिखते हैं:[2]

ऊपर बाल-विवाहके बारेमें मैंने जो-कुछ कहा है, वही इस मामलेमें भी लागू होता है। मुझे आशा है कि मृत नवयुवकके पिता स्वयं ही अपना धर्म समझकर पुत्रकी मौतके बाद जातिवालोंको खिलानेकी जंगली प्रथाको त्याग देंगे। लेकिन अगर वे न मानें तो मुझे आशा है कि संघने जो निश्चय किया है उसपर वह दृढ़ बना रहेगा और इसमें विसनगरके सब नवयुवक संघकी सहायता करेंगे। इसमें युवकोंको सिद्धान्तके लिए अपने घरबार और बुजुर्गोंसे मिलनेवाली सहायताका त्याग करना और गुरुजनोंकी ओरसे किये जानेवाले बहिष्कारको सहनेके लिए तैयार होना और रहना चाहिए।

१. पत्र यहाँ नहीं दिया जा रहा है। १५ वर्षीय पत्र-लेखक तथा उसकी १० वर्षीय बहनका विवाह पिता द्वारा निश्चित कर दिये जानेपर उसने इन विवाहोंको रोकनेकी भरसक कोशिश की और असफल होनेपर गांधीजीको लिखा।

२. पत्र यहाँ नहीं दिया जा रहा है। १६ वर्षके एक युवकका देहान्त हो गया था और वह अपने पीछे १३ वर्षकी बालिका विधवा छोड़ गया था। उक्त युवकके पिता मृत्यु-भोज देना चाहते थे; किन्तु नवयुवकोंने इस भोजका बहिष्कार करनेका निश्चय किया था।

बारीकी

गत वर्ष दिसम्बरमें जब मैं वर्धामें था तो सत्याग्रह आश्रमके निवासियोंने खुदका कता-बुना बारीक खादीका एक थान मुझे दिया था। उस थानका पनहा इतना चौड़ा है कि उसमें से खादीकी धोतियाँ बनाई जा सकती हैं। उस थानको मैं अपने काममें नहीं ला सकता था। अतः मैंने उसके पैसे खड़े कर लेनेका निश्चय किया। उक्त थान पर रामेश्वरदासकी नजर पड़ी और उन्होंने उसके ५०० रु० देनेको कहा। उन्होंने यह भी कहा कि यदि मैं ये ५०० रुपये अन्य किसी मदमें देनेकी बजाय गुजरात विद्यापीठको दूँ तो उचित होगा। उन्होंने मुझपर यह प्रतिबन्ध भी लगा दिया कि विद्यापीठके कोषमें रुपयोंको उनके नामसे नहीं चढ़ाया जायेगा[1] और यदि चढ़ाया ही जाये तो खादीके थानकी बिक्रीसे प्राप्त रुपयोंके रूपमें चढ़ाया जाना चाहिए। मैंने इस शर्तको मंजूर कर लिया था और रुपये विद्यापीठको भेजते हुए यह लिख भेजनेकी जिम्मेवारी ली थी कि जैसा कि ऊपर कहा गया है उसीके अनुसार प्राप्ति स्वीकार कर ली जाये। मेरा कुछ ऐसा खयाल रहा कि मैंने तदनुसार प्राप्ति स्वीकार कर लेनेके लिए विद्यापीठको लिख दिया है, किन्तु उस रूपमें प्राप्ति स्वीकार होनेसे रह गई और प्रकाशित सूचीमें उस रकमको सेठ रामेश्वरदासके दानके तौरपर स्वीकार किया गया है। यह बात श्री रामेश्वरदासको खटकी। उन्हें ऐसा लगता है कि वे विद्यापीठको दान देनेका पुण्य नहीं ले सकते। इसके अतिरिक्त इस तरह दान देनेकी उनमें सामर्थ्य भी नहीं है। फिर इस गलत प्राप्ति स्वीकारको देखकर यदि कोई इस प्रकारके दानकी आशा करे और उसे निराश करना पड़े तो यह भी ठीक न होगा। इसलिए रामेश्वरदासने वास्तविकताको प्रकाशित करनेकी माँग की है, जो कि मैं प्रस्तुत टिप्पणी द्वारा कर रहा हूँ। इस दानके पुण्यके भागी सीधे-सीधे या प्रकारान्तरसे अथवा खादी प्रचारके बहाने रामेश्वरदास ही हैं। फिर भी शुद्ध व्यवहारके इच्छुक रामेश्वरदासने जिस संशोधनकी माँग की थी, वह यहाँ कर दिया गया है। मुझे आशा है कि इससे उन्हें सन्तोष होगा। इस बहाने मैं विद्यापीठके शुभेच्छुओंसे यह अनुरोध करना चाहता हूँ कि विद्यापीठकी झोली अभी पूरी नहीं भरी है, अतः वे उसे भर दें।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २-२-१९३०

१. गांधीजीके उत्तरके लिए देखिए "पत्र: रामेश्वरदास पोद्दारको", २३-१-१९३०।

४२२. पत्र: सी० एफ० एन्ड्रयूजको

२ फरवरी, १९३०

प्रिय चार्ली,

तुम तो मुझे लगभग नियमित रूपसे पत्र लिखते रहे, लेकिन तुम्हारे घूमते[1] रहनेके कारण मैं यह नहीं जान सका कि तुम्हें किस पते पर लिखूँ। तुम्हारे अन्तिम पत्रसे मुझे तुम्हारा निश्चित पता मिल गया है। इसलिए मुझे उम्मीद है कि तुम चाहे जहाँ हो, यह तुम्हारे पास सुरक्षित रूपसे पहुँच जायेगा।

मैंने 'न्यू रिपब्लिक'में तुम्हारा लेख पढ़ा है। मैं इसे 'यंग इंडिया'में नहीं ले रहा हूँ। इसलिए, जैसा कि तुम चाहते हो, यह बरेलवीके[2] पास भेजा जा रहा है।

घटनाएँ काफी तेजीसे आगे बढ़ी हैं। यदि किसी तरह हालत सँभालनी है तो हिंसाकी भावनाका अहिंसात्मक कार्यसे ही सामना किया जाना चाहिए, मुझे अब यह बात इतनी साफ दिखाई दे रही है जितनी कि पहले कभी नहीं दिखाई दी। सरकारकी बढ़ती हुई हिंसा, कई रूपोंमें अभिव्यक्त हो रही है — जैसे उदाहरणके तौर पर सूक्ष्म ढंगसे किया जानेवाला शोषण और उस शोषणके परिणामस्वरूप आवश्यक हो जानेवाले मुकदमे। मैंने अहिंसाका जो व्यापक अर्थ दिया है, तुम उसपर ध्यान दो। लालच, चोरी, असत्य, कुटिल कूटनीति — ये सब हिंसात्मक चिन्तन और कार्यके विविध पहलू या परिणाम हैं। इस हिंसाकी चिन्तनशील और शिक्षित लोगों पर तीव्र प्रतिक्रिया हो रही है और वह दिनोंदिन बढ़ती जा रही है। इसलिए मुझे इस दोहरी हिंसाका सामना करना है। आज जैसे समयमें चुपचाप बैठे रहना कायरता नहीं तो मूर्खता जरूर है। मैंने बड़ेसे-बड़े खतरे उठानेका दृढ़ निश्चय कर लिया है। मैं गम्भीर और प्रार्थनामय चिन्तनके परिणामस्वरूप इस निश्चित निर्णयपर पहुँचा हूँ। यह सब-कुछ लाहौरमें मेरे सामने स्पष्ट हो गया था। अभीतक कार्यवाहीकी पद्धति साफ समझमें नहीं आई है। वह सविनय अवज्ञा ही होगी। वह कैसे चलाई जाये और उसे मेरे अलावा और कौन चला सकता है, यह भी अभी बिलकुल साफ समझमें नहीं आया है। परन्तु वह चमकीला आवरण जो सत्यको ढके हुए है, दिनोंदिन क्षीण होता जा रहा है और शीघ्र ही नष्ट हो जायेगा।

जब मैंने यह पत्र लिखना शुरू किया था मेरी यह सब लिखनेकी बिलकुल इच्छा नहीं थी। परन्तु यह सब-कुछ तुम्हारे सामने आ गया।

गुरुदेव[3] मेरे साथ दो घंटे रहे। वह समय बड़ा आनन्ददायक रहा। वे काफी बूढ़े हो गये हैं। हम इस बार एक दूसरेके और नजदीक आये और मैंने इसे ईश्वरकी

१. कनाडा और अमेरिकामें।

२. सैयद अब्दुल्ला बरेलवी, **बॉम्बे क्रॉनिकलके** सम्पादक।

३. रवीन्द्रनाथ ठाकुर।

बड़ी कृपा मानी। हमने फिरसे मिलनेकी बात तय करली थी परन्तु बोमनजी अचानक उन्हें बड़ोदा ले गये।

मणिलाल, उसकी पत्नी और बच्ची यहाँ हैं। रामदासके यहाँ एक बच्चा हुआ है। वह बारडोलीमें है और वल्लभभाईके काममें मदद दे रहा है। महादेव अभी यहाँ है।

हमें प्रकाशकोंसे तुम्हारा पहला खण्ड[1] नहीं मिला। मैंने 'यंग इंडिया' के लोगोंसे एक प्रति खरीद लेनेके लिए कहा था। वह इस समय मेरी मेजपर है। मैंने पहला परिच्छेद पढ़ा है। इसमें मेरी धार्मिक मन:स्थितिको उचित ढंगसे प्रस्तुत किया गया है।

सस्नेह,

मोहन

[पुनश्च :]

मुझे यह उम्मीद है कि तुम्हें 'यंग इंडिया'की प्रतियाँ मिलती रही हैं।

अंग्रेजी (जी० एन० ९९७)की फोटो-नकलसे।

४२३. पत्र: वी० एस० श्रीनिवास शास्त्रीको

साबरमती
२ फरवरी, १९३०

प्रिय बन्धु,

मुझे आपके दो पत्र मिले। यदि आप किसी व्यक्तिको 'इंडियन ओपिनियन' का कार्य-भार सँभालनेके लिए भेज सकेंगे तो इसमें शक नहीं कि वह उसकी नीतिका निर्धारण, मेरे निर्देशोंके अनुसार नहीं, बल्कि आपके निर्देशोंके अनुसार करेगा। इसमें मेरे हस्तक्षेपकी कोई बात ही नहीं उठती।

अच्छा होता कि आप जो लिखना चाहते थे, मुझे लिख ही देते। आपको मालूम है कि मैं आपकी रायको कितना महत्त्व देता हूँ। यदि मैं आपकी चिन्तन-पद्धतिको अपना सकता, तो मुझे बड़ी भारी राहत मिल जाती। परन्तु मेरा दुर्भाग्य है कि मुझे कई बार अपने अत्यन्त प्रिय मित्रोंसे असहमत रहना पड़ा है। मुझे सन्तोष इसी बातका है कि इससे पारस्परिक स्नेहमें कभी कमी नहीं आई।

हृदयसे आपका
मो० क० गांधी

अंग्रेजी (जी० एन० २१९२)की फोटो-नकलसे।

१. सी० एफ० एन्ड्र्यूज द्वारा लिखित **महात्मा गांधीज आइडियाज** (१९२९)।

४२४. पत्र : डा० मु० अ० अन्सारीको

२ फरवरी, १९३०

प्रिय डा० अन्सारी,

क्या आप कृपया मोतीलालजीके[1] साथ जा सकेंगे? इससे दो प्रयोजन होंगे। आप उनका इलाज तो करेंगे ही, उनसे भी बड़े बीमार — हमारे देशका इलाज होनेमें भी मदद मिलेगी। कृपया मना[2] मत कीजियेगा।

मोतीलालजीसे कह दें कि मैं मिलनेपर उनकी प्रश्नावलीके[3] ११ प्रश्नोंका उत्तर दे दूँगा।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

अन्सारीके कागजात
सौजन्य : जामिया मिलिया पुस्तकालय, ओखला (दिल्ली)

४२५. पत्र : पुरुषोत्तमदास ठाकुरदासको

साबरमती
२ फरवरी, १९३०

प्रिय सर पुरुषोत्तमदास,

अंग्रेजीमें पत्र[4] लिखनेके लिए क्षमा याचनाकी कोई आवश्यकता नहीं थी। मेरा अपना खयाल ऐसा है कि यह अवमूल्यन ज्यादातर तो जान-बूझकर किया गया है;

१. वे कांग्रेस कार्यसमितिकी बैठकमें शामिल होनेके लिए अहमदाबाद जा रहे थे।

२. १० फरवरी, १९३० के अपने उत्तरमें डा० अन्सारीने "अप्रत्याशित व्यावसायिक उत्तरदायित्व आ पड़नेके कारण" अहमदाबाद जानेमें अपनी असमर्थता प्रकट की थी।

३. देखिए पृ० ४३२-३५ और ४५०-५६।

४. पुरुषोत्तमदासजीने लिखा था कि जैसा कि शायद आप जानते ही हैं कर्जोंके भुगतानसे इनकार की बातका, जिसका भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसने अपने लाहौर अधिवेशनमें प्रस्ताव सं० १० द्वारा अनुमोदन किया था, इंग्लैंड तथा भारत दोनों देशोंके सिक्योरिटी बाजारपर काफी असर पड़ा है। इस सप्ताहके दौरान एक पत्र प्रकाशित हुआ है जो भारत कार्यालय द्वारा लन्दनमें पूँजी लगानेवाले एक व्यक्तिको लिखा

और भारत कार्यालयसे लिखे गये पत्रका अभिप्राय हमें आतंकित करना है। साथ ही जब कांग्रेसके प्रस्तावका असर सचमुच महसूस होने लगेगा तो मैं जानता हूँ कि यदि ब्रिटिश सरकार सभी नुकसानोंको पूरा करनेको नहीं लिखेगी और ऐसा करनेकी स्थितिमें नहीं होगी तो सभी उत्तम समझी जानेवाली प्रतिभूतियोंमें भारी गिरावट आ जायेगी। मैं जानता हूँ कि रिपब्लिक पार्टी द्वारा जारी किये सभी नोट, जो युद्धकी घोषणाके पूर्व अपना पूरा मूल्य रखते थे, दक्षिण आफ्रिकी युद्धके दौरान कागजके पुर्जे रह गये थे; और मैं समझता हूँ कि पिछले युद्धके दौरान फ्रांस और जर्मनीमें भी यही हालत थी। यदि हमें भी इसी स्थितिसे होकर गुजरना पड़े तो इससे मुझे कोई आश्चर्य नहीं होगा। इस प्रस्तावका मैं यह अर्थ मानता हूँ कि जिन्होंने अपनी छोटी बचतें इन प्रतिभूतियोंमें लगाई हैं; ऐसे गरीब लोगोंको हानि नहीं होनी चाहिए और प्रस्तावमें उल्लिखित न्यायाधिकरण द्वारा अनुचित या अन्यायपूर्ण बताई गई देनदारियाँ ब्रिटिश सरकारके हवाले कर दी जानी चाहिए।

अन्तमें आप मुझसे इस बातमें सहमत होंगे कि प्रस्तावकी व्याख्या और अस्थायी अवमूल्यनका भी उतना महत्त्व नहीं है जितना इस बातका है कि भारत निकट भविष्यमें क्या कार्यवाही करने जा रहा है। हम संख्यामें काफी ज्यादा हैं और हमारा पक्ष इतना न्यायसंगत है कि यदि दूसरे दल कांग्रेस प्रस्ताव और कांग्रेसके प्रयत्नोंको न्यून माननेके बजाये उनका समर्थन करें –– चाहे अपनी कमजोरीकी वजहसे वे हमारे साथ मिलकर काम न कर सकें –– तो शहरोंके वर्तमान जीवनको बहुत क्षुब्ध किये बिना ही हम स्वतंत्र हो सकते हैं। हर हालतमें यदि गरीबोंपर लगे हुए करका भयंकर बोझ दूर किया जाना है तो शहरोंके जीवनमें आमूल परिवर्तन जरूरी है। आज शहरोंका जीवन ब्रिटिश प्रशासकों द्वारा स्थापित नकली और कृत्रिम स्तरसे सम्बन्धित है और वह लाखों लोगोंके जीवनसे मेल नहीं खाता। मुझे आशा है कि आप उनमें से नहीं हैं जिनका विश्वास है कि केवल संविधानमें परिवर्तन कर दिये जानेसे भूखी रैयत इस वक्त जो राजस्व दे रही है, उससे अधिक राजस्व दे सकनेकी स्थितिमें आ जायेगी; या जो राजस्व वह इस वक्त दे रही है उसे भी सुविधाके साथ दे सकनेकी स्थितिमें होगी। मेरी रायमें तो इन लोगोंके लिए स्वराज्यका केवल यही अर्थ है कि वे जो प्रत्यक्ष और परोक्ष कर दे रहे हैं उनमें कमी की जाये और उनकी मिल्कियत निश्चित कर दी जाये। यह तबतक नहीं हो सकता जबतक कि हम लोग जो आम लोगोंका शोषण करनेमें ब्रिटिश

गया है और मैं उसका उल्लेख यह दिखानेके लिए कर रहा हूँ कि कांग्रेसके इस प्रस्तावने लन्दनमें पूँजी लगानेवालोंके मनमें कैसी चिन्ता उत्पन्न कर दी है . . . आपको यह पत्र लिखनेका मेरा मुख्य उद्देश्य लन्दनमें पिछले दिसम्बरसे भारतीय स्टर्लिंग प्रतिभूतियोंमें भारी गिरावट आ जानेकी ओर आपका ध्यान दिलाना है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि भारत सरकारके कागजी सिक्कों, रुपयों या स्टर्लिंगके आजके स्वामियोंको काफी नुकसान उठाना पड़ रहा है; निरपराध लोगोंका नुकसान कराया जाये इसमें तो किसी भी तरहका विचार रखनेवाले राजनीतिज्ञोंके लिए लाभकी कोई बात नहीं है। देखिए "भाषण : अ० भा० कां० कमेटीकी विषय-समितिमें–२", १-१-१९३०।

प्रशासकोंके साझेदार हैं, स्वयं अपने दृष्टिकोणमें वही परिवर्तन लानेके लिए तैयार न हों जिसकी कि हम ब्रिटिश प्रशासकोंसे अपेक्षा रखते हैं।

हृदयसे आपका
मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

पुरुषोत्तमदास ठाकुरदासके कागजात फाइल सं० ९६, १९३०।
सौजन्य : नेहरू स्मारक संग्रहालय और पुस्तकालय

४२६. पत्र : महादेव देसाईको

मौनवार, ३ फरवरी, १९३०

चि० महादेव,

'इफ वी लैट गो' में[1] मुझे एक भी शब्द बदलने लायक नहीं मिला।

वल्लभभाईने खुद ही चार या पाँच दिनकी बात कही थी। चाहे दुनिया इधरसे उधर हो जाये किन्तु तुम्हें १२ तारीखको सुबह हाजिरी देनी ही होगी। अन्य लोगोंको तैयार करना भी तुम्हारा काम है न? दुर्गाने रोना बन्द किया या नहीं?

गुजराती अनुवादकी बात मैं समझता हूँ। अपना मौन भंग करनेके बाद हम इसका निर्णय कर लेंगे। यदि तुम आज निकल गये होगे तो तुम्हारे वापस लौटने पर हम इसका निर्णय कर लेंगे। मेरी गणनाके अनुसार तुम्हें ८ वीं तक लौट आना चाहिए। यदि दुर्गा जाना चाहे तो उसे भी साथ ले जा सकते हो।

मैं रेजिनॉल्डको पत्र भेजूँगा।

बापू

गुजराती (एन० एन० ११४७०) की फोटो-नकलसे।

१. ६-२-१९३० के **यंग इंडिया**में प्रकाशित महादेव देसाईकी टिप्पणी।

४२७. पत्र : रेजिनॉल्ड रेनॉल्ड्सको

सत्याग्रह आश्रम साबरमती
४ फरवरी, १९३०

प्रिय रेनॉल्ड्स,

साथके ये दो पत्र आपके लिए हैं।[1]

आशा है कि आपको मेरा पिछला पत्र मिल गया होगा। मैं चाहता हूँ कि लाहौरमें हम लोगोंके एक दूसरेसे अलग हो जानेके बादके अपने अनुभवोंको आप मुझे बतायें। मैं 'यंग इंडिया' को अपने मित्रोंको लिखा गया साप्ताहिक पत्र कहता हूँ। इसलिए मैं आशा करता हूँ कि आप उसे ध्यानसे पढ़ रहे होंगे।

और अधिक लिखवानेके लिए वक्त नहीं है।

हृदयसे आपका,
बापू

अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ४५२९)की फोटो-नकलसे।
सौजन्य : स्वार्थमोर कालेज, फिलाडेल्फिया

४२८. पत्र : सी० वाई० चिन्तामणिको

साबरमती
४ फरवरी, १९३०

प्रिय मित्र,

मैं यह पत्र एक नवयुवक अंग्रेज मित्र श्री रेनॉल्डका परिचय देते हुए लिख रहा हूँ। वह विशुद्ध सेवाकी भावनासे भारत आये हैं। उनका अपना कोई स्वार्थ नहीं है और उनके जो विचार हैं वे शायद किसी अत्यन्त प्रगतिशील राष्ट्रवादीको भी चौंका दें।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

श्रीयुत सी० वाई० चिन्तामणि
इलाहाबाद

अंग्रेजी (सी० डब्ल्यू० ४५३०)की फोटो-नकलसे।
सौजन्य : स्वार्थमोर कालेज, फिलाडेल्फिया

१. देखिए अगला शीर्षक।

४२९. तथ्य यह है

मुझे ऊपरकी गश्ती चिट्ठीको[1] प्रकाशित करते हुए खुशी हो रही है। मुझे श्री होरेस अलेक्जेंडरको निजी तौरपर जाननेका सौभाग्य प्राप्त है और मुझे विश्वास है कि वह एक सच्चे मित्र हैं। आपसी सौजन्यका तकाजा है कि मौजूदा हालतमें ज्यादा-से-ज्यादा स्पष्टवादिता बरती जाये। मैं भी उनकी और दूसरे अंग्रेज मित्रोंकी तरह ही इस बातके लिए उत्सुक हूँ कि परस्पर ऐसा सच्चा सहयोग होना चाहिए, जैसा बराबरीके लोगोंमें होता है। परन्तु बराबरीके भाव हैं नहीं। औपनिवेशिक स्वराज्यके एकमात्र मसलेपर बातचीत टूट गई; परन्तु वह ऐसे नहीं टूटी जैसे कि श्री अलेक्जेंडरने बताया है। इस प्रकारका कोई वचन देनेको नहीं कहा गया था कि "परिषदका परिणाम पूर्ण औपनिवेशिक स्वराज्यकी तत्काल स्थापना होगा।" की गई माँग वाइसरायके शब्दोंमें इस प्रकार है:

> **कांग्रेस दलकी ओरसे यह विचार व्यक्त किया गया था कि जबतक महामहिमकी सरकार पहले यह आश्वासन न दे कि परिषदका उद्देश्य औपनिवेशिक स्वराज्यके लिए योजनाका ऐसा प्रारूप तैयार करना है जिसका समर्थन करना महामहिमकी सरकार स्वीकार करेगी तबतक कांग्रेसके भाग लेनेमें बड़ी भारी कठिनाई होगी।**

श्री होरेस अलेक्जेंडरने जो-कुछ समझा है यह उससे बिलकुल भिन्न बात है। साइमन कमीशनके अलावा लॉर्ड इर्विन और मन्त्रिमण्डल दोनोंकी अपनी राय अवश्य होनी चाहिए। यह प्रत्येक व्यक्ति जानता है कि साइमन कमीशन अनुपयुक्त और असफल रहा है — यद्यपि यह स्वीकार करना शायद कूटनीतिक दृष्टिसे उचित न हो। यदि कमीशनके नाटकको अंग्रेज निर्वाचक मण्डलकी आँखोंमें धूल झोंकनेके लिए चलाये रखना आवश्यक हो तो यह एक रद्दी तमाशा है जिसमें भाग लेनेके लिए किसी भारतीय सुधारकको आमन्त्रित नहीं किया जाना चाहिए। साधारण आदमीकी भाषामें जबतक किसी सुधारकको यह विश्वास न हो कि मन्त्रिमण्डल और वाइसराय उसके पक्के समर्थक हैं तबतक उसे परिषदमें शरीक नहीं होना चाहिए; अन्यथा उसे बड़ी विपत्तिका सामना करना पड़ेगा। यदि वे सभी दल, जिनके आमन्त्रित किये जानेकी

१. यहाँ नहीं दी जा रही है। होरेस जी० अलेक्जेंडरने अपनी चिट्ठीमें लिखा था कि किस तरह ज्यादातर अंग्रेज लोग भारतीय स्थितियोंसे बिलकुल अनभिज्ञ रहे हैं और अन्तमें यह कहा था: "चाहे कुछ भी हो जाये मुझे विश्वास है कि आप यह नहीं भूलेंगे कि इंग्लैंडमें आपके मित्र हैं; और आप यह भी नहीं भूलेंगे — मुझे आशा है कि हम भी यह नहीं भूलेंगे — कि हम सब एक ही पिताके बच्चे हैं; यह तो हो सकता है कि हममें से कुछ एक बच्चे गलतीपर हों। वर्षके लिए हार्दिक शुभ कामनाओं सहित। यह वर्ष हमारी आशंकाओंको मिथ्या और उससे भी अधिक हमारी आशाओंको उचित सिद्ध करे।

सम्भावना है, इस बातपर सहमत हो सकें कि उन्हें क्या चाहिए तब तो फिर इतना ही प्रदर्शित करनेके लिए उन्हें लन्दन जानेकी आवश्यकता नहीं है। वाइसराय इस बातको जानते हैं, सारा संसार यह जानता है कि वे दल जिनको भारतीय विचार धाराका प्रतिनिधित्व करनेवाले समझा जाता है, आपसमें सहमत नहीं हैं और फिलहाल उनके सहमत होनेकी कोई सम्भावना भी नहीं है। वे जो भी प्रस्ताव करना चाहते हों उसके लिए उन्हें लन्दन आमन्त्रित करना उनके मतभेदोंको बढ़ाना है। तथ्य यह है कि वास्तवमें देशमें केवल एक दल ऐसा है जिसका जनसमुदायपर प्रभाव है। यह कांग्रेस है। उक्त माँगके बारेमें कांग्रेसियोंमें पूर्ण सहमति है। परन्तु मुझे यह स्वीकार करनेमें कोई हिचक नहीं है कि कांग्रेसको सरकारसे अभी इस तरहकी कोई मान्यता नहीं प्राप्त हो सकी है। इसके पास अपनी इच्छा मनवानेके लिए कानूनी ताकत नहीं है। इसलिए यदि कांग्रेस विरोधी विचारधारावाले लोगोंकी परिषदमें प्रतिनिधि भेजती है तो उसे निश्चित रूपमें यह तो अवश्य मालूम रहना चाहिए कि अंग्रेज सरकार करना क्या चाहती है। भारतको क्या मिलना चाहिए इस बारेमें कांग्रेस वहाँ कोई अनिश्चित मनःस्थिति लेकर नहीं जा सकती। इसलिए यदि परिषदको कोई उपयोगी काम करना है तो उसे केवल एक बात ध्यानमें रखनी चाहिए; और वह है भारतकी आवश्यकताओंके अनुकूल औपनिवेशिक स्वराज्य (अब स्वतन्त्रता) की योजना बनाना या उसकी सिफारिश करना। लॉर्ड इर्विन यह नहीं कर सके इसलिए बातचीत टूट गई।

श्री अलेक्जेंडरने और जो मुद्दे उठाये हैं, उनपर बातचीतके दौरान कभी कोई फैसला नहीं हुआ है। परन्तु अंग्रेजोंकी नीतिमें वास्तविक परिवर्तनका कभी कोई संकेत नहीं मिला। राजनीतिक मुकदमे या ज्यादा सही कहा जाये तो राजनीतिक उत्पीड़न कभी बन्द नहीं हुआ। और जबतक भारतमें रहनेवाले अंग्रेज सिर्फ यहाँके लोगोंकी सद्भावनापर ही रहनेमें सन्तोष नहीं मानेंगे तबतक यह बन्द भी नहीं हो सकता। और जबतक वे इस देशके भूखों रहनेवाले जन-समुदायका शोषण करना अपना अधिकार समझते हैं तबतक वे ऐसा नहीं करेंगे। हर भारतीय समस्याके प्रति उनके विचार करनेका आधार यह रहता है कि अंग्रेजोंके व्यापारको कभी कोई हानि नहीं होनी चाहिए। कांग्रेसियोंका यह मत है कि यदि भारतको किसी तरह जीवित रहना है तो अंग्रेजोंके व्यापारमें जैसा आज वह चल रहा है, आमूल परिवर्तन होना ही चाहिए।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ६-२-१९३०

४३०. स्वाधीनताके गर्भमें

पिछले अंकमें मैंने जिन अत्यावश्यक ११ माँगोंका जिक्र[1] किया था उनके कारण अंग्रेजी अखबारोंमें तूफान मचना स्वाभाविक ही है। अंग्रेज पूँजीपतियों और असलमें हरएक अंग्रेजके लिए उन बातोंका महत्व औपनिवेशिक स्वराज्यसे ही नहीं बल्कि पूर्ण स्वराज्यसे भी ज्यादा है। औपनिवेशिक स्वराज्य या पूर्ण स्वराज्यमें तो ऐसी शर्तें लगाई जा सकती हैं कि जिन बोझोंके कारण भारतवर्षको भूखों मरनेकी नौबत आई है, उनसे वह मुक्त ही न हो सके। अबतक सुधारोंके नामसे तथाकथित संवैधानिक आजादीकी ओर जो प्रगति हुई है उससे करोड़ों बेजबान लोगोंपर अधिक भार पड़ा है और अंग्रेजोंकी जेबमें ज्यादा पैसा गया है। अंग्रेज लोग औपनिवेशिक स्वराज्यके अन्तर्गत ऐसे भारतवर्षकी कल्पना कर सकते हैं, जो उनके लिए हमेशा सोनेकी चिड़िया बना रहे। वे औपनिवेशिक स्वराज्यसे डरते हैं तो इसका भी कारण यह है कि वह यदि सच्चा स्वराज्य हुआ तो उसका यह अर्थ होगा कि लगातार होनेवाले सब अन्याय दूर किए जा सकेंगे और इसलिए अन्यायपूर्ण बोझ चाहे वह भारत सरकारके नाम पर लिया गया कर्ज हो या वह फौज और बड़े-बड़े हाकिमोंको दिये गये आश्वासनके रूपमें हो या भारतको हानि पहुँचाकर अंग्रेजी मालके साथ रियायतकी शक्लमें हो या अंग्रेज व्यापारियों, पूँजीपतियों अथवा व्यावसायिक खोजियोंपर की गई कृपाओंके रूपमें हो, अस्वीकार किया जा सकेगा।

अत: यदि सच्ची गोलमेज परिषद की जानी है, चाहे वह आज हो या कल, तो हमें यह जान लेना चाहिए कि २६ जनवरीके विलक्षण समारोहमें क्या रहस्य छिपा हुआ है। आम जनता समझती है कि उसके उस भारको जिसे वह कुछ-कुछ अनुभव करती है, परन्तु ठीक-ठीक बता नहीं सकती, कांग्रेस दूर कर देगी। मेरा यह दावा है कि उन ११ माँगोंको तैयार करके मैंने यथाशक्ति जनताके भावोंको एक हदतक मूर्तरूप दिया है।

यह समझना मुश्किल नहीं है कि इन माँगोंपर इंग्लैंडमें इतनी नाराजगी क्यों पैदा हो गई है, और किसी भी हालतमें 'राष्ट्रीय ऋण' को अस्वीकार करनेके विचार मात्र पर मालकम हेली साहब आपेसे बाहर क्यों हो गये हैं। परन्तु जब कोई भी नाबालिग बड़ा हो जाता है तो उसे ऐसा करनेका अधिकार तो मिलता है न? अगर उसे यह मालूम हो जाये कि मेरे अभिभावकने मेरा नुकसान करके अपना फायदा किया है तो वह अभिभावकसे उसके दुराचरण, गबन या विश्वासघात या, ऐसी खुदगर्जीको किसी भी नामसे पुकारा जाये, उसकी कीमत वसूल कर लेता है। बात यह है कि जबतक अंग्रेज यह न समझ लें कि हमने बेईमानीसे जो फायदा उठाया है उसका कुछ हिस्सा वापस देना पड़ेगा और भविष्यमें हिन्दुस्तानसे किसी-न-किसी

१. देखिए "पर्दाफाश हो गया", ३०-१-१९३०।

बहाने प्रतिवर्ष खींचकर इंग्लैंडमें लाये जाने वाले धनकी आशा छोड़नी होगी, तबतक मूक जनताके मामलेपर न भारतवर्षमें और न इंग्लैंडमें ही ठंडे दिलसे विचार करनेके लिए अनुकूल वातावरण तैयार होगा। इस लूटके बन्द होनेके दो अर्थ हैं। एक तो यह कि इस देशके जो शहरी लोग अपने अंग्रेज सेठोंसे ली हुई दलालीपर गुजर करते हैं, उन्हें अपनी आदतें बदलनी पड़ेंगी। दूसरा यह कि अंग्रेज जातिको भी अपने रहन-सहनमें तबदीली करनी पड़ेगी, क्योंकि उनकी खातिर हिन्दुस्तानसे जो करोड़ों रुपया लूटा जाता है, उसका मिलना अकस्मात बन्द हो जायेगा।

यह तो जाहिर है कि किसानोंसे जो धन लिया जाता है वह न तो वे राजी-खुशीसे देते हैं और न वह उनके फायदेके लिए उन्हें विवश करके लिया जाता है। अंग्रेजोंने शान्ति नामकी जो चीज स्थापित की है उसका गाँवोंपर कोई असर नहीं पड़ता, क्योंकि वे तो तैमूर और नादिरशाहके आक्रमणोंसे भी अछूते ही बने रहे थे। आज भी यदि अराजकता फैल जाये तो भी गाँव उससे अछूते ही बने रहेंगे। परन्तु सिर्फ इसीलिए कि यह भारी बोझ लोगोंपर लादा भी जा सके और वे कोई प्रतिकार भी न कर सकें, पशुबल (सेना आदि) इतने अधिक प्रमाणमें संगठित किया गया है कि जितना पहले कभी नहीं हुआ था और उसकी ऐसी धूर्ततापूर्ण व्यवस्था की गई है कि आम लोग न तो उसे आसानीसे देख सकते हैं और न अनुभवकर सकते हैं। मुझे तो अंग्रेजोंका शासन हमेशासे हिंसाका मूर्तरूप दिखाई दिया है। कुछ जहरीले साँप ऐसे भी होते हैं कि उन्हें देखते ही आदमीके हाथ-पैर ठंडे हो जाते हैं। फिर उसे अपनी विषकी शक्ति आजमानेकी आवश्यकता ही नहीं रहती। मुझे दुःखके साथ कहना पड़ता है कि ब्रिटिश सत्ताका भी हम भारतवासियोंपर ठीक ऐसा ही असर हुआ है। 'फ्राइटफुलनेस' शब्द हिन्दुस्तानियोंका गढ़ा हुआ नहीं है। जलियाँवाला हत्याकाण्डका तादृश चित्र खींचनेके लिए एक अंग्रेज न्यायाधीशने[1] इस शब्दका प्रयोग किया था। और अगर हम अपना सिर ऊँचा करके यह कहनेका साहस करें कि 'भारतको चूसकर निःसत्व बना देनेवाली इस लूटको हम अब और अधिक समय तक सहन नहीं कर सकते, तो हमारे लिए और भी अनेक हत्याकाण्ड तैयार हैं।

हम यह भी समझ लें कि संगठित पशुबल किस प्रकार काम करता है और इसलिए एकाएक भड़की हुई अविचारपूर्ण और यत्र-तत्र फैली हुई हिंसाके मुकाबले वह बहुत ज्यादा घातक होता है। सुनियोजित पशुबल अपना काम अकसर धूर्तता और छलकी आड़में छिपकर करता है। हम देखते हैं कि सदिच्छाकी घोषणाओं, कमीशनों, परिषदों और इसी तरहकी दूसरी बातोंके कपट-जाल द्वारा वह अपना काम बनाता है। यही नहीं, बल्कि लोकहितके कामोंका रूप देकर अन्यायी उनके द्वारा स्वयं लाभ उठाता है। लालच और कपट बहुधा हिंसाकी सन्तान भी होते हैं और उसके जनक भी। हिंसा अपने नग्नरूपमें लोगोंको उसी तरह बुरी लगती है, जिस तरह मांस, रक्त और कोमल त्वचासे शून्य एक नर-कंकाल बुरा लगता है।

१. जस्टिस रैंकिन।

ऐसी हिंसा बहुत समयतक नहीं टिक सकती। लेकिन जब वह तथाकथित शान्ति और प्रगतिका बाना पहन लेती है, तो काफी लम्बे समयतक बनी रहती है।

'हिरण्मयपात्र' से ढका हुआ यह आतंकमय पशुबल कमजोरीकी हिंसाको भड़काता है और फिर उनकी हिंसा भी अकसर छिपे रूपमें और कभी-कभी खुले तौरपर खुलकर खेलती है।

अहिंसाको इस दोहरी हिंसाके बीच अपना काम करना है। लेकिन अगर अहिंसा मनुष्य जातिका सर्वोच्च नियम है, शाश्वत धर्म है, तो बड़ीसे-बड़ी बाधाओंका मुकाबला करके भी वह अपना रास्ता साफ कर सकेगी। सम्भव है कि जिस हिंसाका हमें सामना करना है वह हमें इतना कायर बना दे कि हम अपने लिए कोई अहिंसात्मक मार्ग ही न खोज सकें। अतएव अगर हमारे सामने खड़ी हिंसक शक्तिको हम अपने जीवन कालमें मात न दे सकें, तो इससे अहिंसाकी निरर्थकता सिद्ध नहीं होगी; हाँ, चारों ओर फैली हुई कायरताका यह सच्चा सबूत जरूर होगी।

अहिंसाके मार्गमें बड़ीसे-बड़ी बाधा तो अपने ही आदमियोंके विशेष स्वार्थ हैं, जिन्हें ब्रिटिश राज्यने जन्म दिया है। इनमें धनवान, सट्टेबाज, पावती पत्रधारी (स्क्रिप होल्डर), जमींदार और कारखानोंके मालिक वगैरा लोग शामिल हैं। ये सब सदा यह अनुभव नहीं करते कि वे आप लोगोंका खून चूसकर रह रहे हैं; और जब वे ऐसा महसूस करते हैं तो फिर अपने अंग्रेज मालिकोंकी तरह जिनके ये एजेंट और अस्त्र हैं, वे भी हृदयहीन बन जाते हैं। अगर जापानी सेमुराइयोंकी तरह ये भी समझ जायें कि आम लोगोंके खूनसे सने हुए मुनाफेको त्यागना धर्म है, तो फिर मैदान अहिंसाके लिए खाली हो जाता है। जब इन्हींके करोड़ों भाईबन्ध और देशवासी भूखों मरते हैं, तो इन्हें अपने करोड़ों रुपयोंको पापकी कमाई समझनेमें और विदेशी एजेंसियोंको त्याग देनेमें देर नहीं लगानी चाहिए। बगैर वफादार गुमाश्तोंके कोई भी सेठ अबतक अपने धन्धेमें कामयाब नहीं हुआ है।

लेकिन अहिंसावादियोंको तो इनके और इनके अंग्रेज सेठोंके प्रति धैर्य रखना ही होगा। अहिंसावादीका ध्येय तो सदा हृदय परिवर्तन ही होना चाहिए। हाँ, वह अनन्त कालतक प्रतीक्षा ही नहीं करता रह सकता। अतएव जब धैर्यकी सीमा हो जाती है, वह जोखिम उठानेको तैयार हो जाता है और सविनय अवज्ञा आदिके रूपमें सक्रिय सत्याग्रहकी योजनाएँ सोचने लगता है। वह इतना अधीर कभी नहीं होता कि अपने सिद्धान्तको ही छोड़ बैठे। लेकिन विरोधी वातावरणमें रहकर काम करनेके कारण उसे हिंसक शक्तियोंके मुकाबलेका जोखिम उठा लेना पड़ता है। क्योंकि इस मंजिलतक तो आपसी डरके कारण वे शक्तियाँ दबी पड़ी रहती हैं; जो डरका वह अंकुश न रहनेपर स्वच्छन्द हो जाती हैं। ऐसे समय सरकार तो अपनी और अमन-चैनकी रक्षाका नाम लेकर अपना खूनी पंजा फैलायेगी और क्रान्तिकारी दल शायद यह समझ बैठनेकी भूल कर डाले कि उसे मैदानमें आनेका मौका मिल गया। अहिंसावादी लोगोंको ऐसे समय हिंसाकी चक्कीके इन दोनों पाटोंके बीचमें पड़कर चूर हो जाना चाहिए। इसीसे उनके ध्येयकी उच्चता सिद्ध होगी। यदि ऐसा

कोई दल है तो फिर भारतको और संसारको कोई खटका नहीं। मेरी आशाओं और योजनाओंका आधार इसी बढ़ते हुए विश्वासपर है कि देशमें सच्चे अहिंसावादी लोगोंका ऐसा दल मौजूद है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ६-२-१९३०

४३१. टिप्पणियाँ

पूर्णाहुति

पाठकोंको यह तो याद होगा कि ब्रूमफील्ड कमेटीने[1] बारडोलीके किसानोंकी शिकायतोंको काफी हदतक उचित ठहराया था और सारे ताल्लुकेपर ८९,३७९ रु०का जो लगान बढ़ाया था उसे कम करके कुल ३०,८०६ रु० का इजाफा कायम रखा था। लेकिन इस सिफारिशमें कानूनी दोष था। लगता है कि सरकारने करीब ४० गाँवोंमें इस इजाफेकी रकमपर पुनर्विचार करके अपनी भूल सुधार ली है और अब वह ब्रूमफील्ड कमेटीकी सभी सिफारिशोंपर अमल करने जा रही है जिनमें गलत वर्गीकरणके कारण जिन जमीनोंपर अधिक मालगुजारी ली जाती थी, उनका ठीक वर्गीकरण करने, और इसी तरहके अन्य मामलोंके सम्बन्धमें सिफारिशें हैं। इन सबका पूरा-पूरा अमल होनेपर, सम्भव है, ताल्लुकेकी मालगुजारीकी रकम पहले जितनी ही रह जाये। और यह बारडोलीके ऐतिहासिक संघर्ष यज्ञकी पूर्णाहुति होगी। अतः महादेव देसाई कृत बारडोलीके इतिहासकी अंग्रेजी आवृत्तिके पाठक एक अंग्रेज मित्रने महादेव देसाईको जो लिखा है उसमें आश्चर्यकी कोई बात नहीं है। वह लिखते हैं: "स्वराज्यके लिए भारतवर्ष एक होकर योग्यतापूर्वक लड़ सकेगा या नहीं, लाहौर कांग्रेसको देखकर मुझे इस बारेमें शंका हुई थी, लेकिन आपकी 'बारडोलीकी कथा' पढ़कर मेरी शंका दूर ही नहीं हुई है, विश्वास भी बढ़ा है।"

कह सकते हैं कि लाहौर और बारडोलीमें जो भी हुआ सो सब कांग्रेसके कारण ही हुआ, फिर भी इन अंग्रेज मित्रने दोनोंमें जो भेद पाया है वह आसानीसे समझा जा सकता है। लाहौरमें जो-कुछ दीख पड़ा वह कांग्रेसके अच्छसे-अच्छे और कमजोरसे-कमजोर, दोनों पहलुओंका परिचायक था। वहाँ देशके सब प्रकारके प्रतिनिधि इकट्ठे हुए थे और उसका रूप एक ऐसी सभाका था जो सालभरमें एक बार विचार-विनिमयके लिए बैठती है। उधर बारडोली संघर्षमें जो दिखाई पड़ा वह संघर्षरत कांग्रेसका एक रूप था। उसकी अवधारणा भी कांग्रेसियोंने ही की थी। सरदार वल्लभभाई पटेल स्वयं प्रान्तीय कांग्रेस कमेटीके सभापति थे, उन्होंने सारे संघर्षमें कमेटीके सारे साधनोंका उपयोग किया था। जब यह अहिंसात्मक यज्ञ शुरू हुआ था, हिंसक शक्तियाँ ठण्डी होकर शान्त हो गई थीं। अब हमें यह देखना

१. जिसके सदस्य आर० एस० ब्रूमफील्ड और आर० एम० मैक्सवेल थे।

है कि पूर्ण-स्वराज्यका महायज्ञ कैसा होता है। स्थानिक अन्यायको दूर करनेके लिए जिन नियमोंके अनुसार बारडोलीमें सत्याग्रह हुआ था, वे ही नियम स्वातन्त्र्य संघर्षके इस महायज्ञ पर भी लागू होंगे। इसमें हाथ बँटानवाले याज्ञिकोंको दृढ़तापूर्वक अहिंसाका पालन करना होगा और जैसे बारडोलीके किसानोंने गैरवाजिब इजाफेकी गैरइन्साफीको महसूस करके सत्याग्रह छेड़ा था, वैसे ही इन याज्ञिकोंको भी देशकी मौजूदा गुलामीकी तकलीफ महसूस करनी होगी और बारडोलीके किसानोंने जिन तकलीफोंका अनुशासनसे सामना किया उससे भी ज्यादा तकलीफ और कठोरतम अनुशासनका उन्हें पालन करना होगा।

बारडोली और कवि ठाकुर

शान्तिनिकेतनके कवि 'बारडोलीका इतिहास' नामक पुस्तकके सम्बन्धमें महादेव देसाईको लिखते हैं:

> **मैंने आपकी बारडोलीकी कथाको पढ़ लिया है। वर्तमान युगमें यह अति विरल धर्मयुद्ध लड़कर लोगोंने एक निरंकुश सत्तासे न्याय पानेमें जो विजय प्राप्त की है उसका वर्णन पढ़ते समय एक नवीन महाभारतकी झाँकीके दर्शनसे होते हैं। मैं आपको और संग्रामके नेताको, सैनिकोंको और आपके बड़े रहनुमाको धन्यवाद देता हूँ। मेरा आशीर्वाद।**

कविवरने जिन-जिनपर अपने आशीर्वादकी वर्षा की है, वे उसे नम्रतापूर्वक स्वीकार करें और आगे हमें जो काम करना है उसके लिए हम सब योग्य बनें। जब महापुरुष किसी कामकी सिद्धिपर आशीष देते हैं तो उसमें आगे और भी बड़े कार्यकी सिद्धिकी आशाका भी समावेश रहता है।

[अंग्रेजीसे]
यंग इंडिया, ६-२-१९३०

४३२. पूर्ण स्वराज्य क्यों ?

एक बहन लिखती हैं:[१]

इस पत्रसे दो सवाल उठते हैं। मैं दूसरेको पहले लूँगा। 'स्वराज्य'को कोई विशेषण देना निस्सन्देह कलाके प्रति हिंसा है। लेखकका तर्क भी अकाट्य है। परन्तु बहुत बार राष्ट्रीय और इसी तरहके पेचीदे मामलोंमें तर्क और कलाको जाहिरा तौर पर न्यौछावर कर देना होता है। सारांशमें जिससे अच्छी भावना कार्यान्वित हो वही सच्चा तर्क और सच्ची कला है। कांग्रेस संविधानमें 'स्वराज्य'को दोहरा अर्थ दिया गया था, अर्थात् यदि हो सके तो वह साम्राज्यके भीतर और आवश्यकता पड़नेपर साम्राज्यके बाहर भी हो सकता था। इसलिए केवल दूसरे अर्थको

१. पत्र यहाँ नहीं दिया जा रहा है। पत्र-लेखिकाने अहिंसात्मक तरीकोंसे स्वतन्त्रता प्राप्त करनेकी राष्ट्रकी योग्यतापर सन्देह प्रकट किया था और "स्वराज्य" शब्दके साथ "पूर्ण" विशेषण जोड़नेके औचित्यपर आपत्ति की थी।

प्रकट करनेके लिए कोई शब्द या अभिव्यक्तिका माध्यम खोजना जरूरी था। 'स्वराज्य' शब्दके बिना हम काम नहीं चला सकते थे। इसलिए 'पूर्ण स्वराज्य' कहनेकी उपयोगिता है। मैं मानता हूँ कि यह कानोंको अच्छा नहीं लगता। परन्तु यदि इससे राष्ट्रका अभिप्राय पूरा होता है, जैसा कि हो रहा है, तो यह बड़ी जल्दी सुननेमें अच्छा लगने लगेगा। हम अस्पष्ट शब्दसे काम नहीं चला सकते थे।

पहले प्रश्नका समाधान करना पर्याप्त कठिन है। परन्तु स्वराज्य प्राप्तिका अर्थ है सब कठिनाइयोंपर विजय पाना। अहिंसा या वस्तुतः अहिंसक आदमियोंकी परीक्षा होती रहती है। उन्हें हिंसात्मक वातावरणसे घिरे रहनेके बावजूद युद्ध करनेका सर्वोत्तम तरीका निकालना पड़ता है। यदि अहिंसा केवल अनुकूल वातावरणमें ही पनपे तो इसका कोई अधिक महत्त्व नहीं है। तब यह अहिंसा नहीं होगी। तब उसका अर्थ आसानीसे हानिका भय माना जा सकता है। परन्तु मैंने जो राष्ट्रकी मनःस्थितिका अध्ययन किया है वह उक्त बहनके अध्ययनसे भिन्न है। जिन्हें अन्तमें संघर्षमें भाग लेना ही होता है उनपर मतभेद और झगड़ोंका असर नहीं पड़ता। संघर्षमें भाग लेनेवालोंकी सक्रिय अहिंसाके प्रति स्वाभाविक प्रतिक्रिया होगी। परन्तु चाहे यह प्रतिक्रिया हो या न हो, अहिंसाका प्रतिपादन करनेवालोंको अपने सारे साधन अब प्रयोगमें लाने चाहिए। अब और ज्यादा इन्तजार नहीं किया जा सकता, नहीं तो अहिंसाके सिद्धान्तकी खिल्ली उड़ाई जायेगी या वह स्वतः पूरी तरह बदनाम हो जायेगा और वह बदनामी ठीक भी होगी। यदि अहिंसाका सिद्धान्त काम नहीं कर सकता तो अपनी असमर्थता स्वीकार कर लेनी चाहिए और लड़ाईके मैदानसे हट जाना चाहिए।

[अंग्रेजीसे]
यंग इंडिया, ६-२-१९३०

४३३. विचारोंकी उलझन

एक सज्जन जो आनर्स और वकालत पास कर चुके हैं, लिखते हैं:[1]

इस पत्रसे पता चलता है कि एक प्रशिक्षित वकील भी अपने मनमें किसी विचारके घर कर लेनेपर किस तरह गलतफहमीमें पड़ जाता है। लिखते समय मेरे ध्यानमें वही वर्ग था जो इस भेंटको सफल नहीं होने देना चाहता था। इस वर्गने भारतकी शत्रुताका संकल्प नहीं किया है; वह तो भटके हुए देशभक्तोंका वर्ग है। दूसरे जिस वर्गका लेखकने जिक्र किया है वह, जिस वाइसरायकी रक्षाके लिए उसे वेतन दिया जाता है, उसकी हत्या करनेका षड्यन्त्र कभी नहीं रच सकता था। यों तो असम्भव कुछ भी नहीं है। परन्तु हम केवल सम्भावनाओंको ध्यानमें रखकर चल

१. पत्र यहाँ नहीं दिया जा रहा है। पत्र-लेखकने "बमकी उपासना", २-१-१९३० का जिक्र किया था और ऐसा संकेत भी किया था कि सम्भव है यह काम "कानून और व्यवस्थाके संरक्षकों" द्वारा अपना अस्तित्व युक्तिसंगत ठहराने या अपनी महत्ताको बढ़ा-चढ़ाकर अभिव्यक्त करनेके लिए ही करवाया गया हो और कहा गया था कि गांधीजी द्वारा इस कामकी निन्दासे सरकारको दमन करनेका और भी बड़ा आधार मिल जायेगा।

सकते हैं। इसके अलावा यदि षड्यन्त्रकारी सरकारी विभागसे सम्बन्धित हों तो भी हिंसाका यह कार्य निन्दनीय ही है। यदि कांग्रेस इस घटनाकी उपेक्षा कर जाये तो इससे उसपर अपने सिद्धान्तकी उपेक्षा करने या पाखण्डी होनेका आरोप लगे बिना नहीं रह सकता।

मेरे द्वारा हिंसात्मक आचरणकी निन्दा करना हिंसामें हाथ बँटाना कैसे हो सकता है? निन्दा की जाये या नहीं सरकार तो अपराधी दलोंको खोज निकालनेके लिए अपने तरीकेसे काम करेगी ही। यदि मैं दण्ड-विधान और उसकी धाराओंका अनुमोदन करूँ तो वह हिंसामें भाग लेना होगा। यदि मेरी चलती तो मैं जेलोंके दरवाजे खोल देता और हत्यारोंको भी रिहा कर देता। परन्तु मुझे यह मालूम है कि ऐसी राय रखनेवाला मैं मात्र अकेला व्यक्ति हूँ। बहरहाल अपराध और दण्ड सम्बन्धी अपने प्रिय सिद्धान्तोंकी चर्चा करके मैं पाठकोंका कीमती वक्त नहीं लूँगा।

लेखक हिंसक दलपर या उसे जिस किसी नामसे भी पुकारा जाये, मृत्युसे डरनेका आरोप लगाता है; ऐसा करना उनकी तारीफ करना नहीं हुआ। जब उन्होंने अपने आपको अपने सिद्धान्तके लिए भेंट कर दिया तो उनका अपने जीवन पर कोई अधिकार ही नहीं रहा। वे छिपकर रह रहे हैं; किन्तु उसका यह अभिप्राय नहीं कि वे मौतसे डरते हैं; बल्कि इसका अभिप्राय यह है कि वे जहाँतक सम्भव है अपने जीवनका पूरा उपयोग करनेके लिए उससे चिपटे रहना चाहते हैं; उन्हें सक्रिय या निष्क्रिय किसी भी रूपमें मेरी सुरक्षाकी कोई आवश्यकता नहीं है। वे जानते हैं कि मुझे उनका जीवन अपने ही जीवनके समान प्रिय है, परन्तु वे यह भी जानते हैं कि मैं उनके सिद्धान्तका कट्टर विरोधी हूँ। परन्तु मेरा विरोध उन्हें अपने मतमें परिवर्तित करनेके प्रयत्न करके समाप्त हो जाता है। हिंसात्मक आचरणकी निन्दा मत परिवर्तनका एक तरीका था। इस आलोचनाको अपने उद्देश्यमें सफलता न मिले तो इससे उसपर कोई असर नहीं पड़ता। मुझे अपनी समझके अनुसार काम करना है और परिणाम भगवानपर छोड़ देना है।

अन्तमें लेखकने शिकायत की है कि मैंने उस नीतिके सम्बन्धमें जिसके कारण बमके मार्गका अस्तित्व बना हुआ है एक शब्द भी नहीं कहा है। इससे यह पता चलता है कि यह सज्जन 'यंग इंडिया'को कितनी सरसरी नजरसे उलटाते हैं। उन्हें यह तो अवश्य मालूम होना चाहिए कि 'यंग इंडिया'के लगभग प्रत्येक संस्करणमें सरकारी नीतिकी कोई न कोई निन्दा रहती है। शायद उनका अभिप्राय यह है कि मुझे इसके बारेमें अग्रलेखमें ही कुछ कहना चाहिए था। यह सर्वथा अप्रासंगिक होता। इतना ही नहीं उक्त मार्गके कामोंका मैंने जो विश्लेषण किया था, उसका भी बहुत-सा बल क्षीण हो गया होता। लेखमें जो बात कहनी थी वह तो यही थी कि सरकारकी नीति कितनी भी अनैतिक क्यों न हो, हिंसा उसके विरोधका कोई प्रभावकारी साधन नहीं है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, ६-२-१९३०

४३४. 'खादी प्रदर्शक'

शुद्ध खादी भण्डार, कलकत्ताकी 'नवजीवन माला' नामक पुस्तक मालाका उल्लेख पहले 'हिन्दी नवजीवन' में किया जा चुका है। आज मेरे सामने इस भण्डार द्वारा प्रकाशित 'खादी प्रदर्शक' नामक पुस्तिका पड़ी है। यह मालाका पन्द्रहवाँ पुष्प है। परिशिष्टके आठ पृष्ठोंके सिवाय इसकी पृष्ठ संख्या ८६ है और कीमत सिर्फ चार आना है। यह पुस्तिका चरखा संघ द्वारा प्रकाशित 'खादी गाइड' का हिन्दी अनुवाद है। इस 'गाइड' में बहुत-सी खबरें दी गई हैं। प्रत्येक प्रान्तकी खादी प्रगतिका हाल और उन-उन प्रान्तोंकी खादी उत्पत्ति तथा बिक्रीका ब्यौरा भी इस पुस्तिकामें दिया गया है। प्रत्येक खादीप्रेमीके पास यह पुस्तिका होनी चाहिए। 'नवजीवन माला' की पुस्तकोंके मिलनेके कई पते हैं। प्रधान प्राप्ति स्थान, १३२–१ हेरीसन रोड़, कलकत्ता है।

हिन्दी नवजीवन, ६-२-१९३०

४३५. वर्णधर्म और श्रमधर्म – १

निम्नलिखित प्रश्न पूछे गये हैं और उनके उत्तर प्रत्येक प्रश्नके नीचे ही दिये जाते हैं:

प्र०– टॉल्स्टॉय द्वारा प्रतिपादित श्रमधर्म आप मानते हैं क्या?

उ० :– अवश्य।

क्या आप चाहते हैं कि प्रत्येक मनुष्य अपना सब काम स्वयं करे?

न मैं चाहता हूँ, न मैं इसे शक्य मानता हूँ और न टॉल्स्टॉयने इसे आवश्यक माना है। मनुष्य जितना स्वाधीन है, उतना ही पराधीन भी। वह जबतक समाजमें रहता है, और उसे रहना ही होगा, तबतक उसे अपनी स्वाधीनता दूसरोंकी, अर्थात् समाजकी स्वाधीनतासे मर्यादित रखनी पड़ेगी। इसलिए इतना ही कहा जा सकता है कि प्रत्येक मनुष्य यथासम्भव अपना काम अपने आप कर ले, अर्थात् मैं अपने लिए पानीका लोटा भर लूँ, परन्तु अपने लिए अपना कुआँ न खोदूँ। पानीका लोटा न भरनेमें घमण्ड है, कुआँ खोदनेके विचार या आरम्भमें मूर्खता है। इसलिए प्रत्येक कार्य स्वयं किया जाये या दूसरोंकी सहायतासे, इसका निश्चय करनेके लिए विवेकबुद्धिका उपयोग करना चाहिए।

क्या आप चाहते हैं कि सभी लोग शारीरिक श्रम द्वारा अपनी आजीविका उपार्जन करें?

अवश्य। सब लोग ऐसा नहीं करते हैं इसीसे जगतमें और विशेषतया भारतवर्षमें अत्यन्त दरिद्रता है। अनारोग्यका भी यही एक बड़ा कारण है। धनोपार्जनमें

जो अति लोभ पैदा हुआ है, उसका यह प्रधान कारण है। यदि सब अपनी आजीविका शारीरिक परिश्रमसे पैदा करें तो लोभवृत्ति कम हो जायेगी और धनोपार्जनकी शक्ति भी अपने आप बहुत क्षीण हो जायेगी। शारीरिक परिश्रम करनेसे अनारोग्य भी प्रायः मिट जायेगा और सबसे बड़ा लाभ यह होगा कि ऊँच-नीचका भाव सबका-सब नष्ट हो जायेगा। (अपूर्ण)

हिन्दी नवजीवन, ६-२-१९३०

४३६. पत्र : जवाहरलाल नेहरूको

६ फरवरी, १९३०

प्रिय जवाहरलाल,

मैंने सोचा ही नहीं था कि तुम ग्यारह मुद्दोंके महत्वको नहीं समझ पाओगे। खैर मैं बहस करके तुम्हारा समय खराब नहीं करना चाहता जबकि तुम इस पत्रके मिलनेके दो-एक दिन बाद ही साबरमतीके लिए रवाना हो जाओगे। मैं आशा करता हूँ कि तुम १२ तारीखको यहाँ निश्चित रूपसे पहुँच जाओगे। मैं आशा करता हूँ कि मैं तुम्हें आश्वस्त कर सकूँगा कि इन ११ मुद्दोंसे हमारा मामला मजबूत ही हुआ है कमजोर नहीं। क्या कमला तुम्हारे साथ आयेगी?

तुम्हारा
बापू

पण्डित जवाहरलाल नहेरू
आनन्द भवन
इलाहाबाद

[अंग्रेजीसे]
गांधी नेहरू कागजात, १९३० से।
सौजन्य : नेहरू स्मारक संग्रहालय और पुस्तकालय

४३७. पत्र : लीलावती कोडीदासको

आश्रम, साबरमती
६ फरवरी, १९३०

चि० लीलावती,

तुम्हारा पत्र मिला। यदि तुम स्याहीसे सुन्दर अक्षर लिखनेका अभ्यास कर लो तो अच्छा हो। हिस्टीरियाको तो अब अपने पास भी मत फटकने देना। काकाको यह समझानेकी आवश्यकता है कि गहने बेकार पड़े रहें, इसकी बजाय यह कहीं अच्छा है कि [उन्हें बेच दें और] उसका ब्याज मिले। उतावलीमें लौटनेकी बात मत सोचना; किन्तु शान्तिपूर्वक सोच-विचार करनेके बाद आना चाहो तो तुम्हें वैसा करनेकी इजाजत तो है ही। दूध और फलोंपर ही रहना।

बापूके आशीर्वाद

श्रीमती लीलावती कोडिदास
मार्फत श्री द्वारकादास गोकुलदास
कालबादेवी, बम्बई—२

गुजराती (सी० डब्ल्यू० ९२७१)की फोटो-नकलसे।

४३८. टिप्पणियाँ

हमारी लापरवाही

एक मित्र लिखते हैं:[१]

जो लोग ऊपर जो-कुछ कहा गया है, इस तरह बीड़ी पीते हैं वे मर्यादा भंग करते हैं इसमें सन्देह नहीं और बीड़ी न पीनेवाले शर्म या डरके कारण उन्हें रोकनेकी कोशिशतक नहीं करते। आज हममें स्त्रियोंके प्रति इतना आदरभाव कहाँ है कि हम उनके सामने बीड़ी न पियें, बीभत्स भाषा न बोलें अथवा कोई अन्य अशिष्टतापूर्ण काम न करें?

इस बारेमें मैं रेलवेके कर्मचारियोंको दोषी नहीं कह सकता। जहाँ खुद मुसाफिर अपनी तकलीफोंके बारेमें बेफिक्र हों वहाँ रेलवेके कर्मचारी क्या कर सकते हैं? हमें यह न भूलना चाहिए कि वे लोग दूसरोंकी भलाईके लिए रेलवेकी नौकरी नहीं करते। तिसपर कानूनकी रूसे भी उन्हें यह अधिकार नहीं है कि वे किसी मुसाफिरको वैसे ही बीड़ी पीनेसे रोक सकें। क्योंकि कानून हर हालतमें बीड़ी पीनेसे मना नहीं करता।

१. पत्र यहाँ नहीं दिया जा रहा है। पत्र-लेखकने रेलके डिब्बोंमें दूसरे मुसाफिरोंका ध्यान न रख कर बीड़ी पीने वालोंकी बात कही थी।

किसी मुसाफिरके मना करनेपर भी अगर कोई बीड़ी पीनेके खास डिब्बेके सिवाय किसी और डिब्बेमें बीड़ी पीता है तो वह मना है। रेलवे कर्मचारीको क्या पता है कि किसी बीड़ी पीनेवालेको किसी मुसाफिरने मना किया है या नहीं। इसलिए जबतक कोई मुसाफिर शिकायत न करे तबतक रेलवेके अधिकारियोंको यह अधिकार नहीं है कि वे किसीको बीड़ी पीनेसे रोकें।

स्वयंसेवक इस काममें बहुत मदद कर सकते हैं। पहले तो वे बीड़ी पीनेवालोंको विवेकपूर्वक समझायें। न समझनेपर वे रेलवे कर्मचारीसे उसकी शिकायत कर सकते हैं और जंजीर खींचकर गाड़ीको रोक सकते हैं, लेकिन मैं ऐसा करनेकी सलाह न दूँगा।

शुरूसे ही जिस कानूनपर अमल करानेकी किसीने कोशिश न की हो, एकाएक उस कानूनपर अमल करानेमें मुश्किलें तो पैदा होंगी ही, संघर्ष भी होगा। अतएव फिलहाल तो स्वयंसेवकोंका यह फर्ज है कि वे लोकमतको तैयार करें और बीड़ी न पीनेवालोंको उनके हक समझायें तथा बीड़ी पीनेवालोंको उनकी मर्यादाका भान करायें। जब यह बात मुसाफिरोंकी समझमें आ जायेगी और बीड़ी पीनेवाले यह जान जायेंगे कि उनके बीड़ी पीनेसे बहुतोंको तकलीफ होती है तो मुमकिन है कि वे बीड़ी न पीयें। दूसरे, सत्याग्रही स्वयंसेवक यथासम्भव किसीको दण्ड दिलाकर उससे नियम पालन करवानेकी कोशिश न करें। पुलिसका काम अपने हाथमें लेकर अकसर सुधारक अपने काममें बाधाएँ खड़ी कर लेता है। सुधारकका कर्त्तव्य तो नियम भंग करनेवालेका हृदय परिवर्तन करना है। शुरूआतमें इस कामके लिए धैर्यकी आवश्यकता होती है, लेकिन अन्तमें इसका नतीजा अच्छा होता है और उसका व्यापक प्रचार हो जाता है। फिर भी जहाँ बुरी आदतोंने जड़ जमा ली है, वहाँ अगर वातावरण अनुकूल हो तो उन्हें दूर करनेमें कानून मददगार हो सकता है। ऐसा हुआ है और भविष्यमें होगा। जैसे अगर कानूनका सहारा मिले तो शराबबन्दीका काम बड़ी तेजीके साथ हो सकता है। बीड़ी पीनेके आदीकी आदत इतनी ज्यादा बिगड़ जाती है कि उससे चाहे जितनी नम्रताके साथ कहा जाये, वह अकसर किसीकी नहीं सुनता। अतएव उत्साही स्वयंसेवकके लिए तो अपने धैर्य और विनयको कसौटीपर कसनेका यह सुन्दर अवसर है। इसके साथ ही स्वयंसेवकगण स्त्री-जातिके प्रति आदरभाव बढ़ानेका काम भी बखूबी कर सकते हैं। और जिस तरह अपने साथी मुसाफिरकी तकलीफका खयाल किये बिना बीड़ी फूँकनेके आदी बीड़ी फूँका करते हैं, उसी तरह बहुतेरे लोग डिब्बोंको गन्दा किया करते हैं। उन्हें गन्दगी फैलानेसे रोकनेका प्रयत्न भी किया जा सकता है।

विदेशोंमें खादी

एक भाई पूछते हैं:[1]

मैं ऐसा नहीं मानता। अगर विदेशोंमें जाकर हर बातमें अंग्रेजोंकी नकल करना अच्छा या जरूरी है तो फिर यहाँ क्यों नहीं? गुणका अनुकरण तो वह दुश्मनमें

१. पत्र यहाँ नहीं दिया जा रहा है। पत्र-लेखकने जानना चाहा था कि क्या विदेश जानेवाले भारतीयोंको खादी पहनना छोड़ देना चाहिए और अंग्रेजोंके चाल-चलनकी नकल करनी चाहिए?

हो तो भी सदैव किया जा सकता है; किन्तु दोषोंका अनुकरण तो कदापि और कहीं भी नहीं किया जा सकता। विदेशमें भी खादी पहननेवाले अवश्य खादी पहन सकते हैं। पण्डित मोतीलालजी जब विदेश गये थे तब सिरसे पैर तककी सारी पोशाक खादीकी ही बनवाकर ले गये थे। यहाँ खादीकी परिभाषामें हाथ-कती ऊनकी हाथ बुनी बनात आदि भी शामिल हैं। हाँ, यह बात मैंने जरूर कही है कि विदेशोंमें खादीको अनिवार्य मान लेना आवश्यक नहीं है। जहाँ आवश्यक खादीका कपड़ा न मिलता हो या इतना महँगा मिलता हो कि खरीदा न जा सके वहाँ उसे छोड़कर मिलका स्वदेशी या परदेशी कपड़ा खरीदनेमें अधर्म नहीं माना जा सकता।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ९-२-१९३०

४३९. 'गांधी शिक्षण'

भाई नगीनदास अमूलखराय लिखते हैं:[1]

अपने लेखोंसे मुझे मोह हो इसमें आश्चर्यकी कोई बात नहीं। अतः इन पुस्तकोंके लिए मेरे इस प्रमाणपत्रको पाठक बहुत महत्त्व न दें। फिर भी जो लोग 'नवजीवन' के प्रेमी हैं वे लगभग कागजके दामों मिलनेवाली इन पुस्तकोंका संग्रह करना चाहेंगे। ऐसे व्यक्तियोंसे मैं अनुरोध करता हूँ कि वे भाई नगीनदासकी सूचनासे लाभ उठायें। उनका पता यह है: श्री नगीनदास अमूलखराय, सुखड़वाला बिल्डिंग, रेवलिन स्ट्रीट, हार्नबी रोड, बम्बई।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ९-२-१९३०

४४०. दो तकुओंवाला चरखा[2]

मैं भी यह मानता हूँ कि यदि पूनियाँ अच्छी हों तो कताईकी गति बढ़ाई जा सकती है। मैं धीमे कातनेवालोंमें से हूँ। मैं एक घंटेमें २० नम्बरके सूतके १६० तार कातता था किन्तु अच्छी पूनियाँ मिलनेसे अब २०० तार कातने लगा हूँ। यदि कपास हाथसे चुनी जाये और उसमें कूड़ा-कचरा न हो, उसे हाथसे ओटा जाये तथा उसके साथ बिनौले पिसे या मिले हुए न हों और जब उसे अच्छी तरह धुनकर पूनियाँ बनाई जायें तभी उन्हें अच्छी पूनियाँ कहा जा सकता है।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ९-२-१९३०

१. पत्र यहाँ नहीं दिया जा रहा है। पत्र-लेखकने गांधीजीसे यह घोषणा करनेका अनुरोध किया था कि "गांधी शिक्षण" नामक १३ पुस्तिकाएँ अब दो रुपयेमें प्राप्त हैं।

२. गांधीजीने यह टिप्पणी प्रभुदास गांधीके लेखपर दी थी।

४४१. देहातकी गलियाँ और सड़कें[1]

हम यह देख चुके कि गाँवके घूरे कैसे खत्म किये जा सकते हैं, स्वास्थ्यकी रक्षा कैसे की जा सकती है और उनसे सोने-जैसी खाद किस तरह पैदा की जा सकती है,[2] गोबरका उपयोग उपले बनानेमें करनेके बजाय उसकी खादसे गाँवोंकी पैदावार सहज ही कैसे बढ़ाई जा सकती है तथा तालाब और कुओंको साफ करके, साफ रखकर[3] स्वास्थ्यकी हिफाजत किस तरह हो सकती है।

इस बार हम गाँवोंके रास्तोंके बारेमें विचार करेंगे। देहातके रास्ते और गलियाँ टेढ़ी-मेढ़ी और धूल भरी होती हैं, और ऐसी दिखाई देती हैं मानों धूलके पहाड़को अभी किसीने खोदकर सपाट बना दिया हो। ऐसे रास्तोंपर चलनेमें आदमियों और गाड़ी खींचनेवाले ढोरोंको बड़ा कष्ट उठाना पड़ता है। इसी कारण देहाती गाड़ियोंके पहिये भी इतने बेडौल और वजनदार बनाये जाते हैं कि बेचारे बैलोंको नाहक ही दूना बोझ खींचना पड़ता है। धूल-भरे रास्तेपर चलनेका कष्ट और ऊपरसे वजनदार गाड़ी खींचनेकी मेहनत। अगर सड़कें पक्की हों तो बैल दूना माल ढो ले जायें, गाड़ियाँ सस्ती बनें और गाँववालोंकी तन्दुरुस्तीमें सुधार हो। आज तो ऐसी स्थिति है कि 'छाछमें माखन जाये नार फूहड़ कहलाये'। बारिशके दिनोंमें ऐसे रास्तोंमें इतना कीचड़ हो जाता है कि गाड़ी हाँकना मुश्किल हो जाता है, और आदमियोंको तैरकर या कमर तक गहरे पानीमेंसे भीग कर आना-जाना पड़ता है। फलस्वरूप तरह-तरहकी बीमारियाँ घेलुएमें मिलती हैं।

जहाँ गाँव घूरे जैसा हो, जहाँ कुएँ-तालाबकी कोई हिफाजत न करता हो, जहाँ रास्ते बाबा आदमके जमानेमें जैसे थे वैसे आज भी हों, वहाँके बालकोंकी क्या हालत हो सकती है? बालकोंका बरताव, उनकी सभ्यता गाँवकी हालतका प्रतिबिम्ब है। किन्तु आज तो उन्हें देखनेसे मालूम होता है कि रास्तोंकी तरह उनकी भी गम्भीर उपेक्षा की जाती है। पर फिलहाल इसका विचार करने लगें तो विषयान्तर हो जायेगा।

तो फिर इन रास्तोंका क्या किया जाये? लोगोंमें सहयोगकी भावना हो तो बिना रुपये-पैसेके या मिट्टी-कंकर वगैराके थोड़ेसे खर्चसे ही गाँववाले अपने लिए पक्के रास्ते बना सकते हैं और अपने गाँवका महत्व बढ़ा सकते हैं। इस सहयोगका दूसरा फायदा यह होगा कि छोटे-बड़े सब मुफ्तमें ही सच्ची शिक्षा पा सकेंगे। जहाँ तक हो सके गाँववाले मजदूरोंसे कोई काम न करायें। सभी गाँववाले किसान होते हैं इसलिए सभी स्वतन्त्र रूपसे खुद ही अपने-अपने मजदूर होते हैं। यदि आवश्यक हो तो वे अपने पड़ोसी मजदूरकी मदद ले लें। अगर वे रोज थोड़ा-थोड़ा समय भी

१. यह **नवजीवनके** क्रोडपत्र **शिक्षण अने साहित्य** में प्रकाशित हुआ था।

२. देखिए "उपले या खाद", १७-११-१९२९।

३. देखिए "कुएँ और तालाब", १२-१-१९३०।

इसके लिए दें तो कुछ ही दिनोंमें रास्ते सुधार सकते हैं। इसके लिए गाँव, गलियों और आसपासके गाँवोंमें जानेके रास्तोंका नकशा बनाकर फिर अपनी शक्तिके अनुसार कार्यक्रम तैयार कर लिया जाये, जिसमें स्त्री, पुरुष और बालक सभी थोड़ा-बहुत हाथ बँटा सकते हैं। हमारी वर्तमान स्थिति केवल कौटुम्बिक जीवन तक ही सीमित है। ग्राम-सुधारका आधार कौटुम्बिक भावनाको ग्राम-भावनातक पहुँचा देना है। गाँवोंकी हालतसे हमारी सभ्यताका अन्दाज किया जा सकता है। हर कुनबेका हरएक आदमी जिस तरह अपने कुटुम्बका घर साफ रखता है उसी तरह प्रत्येक कुटुम्बको अपने गाँवको साफ रखनेके लिए भी तैयार रहना चाहिए। अगर ऐसा किया जाये तो गाँववाले सुखी और स्वावलम्बी बन जायें। आज तो हरएक कामके लिए सरकारका मुँह जोहना पड़ता है। सरकार घूरे साफ करे, सरकार रास्ते बनवाये और उनकी मरम्मत करवाये, सरकार कुओं और तालाबोंको साफ रखे, सरकार बालकोंको पढ़ाये, सरकार ही शेरों और चीतोंसे बचाये और सरकार ही हमारे धन-दौलतकी रक्षा भी करे। इस स्वभावको अपना लेनेसे हम अपंग बन गये हैं और हमारा यह अपंगपन दिनोंदिन बढ़ता ही जाता है। इसके कारण करोंका बोझ भी बढ़ता जा रहा है। अगर गाँववाले पूरे गाँवकी सफाई, शोभा और रक्षाके लिए अपनेको जिम्मेदार मानें तो बहुतेरे सुधार तुरन्त और बिना खर्चके हो जायें। यही नहीं बल्कि आम-दरफ्तकी सहूलियतें और स्वास्थ्यमें सुधारके कारण गाँवकी माली हालत भी बहुत अच्छी हो जाये।

रास्तोंकी सफाईमें थोड़ी बुद्धिसे काम लेनेकी जरूरत पड़ती है। नक्शोंका जिक्र तो मैं कर ही चुका हूँ। सभी गाँवोंको अच्छे और पक्के रास्ते बनवानेके लिए एक ही तरहकी सुविधाएँ प्राप्त नहीं होतीं। कुछ गाँववालोंके लिए पत्थर सुलभ होते हैं। बिहार जैसे कुछ प्रदेशोंमें वे ढूँढ़े भी नहीं मिलते। पक्की सड़कें बनानेके किन उपायोंसे काम लेना चाहिए, इस बातकी खोज इस लेखमालाके कल्पित स्वयंसेवकोंको करनी होगी। गाँवका सेवक आसपास चारों ओर घूम कर देखे और इस बारेमें सरकारी पद्धतिमें कुछ सीखने योग्य हो तो सीख ले। पक्के रास्ते बनानेके लिए सरकार जिन उपायोंसे काम लेती हो उनमें से जो ग्राह्य हों उन्हें अपनाया जा सकता है। अकसर गाँवके बड़े-बूढ़ोंको इस सम्बन्धमें अच्छा व्यावहारिक ज्ञान होता है। उनकी खोज करने और उनसे लाभ उठानेमें ग्रामसेवक जरा भी न हिचकिचायें और अन्य बातोंकी तरह इस बारेमें भी अपनी जाती मेहनतकी मिसाल पेश करके ग्रामसेवक पक्के रास्ते बनाना शुरू कर दें।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, ९-२-१९३०

४४२. पत्र : पुरुषोत्तमदास ठाकुरदासको

सत्याग्रह आश्रम
साबरमती
९ फरवरी, १९३०

प्रिय सर पुरुषोत्तमदास,

आपके पत्रके[१] लिए धन्यवाद।

मुझे आपके साथ बहसमें नहीं पड़ना चाहिए; क्योंकि जब किसी भी एक पक्षको किसी बातपर गहरा विश्वास हो तो बहस व्यर्थ होती है। मैं आपको केवल अपनी ओरसे आश्वासन दे सकता हूँ कि मैं जल्दबाजी करके कोई कदम नहीं उठाऊँगा। यों जरूरी नहीं है कि खतरनाक कदम जल्दीमें उठाया गया कदम ही हो।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

सर पुरुषोत्तमदास ठाकुरदास
बिड़ला भवन, अल्बुकर्क रोड
नई दिल्ली

[अंग्रेजीसे]
पुरुषोत्तमदास ठाकुरदासके कागजात, फाइल सं० ९६, १९३०
सौजन्य : नेहरू स्मारक संग्रहालय और पुस्तकालय

१. इसमें पुरुषोत्तमदास ठाकुरदासने लिखा था, "मैं नहीं समझता कि भारतको अभी या कुछ एक दशकोंके अन्दर क्रान्ति द्वारा उतना लाभ होगा जितना कि विकासकी प्रक्रिया द्वारा . . . यदि लन्दनमें सम्मेलनके बाद संविधान इतना नहीं बदला जाता कि हम अपने ही घरके मालिक बन सकें. . . मैं आपकी अधीरताको समझ सकता हूँ। लेकिन अन्तरिम थोड़ी-सी अवधिमें सविनय अवज्ञा करना मुझे जल्दबाजीमें उठाया गया कदम लगता है।

४४३. पत्र : आर० बी० मोटवानीको

सत्याग्रह आश्रम
साबरमती
९ फरवरी, १९३०

प्रिय मित्र,

आपका पत्र मिला।

आपने जो समस्या प्रस्तुत की है, उससे एक सच्चे देशभक्तको कोई कठिनाई नहीं होनी चाहिए। वह न तो विवाह करेगा और न ही अन्यथा पतित होगा। उसे दूषित वासनाओंसे दूर रखनेके लिए देशप्रेम ही पर्याप्त होना चाहिए।

हृदयसे आपका,
मो० क० गांधी

आर० बी० मोटवानी
द्वारा सिन्ध सेंट्रल को-ऑपरेटिव बैंक लिमिटेड
कराची (सिन्ध)

अंग्रेजी (जी० एन० २७७७)की फोटो-नकलसे।

४४४. पत्र : छोटूभाई पटेलको

१० फरवरी, १९३०

भाई छोटूभाई,

तुम्हें बुला भेजनेसे जवाब दे देनेमें मुझे समयकी बचत होती है। योग्य कन्या मिलनेपर विवाह करनेका मोह छोड़ना मुश्किल होता है। यदि ब्रह्मचर्यकी महत्ताके विचारसे विवाहका मोह छोड़ा जाये तो मोह छोड़ो। यदि कन्याकी योग्यतापर रोज-रोज ज्यादा जोर देते चले जाओगे तो कोई कन्या योग्य लगेगी ही नहीं। सब बहनें हो रहेंगी — पत्नी कोई नहीं हो सकेगी।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (जी० एन० १०४६९)की फोटो-नकलसे।

४४५. पत्र : कुँवरजी पारेखको

आश्रम,
साबरमती
१२ फरवरी, १९३०

चि० कुँवरजी,

तुम्हारा पत्र मिला। चि० रामी यहाँसे षष्ठी या सप्तमी[1] तक राजकोटके लिए रवाना हो जायेगी। यह ठीक रहेगा न? आशा है तुम स्वस्थ होगे।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (एस० एन० ९७१५)की फोटो-नकलसे।

४४६. एक वकीलकी दुविधा

एक वकील महोदयका निम्नलिखित पत्र[2] उत्तरके लिए मेरे पास भेजा गया है:

यह दुविधाकी तो बात है ही। मेरी सहानुभूति वकीलके साथ है और मेरी राय उसकी रायसे मिलती है। परन्तु वकीलने जो दलील दी है वह काफी गहराई तक जाती है। जब मैं सम्राट्के चित्रवाले डाक टिकट या सिक्केका प्रयोग करता हूँ तो ऐसा लगता है कि मैं अपनी स्वतन्त्रताकी मान्यताको झुठला रहा हूँ। जब मैं पुलिसके सिपाहीके अनुदेशोंका पालन करता हूँ या कर देता हूँ तो मैं सम्राट्का प्रभुत्व स्वीकार करता हूँ। इनमें से कुछ चीजें मैं तब भी करता रहूँगा जब हम समानान्तर स्वतन्त्र सरकार घोषित कर देंगे जो अभीतक नहीं किया है। यदि मैं कोई आत्यंतिक कदम नहीं उठा सकता हूँ या उठाता तो क्या मुझे सम्राट्के प्रति वफादार बने रहना चाहिए। दुविधासे छुटकारा पानेका एक उपाय तो यह है कि मैं जितना मुझसे बन पड़े ऐच्छिक सहयोग देना बन्द कर दूँ, जिसका अभिप्राय उस शासनका प्रभुत्व और मान कम करना होगा; और यह मैं कर सकता हूँ। कांग्रेसने जितना कुछ किया उसके लिए बड़ी तादादमें उपयोगी और लायक कार्यकर्त्ताओंको अपनेसे अलग किये बिना उससे ज्यादा करना सम्भव नहीं था। अनुभवसे पता चलता है कि जहाँ वकील हाथ बँटाना बन्द करते हैं, कांग्रेस संस्थामें अवरोध आ जाता है। शुरूसे ही उन्होंने कांग्रेसमें अत्यन्त सक्रिय और प्रभावशाली भाग लिया है। यह दुर्भाग्यपूर्ण

१. गुजरातमें प्रचलित विक्रम संवतके पक्षकी।

२. यहाँ नहीं दिया जा रहा है। पत्र-लेखकने पूछा था कि एक पेशेवर वकील सम्राट्के प्रति वफादारीकी शपथसे बँधा होनेके कारण स्वतन्त्रता प्रस्तावके बाद कांग्रेसका सदस्य कैसे हो सकता है?

है कि दूसरे वर्ग अब भी बिना वकीलोंकी मददके कांग्रेस कमेटियाँ चलानेमें असमर्थताका अनुभव करते हैं। वे अदालतके अफसर कहे जाते हैं। वे जानते हैं कि विदेशी सत्ताका क्या अभिप्राय है। जब वे ईमानदारी और देशभक्तिसे प्रेरित हों तो वे राजनीतिक आन्दोलन चलानेके लिए अपने प्रशिक्षणके कारण योग्यतम व्यक्ति हैं। उन्होंने राष्ट्रीय आन्दोलनके लिए निस्सन्देह बहुत कुछ किया है, परन्तु उनसे और भी बहुत अधिक करनेकी आशा की जाती है। मुझे कोई सन्देह नहीं कि जब आन्दोलनको उनके अन्तिम बलिदानकी आवश्यकता होगी तब यदि सभी नहीं तो उनमें से अधिकांश वकील पीछे नहीं रहेंगे। इस दौरान चूंकि कांग्रेसने अदालतोंके बहिष्कारकी घोषणा नहीं की है, यह मामला व्यक्तिगत सूझ-बूझका है। जहाँ इसके साथ संगति रखते हुए, एक वकील यह समझता है कि वह दोनों काम अर्थात् वकालत और कांग्रेसमें रहना एक साथ नहीं कर सकता और वकालत भी नहीं छोड़ सकता तो वह चाहे तो कांग्रेस छोड़ दे और उसके बाद भी वह कांग्रेसकी उतने ही कारगर ढंगसे मदद कर सकता है जितना कि कांग्रेसमें रहते समय वहकर पाता था। परन्तु शर्त यह है कि उसका यह विश्वास हो कि स्वतन्त्रता प्राप्त करना और स्वतन्त्रताके लिए काम करना हर भारतीयका अधिकार और कर्त्तव्य है। प्रसंगवश मैं यह भी जिक्र कर दूं कि बहुत-से वकील यह सोचते हैं कि उनका कांग्रेसपर अधिकार कायम है और जब सामान्यजन पदोंपर आते हैं तो वे उसे अनधिकार प्रवेश समझते हुए इस पर रोष प्रकट करते हैं। जबकि उन्हें अपना सौभाग्य इसे समझना चाहिए कि वे सामान्य जनोंको पद-ग्रहण करनेके लिए तैयार करें और उन्हें यह महसूस करने दें कि यदि उन लोगोंमें बहादुरी और बलिदानकी भावना हो तो वे कांग्रेस संगठनको उतनी ही अच्छी तरह चला सकते हैं जैसे कि वकील लोग। निस्सन्देह आज कई एक कमेटियाँ ऐसी हैं जिनका प्रबन्ध अव्यावसायिक लोगों द्वारा कुशलतासे चलाया जा रहा है। बहरहाल आन्दोलनको उस दिशामें बहुत ज्यादा प्रोत्साहन मिलनेकी गुंजाइश है। हम सात लाख गाँवोंमें से हरएक गाँवमें एक कमेटी चाहते हैं। ईश्वरका धन्यवाद है कि सारे भारतमें सत्तर हजार वकील भी नहीं हैं। चमार, भंगी, चमड़ा कमानेवाले, दर्जी, ईंट पाथनेवाले और इस तरहके लोग ढूंढे जाने चाहिए जो कांग्रेस कमेटियोंको चलानेके इच्छुक हों और जिनमें इन्हें चलानेकी योग्यता हो। थोड़े-से शिक्षित लोग, यदि वे चाहें तो इस काममें गति ला सकते हैं।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १३-२-१९३०

४४७. 'वकीलोंका कर्त्तव्य'

अन्तर्राष्ट्रीय न्यायिक परिषद (इन्टरनेशनल ज्यूरिडिकल कान्फ्रेन्स)की संगठन-समितिके बुलेटिनके अंग्रेजी संस्करणका प्रथम अंक पिछले तीन चार महीनोंसे मेरी फाइलमें पड़ा है। बुलेटिनका सम्पादन ऑस्ट्रिया, चेकोस्लोवाकिया, क्यूबा, फ्रांस, जर्मनी, हालैंड, इंडोनेशिया, मेक्सिको, पोलैंड और वेनीजुएलासे लिए गये निदेशक मण्डलने किया है। इसके संगठन सचिव बर्लिनके, जहाँ यह बुलेटिन निकाला जाता है, डा० एल्फ्रेड अप्फेल हैं। सम्पादकीय सूचनामें कहा गया है कि यह बुलेटिन केवल एक अस्थायी प्रकाशन है। प्रारम्भिक लेखका शीर्षक है 'वकीलोंका कर्त्तव्य' उसमें से मैं निम्नलिखित दो रोचक अंश[1] उद्धृत कर रहा हूँ; क्योंकि वे भारतकी वर्तमान हालतमें अप्रासंगिक नहीं हैं।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १३-२-१९३०

४४८. मेरी असंगतियाँ

बेजवाड़ासे बैरिस्टर श्रीयुत त्रिविक्रमराव लिखते हैं:[2]

मुझे स्वीकार कर लेना चाहिए कि मेरे कामोंमें अनेक असंगतियाँ हैं। परन्तु मैं महात्मा जो कहलाता हूँ; इसलिए मैं इमर्सनके इस वचनकी भलीभाँति ताईद कर सकता हूँ कि 'संकीर्ण मनवाले ही भयवश मूर्खतापूर्ण संगति 'रखते हैं' मेरी रायमें हम सृष्टिकी विविधतामें जैसी एकता देखते हैं, मेरी दिखाई पड़नेवाली असंगतियोंमें भी वैसी एकसूत्रता है।

सुधारोंकी ग्यारह माँगोंमें[3] और विधानसभाओंके बहिष्कारमें कुछ असंगति नहीं है। अगर किसी विधानसभामें इन सुधारोंके पास हो जानेका यकीन हो तो आवश्यक होनेपर मैं खुद ऐसी विधानसभामें बैठनेको तैयार हूँ। मगर मौजूदा विधानसभाओंमें इन माँगोंको स्वीकार करानेकी कोई शक्ति नहीं है। मैंने यह नहीं कहा कि इन ग्यारह माँगोंके मंजूर होते ही स्वाधीनताका संघर्ष बन्द हो जायेगा। मैंने इतना ही कहा है कि इनके मंजूर होनेपर गोलमेज परिषदमें जानेके लिए कांग्रेसकी तरफसे कोई

१. यहाँ नहीं दिये जा रहे हैं। उद्धरणोंमें वर्णन किया गया था कि जनतन्त्रमें असामान्य अदालतों और आपत्कालीन कानून बनाकर मूल अधिकारोंको किस तरह सीमित कर दिया जाता है और ऐसी स्थितिमें न्यायवादीको कैसा रुख अख्त्यार करना चाहिए।

२. पत्र यहाँ नहीं दिया जा रहा है। पत्र-लेखकने इशारा किया था कि विधानसभाओंके बहिष्कारकी वकालत करनेके साथ "कमसे-कम माँगों" की बात चलाने या कांग्रेसियोंको स्थानीय संस्थाओंसे सम्बन्ध रखनेकी अनुमति देनेमें असंगति है।

३. देखिए "पर्दाफाश हो गया", ३०-१-१९३०।

रुकावट नहीं रहेगी। ये माँगें तो इसलिए पेश की गई थीं कि वाइसराय साहबके भाषणसे पैदा होनेवाली गलतफहमी दूर हो जाये। स्वराज्यका संविधान भी अपने-आपमें पूर्ण नहीं है। स्वाधीनताकी आवश्यकता तो इसीलिए है कि मौजूदा शासनकी भयंकर बुराइयाँ दूर हो जायें। सर्वसाधारणके लिए, गरीब लोगोंके लिए स्वाधीनताका अगर कमसे-कम कोई अर्थ हो सकता है, तो वह ये ग्यारह बातें ही हो सकती हैं। सिर्फ अंग्रेजोंका यहाँसे चला जाना स्वाधीनता नहीं है। स्वाधीनताका अर्थ तो यह है कि साधारण ग्रामवासीको भी यह प्रतीति हो जाये कि अपने भाग्यका निर्माता मैं ही हूँ, अपने चुने हुए प्रतिनिधियोंके जरिये अपने कानून मैं खुद बनाता हूँ। ये ग्यारह बातें ग्रामवासियोंकी सत्ताकी कुछ खरी कसौटियोंमें से हैं। बेजवाड़ाके इन बैरिस्टर महोदयके पत्रसे ही पता चल जाता है कि मामलेको साफ कर देना कितना जरूरी था। इन ग्यारह बातोंका उल्लेख करके मैंने स्वाधीनताके जैसे एक अमूर्त्त-से शब्दको कुछ अंशमें मूर्त्त रूप दिया है। अगर विधानसभाओंके सदस्य इन ग्यारह माँगोंको पूरा करा सकें तो मैं विधानसभाओंके बारेमें अपना रुख बदल लेनेके लिए तैयार हो जाऊँगा। और अगर वे पूरी हो जायें तो ऐसी गोलमेज परिषदमें, जहाँ पूर्ण स्वराज्यके आधारपर बातचीत हो, कांग्रेसके प्रतिनिधि भेजनेकी सलाह देनेमें भी मुझे कोई संकोच न होगा; क्योंकि मैं स्वाधीनताके संविधानकी चर्चाके लिए भी एक ऐसी परिषदकी सम्भावना तो मानता ही हूँ।

म्युनिसिपैलिटियों वगैराके बारेमें मुझे अपनी कमजोरीका ज्ञान है। मैं नहीं मानता कि उनसे कोई सच्चा लाभ है। मैं मानता हूँ कि उनके कारण आपसमें बहुत कुछ मनमुटाव और लज्जाजनक ईर्ष्या-द्वेष फैले हैं। परन्तु कांग्रेस-जैसी विशाल संस्थामें कोई भी अपनी सब बातें एकदमसे स्वीकार नहीं करवा सकता। और अब तो म्युनिसिपैलिटियों वगैरापर कब्जा करनेका सवाल ही नहीं रहा। कोई भी बुद्धिमान और निःस्वार्थ देशभक्त जब यह महसूस करेगा कि मैं इन संस्थाओंमें रहकर कोई सेवा नहीं कर सकता तो वह पण्डित जवाहरलाल नेहरू, सरदार वल्लभभाई और बाबू राजेन्द्रप्रसादकी तरह उनमें से निकल जायेगा।

रही बात मेरे नेतृत्वकी; अगर वह मुझे मिला है, तो माँगनेसे नहीं मिला; वह सच्ची सेवाका सहज फल है। इस प्रकारके नेतृत्वको छोड़ सकना ऐसा ही मुश्किल है जैसा किसीके लिए अपने चमड़ेका रंग छोड़ पाना। और चूँकि मैं भी राष्ट्रका एक अविच्छिन्न अंग बन गया हूँ, राष्ट्रको मुझे मेरे दोष और त्रुटियों सहित निभाना है। इन त्रुटियोंमें से कुछका मुझे ज्ञान है और दुःख है और बहुत-सी ऐसी हैं जिनकी याद स्पष्टवादी समालोचक मुझे सदा कराते ही रहते हैं; उसके लिए मैं उनका आभारी हूँ। परन्तु एक बातका मुझे यकीन है और वह यह कि यदि ये लोग और जो कभी मेरी टीका नहीं करते वे लोग धैर्य रखकर मेरे कार्यक्रमको समझेंगे और दृढ़तापूर्वक उसपर चलेंगे तो पूर्ण स्वराज्य नजदीक है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १३-२-१९३०

४४९. चेचकका इलाज

मित्रोंने मुझसे चेचक-ग्रस्त रोगियोंके इलाजके तरीके प्रकाशित करनेका आग्रह किया है। उद्योग मन्दिर भी चेचककी छूतसे अछूता नहीं है। मन्दिरमें कुल मिलाकर सात लोगोंको चेचक निकली है। जिनमेंसे एककी मृत्यु हो गई। यह कहा जा सकता है कि इस रोगीकी चिकित्सा बाकीके रोगियों जैसी नहीं हुई। यह पहला रोगी था जिसके बारेमें मैं अपना अपराध महसूस करता हूँ कि मैंने दृढ़तासे काम नहीं लिया। मेरे दृढ़ विश्वासके विपरीत लड़कीको जलचिकित्साका लाभ नहीं मिला और इसे गरिष्ठ भोजन लेनेकी अनुमति दे दी गई। जो रोगी अच्छे हो गये हैं या मुझे जिनके अच्छे हो जानेकी उम्मीद है उनका जिस ढंगसे उपचार किया गया वह निम्नलिखित है :

१. पूर्ण आराम

२. खुली हवा

३. लाल पर्दोंके माध्यमसे आनेवाला प्रकाश

४. गरिष्ठ भोजन बिलकुल नहीं। बुखार न होनेकी हालतमें बराबरका पानी मिला हुआ दूध, अन्यथा सन्तरेका रस या सूखी दाखका पानी।

५. कभी-कभी जुलाबकी औषधि और नियमित रूपसे एनीमा।

६. 'वेटशीट पैक' यानी ठंडे पानीमें भिगोई चद्दरको अच्छी तरह निचोड़कर उसमें रोगीको सिरसे पैर तक लपेटना और जबतक पसीना न आ जाये ऊपरसे कम्बल ओढ़ाना।

१९१५ की महामारीमें मेरे पास चेचकके दो रोगी बड़ी बुरी हालतमें थे। उनका सारा शरीर चेचकके दानोंसे भरा हुआ था। उस वक्त मुझे लाल पर्दोंके जरिये रोशनी पहुँचानेके इलाजके बारेमें कुछ ज्ञान नहीं था। १९१६ में जिन लड़कोंको यह बीमारी हुई उन्हें नीमके पत्ते डालकर उबाले हुए पानीसे प्रतिदिन नहलाया जाता था। इसे मैं एक तरहसे 'कोण्डीज फ्लुईड' नामक दवाका स्थान दे सकने योग्य वस्तु मानता था। स्वास्थ्य-लाभ करनेके बाद वे लड़के पहलेसे भी ज्यादा बलवान हो गये।

हेराल्ड डब्ल्यू० व्हिस्टन द्वारा लिखित और मैक्लेसफील्डमें क्ले, ब्राउन और क्ले द्वारा प्रकाशित 'व्हाई वेक्सिनेट' (टीका क्यों लगाया जाये?) नामक पुस्तकमें, जिसकी कीमत ६ पैंस है, दिये गये इलाजकी नकल नीचे दी जा रही है।[1] पुस्तक नेशनल एण्टी-वेक्सिनेशन लीग, ५० पार्लियामेंट स्ट्रीट, लन्दन, द० पू० से भी प्राप्त की जा सकती है।

मुझे इस बातमें कोई सन्देह नहीं है कि ज्यादातर लोग रोगसे नहीं परन्तु [इस रोगके] भयसे मर जाते हैं। मैं यह भय अपने बच्चोंमें भी देखता हूँ; उन

१. यहाँ नहीं दी जा रही है।

बेचारोंको बचपनसे ही सिखाया गया है कि यह रोग भयानक है। ऐसा माननेका कोई भी कारण नहीं कि चेचक दूसरी अन्य तमाम बीमारियोंकी अपेक्षा ज्यादा घातक है। चेचकका इलाज प्राकृतिक चिकित्सा द्वारा अन्य रोगोंके इलाजके समान ही किया जा सकता है। शरीरमें छिपे हुए जहरको बाहर निकालनेका यह प्राकृतिक-तरीका है। भयको दूर करने और भोले-भाले लोगोंको टीका लगानेके केन्द्रोंपर दौड़े जानेसे रोकनेके लिए मैं इस पुस्तकसे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण उद्धरण देता हूँ, जिससे पता चलता है कि टीका लगानेका रिवाज कितना अनावश्यक और खतरनाक है तथा उसमें कितनी गन्दगी रहती है।

एक चिकित्सकने टीकेका रस तैयार करनेकी विधिका वर्णन इस तरह किया है:[1]

डा० वाल्टर आर० हाडवेनने टीका लगानेके विरुद्ध जो प्रबल प्रमाण दिया है वह पढ़नेमें दिलचस्प है।[2]

इस पुस्तिकामें टीका लगानेके विरुद्ध चिकित्सा-सम्बन्धी काफी साक्ष्य इकट्ठा किया गया है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, १३-२-१९३०

४५०. टिप्पणियाँ

आश्चर्यजनक अज्ञान

मध्य प्रान्त (मराठी) कांग्रेस कमेटीके सचिव लिखते हैं:

> **मध्य प्रदेश विधान परिषदमें श्री जी० आर० प्रधानने एक प्रस्ताव रखा जिसमें स्थानीय सरकारसे सिफारिश की गई थी कि राजनीतिक कैदियोंको क्षमा प्रदान कर दी जाये। सूचना मिली है कि स्थानीय सरकारकी ओरसे इस प्रस्तावका विरोध करते हुए श्री गॉर्डनने कहा कि आवारी जैसे अपराधियोंको, जिन्होंने लोगोंको हत्याके लिए भड़काया है और खुले आम हिंसाका प्रचार किया है, सरकार कभी क्षमा नहीं करेगी।**

कुछ एक अधिकारियोंके अज्ञानको तौलें तो वह उनके घमण्डके बराबर ही बैठता है। जिन तथ्योंके बारेमें वे अधिकारपूर्वक बोलनेका दावा करते हैं वे उनका अध्ययन तक करनेकी परवाह नहीं करते। यदि श्री गॉर्डनने जाँच करनेका कष्ट किया होता तो उन्हें पता चलता कि आवारीने हत्या या हिंसाको कभी नहीं भड़काया। उन्होंने और चाहे जो अपराध किये हों, उनपर हिंसा भड़कानेका दोष कभी नहीं लगाया जा सकता। और श्री गॉर्डनने श्रीयुत आवारीके नामके साथ क्षमाकी बात जोड़कर तो जलेपर नमक छिड़कनेका काम किया है। जहाँतक मैं उन्हें जानता

१. यहाँ नहीं दिया जा रहा है।

२. यहाँ नहीं दिया जा रहा है।

हूँ वे क्षमा माँगनेका अपराध कभी नहीं कर सकते। उन्होंने सत्याग्रही होनेका हमेशा दावा किया है और सत्याग्रहीकी हैसियतसे वे कभी क्षमा नहीं माँग सकते। यदि सत्याग्रही कोई अपराध करता है तो वह उसके लिए उचित सजा भुगत लेता है। यदि वह सत्याग्रह करके अपनेको कैद कराता है तो कभी क्षमा नहीं माँग सकता।

नये मन्दिर खुले

कार्य-समिति द्वारा नियुक्त अस्पृश्यता निवारण समिति बराबर तरक्की कर रही है। इसने सूचना दी है कि देशी-विदेशी लोगोंवाले बम्बई शहरमें रहनेवाली तेलगू मुनुर्वर जातिवाले लोगोंके आठ और मन्दिर इसी महीनेकी २ तारीखको तथाकथित अछूतोंके लिए खोल दिये गये थे। ये मन्दिर जल्दबाजीमें नहीं खोले गये थे। प्रस्ताव पर उक्त जातिकी कई सभाओंमें चर्चा की गई थी और लगभग सर्व सम्मति हो चुकनेपर ही मन्दिर खोले गये थे। अन्तिम सभामें, जिसकी अध्यक्षता निगमके सदस्य वकील सायाजी लक्ष्मण सिलेमने की थी, जब अन्तिम रूपसे मत लिया गया तो केवल एक ही सदस्य असहमत थे। प्रस्तावमें दलित भाइयोंसे भी अपील की गई थी कि वे अपने समाजमें भी सुधारोंको कार्यान्वित करें।

समितिने आगे सूचना दी है कि अमरावतीके डा० पटवर्धनने जो हनुमान व्यायाम प्रसारक मण्डलके प्रधान हैं, अस्पृश्यता-निवारण समितिके सचिवको एक पत्र भेजा है। शहरमें हनुमान व्यायाम प्रसारक मण्डलकी ४ शाखाएँ हैं। इसके अलावा एक केन्द्रीय व्यायामशाला है। केवल उसीमें प्रतिदिन लगभग १,००० लड़कोंकी उपस्थिति रहती है। सारे बरारमें इसकी ५० शाखाएँ हैं। डा० पटवर्धनने अपने पत्रमें कहा है:[१]

> **तथाकथित अछूतोंके लड़के तथाकथित अभिजात वर्गके हिन्दुओंके लड़कोंके साथ ही पूरी बराबरीकी शर्तों पर व्यायामशालाओंमें भर्ती किये जाते हैं और उनके प्रशिक्षणमें या उनके साथ व्यवहारमें किसी तरहका भी भेदभाव नहीं बरता जाता। . . .**

ये उत्साहवर्धक कार्य हैं। इनके लिए सभी सम्बन्धित पक्ष बधाईके पात्र हैं। यदि पहलेसे ही इसके लिए उपयुक्त वातावरण तैयार न होता तो वकील सिलेम सारी मुनुर्वर जातिको अपने पक्षमें नहीं कर सकते थे। डा० पटवर्धनके पत्रसे मुझे कोई आश्चर्य नहीं हुआ। वह इस क्षेत्रमें पुराने कार्यकर्त्ता हैं। आश्चर्य तो तब होता जब कि वे जमानेके साथ न रहकर पिछड़ गये होते। हम आशा रखें कि जल्दी ही ऐसे मन्दिर और दूसरी संस्थाएँ, जिनके दरवाजे दलितवर्गोंके लिए बन्द हैं, केवल अपवादके रूपमें ही रह जायेंगे, आज की तरह नियमके रूप नहीं। मुनुर्वरोंने दलितवर्गसे अपने बीच सुधारकी जो अपील की है वह सर्वथा उचित ही है। 'अस्पृश्यों' द्वारा आन्तरिक सुधार और तथाकथित 'स्पृश्यों' द्वारा पश्चात्ताप, ये दोनों आन्दोलन साथ-साथ चलने चाहिए।

१. यहाँ केवल कुछ अंश दिया जा रहा है।

रेलगाड़ियोंमें भीड़भाड़

आनन्द निकेतन आन्ध्र देशके श्रीयुत टी० एन० शर्मा लिखते हैं:[१]

मेरी रायमें भीड़भाड़को रोकनेके लिए जंजीर खींचकर गाड़ी रोकनेका विचार काफी अच्छा है। यदि अधिकारी पहले और दूसरे दर्जेके डिब्बोंके लिए संख्याका नियम लागू करते हैं तो तीसरे दर्जेके लिए ऐसा क्यों नहीं करते? अभी उस दिन श्रीमती मीराबहनने इन पृष्ठोंमें जैसा विवरण दिया था,[२] उस तरह भीड़भाड़में कभी-कभी तो दम ही घुटने लगता है। यह ज्यादातर लाभका लालच ही है कि अधिकारी शिकायत न करनेवाले और शान्त रहनेवाले तीसरे दर्जेके मुसाफिरोंके आरामके प्रति इतने उदासीन रहते हैं; और उन्हें इन्हींसे मुनाफा मिलता है; पहले और दूसरे दर्जेके यात्रियोंसे नहीं। यदि वे तथ्य जिनका विवरण ऊपर दिया गया है, सही हैं तो यह जानना दिलचस्प होगा कि श्रीयुत श्रीहरिरावपर मुकदमा क्या कह कर चलाया जा रहा है।

पाँच कूट प्रश्न

जलपहाड़के श्रीयुत पी० के० मजूमदार, बार-एट-लाने निम्नलिखित प्रश्न पूछे हैं। उनके पीछे लम्बी-चौड़ी दलीलें भी दी गई हैं; उन्हें मैं छोड़े देता हूँ; क्योंकि वे इन प्रश्नोंमें ही आ जाती हैं:

१. क्या मनुष्य ईश्वरकी विशेष कृति है?

२. क्या अन्तरात्माकी आवाजका अर्थ दैवी सन्देश है?

३. भारतके पास हथियार और गोला-बारूद नहीं है, इस दृष्टिसे भारत असहाय है। केवल इस आशा कि शायद 'आत्मशक्ति' के प्रयोगसे सफलता मिल जाये, गृहयुद्ध अथवा विदेशियोंके हमलेका जोखिम उठाना और बलवान शत्रुके साथ लड़ाई मोल लेना क्या बुद्धिमत्ताका काम है?

४. क्या 'आत्म-शक्ति' का अर्थ वह शक्ति है जिससे आदमी जो-कुछ नहीं कर सकता शरीर द्वारा उसकी सिद्धि सम्भव है और जो शक्ति उसकी आत्मामें निहित है?

५. क्या 'आत्मा' 'जीवन' से कोई अलग वस्तु है?

इनके उत्तर ये हैं:

१. आदमी ईश्वरकी शेष सृष्टिसे जितने अंशमें भिन्न है, निश्चित रूपसे उसी अंशतक वह उसकी विशिष्ट कृति है।

२. अन्तरात्माकी 'आवाज' का अर्थ दैवी सन्देश और आसुरी सन्देश दोनों हो सकता है; क्योंकि मनुष्यके हृदयमें दैवी और आसुरी शक्तियोंका संघर्ष होता रहता है। मनुष्यके कार्योंसे ही यह पता चल सकता है कि अन्तरात्माकी आवाज दैवी या आसुरी है।

१. पत्र यहाँ नहीं दिया जा रहा है। इसमें यह बताया गया था कि एक युवकने रेलगाड़ियोंमें भीड़-भाड़के विरोधमें किस तरह प्रचार किया था; और उसे बादमें गिरफ्तार कर लिया गया था।

२. देखिए "तीसरे दर्जेका डिब्बा", १२-१२-१९२९।

३. अत्यन्त असहाय चूहा अपनी स्वतन्त्रताके लिए पूरी तरह हथियार बन्द अपने सहज शत्रु बिलावके साथ युद्ध करता है। चूहा जोर जुल्मको बर्दाश्त नहीं करता। यह जानते हुए भी कि वह असमान युद्धमें पिस जायेगा। संघर्ष करना चूहेका स्वभाव है। केवल आदमी ही सिद्धान्तका निर्वाह चूहेसे भी कम करता है। और आदमी ही जब कभी अपनी उस 'आत्मशक्ति' को अपने विरुद्ध तैयार शारीरिक शक्तियोंको बार-बार चुनौती देता है, पहचान लेता है, तब वह जो व्यवहार करता है वह चूहे जैसा नहीं बल्कि उससे बहुत ज्यादा गौरवपूर्ण होता है। आज गुलामीकी जो हालत है, उसमें भारत स्वतन्त्रता पानेके लिए चूहे जितना संघर्ष करनेमें भी अशक्त महसूस करता है, — इस हालतकी तुलनामें गृहयुद्धका जोखिम तो कुछ भी नहीं है।

४. आत्मशक्तिका आरम्भ तभी होता है जब आदमी यह जानने लगता है कि अपनेमें ही नहीं सारी सृष्टिमें व्याप्त आत्मशक्तिकी तुलनामें शारीरिक शक्ति, चाहे वह कितनी भी महान क्यों न हो, तुच्छ है।

५. आत्मा जीवनसे अलग है। जीवन शरीरपर आश्रित है, आत्मा नहीं।

चूँकि मेरे बैरिस्टर पत्र-लेखकने मुझे अपनेसे बड़ा वकील मानकर मेरी राय पूछी है इसलिए मेरी फीस यह है कि वह अपना चोगा छोड़कर कांग्रेसकी वर्दी [खादी] पहनना शुरू कर दे और हमारे सामने जो कठिनाइयाँ हैं, उनके बावजूद स्वाधीनताकी लड़ाईमें [सैनिकके रूपमें] शामिल हो जायें। यदि वे इतनी फीस दे देंगे तो उन्हें इसका अनुभव हो जायेगा कि मेरी राय वास्तवमें इतना मूल्य रखती थी।

[अंग्रेजीसे]
यंग इंडिया, १३-२-१९३०

४५१. वर्णधर्म और श्रमधर्म – २

प्रश्न – वर्णाश्रम धर्ममें श्रमका जो विभाजन है, क्या वह मानव-विकास और मानव-कल्याणके लिए पर्याप्त नहीं है? श्रमधर्म और वर्णधर्म, इन दोनोंमें आप किसको अधिक मानते हैं?

उत्तर: इस प्रश्नकी ध्वनि है कि श्रमधर्म और वर्णधर्म परस्पर विरोधी धर्म हैं। वस्तुत: ऐसा कुछ भी नहीं है। दोनों सहवर्ती और आवश्यक हैं। वर्णधर्म सामाजिक धर्म है और श्रमधर्म वैयक्तिक। ऋषियोंने समाजको चार भागोंमें बाँटा और समाजहितकी व्यवस्था करके उसके द्वारा लोकघातक प्रतिस्पर्धाको मिटानेकी चेष्टा की। इसलिए उन्होंने एक वर्णको समाजकी ज्ञानवृद्धिका, दूसरेको समाजके जानोमालका, तीसरेको समाजके व्यापारका और चौथेको समाजके परिचर्यात्मक व्यवहारका रक्षक बनाया। चारों कार्य एक प्रमाणमें आवश्यक थे और हैं, इसलिए एकको उच्च और दूसरेको नीच माननेका कोई भी कारण न था। तुलाधरका दृष्टान्त देकर व्यासजीने यह बताया भी है कि प्रत्येक धर्मी स्वधर्मके पालनसे मोक्ष-पदके लायक बन सकता है और एक-दूसरेके साथ स्पर्धा करनेसे, एक दूसरेको ऊँच-नीच माननेसे अधोगति होती है।

वर्णधर्मके यह माने भी कभी नहीं हैं कि कोई वर्ण वैयक्तिक श्रमधर्मसे मुक्त है। श्रमधर्म किसी भी वर्णके सब व्यक्तियोंके लिए है। ब्राह्मणको भी समित्पाणि होकर गुरुके पास जाना पड़ता था, अर्थात् उसे भी जंगलमें जाकर लकड़ी लानी और गोसेवा करनी पड़ती थी। यह काम समाजके लिए नहीं, किन्तु अपने लिये, अपने कुटुम्बके लिए करता था। केवल बच्चे और अपंग ही इस श्रमसे मुक्त रहते थे।

श्रमधर्ममें से टॉल्स्टॉयने जो आजीविका-धर्म प्रस्तुत किया है, वह एक उप-सिद्धान्त है। टॉल्स्टॉयने देखा कि यदि श्रम या मेहनत सबको करनी ही है तो इसका यह अर्थ है कि मनुष्य अपनी आजीविका शारीरिक श्रमसे पैदा करे, बुद्धिबलसे कभी नहीं। वर्णधर्ममें प्रत्येक वर्णका धर्म समाजहितके लिए एक कर्त्तव्य था और आजीविका उसमें हेतु नहीं थी। क्षत्रियको धन मिले या न मिले, रक्षा तो करनी ही पड़ेगी। ब्राह्मणको भिक्षा मिले या न मिले, ज्ञान देना ही पड़ेगा। वैश्यको धन मिले या न मिले कृषि-गोरक्षा करनी ही पड़ेगी। परन्तु टॉल्स्टॉयका यह कथन सर्वथा ठीक है कि आजीविकार्थ हरएकके लिए शारीरिक श्रम करना आवश्यक है। इस सर्व-साधारण धर्मका लोप होनेसे अथवा इसे न जाननेके कारण ही आज इस जगतमें दुःखद विषमता पाई जाती है। यों तो विषमता हमेशा रहेगी, किन्तु वह विषमता एक पेड़के विविध पत्तोंके समान सुन्दर और सुखद लगेगी। शुद्ध वर्णधर्ममें विषमता है ही और जब वह अपने शुद्ध रूपमें विद्यमान था तब वह सुखप्रद, शांतिप्रद तथा सुन्दर था। परन्तु जब कुछ मनुष्य अर्थसंग्रह ही के लिए अपनी बुद्धिका उपयोग करते हैं, घातक विषमता पैदा हो जाती है। जैसे, यदि शिक्षक (ब्राह्मण), सिपाही (क्षत्रिय) व्यापारी (वैश्य), और बढ़ई (शूद्र) समाजहितके लिए नहीं, बल्कि धन-संग्रहके लिए अपना धन्धा करें तो वर्णधर्मका लोप हो जाता है। क्योंकि धर्ममें धन-संग्रहको कोई भी स्थान नहीं हो सकता। समाजमें शिक्षक, वकील, डाक्टर, सिपाही वगैराकी आवश्यकता है। परन्तु जब ये लोग स्वार्थवश काम करते हैं तब समाज-संरक्षक मिटकर समाज-भक्षक बन जाते हैं।

'गीता'के तीसरे अध्यायमें भगवानने यह कह कर—

सहयज्ञा प्रजा सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः।
अनेन प्रसविष्यध्वमेष वोऽस्त्विष्टकामधुक्॥

अर्थात् यज्ञके साथ-साथ लोकको पैदा करके प्रजापतिने कहा: "इसीसे तुम्हारी वृद्धि हो, यही तुम्हारी कामधुक हो।" दुनियाके एक महान सिद्धान्तका निरूपण किया है और अब हम यज्ञका मूल अर्थ भली-भाँति समझ सकते हैं। यज्ञका अर्थ शारीरिक कर्म है और यह ईश्वरकी प्राथमिक और प्रथम पूजा है। ईश्वरने हमें देह दी है। अन्नके बिना देह रह नहीं सकती और बिना परिश्रमके अन्न पैदा नहीं हो सकता। अतएव शारीरिक श्रम सर्व-साधारण धर्म बना। यही टॉल्स्टॉयका ही क्या, सारे संसारका श्रमधर्म है। इस महायज्ञको न जाननेके कारण ही दुनियामें राक्षसी वृत्तिका उदय हुआ और बुद्धिशाली लोगोंने बुद्धिका उपयोग दूसरोंको लूटनेके लिए किया। यह तो स्पष्ट है कि ईश्वर परिग्रही नहीं है। सर्वशक्तिमान होनेके कारण वह प्रतिदिन इतना ही अन्न पैदा करता है कि जितना प्रत्येक मनुष्य या प्राणीके लिए काफी हो जाये।

इस महान नीतिको न जानते हुए कई लोग अनेक प्रकारके भोग भोगते हैं, इससे दूसरोंको भूखों रहना पड़ता है। अगर इस लोभको छोड़कर ऐसे लोग अपनी रोटीके लिए आप परिश्रम करें और आवश्यक रोटी ही खायें तो जो कंगालियत आज हम देखते हैं, वह नेस्तनाबूद हो जाये। अब प्रश्नकर्त्ता समझ गये होंगे कि वर्णधर्म श्रमधर्मका सहवर्ती है, एक दूसरेका सहायक है और आवश्यक है।

हिन्दी नवजीवन, १३-२-१९३०

४५२. पत्र : कस्तूरबहन भट्टको

१४ फरवरी, १९३०

चि० कस्तूरबहन भट्ट,[1]

इन दिनों तुम कहाँ हो? मुझे चिट्ठी लिखो। क्या अबतक तुमने सब कुछ हस्तगत कर लिया है? हरिहरसे मिलना होता है? तारानाथ, तनसुख कहाँ हैं?

बापूके वन्देमातरम्

गुजराती (जी० एन० ९२४९)की फोटो-नकलसे।

४५३. पत्र : नौतमलाल भगवानजीको

१५ फरवरी, १९३०

भाई नौतमलाल भगवानजी,

आपका पत्र मिला। आपकी भावनाओंको मैं समझता हूँ। आपका दिल दुखाकर डाक्टर कुछ भी नहीं करना चाहता। मैं उन्हें लिखूँगा।

मोहनदासके वन्देमातरम्

श्री नौतमलाल भगवानजी
जेतपुर, काठियावाड़

गुजराती (जी० एन० २५८१)की फोटो-नकलसे।

१. एक आश्रमबासी, हरिहर पी. भट्टकी पत्नी।

४५४. भाषण: साबरमती आश्रमकी प्रार्थना सभामें

१५ फरवरी, १९३०

गांधीजीने आश्रमके अन्तेवासियोंको सम्बोधित करते हुए, उनके पास भेजे गये नामोंका जिक्र किया, और कहा कि सभीको अपने नाम देना जरूरी नहीं है। यदि उन्हें आन्दोलनमें भाग लेनेकी अपनी योग्यतापर रत्ती-भर भी सन्देह हो तो वे अपना नाम अब भी वापस ले सकते हैं।

भाषण जारी रखते हुए उन्होंने कहा:

लोग आपसे यह आशा करते हैं कि आप अपनी ओरसे बड़ी तैयारीके साथ संघर्षमें भाग लें। सारा संसार आश्रमकी ओर बड़ी आशासे देख रहा है। यह हो सकता है कि जब आपने आश्रममें प्रवेश लिया तब आप तैयार न रहे हों, परन्तु यहाँके अनुशासन और वातावरणसे आपमें उतना विश्वास जरूर आ गया होगा और उससे आनेवाली लड़ाईके लिए अपने आपको तैयार करनेमें आपको सहायता जरूर मिली होगी।

गांधीजीने संघर्षके दौरान उन्हें जिन कष्टों और कठिनाइयोंको सहन करना पड़ेगा उनकी जानकारी दी। जेल भेजे जाने और मारपीटकी संभावना तो है ही; परन्तु यह भी संभव है कि आपको बिना भोजनके रहना पड़े या आप आश्रमसे बाहर भगा दिये जायें या आपपर इससे भी बुरी कोई विपदा आ पड़े। परन्तु सभी परिस्थितियोंमें आपको विचार और कर्ममें अहिंसक बने रहनेके लिए तो तैयार रहना ही चाहिए। आपको उत्तेजित या क्रुद्ध कभी नहीं होना चाहिए। आपको पूर्ण हृदय-परिवर्तनका प्रयत्न करना चाहिए। शायद ऐसा वक्त आ जाये कि ईश्वर भी आपसे रुष्ट हो जाये; परन्तु आपको धैर्य कभी नहीं खोना चाहिए।

उन्होंने भाषण जारी रखते हुए कहा:

प्रत्येक भक्तके ललाटपर कष्ट लिखे रहते हैं। राम और सीताको भी कष्ट सहन करने पड़े। ईश्वर आपको कसौटीपर परखता है और यदि आप उस परीक्षामें खरे उतर गये तो और कुछ अभीष्ट नहीं रहता। आश्रममें ही आपने किसी सीमा तक आनन्द मनाया है, परन्तु आनन्द मनानेकी उपयोगिता तभी है जब आप वक्त आनेपर अपना पौरुष दिखायें और अपना बलिदान करें। अब आपको आश्रम बलिदानकी दीप शिखामें ही बदल देना चाहिए। जो अपने आपको कमजोर या लड़ाईमें भाग लेनेके अयोग्य समझते हैं, आश्रम अवश्य छोड़ दें। एक बार जब आप अपने आपको लड़ाईमें झोंक दें और उसके बाद यदि पीछे हटें तो यह आपपर कलंक होगा और यह सारे भारतके सुन्दर नामपर दाग होगा।

[अंग्रेजीसे]

हिन्दू, १७-२-१९३०

४५५. पत्र: डा० मु० अ० अन्सारीको

साबरमती
१६ फरवरी, १९३०

प्रिय डा० अन्सारी,

इस समय सुबहके साढ़े तीन बजे हैं। मैं तुम्हें चंद सतरें लिखनेके लिए समय निकालनेकी कोशिश करता रहा हूँ। तुम्हारे पत्रकी मैं कद्र करता हूँ। उसे पहले मोतीलालजीने और जवाहरलालने देखा और फिर कार्य-समितिको पढ़कर सुनाया। उसपर कई टीकाएँ की गईं। फिर भी किसीने ऐसा नहीं समझा कि उसमें ऐसा कुछ है जिससे लाहौरके कार्यक्रममें फेरबदलकी जरूरत लगती हो। मैं मानता हूँ कि हिन्दू-मुस्लिम समस्या समस्याओंका मूल है। लेकिन मुझे लगता है कि उसको दूसरे ढंगसे ही सुलझाने की जरूरत है न कि जिस ढंगसे हम अबतक उसे सुलझाते आये हैं — अभी हम उसे राजनीतिक ताकतके समंजन द्वारा हल करनेकी कोशिश करते रहे हैं। अब हम इसे इस तरह सुलझायें कि दोमेंसे एक कोई भी पक्ष हर तरहकी परिस्थितिमें न्याय सम्मत समुचित व्यवहार ही करे। लेन-देनकी बात तभी सम्भव है जब सम्बद्ध जातियों तथा उनके प्रतिनिधियोंमें परस्पर विश्वासकी भावना हो। यदि कांग्रेस ऐसा विश्वास पैदा कर सकती है, तो मामला आगे बढ़ सकता है; उससे पहले नहीं। कांग्रेस ऐसा तभी कर पायेगी जब वह निश्शंक हो जाये और सर्वथा न्यायपूर्ण बने। लेकिन इसी बीच तीसरे पक्ष दुष्ट ब्रिटिश ताकतको शक्तिहीन बना देना है। हिन्दू और मुसलमान आपसमें मिलें, इससे पहले स्वाधीनताका कोई लिखित रूप नहीं होगा; लेकिन उस लिखित रूपके मिलनेसे पहले ही वास्तविक स्वाधीनता प्राप्त हो सकती है। इसलिए जो लोग यह विश्वास करते हैं कि अहिंसाके सिवाय कोई उपाय नहीं है और हिंसासे भारत कभी आजाद नहीं होगा, उन्हें दिनोंदिन सविनय अवज्ञाको अपनाना चाहिए।

मैं नहीं जानता कि मैं अपनी बात साफ कर पाया हूँ या नहीं। जो भी हो मेरी अपनी निजी लीक तय है। मैं समझता हूँ कि अब मुझे अपना रास्ता साफ दिख रहा है। मैं अब मुड़ कर वापस नहीं जा सकता। यदि ईश्वर चाहता है और यदि वह मेरे लिए काम खोज देता है तो मैं जीवित रह सकता हूँ। यदि मेरे लिए उस दिशामें करनेको कोई काम नहीं, जिसमें लगता है कि उस प्रभुने मुझे पुकारा है तो जिन्दा रहनेमें मुझे रुचि नहीं है। यदि यह सब दिवा-स्वप्न हो तो मुझे अपने हाथों किये गये प्रकाशकी लपटोंमें जल जाना चाहिए। इसलिए मैं चाहूँगा कि तुम प्रसन्न हो जाओ। यदि हम परस्पर एक-दूसरेसे सहमत नहीं हो पाये तो इससे कुछ फर्क नहीं पड़ता। यदि हमारे दिल साफ हैं तो सब ठीक है; और मैं जानता हूँ कि दिल तो साफ हैं।

सदैव तुम्हारा
मो० क० गांधी

मेरी शुएबसे खुलकर बात हुई। उसने तुमसे मिलनेका वायदा किया है। मैं देखना चाहूँगा कि वह क्या करता है। यह पत्र तुम उसे या जिस किसी मित्रको दिखाना चाहो दिखा सकते हो।

मो० क० गांधी

[अंग्रेजीसे]

अन्सारी कागजात
सौजन्य: जामिया मिलिया पुस्तकालय, ओखला, (दिल्ली)

४५६. पत्र: सतीशचन्द्र दासगुप्तको

१८ फरवरी, १९३०

भाई सतीशबाबु,

तुमारे दो खत मीले हैं। आजकल तुमारी गेरहाजरी मैं मेहसुस करता हुं। परंतु तुमको जानबुज कर मैंने नहिं बुलाये हैं। द्वेषभाव पैदा होनेका मुझे डर था। ऐसे तो तुमारे साथ अहिंसाकी क्या बात करूं। मैंने बातें तो केवल अहिंसाकी हि की है। तदपि यदि मेरे पास आ कर कुछ भी समझनेकी आवश्यकता प्रतीत रहे तो निःसंकोच आ जाना। मार्चके मध्यमें मुझे पकड़ लेंगे ऐसा मेरा ख्याल है। मेरा खत वाईसरोयका २ तारीखको जायगा ऐसी उमीद है।

अंतरजामीसे बातें हुई थी। बहोत संतोष नहिं मीला। शंकरलालके[1] आनेकी प्रतीक्षा कर रहा हूं। उत्कलका कार्य अच्छा हो जाय तो बड़ा हि अच्छा होगा।

हेमप्रभा देवीके खतकी प्रतीक्षा करता हुं। उनका स्वास्थ्य कैसा है?

बापूके आशीर्वाद

[पुनश्च:]

मेरे अक्षर पढ़नेमें या भाषा समझनेमें कुछ कष्ट पड़े तो मुझे लीखो।[2]

जी० एन० १६१५की फोटो-नकलसे।

१. शंकरलाल बैंकर।
२. गांधी निधि मालाके पत्रोंमें सतीशचन्द्र दासगुप्तको लिखा यह पहला हिन्दीका पत्र है।

४५७. पत्र : उदित मिश्रको

१९ फरवरी, १९३०

भाई उदित मिश्रजी,

आपका पत्र आजहि पूरा पढ़ सका हुं।

अपने मतविरोध या धर्मविरोध शिक्षकोंको बच्चोंके लिए कभी नहीं रखना चाहिए। केवल इंग्रेजीके लीये आधा समय बच्चोंके लिए कभी न दीया जाय। बच्चोंकी इंग्रेजी पढ़ाने वालोंको हिंदीका ज्ञान आवश्यक नहिं है।

जब लड़कोंके दिलमें किसी शिक्षकके लिये . . .[1] पैदा होती है शिक्षकको हटा लेना आवश्यक है।

मुख्य-अध्यापकका धर्म है कि कोई उप-अध्यापक अनुचित बात सीखाता है तो उसको रोके। दूसरा कर्त्तव्य उ० अ० का अनुचित व्यवहार देखे तो उसका धर्म बच्चोंके . . . [2]को चेतानेका होता है।

धर्माचरणमें किसीकी प्रसन्नता अप्रसन्नता अप्रस्तूत है।

त्याज्य विदेशी वस्तु बच्चोंको कोई भी दे तो उसका सविनय इनकार करनेका शिक्षण बच्चोंको देना चाहिए।

तकली यज्ञ हरगीज न छोड़ें। तकली भेजनेका प्रबंध करता हुं।

आपका
मोहनदास

[पुनश्च :]

सब बातें घनश्यामदासजीसे कह देना उचित है। यह पत्र भी उनको [बता] या जाय।

मो० क० गांधी

जी० एन० ४२१९ की फोटो-नकलसे।

१ और २. मूलमें यहाँ अस्पष्ट है।

४५८. 'अमोघ अस्त्र'

अहिंसाप्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः।[1]

'अहिंसाके सामने द्वेषभाव ठहर नहीं सकता।'

कार्यसमितिकी रायमें सविनय अवज्ञा उन्हीं लोगोंको आरम्भ करनी चाहिए और चलानी चाहिए जो पूर्ण-स्वराज्यकी प्राप्तिके लिए अहिंसाको अपना धर्म मानते हों, और चूँकि कांग्रेस संगठनमें सिर्फ ऐसे ही स्त्री-पुरुष नहीं हैं, वे लोग भी हैं जो देशकी मौजूदा हालतमें अहिंसाको एक आवश्यक नीति समझते हैं, इसलिए यह कार्यसमिति महात्मा गांधीके प्रस्तावका स्वागत करती है और उन्हें तथा उनके साथ काम करनेवालोंको, जो ऊपर बताई हुई हदतक अहिंसाको अपना धर्म मानते हैं, अधिकार देती है कि वे जब चाहें, जिस तरह चाहें और जिस हदतक तय करें, तब, उस तरह और उस हदतक सविनय अवज्ञा कर सकते हैं। कार्य समितिको विश्वास है कि जब आन्दोलन चल रहा होगा सभी कांग्रेसी और दूसरे लोग सत्याग्रहियोंके साथ यथासम्भव हर तरहका पूरा सहयोग करेंगे और उत्तेजनाका चाहे जैसा अवसर दिया जानेपर भी वे अहिंसाका पूरी तरहसे पालन और रक्षण करेंगे। कार्य समिति यह भी आशा रखती है कि देशव्यापी आन्दोलनके छिड़ जानेपर वे सब लोग जो स्वेच्छासे सरकारके साथ सहयोग कर रहे हैं, मसलन, वकील, और वे जो उससे तथाकथित लाभ उठा रहे हैं, मसलन विद्यार्थी सरकारके साथ सहयोग करना या उससे लाभ उठाना छोड़ देंगे और आजादीकी इस अन्तिम लड़ाईमें कूद पड़ेंगे। कार्यसमितिको विश्वास है कि नेताओंकी गिरफ्तारी या कैद हो जानेके बाद वे लोग जो पीछे रह जायेंगे और जिनमें त्याग और सेवाका भाव होगा, कांग्रेस संगठन चलाते रहेंगे और अपनी पूरी योग्यताके अनुसार आन्दोलनका निर्देशन करते रहेंगे।

कार्य समितिका यह प्रस्ताव[2] यदि मेरे हाथ-पाँव जंजीरसे जकड़ देता है तो मुझे स्वतन्त्रताका परवाना भी देता है। यही वह नुस्खा है जिसके बारेमें मैं पिछले महीनों लगातार सोचता रहा हूँ। मेरे लिये यह प्रस्ताव उतना राजनैतिक नहीं है जितना कि धार्मिक। [कांग्रेसके नामसे सत्याग्रह करनेमें] मेरे सामने तात्त्विक कठिनाई थी। मुझे लगता था कि ऐसी संस्थाके द्वारा, जिसमें अहिंसाके सम्बन्धमें तरह-तरहके विचार रखनेवाले लोग हैं, अहिंसाके कार्यक्रमको मैं पूरी सफलताके साथ नहीं चला

१. पतंजलि, **योग सूत्र** २, ३५।

२. अहमदाबादमें १५-२-१९३० को पास किया गया।

सकूँगा। क्योंकि अहिंसाका संचालन बहुमतके फैसलोंपर नहीं हो सकता। और अहिंसाके सिद्धान्तका पूर्णपालन हो तो सम्भव है कि वह सारे संसारके साथ मेल न खा सके।

जिस व्यक्तिके सामने चुनाव करनेकी गुंजाइश हो उसके सामने प्रलोभन हमेशा खड़ा रहता है। उन लोगोंकी मनोवृत्ति, जो अहिंसाको सिर्फ कार्यनीति मानते, हैं हिंसाकी गुंजाइशके समय उन्हें अपने रास्तेसे हटा सकती है। परन्तु वे लोग जो कि अहिंसाको धर्म मानते हैं और जिनके अन्दर सचमुच अहिंसा भरी हुई है, कभी गुमराह नहीं हो सकते। इसीलिए सत्याग्रहके समय कांग्रेसके बन्धनसे बाहर रहनेकी आवश्यकता दिखाई दी। और मैं इस बातके लिए आभारी हुआ कि कार्य समितिके सदस्योंने मेरी सही स्थितिको बिलकुल ठीकसे समझा।

अब मुझे आशा है कि इस स्थितिके बारेमें कोई गलतफहमी नहीं होगी। यहाँ श्रेष्ठताका कोई सवाल नहीं है। अहिंसाको धर्म समझनेवालोंकी अपेक्षा अहिंसाको कार्यनीति समझनेवाले किसी तरह हलके नहीं हैं, वैसे ही जैसे कि पीले और काले आदमीके बीच ऊँच-नीचका कोई भेद नहीं है। हरएक व्यक्ति अपनी-अपनी बुद्धि और ज्ञानके अनुसार काम करता है।

अबकी बार मेरी जिम्मेदारी बहुत भारी है। ऐसी जिम्मेदारी मैंने अबतक नहीं ली थी। लेकिन सिवाय इसके और कोई चारा भी नहीं था। परन्तु यदि सचमुच अहिंसा ही मेरी एकमात्र पथ-प्रदर्शिका है तो मुझे विश्वास है कि सब तरहसे मंगल ही होगा। इस लेखके आरम्भमें दिये गये मन्त्रके द्रष्टा ऋषिने कहा ही है कि 'अहिंसाके सामने द्वेषभाव ठहर नहीं सकता', अंग्रेजीमें इसके लिए सही शब्द 'लव' या 'चैरिटी' है और क्या 'बाइबिल'में यह नहीं कहा गया है:

> **प्रेम पड़ोसीको किसी तरह नुकसान नहीं पहुँचाता,**
> **उसका मूलाधार विश्वास है,**
> **वह आशावादी है,**
> **वह अमोघ है – रामबाण है।** [1]

कभी-कभी प्रेम मनुष्यको सविनय अवज्ञा करनेपर मजबूर करता है। वह खतरनाक तो जरूर है, परन्तु जो हिंसा हमारे चारों ओर व्याप्त है, उससे ज्यादा खतरनाक नहीं। आत्माका नाश करनेवाली हिंसाके तापसे बचनेका एकमात्र अहिंसात्मक उपाय यदि कोई है तो वह सविनय अवज्ञा ही है। इसमें खतरा सिर्फ यही है कि सविनय अवज्ञाके साथ ही साथ कहीं हिंसा न भड़क उठे। परन्तु यदि ऐसा हुआ भी तो अब उसका उपाय मेरे हाथ लग गया है, लेकिन वह उपाय बारडोलीके जैसा[2] – सविनय अवज्ञा मोकूफ करनेका – नहीं है। स्वाधीनताकी लड़ाईमें हिंसाके मुकाबलेमें इस अहिंसात्मक संग्रामके एकबार शुरू होनेके बाद यह तबतक नहीं रुक सकता, जबतक कि एक भी अहिंसाका हामी बाकी बच रहेगा – फिर वह हिंसाकाण्ड चाहे किसीकी

१. **कोरिन्थियंस,** अध्याय १३।

२. देखिए खण्ड २२।

तरफसे क्यों न उभारा गया हो। अपनी जान देनेसे बढ़कर और कोई कुरबानी मनुष्य नहीं कर सकता, और अब इससे कम कुछ करना अहिंसामें अविश्वास प्रकट करनेके समान होगा।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २०-२-१९३०

४५९. कुछ सवाल

जो सविनय अवज्ञा होने जा रही है, उसके सिलसिलेमें कुछ मित्रों और आलोचकोंने कुछ समुचित प्रश्न पूछे हैं, जिनका जवाब देना आवश्यक है।

प्र० – निश्चय ही आप इतने अधीर तो नहीं हो गये होंगे कि सरकारको अपने इरादों और योजनाओंकी सूचना दिये बिना, और उसे आपको सन्तुष्ट करने या गिरफ्तार करनेका मौका दिये बिना ही आप आन्दोलन शुरू कर दें?

जो लोग मेरे पिछले कामोंसे वाकिफ हैं, उन्हें जानना चाहिए कि चोरीसे या अधीर होकर कोई काम करना मैं सत्याग्रहके विरुद्ध मानता हूँ। एक भी सच्चा कदम आगे बढ़ानेसे पहले मैं वाइसरायको अपने इरादोंकी सूचना जरूर दूँगा। अपने विरोधी या तथाकथित दुश्मनसे सत्याग्रहीको कोई बात छिपानी नहीं होती है।

क्या लाहौरमें आपने यह नहीं कहा था कि सविनय अवज्ञाके लिए – खासकर बड़े पैमानेपर कर बन्दी अभियानके लिए – देश तैयार नहीं है?

मुझे यह तो आज भी विश्वास नहीं है कि देश तैयार है। लेकिन यह बात अब मैं इतने साफ तौरसे देख पाता हूँ जितना कि पहले कभी नहीं देख पाता था कि इस अर्थमें कि अहिंसाका वातावरण नहीं है, तैयार न होनेकी बात कहनेसे वह स्थिति और भी बढ़ेगी; यह बात हम इन वर्षोंमें बराबर देखते आ रहे हैं। देशके नौजवान अधीर हो उठे हैं। मैं निश्चित रूपसे जानता हूँ कि चूँकि सन १९२१ में कांग्रेसने सत्याग्रह करनेका निश्चय किया था, इसीलिए इनमें से बहुतेरे लोगोंने अपने हिंसात्मक कार्यक्रमको मुल्तवी कर दिया था। जैसे-जैसे मैं यह कहता गया हूँ कि देश सविनय अवज्ञाके लिए तैयार नहीं है, वैसे ही वैसे हिंसक विचारके नौजवान अधिक सक्रिय बनते गये हैं। फिर मैं यह महसूस करता हूँ कि अगर अहिंसामें [हिंसाको दवा देनेकी] सक्रिय शक्ति है – जिसके होनेका मुझे विश्वास है तो हिंसाके आगे भी अहिंसाको कारगर होना चाहिए। लेकिन इस सम्बन्धमें एक कठिनाई यह थी कि चूँकि कांग्रेस सारे हिन्दुस्तानकी प्रतिनिधि संस्था होनेका दावा करती है, इसलिए, हरएक हिंसाकाण्डकी खासकर कांग्रेसियोंके हिंसाकाण्डकी जिम्मेदारी अपने सिर लिये बिना कांग्रेस सविनय अवज्ञा नहीं कर सकती। अब इस सविनय अवज्ञाकी जिम्मेदारी अपने सिर लेकर मैंने इस मर्यादाके बन्धनको तोड़नेका तरीका खोज निकाला है। क्योंकि मैं तो किसीका प्रतिनिधि नहीं हूँ, अतएव जिन्हें मैं स्वयं अपने साथ आन्दोलनमें

शामिल करूँगा, उन्हींके लिए जिम्मेदार भी रहूँगा। इसलिए फिलहाल तो जो लोग आश्रमके नियमोंका पालन कर रहे हैं और कुछ समय पहलेसे ऐसा करते रहे हैं, उन्हींको मैं अपने साथ शामिल करना चाहता हूँ। यह सच है कि संघर्षके दरम्यान देशमें कहीं भी कोई हिंसा भड़क जानेपर, अप्रत्यक्ष रीतिसे क्यों न हो, उसकी जिम्मेदारी शायद मुझे ही लेनी होगी। लेकिन ऐसी जिम्मेदारी तो हमेशा ही रहेगी और उस जिम्मेदारीसे थोड़ी ही ज्यादा होगी, जो मैं ब्रिटिश सरकारके साथ, चाहे जितना कम और अनिच्छासे ही क्यों न हो, सहयोग करनेके कारण राष्ट्रके प्रति शासकोंके अत्याचारमें अपनी मानता हूँ। मसलन, मैं प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूपसे कर देकर इस सरकारके साथ सहयोग कर रहा हूँ। मैं नमक खाता हूँ; और यही जान-बूझकर सरकारके साथ सहयोग करना हो जाता है। एक दूसरी बात जो मुझे आज इतनी साफ दिखाई देती है जितनी पहले कभी नहीं दिखाई दी थी, वह यह है कि यदि मेरी अहिंसाने हिंसाकी प्रतिमूर्ति ब्रिटिश साम्राज्यवादी शासनको सहन किया है तो उसे अपने अधीर देशभक्तोंकी अज्ञानपूर्ण और प्रभावहीन हिंसाको भी सहना चाहिए। वे नहीं जानते कि अपनी निष्फल खून-खराबीसे वे उस शासनकी सहायता कर रहे हैं जिसको वे नष्ट करना चाहते हैं और उसीकी जड़ मजबूत बना रहे हैं। आज मैं दिनके उजालेकी तरह यह साफ देख रहा हूँ कि मेरी अहिंसाके प्रयोग ब्रिटिश राज्यके खिलाफ अपना काम कर रहे हैं और उन्होंने उसे कुछ हदतक जरूर ही हिला दिया है। ठीक इसी तरह यदि आज मैं अपनी सारी हिम्मतके साथ अहिंसाका प्रयोग करूँ अर्थात् सविनय अवज्ञा छेड़ दूँ तो उतावले देशभक्तोंकी राज्य-विरोधिनी हिंसाको भी मेरी अहिंसा डिगा देगी। आन्दोलनके नियन्त्रणका सारा भार अपने ऊपर लेकर मैं इस दूसरे प्रकारके हिंसा भड़कनेकी जोखिमको बहुत ही कम किये दे रहा हूँ। इतना कह चुकनेपर भी, 'टाइम्स ऑफ इंडिया' ने मेरे इरादोंका जो वर्णन किया है, मेरे विचारसे उसमें सत्य है। मैं जो कदम उठाना चाहता हूँ उसे वह 'जुआरीका आखिरी दाँव' कहता है—भले कहे। मैं अपनी जिन्दगी भर एक तरहका जुआरी ही रहा हूँ। सत्यकी खोजके मेरे अथक प्रयत्नोंमें और अपनी श्रद्धाके अनुसार निःशंक होकर अहिंसा सम्बन्धी प्रयोग करते रहनेमें चाहे जैसे भयंकर खतरेका सामना करनेमें कसर नहीं रखी है। ऐसा करनेमें अगर मैंने कोई गलती की है, तो हरएक देश और हरएक युगमें सुप्रसिद्ध शास्त्रियोंने जो गलती की थी वैसी ही गलती मुझसे भी हुई होगी।

लेकिन आपको तो हिन्दू-मुस्लिम एकतामें बड़ा भारी विश्वास था न? अब वह क्या हुआ? उस एकताके बगैर आपके पूर्ण स्वराज्यका भी क्या होगा?

उस एकताके बारेमें मेरा जैसा विश्वास पहले था वैसा ही आज भी है। मैं ऐसा स्वराज्य नहीं चाहता, जिसमें किसी छोटीसे छोटी कौमके साथ भी अन्याय हो, ताकतवर मुसलमानों और उन्हींके बराबर ताकतवर सिखोंके साथ अन्यायकी बात तो छोड़ ही दीजिए। लाहौर कांग्रेसमें एकताका जो प्रस्ताव[1] पास हुआ है वह, इससे पहले कांग्रेसने इस दिशामें जितने भी प्रयत्न किये थे, उन सबका निचोड़ है। लाहौरके

१. देखिए "भाषण: अ० भा० कां० कमेटीकी विषय समितिमें-३", १-१-१९३०।

प्रस्तावमें कांग्रेस सम्प्रदायोंके सवालोंको साम्प्रदायिक ढंगसे हल करनेकी बात अस्वीकार करती है, लेकिन अगर सवालोंको ऐसे हल करना उसके लिए लाजिमी ही हो जायेगा तो वह किसी ऐसे हलपर विचार करेगी, जिससे न्याय पानेके इच्छुक सभी सम्प्रदायोंको न सिर्फ न्याय मिले बल्कि वे सन्तुष्ट भी हो जायें। जो संघर्ष मैं छेड़नेवाला हूँ उसका उद्देश्य देशकी सारी जनतामें स्वतन्त्र होनेकी शक्ति पैदा करना है। लेकिन जबतक सब दल एक नहीं होंगे, वास्तवमें यह नहीं होगा। सविनय अवज्ञाका साम्प्रदायिक सवालसे कोई सरोकार ही नहीं है। फिर भी जबतक इस सवालका निपटारा न हो जाये सविनय अवज्ञा शुरू न करना, तेलीके बैलकी तरह चक्करमें घूमते रहने-जैसा है और उस उद्देश्यको ही विफल करना है जिसपर सबका ध्यान रहना चाहिए। मुझे आशा है कि अगर कांग्रेसने साम्प्रदायिक सवालका प्रस्ताव शुद्ध नीयतसे किया है और अगर वह राष्ट्रके प्रति सच्ची बनी रही तो वह एक ताकतवर मध्यस्थ साबित होगी और कमजोरसे-कमजोर कौमके हितकी भी भली-भाँति रक्षा कर सकेगी। ऐसी कांग्रेसके सदस्य राष्ट्रके सच्चे सेवक होंगे, पदलोलुप नहीं। पूर्ण-स्वराज्य या एकताकी सिद्धितक वे सरकारी ओहदों या सरकारकी कृपा पानेके लिए छोटी-छोटी कौमोंके साथ स्पर्धा नहीं करेंगे। खुशनसीबी कहिए कि विधानसभाओंसे कांग्रेसका अब कोई वास्ता नहीं रह गया है – इन्हीं विधानसभाओंका कौमी कटुता पैदा करनेमें अधिक-से-अधिक हाथ रहा है। हाँ, निस्सन्देह यह दुःखकी बात जरूर है कि आज कांग्रेसके सदस्योंमें ज्यादातर हिन्दू ही हैं। लेकिन अगर कांग्रेसके हिन्दू सम्प्रदाय या जातीय दृष्टिसे विचार करना छोड़ देंगे और दूसरी कौमोंको जो सहूलियतें बराबरीसे नहीं मिलती हैं, उनसे आप भी मुँह मोड़ लेंगे तो उनके इस कामसे दूसरी कौमोंका अविश्वास फौरन ही मिट जायेगा और अच्छेसे-अच्छे मुसलमान, सिख, पारसी, ईसाई, यहूदी और अपने आपको भारतीय माननेवाले दूसरे सब उनके साथ हो जायेंगे। पर कांग्रेस इस आदर्शतक किसी दिन पहुँचे या न पहुँचे, मेरा मार्ग तो सदाकी भाँति साफ ही है। सब कौमोंकी एकता मेरे लिये कोई नई चीज, नया प्रेम नहीं है। मैंने होश सँभालते ही इस एकताको अपने प्राणसे भी बढ़कर माना है और तदनुसार ही मैं बरतता आया हूँ। सन् १८८९ में एक युवककी हैसियतसे जब मैं विलायत गया था तब भी कौमी एकतामें मेरा विश्वास आज ही की भाँति दृढ़ था। १८९३ में जब दक्षिण आफ्रिका गया तो वहाँ भी मैंने इस एकताको ही केन्द्र बनाकर अपने जीवनका एक-एक कदम आगे बढ़ाया था। इस तरहका बद्धमूल प्रेम सारे संसारका राज्य मिलनेपर भी छोड़ा नहीं जा सकता। वास्तवमें आगामी आन्दोलन जनसाधारणका ध्यान कौमी सवालसे हटाकर हरएक धर्म और हरएक पंथके भारतवासियोंके सामूहिक कल्याणके प्रश्नकी ओर आकर्षित करेगा।

तो क्या आप कर सके तो अन्ततोगत्वा ब्रिटिशोंका विरोध करनेवाली, एक शक्ति खड़ी करेंगे?

कभी नहीं। इस लोक या परलोककी किसी भी चीजके मुकाबले मुझे अहिंसा ज्यादा प्यारी है। सत्यके प्रति भी मेरे हृदयमें इतना ही प्रेम अवश्य है, क्योंकि

मेरे लेखे तो सत्य और अहिंसा दोनों एक ही अर्थके सूचक हैं। और बगैर अहिंसाके सत्यके निकट पहुँचना या सत्यका दर्शन करना अशक्य है। यदि मेरे जीवनमें भिन्न-भिन्न धर्मोंके बीच कोई भेद नहीं है, तो भिन्न-भिन्न विचार, मार्गों, पंथों अथवा जातियोंके बीच भी कोई भेद नहीं है। मैं यह मानता हूँ कि हर तरहकी विभिन्नता होते हुए भी मनुष्य आखिर मनुष्य ही है। इस संघर्षको छेड़नेमें भारतीयोंके प्रति प्रेम मेरे लिए जितना प्रेरक कारण है उतना ही प्रेरक कारण अंग्रेजोंके प्रति प्रेम भी है। मैं स्वयं कष्ट सहकर उनका हृदय-परिवर्तन करना चाहता हूँ, उनका नाश करना नहीं चाहता।

लेकिन क्या आप यह नहीं सोचते कि हमारे इस स्थूल जगतमें आपके वे स्वप्न कभी सच्चे सिद्ध नहीं होंगे।

अगर ऐसा ही हो तो हो। मैं जानता हूँ कि मुझपर यह कोई नया आरोप नहीं है। भूतकालमें मेरे स्वप्न सच्चे सिद्ध हुए हैं, तो फिर यह आखिरी स्वप्न ही क्यों व्यर्थ जायेगा? अगर व्यर्थ ही गया तो नुकसान केवल मेरा और मेरे प्रभाव में आनेवालोंका ही होगा। लेकिन अगर सरकारको मेरे इस सपनेका कोई बुरा नतीजा साफ दिखाई पड़ता हो तो वह जब चाहे तब मेरे शरीरपर अपना अधिकार जमा सकती है। अगर मेरे आन्दोलन छेड़नेकी धमकीके कारण किसी अंग्रेजकी जान आजकी अपेक्षा अधिक खतरेमें पड़ती हो तो काश्मीरसे कन्याकुमारी और कराचीसे डिबरूगढ़के बीच होनेवाली तमाम खून-खराबीको दबा देनेके लिए ब्रिटिश सरकारका राजदण्ड काफी लम्बा और काफी समर्थ है। अन्तमें एक बात और। तमाम राजनीतिज्ञ और समाचारपत्रोंके सम्पादक मुझसे 'अपील' करनेके बजाय सरकारसे 'अपील' करें और वह जो-जो अत्याचार इस देशपर बराबर करती आ रही है उन्हें दूर करनेके लिए उसे समझायें तो सत्याग्रह संघर्ष छेड़नेकी आवश्यकता भी न रह जाये। इन अन्यायों या अत्याचारोंमें से कुछका जिक्र तो मैं इन पन्नोंमें कुछ हदतक कर ही चुका हूँ।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २०-२-१९३०

४६०. लुटेरी सरकार[1]

जनता चूँकि किसी बातको जल्दी ही भूल जाती है, इसलिए मैं कांग्रेसके दोनों प्रस्तावोंको, जिनका प्रोफेसर कुमारप्पाने समर्थन किया है तथा जिनका यहाँ और विदेशमें इतना गलत अर्थ लगाया गया है, नीचे दे रहा हूँ:

गया कांग्रेसका प्रस्ताव (१९२२)

सरकारने सेनाके अनुचित व्यय और अन्य अपव्ययके कारण राष्ट्रीय ऋणको इस सीमातक बढ़ा दिया है कि उसका भुगतान ही सम्भव नहीं बचता; और जब कि सरकार बहुमत अथवा मतदाताओंकी पर्याप्त संख्याके बिना ही गठित की गई तथाकथित प्रतिनिधि विधान सभाओंके अधिकारकी आड़में तथा इन विधानसभाओंके द्वारा जनताका प्रतिनिधित्व करनेके अधिकारको खुले रूपमें स्वयं अस्वीकृत करके भी उसी अपव्ययकी नीतिको अपनाये हुए है, इसलिए

और यदि सरकारकी इसी नीतिको ही चालू रखने दिया जाता है तो भारतीयोंके लिए जनताके गौरव और प्रसन्नताके अनुरूप अपना कार्य करना असम्भव हो जायेगा; इसलिए यह आवश्यक हो गया है कि इस अनुत्तरदायी कार्यको बन्द किया जाये; इसलिए

यह कांग्रेस राष्ट्रीय बहिष्कारके बावजूद भी सरकार द्वारा गठित की गई अथवा गठित की जानेवाली इन विधानसभाओं द्वारा राष्ट्रके नाम भविष्यमें किसी प्रकारका ऋण लेने तथा कोई खर्च करनेके इनके अधिकारको अस्वीकृत करती है और संसार [भरके देशों] को यह सूचित करती है कि भारतीयोंके स्वराज्य पानेपर, यद्यपि वे अपने आपको सरकार द्वारा अबतक सही या गलत रूपमें लिये गये ऋण और खर्चोंका देनदार समझते हैं, आजके दिनके बादसे राष्ट्रीय बहिष्कारके बावजूद गठित की गई तथाकथित विधानसभाओंके अधिकार अथवा स्वीकृतिसे लिये गये ऋणों अथवा किये गये खर्चोंको देनेके लिए अपने आपको बाध्य नहीं मानते।

लाहौर कांग्रेसका प्रस्ताव (१९२९)[2]

गया [कांग्रेस]का प्रस्ताव निश्चय ही [सरकारको] हानि पहुँचानेवाला नहीं है बल्कि [लोगोंकी] समृद्धिके मूल्य पर बरती गई एक उदारता है। वह लोगोंको सही

१. **यंग इंडिया,** ३०-१-१९३० में छपे अपने "लुटेरी सरकार" नामक लेखमें जे० सी० कुमारप्पाने लिखा था कि ब्रिटिश सरकारने किस प्रकार भारतीयोंपर अनुचित रूपसे २० करोड़ पौण्डके ऋणका भार लाद दिया है तथा गया और लाहौर कांग्रेसमें इस सम्बन्धमें पास किये गये प्रस्तावोंकी ओर पाठकोंका ध्यान आकर्षित किया था।

२. यहाँ नहीं दिया जा रहा है। देखिए "भाषण: अ० भा० का० कमेटीकी विषय-समितिमें–१", १-१-१९३०।

अथवा गलत ढंगसे लिए गये वर्तमान ऋणको अदाकर देनेपर बाध्य करता है। लाहौर प्रस्तावमें इस गलतीको सुधारा गया है तथा उसमें समय आनेपर भूत, वर्तमान और भविष्यका सारा हिसाब-किताब एक निष्पक्ष न्यायाधिकरणके सम्मुख पेश करनेका सम्माननीय और सामान्य ढंग अपनाया गया है। जब एक संस्था अथवा व्यापार एक प्रबन्धकके हाथसे दूसरेके हाथमें जाता है तब क्या होता है? क्या जानेवाला प्रबन्धक आनेवाले प्रबन्धकको सब हिसाब-किताब नहीं देता? क्या उस हिसाब-किताबकी जाँच-पड़ताल नहीं की जाती? भविष्यकी राष्ट्रीय सरकार यदि अपने ऊपर पड़नेवाले ऋणके भारकी सख्त जाँच-पड़ताल करनेके अपने कर्त्तव्यमें असफल रहे तो वह अपने अस्तित्वके आरम्भमें ही लोगोंके विश्वासका हनन करेगी। यदि उस समय ब्रिटेन और भारत ऋण चुकानेमें समर्थ हुए तो किसी भी रुपये लगानेवालेको एक भी पैनी अथवा पाईकी हानि होनेका भय नहीं होना चाहिए। क्योंकि जो-कुछ भी भारतके हिस्सेमें आयेगा उसका भुगतान उसे करना पड़ेगा। जो-कुछ उचित रूपसे उसके हिस्सेमें नहीं डाला जा सकता, वह निश्चय ही ब्रिटेनको लेना पड़ेगा। वर्तमान असहाय मूक भारतको तो अपनी इच्छाके विरुद्ध उस सबका भी भुगतान करना पड़ता है जिसका उचित रूपमें उसे भुगतान नहीं करना चाहिए। जब भुगतान किसे करना चाहिए यह तय करनेका दिन आयेगा तब भारतके करोड़ों लोगोंके प्रति यह कर्त्तव्य होगा कि हर उस मदको अस्वीकार किया जाये जो अनुचित साबित होता है। लेकिन उसका अर्थ केवल एक अनिवार्य और उचित अदला-बदली होगा। इसे रुपये लगानेवाले पावती-पत्रधारी और इन्हीं जैसे लोगोंकी चिन्ताका विषय नहीं होना चाहिए।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २०-२-१९३०

४६१. टिप्पणियाँ

'नहीं छोड़ेंगे'

नार्थक्लिफ हाउससे अभी हाल मुझे ये नीचे लिखे महत्वपूर्ण चुनिंदा उद्धरण मिले हैं:

> **. . . [इंग्लिशस्तानके] राजनीतिज्ञोंको चाहिए कि वे पूर्वी साम्राज्य याने हिन्दुस्तानको औपनिवेशिक स्वराज्य देनेकी गोलमोल बातें करना हमेशाके लिए छोड़ दें। जो लोग इस तरहकी घातक कार्यनीतिके साथ खिलवाड़ करने पर तुले हुए हैं, उन्हें सार्वजनिक जीवनसे फौरन ही दूर हटा दिया जाना चाहिए।**
>
> **ब्रिटेनके भलेके लिए आयात-निर्यातपर करकी या दूसरी राजनैतिक समस्याओंकी अपेक्षा हिन्दुस्तानको अधीन बनाये रखना बहुत ही महत्व रखता है। अगर भारतको ब्रिटिश साम्राज्यका आधार स्तम्भ कहें तो अनुचित न**

> होगा। हमारे देशवासियोंके लिए भारतके साथका व्यापार एक अत्यन्त महत्वकी चीज है। अगर भारतीय बाजार बिलकुल ही हमारे हाथसे चला गया तो उससे लंकाशायरका दिवाला तो निकल ही जायेगा, लंकाशायरके मजदूरोंपर भी आफतका पहाड़ टूट पड़ेगा। पिछले सालके आँकड़ोंके मुताबिक ब्रिटेनसे ८,३९,००,००० पौण्ड कीमतका माल भारतवर्षको गया था (ब्रिटेनके कुल निर्यातका यह $\frac{1}{9}$ हिस्सा है)। भारतको छोड़कर और कोई ऐसा देश या प्रदेश ब्रिटिश या विदेशी नहीं है, जिसमें ब्रिटेनका इतना माल खपता हो। हिन्दुस्तानके क्रान्तिकारी लोगोंका ध्येय ही यदि उन्हें वैसा मौका मिले तो इस व्यापारको नष्ट करना है।
>
> साइमन कमीशनके सामने जो गवाहियाँ दी गई थीं उनके अनुसार हिन्दुस्तानमें अंग्रेजोंकी १,००,००,००,००० पौण्डकी जबर्दस्त पूँजी लगी हुई है। और भारतके क्रान्तिकारी तो साफ-साफ यह कह चुके हैं कि वे भारतके नामसे लिया कर्ज नहीं चुकायेंगे और ब्रिटिश पूँजीसे भारतमें जो कारखाने और उद्योग चल रहे हैं उन्हें जब्त कर लेंगे। इतनी बड़ी इस रकमको खोकर ब्रिटेन फिर कभी उठ नहीं सकेगा।
>
> भारतवर्षको छोड़ देनेकी नीति बन्द होनी ही चाहिए।... इसके लिए दो और केवल दो ही रास्ते हैं। पहला यह कि हम लोग वहाँसे चले आयें और देशको देशी राजाओंके हाथोंमें सौंप दें। ये देशी राजा अखिल भारतीय कांग्रेसके हिन्दू वकीलोंसे बहुत जल्दी निपट लेंगे। दूसरा रास्ता हिन्दुस्तानमें बने रहने और राज करनेका है। हमारा देश तो इस दूसरे रास्तेको ही अपनायेगा।

इस टिप्पणीका शीर्षक और छोटे-बड़े अक्षर सब लन्दनके 'डेलीमेल' के ही हैं। मि० ब्रेन इस लेखकी बातोंको भले ज्यादा महत्व न दें मगर जो-कुछ इसमें कहा गया है वह जितना साफ-साफ है उतना ही सच है। लेकिन 'नहीं छोड़ेंगे' का दावा एक ऐसा दावा है जिसे दोनों दल अपनी-अपनी ओरसे पेश कर सकते हैं। अगर हिन्दुस्तानके करोड़ों लोग [अपने जन्मसिद्ध अधिकारको] 'न छोड़ने' का संकल्प कर लें तो उनकी अहिंसात्मक शक्तिके मुकाबले अंग्रेजोंका भारतको 'न छोड़ेंगे' का हठ और उनकी सारी जल, थल और वायुकी सेनाएँ व्यर्थ हो जायें। अंग्रेज जनता हिन्दुस्तानके साथ अपना सम्बन्ध बनाये रखकर जो भौतिक लाभ उठा रही है वही उसका बड़ा स्वार्थ है। इधर भारतीय जनताके लिए अंग्रेजोंके इस स्वार्थको नष्ट कर डालना ही सबसे बड़ी महत्वकी बात है। क्योंकि उसके लिए यह घातक बोझ अब असह्य हो उठा है। भारतकी दृष्टिमें अंग्रेजोंके जो स्वार्थ हिन्दुस्तानमें हैं, उनमें से कई अत्यन्त अनुचित हैं। अच्छा हो अगर इन दोनों ओरकी भिड़न्तसे संसार एकबार दहल जाये। देशको कितना ही मूल्य क्यों न चुकाना पड़े, अंग्रेजोंका यह निर्दय शोषण बन्द होना ही चाहिए।

शुद्धि नहीं हो सकती

विलायती अखबारोंकी कतरनोंसे मिलनेवाली अनेक खुशखबरोंमें से एक यह भी है कि कुमारी स्लेडने, जिन्हें आश्रममें मीराबाई कहते हैं, हिन्दू-धर्म स्वीकार कर लिया है।[1] मैं कहना चाहता हूँ कि उन्होंने ऐसा नहीं किया है। मुझे आशा है कि चार साल पहले, जब वह आश्रम आई थीं, तबसे आज वह अधिक अच्छी और सच्ची ईसाई हैं। वह कोई कच्ची उम्रकी बालिका तो हैं नहीं। उनकी उम्र तीस सालसे भी ज्यादा है और वह अकेली ही मिस्र, फारस तथा यूरोपमें वहाँके वृक्षों और पशुओंसे स्नेह सम्बन्ध स्थापित करती हुई घूम चुकी हैं। मुझे अपनी देखरेखमें कम उम्रके मुसलमान, पारसी और ईसाई स्त्री-पुरुषोंको रखनेका सौभाग्य मिला है। इस बीच हिन्दू-धर्म स्वीकार कर लेनेके लिए उनसे कभी नहीं कहा गया। उन्हें अपने ही धर्मग्रन्थोंको पढ़ने और उनका आदर करनेके लिए प्रोत्साहित किया गया, प्रेरणा दी गई। आज भी मैं बड़ी प्रसन्नताके साथ अपने उन साथी, स्त्री-पुरुषों, बालक और बालिकाओंके उदाहरण दे सकता हूँ, जिन्हें अपने धर्मोंसे पहलेकी अपेक्षा अधिक प्रेम करना और उन्हें भली-भाँति समझना सिखाया गया था और साथ ही जिन्हें दूसरे धर्मोंका अभ्यास करने और उनके प्रति सहानुभूति तथा आदर रखनेकी शिक्षा दी गई थी। आज भी आश्रममें कई धर्मोंके प्रतिनिधि रहते हैं। किसी भी तरहकी शुद्धि न तो की जाती है, न उसकी अनुमति दी जाती है। हम यह मानते हैं कि ये सब धर्म सच्चे और दैवी प्रेरणाके फल हैं, लेकिन चूँकि उनका पालन अपूर्ण मनुष्यों द्वारा अपूर्ण मनुष्य ही कराते थे, उनमें कई बुराइयाँ पैदा हो गई हैं। कुमारी स्लेडका नाम हिन्दू नहीं, हिन्दुस्तानी है। यह नाम उन्हींके कहनेसे और सुविधाके खयालसे रखा गया है। हमारे पास ऐसे और भी कई उदाहरण हैं। श्री रिचर्ड ग्रेग जिनकी ईसाइयतके बारेमें कोई शंका नहीं है, हमारे लिये गोविन्दजी हैं। एक दूसरी वृद्धा ईसाई बहन, कुमारी एडा वेस्ट, जो आजकल लाउथमें रहती हैं, जब फीनिक्समें थीं, हमारे लिए देवीबहन थीं।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २०-२-१९३०

१. २२-१-१९३० को **डेली एक्सप्रेसके** प्रतिनिधिसे हुई गांधीजीकी भेंटका विवरण।

४६२. वर्णधर्म और श्रमधर्म-३

प्र० —— चारों वर्णोंके गुण किसी एक ही व्यक्तिमें पाये जायें, यह है तो अच्छा पर क्या अधिकांश मनुष्य-समाज ऐसा बन सकता है, और क्या समाजके सामने यह आदर्श रखना उचित है?

उ० —— कई गुण तो सब वर्णोंके लिए समान हैं ही, और होने चाहिए, लेकिन सब वर्णोंके सब गुण सबमें आना अनावश्यक और असम्भव है।

टाल्स्टायका श्रम-धर्म यदि सर्वमान्य हो उठे तो क्या 'जब लग ताजा पोहों वेही —— तब लग भूलें राम सनेही' कहनेवाले कबीर और पुष्पकी भाँति सप्रतीक्ष भावसे बैठनेकी मनोकामनावाले रवीन्द्रका इस दुनियामें रहना दूभर न हो जायेगा और क्या यह संसारके लिए दुःखकी बात न होगी?

श्रमधर्म कबीर या रवीन्द्रनाथके सिद्धान्तोंका खण्डन करनेवाला नहीं है, बल्कि उन दोनोंके काव्यको अधिक शक्तिशाली और शोभास्पद बनानेवाला है। श्रमधर्म बौद्धिक शक्तिका ह्रास नहीं करता, उलटे उसका सच्चा पोषक है। भेद मात्र इतना ही है कि श्रमधर्मका उपासक अकेली काव्य रचना ही से अपनी आजीविका कभी पैदा नहीं करेगा और न श्रमका सर्वथा त्याग ही करेगा। कबीर श्रमधर्मके पोषक थे ही। उन्होंने भजनादि बनाकर कभी कौड़ी भी नहीं कमाई थी। वह कपड़ा बुनकर अपनी रोटी कमाते थे। धर्म-प्रचार उनका स्वभाव या मनोरंजनका विषय बन गया था। रवीन्द्रनाथ इस युगके कविश्रेष्ठ हैं, क्योंकि काव्य-रचना द्वारा वह अपने गुजारेके लिए धन नहीं कमाते। काव्य-रचनासे उन्हें जो-कुछ आमदनी होती है, सो सब वह अपनी संस्थाको दे डालते हैं। उनकी अपनी जायदादमें से उनका निर्वाह होता है। वह श्रमधर्मको कहाँतक मानते हैं, सो मैं नहीं जानता; इतना जरूर जानता हूँ कि वह श्रमधर्मके निन्दक कदापि नहीं हैं। इतिहाससे हमें पता चलता है कि प्राचीन कवियों अर्थात् ज्ञानियोंने श्रमधर्मका पालन किया है, फिर भले वह अनजाने ही क्यों न हो। फलस्वरूप उनकी प्रसादी आज भी मौजूद है।

श्रमधर्मके अनुसार तो ईसा और बुद्ध और स्वयं टाल्स्टाय भी दोषी ही रहते हैं। टॉल्स्टॉयकी स्त्रीने ही कहा है कि पुस्तकें लिखनेके सिवाय इनसे कोई काम नहीं हो सकता। लोगोंकी हँसी प्राप्त करने लायक बढ़ईगीरी या दूसरे काम उन्होंने सीखे हों सही, पर इससे टाल्स्टायका श्रमधर्म सन्तुष्ट नहीं हो सकता। क्या इसीलिए इसपर सावधानीपूर्वक विचार करनेकी जरूरत नहीं है?

इस मन्तव्यमें इतिहासकी विस्मृति है। ईसा तो बढ़ई थे। उन्होंने बौद्धिक शक्तिको अपनी आजीविकाका साधन कभी नहीं बनाया था। बुद्धदेवने ज्ञान प्राप्तिसे पहले कितना परिश्रम किया था, सो हमें मालूम नहीं है। हाँ, इतना हम जानते हैं

कि उन्होंने अपनी आजीविकाका उपार्जन धर्म-प्रचार द्वारा नहीं किया, वह भिक्षान्न खाते थे। उससे श्रमधर्मको कोई हानि नहीं पहुँच सकती थी। परिव्राजकको काफी शारीरिक श्रम उठाना पड़ता है। अब रहे टॉल्स्टॉय, सो उनकी धर्मपत्नीने जो-कुछ कहा है, वह सत्य है, परन्तु पूर्ण सत्य नहीं है। विचार परिवर्तनके बाद टॉल्स्टॉयने जो पुस्तकें लिखी थीं उनकी आयमें से अपने लिये उन्होंने कुछ नहीं लिया था। लाखों की जायदादके मालिक होते हुए भी वह अपने घरमें मेहमान बनकर रहते थे। ज्ञान-प्राप्तिके बाद वह हररोज आठ घंटोंकी मजदूरी करते थे। कभी खेत पर जाते तो कभी घरमें बैठकर जूते बनाते थे। इन कामोंसे कुछ नहीं तो भी अपने पेटके लिए आवश्यक मजदूरी वह अवश्य पा जाते थे। टाल्स्टाय जो कहते थे, वह करनेकी भी बहुत चेष्टा करते थे। यह उनकी विशेषता थी। इस सारे कथनका निचोड़ यह है कि जिस धर्मका पालन प्राचीन लोगोंने स्वत: किया और जिसका पालन आज भी जगतका अधिकांश करता है उस श्रमधर्मको उन्होंने जगतके सामने स्पष्ट रूपमें रखा है। सच तो यह है कि श्रमधर्म टाल्स्टायकी मौलिक शोध नहीं, शोध थी रूसके एक महान लेखक बुरनाफकी। टाल्स्टायने उसको बल दिया और जगतके सामने जाहिर किया।

हिन्दी नवजीवन, २०-२-१९३०

४६३. पत्र : नौतमलाल भगवानजीको

[२० फरवरी, १९३०][1]

भाईश्री नौतमलाल,

आपका पत्र मिला। मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि आप चिन्तासे मुक्त हो गये। जहाँ तक हो सके सादगीसे काम लें।

मोहनदासके वन्देमातरम्

भाईश्री नौतमलाल भगवानजी
जेतपुर, काठियावाड़

गुजराती (जी० एन० २५८०) की फोटो-नकलसे।

१. डाककी मुहरसे।

४६४. पत्र : तुलसी मेहरको

आश्रम
साबरमती
२२ फरवरी, १९३०

भाई तुलसी महेर,

तुम्हारा पत्र मिला। काम तो अच्छा ही चला रहे हो और चलता ही रहेगा। यहांसे युद्धके समाचार पाने पर चंचल चित मत बनो। तुम्हारा कर्त्तव्य वहींके काममें दटे रहनेका है।

यहां आजकल सीतलाका रोग फैल गया है। इसमें भी हमारी परीक्षा हो रही है।

बापूके आशीर्वाद

जी० एन० ६५३७की फोटो-नकलसे।

४६५. सत्याग्रहीकी नियमावली

सत्याग्रहका अर्थ है सत्यका आग्रह। यह आग्रह रखनेवाले मनुष्यमें अतुल बल आ जाता है। इस बलको हम सत्याग्रहके नामसे पहचानते हैं।

अगर सत्यका आग्रह सच्चा हो तो माता-पिता, स्त्री-पुत्रादिके विरुद्ध राजा-प्रजाके विरुद्ध और आखिरकार सारे जगतके विरुद्ध उसका प्रयोग किया जा सकता है।

इस तरहके व्यापक आग्रहके कारण स्वजन या परजन, बालक या वृद्ध, स्त्री या पुरुषका कोई भेद नहीं रहता। अतः किसीके विरुद्ध शारीरिक बलका प्रयोग किया ही नहीं जा सकता। अतएव जो बल बाकी बच रहता है वह अहिंसाका — प्रेमका — बल ही हो सकता है। इस बलका दूसरा नाम आत्मबल है।

प्रेमका बल दूसरोंको नहीं जलाता बल्कि खुद ही जलता है। इसलिए सत्याग्रहीमें मरते दमतक हँसते-हँसते कष्ट सहनेकी शक्ति होनी चाहिए।

इससे स्पष्ट है कि अंग्रेजी शासनका घोर विरोध करते हुए भी सत्याग्रही मन, वचन या कायासे किसी भी अंग्रेजका न तो बुरा चाहेगा न करेगा। इसी विचारधारासे असहयोग, सविनय अवज्ञा इत्यादि उत्पन्न हुए हैं।

जो लोग सत्याग्रहकी इस व्युत्पत्तिको याद रखेंगे वे सहज ही नीचे लिखे नियमोंको समझ सकेंगे :

१. सत्याग्रही किसीपर गुस्सा न करेगा।

२. वह विरोधीका गुस्सा सह लेगा।

३. गुस्सा सहनेके साथ ही वह विरोधीकी मार भी सह लेगा, पर उसे कभी नहीं मारेगा, और गुस्सेमें विरोधी जो उचित या अनुचित आज्ञा देगा उसका भी मारपीटके या किसी दूसरे डरसे पालन नहीं करेगा।

४. सिपाही गिरफ्तार करने आयेगा तो खुशी-खुशी गिरफ्तार हो जायेगा। यदि उसकी जायदाद जब्त की जायेगी तो वह खुशी-खुशीसे उसे जब्त होने देगा।

५. अगर उसकी हिफाजतमें दूसरेकी जायदाद होगी तो मरते दमतक उसकी रक्षा करेगा, मगर कब्जा करनेके लिए आनेवालेको मारेगा नहीं।

६. मारनेका मतलब गाली न देना भी है।

७. फलतः सत्याग्रही विरोधीका अपमान नहीं करेगा। आजकलके अनेक प्रचलित नारे हिंसक हैं, अतः सत्याग्रहीके लिए वे सर्वथा त्याज्य हैं।

८. सत्याग्रही अंग्रेजी झण्डेको सलामी नहीं देगा, पर उसका अपमान भी नहीं करेगा। अधिकारीका या किसी अंग्रेजका भी वह अपमान नहीं करेगा।

९. लड़ाईके समय यदि कोई किसी अंग्रेज या सरकारी अधिकारीका अपमान करे या उसपर हमला करे तो सत्याग्रही अपनी जानको खतरेमें डालकर भी उसकी रक्षा करेगा।

जेल-जीवनके बारेमें

१०. कैद होनेपर सत्याग्रही जेलके उन सभी नियमोंका पालन करेगा जिनसे उसके स्वाभिमानको धक्का नहीं पहुँचता। वह अधिकारियोंके प्रति विवेकपूर्ण बर्ताव करेगा। उदाहरणार्थ, साधारणतः वह अधिकारियोंको सलाम करेगा, लेकिन अगर नाक रगड़नेको कहा जायेगा तो वह नहीं रगड़ेगा। वह 'सरकारकी जय बोलो' नहीं कहेगा। वह जेलमें ऐसा भोजन करेगा, जो साफ-सुथरा हो और जिसमें उसे कोई धार्मिक आपत्ति भी न हो; पर गन्दा, सड़ा हुआ, मैले बरतनमें परोसा हुआ या अपमानपूर्वक दिया हुआ भोजन वह नहीं लेगा।

११. सत्याग्रही खूनी कैदी और अपनेमें कोई भेद नहीं मानेगा। इसलिए वह अपनेको उससे ऊँचा समझकर या कहकर अपने लिए खास सहूलियतें नहीं चाहेगा, पर शरीर या आत्माकी आवश्यकताके लिए जरूरी सहूलियतें माँगनेका उसे अधिकार है।

१२. जिन सहूलियतोंके न मिलनेसे स्वाभिमानको धक्का नहीं पहुँचता, उनके लिए सत्याग्रही उपवास वगैरा नहीं करेगा।

दलके बारेमें

१३. सत्याग्रही अपने दलके सरदारकी सभी आज्ञाओंका, चाहे वे उसे पसन्द हों या न हों, खुशी-खुशी पालन करेगा।

१४. हुक्मके अपमानजनक, द्वेषपूर्ण अथवा मूर्खतापूर्ण प्रतीत होनेपर भी उसका पालन करनेके बाद ही वह उच्चाधिकारियोंसे उसकी शिकायत करेगा। सत्याग्रहीको दलमें शामिल होनेके पहले, शामिल होनेकी अपनी योग्यताका विचार कर लेनेका

अधिकार है। एक बार शामिल हो जानेपर दलके कड़वे मीठे नियमों तथा उसके अनुशासनका पालन करना कर्त्तव्य हो जाता है। दलके समग्र व्यवहारमें अनीति मालूम हो तो सत्याग्रही दलसे अलग हो सकता है, किन्तु दलमें रहकर नियम-भंग करनेका उसे अधिकार नहीं है।

१५. किसी भी सत्याग्रहीको किसीकी तरफसे अपनेपर निर्भर रहनेवालोंके भरण-पोषणकी आशा नहीं रखनी चाहिए। अगर किसीके लिए कोई इन्तजाम हो जाये तो उसे एक अनहोनी बात समझनी चाहिए। अन्यथा सत्याग्रही तो अपनेको और अपने आश्रितोंको ईश्वरकी शरणमें छोड़ देगा। शारीरिक बलसे लड़े जानेवाले युद्धमें भी, जहाँ लाखों एक साथ लड़ते हैं, कोई किसीपर निर्भर नहीं रहता। फिर सत्याग्रही युद्धके बारेमें तो पूछना ही क्या? सार्वभौम अनुभव तो यही है कि ऐसे लोगोंको ईश्वरने भूखों नहीं मरने दिया है।

साम्प्रदायिक झगड़ेमें

१६. सत्याग्रही जान-बूझकर साम्प्रदायिक झगड़े या लड़ाईका कारण कभी नहीं बनेगा।

१७. साम्प्रदायिक झगड़े छिड़नेपर वह किसी कौमकी तरफदारी नहीं करेगा। न्याय जिसकी ओर होगा वह उसीकी मदद करेगा। अगर स्वयं हिन्दू होगा तो मुसलमान आदि कौमोंके प्रति उदारतासे पेश आयेगा और हिन्दुओंके आक्रमणसे उनकी रक्षा करते हुए मर मिटेगा। अगर मुसलमान वगैरा हिन्दुओंपर हमला करते होंगे तो उससे हिन्दुओंकी रक्षा करते हुए वह अपनी जान दे देगा, लेकिन विरोधमें किये गये हमलेमें वह कभी शामिल नहीं होगा।

१८. ऐसे प्रसंगोंसे जिनसे साम्प्रदायिक झगड़े उठ खड़े होते हैं, वह जहाँतक हो सकेगा, बचेगा।

१९. अगर सत्याग्रही कोई जुलूस निकालेगा तो ऐसा कोई काम न होने देगा जिससे किसी भी कौमकी धार्मिक भावनाओंको चोट पहुँचे। और वह दूसरोंके उस जुलूसमें भी शामिल नहीं होगा जिससे किसी कौमकी धार्मिक भावनाओंको ठेस पहुँचती हो।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २३-२-१९३०

४६६. पत्र-लेखकोंसे

१५ दिसम्बरके 'नवजीवन' के १२५ वें पृष्ठपर 'स्त्रियोंकी दशा' शीर्षकसे एक लेख प्रकाशित हुआ था। उसमें लेखकका नाम-पता और पूरा ब्योरा दिया गया है, यह देखकर मैं भुलावेमें आ गया तथा उसके लेखकको मैंने बिलकुल सच्चा मान लिया। किन्तु अब उसके बारेमें जो विवरण मुझे मिला है उससे ऐसा लगता है कि उक्त पत्र बहुत अतिशयोक्तिपूर्ण था और उसमें अनुचित निन्दा भरी हुई थी। सही बातको इस ढंगसे तोड़ा-मरोड़ा गया था जिससे सम्बन्धित व्यक्ति निर्दयताकी मूर्ति नजर आने लगता है। मुझे जो ब्योरा मिला है उससे पूरे मामलेकी शक्ल ही बदल जाती है। किन्तु मैं इस किस्सेमें पड़ना नहीं चाहता। मेरे लिखनेका उद्देश्य इतना ही है कि पत्र-लेखकोंको सही ब्योरा ही देना चाहिए। बातको बढ़ा-चढ़ाकर कहनेसे कहीं किसी प्रकारका सुधार नहीं किया जा सकता। मैं पत्र-लेखकको सलाह दूँगा कि उन्होंने जिस ढंगसे बातको बढ़ा-चढ़ाकर कहा है उसके लिए उन लोगोंसे, जिनकी निन्दा की है, माफी माँगें। यदि वे अब भी अपनी बातपर डटे रहना चाहते हों तो मुझे लिखें और अपने उक्त पत्रको सम्बन्धित व्यक्तियोंको भेजनेकी अनुमति भी दें।

[गुजरातीसे]

नवजीवन, २३-२-१९३०

४६७. पत्र : रेहाना तैयबजीको

साबरमती
२३ फरवरी, १९३०

प्रिय रेहाना,

मेरे मनमें यह बात बिलकुल साफ है कि जिनका अविलम्ब स्वतन्त्रतापर विश्वास है और जो उसके लिये संघर्ष करेंगे, वे ऐसे सम्मेलनोंमें, जिनका कि तुमने जिक्र किया है, भाग नहीं ले सकते।

तुम्हारा,
बापू

अंग्रेजी (एस० एन० ९६१४)की फोटो-नकलसे।

४६८. पत्र : म्यूरियल लेस्टरको

साबरमती
२३ फरवरी, १९३०

प्रिय म्यूरियल,

आपका पत्र उत्तर दिये जानेके लिए मेरे सामने पड़ा है। जीवन और मरणके संघर्ष जैसे प्रतीत होनेवाले अवसरकी इस पूर्व सन्ध्याको मैं अपने सब परिचित और अपरिचित अंग्रेज मित्रों के बारेमें सोच रहा हूँ। आप उनमें बिलकुल नहीं हैं।

सस्नेह,

बापू

अंग्रेजी (जी० एन० ६५६१)की फोटो-नकलसे।

४६९. पत्र : जवाहरलाल नेहरूको

२४ फरवरी, १९३०

प्रिय जवाहरलाल,

तुम्हारा पत्र मिला। मैंने भाषण नहीं पढ़ा था। मुझे पढ़नेका समय ही नहीं मिलता।

तुम आगामी अंक देखोगे। उसमें काफी कुछ मिलेगा। सार पहले ही गुजराती 'नवजीवन' में प्रकाशित हो चुका है। हम जब पहली मार्चको मिलेंगे तो शायद अधिक विस्तारसे बातचीत करनेके लिए कुछ समय मिलेगा। वाइसरायको लिखे गये मेरे पत्रसे[1] भी मामला स्पष्ट हो जायेगा।

मुझे खुशी है कि कमलाके बारेमें कोई चिन्ताकी बात नहीं है। लेकिन उसे अब किसी अस्पतालमें भरती होकर जरूरी इलाज क्यों नहीं करवा लेना चाहिए?

तुम्हारा,
बापू

[अंग्रेजीसे]
गांधी नेहरू कागजात, १९३०
सौजन्य : नेहरू स्मारक संग्रहालय और पुस्तकालय

१. देखिए खण्ड ४३, पृष्ठ २-९।

४७०. पत्र : जयसुखलाल गांधीको

आश्रम
साबरमती
२५ फरवरी, १९३०

चि० जयसुखलाल,

तुम्हारा पत्र मिला। मैं सूचीमें तुम्हारा नाम तो लिखे ले रहा हूँ। किन्तु तुमने वहाँ जो जिम्मेदारी ले रखी है उससे मुक्त करके तुम्हें यहाँ कैसे बुला सकता हूँ?

बापूके आशीर्वाद

श्री जयसुखलाल गांधी
खादी कार्यालय
चलाला (काठियावाड़)

गुजराती (एम० एम० यू०/३/७५)की माइक्रोफिल्मसे।

४७१. पत्र : मीठुबहन पेटिटको

२६ फरवरी, १९३०

प्रिय बहन,

मैं तुम्हारे पत्रकी प्रतीक्षा ही कर रहा था। तुम पहली तारीखको आ जाओ। उसी दिन जमनाबहन, पेरीनबहन, खुर्शीदबहन, जवाहरलाल आदि भी आ जायेंगे।

बापूके आशीर्वाद

श्रीमती मीठुबहन पेटिट
स्वराज आश्रम,
सूरत

गुजराती (जी० एन० २६८५)की फोटो-नकलसे।

४७२. पत्र : हरिइच्छा देसाईको

२६ फरवरी, १९३०

चि० हरिइच्छा,

तुम्हारा पत्र मिला। तुम चिरंजीवी होओ और बहुत सेवा करो। यदि तुम आ पाते तो मुझे बहुत अच्छा लगता। जानकीबहन एक-दो दिनमें आ जायेगी।

मुझे चन्दनका पत्र भी मिला है।

बापूके आशीर्वाद

गुजराती (जी० एन० ७४६३)की फोटो-नकलसे।

४७३. जब मैं गिरफ्तार हो जाऊँ

यह मान ही लिया जाना चाहिए कि जब सविनय अवज्ञा शुरू की जायेगी तो मेरी गिरफ्तारी निश्चित है। इसलिए इस बातपर विचार करना जरूरी है कि जब ऐसी बात हो जाये तब क्या किया जाना चाहिए।

१९२२ में अपनी गिरफ्तारीके अवसरपर मैंने अपने साथियोंको चेतावनी[1] दे दी थी कि शान्त और पूर्ण अहिंसात्मक प्रदर्शनके सिवाय और किसी किस्मका प्रदर्शन न किया जाये और मैंने इस बातपर जोर दिया था कि केवल रचनात्मक कार्य अत्यन्त उत्साहसे किया जाना चाहिए; क्योंकि देश केवल ऐसे ही कार्य द्वारा सविनय अवज्ञाके लिए संगठित किया जा सकता है। ईश्वरका धन्यवाद है कि मेरे निर्देशोंके पहले भागका पूरी तरह पालन किया गया — इतनी पूरी तरह कि एक अंग्रेज महानुभावने घृणासे कहा कि 'एक कुत्ता भी नहीं भौंका'। जब मुझे जेलमें पता लगा कि देश पूरी तरह शान्त रहा तो मेरे लिए यह इस बातका सूचक था कि अहिंसाके उपदेशका असर हुआ है और बारडोलीका निर्णय[2] नितान्त बुद्धिमत्तापूर्ण कदम था। मेरी गिरफ्तारीपर यदि 'कुत्ते' भौंके होते और हिंसाको खुली छूट मिल गई होती तो क्या हुआ होता, यह कल्पना करना मूर्खता होगी। बहरहाल एक बात मैं कह सकता हूँ कि उस स्थितिमें लाहौरमें कोई स्वतन्त्रता प्रस्ताव ही नहीं होता और गांधी अहिंसाकी शक्तिपर विश्वास रखनेवाला और ऐसे बड़ेसे-बड़े जोखिम जिनकी कल्पना की जा सकती है, उठानेका साहस कर सकनेवाला गांधी न रह जाता।

१. देखिए खण्ड २३, पृष्ठ ७३ और १३०।

२. फरवरी १९२२ का, सविनय अवज्ञा आन्दोलन स्थगित कर देनेके लिए, देखिए खण्ड २२, पृष्ठ ३९९-४०३।

हम बिलकुल निकटवर्ती भविष्यकी बात सोचें। इस बार मेरी गिरफ्तारीपर मूक, निष्क्रिय अहिंसा नहीं, बल्कि अधिक से अधिक सक्रिय किस्मकी अहिंसा आरम्भ कर दी जानी चाहिए, ताकि भारतकी ध्येय-प्राप्तिके लिए अहिंसाको अपना धर्म माननेवाला एक भी आदमी इस प्रयत्नके अन्तमें वर्तमान दासताके आगे और अधिक समयतक झुकनेके लिए स्वतन्त्र या जीवित न रहे। इसलिए यह हर व्यक्तिका कर्त्तव्य होगा कि वह ऐसी सविनय अवज्ञा या सविनय प्रतिरोध करे जैसा कि मेरा उत्तराधिकारी निर्देश दे या संचालित करे या जैसा कांग्रेस चलाये। मैं यह अवश्य स्वीकार कर लूँ कि फिलहाल मेरी नजरमें सारे भारतमें काम सँभालनेवाला मेरा उत्तराधिकारी कोई नहीं है। परन्तु मुझे साथियोंमें और स्वयं इस उद्देश्यमें पर्याप्त विश्वास है, जिससे मुझे मालूम है कि उन परिस्थितियोंमें उत्तराधिकारी मिल ही जायेगा। यह सुनिश्चित शर्त सबको साफ तौर पर मालूम होनी चाहिए कि वह [उत्तराधिकारी] उद्दिष्ट कार्यके लिए अहिंसाकी शक्तिपर पूरी तरह विश्वास करनेवाला होना चाहिए। क्योंकि उस जीवन्त विश्वासके बिना वह संकटके क्षणोंमें अहिंसात्मक तरीका ढूँढ़ निकालनेमें समर्थ नहीं होगा।

यह बात तो इसमें निहित ही समझ ली जानी चाहिए कि यहाँ जो कुछ कहा जा रहा है, इससे कांग्रेसके विचार स्वातन्त्र्य और पूर्ण सत्ताधिकारमें किसी भी तरहसे अड़चन नहीं पड़ती। कांग्रेस यहाँ कही हुई बातोंमें से केवल वे बातें ही स्वीकार करेगी जो कांग्रेसियोंको आमतौरपर अच्छी लगेंगी। यदि इन अनुदेशोंको सही तौर पर समझा जाता है तो कार्यसमिति द्वारा मुझे सौंपे गये पूर्ण स्वतन्त्रताके पट्टेके सांघातिक महत्त्वको ठीकसे समझना चाहिए। अहिंसा यदि अपनी स्वतन्त्रतापर कोई प्रतिबन्ध नहीं मानती तो किसी व्यक्ति या संस्थापर भी किसी भी तरहका प्रतिबन्ध नहीं लगाती — सिवाय उन प्रतिबन्धोंके जो [व्यक्ति या संस्था द्वारा] अपने ऊपर स्वयं लगाये हुए या स्वेच्छासे स्वीकार किये गये हों। जबतक कांग्रेसियोंका बड़ा समुदाय ऐसा विश्वास करता है कि वर्तमान परिस्थितियोंमें अहिंसा ही एकमात्र नीति है और वह केवल मेरे उत्तराधिकारी और उन लोगोंकी, जो अहिंसाको उपर्युक्त सीमा तक धर्म माननेका दावा करते हैं, सच्चाईपर विश्वास ही नहीं करता अपितु आन्दोलनको बुद्धिमत्तापूर्वक चलानेके लिए उत्तराधिकारीकी योग्यतापर भी विश्वास करता है, तबतक कांग्रेस उसे (उत्तराधिकारीको) और उन लोगोंको अपना आशीर्वाद देती रहेगी और उसके निर्देशों और इन निर्देशोंको कार्यान्वित भी करती रहेगी।

जहाँतक मेरा सम्बन्ध है, मेरा तो यह मन्तव्य है कि आन्दोलन केवल आश्रम-के अन्तेवासियों और उन लोगोंके द्वारा आरम्भ किया जाना चाहिए जो आश्रमका अनुशासन मानते हैं और जिन्होंने इसके तरीकोंकी भावनाको आत्मसात् किया है, इसलिए जो लोग आरम्भमें लड़ाई छेड़ेंगे उनका नाम नहीं होगा। अबतक आश्रमको जान-बूझकर आरक्षित रखा गया है ताकि अनुशासनकी काफी लम्बी अवधिसे इसमें स्थिरता आ जाये। मुझे लगता है कि लोगोंने इस सत्याग्रहाश्रम पर जो विश्वास रखा है और मित्रोंने उसपर जो प्यार उँड़ेला है, अगर आश्रमको उसके योग्य बनना

है तो अब वह समय आ गया है कि आश्रम सत्याग्रह शब्दमें निहित गुणोंका प्रदर्शन करे। मैं महसूस करता हूँ कि अपने ऊपर स्वेच्छासे लगाये गये प्रतिबन्ध हमारे लिए सूक्ष्म आत्म-तृप्ति देनेवाले तत्त्व बन गये हैं और हमें जो प्रतिष्ठा दी गई है उससे हमें ऐसे विशेषाधिकार और सुविधाएँ मिल गई हैं, जिनके कदाचित् हम बिलकुल ही पात्र नहीं हैं। हमें जो-कुछ मिलता रहा है उसे हमने इस आशासे धन्यवाद सहित स्वीकार किया है कि किसी दिन हम सत्याग्रहीकी कसौटीपर अपने आपको खरा साबित कर सकेंगे। और यदि लगभग १५ वर्षोंके अपने अस्तित्वके बाद आश्रम यह करके नहीं दिखा सकता तो आश्रम और मेरा लोप हो जाना चाहिए। यह राष्ट्रके लिए, आश्रमके और मेरे लिये अच्छा होगा।

यदि शुरूआत अच्छी तरह और सचाईसे हो जाये तो मुझे सारे देशमें अच्छी प्रतिक्रिया होनेकी आशा है। तब हर ऐसे व्यक्तिका जो आन्दोलनको सफल बनाना चाहता है, यह कर्त्तव्य होगा कि वह इस आन्दोलनको अहिंसात्मक और अनुशासनमें रखे। हरएकसे आशा की जायेगी कि वह जबतक अपने मुखिया द्वारा बुलाया न जाये अपने स्थानपर डटा रहे। यदि [इस आन्दोलनको] जन-समुदायसे अनायास प्रोत्साहन मिलता है — जैसी कि मुझे आशा है कि मिलेगा और यदि पिछले अनुभवसे भी कुछ दिशादर्शन होता है तो यह ज्यादातर तो अपने आप ठीक दिशामें चलता रहेगा। परन्तु ऐसे हरएक आदमीको जो अहिंसाको धर्म या नीतिके रूपमें स्वीकार करता है, सार्वजनिक आन्दोलनकी मदद करनी होगी। सार्वजनिक आन्दोलनोंके दरम्यान सारे संसारमें अप्रत्याशित नेता पैदा होते आये हैं। यह आन्दोलन इस नियमका अपवाद नहीं होना चाहिए। इसलिए जहाँ एक ओर हिंसाकी शक्तियोंको रोकनेके लिए जिन-जिन प्रयत्नोंकी कल्पना की जा सकती है, वे सारे प्रयत्न किये जाने चाहिए वहाँ दूसरी ओर — इस बार जब सविनय अवज्ञा आरम्भ कर दी जाये तो जबतक एक भी सविनय अवज्ञाकारी स्वतन्त्र अथवा जीवित रहता है, तबतक [सविनय अवज्ञा] रोकी नहीं जा सकती; कदापि नहीं रोकी जानी चाहिए। सत्याग्रहके समर्थककी निम्नलिखितमें से एक स्थिति होनी चाहिए:

१. वह जेलमें हो या उसीसे मिलती-जुलती किसी स्थितिमें हो या

२. सविनय अवज्ञामें लगा हो या

३. चरखा चलाता हो या स्वराज्यको नजदीक लानेवाले किसी रचनात्मक कार्यमें लगा हुआ, आदेशका इन्तजार कर रहा हो।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २७-२-१९३०

४७४. नमक और कैंसर

मैं यह पत्र[1] सहर्ष प्रकाशित कर रहा हूँ। मैंने इस साहित्यपर सरसरी तौरसे नजर डाली है। एक उत्साही भोजन सुधारकके रूपमें मैं छः सालसे ज्यादा अरसे तक बिना नमकके रहा हूँ। अब भी मैं खानेमें बहुत कम नमक इस्तेमाल करता हूँ। लेकिन मेरे जैसे भोजन सुधारकके लिए भी नमकके कई और उपयोग हैं। जुकामका इलाज करनेके लिए गर्म नमकीन पानीका नाकमें डूश किया जाये तो वह गुणकारी रहता है। महीन पिसा हुआ नमक दन्तमंजनके रूपमें परमोपयोगी है। लोगोंको नमकका संयमित व्यवहार सिखानेका तरीका यह नहीं है कि इस अन्यथा अत्यन्त महत्त्वपूर्ण उपयोगी वस्तुपर कर लगा दिया जाये। और फिर जो बात उन लोगोंके लिए, जो भरपेट या जरूरतसे ज्यादा खानेवाले हैं, जो तरह-तरहके नमक मिश्रित ऐसे खाद्य-पदार्थ, जिनमें सभी तरहके वे मिर्च-मसाले हों, जो जमीनसे पैदा होते हैं या जिन्हें मनुष्य अपनी सूक्ष्म बुद्धिसे तैयार कर सकता है, सेवन करते हैं — सही है, वही बात लाखों अधपेट खानेवाले और चावल या बासी रोटियोंपर निर्वाह करनेवाले लोगोंके बारेमें सही नहीं हो सकती। कौन निश्चयपूर्वक कह सकता है कि जितना नमक इन्हें मिलता है उनके लिए उससे कहीं ज्यादा नमककी जरूरत नहीं है? बहरहाल ऐसे डाक्टर हैं जो यह जरूर कहते हैं कि भारतके लाखों लोगोंको जितना नमक वे खाते हैं उससे ज्यादा नमककी जरूरत है और भारतके पशुओंके लिए भी, जितना कि गरीब किसान दे पाते हैं, उससे कहीं ज्यादा नमक चाहिए।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २७-२-१९३०

४७५. नमक-कर

अखबारोंमें इस आशयका एक अनुच्छेद छपा है कि मैं [सविनय अवज्ञाके] शुरूमें नमक-कर न देनेकी सलाह दूँगा। इस अफवाहके गढ़नेवालेको शायद यह पता नहीं था कि नमक-करकी योजना कुछ ऐसी होशियारीके साथ की गई है कि आसानी-से वह कर न देना सम्भव नहीं हो सकता। फिर भी इस खबरमें इतनी सचाई तो जरूर है कि मैं इस घातक एकाधिकारपर चोट करनेका कोई तरीका सोच रहा हूँ। इस कल्पनासे कही गई बातसे एक लाभ यह जरूर हुआ कि इसके कारण कई

१. फ्रेड्रिक टी० मारवुडका पत्र यहाँ नहीं दिया जा रहा है। पत्र-लेखकने साथमें साहित्य नत्थी किया था जिसमें प्रमाणित किया गया था कि नमक और कैंसरमें सांयोगिक सम्बन्ध है। उन्होंने जोर देकर कहा था कि नमक-कर एक प्रच्छन्न वरदान है।

परिचित और अपरिचित लेखकोंकी ओरसे मुझे अनेक बहुमूल्य सूचनाएँ मिली हैं। इस तरह जो मसाला मिला, उसमें एसोसिएटेड चेम्बर्स ऑफ कॉमर्स द्वारा प्रकाशित नमक सम्बन्धी एक निबन्ध भी है। यह किताब बड़े महत्त्वकी है। इसमें बंगालमें नमक उत्पादनको नष्ट करनेके दुष्ट तरीकोंका विश्वस्त और ऐतिहासिक वर्णन दिया गया है और यह बताया गया है कि किस तरह लिवरपूलका नमक यहाँ उस भूमि पर बेचा जाता है, जहाँ बहुत थोड़ी मेहनतसे अच्छा नमक बनाया जा सकता है। नमककर विकासका यह इतिहास ही इस बातका सबूत है कि अंग्रेजी राज्य पूरी तरह धिक्कारके योग्य है।

हवा और पानीके बाद शायद नमक ही जीवनकी सबसे बड़ी आवश्यकता है। गरीबोंके लिए तो यही एक मसाला है। मवेशी भी बगैर नमकके नहीं रह सकते। कई उद्योग धन्धोंमें भी नमककी बड़ी आवश्यकता रहती है। नमककी खाद भी बहुत अच्छी होती है।

पानीको छोड़कर नमक-जैसी और कोई ऐसी चीज नहीं है जिसपर कर लगाकर कोई सरकार करोड़ो भूखों मरनेवालों, रोगियों, लूले-लंगड़ों, अपंगों और निःसहायोंसे भी कर वसूल कर सके। इसलिए यह नमक-कर मनुष्यकी बुद्धि द्वारा खोजकर निकाला गया एक अत्यन्त अमानुषी कर है, जो हरएक आदमीसे वसूल किया जाता है। सरकारी हिसाबके अनुसार ८२ पौण्डके मनकी थोकबन्द कीमत ज्यादासे-ज्यादा दस पाई है, और इसपर लिया जानेवाला कर २० आने या २४० पाई है। दूसरे शब्दोंमें बिक्रीकी कीमतपर २४ गुना नमक-कर चुकाना पड़ता है। हमारे लिये तो इस बातकी कल्पना करना भी कठिन है कि गरीबोंपर इसका क्या असर होता होगा। इस अमानुषी एकाधिकारको बनाये रखनेके लिए कपासकी तरह नमकके उत्पादनको भी केन्द्रीय विषय बना दिया गया है। जानबूझ कर चरखेका जो नाश किया गया उसका नतीजा यह हुआ कि देशमें हरएक किसानके घर कपास बोनेका जो रिवाज था, वह मिट गया। इसी तरह नमकपर एकाधिकारका परिणाम यह निकला कि हजारों जगहोंमें नमक बनानेका काम बन्द हो गया — जहाँ पहले गरीब लोग अपने लिये नमक आप ही बना लिया करते थे। कोंकणसे एक संवाददाता मुझे लिखते हैं कि अगर लोगोंको इस बातकी स्वतन्त्रता होती तो वे तूफानके उतर जानेपर समुद्रके विशाल सूखे तटपर जमे हुए नमकको इकट्ठा कर लेते। लेकिन दुःखके साथ उन्होंने यह लिखा है कि जैसे ही नमक किनारेपर जमा होता है, सरकारी अफसर उसे उतनी ही जल्दी समुद्रमें पुनः बहा देते हैं, जितनी जल्दी प्रकृति उसे तटपर फैलाती है। उन्होंने यह भी लिखा है कि जो लोग पुलिसकी आँख बचानेमें सफल होते हैं वे समुद्रके नमकको किसी-न-किसी तरह उड़ा ही लेते हैं। गुजरातके कार्यकर्त्ता बताते हैं कि वहाँ ऐसी कई जगहें हैं जहाँ लोग इतनी आसानीसे अपने उपयोगके लायक नमक पा सकते हैं जितनी आसानीसे वे अपने घरके कई कामोंके लिए मिट्टी खोदकर ले आते हैं। अगर बंगाल स्वतन्त्र हो तो वह अपनी आवश्यकतानुरूप नमक अपने ही यहाँ बना सकता है, लेकिन फिर भी आज तो बंगाल जितना नमक खाता है, बाहर से ही मँगाना पड़ता है।

नमकके एक अवकाश प्राप्त अधिकारी अपने गुमनाम पत्रमें मुझे लिखते हैं:

कानूनके मुताबिक नमक बनानेके अर्थमें खारी पानीसे, मिट्टीसे, अथवा किसी भी तरल या ठोस पदार्थसे नमकको अलग करनेकी तमाम क्रियाएँ आती हैं। नमकको शुद्ध और साफ करनेकी भी तमाम क्रियाएँ इसीमें आती हैं।

वर्जित नमकका अर्थ वह नमक या नमककी मिट्टी है, जिसपर महसूल नहीं चुकाया गया है।

१. बिना परवानेके नमकका बनाना, ले जाना या दूसरी जगह भेज देना;

२. कुदरती नमक या नमककी मिट्टीका खोदना, जमा करना या ले जाना;

३. और वर्जित नमकका रखना या बेचना, ये सब अपराध हैं। इनकी सजा ५०० रु० तक जुर्माना या छः महीने तककी कैद या दोनों हैं।

खम्भातसे रत्नागिरीतक बम्बई प्रान्तका सारा पश्चिमी समुद्र-तट, काठियावाड़का सारा समुद्र-तट और सिन्धका दक्षिणी समुद्र-तट ये सब कुदरती नमकके बड़े भारी कारखाने हैं और कुदरती नमक और नमककी मिट्टी, जिससे नमक आसानीसे बनाया जा सकता है, इनकी एक-एक खाड़ीमें पाये जाते हैं।

अगर स्वयंसेवकोंका कोई दल सारे समुद्र-तटपर एक साथ काम शुरू कर दे तो पुलिस और चुंगी (कस्टम)के तमाम कर्मचारियोंके लिए भी यह सम्भव नहीं है कि वे उन्हें कुदरती नमक और नमककी मिट्टी इकट्ठी करने और घर ले जाकर नमक बनाने तथा थोड़ा-थोड़ा करके बेचनेसे रोक सकें। इस प्रान्तके लोगोंका — कमसे-कम पिछली पीढ़ीके स्त्री-पुरुषोंका तो यह दृढ़ विश्वास है कि अपने यहाँ बनाया हुआ समुद्रका नमक खाराघोड़ाके नमकसे तन्दुरुस्तीके लिए ज्यादा अच्छा है और वे तो उसका उपयोग करना पसन्द करेंगे। क्योंकि सस्ता नमक पाना भला किसे पसन्द न होगा? बेकारीके इन दिनोंमें समुद्र-तट परके गरीब लोग तुरन्त नमक इकट्ठा करनेमें साथ देंगे। सरकारी कारखानोंसे बगैर महसूल चुकाये नमक ले जानेकी कोशिश करना चोरी या डकैती है, यह अव्वल दर्जेकी हिंसा भी है, यदि इसका आग्रह किया गया तो अपराधियोंपर गोली चलाना भी अन्याय न होगा।

मैंने इस पत्रको ज्योंका-त्यों छाप दिया है। जब कोठियों या गोदामों परसे ले जानेकी अपेक्षा नमकका बना लेना ज्यादा आसान है तो मैं लोगोंको यह सलाह क्यों देने लगा कि क्यारियों या गोदामोंमें से लोग उसे उठा ले जायें। लेकिन मैं नमक विभागके इन कर्मचारीकी इस बातसे सहमत नहीं हूँ कि इस प्रकार नमकका ले जाना अव्वल दर्जेकी हिंसा है। क्यारियोंमें से उठा ले जाना या नियम विरुद्ध नमक बनाना, दोनों ही कानूनकी दृष्टिसे अपराध हैं। इनके लिए भारी सजाएँ हैं। फिर बिना परवानेके नमक बना लेना धर्म क्यों है और नमक उठा ले जाना पाप क्यों है? यदि यह कर अनुचित है तो चाहे बनाये हुए नमकपर लगा हो और चाहे कुदरती नमकपर लगा हो, हर हालतमें अनुचित ही है। अगर कोई डाकू मेरा अनाज चुरा ले जाये और उसमेंसे थोड़ा-सा पका ले तो भी मेरा हक तो

कच्चे और पके दोनों तरहके अन्नपर बना रहता है। हाँ, मैं असुविधासे बचनेके लिए तैयार और न बनाये हुए नमकमें भेद भले ही कर लूँ और नमक बनानेके आसान तरीकेको अंगीकार भी कर लूँ, परन्तु इससे कानूनी स्थितिमें जरा भी अन्तर नहीं पड़ता। इसलिए जब समय आयेगा तो सत्याग्रहियोंको नमकका आन्दोलन कारगर तरीकेसे चलानेमें अपनी योग्यता दिखानेका खूब मौका मिलेगा। गैर-कानूनी बरताव तो इस सरकारका है, जो लोगोंका नमक चुरा लेती है और उन्हींसे उस चोरीके मालपर भारी कर वसूल करती है। जब लोगोंको अपनी शक्तिका ज्ञान होगा तो उन्हें अपनी चीजपर अधिकार कर लेनेका भी पूरा-पूरा हक होगा।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २७-२-१९३०

४७६. टिप्पणियाँ

राष्ट्रीय झण्डा

राष्ट्रीय झण्डेका महत्व जैसे-जैसे बढ़ता जा रहा है, उसके रंग, आकार-प्रकार और चरखेके चिह्नके सम्बन्धमें नये-नये और सूक्ष्म सवाल उठाये जा रहे हैं। हमें यह स्मरण रखना चाहिए कि राष्ट्रीय झण्डा केवल परम्पराके कारण राष्ट्रीय बन गया है, कांग्रेसके किसी प्रस्ताव द्वारा नहीं। एकताकी बढ़ती हुई भावनाके कारण अब कांग्रेसजन राष्ट्रीय झण्डेके रंगोंके उस जातीय अर्थको नापसन्द करने लगे हैं, जो उसके जनककी हैसियतसे मैंने शुरूमें किया था।[1] एक संवाददाताने कुछ दिन हुए मेरे पास एक कतरन भेजी थी, जिसमें किसी महिलाने राष्ट्रीय झण्डेके तीन रंगोंका नया अर्थ किया था। जहाँतक मुझे उनके उस भाषणकी याद है, लाल रंग वीरताका, हरा शान्तिका और सफेद पवित्रताका प्रतीक बताया गया था। अपने अर्थके बजाय इस अर्थको स्वीकार करनेमें मुझे किसी तरहका संकोच नहीं होता। जब हमारे दिल एक हो जायेंगे, राष्ट्रमें आपसी कलह पैदा करनेवाली बातोंको याद करके बेशक हमें लज्जित होना पड़ेगा। जब हम सचमुच एक हो जायेंगे, हमें अपने आपसी मतभेदोंको याद करनेकी कोई जरूरत ही नहीं रहेगी; तब तो हम उन्हें जितनी जल्दी भुला सकें भुलाना ही चाहेंगे। लेकिन वीरता, शान्ति और पवित्रताके सद्गुणोंको बढ़ानेकी तो हमें सदा ही आवश्यकता बनी रहेगी। अतएव इस नये अर्थके कारण तो रंग सम्बन्धी तमाम मतभेदोंका अन्त हो जाना चाहिए। अब रही चरखेकी बात। अगर सचमुच उसपर किसीको आपत्ति है तो दुःखकी बात है। चरखा तो शक्तिका चिह्न है। चरखा गरीबों और अमीरोंको एक साथ मिलाता है। और चरखा कांग्रेस-जनोंको उनके हर काममें यह याद दिलाता है कि वे सर्वसाधारणको, देशकी विशाल जनताको नहीं भुला सकते।

१. देखिए खण्ड १९, पृष्ठ ५६८-७०; तथा खण्ड ४०, पृष्ठ ५९-६० और ९९-१०० भी।

धूम्रपान

एक पत्र-लेखक लिखते हैं :[1]

इस मामलेमें अधिकारियोंको दोष नहीं दिया जा सकता है। जबतक कि धूम्रपानसे परेशान यात्री रेलवे अधिकारियोंसे शिकायत नहीं करते तबतक वे कोई कदम नहीं उठा सकते। यात्री लोग इस परेशानीको जो सचमुच परेशान करनेवाली झंझट है, दूर करनेकी दिशामें बहुत-कुछ कर सकते हैं। संसारमें सब जगह धूम्रपान करनेवाले लोग शायद सभी [नशेकी] आदतोंके गुलाम लोगोंसे ज्यादा बेमुरव्वत होते हैं। धूम्रपान करनेवाला यह मानकर चलता है कि अन्य सभी लोग धूम्रपान करते हैं या कि उन्हें करना चाहिए। वह अपनी पाइप छोड़नेसे पहले कई और चीजें छोड़ देगा। वह कहीं भी थूकेगा और ठीक आपके मुँहके सामने सिगरेट बीड़ी पियेगा और यह आशा करेगा कि आपके सामने जो धुआँ घुमावदार चक्करोंमें फैल जाता है, उसका आप आनन्द लें। और यदि आप इस तरह जबर्दस्ती अपनेपर थोपे गये आनन्दका विरोध करेंगे तो वह उद्दण्डताकी सीमा होगी। हमारी लोक-विदित विनम्रताके कारण भारतीय धूम्रपान करनेवाला विदेशी धूम्रपान करनेवालेसे [दूसरोंके प्रति] उदासीनतामें आगे बढ़कर है। और इसलिए ऐसा लगता है कि मानों भारतमें धूम्रपान करनेवालेको यह अधिकार मिल गया है कि वह अपनेको दूसरोंके लिए एक परेशानी बना दे। इस बातसे कौन इनकार कर सकता है कि वह बहुसंख्यकोंमें से है? क्योंकि सफर करनेवाले लोगोंमें जिससे मिलो वह किसी न किसी रूपमें तम्बाकू पीनेवाला मिलता है। इसका एक यही इलाज है कि ऐसे स्वयंसेवक सामने आयें जो शिष्टतापूर्वक परेशान करनेवाले धूम्रपान करनेवालोंको धूम्रपान करनेसे रोकें और फिर अगर जरूरत हो तो अधिकारियोंको सूचित करें। निश्चय ही सबसे अच्छा तरीका तो यह है, जैसा कि अन्य जगहोंमें भी है, कि धूम्रपानके लिए अलग डिब्बे कर दिये जायें या धूम्रपान न करनेवालोंके लिए अलग डिब्बे नियत कर दिये जायें।

[अंग्रेजीसे]
यंग इंडिया, २७-२-१९३०

४७७. नमक निकालनेका इतिहास

निम्नलिखित [उद्धरण][2] 'मॉरल ऐंड मेटीरियल प्रोग्रेस १९१०-११' पुस्तक से संक्षिप्त रूपमें लिया गया है। जैसा कि इस प्रकाशनने नमक-एकाधिकारके बारेमें दावा किया है — बहुत-सी बुराइयाँ हमें परम्परामें मिली हैं। अंग्रेजोंके समयसे पहले सारेके-सारे लोग नमक-करके अभिशापसे ग्रस्त नहीं थे। अंग्रेज सरकारने इस बुराईका एक परिपूर्ण सूत्र ही बना डाला और इसका आदमी, औरत, बच्चे और पशुओं तकपर असर पड़ता है।

[अंग्रेजीसे]
यंग इंडिया, २७-२-१९३०

१. यह पत्र यहाँ नहीं दिया जा रहा है। पत्र-लेखकने सुझाव दिया था कि रेलवे अधिकारियों तथा यात्रियोंको गाड़ीमें धूम्रपान करनेके विरुद्ध कानूनी व्यवस्थापर अमल करना चाहिए।

२. यहाँ नहीं दिया जा रहा है।

४७८. झूठी आशाएँ

कांग्रेसके कार्यकर्त्ता जैसे-जैसे सर्व-साधारणके साथ गहरा मेल-जोल बढ़ाते जायेंगे वैसे-वैसे इस बातका खतरा बढ़ जायेगा कि कहीं वे लोगोंसे अविवेकपूर्ण वादे न कर बैठें। और उनको ऐसी झूठी आशाएँ न बँधा दें, जो कभी पूरी ही न की जा सकें। इसका एक उदाहरण मेरे सामने पड़ा है। एक युवक-संघने हिन्दीमें एक गश्ती चिट्ठी जारी की है। चिट्ठीमें कुल पच्चीस वादे हैं।। उनमें से कुछ ये हैं:

गोहत्या बिलकुल बन्द हो जायेगी।

दूध, घी और दहीके सस्ते हो जानेसे सब लोग मोटे-ताजे और मजबूत बन जायेंगे।

बालमृत्युकी संख्या घट जायेगी।

विदेशोंको अनाज भेजना बन्द हो जायेगा।

पाखण्ड मिट जायेगा और सब लोग ईमानदार बन जायेंगे।

लड़के-लड़कियोंको चौदह सालकी उम्रतक मुफ्त तालीम मिलेगी।

जीवन साफ-सुथरा और तन्दुरुस्त बनेगा।

आत्मरक्षाके लिए हरएकके पास हथियार होंगे।

बाल-विधवाओंका नाम भी न रहेगा।

डाक महसूल और रेल भाड़ा घटा दिया जायेगा।

वादे तो बेशक बड़े सराहनीय हैं, लेकिन फिजूलके और ऐसे हैं कि केवल स्वाधीनता पा जानेसे ही पूरे नहीं किये जा सकते। जिन सुधारोंकी आशा की गई है, उनमेंसे अनेकोंके लिए समाजमें अथक प्रयत्नकी जरूरत होगी। निस्सन्देह विदेशी शासन बहुत-सी बुराइयोंके लिए जिम्मेदार है; लेकिन हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि ऐसी कई भयंकर बुराइयाँ भी पहले मौजूद थीं, जिनके कारण भारतको विदेशी शासनके अधीन होना पड़ा। इसलिए विदेशी राज्यके जुएको उठा फेंकना उतना ही जरूरी है, जितनी कि प्राणवायु जरूरी होती है; तो भी यही सब रोगोंकी रामबाण दवा नहीं हो सकेगा।

गोहत्याको ही लीजिए। केवल स्वाधीनता प्राप्त कर लेनेसे यह बन्द नहीं होगी। हमारे मुसलमान देशभाइयोंकी उदारतासे ही यह काम हो सकता है। इससे भी अधिक इसके लिए खूब विचार करने और उससे भी ज्यादा कार्य करनेकी आवश्यकता है। यह सवाल धार्मिक सवालसे कहीं ज्यादा आर्थिक है। अगर हमें गो-पालन और गोसंवर्धन-शास्त्रका ज्ञान होता तथा इसी समाचार-पत्रमें [अनेक स्थानोंपर] कही गई दूसरी बातोंका ज्ञान होता और हम तदनुसार काम करते होते तो गायकी रक्षा आज भी हो सकती थी। भविष्यकी आशाएँ बँधाते समय गायका भी उल्लेख करना उसकी रक्षाके काममें रुकावट डालना है।

मै चिट्ठीकी दूसरी बातोंपर भी थोड़में विचार किये ले रहा हूं।

दूध, घी और दही, इन विषयोंके ज्ञानका सक्रिय उपयोग करनेसे सस्ते होंगे, स्वतन्त्रता पा लेनेसे कभी नहीं।

जबतक दरिद्रताको खत्म नहीं कर दिया जायेगा और देशके बालिग लोगोंको बच्चोंके लालन-पालनकी कलाकी तालीम नहीं दी जायेगी तबतक बालमृत्यु नहीं घटेगी।

अगर हम अपनी आवश्यकतासे अधिक अनाज पैदा कर सके तो बेशक, हमारे हितके लिहाजसे और मानव समाजके भलेकी दृष्टिसे, वह अवश्य ही विदेशोंको भेजा जायेगा।

पाखण्ड तो तभी बन्द होगा जब हम अहिंसा और सत्यके द्वारा स्वराज्य प्राप्त करेंगे – अन्यथा नहीं।

मुझे इसमें सन्देह है कि हम कभी अपने बालक-बालिकाओंको १४ सालकी उम्रतक मुफ्त तालीम दे सकेंगे। हाँ, फीसके बदले उनसे कुछ काम कराकर हम शायद अपना काम चला सकें। लेकिन यह तभी होगा जब सारे राष्ट्रके दिमागसे शिक्षाके झूठे खयाल हटा दिये जायेंगे।

अगर हम हिल-मिलकर सफाई कर लेनेका गुण नहीं सीख लेते तो जीवन तब भी आज ही की भाँति गन्दा रहेगा।

मैं निश्चयपूर्वक कहूँगा कि आत्मरक्षाके लिए हरएकको हथियार नहीं मिल सकेंगे; लेकिन उन्हें रखनेकी इजाजतपर अभी जैसी सख्ती है, वैसी सख्ती नहीं होगी। फिर भी आजकी तरह, उस हालतमें भी हथियार रखनेकी स्वतन्त्रतापर नियन्त्रण तो रहेगा ही; लेकिन आज वह जिस इरादेसे रखा जाता है, नियंत्रण उस इरादेसे कदापि नहीं रखा जायेगा।

यदि स्वाधीनता पानेके समयतक धार्मिक अन्धविश्वास और विषय-लोलुपताके बदले हममें विवेकपूर्ण विश्वास और आत्म-संयम नहीं आ जाता तो स्वाधीन भारतमें भी बाल-विधवाओंकी कमी न रहेगी।

मैं पक्की तरहसे नहीं कह सकता कि डाक महसूल और घटाया जा सकता है या नहीं। रेल-भाड़ेमें कमी हो सकती है।

लेकिन शायद मैं गलतीपर होऊँ और स्वाधीनता हमारे लिये क्या-क्या कर सकती है, इसका अनुमान लगानेमें इस युवक-संघकी बातें सही साबित हों। लेकिन सवाल यह नहीं है कि कौन सही है। खास बात तो यह है कि इस तरह जल्दीमें वादे करना अविवेकपूर्ण और अदूरदर्शिता पूर्ण है। हमारे लिये तो निर्विरोध यह बात कहना ही काफीसे ज्यादा होता है कि स्वाधीनताका अर्थ हमारी आर्थिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक उन्नतिके मार्गमें खड़ी हुई सबसे बड़ी बाधाका हटाना है, उस बाधाको हटाये बिना कोई प्रगति नहीं हो सकती, और अब इसमें देरी करना राष्ट्रको दिवालिया बनाना और आत्मघात करना होगा।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २७-२-१९३०

४७९. खादी-मताधिकार

राष्ट्रीय कांग्रेसके संविधानकी धाराके अनुसार मताधिकारके लिए कांग्रेसी लोगोंको नियमित रूपसे हाथकी कती-बुनी शुद्ध खादी पहननी चाहिए अन्यथा बैठकोंमें मत देनेसे वंचित होना पड़ेगा। यह नियम बहुतोंको खटका करता है। एक सज्जन लिखते हैं:

> **सिरसे पैरतक विदेशी अथवा देशी मिलके कपड़े पहनते हुए भी कांग्रेसके ये सदस्य यह कहते शरमाते नहीं कि हमने स्वयं जानकर और भरसक खादीके कपड़े ही पहने हैं। पण्डित मोतीलालजीने कलकत्तामें जो फैसला किया था उसके बादसे तो कांग्रेस कमेटीकी बैठकोंमें सभापतियोंको इस तरहकी सफेद झूठसे भरी हुई बातें भी सच मान लेनी पड़ती हैं। जो ईमानदार आदमी, जब उन्हें इस बातपर चुनौती दी जाती है, सच बोल देते हैं और कबूल कर लेते हैं कि हम खादी नहीं पहने हैं, उन्हें मत देनेसे रोक दिया जाता है। क्या आप इसका कोई रास्ता नहीं बता सकते? अथवा कार्यसमिति क्या इसका कोई उपाय नहीं बता सकती?**

मेरे मनमें तत्काल जो उपाय आता है वह यह है कि ऐसी बैठकोंके मौकोंपर सभापतियोंको चाहिए कि वे उन लोगोंको मत देनेसे मना कर दें, जो जाहिरा तौरपर खद्दरके अलावा कोई और कपड़े पहने हुए हों। पण्डित मोतीलालजीने जो फैसला किया था, अगर मैं भूलता नहीं हूँ, तो वह तो एक आई हुई मुश्किलको दूर करने भरके लिए था। वह हमेशाके लिए कोई आदर्श नहीं हो सकता, और बहुत सम्भव है कि वह खुद अपनेको उस फैसलेसे बँधा हुआ न मानें, क्योंकि वह गम्भीरतापूर्वक या बहुत विचारके साथ नहीं किया गया था। आज हम जिस लड़ाईको शुरू करनेकी तैयारीमें हैं, ऐसे समय तमाम कांग्रेसी लोगोंका फर्ज तो यह है कि वे कांग्रेसके नियमों और विधानोंका सचाईके साथ पालन करें। जिन्हें खादी-मताधिकारका नियम पसन्द न हो वे उसे रद करानेके लिए प्रयत्न कर सकते हैं, लेकिन जबतक नियम विधानमें मौजूद है, सभ्यताके खयालसे उसका अमल करनेके लिए वे बँधे हुए हैं।

दूसरे एक और सज्जनने कुछ सवाल पूछे हैं, जिनका जवाब देना कुछ मुश्किल नहीं है। इन जवाबोंसे ही उनके सवालोंका पता चल जायेगा;

१. चार आने देकर सदस्य बनते समय किसीको खादी पहननेके लिए मजबूर नहीं किया जाता। नियमका गर्भित आशय तो यह है कि पहली धाराके मुताबिक प्रतिज्ञा करनेवाले और चार आनेका चन्दा अथवा अपेक्षित सूत देनेवालेको पहले सदस्य बना लिया जाये और बादमें उसे खादी पहननेके लिए प्रोत्साहित किया जाये।

२. सदस्योंमें मत देनेके हकदार तो वे ही हैं जो नियमसे खादी पहनते हैं। अतएव सिर्फ कांग्रेसके जलसोंमें शामिल होनेके लिए खादी पहनकर आना ही काफी

नहीं है। लेकिन यह सच है कि अबतक जब किसी सभामें कोई सज्जन खादी पहनकर आये हैं, तब उनसे इस बारेमें ज्यादा पूछताछ नहीं की गई है। और अब ऐसा रिवाज पड़ गया है।

३. थोड़ी खादी और कुछ विदेशी या मिलके कपड़े पहननेवाले खादीधारी नहीं कहला सकते।

४. मिलका बना कपड़ा खादी नहीं है।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २७-२-१९३०

४८०. हानिकारक ताड़का पेड़

इसपरसे[1] मुझे जो-कुछ बंगालमें हो रहा है, वह याद आ जाता है। पानीमें तैरनेवाला हायसिन्थ नामका पौधा देखनेमें सुन्दर लगता है परन्तु बंगालकी बड़ी नदियोंमें तैरता रहनेवाला यह पौधा बड़ा खतरनाक है। स्थानीय सरकार इसे नष्ट करनेकी कोशिश कर रही है, क्योंकि अन्यथा इन नदियोंसे सींची जानेवाली खेती नष्ट हो जायेगी। मुझे मालूम है कि ऐसे कड़े कानून बनाये गये हैं, जिनमें लोगोंसे अपेक्षा की गई है कि यदि वे इन हानिकारक पौधोंको नष्ट नहीं करेंगे तो उन्हें जेलकी सजा दी जायेगी। अफीमके विरुद्ध संसारके धर्म-युद्धका प्रधान उद्देश्य यह है कि पोस्तकी खेती रोक दी जाये और नष्ट कर दी जाये। इसलिए यह जानकर कोई आश्चर्य नहीं हुआ कि महादेव द्वारा निकाले गये उद्धरणोंमें इसे 'जंगली ताड़का पेड़' कहा गया है और इसकी भर्त्सना की गई है। सिवाय इसके कि इससे उत्तेजक द्रव निकलता है, इसका और कोई गुण नहीं है। दूसरे [खेतीके] मालिक इसे जितनी जल्दी नष्ट कर देंगे और जीवनदायक खेतीके लिए स्थान बनायेंगे, उनके लिए और समाजके लिए यह उतना ही ज्यादा अच्छा होगा।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २७-२-१९३०

१. यहाँ नहीं दिया जा रहा है। महादेव देसाई द्वारा निकाले गये बन्दोबस्त रिपोर्टके उद्धरणों और दूसरे दस्तावेजोंमें दिखाया गया था कि ताड़के पेड़ खेतीको हानि पहुँचानेवाले होते हैं और ये नष्ट कर दिये जाने चाहिए।

४८१. दिवालियेपनकी सीमा

श्रीयुत घनश्यामदास बिड़लाने भारतीय वाणिज्य और उद्योग व्यापार संघके प्रधानकी हैसियतसे वाइसरायके सामने जो अभी हालमें दिल्लीमें भाषण दिया उसकी ओर बहुतेरे लोगोंका ध्यान आकृष्ट हुआ है और उसकी ओर ध्यान जाना ठीक ही है। हमारे विदेशी दायित्वोंके सम्बन्धमें इस भाषणसे मैं निम्नलिखित प्रसंगोचित अनुच्छेद[1] दे रहा हूँ।

चूँकि श्रीयुत बिड़ला पूँजीपति हैं इसलिए केवल वही लेन-देन और व्यापारका हिसाब-किताब कर सकते हैं और यह मालूम कर सकते हैं कि ये सही या गलत दायित्व कैसे निबटाये जा सकते हैं। सुधारक दावा करते हैं कि वे इन दायित्वोंकी तहतक पहुँचते हैं और जानते हैं कि वे दायित्व कैसे और क्यों अस्तित्वमें लाये गये। हमें केवल इन तथाकथित दायित्वोंको अस्वीकार करनेके लिए, जो हमपर हमारी अनिच्छासे और बिना हमारे जाने लाद दिये गये हैं, बहुत तर्क वितर्क नहीं करना चाहिए। जब देशकी अवस्था अच्छी हो तो संविधान बनानेमें समय लगाना ठीक है। परन्तु यदि देश बीमार हो और मरणासन्न हो, तो उस दशामें नये संविधानकी बात धोखेमें डालनेवाली और विनाशकारी है। इसलिए हमारे देशकी आर्थिक स्थितिकी निष्पक्ष और निर्बाध परीक्षा संविधान बनानेकी किसी योजनासे पहलेकी शर्त रहनी चाहिए।

[अंग्रेजीसे]

यंग इंडिया, २७-२-१९३०

४८२. वर्णधर्म और श्रमधर्म – ४

प्र० — टॉल्स्टॉयने लिखा है — "पैसा और गुलामी एक ही वस्तु है — इसके उद्देश्य एक हैं और इसके परिणाम भी एकसे हैं। . . . रुपया गुलामीका नया और भयंकर स्वरूप है और पुरानी व्यक्तिगत दासताकी भाँति यह गुलाम और मालिक दोनोंको पतित और भ्रष्ट बना देता है। इतना ही क्यों? यह इससे भी अधिक बुरा है, क्योंकि गुलामीमें दास और स्वामीके बीच मानव सम्बन्धकी जो स्निग्धता रहती है, यह उसे भी नष्ट कर देता है।"

१. यहाँ नहीं दिये जा रहे है। उनमें अंग्रेजों द्वारा हमारे यहाँ रुपया लगाने और सेवाओंपर होनेवाले खर्च तथा ब्रिटेनमें भारतके लिए नियुक्त होनेवाले भारतके खर्चके प्रभाव और प्रसार-क्षेत्रका विश्लेषण किया गया था।

क्या आप इस बातसे सहमत हैं? क्या रुपया निर्दोष विनिमयका साधन कभी नहीं बन सकता? यदि बन सकता है तो कैसे और नहीं तो क्यों?

उ० – प्रश्नकर्त्तानें जैसा कि लिखा है यदि वही बात टॉल्स्टॉयने कही हो तो मुझे वह मालूम नहीं है। गुलामी और पैसा सजातीय शब्द नहीं हैं, इसलिए इन दोनोंमें मुकाबला नहीं हो सकता। गुलामी मनुष्यकी एक स्थिति है और हमेशा त्याज्य है। पैसा जगत्के साथ अपना आर्थिक व्यवहार चलानेका एक साधनमात्र है। फिर भले वह कितना ही बलवान साधन क्यों न हो; उससे जितनी बुराईकी सम्भावना है उतनी ही भलाई भी हो सकती है। यही बात दूसरे बहुतेरे जड़ साधनोंके लिए भी कही जा सकती है। किसी-न-किसी हालतमें और किसी-न-किसी रूपमें पैसेकी आवश्यकता तो रहेगी ही। गुलामीकी आवश्यकता न कभी थी न रह सकती है। यहाँ पैसेका अर्थ समझ लेना चाहिए। जब मैं अनाज देकर जूते खरीदता हूँ, तो [अनाज] जूते खरीदनेका साधन होनेके कारण पैसा बन जाता है। मगर चूँकि बहुतेरे लोगोंके लिए अनाजके जरिये लेन-देन चलाना मुश्किल होता है, संज्ञा-रूपसे धातुका या कागजका उपयोग हो सकता है। यह धातु अथवा कागज ही पैसा है। इसमें कोई बाधा नहीं पड़ सकती। किन्तु जब कोई मनुष्य ऐसे कागज, धातुके सिक्के या अनाजका आवश्यकतासे ज्यादा संग्रह करता है तब बुराई पैदा होती है। इससे यह सिद्ध होता है कि स्वयं पैसेमें कोई दोष नहीं है, परन्तु उसके लोभमें दोष है। ठीक इसके विपरीत गुलामी लोभकी निशानी है। एक आदमीको गुलाम बनाकर रखनेमें लोभ है, दोष है। मगर पैसे या धनका अधिक मात्रामें रखना दोष है।

परन्तु जो मनुष्य वर्णधर्मको समझता है, वह सन्तुष्ट रहता है, इसीलिए वह धनका लोभ भी नहीं करेगा। और जो मनुष्य श्रमधर्म समझेगा वह किसीको गुलाम बनाकर नहीं रखेगा। (समाप्त)

हिन्दी नवजीवन, २७-२-१९३०

४८३. पत्र : नौतमलाल भगवानजीको

आश्रम, साबरमती
२७ फरवरी, १९३०

भाईश्री नौतमलाल,

आपका पत्र मिला। मैं निम्न सुझाव देता हूँ। कन्याको यथासम्भव सादीसे सादी पोशाक पहनाएँ। गहने भी कमसे-कम पहनाएँ। कन्याको जो-कुछ देना चाहते हैं उसकी हुंडी दें। यदि वरको दहेज देना हो तो वह भी हुंडीके रूपमें दें। इसके सिवा उसे खादीकी बहुत ही सादी पोशाक दें। दावत कदापि न दें। विवाहके दिन आये हुए कुछ मेहमानोंको जिमाना आवश्यक है। किन्तु उसमें भी भोजको कमसे-कम स्थान देना चाहिए। अश्लील गीत बिलकुल नहीं गाये जाने चाहिए। बैंड बाजे नहीं होने चाहिए।

विवाह-विधिको केवल धार्मिक स्वरूप दिया जाना चाहिए। विवाहके बाद मेहमानोंको रोकनेका तनिक भी लोभ नहीं करना चाहिए। जात-बिरादरीके लोगोंको भेंट नहीं दी जानी चाहिए। यदि कुछ खर्च करनेकी इच्छा हो तो उसका उपयोग किसी शुभ सेवा कार्यके लिए करना चाहिए और जहाँतक बने उसका उपयोग किसी ऐसे काममें होना चाहिए जिससे सभी लाभान्वित हो सकें। खासकर जात-बिरादरीके लिए यदि कुछ भी खर्च न किया जाये तो बहुत अच्छा हो। वर्गभेदको प्रोत्साहन नहीं दिया जा सकता। ये सब सुझाव बहुत जल्दीमें लिख गया हूँ, इनमें से यथासम्भव जिनपर अमल कर सकें उनपर अमल करें।

मोहनदासके वन्देमातरम्

गुजराती (जी० एन० २५८४)की फोटो-नकलसे।

४८४. पत्र: घनश्यामदास बिड़लाको

२८ फरवरी, १९३०

भाई घनश्यामदासजी,

आपका पत्र मीला है। आपके व्याख्यानका मैंने काफी उपयोग[1] कर लीया है। जो कीया वह सब अच्छा हि हुआ है। अब तो मैंने अपने "देन"का ठीक अभ्यास कर लीया है। देखता हुं कि इसका उत्तर तो इन लोगोंके पासमें है हि नहिं। केवल हमारे अज्ञान और भीरुताका लाभ उठाते हैं।

एसेंबली जितनी शीघ्रतासे छूटे इतना अच्छा है। मार्चकी आखर तक जेल बहार रहनेकी मैं बहोत कम आशा करता हुं।

एक प्रश्न पूछ लुं। केशु और उसकी माताजी वहां थी राधा बहन भी थी देवदास था। उन लोगोंका अनुभव मुझे दे दीजीये। बीमारीमें केशुका वर्तन कैसे रहा?

आपका,
मोहनदास

सी० डब्ल्यू० ६१८२ से।
सौजन्य: घनश्यामदास बिड़ला

१. देखिए "दीवालियेपनकी सीमा", २७-२-१९३०।

परिशिष्ट

परिशिष्ट १

वाइसरायका वक्तव्य[1]

मैं अभी हाल ही में इंग्लैंडसे वापस आया हूँ। वहाँ मुझे महामहिमकी सरकारसे लम्बी बातचीतका अवसर मिला। इस देशसे रवाना होनेसे पहले मैंने सार्वजनिक रूपसे कहा था कि भारतमें सम्राट्के प्रतिनिधिकी हैसियतसे मैं अपने देशवासियोंको अपनी शक्ति-भर अधिकसे-अधिक ईमानदारीसे भारतकी भावनाओं, चिन्ताओं और आकांक्षाओंको बताना अपना कर्त्तव्य समझूँगा। अपने वचनको पूरा करनेके प्रयत्नमें मुझे एक बातसे बड़ी मदद मिली। वह बात यह थी कि वहाँ मैंने अपनी आशाके अनुरूप न केवल महामहिमकी सरकारमें बल्कि ग्रेट-ब्रिटेनके सभी व्यक्तियों व दलोंमें वह सब सुनने और उसकी कद्र करनेकी उदारतापूर्ण और सच्ची ख्वाहिश देखी जो सब बताना मेरा कर्त्तव्य था।

ये दिन नाजुक हैं। इस समय हमारे सामने जो प्रश्न उपस्थित हैं वे ऐसे हैं जिनके बारेमें लोग बड़ी गहराईसे महसूस करते हैं। इसलिए राजनैतिक भावनाका तीव्र होना और लोगोंके मनमें ऐसी गलतफहमियोंका जड़ जमा लेना अनिवार्य है, जो राजनीतिक शान्तिके दिनोंमें शायद ही पैदा होतीं। फिर भी मेरा यह विश्वास है कि समयकी इन तमाम विक्षोभकारी प्रवृत्तियोंके बावजूद भारतका विशाल जनमत जाति, धर्म या राजनैतिक विचारधाराके भेदभावसे ऊपर उठकर मूलतः सम्राट्के प्रति वफादार है और जाने या अनजाने उसके मनमें यह प्रबल इच्छा विद्यमान है कि वह दूसरे पक्षको समझे और दूसरा पक्ष भी उसे समझे। दूसरी ओर मुझे इस बातमें कभी कोई सन्देह नहीं हुआ है कि ग्रेट-ब्रिटेनका जनमत भारतमें होनेवाली घटनाओंसे शायद भौंचक्का भले हो, या उन घटनाओंके सही महत्त्वके विषयमें उसे भले ही आंशिक जानकारी ही मिली हो, किन्तु वह इस निश्चयपर अडिग है कि ग्रेट-ब्रिटेनने भारतके भविष्यके लिए जो वचन दिये हैं उन्हें पूरी तरह निभाना चाहिए। दोनों ही देशोंपर समयने भारी और कई तरहसे अनोखी जिम्मेदारी डाल दी है; क्योंकि ग्रेट-ब्रिटेन और भारतके बीच पूर्ण सद्भावना-सहमतिकी स्थापनाका प्रभाव दुनियापर निश्चय ही इतना जबरदस्त हो सकता है कि न तो इस लक्ष्यको प्राप्त करनेके हमारे प्रयत्नोंकी सफलताके पुरस्कारको किसी पैमानेसे नापा जा सकता है और न विफल होनेपर चुकाई जानेवाली कीमतको ही।

प्रधानमंत्री तथा भारत-मन्त्रीसे मेरी बातचीतमें भारतके घटनाक्रमका मुख्य विषयके रूपमें आना अनिवार्य था। किसी भी पक्षका इस विषयपर बात करना

१. देखिए पाद-टिप्पणी २, पृष्ठ ८६; "टिप्पणी", पृष्ठ ११९-२०; और "कांग्रेस कार्य समितिके प्रस्तावका मसविदा", पृष्ठ १९२।

लाभप्रद नहीं है कि दो साल पहलेकी संसदीय आयोगकी नियुक्तिने किस हदतक या किस औचित्यकी दृष्टिसे भारतीय विचार और कार्योंको प्रभावित किया है। व्यवहारविद लोगोंको चाहिए कि तथ्यों तथा परिस्थितियोंको उसी रूपमें लें जैसी वे हों, न कि जिस रूपमें वे उन्हें चाहते हों उस रूपमें।

सर जॉन साइमन आयोग, जिसकी भारतीय केन्द्रीय समिति मदद करती रही है, अब अपनी रिपोर्ट तैयार कर रहा है और जबतक वह रिपोर्ट संसदके सामने नहीं रखी जाती तबतक यह भविष्यवाणी करना असम्भव है कि जो भी कोई संवैधानिक परिवर्तन शायद बादमें किये जायें, उनका रूप क्या होगा। इस सम्बन्धमें ब्रिटेनके सभी दल, इच्छानुसार कार्य करनेकी पूरी स्वतन्त्रता चाहेंगे। लेकिन जिस बातपर अवश्य ही हमेशा हमारा ध्यान बराबर रहेगा और महामहिमकी सरकारके लिए भी, जो बहुत ध्यान देनेका विषय है, वह है उन तरीकोंको ढूँढ़ना जिनके द्वारा, आयोग द्वारा रिपोर्ट पेश कर दिये जानेके बाद, ब्रिटिश भारतकी संवैधानिक प्रगतिके प्रश्नको उन सभी लोगोंके सहयोगसे, हल करनेकी कोशिश की जायेगी जो ब्रिटिश भारतके मतकी ओरसे अधिकारपूर्वक बोल सकते हैं। आजसे आठ महीने पूर्व तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितिके सम्बन्धमें विधानसभामें भाषण करते हुए मैंने जो शब्द कहे थे, यहाँ मैं उनमें से कुछको दोहराना चाहूँगा। मैंने कहा था "एक ओर तो संसदको स्वतन्त्र रूपसे और सोच-समझकर किसी प्रश्न पर अपना मत निश्चित करनेके अधिकारसे वंचित करना उतना ही गैर-फायदेमन्द है जितना कि संसदके लिये यह अदूरदर्शिता होगी कि वह किसी ऐसे समाधान तक पहुँचनेके महत्त्वको कम करके आँके जो राजनीतिक रूपसे सजग भारतीयोंको स्वीकार्य हो।" यदि हम राजनीतिक कार्य करनेके इन दो मुख्य मार्गदर्शक सिद्धान्तोंमें से किसीको भी त्याग दें तो उसका मतलब होगा कि हम उस रास्तेसे भटक जायेंगे जिसपर चलकर हम अपने लक्ष्यको प्राप्त कर सकते हैं।

लेकिन इधर हालमें, एक बिलकुल अलग दृष्टिकोणसे, कतिपय दूसरे प्रकारके भी विचारणीय प्रश्न सामने आये हैं। ये प्रश्न इस सन्दर्भमें बहुत महत्त्व रखते हैं, जिसे मैंने इस मामलेमें महामहिमकी सरकारकी इच्छा कहा है।

आयोगके अध्यक्षने प्रधानमन्त्रीके साथ हुए पत्र-व्यवहारमें, जो मुझे मालूम हुआ है, इंग्लैंडमें छप भी रहा है, इस बातपर ध्यान दिलाया है कि जैसे उनकी जाँच-पड़तालका काम आगे बढ़ा है, उन्हें तथा उनके साथियोंको भारतीय संवैधानिक विकासकी भावी दिशापर विचार करते हुए यह बात समझमें आती गई है कि आगे चलकर किसी समय ब्रिटिश भारत तथा भारतीय राज्योंके बीच क्या सम्बन्ध बनेंगे, इसका खयाल मनमें बनाये रखना कितना महत्त्वपूर्ण है। उनके विचारसे यह जरूरी है कि जिन तरीकों द्वारा बृहत्तर भारतके इन दो घटकोंके भावी सम्बन्ध व्यवस्थित किये जायें, उन्हें पूरी तरह जाँचा जाये। उन्होंने यह राय भी व्यक्त की है कि यदि आयोगकी रिपोर्ट और उसके बाद तैयार किये जानेवाले सरकारके प्रस्तावोंका दायरा इतना व्यापक रखा जाता है तो यह जरूरी लगेगा कि सरकार फिलहाल प्रस्तावित तरीकेकी योजनापर पुनर्विचार करे। उनका आगे यह विचार है कि वैधानिक आयोग

तथा भारतीय केन्द्रीय समितिकी रिपोर्ट जब तैयार हो जाये और उनपर विचार करके उनको प्रकाशित कर दिया जाये तब, लेकिन संयुक्त संसदीय समितिकी अवस्थाके आनेसे पूर्व, जिस बातकी जरूरत होगी वह यह है कि एक परिषदकी स्थापना की जाये, जिसमें महामहिमकी सरकारके प्रतिनिधि ब्रिटिश भारत तथा देशी राज्यों दोनोंके प्रतिनिधियोंसे मिलकर विचार करें और उन अन्तिम प्रस्तावोंके लिए सभी पक्षोंके बीच अधिकतम सहमति हो सके, जिन्हें बादमें संसदके समक्ष प्रस्तुत करना महामहिमकी सरकारका कर्त्तव्य होगा। संयुक्त संसदीय समितिके भारतीय विधानमण्डलके प्रतिनिधियों तथा अन्य प्रतिनिधियोंके साथ विचार-विमर्श करनेका जो तरीका पहले सोचा गया था और जिसका उल्लेख ६ फरवरी १९२८ को मेरे नाम लिखे सर जॉन साइमनके पत्रमें किया गया है, वह बादमें विधेयकके संसदके सम्मुख पेश किये जानेपर भी उसकी जाँचके लिए उपयुक्त रहेगा। लेकिन आयोगके विचारसे इससे पहले स्पष्ट ही कोई ऐसी परिषद आयोजित करनी पड़ेगी जैसा कि आयोग द्वारा सुझाव दिया गया है।

मैं समझता हूँ कि इन विचारोंके साथ महामहिमकी सरकार पूर्णरूपसे सहमत है। क्योंकि जहाँ उसकी इच्छा यह होगी कि जब वक्त आये तो वह ब्रिटिश भारतके राजनैतिक विकासके सवालको ऐसी परिस्थितियोंमें हल कर सके जो उसके सफलता-पूर्वक समाधानके लिए सबसे ज्यादा अनुकूल हो, वह आयोगके साथ इस बातका महत्त्व भी समझती है कि ब्रिटिश भारत तथा भारतीय राज्योंके सम्बन्धोंकी सारी समस्यापर पूरी तरह विचार किया जाये। वस्तुतः उसके विचारमें इन हितोंका समंजन ब्रिटिश नीतिमें अन्तर्हित उद्देश्यको परिपूर्ण करनेके लिए अनिवार्य है, चाहे उसे आगे बढ़ानेका जो कोई भी तरीका हो, जिसे संसद अपनानेका निश्चय करे।

अगस्त १९१७ की घोषणामें ब्रिटिश नीतिका उद्देश्य यह बताया गया था कि स्वशासी संस्थाओंको उत्तरोत्तर विकासका अवसर इस दृष्टिसे दिया जाये कि भारतमें ब्रिटिश साम्राज्यके अभिन्न अंगके रूपमें उत्तरदायी शासनकी स्थापनामें शीघ्रता की जा सके। जैसा कि मैंने हाल ही में बताया था, महामहिमकी तरफसे मेरा अपना निर्देश स्पष्टतः यही था कि महामहिमकी इच्छा है और इसीमें उन्हें प्रसन्नता होगी कि १९१९ में संसद द्वारा पेश की गई योजनाओंके आधारपर ब्रिटिश भारत उनके उपनिवेशोंमें उचित स्थान प्राप्त करे। इसके अलावा सम्राट्के मन्त्रियोंने अनेकों बार सार्वजनिक रूपसे यह घोषणा की है कि ब्रिटिश सरकारकी यह इच्छा है कि भारत सही समय आनेपर उपनिवेशोंके साथ बराबरीके दर्जेपर साम्राज्यमें अपना स्थान ग्रहण करे। लेकिन उन शंकाओंको ध्यानमें रखते हुए जो ग्रेट-ब्रिटेन तथा भारतमें इस सम्बन्धमें व्यक्त की गई हैं कि १९१९ का विधान बनानेमें ब्रिटिश सरकारके इरादोंकी क्या व्याख्या की जाए, मुझे महामहिमकी सरकारकी ओरसे साफ तौर पर यह कहनेका अधिकार है कि उसके खयालसे १९१७ की घोषणामें यह बात साफ है कि भारतकी संवैधानिक प्रगतिका स्वाभाविक मसला जैसा कि उसमें सोचा गया है, डोमीनियन स्टेटस (औपनिवेशिक स्वराज्य) हासिल करना है।

इस नीतिको पूरी तरहसे अमलमें लानेके लिए जाहिरा तौरपर यह जरूरी है कि भारतीय राज्योंको अपना स्थान खोजनेका एक अवसर दिया जाना चाहिए और यद्यपि फिलहाल हम पूरी तरह यह न भी देख पायें कि किन रास्तोंसे इस विकासका रूप तैयार होगा, तो भी हर दृष्टिसे यह वांछनीय है कि जो-कुछ भी किया जा सकता है, किया जाना चाहिए ताकि यह निश्चित हो जाये कि अभी उठाया गया कदम उस अन्तिम लक्ष्यकी प्राप्तिसे असंगत नहीं है जिसकी ओर अखिल भारतीय एकता चाहनेवाले ब्रिटिश भारत अथवा देशी राज्योंके लोग निगाहें लगाये हुए हैं।

महामहिमकी सरकारका विचार है कि समस्याके ब्रिटिश भारतीय पहलूपर विचार करनेका सबसे अच्छा तरीका खोजना और दूसरा यह निश्चित करना कि इस प्रक्रियामें बृहत्तर भारतके दो भागोंके निकटतर भावी सम्बन्धोंका बृहत् प्रश्न नजरंदाज न हो, ये दोनों उद्देश्य उस तरीकेको अपनानेसे सबसे अच्छी तरह हासिल किए जा सकते हैं, जिसकी रूपरेखा आयोगने बनाई है। इसलिए जब आयोग तथा भारतीय केन्द्रीय समिति अपनी रिपोर्ट दे चुके और वे प्रकाशित हो जायें और जब महामहिमकी सरकार भारत सरकारसे परामर्श करके इन मामलोंपर उस समय उपलब्ध सभी सामग्रीको ध्यानमें रखते हुए विचार कर सके, तब वह ब्रिटिश भारतमें विभिन्न दलों और हितोंका प्रतिनिधित्व करनेवाले लोगों तथा भारतीय राज्योंके प्रतिनिधियोंको पृथक-पृथक अथवा एक साथ जैसी भी परिस्थिति हो ब्रिटिश भारतीय तथा अखिल भारतीय समस्याओंके सम्बन्धमें बातचीत एवं विचार करनेके उद्देश्यसे मिलनेके लिए आमन्त्रित करनेका प्रस्ताव करेंगे। यह उनकी हार्दिक इच्छा होगी कि इस तरीकेसे बादमें यह सम्भव हो सके कि इन गम्भीर मसलोंपर संसदके आगे ऐसे प्रस्ताव रखे जायें जिनके प्रति आम तौर पर काफी ज्यादा सहमति प्रकट की जाये।

मेरे लिए यह कहना जरूरी नहीं कि मैं इस बातपर कितना ज्यादा विश्वास रखता हूँ कि महामहिमकी सरकारकी इस कार्यवाहीपर सभी विचारधाराओंवाले भारतीयोंकी सहमति और उचित प्रतिक्रिया होनी चाहिए और मैं विश्वास करता हूँ कि वे सब लोग जो भारतका कल्याण चाहते हैं, वे चाहे जहाँ हों और जो भी हों, उस अविश्वासके जालसे बाहर आना चाहते हैं, जिससे अभी हालमें भारत और ग्रेट-ब्रिटेनके सम्बन्ध जटिल बन गए हैं। मुझे दृढ़ विश्वास दिलाया गया है कि अब जो कदम उठाये जानेका प्रस्ताव है उसके पीछे यह सच्ची लगन है कि भारतकी राजनीतिको ऐसा स्पर्श सुलभ हो जो राहत देनेवाला और स्वास्थ्यवर्धक होगा और वह एक ऐसा उपाय है, जिसके द्वारा इन ऊँचे मामलोंको रचनात्मक राजनीतिज्ञताके जरिये हम शायद सबसे अच्छे ढंगसे निबटा सकेंगे।

इर्विन,
वाइसराय तथा गवर्नर जनरल

३१ अक्टूबर १९२९

[अंग्रेजीसे]

इंडिया इन, १९२९-३०

परिशिष्ट २

पत्र : जवाहरलाल नेहरूका गांधीजीको[1]

अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी
५२, हीवट रोड, इलाहाबाद
४ नवम्बर, १९२९

प्रिय बापूजी,

मैंने दो रोज अच्छी तरहसे विचार किया है। मेरा खयाल है, अब मैं स्थिति पर दो दिन पहलेकी बनिस्बत कुछ ज्यादा ठंडे दिमागसे विचार कर सकता हूँ, लेकिन मेरा दिमागी बुखार अभी दूर नहीं हुआ है।

अनुशासनकी बिना पर आपने मुझसे जो अपील की है, उसे मैं दर-गुजर नहीं कर सकता था। मैं खुद अनुशासनका कायल हूँ। फिर भी मेरा खयाल है कि अनुशासनकी ज्यादती भी हो सकती है। परसों शामको मेरे अन्दर कुछ ऐसी बातें उठीं, जिनको मैं एकसूत्रमें नहीं बाँध सकता। कांग्रेसका प्रधान सचिव होनेके नाते कांग्रेसके प्रति मेरी निष्ठा होनी चाहिए और मुझे उसके अनुशासनमें रहना चाहिए। मेरी और हैसियतें और वफादारियाँ भी हैं। मैं इंडियन ट्रेड यूनियन कांग्रेसका सदर हूँ और 'इंडिपेंडेंस फार इंडिया लीग' का सचिव हूँ और युवक-आन्दोलनसे मेरा गहरा सम्बन्ध है। इन दूसरी जमातोंके प्रति, जिनसे मेरा सम्बन्ध है, अपनी वफादारी निभानेके लिए मैं क्या करूँ? मैं इस बातको अब पहलेसे ज्यादा महसूस करता हूँ कि एक साथ कई नावों पर सवार होना काफी मुश्किल है। वस्तुतः एक नावपर सवार होना भी काफी मुश्किल है। जब जिम्मेदारियों और वफादारियोंका आपसमें संघर्ष हो तो इसके अलावा कोई क्या कर सकता है कि अपनी सहज प्रवृत्ति और बुद्धिपर भरोसा करे?

इसलिए सभी बाहरी लगावों और वफादारियोंसे अलग रहकर मैंने हालत पर गौर किया है और मेरा यह यकीन ज्यादा मजबूत होता गया है कि परसों मैंने जो किया, वह गलत किया। मैं बयानकी अच्छाइयों या उसकी नीतिके बारेमें कुछ न कहूँगा। मुझे डर है कि उस मसलेपर हमारा बुनियादी मतभेद है और यह मुमकिन नहीं कि मैं आपकी राय बदल दूँ। मैं सिर्फ इतना ही कहूँगा कि मेरा यकीन है कि वह बयान नुकसानदेह है और मजदूर सरकारके ऐलानका बिलकुल नाकाफी जवाब है। मेरे खयालसे कुछ प्रतिष्ठित लोगोंको खुश करने और अपने साथ बनाये रखनेकी कोशिशमें हमने अपने दलके बहुत-से उन दूसरे लोगोंको परेशान किया है और करीब-करीब उन्हें दलसे बाहर किया है, जिनको साथ रखना कहीं अच्छा था।

१. देखिए "तार : जवाहरलाल नेहरूको", पृष्ठ १०८ और "पत्र : जवाहरलाल नेहरूको", पृष्ठ १२३-२४।

मेरा खयाल है कि हम लोग एक खतरनाक जालमें उलझ गये हैं, जिससे निकल सकना आसान नहीं, और मैं समझता हूँ कि हमने दुनियाको यह दिखला दिया है कि अगरचे हम लोग बातें तो ऊँची करते हैं, लेकिन सौदेबाजी छोटी-मोटी चीजोंके लिए कर रहे हैं।

मैं नहीं जानता कि ब्रिटिश सरकार अब क्या करेगी। मुमकिन है, वह आपकी शर्त नहीं मानेगी। मुझे उम्मीद यही है कि वह नहीं मानेगी। लेकिन मुझे इसमें जरा भी शक नहीं कि ज्यादातर हस्ताक्षर करनेवाले — निश्चय ही आपको छोड़कर — उन शर्तोंमें ब्रिटिश सरकार जो भी रद्दो-बदल सुझाएगी, उसे मंजूर कर लेंगे। हर हालतमें मुझे यह जान पड़ता है कि कांग्रेसके भीतर मेरी हालत रोज-बरोज ज्यादा मुश्किल होती जायेगी। मैंने कांग्रेसकी सदारत बड़े शक-शुबहाके साथ मंजूर की थी, लेकिन, इस उम्मीदसे कि अगले साल हम एक निश्चित मसलेको लेकर लड़ लेंगे। उस मसलेपर पहलेसे ही बादल छा गये हैं और इस पदको मंजूर करनेकी जो एक-मात्र वजह थी, वह अब नहीं रह गई है। इन 'नेताओंके सम्मेलनों' से मुझे क्या सरोकार? मैं अपनेको अनधिकार चेष्टा करनेवाला समझने लगा हूँ और इससे मुझे परेशानी है। मैं अपनी बात खुलकर इसलिए नहीं कह पाता कि सम्मेलनके बिगड़नेका मुझे डर है। मैं अपनेको दबाता हूँ और यह दबाना कभी-कभी मेरे लिए भारी पड़ता है और मैं भभक उठता हूँ और ऐसी चीजें भी कह जाता हूँ, जिनको कहनेका मेरा कोई मतलब नहीं होता है।

मैं महसूस करता हूँ कि मुझे अ० भा० कां० क० के सचिवके पदसे इस्तीफा दे देना चाहिए। मैंने पिताजीके पास एक जाब्तेका खत भेज दिया है, जिसकी नकल साथमें भेज रहा हूँ।

सभापतिका सवाल इससे कहीं ज्यादा मुश्किल है। मैं नहीं समझता कि इस ऐन मौकेपर मैं क्या कर सकता हूँ। मुझे इस बातका यकीन हो गया है कि मेरा चुनाव गलत था। इस अवसरपर और इस सालके लिए सिर्फ आपको ही चुना जाना चाहिए था। अगर कांग्रेसकी नीति वही है, जिसे मालवीयजीकी नीति कह सकें तो मैं सभापति नहीं रह सकता। अब भी अगर आप राजी हों तो बिना अ० भा० कां० क० की बैठक बुलाये एक रास्ता निकल सकता है। अ० भा० कां० क० के सदस्योंके नाम एक गश्ती चिट्ठी भेजी जा सकती है कि आप सदर बननेके लिए रजामंद हैं। मैं उनसे माफी माँग लूँगा। यह सिर्फ जाब्तेकी कार्रवाई होगी, क्योंकि सभी या करीब-करीब सभी सदस्य आपका फैसला खुशीसे मान लेंगे।

एक दूसरा रास्ता यह है कि मैं यह ऐलान कर दूँ कि मौजूदा हालतोंमें और इस खयालसे कि इस वक्त दूसरा सदर चुननेमें दिक्कत होगी, अभी सदारत न छोड़ूँ, लेकिन कांग्रेसके फौरन बाद छोड़ दूँ। मैं सभापतिके तौर पर काम करूँगा और मेरी कोई भी परवाह किये बिना कांग्रेस जैसा चाहे फैसला कर सकती है।

अगर मैं अपने जिस्मकी और दिमागी तंदुरुस्ती बनाये रखना चाहता हूँ तो इन दो में से एक रास्ता मेरी समझमें जरूरी है।

जैसा कि मैंने दिल्लीसे आपको लिखा था, मैं कोई पब्लिक बयान नहीं निकाल रहा हूँ। दूसरे लोग क्या कहते हैं या क्या नहीं, इसकी मुझे ज्यादा फिक्र नहीं है। लेकिन खुद मुझे शांति होनी चाहिए।

सप्रेम आपका,
जवाहरलाल

[पुनश्च :]

इस खतकी एक नकल मैं पिताजीके पास भेज रहा हूँ। इस खतको लिखकर मैं कुछ हल्कापन महसूस कर रहा हूँ। मुझे डर है कि इससे आपको कुछ परेशानी होगी। ऐसा मैं करना नहीं चाहता। आधा मन कर रहा है कि इसे आपके पास न भेजूँ, बल्कि आपके यहाँ आनेका इंतजार करूँ। दस दिन और बीतनेपर जरूरी तौर पर मेरी उत्तेजना कम हो जायेगी और मेरी निगाह ज्यादा साफ हो जायेगी। लेकिन यह अच्छा है कि आप जान लें कि मेरा दिमाग किस तरह काम कर रहा है।

[अंग्रेजीसे]

ए बंच ऑफ ओल्ड लेटर्स

परिशिष्ट ३

पत्र : वल्लभभाई पटेलका गांधीजीको[1]

सरदारगृह
बम्बई
११ नवम्बर, १९२९

निजी

पूज्य बापूजी,

मैं पिछले दो दिनोंसे यहाँ हूँ। पूज्य विट्ठलभाई भी यहाँ आये हुए हैं। मैंने श्री जिन्नाके साथ लम्बी बातचीतके बाद आज आपको एक तार भेजा है।

कार्य समितिकी बैठक १६ को हो रही है। हम चाहते हैं उस दिन हमारा अन्तिम प्रस्ताव ऐसा न हो जो बातचीतको ही समाप्त कर दे। यों तो यह हमारे हाथकी बात है। किन्तु अन्तिम निर्णय करनेके पहले यदि हम भविष्यमें बातचीतका दरवाजा बन्द न करना चाहते हों या दिल्लीके मूल वक्तव्यमें फेरफार न करना चाहते हों तो उसके पहले यह उचित होगा कि जिन्होंने उस वक्तव्यपर हस्ताक्षर किये हैं उनकी एक बैठक बुलाई जाये। ऐसा करनेपर ही कहा जा सकता है कि सही करनेवालोंके प्रति इन्साफ हुआ। आप, जिन्ना, विट्ठलभाई और सप्रू भी मिलें। अथवा जिन्ना और विट्ठलभाईको आपसे मिलकर चर्चा करनेका अवसर दिया जाये। इसके बाद जो प्रस्ताव करना हो वह किया जाये। यदि कार्य समिति दिल्लीके वक्तव्य

१. देखिए "तार : वल्लभभाई पटेलको", पृष्ठ १५१।

पर ही दृढ़ रहना चाहती हो तब तो कोई समस्या नहीं है। किन्तु यदि उसके बाद संसदमें जो चर्चा हुई उसे देखते हुए सम्बन्ध तोड़ना ही ठीक जान पड़े तो कुछ दिनोंतक रुके रहनेमें भी कोई हर्ज नहीं दिखाई देता। जिन लोगोंने हस्ताक्षर किये हैं उन्हें एक और अवसर देना ठीक जान पड़ता है। श्री जिन्ना और विट्ठलभाई आपके साथ किन्हीं बातोंपर कभी चर्चा करनेकी इच्छा रखते हैं।

श्री जिन्नाका अभिप्राय है कि परिषद जुलाईमें भी बुलाई जा सकती है। यदि परिषदमें बुलाए जानेवाले व्यक्तियोंके नामोंके बारेमें और कैदियोंकी रिहाईकी घोषणा, जैसे हम चाहते हैं, वैसे कर दी जाये तो क्या हम उसे हृदय-परिवर्तनका प्रमाण मान सकते हैं? एक मुख्य बात और बच रहती है कि हम परिषदमें भाग लें इससे पहले औपनिवेशिक स्वराज्यकी योजना निश्चित कर दी जानी चाहिए और सरकारकी ओरसे इस बातकी घोषणा हो जानी चाहिए। इस विषयमें आपसे चर्चा आवश्यक है क्योंकि यह तो निश्चित ही है कि आजकी परिस्थितिमें कोई भी सरकार ऐसी घोषणा नहीं करेगी। यदि इस विषयमें कोई मतभेद न हो तो श्री जिन्ना जानना चाहते हैं कि हमें अन्य किस तरीकेसे सरकारकी बातका विश्वास हो सकता है? उनका तो ऐसा खयाल है कि यदि परिषदमें शामिल होनेवाले व्यक्तियोंके नामोंकी घोषणा, कैदियोंकी रिहाई और औपनिवेशिक स्वराज्यकी योजना बनानेकी सरकारकी ओरसे स्वीकृति — ये तीन चीजें मिल जायें तो हमें वहाँ जाना चाहिए। इसके सिवाय भी अगर कोई और चौथी बात आवश्यक हो तो उसमें वे सहयोग करना चाहते हैं। वाइसराय और मजदूर दलकी सरकारकी नियत साफ है, इस बातका उन्हें पूरा इत्मीनान हो गया है और वे चाहते हैं कि यह जबर्दस्त अवसर हमें खोना नहीं चाहिए। वे आपके विश्वास सम्पादनके लिए जितना हो सकता है उतना करनेके लिए तैयार हैं।

मेरे तारका जवाब मिलनेके बाद निश्चय किया जा सकेगा कि कहाँ मिलें।

वल्लभभाईके वन्देमातरम्

गुजराती (एस० एन० १५५६८)की फोटो-नकलसे।

परिशिष्ट ४

डा० अन्सारीका पत्र[1]

जाओड़ा,
१३ फरवरी, १९३०

प्रिय महात्माजी,

पिछले सोमवारको आपको दिल्लीसे एक पत्र लिखा था। उस दिन बहुत ही व्यस्ततामें किसी तरह कुछ मिनट निकालकर जल्दी-जल्दीमें वह पत्र बोलकर लिखवाया। इसलिए स्वभावत: जो-कुछ मैं आपसे कहना चाहता था वह उस सबको व्यक्त नहीं करता। फिर मुझे यह भी आशा थी कि मुझे यहाँसे समय पर छुट्टी मिल जायेगी जिससे मैं १४ या १५ को आपके पास पहुँच जाऊँगा। परन्तु मुझे यह देखकर बड़ी निराशा हुई कि यहाँकी मेरी मरीजा उदर्याकला-प्रदाहसे पीड़ित है और उसकी तबीयत इतनी खराब है कि उसे छोड़कर जानेकी मैं बाततक नहीं कर सकता। वस्तुत: यह सम्भव नहीं लगता कि अभी एक हफ्ते या दस दिन मुझे यहाँसे छुट्टी मिल पायेगी। इसलिए इस नाजुक घड़ीमें खुद आपके पास होनेसे दूसरी सबसे अच्छी चीज आपको पत्र लिखना ही है, जो मैं कर रहा हूँ। मैं ऐसा महसूस करता हूँ कि पं० जवाहरलाल, पं० मोतीलाल, आप और कार्यकारी समितिके आपके सहयोगियोंके प्रति, जिनके हाथोंमें कांग्रेसकी बागडोर है और जो इस देशका नेतृत्व कर रहे हैं, मेरा यह कर्त्तव्य हो जाता है कि मैं देशकी वर्तमान परिस्थितिके सम्बन्धमें आपकी नीति और कार्यक्रमपर अपने मनोभाव आपको साफ-साफ बता दूँ। मैं अपनी बात यथासम्भव संक्षेपमें ही कहूँगा; लेकिन पत्रको छोटा करनेकी मेरी कोशिशोंके बावजूद यदि यह कुछ लम्बा हो जाये तो आप मुझे क्षमा करें।

मेरा यह विचार और विश्वास है कि हिन्दू-मुस्लिम एकता हमारे कार्यक्रमके मूल सूत्रोंमें से एक नहीं, बल्कि एकमात्र मूल सूत्र है। चाहता तो मैं यह था कि एकताके अपने प्रयासोंके पूरे इतिहासकी ही एक रूपरेखा रखूँ, पर मैं बिलकुल हालके यानी १९२७ की शरद्ऋतुसे अब तकके इतिहासको ही लूँगा। आपको याद होगा कि हमारी हर तरहकी कोशिशके बावजूद, शिमला एकता सम्मेलन किस तरह असफल रहा। उस असफलताके बाद मुझे यह लगने लगा कि कट्टर साम्प्रदायिक दलोंमें समझौता होना असम्भव है, लेकिन राष्ट्रीय हिन्दुओं और राष्ट्रीय मुसलमानोंमें एक व्यावहारिक समझौता हो सकता है। इसलिए मैंने कांग्रेसके तत्कालीन अध्यक्ष श्रीनिवास आयंगारसे आग्रह किया कि वे कांग्रेसके तत्त्वावधानमें कलकत्तामें और शिमला सम्मेलनसे अधिक उपयुक्त वातावरणमें, एक और एकता सम्मेलन बुलायें। कलकत्ता सम्मेलनसे

1. देखिए "पत्र: डा० मु० अ० अन्सारीको", १६-२-१९३०।

कांग्रेस और सभी विचारोंके मुसलमानोंमें एक सहमति हो गई, जैसा कि सर मुहम्मद शफी, सर जुल्फिकार अली, डा० मुहम्मद इकबाल और बहुत-से अन्य मुसलमानों द्वारा समझौतेके उत्साहपूर्ण स्वागतसे स्पष्ट था। वह समझौता, आपके द्वारा सुझाये गये कुछ परिवर्तनोंके साथ, मद्रास कांग्रेसमें पास हुआ और पं० मालवीय उससे सहमत थे। मुझे इसमें जरा भी सन्देह नहीं है कि यदि हम उसपर जमे रहते तो हम धीरे-धीरे हिन्दू महासभाके विरोधपर काबू पा लेते और हिन्दू-मुस्लिम एकता अबतक कायम हो गई होती। किन्तु हम और अधिक न्यायप्रिय और निष्पक्ष होना चाहते थे और हमने न्याय करने और नेहरू संविधानके रूपमें अधिक संगति और एकता लानेके अपने प्रयासमें, जो-कुछ मद्रासमें प्राप्त किया था वह सब लखनऊ और कलकत्तामें गंवा दिया। नेहरू रिपोर्टके खिलाफ लखनऊमें पहले मुसलमानोंने बगायत की, और उसके तुरन्त बाद ही सिखोंने। परन्तु कलकत्ता कन्वेन्शनमें हिन्दू महासभाने जो किया वह तो पूर्ण विनाश था। मैं यह कहे बिना नहीं रह सकता कि श्री जयकरने जो भाषण दिया और उसके बाद कमेटीमें पं० मालवीय, डा० मुंजे और हिन्दू महासभाई मित्रोंने जो रुख अपनाया, उससे सहमतिके सब अवसर ही नष्ट हो गये। बंगालमें ४५ प्रतिशत हिन्दू अल्पसंख्यकोंके लिए सीटें आरक्षित रखनेका, प्रोफेसर जतीन्द्रलाल बनर्जीका प्रस्ताव, जो कन्वेन्शनमें पारित किया गया और मेरी विशेष अपील और प्रार्थनापर ही वापस लिया गया, एक दुःखद अनुभव था। श्री जिन्नाको मैं बड़ी कोशिशके बाद पं० मोतीलालसे उनके घरपर मिलनेको राजी कर पाया था। पर पण्डितजीने उनके प्रति जिस तरह निरुत्साह दिखाया, उससे बड़ी निराशा हुई। फिर तो साम्प्रदायिक मुसलमानोंको मौका ही मिल गया और मुसलमानोंका रुख कड़ा हो गया, जैसा कि दिल्लीके सर्वदलीय मुस्लिम सम्मेलनमें पास किये गये बेहूदा प्रस्ताव और उसके बाद श्री जिन्नाके १४ सूत्रोंसे स्पष्ट हो गया।

पण्डितजी, आप और पं० जवाहरलालके अत्यधिक प्रभाव और प्रयासोंके बावजूद, रचनात्मक कार्यक्रम १९२९ में आगे नहीं बढ़ा और अधिकांश कांग्रेस कमेटियोंने गत वर्ष मईमें निश्चित किए गए कोटे पूरे नहीं किए। इस बीच सिख परिस्थिति बदसे बदतर होती गई।

इन हालातमें मैंने जब वाइसरायके पहली नवम्बरके वक्तव्यकी अग्रिम नकल पढ़ी तो मुझे वह ईश्वर-प्रदत्त लगी (यह उस सन्देशसे सिद्ध हो जायेगा जो मैंने फोनपर पण्डितजीको भेजा था और जवाहरलालने ग्रहण किया था)। मैं तुरन्त वल्लभभाईको साथ लेकर आपसे मेरठमें मिला। हमें लगा कि आप उस घोषणाके बारेमें उत्साही कम और सतर्क ज्यादा हैं, पर कुल मिलाकर बहुत अनुकूल दृष्टिकोण रखते हैं। आपको याद होगा कि १ नवम्बरको दिल्लीमें हुए सम्मेलनमें मैंने इस पर जोर दिया था कि डा० सप्रूके वक्तव्यके कुछ अंश आपके वक्तव्यमें शामिल कर लिये जाय। उसका कारण यह था कि मैं अपनेको उनसे सहमत पा रहा था। मैं केवल अपने व्यक्तिगत विचारोंका नहीं, बल्कि एक दलके विचारोंका भी प्रतिनिधित्व कर रहा था जिसमें सर्वश्री खलिकुज्जमां, तसद्दुक अहमद शेरवानी, रफी अहमद

किदवाई, डा० महमूद और कुछ अन्य लोग शामिल थे। लाहौरमें कार्यकारिणी समितिमें मैंने वही विचार व्यक्त किए। गत २२ दिसम्बरको दिल्लीमें जब पण्डितजीने मुझसे मेरी राय जाहिर करनेको कहा तो मैंने उनसे कहा कि हमारे अन्दरूनी मतभेदों, तैयारीकी कमी और कमजोरीको देखते हुए, मैं आपको यही सलाह दूँगा कि आप वाइसरायके साथ मंत्रणाको विफल न होने दें, बल्कि उसका पूरा लाभ उठाएँ। पण्डितजीने मेरे विचारोंका आधार कमजोरी माना। मैंने उनके आरोपका खण्डन किया, पर हमारी बातचीत वहीं खत्म हो गई। मैंने जब सुना कि वाइसरायके साथ आपकी मंत्रणा बिना किसी समझौतेके समाप्त हो गई है, तो मुझे बड़ी निराशा हुई। कार्यकारिणी समितिकी लाहौरकी मीटिंगमें जो गत दिसम्बरमें हुई थी; और उसके बाद दो-एक अवसरों पर मैंने वैसे ही विचार व्यक्त किए, पर श्रीमती नायडूके सिवा मुझे और किसीका समर्थन नहीं मिला। मुझे ऐसा लगता है कि वाइसराय और हमारे अपने प्रतिनिधियों, दोनोंने ही परिस्थितिका उपयोग गलत ढंगसे किया। वाइसराय, जाहिर है, बम काण्डसे बहुत विचलित थे और उनकी मन:स्थिति सामान्य नहीं थी। क्योंकि मुझे यह बात समझमें नहीं आती कि उन्हें जो सीमित अधिकार दिए गए हैं उनसे वे आपको यह आवश्यक आश्वासन देनेसे कैसे इन्कार कर सकते हैं कि गोलमेज सम्मेलनमें विचार-विमर्शका आधार औपनिवेशिक राज्यकी एक योजना होगी। वाइसराय और राज्यमंत्रीके वक्तव्यको बार-बार पढ़नेके बाद, लाख कोशिश करने पर भी मैं यह कल्पना नहीं कर सकता कि गोलमेज सम्मेलनमें विचार-विमर्शका आधार यदि औपनिवेशिक राज्यकी एक योजना नहीं, तो और क्या हो सकता है। आधारभूत योजना बहुत अपूर्ण तो हो सकती है; नेहरू संविधानमें पेश की गई हमारी अपनी योजना भी पूर्ण औपनिवेशिक राज्यकी योजना नहीं थी। अन्तिम निर्णय, जैसा कि सदा होता है, तालमेल बैठाने, आपसी सहमति और लेन-देनसे ही होंगे। लेकिन, हर हालतमें, उससे हमें भारतकी माँगको ब्रिटिश मंत्रिमंडल और ब्रिटिश जनताके सम्मुख रखनेका अवसर मिलता और, मुझे यकीन है कि साम्प्रदायिक मामलोंपर हमारे मतभेदोंके बावजूद, वे औपनिवेशिक संविधानकी हमारी माँगको बहुत हदतक माननेको बाध्य हो जाते। मेरा बराबर यही विचार रहा है और आज भी है।

मैंने ऐसा महसूस किया कि लाहौरमें कार्यकारिणी समितिसे त्यागपत्र देना और अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी या खुले अधिवेशनमें अपने विचार व्यक्त करना कांग्रेसके हितमें नहीं होगा। मैंने सोचा कि कांग्रेसमें पहले ही काफी विभाजन हैं; और एक और विभाजनसे परिस्थितिमें कोई सुधार नहीं होगा। कांग्रेसमें निष्ठा और आपसे तथा पं० मोतीलाल और जवाहरलालसे व्यक्तिगत लगाव होनेके कारण, मैं चुप ही रहा। परन्तु मैंने कार्यकारिणी समितिका महामंत्री या सदस्य होनेसे जान बूझकर इन्कार कर दिया। कांग्रेसको जिससे क्षति पहुँचे ऐसा कुछ कहने या करनेकी अपेक्षा, मैंने गलतफहमीका शिकार होनेका खतरा मोल लेना ही ठीक समझा। साथ ही, कांग्रेसकी नीति और कार्यक्रमसे सहमत न होनेके कारण, मैं उसकी कार्यसमितिमें शामिल नहीं हो सकता था। इसीलिए मैंने दिल्लीकी प्रान्तीय कांग्रेस कमेटीकी अध्यक्षता

और प्रान्तीय कार्य-समितिकी सदस्यतासे भी त्यागपत्र दे दिया। दरअसल, मेरे लिए और मेरी तरह सोचनेवालोंके लिए यही एक चारा रह गया था कि हम कांग्रेसकी कार्यसमितिसे अलग हो जायें; और कांग्रेसकी नीति और कार्यक्रमका विरोध न करते हुए तथा अपने कार्यों या शब्दोंसे उसे किसी भी तरहकी क्षति न पहुँचाते हुए उसके मात्र अनुयायी बने रहें। जहाँतक मुझे मालूम है, श्रीमती नायडू, रंगास्वामी अय्यंगार, आर० ए० किदवई, टी० ए० के० शेरवानी और कुछ अन्य प्रमुख कांग्रेसियोंका भी (जिनके नाम मैं नहीं लेना चाहता) यही विचार है।

सरकारके विरुद्ध युद्धकी घोषणा करके आप आज अपने ऊपर एक भारी जिम्मेदारी ले रहे हैं। १९२०में, जब आपने असहयोग आन्दोलन छेड़ा था, परिस्थिति जैसी थी आज उससे बिलकुल विपरीत है। नीचेकी तालिकामें मैं परिस्थितिकी एक संक्षिप्त तुलनात्मक तालिका प्रस्तुत कर रहा हूँ। निःसन्देह, यह पूर्ण नहीं है, मैं केवल कुछ मुख्य पहलू ही दे रहा हूँ :—

१९२०	१९३०
१. युद्धके समय किए गए वायदे पूरे न करनेके कारण सरकारके खिलाफ भारी असन्तोष था। रॉलट एक्ट मार्शल ला और खिलाफत सम्बन्धी अन्यायोंके खिलाफ असन्तोष था।	१. सही या गलत, ज्यादातर लोगोंका मजदूर-दल की सरकारकी सदाशयता और वाइसरायकी निश्छलतामें विश्वास है।
२. हिन्दू मुस्लिम एकता चरमोत्कर्षपर थी।	२. हिन्दू मुस्लिम एकता निम्नतम बिन्दुपर है।
३. सिख पूर्णतया कांग्रेसके साथ थे।	३. सिख लगभग पूर्णतया कांग्रेसके विरुद्ध हैं।
४. कांग्रेसके अन्दर पूर्ण एकता थी। कार्यकर्त्ताओं और आम सदस्योंमें बड़ा जोश था।	४. कांग्रेसमें फूट (उसके आदेशके खिलाफ विद्रोह) है, उद्देश्योंमें भिन्नता है, कार्यकर्त्ताओंमें कतई जोश नहीं है। आम सदस्य उदासीन हैं।
५. पूर्ण अहिंसात्मक वातावरण था, फिर भी चौरीचौरामें हिंसा फूट पड़ी थी।	५. हिंसा स्पष्ट रूपसे विद्यमान है, बहुत सारे प्रमुख कांग्रेसियों तकका उसमें विश्वास है, और हिंसाका फूट पड़ना निश्चित है।

हरिश्चन्द्रकी तरह, आज आप परिणामोंकी परवाह किए बिना, कलकत्तामें दिए गए अपने वचनको पूरा करने पर तुले हैं। मुझे लगता है मानों आप जान-बूझ कर अपनेको बलिका बकरा बना रहे हैं। बड़ी गम्भीरतासे मैं यह निवेदन करता हूँ, और आप इस पर गौर करें कि कलकत्तामें की गई माँगकी प्रतिक्रिया हुई है।

हमारे दृष्टिकोणसे वह सन्तोषजनक नहीं है। परन्तु सरकार इतना ही कर सकती है और यह तो निश्चय ही नहीं कहा जा सकता कि उसकी कोई प्रतिक्रिया ही नहीं हुई। इसलिए मेरा कहना यह है कि कलकत्ता प्रस्ताव पर कोई प्रतिक्रिया न होने पर अपना वचन पूरा करनेका सवाल पैदा नहीं होता। अतः हर कीमत पर अपना वचन पूरा करनेका विचार नैतिक दृष्टिसे न्यायोचित नहीं है, और राजनीतिक दृष्टिसे कार्यसाधक तो कदापि नहीं है।

मैं समझता हूँ कि मैंने अपनी स्थिति आपके आगे बिलकुल स्पष्ट कर दी है। मेरे यही विचार हैं और मैं यह महसूस करता हूँ कि हमारी तैयारीकी असली कसौटी स्वाधीनता दिवसपर देशभरमें हुए उतने प्रदर्शन नहीं हैं जितने कि वे परिणाम हैं जो हमें सदस्यों और स्वयंसेवकोंकी भर्त्ती, चन्दा इकट्ठा करने और सबसे अधिक हिन्दू-मुस्लिम-सिख एकताकी दिशामें प्राप्त हुए हैं। इसलिए मेरा यह विश्वास है कि देश अभी किसी भी तरहका सत्याग्रह आन्दोलन छेड़नेके लिए जरा भी तैयार नहीं है, और यदि आपने अभी या निकट भविष्यमें इस तरहका आन्दोलन शुरू करनेका फैसला किया, तो उससे अपरिमित हानि होगी। अतः मैं आपसे और कार्यकारी समितिके सदस्योंसे गम्भीरतापूर्वक यह आग्रह करता हूँ कि ऐसा न किया जाये। मेरा यह विश्वास है कि यदि आप एक ऐसा प्रस्ताव पास करना ठीक समझें जिसमें कांग्रेस संगठनोंसे कहा जाये कि वे हिन्दू-मुस्लिम-सिख सहमतिकी और अन्य तैयारियाँ तेज कर दें, लेकिन फिलहाल सत्याग्रह आन्दोलन तबतक स्थगित रखा जाये जबतक कि आप सत्याग्रह आन्दोलन शुरू करनेको तैयार और बाध्य न हो जाएँ, तो वह वर्तमान परिस्थितिके लिए बहुत अधिक उपयुक्त होगा, और हमारे जो देशवासी लन्दनके गोलमेज सम्मेलनमें भाग लेनेकी बात सोच रहे हैं उन्हें एक मौका मिल जायेगा।

मेरी यह इच्छा है कि आप यह पत्र पं० जवाहरलाल और पं० मोतीलाल नेहरूको भी दिखा दें। आशा है आपका स्वास्थ्य खूब अच्छा होगा।

सादर,

हृदयसे आपका,
एम० ए० अन्सारी

[अंग्रेजीसे]
अन्सारीके कागजात

सौजन्य : जामिया मिलिया पुस्तकालय ओखला, दिल्ली

सामग्रीके साधन-सूत्र

गांधी स्मारक संग्रहालय, नई दिल्ली : गांधी साहित्य और तत्सम्बन्धित कागजातोंका केन्द्रीय संग्रहालय तथा पुस्तकालय; देखिए खण्ड १, पृष्ठ ३५५ (जून १९७० का संस्करण)।

नेहरू स्मारक संग्रहालय, नई दिल्ली।

साबरमती संग्रहालय : पुस्तकालय तथा आलेख संग्रहालय : जिसमें गांधीजीके दक्षिण आफ्रिकी काल तथा १९३३ तकके भारतीय कालसे सम्बन्धित कागजात रखे हैं; देखिए खण्ड १, पृष्ठ ३५५ (जून १९७० का संस्करण)।

'अमृतबाजार पत्रिका': कलकत्तासे प्रकाशित अंग्रेजी समाचारपत्र, सर्वप्रथम यह १८६८ में बंगाली साप्ताहिकके रूपमें प्रकाशित हुआ था; १८९१ में दैनिक बन गया।

'ट्रिब्यून': अम्बालासे प्रकाशित अंग्रेजी दैनिक।

'नवजीवन': (१९१९-१९३१) गांधीजी द्वारा सम्पादित और अहमदाबादसे प्रकाशित गुजराती साप्ताहिक (कभी-कभी सप्ताहमें दो बार प्रकाशित)। ७ सितम्बर, १९१९में पहली बार प्रकाशित हुआ था। 'नवजीवन अने सत्य' नामसे यह (१९१५से १९१९ तक) प्रकाशित होता रहा। १९ अगस्त, १९२१से हिन्दीमें भी प्रकाशित होने लगा।

'प्रजाबन्धु': अहमदाबादसे प्रकाशित गुजराती साप्ताहिक।

'बॉम्बे क्रॉनिकल': बम्बईसे प्रकाशित अंग्रेजी दैनिक।

'माडर्न रिव्यू': कलकत्तासे प्रकाशित अंग्रेजी मासिक।

'यंग इंडिया': (१९१८-१९३१) जमनादास द्वारकादास द्वारा बम्बईमें स्थापित अंग्रेजी साप्ताहिक, ७ मई १९१९में गांधीजीकी देखरेखमें सप्ताहमें दो बार प्रकाशित होने लगा था; ८ अक्तूबर १९१९से गांधीजीके सम्पादनमें यह अहमदाबादसे साप्ताहिकके रूपमें निकलने लगा।

'लीडर': इलाहाबादसे प्रकाशित अंग्रेजी दैनिक।

'शिक्षण अने साहित्य': मासिक प्रकाशन, नवजीवनके पूरकके रूपमें ७ जुलाई, १९२९ से आरम्भ, डी० बी० कालेलकर द्वारा सम्पादित।

'सर्चलाइट': पटनासे प्रकाशित अंग्रेजी दैनिक।

'हिन्दी नवजीवन': हिन्दी साप्ताहिक, गांधीजी द्वारा अहमदाबादसे प्रकाशित; देखिए 'नवजीवन' भी।

'हिन्दुस्तान टाइम्स': नई दिल्लीसे प्रकाशित अंग्रेजी दैनिक।

'हिन्दू': मद्राससे प्रकाशित अंग्रेजी दैनिक।

अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीकी फाइल : भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसके रेकार्ड्स।

चौवालीसवीं भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस लाहौरकी रिपोर्ट।

बॉम्बे सीक्रेट एब्स्ट्रैक्ट्स १९३० : बम्बई सरकारके दफतरी कागजात।

'इंडिया इन-१९२९-३०': भारत सरकार, केन्द्रीय प्रकाशन शाखा, कलकत्ता, १९३१।

'ए बंच ऑफ ओल्ड लैटर्स': जवाहरलाल नेहरू, एशिया पब्लिशिंग हाउस, बम्बई १९५८।

'गांधीजीके संस्मरण': शान्तिकुमार, काशीनाथ त्रिवेदी द्वारा अनूदित; सर्वसेवा संघ वाराणसी, १९६४।

'पाँचवे पुत्रको बापूके आशीर्वाद' (हिन्दी) : डी० बी० कालेलकर, जमनालाल बजाज ट्रस्ट, वर्धा, १९५३।

'बापुना पत्रो —: ६ गं० स्व० गंगाबहेनने' (गुजराती) : काका साहेब कालेलकर द्वारा सम्पादित तथा नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबादसे १९६०में प्रकाशित।

'बापुना पत्रो —: १० श्री प्रभावतीबहेनने' (गुजराती) : काकासाहेब कालेलकर द्वारा सम्पादित तथा नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबादसे १९६६में प्रकाशित।

'बापुना पत्रो —: ५ कु० प्रेमाबहेन कंटकने' (गुजराती) : काकासाहेब कालेलकर द्वारा सम्पादित तथा नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबादसे १९६०में प्रकाशित।

'बापुना पत्रो : – ४ मणिबहेन पटेलने' (गुजराती): मणिबहन पटेल द्वारा सम्पादित तथा नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबादसे १९५७में प्रकाशनत।

'बापुना पत्रो —: ७ श्री छगनलाल जोशीने' (गुजराती): श्री छगनलाल जोशी द्वारा सम्पादित, नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद १९६२में प्रकाशित।

'बापुना पत्रो —: ९ श्री नारणदास गांधीने' (गुजराती) : श्री नारणदास गांधी द्वारा सम्पादित तथा नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबादसे १९६४ में प्रकाशित।

'बापुनी प्रसादी': (गुजराती) : मथुरादास त्रिकमजी, नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबादसे १९४८में प्रकाशित।

'बापू : मैंने क्या देखा, क्या समझा' (हिन्दी) : रामनारायण चौधरी, नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद १९५४में प्रकाशित।

'लैटर्स ऑफ श्रीनिवास शास्त्री': टी० एन० जगदीशन, द्वारा सम्पादित तथा एशिया पब्लिशिंग हाउस बम्बईसे १९६३में प्रकाशित।

'विट्ठलभाई पटेल : लाइफ ऐंड टाइम्स': द्वितीय पुस्तक : आर० ए० मोरारकर, लक्ष्मी नारायण प्रेस, ३६४, ठाकुर द्वार, बम्बई।

'हिस्ट्री ऑफ द इंडियन नेशनल कांग्रेस': खण्ड १, डा० पट्टाभिसीतारमैया, पद्मा पब्लिकेशन्स लिमिटेड बम्बई, १९४६।

तारीखवार जीवन-वृत्तान्त

(१६ अक्टूबर, १९२९ से २८ फरवरी, १९३०)

१६ अक्टूबर: गांधीजीने संयुक्त प्रान्तका दौरा जारी रखा जिसमें उन्होंने लाला लाजपतराय स्मारक, संयुक्त प्रान्त राष्ट्रीय सेवा और खादीके लिए पैसा इकट्ठा किया। देहरादूनमें श्रद्धानन्द अबला आश्रमका शिलान्यास किया। विद्यार्थियों, महिलाओं और अस्पृश्योंकी सभाओंमें भाषण दिया।

१७ अक्टूबर: मसूरी जाते हुए कन्या गुरुकुलकी लड़कियों द्वारा संस्कृतमें लिखा मानपत्र स्वीकार किया; बा और मीराबहनके साथ कताईकी प्रतियोगतामें भाग लिया; राजपुरमें केशवदेव शास्त्रीके चित्रका अनावरण किया और उनकी स्मृतिमें वृक्षारोपण किया।

१८ अक्टूबर: मसूरीमें नगरपालिकाके यूरोपीय पार्षदोंके समक्ष भाषण दिया।

१९ से २३ अक्टूबर तक: मसूरीमें।

२४ अक्टूबर: मसूरीमें आम सभामें भाषण दिया; अन्त्यजोंसे अनुरोध किया कि वे चेतें और यह देखें कि उन्हें मसूरीके हिन्दू मन्दिरमें प्रवेश करने दिया जाए।

२५ अक्टूबर: सहारनपुरमें।

२६ अक्टूबर: मुजफ्फरनगरमें।

२७ अक्टूबर: मेरठमें। "मेरठ षड्यन्त्र" के कैदियोंसे मिले। आम सभामें भाषण दिया।

२८ अक्टूबर: आचार्य कृपलानीके आश्रममें गये; मेरठ कालेजमें भाषण दिया।

२९, ३० अक्टूबर: असौड़ामें।

३१ अक्टूबर: मेरठमें।
वाइसरायने भारतकी राजनीतिक समस्याको हल करनेके लिए गोलमेज परिषद्की घोषणा की, जिसका गठन साइमन कमीशन द्वारा अपनी रिपोर्ट दिए जानेके बाद किया जाना था।

१ नवम्बर: गांधीजी दिल्ली पहुँचे; नेतागण वल्लभभाई पटेलके भवनमें संयुक्त वक्तव्यका मसविदा तैयार करनेके लिए इकट्ठे हुए; गांधीजीने इस बातपर जोर दिया कि वाइसरायके प्रस्तावको, शर्तें पूरी न किए जानेपर, स्वीकार न किया जाये।

२ नवम्बर: वाइसरायके गोलमेज परिषद् सम्बन्धी प्रस्तावके उत्तरमें प्रमुख नेताओंके सम्मेलनने दिल्लीमें सर्वसम्मतिसे वक्तव्य जारी किया।

गांधीजीने टाउन हालमें भाषण दिया; कांग्रेस कमेटी और मजदूर सभा द्वारा दिए गए मानपत्र और नागरिकों द्वारा भेंट की गई थैली प्राप्त की।

३ नवम्बर: खुर्जामें पड़ाव डाला।

४ नवम्बर: अलीगढ़ पहुँचे; रातको अलीगढ़ विश्व विद्यालयमें विद्यार्थियोंके समक्ष भाषण दिया और हिन्दू-मुस्लिम एकतापर बोले।

५ नवम्बर: अलीगढ़में; तीसरे पहर महिलाओंकी सभा और आम सभामें भाषण दिया।

'हाउस ऑफ लार्ड्स' में वाइसरायकी घोषणापर चर्चा हुई, ज्यादातर सदस्योंने वक्तव्यके औचित्य पर सन्देह प्रकट किया।

६ नवम्बर: गांधीजी मथुरा पहुँचे।

७ नवम्बर: वृन्दावनमें। 'हाउस ऑफ कामन्स' में वाइसरायकी घोषणापर बहस की गई।

८ नवम्बर: गांधीजी हाथरस पहुँचे।

९ नवम्बर: एटा जिलेमें।

१० नवम्बर: बदायूँ जिलेमें।

११ नवम्बर: शहाजहाँपुर जिलेमें; दलित वर्गोंके लिए खोला गया अमेरिकी मेथोडिस्ट मिशन गर्ल्स स्कूल देखा।

१२ नवम्बर: पीलीभीत जिलेमें।

१३ नवम्बर: सीतापुर जिलेमें; रायबरेली जाते हुए लखनऊ गये।

१४ नवम्बर: रायबरेली जिलेमें। फेनर ब्रॉकवेको लिखा कि ब्रिटिश सरकारसे बिना शर्त कुछ निश्चित गारन्टी लेना जरूरी है।

१५ नवम्बर: इलाहाबाद पहुँचे।

१६ नवम्बर: इलाहाबादमें; सुबह डा० हिगिन बॉटमका प्रायोगिक फार्म और कृषि संस्थान, श्रीमती हिगिन बॉटम द्वारा अपाहिजोंके बच्चोंके लिए बनाया गया आश्रम, उनके द्वारा चलाया गया अपाहिज आश्रम; इविंग क्रिश्चियन कालेज, क्रास्टवेट गर्ल्स स्कूल, कायस्थ पाठशाला और इलाहाबादके इर्द-गिर्दके गाँव देखे।

१७ नवम्बर: लाला लाजपतरायकी प्रथम बरसी।

गांधीजीने इलाहाबाद विश्वविद्यालयके विद्यार्थियों और स्टाफकी सभामें, नगरपालिका सभा तथा महिलाओंकी सभामें जहाँ उन्हें इन्दिरा नेहरूने रु० ८,००० से ज्यादाका चेक भेंट किया, भाषण दिया। उन्होंने एक प्रार्थना सभामें भी भाषण दिया, जिसकी अध्यक्षता मोतीलाल नेहरूने की।

१८ नवम्बर: इलाहाबादमें प्रतिनिधि राजनीतिक नेताओंके सम्मेलनने प्रस्ताव स्वीकार किया कि दिल्ली घोषणा पत्रका अनुमोदन किया जाये और आशा प्रकट की

कि ब्रिटिश सरकार इसे पूरी तरह स्वीकार कर लेगी। आधी रातके बाद कांग्रेस कार्यसमितिने एक मतसे प्रस्ताव पास किया कि ब्रिटिश सरकारके उत्तरकी प्रतीक्षा की जाए।

१९ नवम्बर: गांधीजी मिर्जापुर और चुनार गये।

२० नवम्बर: फतेहपुर जिलेमें।

२१ नवम्बर: बाँदा जिलेमें; कुलपहाड़के लिए रवाना हो गए।

२२ नवम्बर: हमीरपुर जिलेमें।

२३ नवम्बर: झाँसी और जलाओं जिलोंमें।

२४ नवम्बर: इटावामें; संयुक्त प्रान्तकी यात्रा समाप्त की।

२५ नवम्बर: अहमदाबादके लिए रवाना हो गए।

२६ नवम्बर: साबरमतीमें नवजीवन ट्रस्टकी वसीयत लिखी।

३० नवम्बर: साबरमतीमें जिन्ना और विट्ठलभाई पटेलसे बातचीत की।

७ दिसम्बर: सुबह वर्धा पहुँचे; अहमदाबादके मजदूरोंसे अपील की कि वे पंच-फैसलेको स्वीकार कर लें यद्यपि इससे उनकी माँगें पूरी नहीं होतीं।

१९ दिसम्बर: वर्धामें।

२० दिसम्बर: वाइसरायने गांधीजीको तार दिया कि वे मोतीलाल नेहरू, टी० बी० सप्रू, विट्ठलभाई पटेल और जिन्ना सहित २३ दिसम्बरको, तीसरे पहर उनसे मिलें। गांधीजीने आमन्त्रण स्वीकार कर लिया।

२१ दिसम्बर: दिल्लीके लिए रवाना हो गए। मथुरादास त्रिकमजीको लिखे पत्रमें गांधीजीने लिखा: "मैं वहाँ कोई आशाएँ लेकर नहीं जा रहा हूँ।"

२२ दिसम्बर: लाहौरमें डॉ० प्र० च० राय द्वारा कांग्रेस प्रदर्शनीका उद्घाटन किया गया।

२३ दिसम्बर: गांधीजी दिल्ली पहुँचे; वाइसरायसे मिले।
नई दिल्लीसे कोई छ: मील निजामुद्दीनके पास वाइसरायकी गाड़ी उड़ा देनेका प्रयत्न किया गया।

२४ दिसम्बर: गांधीजी लाहौर पहुँचे; सर्वेण्ट्स ऑफ पीपुल सोसाइटी की पहली वर्षगाँठ पर आम सभामें भाषण दिया; लाजपतराय मेमोरियल हॉलका उद्घाटन किया; अखिल भारतीय दलित वर्ग सम्मेलनकी अध्यक्षता की।

२५ दिसम्बर: गोलबाग (लाहौर) में लाला लाजपतरायकी मूर्तिका शिलान्यास किया।

२६ दिसम्बर: कांग्रेस कार्यसमितिने मोतीलाल और दूसरे लोगोंके साथ विचार-विमर्श करनेके बाद गांधीजी द्वारा तैयार किए गए कांग्रेसके प्रस्ताव-सम्बन्धी मसौदोंको सदस्योंमें परिचालित किया।

२७ दिसम्बर: अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीकी सभा लाहौरमें शुरू हुई और अगले तीन दिनतक चली। अखिल भारतीय हिन्दुस्तानी सेवादल सम्मेलन लाहौरमें श्रीनिवास अयंगारकी अध्यक्षतामें हुआ। गांधीजीने सिख नेताओंके साथ उनके अधिकारोंपर चर्चा की। गांधीजीने विषय समितिकी बैठकमें स्नतन्त्रता प्रस्ताव पेश किया।

२९ दिसम्बर: भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेसका अधिवेशन जवाहरलाल नेहरूकी अध्यक्षतामें हुआ। जवाहरलाल नेहरूने पूर्ण राष्ट्रीय स्वतन्त्रता, विधान सभाओंका तत्काल बहिष्कार, और कर न देनेके लिए शान्तिपूर्ण सामूहिक आन्दोलनका संगठन करनेके लिए भाषण दिया।

गांधीजीने स्वतन्त्रता प्रस्ताव पर की गई बहसका उत्तर दिया।

३० दिसम्बर: लाहौरमें अखिल भारतीय विद्यार्थी अधिवेशन, मदनमोहन मालवीय द्वारा अध्यक्षता की गई।

लाहौरमें सिखोंका सम्मेलन हुआ।

विषयसमितिकी बैठकमें गांधीजीके विदेशी वस्त्र बहिष्कारके लिए समितियोंको स्वायत्तता देने सम्बन्धी, अस्पृश्यता विरोधी; मद्यनिषेध और सदस्योंकी संख्या घटानेसे सम्बन्धित प्रस्ताव गिर गए।

३१ दिसम्बर: बम फेंके जाने और पूर्ण स्वतन्त्रता पर गांधीजीके प्रस्ताव कांग्रेसके खुले अधिवेशनमें विचारार्थ स्वीकार किए गए।

१ जनवरी १९३०: विषयसमितिकी बैठकमें गांधीजीने राष्ट्रीय ऋणोंपर प्रस्ताव पेश किया जिसमें कहा गया था कि स्वतन्त्र भारतको जो वितीय ऋण उत्तराधिकारमें मिलेगा उनकी जाँच स्वतन्त्र न्यायाधिकरण करेगा। लाहौरसे जानेके पूर्व उन्होंने विदेशी पत्र-संवाददातासे विशेष भेंट की।

२ जनवरी: गांधीजी दिल्ली पहुँचे। नई कार्य-समिति द्वारा २६ जनवरी स्वतन्त्रता दिवसके रूपमें नियत किया गया।

४ जनवरी: भारतके लिए अवर राज्य सचिव, अर्ल रसेलने अपने भाषणमें कहा कि भारतका औपनिवेशिक राज्य कनाडा, आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैंडके राज्य जैसा नहीं होगा। मजहर-उल-हकका देहान्त हो गया।

११ जनवरी: गुजरात विद्यापीठके दीक्षान्त समारोहके भाषणमें गांधीजीने कहा कि भारतके औपनिवेशिक राज्यपर अर्ल रसेलके वक्तव्यका अभिप्राय लोहेकी बेड़ियोंको सोनेकी बेड़ियोंमें बदलना है।

१३ जनवरी: राष्ट्रीय शिक्षा सम्मेलनमें भाषण दिया।

१८ जनवरी: रवीन्द्रनाथ टैगोर आश्रममें आये और उन्होंने गांधीजीसे बातचीत की।

२२ जनवरी: गांधीजीने सविनय अवज्ञा आन्दोलनके बारेमें अपनी भावी योजनाके बारेमें 'डेली एक्सप्रेस'के प्रतिनिधिसे भेंट की।

२५ जनवरी: वाइसरायने विधान-सभामें अपने एक वक्तव्यमें कहा कि गोलमेज परिषद् निदेशावलि तैयार करनेमें मदद करेगी जिसके आधारपर सरकार संसदके विचारार्थ औपनिवेशिक राज्यके बारेमें प्रस्ताव मसौदे तैयार कर सके। वायसरायने कांग्रेसके वित्तीय प्रस्तावका अनुमोदन नहीं किया।

२६ जनवरी: भारतभरमें स्वतन्त्रता प्राप्तिके लिए प्रतिज्ञा की गई।

७ फरवरी: वायसरायने लखनऊ दरबारमें भाषण किया।

१५ फरवरी: कांग्रेस कार्यसमितिने अहमदाबादमें गांधीजीको और उन लोगोंको जो अहिंसाको धर्म मानते हैं अधिकार दे दिया कि "वे जैसे और जब चाहें और जिस सीमातक निश्चय करें" सविनय अवज्ञा चलाएँ।
साबरमतीमें प्रार्थना-सभामें भाषण दिया, जिसमें आश्रमवासियोंको सलाह दी गई कि वे अपने-आपको आनेवाले संघर्षके लिए तैयार रखें।

१९ फरवरी: अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटीने सविनय अवज्ञा कार्यक्रम अपनाया।

२७ फरवरी: "जब मैं गिरफ्तार हो जाऊँ" लेखमें गांधीजीने लोगोंसे अनुरोध किया "भारतकी ध्येय प्राप्तिके लिए अहिंसाको अपना धर्म मानने वाला एक भी आदमी इस प्रयत्नके अन्तमें वर्तमान दासताके आगे और अधिक समयतक झुकनेके लिए स्वतन्त्र या जीवित न रहें।"

२८ फरवरी: गांधीजीने घ० दा० बिड़लाको लिखे पत्रमें लिखा: "मार्चके अन्ततक मेरे जेलसे बाहर रहनेकी आशा नहीं है।"

शीर्षक-सांकेतिका

विविध

सांकेतिका

आ

इ

ख

घ

च

ध

न

प

फ

ब

ल

स

ह